

# वाणिज्य-विधि के तत्त्व

(Elements of Commercial Law)

लेखक

डॉ० मनमोहन प्रसाद, एम० कॉम०, एम०ए० (अर्थशास्त्र), एल-एल०बी०, पी-एच०डी०  
प्राध्यापक, वाणिज्य-विभाग, गया कॉलेज,  
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

**भारती भवन**

**पब्लिशर्स एंड  
डिस्ट्रीब्यूटर्स**

प्रधान कार्यालय : गोविन्द मित्र रोड, पटना-४ □ शाखाएँ एवं एजेंसियाँ : राधागोविन्द पथ,  
 राँची □ टावर चौक, दरभंगा □ मोतीझील, मुजफ्फरपुर □ रलेमपुर, छपरा □ टेडीनाथ चौक,  
 बेगूसराय □ डा० राजेन्द्र प्रसाद पथ, भागलपुर □ जी० बी० रोड, गया □ डी० बी० रोड, महरसा □  
 रेलवे सिनेमा रोड, धनबाद □ राजेन्द्रनगर, साकची, जमशेदपुर □ मंगल बाजार, काटहार □  
 १७१/ए, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता ७ □ निकोलसन रोड, अम्बाला कैट □ मेघ मार्टेट, राय-  
 पुर □ बक्शीपुर, गोरखपुर □ ११८, विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद □

© लेखक

भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), पटना-४ द्वारा प्रकाशित एवं  
 धर्मयुग प्रेस, पटना-३ में मुद्रित



श्री मनमोहन प्रसाद, एम० कॉम०, एम० ए०, एल-एल० बी०, प्राध्यापक, वाणिज्य-विभाग, गया कॉलेज द्वारा लिखित 'वाणिज्य-विधि के तत्त्व' का दूसरा संस्करण देखने को मिला। इस पुस्तक द्वारा लेखक ने प्रथम संस्करण में ही विषय तथा भाषा दोनों की दृष्टि से ख्याति प्राप्त कर ली थी। इस दूसरे संस्करण में नवीनतम सन् १९५६ के कम्पनी-सन्निधम को समाविष्ट कर इन्होंने विद्यार्थी-समुदाय का बड़ा ही उपकार किया है। पुस्तक प्रत्येक दृष्टिकोण से लाभदायक हैं और मैं आशा करता हूँ कि अगले संस्करण से सर्वदेशीय उच्च न्यायालयों के महत्त्वपूर्ण निर्णय की भी कुछ चर्चा रहेगी। मैं नवयुवक लेखक की सफलता पर उन्हें बधाई देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि वाणिज्य-सम्बन्धी विषय पर पुस्तक लिखकर वे यश के भागी बनेंगे।

**इन्दुशेखर झा**

पटना, अप्रील, १९६०

भूतपूर्व प्राचार्य,  
वाणिज्य-महाविद्यालय, पटना

मैंने प्रो० मनमोहन प्रसाद लिखित पुस्तक 'वाणिज्य-विधि के तत्त्व' (Elements of Commercial Law) पढ़ी है। मैं इसकी विषय-प्रतिपादनशैली से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। सरल एवं सुबोध भाषा में वाणिज्य-विधि के उलझे तथ्यों को इस प्रकार प्रकट किया गया है कि सामान्य पाठक भी इससे लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक की विषय-सामग्री से लेखक के गम्भीर अध्ययन का परिचय मिलता है। मुझे विश्वास है, वाणिज्य-विधि में रुचि रखने वाले छात्र एवं अध्यापक सभी इसका स्वागत करेंगे।

**के० शरण**

जनवरी २१, १९५६

प्राचार्य  
शान्ति प्रसाद जैन कॉलेज, सहसराम



## सप्तम संस्करण की भूमिका

‘वाणिज्य-विधि’ के इस नवीन संस्करण को पाठकों के समक्ष रखते हुए अपार हर्ष हो रहा है। इस पुस्तक के नवीन संस्करण का हमारा यह विशेष उद्देश्य रहा है कि इसे विभिन्न विद्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के अनुकूल बनाया जाय जिससे यह विद्यार्थियों के लिए अधिक से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। इसमें इस बात का ध्यान रखा गया है कि अनावश्यक तथ्यों तथा सारहीन विवरणों को हटा दिया जाय। इसकी भाषा अधिक से अधिक सरल और बोधगम्य बनायी गयी है। विषय को स्पष्ट करने के विचार से और उसे सुव्यवस्थित बनाने के लिए कई तरह के शीर्षकों और उपशीर्षकों का भी प्रयोग किया गया है।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने का अधिक श्रेय हमारे परममित्र श्री मोहित मोहन बोस जी को है जिनके प्रोत्साहन, परामर्श और सौहार्द से यह पुस्तक लिखी जा सकी है।

अन्त में यह निवेदन कर दे कि सारी सावधानी के बाद भी पुस्तक में जो त्रुटियाँ या गलतियाँ रह गयी हों, उनके लिए विज्ञ पाठकों की ओर से आये सुझावों का सहर्ष और साभार स्वागत होगा।

जनवरी, १९७४

—मनमोहन प्रसाद

## प्रथम संस्करण की भूमिका

बहुत हर्ष की बात है कि भारत ने आज हिन्दी को अपनाया और हर क्षेत्र में हिन्दी भाषा को प्रधानता दी है। कानून के क्षेत्र में भी हिन्दी को ही तरजीह दी गयी है, हालाँकि अभी सभी नियमों का पूर्ण अनुवाद हिन्दी में नहीं हो सका है। मैंने बहुत-सी पुस्तकों का, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित की गयी है, अध्ययन करने के बाद यह पुस्तक लिखने का प्रयास किया है। आशा है, पाठकगण इसे पढ़कर सन्तुष्ट होंगे। मैंने बहुत-से अँगरेजी शब्दों को ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया है। इसकी खास वजह है अच्छी हिन्दी तथा उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों का न मिलना। यह पुस्तक मुख्यतः बी० कॉम०, बी० कॉम० ऑनर्स, बी० एल० तथा अन्य व्यावसायिक परीक्षाओं के परीक्षार्थियों के लिए लिखी गयी है। मैंने इस पुस्तक की भाषा को यथाशक्ति सरल तथा सुगम बनाने की कोशिश की है जिससे पाठकों को विषय-वस्तु जल्द तथा अच्छी तरह समझ में आ जाय। इसमें मैंने ज्यादातर बोलचाल की भाषा अपनायी है।

मुझे इस पुस्तक को लिखने में अपने मित्रों विशेषकर प्रोफेसर अर्जुन वर्मा अम्बष्ठ से समय-समय पर बहुत-सारे सुझाव मिले हैं। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। अपने पूज्य प्रोफेसर स्वर्गीय रामेश्वर प्रसादजी तथा प्रोफेसर परमानन्दजी के अमूल्य सुझावों के लिए मैं विशेष आभारी हूँ। इस पुस्तक के प्रकाशित होने का सबसे अधिक श्रेय हमारे परममित्र प्रोफेसर बिहारी लालजी मिश्र तथा प्रोफेसर बी० एन० वीरेश को है जिनके प्रोत्साहन, परामर्श, अध्यवसाय और सौहार्द से ही यह इतनी जल्द प्रकाशित हो सकी है। और, अगर मैं उन सब लेखकों के प्रति आभार और कृतज्ञता न प्रकट करूँ जिनकी पुस्तकों से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है और जिनकी कृतियों ने मेरे लिए मार्गप्रदर्शक का काम किया है तो मैं अपने एक अनिवार्य दायित्व से विमुख रह जाऊँगा। इसलिए उनके प्रति अत्यन्त प्रणत हूँ।

अन्त में, यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि सारी सावधानी के बाद भी पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ रह गयी हैं। इनमें से प्रेस की त्रुटियों के लिए मुझे अपनी ओर से कुछ नहीं कहना है, क्योंकि 'प्रेस के भूतों' से कोई भी अपरिचित नहीं है; लेकिन अपनी लाचारियों के कारण बची हुई त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। आशा करता हूँ, दूसरे संस्करण में ये त्रुटियाँ नहीं रह पायेंगी। विज्ञ पाठकों की ओर से आये सुझावों का सहर्ष और साभार स्वागत होगा।

—मनमोहन प्रसाद

## षष्ठ संस्करण की भूमिका

'वाणिज्य-विधि के तत्त्व' का यह छठा संस्करण पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। चतुर्थ और पंचम संस्करण के आशातीत स्वागत के लिए पाठकों को हार्दिक धन्यवाद। यह छठा संस्करण उन्हीं के उत्साह-संवर्द्धन का अनिवार्य परिणाम है।

इस संस्करण में कई स्थानों पर पर्याप्त उलट-फेर कर दिया गया है जिससे विद्यार्थियों को परीक्षा-सम्बन्धी प्रश्न हल करने में अधिकतम आसानी होगी। इसकी भाषा और भी सरल और सुगम बना दी गयी है। आशा है, सभी पाठकगण इससे पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे।

प्रूफ पढ़ने आदि में पूरी सावधानी बरतने के उपरान्त भी अगर कोई भूल आँख बचाकर रह गयी हो तो पाठक उसकी ओर ध्यान दिलाने की कृपा करेंगे। विज्ञ पाठकों की ओर से आये दूसरे प्रकार के सुझाव भी सहर्ष और साभार स्वीकृत होंगे।

## विषय-सूची

	पृष्ठ
<b>१. प्रसंविदे की विधि (Law of Contract)</b>	<b>१-२००</b>
विषय-प्रवेश	१
(१) अनुबन्ध और प्रसंविदा	६
(२) प्रस्ताव और उनका खंडन	१२
(३) स्वीकृति	२५
(४) प्रतिफल	३३
(५) पक्षों को प्रसंविदा करने के योग्य होना चाहिए	४४
(६) अनुबन्ध दोनों पक्षों की स्वतन्त्र अनुमति से ही होना चाहिए	५८
(७) गलतियाँ	७३
(८) अनुबन्ध इस प्रकार का न हो कि वह किसी कानून के द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया हो	७८
(९) सांयोगिक प्रसंविदा	९४
(१०) प्रसंविदा से मुक्ति या उसकी समाप्ति	९८
(११) प्रसंविदा-भंग का परिणाम	११५
(१२) क्षतिपूर्ति, प्रतिभूति तथा प्रतिभू की प्रसंविदा	१२४
(१३) न्यास या निक्षेप	१३७
(१४) बंधक	१५४
(१५) एजेन्सी	१६१
विश्वविद्यालयीय प्रश्न : हर अध्याय के अन्त में और	१९४
 <b>२. माल-विक्रय-अधिनियम, १९३० (The Sale of Goods Act, १९३०)</b>	 <b>२०१-२५०</b>
भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम : विषय-प्रवेश	२०३
(१) प्रसंविदा की विषय-वस्तु	२०९
(२) सम्पत्ति का हस्तान्तरण	२१९
(३) माल की सुपुर्दगी	२२६
(४) माल पर भुगतान न किये गये विक्रेता के अधिकार	२३२
(५) प्रसंविदा-भंग के लिए मुकदमा	२४१
(६) नीलाम-विक्रय	२४३
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	२४३

३. भारतीय साझेदारी सन्निधयम, 1932 (Indian Partnership Act, 1932)	२५१—२८८
(१) विषय-प्रवेश	२५३
(२) साझेदारों के अधिकार, कर्त्तव्य एवं दायित्व	२६६
(३) फर्म की समाप्ति	२७५
(४) फर्म की रजिस्ट्री	२८१
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	२८३
४. भारतीय कम्पनी सन्निधयम (Indian Companies Act)	२८९—३३९
(१) विषय-प्रवेश	२९१
(२) प्रविवरण	३०५
(३) संचालक	३१५
(४) मैनेजिंग एजेंट और संप्रक्षक	३२९
(५) कम्पनी के अस्तित्व का समापन	३३६
५. बेचान-साध्य रुक्कों का सन्निधयम, 1881 (The Negotiable Instrument Act, 1881)	३४१—३८५
(१) विषय-प्रवेश	३४३
(२) चेक	३५४
(३) पक्षों की क्षमता	३६१
(४) बेचान	३६४
(५) स्वीकृति	३६८
(६) अप्रतिष्ठा	३७४
(७) हुण्डियाँ	३७९
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	३८०
६. शोधाक्षमता-सन्निधयम (Insolvency Act)	३८७—४२२
(१) विषय-प्रवेश	३८९
(२) दिवालिया घोषित किये जाने के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करना	३९४
(३) भूत-सम्बन्धी सिद्धान्त	४०२
(४) दिवालिये की सम्पत्ति	४१०
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	४१९
७. भारतीय पंचायत-सन्निधयम, 1940 (The Indian Arbitration Act, 1940)	४२३—४४०
(१) विषय-प्रवेश.	४२५
(२) पंच	४३०
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	४३८

बांसा-संनियम (Insurance Act)	पृष्ठ
(१) विषय-प्रवेश	४४१—४९६
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	४४३
	४९२
९. सामान की ढुलाई से सम्बद्ध सन्नियम	
(Law Relating to Carriage of Goods)✓	४९७—५१४
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	५१२
१०. बिहार बिक्रीकर-सन्नियम, 1959	
(The Bihar Sales Tax Act, 1959)	५१५—५३८
विश्वविद्यालयीय प्रश्न	५३७
<b>Appendix</b>	
1. Company Law	i-iii
2. The Indian Contract Act, 1872	1
3. The Indian Sale of Goods Act, 1930	60
4. The Indian Partnership Act, 1932	77
5. The Negotiable Instruments Act, 1881	97







## प्रसंविदे की विधि (Law of Contract)

### विषय-प्रवेश

आधुनिक समाज के लोगों को, जो एक-दूसरे पर हर बात के लिए निर्भर हैं, कुछ न कुछ बातों के लिए किसी के साथ प्रसंविदा (contract) करना पड़ता है। वह क्षेत्र चाहे व्यापार का हो या नित्य दिन के कार्यों का, उन्हें एक-दूसरे से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध रखना ही पड़ता है। जब दो आदमियों के बीच प्रसंविदा होती है तब एक आदमी का प्रस्ताव दूसरे आदमी की स्वीकृति पाते ही प्रतिज्ञा का रूप धारण कर लेता है और फिर वह कार्य करने की जिम्मेदारी वचनग्राहक (promisee) के ऊपर हो जाती है। पुराने जमाने में आपस के अधिकार और उत्तरदायित्व (right and responsibilities) उस देश और उस समय की प्रथा (customs and usage) से ही निश्चित होते थे। आज भी हर देश की प्रसंविदा (contract) उस देश के विधान के मुताबिक होती है।

वाणिज्य-विधि (Commercial Law) की उत्पत्ति (sources) निम्नलिखित आधार पर हुई है—

(i) परिनियम (Statutes)—परिनियम उन अधिनियमों (Acts) को कहते हैं जिनको किसी देश की संसद् अथवा विधानसभा (Legislature) बनाती है। भारतीय वाणिज्य-विधि का प्रधान स्रोत यही अधिनियम है। वे अधिकांश अंगरेजी नियमों के आधार पर बनाये गये हैं किन्तु भारतीय अधिनियमों में कुछ भिन्नता के विशेष कारण भारतीय परिस्थितियाँ एवं भारतीय रीति-व्यवहार हैं। प्रसंविदा सन्नियम (Contract Act), वस्तु-विक्रय-सन्नियम (Sale of Goods Act), साझेदारी सन्नियम (Partnership Act) और कम्पनी सन्नियम (Companies Act) कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनके द्वारा अंगरेजी वाणिज्य सन्नियम भारत में प्रचलित हुआ।

(ii) अंगरेजी सार्वजनिक सन्निग्रम (English Common Law)—सार्वजनिक सन्निग्रम सबसे अधिक प्राचीन अलिखित नियम हैं। इनको अलिखित इसलिए कहा गया है क्योंकि इनको किसी संसद् अथवा विधानसभा ने नहीं बनाया है वरन् ये न्यायाधीशों के निर्णय तथा प्राचीन ग्रन्थों से लिये गये हैं। इसलिए जहाँ परिनियमों का अभाव है अथवा जिन बातों पर ये स्पष्ट नहीं हैं वहाँ भारत के न्यायालय अंगरेजी सार्वजनिक सन्निग्रम की सहायता लेने को बाध्य हो जाते हैं।

(iii) भारतीय रीति-व्यवहार (Indian Customs and Usages)—रीति-व्यवहार समाज में इतनी जड़ जमा लेते हैं कि वे कभी-कभी परिनियमों से भी ज्यादा महत्त्व रखते हैं। वे हमेशा व्यापारिक व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं। हुण्डी-सम्बन्धी नियम इसके प्रधान उदाहरण हैं।

(iv) न्याय (Equity)—मानव-समाज में सभी आपसी व्यवहार सन्निग्रमों

के अन्दर नहीं होते। प्राकृतिक न्याय (natural justice) और समाज द्वारा माने जाने वाले उचित सिद्धान्त के अनुसार आपसी व्यवहार होते रहते हैं। जिन विषयों पर सन्नियम ने कुछ नहीं लिखा है या जिन विषयों पर सन्नियम का उचित और ठीक-ठीक मतलब नहीं निकाला जा सकता है उन सभी विषयों में न्यायालयों के न्यायाधीश न्याय के सिद्धान्तों (principles of equity) के आधार पर अपना फैसला देते हैं जो सभी के लिए मान्य होता है। इस तरह, वाणिज्य न्यायालय के निर्णय भी लिये गये हैं।

(v) आधारभूत निर्णय (Leading Cases)— कचहरी के जज लोग परिनियमों, अंगरेजी सार्वजनिक सन्नियम, रीति-रिवाज एवं न्याय के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर विवाद के प्रश्नों पर अपना फैसला देते हैं। ये फैसले विवाद के उन प्रश्नों पर आधारभूत निर्णय माने जाते हैं। इस तरह ये फैसले भी सन्नियमों का एक महत्वपूर्ण स्रोत हो जाते हैं। समान स्तर के न्यायालय के लिए पुराने निर्णय केवल मार्गदर्शन एवं किसी विशिष्ट दृष्टिकोण को समझाने का महत्त्व रखते हैं। समान स्तर के न्यायालय एक-दूसरे के फैसलों को मानने के लिए बाध्य नहीं होते हैं। हाईकोर्ट के निर्णयों का निम्नस्तरीय न्यायालयों द्वारा पालन किया जाना अनिवार्य होता है। हमारे देश में सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) अपील का अन्तिम न्यायालय है।

(vi) लॉ मर्चेंट (Law Merchant)— वाणिज्य विधि का विकास Law Merchant (Lex Mercatoria) से हुआ है। इंग्लैण्ड में तेरहवीं शताब्दी के पहले Law Merchant उन नियमों से माना जाता था जो कि कॉमन लॉ से भिन्न थे। सचमुच में वाणिज्य के लिए, न कि व्यापारियों के लिए एक विशेष सन्नियम था। इससे प्रत्येक व्यापारी परिचित होता था। मध्यकालीन मेलों और बाजारों में व्यापारी लोग जमा होते थे और सन्नियम बनाते थे। मेलों और बाजारों में इस सन्नियम का प्रशासन वाणिज्य न्यायालयों द्वारा किया जाता था। कार्यविधि अनौपचारिक और न्याय संक्षिप्त होता था।

सतरहवीं शताब्दी के शुरू में मेल और बाजारों के न्यायालय खत्म हो गये और उनके द्वारा विकसित प्रथाओं एवं रीतियों को कॉमन लॉ न्यायालयों ने स्वीकार कर लिया तथा विकसित किया और बढ़ाया।

हमारे देश में प्रसंविदों का शासन जिस विधान से होता है उसे भारतीय प्रसंविदा विधान (Indian Contract Act) कहते हैं। यह विधान २५ अप्रैल, सन् १८७२ ई० को गवर्नर-जनरल-कौंसिल (Governor-General-in-Council) में पास हुआ और पहली सितम्बर, सन् १८७२ ई० से भारत में लागू किया गया। अगर हमलोग भारतीय प्रसंविदा को जुरिस्टिक (juristic) विचार से देखें तो मालूम होगा कि जुरिस्ट लोगों ने प्रसंविदा में दो बातें बतलायी हैं—

१. दायित्व (Obligation), और

२. समझौता (Agreement)।

उनके विचार से दायित्व (obligation) वह कानूनी बन्धन है जो ऐसे मनुष्य या मनुष्यों पर लगाया जाता है जो किसी खास काम को कर सकते हैं या करने लायक होते हैं।\* अब प्रश्न यह उठता है कि कौन लोग प्रसंविदा कर सकते हैं या

\* Obligation is understood as a legal tie which imposes upon a determinate person or persons the necessity of doing or to abstain

करने लायक समझे जाते हैं— साधारणतः किसी भी प्रसंविदे के लिए प्रस्तावक (offeror) तथा स्वीकारक (acceptor) प्रसंविदे को समझने लायक हों, उनका दिमाग ठीक हो, वगैरह। इसलिए परिभाषा को देखने से तीन बातें स्पष्ट होती हैं—

१. किसी भी प्रसंविदे के लिए दो आदमियों यानी एक प्रस्तावक (offeror) और एक स्वीकारक (acceptor) का होना जरूरी है। अगर एक ही मनुष्य दोनों कार्य करे तो ऐसी प्रसंविदा वैधानिक (legal) नहीं मानी जाती है। इसके उदाहरण के रूप में एक मुख्य मुकदमा फौलकेनर बनाम लौवी (Faulkener vs. Lowe) का है जिसमें मुद्दै (plaintiff) ने कुछ रुपया उस खाते (account) से लिया था जिसके मालिक मुद्दै और मुद्दालह दोनों थे। इस मुकदमे में यह फैसला हुआ कि दायित्व (obligation) लागू होने के लायक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर मुद्दै कर्जदार (debtor) और महाजन (creditor) दोनों हैं। इसलिए कोई भी व्यक्ति अपने-अपने अधिकारों के मामले में अपने ही प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता।\*

२. दायित्व (obligation) किसी खास काम को करने के लिए होना चाहिए नहीं तो प्रसंविदा अनिश्चित (uncertain or indefinite) कह कर रद्द कर दी जाती है; जैसे—‘मकान बनाना’ यह खास काम है और ‘कुछ काम कर देंगे’ यह अनिश्चित और अस्पष्ट है।

३. दायित्व (obligation) किसी वैध विषय से सम्बन्धित हो, न कि सामाजिक बातों से। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि A ने अपने घर पर दावत में अपने दोस्तों में से B, C और D को बुलाया और F को नहीं बुलाया तो F इस आधार पर मुकदमा नहीं कर सकता कि A ने अपने दोस्तों के साथ मुझे क्यों नहीं बुलाया। इसी तरह अगर कोई पति यह प्रस्ताव अपनी पत्नी से करता है कि मैं तुम्हें प्रति मास कुछ रुपये दिया करूँगा पर यदि वह किसी वजह से रुपया नहीं देता है तो उसकी स्त्री इस बात का मुकदमा नहीं कर सकती कि मेरे पति मुझे प्रतिज्ञापित रुपये नहीं दे रहे हैं। इस पर एक खास मुकदमा है Balfour vs. Balfour। इस मुकदमे की वस्तुस्थिति इस प्रकार है कि मुद्दालह, जो कि लंका में नौकरी करता था, छुट्टी में अपनी पत्नी को लेने इंग्लैंड आया। पर उसकी तन्दुरुस्ती ठीक न पाकर उसने कहा कि मैं तुम्हारे लिए ३० पौंड प्रति मास भेज दिया करूँगा। \*पर लौटने पर वह किसी कारण से प्रतिज्ञापित रकम भेज नहीं सका। उसकी स्त्री ने उस पर कानूनी कार्रवाई कर दी। लार्ड अटकीन्स (Lord Atkins) ने मुद्दालह को स्त्री की माँग के खिलाफ यह कारण बतलाते हुए फैसला दिया कि यह प्रसंविदा कानूनी तरीके से जायज नहीं था।

### समझौता, अनुबन्ध (Agreement)

लॉक साहब के अनुसार जब दो व्यक्ति एक विचार से किसी बात पर सहमत होते हैं तो उसे अनुबन्ध कहते हैं।†

भारतीय प्रसंविदा-विधान के अनुसार— “एक-दूसरे से प्रतिफल-रूप में सम्बद्ध

from doing a definite act or acts.”

\* “No man can, in his own right, be under an obligation to himself.”

† “According to Mr. Leake, Agreement consists in two persons being of the same intention concerning the matter agreed upon”

वचन तथा वचनो का प्रत्येक समूह अनुबन्ध कहलाता है।” दूसरे शब्दों में, प्रस्ताव और स्वीकृति दोनों के सम्मिलित रूप को अनुबन्ध कहते हैं।\* जैसे, A अपना मकान ५०० रु० में B के हाथ बेचने की प्रतिज्ञा करता है। B इस स्वीकार करता है। यहाँ A और B के बीच ५०० रु० में मकान खरीदने और बेचने का अनुबन्ध (agreement) होता है।

अगर एक व्यक्ति प्रसविदा की शर्तों को कुछ गलत समझ कर प्रसविदा कर बैठता है तब वह प्रसविदा कानून द्वारा जायज नहीं समझा जायगा; जैसे—A अपना मकान, जो गया में है, बेचना चाहता है और B समझता है कि वह अपना पटने वाला मकान बेचेगा तब यह प्रसविदा सही नहीं माना जायगा।

अनुबन्ध दो तरह से किया जाता है—

१. स्पष्ट रूप से (Express Agreement), और

२. अस्पष्ट तरीके से (Implied Agreement)।

जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से किसी बात के लिए प्रस्ताव करता है और दूसरा उस बात का समर्थन करता है तब उसे स्पष्ट अनुबन्ध (express agreement) कहते हैं; जैसे—A ने B से कहा, “क्या तुम २०० रु० में मेरा घोड़ा खरीदोगे?” और जब इसे मंजूर करता है तब यह कहा जाता है कि B ने A के प्रस्ताव का समर्थन किया। स्पष्ट अनुबन्ध (express agreement) में दो व्यक्तियों के अलग-अलग विचारों को एक जगह लाया जाता है।

अस्पष्ट अनुबन्ध (implied agreement) में कोई भी बात बोलकर या लिखकर साफ-साफ जाहिर नहीं की जाती, बल्कि प्रसविदा (contract) करनेवाले व्यक्ति को प्रस्तावक के विचार, काम करने के तरीके, व्यापारिक प्रथा एवं मौजूदा हालत को देखकर समझना पड़ता है कि प्रस्तावक का क्या विचार है और वह किस बात के लिए प्रसविदा (contract) करना चाहता है। जैसे, A नीलाम के डाक में कुछ बोली बोलता है और जब नीलाम करने वाला (auctioneer) ‘एक’, ‘दो’, ‘तीन’, करके डाक खत्म कर देता है तब यह समझा जाता है कि नीलाम करनेवाले को A का दिया दाम मंजूर है।

**अनुबन्ध और वचन (Agreement and Promise) :**

जब किसी प्रस्ताव (offer) की स्वीकृति मिल जाती है तब वही प्रस्ताव ‘प्रतिज्ञा’ या ‘वचन’ बन जाता है [A proposal when accepted, becomes a promise. Sec. 2 (b) ]।

लेकिन ऐन्सन (Anson) साहब ने ‘वचन’ की परिभाषा इस प्रकार की है— “वचन उसे कहते हैं जिससे वचनग्राहक भविष्य में काम करने के लिए वचनदाता को ढाढ़स एवं आश्वासन देता है और कहता है कि अगर अपने वचन के मुताबिक मैं काम नहीं करूँगा तब वचनदाता को यह हक होगा कि वह हरजाना वसूल करे।”†

\* “Every promise and every set of promises forming the consideration for each other, is an agreement.”

† “A promise may be defined “as a declaration or assurance made to another person with respect to the future, stating that the maker will do, or refrain from doing, some specified act and conferring on that other a right to claim to fulfilment of such declaration or assurance.”

किसी प्रस्ताव को वचन में परिणत होने के लिए दो व्यक्तियों का होना अनिवार्य है—

१. वचनदाता (Promisor), और

२. वचनग्राहक (Promisee)।

वचनदाता (Promisor)— जो व्यक्ति प्रस्तावक है (offeror or proposer) अर्थात् जो व्यक्ति प्रस्ताव करता है उसे वचनदाता कहते हैं [The person making the proposal is called the Promisor. Sec 2 (c)]।

उदाहरण—A, B से कहता है— “क्या तुम मेरा मकान ३,०००) रु० में खरीदोगे ?” B जवाब में “हाँ” कहता है। यहाँ A वचनदाता है।

वचनग्राहक (Promisee)— जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के प्रस्ताव को स्वीकार करता है उसे वचनग्राहक (promisee) या प्रस्ताव-प्रापक (offeree) कहते हैं।\*

उदाहरण—ऊपर के उदाहरण में B प्रस्ताव-प्रापक या वचनग्राहक है।

पारस्परिक वचन (Reciprocal Promises)— ऐसे वचन जो दो व्यक्तियों के बीच एक-दूसरे के लिए प्रतिफल का रूप धारण करते हैं, पारस्परिक वचन कहे जाते हैं।†

उदाहरण— यदि A, B से अपनी साइकिल बेचने का वादा करता है और इसके बदले में B, २०० रु० देने का वचन देता है तो इस तरह से जो आपस में एक-दूसरे को देने का वादा किया गया वह पारस्परिक वचन (reciprocal promises) हुआ।

---

\* “The person accepting the proposal is called the promisee. Sec. 2 (c).”

† “Promises which form the consideration or part of the consideration for each other, are called reciprocal promises. Sec 2 (f).”

## अनुबन्ध और प्रसंविदा (Agreement and Contract)

अनुबन्ध का कुछ ज्ञान हो जाने के बाद यह देखना है कि अनुबन्ध और प्रसंविदे में क्या सम्बन्ध है। यह कहा गया है कि “सभी प्रसंविदे अनुबन्ध हो सकते हैं पर सभी अनुबन्ध अनिवार्यतः प्रसंविदे नहीं हो सकते (All Contracts are agreement but all agreements are not necessarily contracts.)।” पहले बतलाया जा चुका है कि किसी भी अनुबन्ध के लिए दो व्यक्तियों का होना जरूरी है। पर यह विशेषता तब तक अपूर्ण होती है, जब तक यह स्पष्ट न हो जाय कि वे व्यक्ति अनुबन्ध करने लायक है या नहीं और वे अपनी मर्जी से अनुबन्ध करते है या नहीं। इसलिए जब हमलोग प्रसंविदा की शर्तों को देखेंगे तब मालूम होगा कि अनुबन्ध प्रसंविदे क्यों नहीं होते। धारा १० में प्रसंविदा की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है—“सभी अनुबन्ध तभी प्रसंविदे हो सकते हैं जब कि प्रसंविदा दोनों की स्वतंत्र अनुमति से हुई हो, फिर दोनों व्यक्ति प्रसंविदा करने के योग्य हों, प्रसंविदा का उद्देश्य कानून की नजर में जायज हो और यह प्रतिफल (consideration) के साथ हो तथा प्रसंविदा किसी भी कानून के द्वारा विवर्जित न हो।”\*

प्रसंविदा की परिभाषा हम संक्षेप में धारा 2 (h) के मुताबिक इस प्रकार कर सकते हैं कि यदि किसी अनुबन्ध (agreement) को विधान द्वारा लागू किया जा सके तो उसे प्रसंविदा कहते हैं। (An agreement enforceable by law is called a contract.)

प्रसंविदे की ऊपर दी गयी परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि एक जायज (valid) प्रसंविदे के लिए निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है—

1. Proposal or Offer (प्रस्ताव)।
2. Acceptance of such Proposal or offer— किये गये प्रस्ताव की स्वीकृति, और जब प्रस्ताव की स्वीकृति हो जाती है तब वह प्रतिज्ञा (promise) का रूप धारण कर लेता है।
3. Consideration for the promise— वचन के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक है और इस प्रतिफल को कानून द्वारा विवर्जित नहीं होना चाहिए।
4. The parties must be competent to contract—दोनों पक्षों को प्रसंविदा करने के योग्य होना चाहिए।
5. The agreement must have been made with the free

\* According to Sec. 10 of the Indian Contract Act—“All agreements are contract if they are made by the free consent of the parties, competent to contract for a lawful consideration and with a lawful object and are not hereby expressly declared to be void.”

consent of the parties — अनुबन्ध दोनों पक्षों की स्वतन्त्र अनुमति से ही होना चाहिए ।

6 The agreement must not have been one which has been expressly declared to be void under the Act— अनुबन्ध इस प्रकार का हो कि वह किसी भी कानून के द्वारा विवर्जित न हो ।

7. It must be in writing (attested and registered) wherever the law has laid down that it should be so—जहाँ पर कानून यह जाहिर करे कि अनुबन्ध लिखित हो और इसकी रजिस्ट्री निहायत जरूरी है वहाँ उसको वैसा ही होना चाहिए, नहीं तो अनुबन्ध सही अथवा जायज नहीं समझा जायगा । साधारणतः यह कोई जरूरी नहीं है कि प्रसंविदा लिखित ही हो, पर लिखित होने पर वह जायज मानी जायगी और उस पर कार्रवाई भी की जायगी जब कि जबानी प्रसंविदे पर ऐसी कार्रवाई नहीं की जा सकती । कुछ प्रसंविदे इस प्रकार की हैं जिनके लिए कानून ने यह तय किया है कि उन्हें लिखित होना चाहिए । उदाहरण के लिए पंचायत अनुबन्ध (Arbitration Agreements) पंचायत विधान के अनुसार, फिर Transfer of Property Act के अनुसार अचल सम्पत्तियों की विक्री या बंधक लिखित जरूर होना चाहिए । इसके अलावा, जहाँ पर अचल धन (immovable property) का बंधक (mortgage) हो, यह लिखित के साथ अनुमोदित (attested) भी हो ।

जब ऊपर लिखी सात बातें किसी अनुबन्ध के साथ मौजूद हों तभी वह प्रसंविदा सही या जायज समझी जायगी । अगर इसमें से एक या एक से ज्यादा गायब या गैरहाजिर रहेंगे तब वह या तो विवर्जित प्रसंविदा (void contract) होगी या विवर्जनीय प्रसंविदा (voidable contract) होगी या लागू होने के लायक (unenforceable) होगी ।

अब हम लोगों को यह देखना है कि विवर्जित प्रसंविदा (void contract) किसे कहते हैं ।

**विवर्जित प्रसंविदा (Void contract)**—वह प्रसंविदा जो साधारणतया वैधानिक दृष्टि से लागू की जा सकती है, परन्तु किसी विशेष घटना के घटने से लागू नहीं की जा सकती है, विवर्जित प्रसंविदा (void contract) कहलाती है ।\*

मान लीजिए A, B से अपनी लड़की Z की शादी कर देने का वचन देता है, परन्तु शादी के पहले Z की मृत्यु हो जाती है । अतः यह विवर्जित प्रसंविदा हो जायगी ।

**विवर्जनीय प्रसंविदा (Voidable Contract)**—ऐसा कोई भी अनुबन्ध जो सिर्फ एक ही पक्ष की इच्छा पर विधान द्वारा लागू किया जा सकता है और अगर वह पक्ष चाहे तो उस अनुबन्ध को गैरकानूनी भी करार दे सकता है, परन्तु यदि दूसरा पक्ष लागू ही कर सकता हो तो ऐसे अनुबन्ध को विवर्जनीय प्रसंविदा कहते हैं ।†

\* “A valid contract which when ceases to be enforceable by law becomes void. Sec 2 (j).”

Or, “A void Contract is one which is destitute of legal effect.”

† “An agreement which is enforceable by law at the option of one or more of the parties thereto, but not at the option of the other or others, is a voidable contract. Sec. 2 (i).”

**उदाहरण**—A ने B से कहा कि अपना मकान ५,००० रु० में बेच रहा हूँ और यह मकान नर्दा है—कोई खराबी या कोई हिस्सा टूटा नहीं है। अगर यह मकान देखने पर कहीं दरार या टूटने की आशका B को हो जाती है तब यह B के ऊपर निर्भर है कि वह चाहे तो इसे रद्द कर सकता है। यह विवर्जनीय प्रसविदा (voidable contract) हुई।

**लागू न होने के लायक प्रसविदा (Unenforceable Contract)**—यह प्रसविदा जायज और सही प्रसविदा है। फिर कुछ कानूनी कमियों के कारण इस पर कचहरी में कार्रवाई नहीं हो सकती है। जैसे A ने B के हाथ मकान बेचा है—अगर यह लिखित नहीं है या इसकी रजिस्ट्री नहीं करायी है या जितने का टिकट इस कागज पर लगाना चाहिए उतने का लगाया नहीं गया है तब यह जायज प्रसविदा नहीं हुई और न अदालत में इस पर कोई कार्रवाई ही हो सकती है।\*

**गैरकानूनी प्रसविदा (Illegal Contract)**—यह प्रसविदा सिर्फ विधान द्वारा विवर्जित ही नहीं है, बल्कि इस तरह की प्रसविदा को घोर अपराध (criminal offence) कहा गया है और इस तरह की प्रसविदा करनेवाले व्यक्तियों पर सरकार की ओर से कार्रवाई की जा सकती है।† जैसे, A ने B से कहा कि अगर तुम C की जान ले लोगे तब मैं १,००० रु० दूँगा। तो यह प्रसविदा सिर्फ गैर-कानूनी ही नहीं है, बल्कि अगर B जान मार देता है और A रुपया नहीं देता है तब B रुपया वसूली के लिए कानूनी कार्रवाई नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें उसको भी फँस जाने का डर है।

**मान्य प्रसविदा (Valid Contract)**—यदि कोई भी अनुबन्ध गैर-कानूनी (illegal) नहीं है और न विवर्जित (void) और न विवर्जनीय (voidable) ही है तब वह किसी भी पक्ष द्वारा वैधानिक दृष्टि से लागू किया जा सकता है। इस प्रकार के अनुबन्ध को मान्य प्रसविदा (valid contract) कहते हैं।

**उदाहरण**—यदि A ने B के हाथ ५,००० रु० में अपना मकान बेचने और B ने A के हाथ उसका मकान खरीदने का अनुबन्ध किया है तो यह मान्य प्रसविदा होगी।

• इन पाँच तरह के प्रसविदों को स्पष्ट कर देने के बाद यह बतला देना अनिवार्य-सा हो जाता है कि “सभी गैरकानूनी प्रसविदे विवर्जित प्रसविदे माने जाते हैं, पर सभी विवर्जित प्रसविदे गैरकानूनी नहीं होते हैं।” (All illegal contracts are void but all void contracts are not illegal.)

उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि अगर कोई व्यक्ति एक नाबालिग (minor) से प्रसविदा करता है तब यह प्रसविदा कानून की नजर में जायज या

\* “Unenforceable contract is a valid contract but one which will not be enforced by the Court on account of some defect in it, e.g., for want of a written form or for want of a stamp”

Or, “An unenforceable contract is one which is good in substance, though, by reason of some technical defect, one or both of the parties cannot sue upon it. Such a Contract is sometimes called an agreement of imperfect obligation.”

† “Illegal contracts are those which are not only void but to form such contract may amount to a criminal offence.”



सही नहीं है; पर यह गैरसरकारी प्रसंविदा नहीं है, क्योंकि इसमें कोई भी काम गैरकानूनी नहीं है।

**विवर्जित तथा विवर्जनीय प्रसंविदों में अन्तर (Difference between Void and Voidable Contracts)**—१. विवर्जित प्रसंविदा (void contract) तथा विवर्जनीय प्रसंविदा (voidable contract) में पहला महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि विवर्जित प्रसंविदा किसी भी पक्ष द्वारा लागू नहीं करायी जा सकती (is not enforceable), लेकिन विवर्जनीय प्रसंविदा पीड़ित पक्ष की इच्छा पर लागू होती है।

२. विवर्जित प्रसंविदा शुरू से अन्त तक विवर्जित ही रहती है। लेकिन विवर्जनीय प्रसंविदा शुरू से मान्य रहती है और तब तक मान्य रहती है जब तक कि अधिकार-प्राप्त पक्ष उसे व्यर्थ घोषित न कर दे।

३. किसी प्रसंविदा के विवर्जित अथवा विवर्जनीय होने के कारणों में भी अन्तर है। प्रसंविदा विवर्जित तब होती है जब वह किसी नाबालिग के साथ, बिना प्रतिफल के, गलती पर आधारित, लोकनीति के खिलाफ, अनैतिक या असम्भव होती है; इसके विपरीत, प्रसंविदा विवर्जनीय तब होती है जब वह दबाव या जबरदस्ती (coercion), अनुचित प्रभाव, कपट या मिथ्या-वर्णन द्वारा प्रभावित होती है।

४. विवर्जित प्रसंविदा के अन्दर पाये गये माल का हस्तान्तरण किसी तीसरे पक्ष को नहीं किया जा सकता है, अर्थात् तीसरा पक्ष अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता है। लेकिन विवर्जनीय प्रसंविदा के अन्दर पाये गये माल का हस्तान्तरण किसी तीसरे पक्ष को किया जा सकता है, अगर हस्तान्तरण करने के पहले अधिकार पाने वाले पक्ष ने प्रसंविदा को विवर्जित न बना दिया हो, अर्थात् तीसरा पक्ष अच्छा अधिकार प्राप्त कर सकता है अगर उसने वस्तु की कीमत देकर एवं सद्भावना से प्राप्त किया है।

उदाहरण के लिए—अगर A कुछ माल B को बेचता है। प्रसंविदा करने के समय माल आग के लगने से नष्ट हो चुका था लेकिन दोनों पक्षों में से किसी को भी उसका ज्ञान न था। इसी समय B उस माल को C से बेचने का प्रसंविदा कर लेता है। जब यह मालूम होता है कि प्रसंविदा शुरू से ही विवर्जित है तब B अथवा C, A से कोई माँग नहीं कर सकता।

लेकिन, अगर A, B के कपट की वजह से B को माल बेचने के लिए प्रेरित हुआ था, तो कपट प्रकट हो जाने पर A को प्रसंविदा भंग करने का अधिकार है और इस तरह प्रसंविदा A की इच्छा पर विवर्जनीय है। अगर A के द्वारा प्रसंविदा भंग करने से पहले, माल B के द्वारा एक तीसरे पक्ष C को बेच दिया गया है तब C अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है अगर उसने माल की कीमत देकर एवं सद्भावना से प्राप्त किया है। क्योंकि, इस तरह की प्रसंविदा उस समय तक सही है जब तक कि वह भंग न कर दी गयी है।

**विवर्जित तथा अवैध प्रसंविदा में अन्तर (Difference between a Void and an Illegal Contract)**—१. विवर्जित प्रसंविदा तथा अवैध प्रसंविदा में सबसे महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि विवर्जित प्रसंविदा के समपाश्विक व्यवहार प्रवर्तनीय होते हैं; किन्तु अवैध प्रसंविदा के समपाश्विक व्यवहार भी विवर्जित होते हैं और प्रवर्तनीय नहीं होते।

२. 'अवैध' शब्द 'विवर्जित' शब्द से व्यापक है। सभी अवैध प्रसंविदे विवर्जित

होते हैं, किन्तु सभी विवर्जित प्रसविदे अवैध नहीं होते ।

३. अवैध प्रसविदे के पक्षकार को दंड भी दिये जा सकते हैं, किन्तु विवर्जित प्रसविदे में नहीं ।

**प्रसविदा तथा अनुबन्ध में अन्तर (Difference between a Contract and an Agreement)**—प्रसविदा तथा अनुबन्ध में बहुत अन्तर है । “सब प्रसविदा अनुबन्ध होते हैं, लेकिन सब अनुबन्ध प्रसविदा नहीं होते ।” इसलिए अनुबन्ध प्रसविदा से व्यापक है । प्रत्येक प्रसविदा में दो आवश्यक तत्त्व होते हैं—पहला, पक्षों के बीच अनुबन्ध और दूसरा पक्षों का उत्तरदायित्व, जो कि कानून के द्वारा प्रवर्तनीय हो सके ।

अर्थात् जब वह कुछ आवश्यक लक्षणों की पूर्ति करता है, जैसे—प्रस्ताव तथा स्वीकृति, योग्य पक्ष, स्वतन्त्र सहमति तथा न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य । इस तरह, प्रसविदा होने के लिए अनुबन्ध होना जरूरी है । बिना अनुबन्ध के कोई प्रसविदा नहीं हो सकती । इसके खिलाफ अनुबन्ध इस तरह के भी हो सकते हैं जो कि वैधानिक उत्तरदायित्व उत्पन्न नहीं करते और कानून द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हो सकते ।

**उदाहरणार्थ**—अगर दो व्यक्तियों के बीच सिनेमा जाने का कोई अनुबन्ध, घूमने जाने का कोई अनुबन्ध, या इसी तरह के और कोई अनुबन्ध किसी भी पक्ष पर कोई वैधानिक उत्तरदायित्व उत्पन्न नहीं करता, क्योंकि ये सब सामाजिक मामले हैं और इनमें दोनों पक्षों का मतलब कोई वैधानिक सम्बन्ध उत्पन्न करने का नहीं होता है ।

### University Questions

1. Define Contract. Explain the essentials of a valid Contract.

(प्रसविदा की परिभाषा दीजिये । वैध प्रसविदा के मूल तत्त्वों की व्याख्या कीजिये ।)

2. What are the essentials of a valid Contract ? Distinguish between void and voidable Contracts.

[वैध प्रसविदा के मूल तत्त्व कौन-कौन-से हैं ? विवर्जित (void) तथा विवर्जनीय (voidable) प्रसविदा में अन्तर बतलाइए ।]

3. “Contract is an agreement enforceable by Law.” Discuss this definition bringing out clearly the essentials of a valid Contract.

(“प्रसविदा एक ऐसा अनुबन्ध है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय है ।” इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा यह बतलाइए कि एक वैध प्रसविदा के मूल तत्त्व कौन-कौन-से हैं ।)

4. “All Contracts are agreements but all agreements are not Contracts.” Comment.

(“सभी अनुबन्ध समझौते होते हैं परन्तु सभी समझौते अनुबन्ध नहीं होते हैं ।” विवेचना कीजिए ।)

5. Distinguish between—

- (i) Void and voidable Contracts,
- (ii) Illegal and unenforceable Contracts,
- (iii) Void and illegal Contracts,
- (iv) Contract and Agreement.

- [अन्तर बतलाइए— (क) विवर्जित तथा विवर्जनीय प्रसंविदा  
 (ख) गैरकानूनी एवं लागू न होने लायक प्रसंविदा,  
 (ग) विवर्जित तथा गैरकानूनी,  
 (घ) अनुबन्ध एवं समझौते ।]

5. "An Agreement enforceable by law is a Contract." Discuss the definition bringing out clearly the essentials of a valid Contract.

("वह समझौता जो कानून द्वारा लागू किया जाता है प्रसंविदा कहलाता है ।" इस परिभाषा की व्याख्या करें तथा यह स्पष्ट करें कि एक सही प्रसंविदा के क्या आवश्यक तत्त्व हैं ।)

7. There are several elements constituting a Contract. Name any one of them which you consider to be most important and write a short note on it.

(प्रसंविदा के लिए अनेक तत्त्वों का विद्यमान रहना आवश्यक है । आपके मतानुसार जो उन तत्त्वों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो उसका नाम लिखिये तथा उसपर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए ।)

8. "The law of Contracts is not the whole of Agreements nor is it the whole law of obligations." (Salmond)—Comment.

["अनुबन्धों से सम्बद्ध विधि न तो समझौतों की ही सम्पूर्ण विधि है और न ही दायित्वों की ।" (सालमण्ड)—उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिए ।]

9. "No man can, in his own right, be under an obligation to himself." Explain this statement.

("कोई भी मनुष्य अपने अधिकारों के सम्बन्ध में अपने ही प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए ।)

10. "A Contract is a Contract from the time it is made and not from the date its performance is due." Comment.

("संविदा अपनी उत्पत्ति के समय से ही अनुबन्ध होता है । निष्पादन के लिए निश्चित की गयी तिथि से नहीं ।" विवेचना कीजिए ।)

11. Write short notes on the following--

(i) Proposal, (ii) Promisor and Promisee, (iii) Promise, (iv) Reciprocal Promise, (v) Void Agreement, (vi) Voidable Contract.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(क) प्रस्ताव, (ख) वचनदाता और वचन-ग्रहीता, (ग) वचन, (घ) पारस्परिक वचन, (ङ) विवर्जित समझौते, (च) विवर्जनीय अनुबन्ध ।]

12. "The offer and acceptance bring the parties together but the law requires some further evidence of their intention to create an obligation."—Comment.

("प्रस्ताव एवं स्वीकृति पक्षकारों को निकट लाते हैं परन्तु विधि को उनके दायित्वों की उत्पत्ति करने के अभिप्राय का और अधिक प्रमाण चाहिए ।" विवेचना कीजिए ।)

## प्रस्ताव और उनका खंडन

### (Offer or Proposal and Revocation of Proposal)

#### प्रस्ताव (Proposal or Offer)

धारा 2 (a) के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी से किसी काम को करने या न करने की इच्छा प्रकट करता है या कहता है तो हम कहेंगे कि वह प्रस्ताव कर रहा है। \* प्रस्ताव वैध सम्बन्ध (legal contract) स्थापित करने के लिए होना चाहिए, नहीं तो यह संविदा नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, अगर A अपनी गाय ५०० रु० में B के हाथ बेचने के लिए प्रस्ताव करता है और B उस पर राजी हो जाता है तब यह संविदा हुआ। किन्तु अगर A, B को जलपान करने के लिए अपने घर पर निमंत्रित करता है और B इसको स्वीकार करता है तब यह संविदा नहीं होगा, क्योंकि यहाँ दोनों पार्टियों का ध्येय कोई वैध सम्बन्ध स्थापित करना नहीं है।

प्रस्ताव दो प्रकार से हो सकता है—

(१) व्यक्त (Express), और (२) अवगत (Implied)।

**व्यक्त प्रस्ताव (Express Offer)**— यदि A, B से कहे कि वह अपनी गाय ५०० रु० में बेचेगा, तो यह व्यक्त प्रस्ताव हुआ।

**अवगत प्रस्ताव (Implied Offer)**—रेलगाड़ी एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन को जाती है और रेलवे कम्पनी प्रत्येक यात्री (passenger) को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए प्रस्ताव करती है। यह अवगत प्रस्ताव हुआ। अगर कोई व्यक्ति टिकट खरीद कर गाड़ी में बैठ जाता है तब इससे साफ जाहिर होता है कि उस व्यक्ति ने प्रस्ताव को स्वीकृत किया है। यह स्वीकृति अवगत स्वीकृति (implied acceptance) हुई।

#### प्रस्ताव के लक्षण (Elements of a Proposal)

प्रस्ताव के ऊपर लिखी गयी परिभाषा के अनुसार, निम्नलिखित लक्षण कहे जा सकते हैं—

१. प्रस्ताव के लिए दो पक्ष होना चाहिए—कोई भी व्यक्ति स्वयं प्रस्ताव नहीं कर सकता है। प्रस्ताव हमेशा किसी दूसरे व्यक्ति के साथ किया जाता है। इसलिए प्रस्ताव के लिए दो पक्ष का होना जरूरी है। 'प्रस्तावक' जो प्रस्ताव करता है, और 'वचन ग्रहीता' जिसको प्रस्ताव किया जाता है।

२. प्रस्तावक किसी काम को करने या करने के विषय में अपनी इच्छा प्रकट करता है—इस तरह (i) किसी काम को करने के लिए अथवा (ii) किसी काम को नहो करने के लिए हो सकता है। उदाहरणार्थ—अगर A अपनी गाय २०० रु० में

\* "When one person signifies to another his willingness to do or abstain from doing anything, with a view to obtaining the assent of that other to such act or abstinence he is said to make proposal."

बेचने के लिए B को प्रस्ताव करता है। यहाँ A किसी काम को करने के लिए प्रस्ताव करता है। एक दूसरा उदाहरण अगर इस तरह का हो कि X, Y को यह प्रस्ताव करता है कि अगर Y उसे १०० रु० दे तो X उस पर तीन महीने तक वाद प्रस्तुत नहीं करेगा। यहाँ X किसी काम को करने के लिए प्रस्ताव करता है।

३. प्रस्तावक दूसरे व्यक्ति की राय प्राप्त करने के उद्देश्य से इच्छा प्रकट करता है—अगर प्रस्ताव इस विचार से नहीं किया है, तब उसे प्रस्ताव नहीं कह सकते और इसलिए वह स्वीकृत नहीं किया जा सकता है और एक वैध अनुबन्ध उत्पन्न नहीं हो सकता।

इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित प्रस्ताव से भिन्न हैं और इन्हें प्रस्ताव नहीं कह सकते—

केवल इच्छा को प्रकट करना प्रस्ताव नहीं है (A mere intention is no offer)—अगर कोई मनुष्य अपनी इच्छा तथा विचार को सिर्फ प्रकट करता है या प्रस्ताव के रूप में रखता है और दूसरा व्यक्ति इस प्रस्ताव की पूर्ति कर देता या करता है तब यह प्रस्ताव सही नहीं है। एक पुराने इंग्लिश केस में मुद्दालह ने बातचीत के सिलसिले में मुद्दई से कहा कि जो व्यक्ति मेरी लड़की की राय से शादी करेगा उसे हम सो पौड देंगे। मुद्दई ने मुद्दालह की लड़की की राय से शादी की और फिर वाद में उसने रुपये का दावा किया। परन्तु कचहरी से यह फैसला हुआ कि यहाँ ये शब्द मामूली तौर पर सिर्फ लोगों को बढ़ावा देने के लिए बोले गये थे, इसलिए मुद्दालह वचनबद्ध नहीं है।\* एक अन्य मुकदमे Harris vs. Nicokerson 1873 L. R. 8 Q. B. 286. में मुद्दालह ने यह विज्ञापन किया कि वह अपने कुछ लकड़ी के सामान (furniture) लंडन से कुछ दूर पर नीलाम से बेचेगा। मुद्दई (plaintiff) लंडन से निश्चित जगह पर गया तो उसे मालूम हुआ कि नीलाम वापस ले लिया गया है और अब वे सामान नीलाम नहीं किये जायेंगे। इस पर मुद्दई ने प्रसंविदा भंग करने का मुकदमा दायर कर दिया। इस मुकदमे में यह निर्णय हुआ कि मुद्दालह का विज्ञापन सिर्फ उसका यह मत जाहिर करता था कि वह सामान नीलाम करना चाहता है, इसलिए यहाँ पर Carlill vs. Carbolic Smoke Ball Co. का मुकदमा उदाहरणस्वरूप पेश नहीं किया जा सकता है।†]

साधारणतः यह पहचानना, जानना और निश्चित करना बहुत मुश्किल हो जाता है कि कौन-कौन-सी प्रसंविदा कानूनी रिश्ते को कायम करती हैं और कौन-कौन-सी नहीं कर पाती हैं और सिर्फ इच्छामात्र हैं। सभी वाक्य (statements) जी प्रस्ताव मालूम पड़ते हैं वे प्रस्ताव नहीं हैं और न कानूनी रिश्ता ही कायम करते हैं। इसमें से अधिकतर प्रस्ताव आमन्त्रण ही माने जाते हैं और इस बात को साधारणतः अदालत ही उस विषय पर सोच-विचार कर तय करती है कि प्रस्ताव केवल इच्छा-मात्र है या नहीं।

प्रस्ताव के लिए आमन्त्रित करना प्रस्ताव नहीं है (Invitation to make an offer is no offer)—कभी-कभी यह निश्चय करने में बहुत मुश्किल होता है कि जो कुछ भी मूलतः (Prima Facie) प्रस्ताव मालूम होता है सचमुच में प्रस्ताव

\* "It was held that it is not reason that the defendant should be bound by general words spoken to excite suitors."

† "It was held that the defendant's advertisement simply declared his intention to make an offer to any intending buyer. Hence the case of Carlill vs. Carbolic Smoke Ball Co. cannot be cited in support."

है अथवा सिर्फ प्रस्ताव के लिए आमंत्रण किया गया है। यह भिन्नता पक्षों के अभिप्राय पर निर्भर होता है। फिर भी, बहुत-से महत्वपूर्ण मुकदमों के आधार पर यह निश्चित किया गया है कि निम्नलिखित प्रस्ताव नहीं हैं, बल्कि ये प्रस्ताव के लिए आमंत्रण हैं—

(i) टेण्डर अथवा निविदा (Tender)—कोई व्यक्ति ठीकेदारों से टेण्डर (Tender) माँगे तो यह प्रस्ताव करना नहीं कहा जायगा; बल्कि उस टेण्डर के लिए जो दरखास्त देता है वही प्रस्ताव हुआ और यदि टेण्डर के लिए आयी दरखास्तों के ढेर में से चुनकर किसी एक ठीकेदार के पास उस काम को करने के लिए सूचित किया जाता है तो वह स्वीकृति होगी। इस नियम के उदाहरणस्वरूप स्पेंसर बनाम हार्डिंग (Spenser vs Harding J. L. R. 5 C. P. 551) का मुकदमा जिसमें इस बात का फैसला हुआ था कि टेण्डर के लिए आमंत्रण प्रस्ताव नहीं होता, क्योंकि वह आदमी जो माल क्रय या विक्रय के लिए टेण्डर (Tender) माँगता है, प्रस्ताव नहीं करता बल्कि प्रस्ताव उस आदमी द्वारा किया जाता है जो कि टेण्डर भेजता है और टेण्डर माँगेवाला इस प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।

(ii) मूल्य-सूचियाँ (Price-List)—अतः इसी सिद्धान्त के आधार पर अगर कोई दूकानदार मूल्य-सूचियाँ (Price-List) प्रकाशित करता है, अथवा मूल्य लिखकर कुछ वस्तुओं को दूकान या खिड़की या शो रूम (show room) में रखता है तो नियमानुसार यह नहीं माना जाता कि वह उन वस्तुओं को बेचने का या प्रकाशित किये हुए मूल्यों पर बेचने का प्रस्ताव करता है। दोनों ही दशाओं में क्रय करने का अभिप्राय रखनेवाले क्रेताओं के लिए उनके द्वारा प्रस्ताव रखने का आमंत्रण है। [Durga Prasad vs. Rulia Mal (1922) 4 Lah. L. J. 176]

(iii) रेलवे टाइम-टेबिल (Railway Time Table)—इसी तरह से एक रेलवे कम्पनी का टाइम-टेबिल (Railway Time-Table) प्रस्ताव के लिए आमंत्रण है, एवं रेलगाड़ियों को एक लिखे गये समय पर चलाने का प्रस्ताव नहीं है। [Grain-ger vs Gough. (1896) A C. 325.] इसका मतलब यह है कि जब एक रेलवे कम्पनी टाइम-टेबिल प्रकाशित करती है तो वह जनता को आमन्त्रित करती है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए कम्पनी का टिकट खरीदने के लिए आवेदन करें। और जब कम्पनी उनको टिकट बेच देती है तब इस प्रकार स्वीकृति दे देती है और फिर वह टाइम-टेबिल के नियमों से बाध्य हो जाती है।

(iv) प्रविवरण (Prospectus)—इसी तरह जब कोई कम्पनी अपना प्रविवरण (prospectus) प्रकाशित करती है, तब वह उसके द्वारा अपनी कम्पनी के शेयर को निश्चित कीमत पर बेचने का प्रस्ताव नहीं करती है। वह तो उसके द्वारा जनता को आमन्त्रित करती है कि वे प्रविवरण के आधार पर कम्पनी के शेयर खरीदने की दरखास्त दें और उनका दरखास्त देना 'प्रस्ताव' होगा और कम्पनी किसी व्यक्ति के नाम से शेयर का बँटवारा (allotment) कर दे, तो यह स्वीकार करना समझा जायगा। कम्पनी सन्निध के अनुसार ही, 'प्रविवरण का मतलब किसी विवरण-पत्र, सूचना-पत्र, विज्ञापन अथवा ऐसे निमन्त्रण से है जिसके द्वारा कम्पनी के अंशों अथवा ऋण-पत्रों के क्रय करने के लिए जनता को आमन्त्रित किया जाता है।'

(v) मूल्य की पूछताछ (Inquiry of Price)—इसी तरह मूल्यों के सम्बन्ध में पूछताछ होने पर उत्तर देने से ही उन मूल्यों पर बेचने का प्रस्ताव नहीं हो जाता। इसका उदाहरण Harvey vs. Facey (1883) A. C. 552. के मुकदमे से देखें जो इस प्रकार है—He telegraphed: "Will you sell us whiteacre? Telegraph

lowest cash price." F telegraphed in answer lowest price for whiteacre £1000." He telegraphed : "We agree to buy whiteacre for £900 asked by you. Please send us your title deeds." No answer was sent to this last telegram. It was held that there was no contract for H in his first telegram asked two questions : (i) Will you sell ? and (ii) What is the lowest price ? and in his answer F did not say "I will sell for £900." He only answered the second question : So H's second telegram is really the offer to pay £900 and this offer was for F to accept or not.

## प्रस्ताव के सम्बन्ध के कुछ नियम (Legal Rules as to Offer)

१. प्रस्ताव का असर कानूनी होना चाहिए और वह कानूनी रिश्ते को कायम करने में समर्थ हो सके।\* प्रस्ताव इस तरह का न हो जिससे कि किसी काम को करने का समझौता होने पर अगर उस समझौते को पूरा नहीं भी किया जाता है तब उस पर कोई कार्रवाई नहीं हो सकती। जैसे कि अगर A ने B से यह कह कर कि मैं आपको अपने लड़के की सालगिरह (birth anniversary) में दावत दूँगा, उसे उस दिन नहीं बुलाया तो B कोई कानूनी कार्रवाई नहीं कर सकता।

२. प्रस्ताव की शर्तें निश्चित होनी चाहिए न कि लचर-भरी (loose) और अस्पष्ट (vague)†—उदाहरण के लिए, अगर A, B से एक घोड़ा खरीदता है और कहता है कि अगर यह घोड़ा किस्मतवर (lucky) साबित होगा तब मैं आपका दूसरा घोड़ा भी खरीद लूँगा और अगर वह दूसरा घोड़ा नहीं खरीदता है तब B इस शर्त नामे को पूरा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता।‡

३. प्रस्ताव कोटेशन (quotation) या आमन्त्रित प्रस्ताव से भिन्न जरूर हो\*\*—कभी-कभी यह पता लगाने में दिक्कत हो जाती है कि कौन सा प्रस्ताव आमन्त्रण है या कौन-सा कोटेशन (quotation) है तथा कौन सही है और कौन सही नहीं है। फिर भी, कुछ साधारण नियमों के अनुसार कुछ प्रस्ताव 'प्रस्ताव' माने गये हैं जो वस्तुतः प्रस्ताव नहीं हैं। जैसे, अगर किसी वस्तु दाम लिखकर दूकान की आलमारी में सजायी हुई है तो कोई भी आदमी व्यापारी को वह वस्तु उसी दाम पर बेचने को मजबूर नहीं कर सकता। इसी तरह दाम का सूचीपत्र (catalogues) भी उसे कोई चीज लिखित दाम पर ही बेचने को बाध्य नहीं कर सकता। इसी तरह सरकुलर लेटर (circular letter) जो चीजों के क्रय-विक्रय के लिए टेण्डर आमन्त्रित करता है, विक्रेता को मजबूर नहीं कर सकता। फिर नीलामों में भी हर एक डाक बोलनेवाले की ओर से प्रस्ताव है। यह बेचने वाले के लिए है कि वह इसे मंजूर करे या न करे। मंजूर तब होता है जब हथौड़ा पटका जाता है और 'एक', 'दो', 'तीन' कह कर डाक खत्म किया जाता है। इसलिए प्रस्ताव को सही होने के लिए उसका माने साफ-साफ होना चाहिए।

\* "An offer must contemplate to give rise to legal consequences and be capable of creating legal relations"

† "The term of an offer must be certain and not loose and vague."

‡ *Guthing vs Lynn*. (1831) 109 E. R. 1130

\*\* "An offer must be distinguished from a mere quotation or an invitation to offer."

४. प्रस्ताव साधारण या विशिष्ट हो सकता है।\* जब प्रस्ताव किसी निश्चित या खास आदमी के सामने रखा जाता है तब उसे विशिष्ट (specific) प्रस्ताव कहते हैं। लेकिन जब प्रस्ताव जनसाधारण के सामने रखा जाता है तब उसे 'साधारण-प्रस्ताव' (general offer) कहते हैं। अतः इससे यह बात साबित होती है कि प्रस्ताव जनसाधारण के सामने भी रखा जा सकता है, किन्तु जब इस प्रस्ताव को कोई एक खास आदमी स्वीकार कर लेता है, तब यह प्रसंविदा का रूप धारण कर लेता है। लेकिन इस स्वीकृति के पहले की सभी शर्तें भी मंजूर होनी चाहिए। इस चीज को कारलिल बनाम कारबोलिक स्मोक बॉल कम्पनी (१८९३) [Carlill vs. Carbolic Smoke Ball Co. (1893) Q. B. 256] के अभियोग द्वारा काफी स्पष्ट किया जा सकता है। कारबोलिक स्मोक बॉल कम्पनी ने 'कारबोलिक स्मोक बॉल' (Carbolic Smoke Ball) नाम की एक दवा बनायी। कम्पनी ने इस दवा का विज्ञापन किया कि उस आदमी को, जो इस दवा की बताई गयी विधि (direction) से दिन में तीन बार पन्द्रह दिन तक इस्तेमाल करने के उपरान्त भी जुकाम या इन्फ्लुएन्जा का शिकार होगा, कम्पनी १०० पौंड का इनाम देगी। लोगों के विश्वास के लिए कम्पनी १,००० पौंड Alliance Bank में जमा भी कर चुकी है। श्रीमती कारलिल ने इस विज्ञापन पर विश्वास कर दवा खरीदी और प्रतिदिन तीन बार पन्द्रह दिन तब इसका सेवन किया। पर दुर्भाग्यवश वह इन्फ्लुएन्जा का शिकार हो गयी। इस पर श्रीमती कारलिल ने कम्पनी पर मुकदमा चलाया। कम्पनी के पक्ष से यह बहस की गयी कि स्वीकृति की सूचना कम्पनी को सीधे देनी चाहिए तथा 'प्रस्ताव' केवल विज्ञापनमात्र था। इसलिए विज्ञापन की बातों पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं करता। इस मुकदमे में यह बात तय की गयी है कि इस तरह के मुकदमों में प्रस्ताव की स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं होती। वरन् ऐसी परिस्थिति में शर्तों की मंजूरी तथा उसका पालन ही जरूरी है। अतः इस मुकदमे में वे सभी बातें जो एक प्रसंविदे के लिए आवश्यक हैं, मौजूद थीं। इसलिए अन्त में न्यायालय ने यह फैसला दिया कि श्रीमती कारलिल १०० पौंड पाने का हकदार हैं और इन्हें १०० पौंड कारबोलिक स्मोक बॉल कम्पनी की तरफ से मिलना चाहिए। यही नियम उस तरह के विज्ञापनों में भी, जो भूले हुए कुत्ते (lost dog) इत्यादि का पता लगाने वाले को पुरस्कार के रूप में देने के लिए किये जाते हैं, लागू होगा।

५. प्रत्येक प्रस्ताव की समयानुसार सूचना अवश्य होनी चाहिए†—प्रस्ताव की सूचना प्रसंविदे के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जब तक स्वीकारक को प्रस्ताव का ज्ञान नहीं हो, वह उसे स्वीकार नहीं कर सकता। लॉर्ड लिण्डले ने कहा है कि यदि एक व्यक्ति का विचार दूसरे को अवगत (communicate) न हो तब उन दोनों व्यक्तियों में किसी प्रकार का व्यापार नहीं हो सकता।‡

भारतीय प्रसंविदे की धारा ४ के अनुसार प्रस्ताव की सूचना उस समय पूरी हुई समझी जाती है जब उस आदमी को, जिसके लिए प्रस्ताव किया गया हो, मालूम हो जाय। जैसे A पत्र द्वारा B से अपना मकान १,००० रु० में बेचने का प्रस्ताव करता

\* "An offer may be general or specific."

† "Every offer must be communicated."

‡ "Lord Lindly—'A state of mind not communicated be regarded in dealings between man and man.'"



है, तो इस प्रस्ताव की सूचना उस समय पूरी हुई समझी जायगी जब प्रस्तावपत्र B के हाथ में पहुँच जायगा। अतः जब तक प्रस्ताव की सूचना प्रस्तावप्रापक तक पहुँच न चुकी हो, तब तक वह प्रसविदा नहीं हो सकती; जैसे अगर X अपने भूले हुए कुत्ते का पता लगाने के लिए पुरस्कार की घोषणा करता है तो ऐसी परिस्थिति में वह उस व्यक्ति को पुरस्कार देने के लिए बाध्य नहीं है, जिसने भूले हुए कुत्ते का पता पुरस्कार की घोषणा के विषय में न जानते हुए लगाया हो। इस नियम की पुष्टि के लिए हम लालमन शुक्ल बनाम गौरीदत्त\* (१९१३, इलाहाबाद) (Lalman Shukla vs. Gauri Dutta 1913, 11 All. L. J. 489) के मुकदमे को उद्धृत कर सकते हैं। लालमन शुक्ल, गौरीदत्तजी के मुनीम थे। दुर्भाग्यवश गौरीदत्तजी का भतीजा कहीं गायब हो गया। गौरीदत्त ने अपने मुनीम को उसका पता लगाने के लिए भेजा। लालमन शुक्ल के जाने के बाद गौरीदत्त ने ५०१ रुपये का पुरस्कार उस व्यक्ति के लिए जो भूले हुए लड़के को वापस ले आये, घोषित किया। सौभाग्यवश लालमन शुक्ल ने लड़के का पता लगा लिया और उसे वापस लाये। फिर उन्होंने इनाम का दावा किया। गौरीदत्त ने इनाम नहीं दिया। इसपर लालमन शुक्ल ने मुकदमा कर दिया। न्यायालय ने यह निर्णय किया कि लालमन शुक्ल जब लड़के का पता लगाने गये तब उन्हें पुरस्कार की घोषणा का कोई ज्ञान न था। अन्त में न्यायालय ने फैसला दिया कि लालमन शुक्ल पुरस्कार के हकदार नहीं हैं और उन्हें पुरस्कार किसी भी हालत में नहीं मिल सकता।†

व्यापारिक लेन-देन में यह बहुत मुख्य बात है कि अगर किसी प्रसविदा में बहुत-सी शर्तें हों और उनमें कुछ शर्तें साफ-साफ बतायी जाती हों और प्रसविदा करने-वाली पार्टी को और कुछ पर कुछ भी ध्यान नहीं देना पड़ता हो तब बादवाली शर्तों के लिए पार्टी उत्तरदायी नहीं होगी; जैसे Henderson vs Stevenson के मुकदमे में मुद्दे डबलिन (Dublin) से ह्वाइटहेवन (Whitehaven) की यात्रा कुछ सामान के साथ कर रहा था। उसने टिकट का दाम दिया और टिकट लिया जिसपर लिखा हुआ था : "From Dublin to Whitehaven." उसने टिकट की पीठ की ओर न देखा और न किसी ने उस ओर देखने को कहा और न टिकट के सामने कुछ निशान ही बनाया हुआ था कि जिमसे कोई पीठ की तरफ देखने की कोशिश करता।

अगर वह पीठ की ओर देखता तो उसे मालूम हो जाता कि जहाज-कम्पनी सामान के नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं है। यात्रा शुरू करने पर जहाज कम्पनी के ड्राइवर की गलती से टूट गया (wrecked) और यात्री के सामान खो गये। उसने नुकसान के लिए कम्पनी पर दावा किया और यह बताया कि टिकट की पीठ पर जो शर्तें लिखी हैं उन्हें न बताया गया था और न बताने की कोई कोशिश ही की गयी थी। इस वजह पर कम्पनी को नुकसान का पैसा देना पड़ा, क्योंकि शर्तों की सूचना साफ-साफ प्रसविदा-पार्टी को दी नहीं गयी थी।

अतः इस बात की सूचना कि टिकट के अन्दर कुछ विशेष शर्तें लिखी हुई हैं,

\* Lalman Shukla vs. Gauri Dutta 1913, 11 All. L. J. 489 : 19 I. G. 57.

† "In An American Case—Fitch vs. Snedaker it was held—"A reward cannot be claimed by one who did not know that it had been offered."

सात-सात और टिकट के ऊपर ही होनी चाहिए जिसमें टिकट खरीदनेवाले इस बात को आसानी से जान सकें कि टिकट के पृष्ठ पर कुछ विशेष शर्तें लिखी हुई हैं। अब हम इन विषय से सम्बद्ध एक मुकदमा आपका बताते हैं। उसका नाम पारकर बनाम एस० ई० आर० कम्पनी, १८७७ (*Parker vs. S. E. Rly. Co., 1877*) है। यहाँ पारकर ने एस० ई० रेलवे कम्पनी के अमानती सामान-घर में अपना हैंड-बैग (Hand bag) जमा किया। बाद में हैंड-बैग भूल गया। पारकर ने २४ पौड १० शि० का दावा रेलवे-कम्पनी के ऊपर किया। रेलवे-कम्पनी ने अपने पक्ष में बतलाया कि अमानती सामान-घर-टिकट (Cloak-Room Ticket) के पृष्ठ पर यह बात लिखी हुई थी कि रेलवे-कम्पनी १० पौड से ज्यादा कीमतवाली चीजों के लिए जिम्मेदार तब तक नहीं होगी जब तक कि कुछ अतिरिक्त महसू न दिया जाय। पारकर ने अतिरिक्त महसूल (extra charge) नहीं दिया था। टिकट के ऊपर 'पीछे देखिए' ('See back') लिखा हुआ था और पारकर ने इसे देखा भी था। लेकिन पारकर ने कहा कि उसने पीछे लिखी हुई शर्तों को नहीं पढ़ा था। अन्त में मुकदमा खारिज हो गया। न्यायालय ने बतलाया कि रेलवे-कम्पनी ने विशेष शर्तों की सूचना दी थी; किन्तु पारकर ने उन शर्तों को नहीं पढ़ा। अतः पारकर को अपनी गलती की सजा स्वयं भुगतनी चाहिए। यह बात *Mackilligan vs Champagne De Messageries Maritimes De France, 1892* के मुकदमे में भी हुई थी। इस मुकदमे की वस्तुस्थिति इस प्रकार है : टिकट के ऊपर लाल अक्षरों में यह लिखा हुआ था कि यह टिकट, टिकट की पीठ पर लिखी हुई शर्तों के आधार पर जारी किया जा रहा है, किन्तु मुद्दई (plaintiff) ने यह तर्क किया कि शर्तें फ्रेंच भाषा में लिखी हुई थी जिसे वह पढ़ नहीं सका। न्यायालय ने अपना यह फैसला दिया कि यह कोई तर्क नहीं है, क्योंकि मुद्दालह ने उन शर्तों के सूचित करने की काफी चेष्टा की थी तथा मुद्दई को उन शर्तों की सूचना थी। अतः मुद्दई का यह कर्त्तव्य था कि वह उन शर्तों को किसी दूसरे व्यक्ति से पढ़वाकर जान ले।

कितने समय तक प्रस्ताव स्वीकृति के लिए खुला रहता है (How long offer remains open')—साधारणतः देखा जाता है कि किसी भी प्रस्ताव को स्वीकृत करने के लिए कुछ-न-कुछ समय निश्चित किया रहता है और स्वीकारक को निश्चित समय के अन्दर ही प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ता है। अगर समय निश्चित नहीं किया गया है तब प्रस्ताविका को ख्याल में रखते हुए एक मुनासिब समय के अन्दर प्रस्ताव की स्वीकृति करनी चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि मुनासिब समय क्या हो सकता है। पर इस सवाल का जवाब आसान नहीं है। फिर भी, मुनासिब समय व्यापार की प्रकृति तथा प्रत्येक परिस्थिति का अध्ययन कर पता लगाया जा सकता है। यह मुनासिब समय प्रत्येक दशा में भिन्न-भिन्न होगा। इस नियम के उदाहरणस्वरूप *Ramasgate Victoria Hotel Co. vs Monte Fiore* के मुकदमे को पेश कर सकते हैं। यहाँ मुद्दई ने मुद्दालह (defendant) से कम्पनी का शेयर (share) खरीदने का प्रस्ताव ८ जून को किया। २३ नवम्बर को कम्पनी ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार किया और शेयर (share) की बाँट (allotment) की। मुकदमा चलने पर न्यायालय ने अपना यह फैसला दिया कि मुद्दई के प्रस्ताव की स्वीकृति कम्पनी को मुनासिब समय के अन्तर्गत करनी चाहिए थी और जून से नवम्बर तक मध्यान्तर मुनासिब समय नहीं है।

टेलीफोन पर किये गये अनुबंध (Contracts over the Telephone or the Telex) —टेलीफोन या टेलेक्स पर किये गये समझौते पर भी वही नियम लागू होते हैं

जो पक्षकारों द्वारा एक-दूसरे के सम्मुख खड़े होकर आपस में किये गये अनुबन्धों पर लागू होते हैं। अगर प्रस्तावक द्वारा व्यक्त की गयी स्वीकृति स्पष्ट सुनाई न पड़ी हो अथवा प्रस्तावक की समझ में न आयी हो तो वैध अनुबन्ध की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। स्वीकृति ऐसे शब्दों में व्यक्त की जानी चाहिए जिससे कि वह पूर्ण मानी जाय। जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रस्ताव करता है और उसकी बातचीत के दौरान अचानक टेलीफोन-यंत्र बन्द हो जाय या कुछ खराबी आ जाय जिससे प्रस्तावक स्वीकर्ता के शब्दों को नहीं सुन पाता है तब ऐसी हालत में अनुबन्ध की स्वीकृति नहीं होगी। अनुबन्ध की स्थापना तभी होगी जबकि पक्षकारों का पुनः वार्त्तालाप हो और प्रस्तावक स्वीकृति अच्छी तरह सुन ले।\*

जब कभी पक्षकार आमने-सामने या टेलीफोन पर बातचीत कर अनुबन्ध करते हैं तब प्रस्ताव अथवा स्वीकृति के खंडन का सवाल ही नहीं उठता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति दोनों ही क्रियाएँ एक साथ हो जाती हैं।

लॉर्ड एन्सन (Anson) ने अपनी पुस्तक *Law of Contracts*, 21 Ed. Page 24 में प्रस्ताव की स्वीकृति एवं उसके खंडन के प्रभाव का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है—

“प्रस्ताव के लिए स्वीकृति उसी प्रकार है जिस प्रकार बारूद की गाड़ी के लिए जलती हुई दियासलाई। उत्पन्न होनेवाले परिणामों का किसी भी तरह निराकरण नहीं किया जा सकता है। लेकिन ऐसा हो सकता है कि बारूद पुराना होने के कारण सील गया हो या जिस व्यक्ति ने बारूद बिछाई थी उसने दियासलाई जलाने के पहले उसे हटा लिया हो। इसी प्रकार प्रस्ताव स्वीकृति के अभाव में समयातीत होकर समाप्त हो सकता है या स्वीकृति से पूर्व उसका खंडन किया जा सकता है। प्रस्ताव स्वीकृति के बाद वचन में परिवर्तित हो जाता है और फिर उसका खंडन नहीं किया जा सकता है।”

ऊपर लिखे उद्धरण में लॉर्ड एन्सन ने प्रस्ताव की तुलना बारूद की गाड़ी से और स्वीकृति की तुलना जलती हुई दियासलाई से की है। जलती हुई दियासलाई को बारूद के पास लाते ही बारूद का विस्फोट हो जाता है। इसी तरह प्रस्ताव स्वीकृत होने पर वह प्रसंविदा बन जाता है और फिर उससे वैधानिक दायित्व उत्पन्न हो सकते हैं। फिर, अगर बारूद सील जाय या उसके निकट दियासलाई लाये जाने से पहले उसे हटा लिया जाय तो विस्फोट को रोका जा सकता है। इसी तरह अगर उचित अथवा निश्चित समय के अन्दर स्वीकृति नहीं दी जाने के कारण प्रस्ताव समयातीत हो गया हो या स्वीकृति से पहले प्रस्ताव को वापस ले लिया गया हो तो अनुबन्ध नहीं हो सकता है।

### प्रस्ताव का खंडन (Revocation of offer)

निम्नलिखित हालतों में प्रस्ताव समाप्त हुआ या खण्डनीय समझना चाहिए—

१. प्रस्तावक द्वारा दूसरे पक्ष को खण्डन की सूचना देकर [By the notice

of withdrawal or revocation; Sec. 6 (1)]—अगर प्रस्ताव में स्वीकृति के लिए एक निश्चित अवधि दी हुई हो तो इस अवधि के अन्दर ही प्रस्ताव की स्वीकृति होनी चाहिए। यदि उस प्रस्ताव की स्वीकृति न की गयी हो तो प्रस्ताव को खंडित समझा जाता है। उदाहरण के रूप में हम इस प्रकार ले सकते हैं कि किसी नीलाम में डाक बोलनेवाला व्यक्ति अपनी बोली (bid) का डाक के 'एक-दो-तीन' होने के पहले तक खंडन (revocation) कर सकता है। यहाँ डाक बोलनेवालों की हर एक बोली (bid) प्रस्ताव है और जब नीलाम करनेवाला उनकी बोली को मंजूर करता है, तब वे अपनी बोली का खंडन नहीं कर सकते।

२. एक मुनासिब समय के बीत जाने के बाद [By expiry of the reasonable time; Sec. 6 (2)]—अगर प्रस्ताव में स्वीकृति के लिए एक निश्चित समय दिया हुआ है या एक विशिष्ट रीति से स्वीकार करने को कहा गया है तो इस परिस्थिति में उस निश्चित समय के बीत जाने के पश्चात् प्रस्ताव को विशिष्ट रीति से नहीं मंजूर करने के कारण प्रस्ताव का खंडन हो जाता है।

अगर प्रस्ताव में स्वीकृति के लिए कोई निश्चित समय न दिया गया हो तो उस हालत में एक मुनासिब समय के बीत जाने के बाद प्रस्ताव का खंडन आप-से-आप हो जाता है। उदाहरण के लिए, हेड बनाम डीगन (Head vs. Diggon) का मुकदमा हम पेश कर सकते हैं। यहाँ एक विक्रेता ने एक खरीदार के सामने वृहस्पतिवार को ऊन बेचने का प्रस्ताव रखा। विक्रेता ने क्रेता को प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए सिर्फ ३ दिनों का समय दिया। क्रेता ने इस प्रस्ताव को दूसरे सोमवार के दिन स्वीकार किया। किन्तु विक्रेता वेचारा तीन दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् तीसरे व्यक्ति के हाथ ऊन बेच चुका था। मुकदमा चलाने पर न्यायालय ने अपना यह फैसला दिया कि प्रस्ताव के नियम का तो अतिक्रमण हो चुका था। अतः विक्रेता किसी तरह हकने के लिए बाध्य नहीं था।

३. अपने मन से सुधार या रद्दोबदल करने या दी गयी शर्तों को न पूरा करने पर [By modification or alteration in or failure to fulfil the given condition; Sec. 6 (3)]—यदि प्रस्तावक जिस प्रकार से या जिन शर्तों को मानते हुए स्वीकार करने को कहता है उसे यदि उसी प्रकार प्रस्ताव-प्राप्त नहीं माने या उसमें किसी प्रकार का अपने मन के मुताबिक सुधार करके या रद्दोबदल करके स्वीकार करे तो अपने प्रस्ताव को प्रस्तावक रद्द कर सकता है।

४. प्रस्तावक की मृत्यु अथवा उसके पागल हो जाने पर [By death or insanity; Sec. 6 (4)] यदि प्रस्तावक (offerer) या प्रस्तावप्राप्त (offeree) की मृत्यु हो जाय या दोनों में से कोई एक पागल हो जाय तो वह प्रस्ताव समाप्त हो जाता है। परन्तु अगर सूचना मिलने से पहले ही स्वीकर्ता द्वारा प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया हो तो उसे वैध अनुबन्ध माना जायगा। अंगरेजी सन्निधम के अनुसार प्रस्तावक के आकस्मिक पागलपन को प्रस्ताव के खंडन का कारण नहीं जाना जाता, परन्तु प्रस्तावक की मृत्यु के कारण प्रस्ताव समाप्त हो जाता है चाहे प्रस्तावित को स्वीकृति देते समय इसकी जानकारी रही हो अथवा नहीं।

५. प्रस्ताव की अस्वीकृति अथवा विपरीत प्रस्ताव होने पर (By rejection or counter offer)—अस्वीकृति तथा विपरीत प्रस्ताव (counter-offer) द्वारा भी प्रस्ताव का खंडन या उसकी समाप्ति सम्झी जाती है।

उदाहरणार्थ—हमलोग निहालचन्द बनाम अमरनाथ [Nihalchand vs.

Amarnath (1926) 8-Lah L. 434] के मुकदमे को देख सकते हैं। इस मुकदमे के अनुसार A B के सामने २०० मन गेहूँ १५ रु० मन की दर से बेचने का प्रस्ताव करे, पर B यह सोचकर कि कीमत गिर रही है, तार द्वारा खबर करे कि मैं १४ रु० प्रतिमन दूँगा, जो उसका विपरीत प्रस्ताव (counter offer) है तो B A के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है और प्रस्ताव समाप्त हो जाता है। मान लीजिए कि कुछ समय बाद B को यह पता चले कि कीमत गिरने के बजाय बढ़ रही है और वह तार कर दे कि मैं १५ प्रतिमन दूँगा तो A, यदि चाहे तो, बेचने से इन्कार कर सकता है, क्योंकि B का यह कार्य A के प्रस्ताव की स्वीकृति नहीं है—A का प्रस्ताव तो पहले ही समाप्त हो चुका है—बल्कि B द्वारा A के सामने यह एक नया प्रस्ताव है।

**डाकघर द्वारा प्रस्ताव करना (Offer through Post-office)**—जहाँ कहीं किसी चीज की खरीद-विक्री के लिए पत्र द्वारा प्रस्ताव किया जाता है वहाँ वह प्रस्ताव तब पूर्ण होता है जब कि प्रस्ताव का पत्र प्रस्ताव-प्राप्त को प्राप्त होता है; Sec 4 (1)।

**डाक द्वारा प्रस्ताव का खंडन (Revocation of an offer by post)**—अंगरेजी विधान (English Law) के अनुसार प्रस्ताव मिलने पर जब प्रस्ताव-प्राप्त अपनी स्वीकृति का पत्र लिखकर डाकघर में छोड़ देता है तो कहा जाता है कि दोनों के बीच प्रसंविदा पूरी हो गयी। फिर यदि प्रस्तावक अपने प्रस्ताव का खंडन डाक के द्वारा करता है तो इस खंडन (revocation) का पत्र प्रस्ताव-प्राप्त को उसकी स्वीकृति के पत्र को डाकघर में छोड़ने के पहले मिलना चाहिए अन्यथा प्रस्ताव का खंडन नहीं हो सकेगा। इसी तरह भारतीय प्रसंविदा-विधान (Indian Contract Act) के अनुसार, "A proposal may be revoked at any time before the communication of its acceptance as against the proposer, but not afterwards." Sec. 5 अर्थात् प्रस्तावक के लिए स्वीकृति की सूचना पूर्ण होने के पहले किसी भी समय प्रस्ताव का खंडन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब स्वीकारक (acceptor) अपनी स्वीकृति प्रस्तावक (proposer) को डाक द्वारा भेज देता है तथा उसे रोक रखने की शक्ति उसमें नहीं रह जाती है तो उसके बाद प्रस्तावक अपने प्रस्ताव का खंडन नहीं कर सकता। इसलिए प्रस्ताव का खंडन स्वीकृति-पत्र के डाक में छोड़ने के पहले ही होना चाहिए। अतएव दोनों देशों के नियम इस विषय में मिलते-जुलते हैं।

**उदाहरण**—X एक डाक-पत्र के द्वारा अपना बगीचा बेचने के लिए Y के पास प्रस्ताव करना चाहे तो Y के स्वीकृति-पत्र को डाकघर में छोड़ने के पहले किसी भी समय खंडन कर सकता है, किन्तु उसके बाद नहीं।

### University Questions

- I. (i) Explain the terms 'Offer' and 'Acceptance'.
- (ii) Are the following offer or not—(a) A railway time table, (b) A notice of auction sale, (c) Prospectus of a company requesting persons to buy shares, (d) An invitation to tenders, (e) Issue of Price list, (f) An advertisement inviting application for a job, (g) Circular letter?

[(i) 'प्रस्ताव' तथा 'स्वीकृति' शब्दों की व्याख्या कीजिए।

(ii) निम्नलिखित प्रस्ताव है अथवा नहीं— (क) रेलवे समय-सारिणी, (ख) नीलाम द्वारा विक्रय की नोटिस, (ग) शेयर खरीदने के लिए व्यक्तियों से प्रार्थना के रूप में कम्पनी का प्रविवरण, (घ) टेण्डर के लिए निमन्त्रण, (ङ) मूल्य-सूची जारी करना, (च) किसी नौकरी के लिए आवेदन देने का विज्ञापन, (छ) गश्ती पत्र ।]

2. What do you mean by an offer ? How is an offer made and revoked ? What rules apply when an offer is made through Post-Office ?

(प्रस्ताव से आप क्या समझते हैं ? प्रस्ताव किस तरह बनते हैं तथा उनका खण्डन किस प्रकार किया जाता है ? जब प्रस्ताव पोस्ट-ऑफिस द्वारा किया जाता है तब क्या नियम लागू होते हैं ।)

3 How and on what grounds can proposals be revoked ? Is there any time limit after which revocation of proposals and acceptance cannot be made ?

(प्रस्तावों का कैसे और किस आधार पर खंडन हो सकता है ? क्या समय की ऐसी कोई परिसीमा है जिसके बाद प्रस्ताव तथा स्वीकृति का खंडन नहीं किया जा सकता ?)

4. Briefly discuss the law relating to offer and acceptance by Post.

(डाक द्वारा प्रस्ताव के प्रेषण एवं स्वीकृति से सम्बद्ध वैधानिक नियमों का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।)

5. "Acceptance is to an offer what a lighted match to a train of Gun Powder." Comment.

(“प्रस्ताव के लिए स्वीकृति बारूद की गाड़ी के लिए जलती हुई दियासलाई के समान है ।” विवेचना कीजिए ।)

6. What is a 'Proposal' ? State the rules as to a valid proposal.

(प्रस्ताव क्या होता है ? वैध प्रस्ताव-सम्बन्धी नियमों का वर्णन कीजिए ।)

7. (a) Distinguish an offer from a quotation or an invitation to an offer. (b) What do you understand by a 'Standing Offer' ?

[(क) 'प्रस्ताव' तथा 'मूल्य-सूची' या 'प्रस्ताव-निमन्त्रण' में अन्तर बतलाइए । (ख) 'स्थायी प्रस्ताव' से आप क्या समझते हैं ?]

8. "A Contract is formed when the acceptor has done something to signify his intention to accept, not when he has made up his mind to do so." Explain.

(“किसी प्रसविदा का निर्माण तब होता है जब स्वीकर्ता ने स्वीकृति देने की अपनी इच्छा को सूचित करने के लिए कुछ किया है, तब नहीं जब उसने ऐसा करने का निश्चय किया है ।” इस कथन की व्याख्या कीजिए ।)

9. Write short notes on the following --

(i) Agreement, (ii) Contract. (iii) Expressed and implied agreement, (iv) Voidable, unenforceable and illegal agreements.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(क) समझौता, (ख) प्रसविदा, (ग) स्पष्ट एवं गभित समझौता, (घ) व्यर्थ, अप्रवर्तनीय एवं अवैधानिक समझौता ।]

10. Discuss the following Problems—

(i) X said in course of conversation with Y that he would give Rs. 5,000 to him who would marry X's daughter with the consent of

X. Y married X's daughter with X's consent. Is X bound to pay Rs. 5,000 ? (Bihar 1955)

[Ans.—Weeks vs. Tybald It is not reason that the defendant should be bound by general words spoken to excite suitors. इसलिए X 5000 रु० Y को देने के लिए बाध्य नहीं है।]

(ii) A made a contract with B and promised that if he was satisfied with him as a customer, he would favourably consider an application for renewal of contract. (Bihar 1955)

[Ans.—This is not a valid contract. This is executory contract.]

(iii) A chemical company advertises in the newspapers that anyone who contacts influenza after taking its influenza tablets for seven days will be paid a reward of Rs. 1,000. X took the medicine according to the directions but contacts influenza. State the rights of X in brief. [Case : Carlill vs. Carbolic Smoke Ball Co.] (Bihar 1958)

Or

B claims to have invented a specific medicine for Typhoid. The Medicine is priced Rs. 10 a phial. He puts the advertisement in newspapers describing no glowing terms the merits of the newly invented medicine. The advertisement adds that B would pay damages to the extent of Rs. 1,000, if any body dies of Typhoid after the medicine has been administered to him for 7 days. X, the father of Y, who is an infant, buys the medicine. Y is down with Typhoid. The medicine is administered to Y for 10 days. Has X any remedy against B ?

(Cal. 1947, 56)

(See Carlill vs. Carbolic Smoke Ball Co.)

(iv) A offers a reward to whosoever brings to him his lost dog. B brings to A his lost dog. Can he claim the reward ? Give reasons. (Yes. Lalman Shukla vs. Gauri Dutta.)

Or

A offers by advertisement a reward of Rs. 50 to any one who returns him lost dog. B finding the dog brings it to A, without having heard of the offer of reward. Is B entitled to the reward ?

(Bihar 1956; Patna 1948)

[Ans. Lalman Shukla vs. Gauri Dutta. 1913, All. 4 J 489]

(v) An offer was made to take shares indicating that the answer was to come by post. It was accepted by a letter, but the letter never reached the offerer. Is the offerer liable as a share-holder ?

[Ans. यहाँ प्रस्तावक शेयर-होल्डर के रूप में उत्तरदायी है। हेन्थार्न बनाम फ्रेजर का मुकदमा देखें।]

(vi) X offersto sell a house in Calcutta to Y for Rs 50,000. The offer is communicated to Y in Bombay by an express letter. The letter is delayed in censor's office. Before X's letter reaches Y, Y receives a telegram from X revoking his offer. Advise Y.

[Ans. यहाँ Y को कोई उपचार (remedy) प्राप्त नहीं है क्योंकि X द्वारा स्वीकृति का वैध खंडन हो चुका है।]

(vii) A intends to make an offer to B, and tells C about it. C informs B of the contemplated offer but A himself has not communicated the offer to B. B tells A that he accepts the offer. Does this

constitute a valid agreement between A and B ?

(Agra 1948; Luck. 1960)

(viii) A teaches his parrot to recite an offer and then sends the parrot to B. The bird repeats the recitation. Is this a valid offer ?

(Luck. 1960; Aild. 1958)

[Ans. यह प्रस्ताव सही हो सकता है अगर यह साबित कर दिया जाय कि B ने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है।]

(ix) A, by a letter, offers to sell his horse to B for Rs 500. B by a letter, which crosses A's letter in the post, offers to buy it for Rs 500. Do these two letters create a contract ?

(Raj. 1960; Luck. 1960; Agra 1958)

[Ans. A और B के बीच कोई वैध अनुबन्ध नहीं होता है।]

(x) B offered to sell his house to A for Rs 10,000. A accepted the offer by post. On the next day A sent a telegram withdrawing the acceptance which reached B before the letter. Is the revocation of acceptance valid ? Would it make any difference if both the letter communicating acceptance and the telegram communicating revocation of acceptance reach B at the same time ?

(Bihar 1953; Luck. 1960, '61)

[Ans. A के द्वारा प्रस्ताव का खण्डन सही है क्योंकि खण्डन का तार B को स्वीकृति की चिट्ठी के पहले मिलता है।]

(xi) A sees an article marked price, 5 in B's shop and offers him the price quoted. B refuses saying that it is not for sale.

[Ans. A cannot compel 'B' to sell the goods. This is mere intention to sell the article. Harvey vs. Facey. 1893 A.C 552.]

(xii) C receives from D, a secondhand bookseller, his monthly catalogue of secondhand books for sale at specified prices. C writes to D saying he will buy one of the books mentioned at the price named in the catalogue.

[Ans. A mere catalogue does not mean an offer or offers made. The prices given in a catalogue merely show an intention to sell at those prices. The trader is not bound to sell his goods at the price mentioned in the catalogue Mylappa vs. Aga, 1919, 37 Mad L. J. 712; Durga Prasad vs. Rulia Mal. 1922; 4 Lah. L. J. 176.]

---



## स्वीकृति (Acceptance)

किसी भी प्रसंविदा (contract) के लिए प्रस्ताव (proposal) तथा प्रस्ताव की स्वीकृति (acceptance of the proposal) का होना अत्यन्त आवश्यक है । वह आदमी जिसके समक्ष प्रस्ताव रखा गया है, अपनी सहमति दे देता है तो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है । प्रस्ताव (proposal) स्वीकृत होने के पश्चात् वचन (promise) का रूप धारण कर लेता है ।\* जो प्रस्ताव करता है उसे प्रस्तावक (proposer) तथा जो प्रस्ताव को स्वीकार करता है उसे स्वीकारक (acceptor) कहते हैं । प्रस्ताव को प्रसंविदा का रूप देने के लिए भी 'स्वीकृति' अत्यन्त आवश्यक है । अब प्रश्न यह उठता है कि—

१. कौन प्रस्ताव (Proposal or offer) को स्वीकार कर सकता है और
२. किस तरह प्रस्ताव स्वीकार किया जायगा ?

कौन प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता है ? (Who can accept an offer ?)—

प्रस्ताव को वही स्वीकार कर सकता है जिसके सामने वह स्वीकृति के लिए रखा गया है और जिससे उमपर विचार प्रकट करने के लिए कहा जाता है । उदाहरणस्वरूप, हमलोग एक व्यापारिक मुकदमा **बोल्टन बनाम जोन्स** (१८५७) [Boulton vs. Jones (1857) 157 E. R. 232] को देख सकते हैं । इस मुकदमे की वस्तुस्थिति (facts) इस प्रकार है कि A ने अपना व्यापार अपने मैनेजर के हाथ बगैर किसी से कुछ कहे हुए बेच दिया । जिस दिन यह विक्री हुई उस दिन दोपहर को A के पुराने ग्राहक Jones ने कुछ चीजों के लिए A के नाम से ऑर्डर (order) दिया । व्यापार के नये मालिक ने बगैर यह बात कहे हुए कि व्यापार का मालिक A नहीं है, चीज चुपचाप भेज दी । बाद में जब ग्राहक (Jones) चीज का दाम नहीं दे सका तब नये मालिक ने पैसा-वसूली का मुकदमा किया । तब न्यायालय से यह फैसला हुआ कि ग्राहक को पैसा देने के लिए A मजबूर नहीं कर सकता है; और वह पैसा नहीं वसूल सका, क्योंकि वहाँ प्रसंविदा नहीं थी । Jones अगर माल रख लेता है, तब माल की कीमत नये मालिक को देनी होगी और नहीं तो वह (Jones) माल को वापस कर प्रसंविदा रद्द कर सकता है ।

[It was said "If a person concludes a contract with B, A cannot give himself any right under the offer to B."]

किस तरीके से प्रस्ताव स्वीकार किया जायगा (Modes of Acceptance)—

१. स्वीकृति पूर्ण तथा शर्त-रहित होनी चाहिए—

भारतीय प्रसंविदा की धारा ७ (१) के अनुसार स्वीकृति पूर्ण तथा शर्त-रहित

\* "When the person to whom proposal is made signifies his assent thereto, the proposal is said to be accepted. A proposal when accepted becomes a promise."

† "Acceptance must be absolute and unqualified." [Sec. 7 (1)]

होनी चाहिए। वास्तव में सही स्वीकृति (valid acceptance) के लिए प्रस्ताव की सभी शर्तें स्वीकृत होनी चाहिए, क्योंकि अगर स्वीकृति कुछ भिन्न है तो वह स्वीकृति न होकर एक विपरीत प्रस्ताव (counter-offer) बन जाती है और उसकी स्वीकृति उस समय तक नहीं मानी जाती जब तक कि मूल प्रस्तावक द्वारा वह स्वीकृत न हो जाय। उदाहरणार्थ, हम **जॉर्डन बनाम नॉर्टन**, १८३८ [Jordan vs. Norton (1838) 4 M & W 155] का मुकदमा लें। यहाँ नॉर्टन ने जॉर्डन की घोड़ी को एक निश्चित मूल्य पर तथा इस शर्त पर कि वह घोड़ी जोतने पर ठीक और शान्त स्वभाव की होगी, खरीदने का प्रस्ताव किया। जॉर्डन ने निश्चित मूल्य स्वीकार कर लिया, परन्तु 'घोड़ी' जोतने पर ठीक और शान्त स्वभाव की होने के बदले 'जोड़ी' (double) घोड़ी जोतने पर ठीक और शान्त स्वभाव की होने की शर्त लगा दी। इस तरह जॉर्डन ने प्रस्ताव की दूसरी शर्त को 'जोड़ी' (double) शब्द जोड़कर भिन्न कर दिया। अन्त में न्यायालय ने फैसला दिया कि इस तरह की स्वीकृति सही स्वीकृति (valid acceptance) नहीं हो सकती, क्योंकि जॉर्डन ने प्रस्ताव के बदले एक अन्य नया प्रस्ताव नॉर्टन के सम्मुख रख दिया।

इसी तरह अगर प्रस्ताव की शर्त है कि माल की डेलिवरी (delivery) एक खास या निश्चित स्थान पर होनी चाहिए और अगर माल की डेलिवरी (delivery) उस निश्चित या खास स्थान को छोड़कर किसी दूसरी जगह हो तो यह अनुबन्ध (agreement) का पालन नहीं कहलायेगा।

२. स्वीकृति को प्रस्ताव में बतलायी गयी रीति के अनुकूल होना चाहिए, चाहे वह रीति स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी गयी हो या सामूली और मुनासिब ढंग से समझे जाने के लिए बुद्धि पर छोड़ दी गयी हो।\*

धारा ७ (२) के अनुसार प्रस्तावक जिस प्रकार कहे या चाहे उसी प्रकार से उसके प्रस्ताव को स्वीकृत करना चाहिए। यदि प्रस्तावक ने किसी प्रकार की इच्छा व्यक्त नहीं की है तो वैसी हानत में प्रस्ताव-प्रापक (offeree) को चाहिए कि जिस प्रकार का रिवाज हो या जो ढंग मुनासिब समझा जाय, उसी ढंग से स्वीकृति दे। मान लीजिए कि X, Y के पास प्रस्ताव भेजते हुए कहता है कि आप तार (telegram) द्वारा जल्द बताइए कि खरीद करेंगे या नहीं। इसपर यदि Y माध्यम पत्र द्वारा जवाब भेजता है तो यह कहा जायगा कि प्रस्ताव का जवाब सही नहीं दिया गया। इस प्रकार यह एक रिवाज-सा हो गया है कि सभी व्यापारिक ढंग के पत्रों का जवाब पत्रों में ही भेजा जाय और तार (telegram) का जवाब तार में।

३. प्रस्ताव की स्वीकृति उसके दिये गये समय के अन्दर हो—

कभी-कभी प्रस्तावक प्रस्ताव देते समय एक अवधि निश्चित कर देता है जिसके अन्दर उसकी स्वीकृति हो जानी आवश्यक है। यदि कोई निश्चित समय न बताया गया हो तो ऐसा प्रस्ताव मुनासिब समय (reasonable time) के अन्दर स्वीकृत हो जाना चाहिए। यदि ऐसे समय के अन्दर स्वीकृति न दी गयी तो प्रस्ताव खत्म हो जाता है और उसके बाद उसे स्वीकार कर प्रस्तावक को उत्तरदायी

\* "Acceptance must be in the mode required by the offer whether that mode is expressed or left to be understood in usual or reasonable manner." [Sec.7 (2)].

† "Acceptance of the offer must be made within the time prescribed."

(responsible) नहीं बनाया जा सकता।

#### ४. मौन स्वीकृति (Tacit Acceptance) —

वास्तव में स्वीकृति एक नियत विधि के अनुसार होनी चाहिए। अतः हाजी मोहम्मद बनाम स्पिनर, १९०० (Haji Mohammed vs. Spinner, 1900) के मुकदमे में यह ठीक ही कहा गया कि स्वीकारक का केवल मौन रह जाना स्वीकृति देने का लक्षण नहीं है। उदाहरण में हम ले सकते हैं कि X, Y के पास पत्र लिखता है कि 'मैं आपका मकान ५,००० रु० में खरीदने का प्रस्ताव करता हूँ और अगर आपका स्वीकृति-पत्र मुझे १२ दिन के अन्दर न मिला तो मैं समझूँगा कि आपने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।' ऐसी स्थिति में यदि X १२ दिनों के बाद भी प्रस्ताव का कोई उत्तर नहीं देता है तो भी X का प्रस्ताव प्रसंविदा का रूप धारण नहीं करेगा, क्योंकि Y इस तरह के व्यावसायिक पत्र का जवाब देने के लिए बाध्य नहीं है। फिर भी, स्वीकारक बिना सूचना दिये केवल अपने आचरण या व्यवहार द्वारा किसी प्रस्ताव की स्वीकृति दे सकता है। उदाहरणार्थ—A, B का रेडिओ २०० रु० में खरीदने का प्रस्ताव करता है। अगर B शब्दों द्वारा कोई स्वीकृति न देकर केवल अपना रेडिओ A के पास भिजवा देता है तो वह अपने आचरण द्वारा A के प्रस्ताव को स्वीकार कर रहा है। इसी तरह की स्वीकृति को 'आचरण द्वारा स्वीकृति' कहते हैं।

गिबान्ड बनाम जी० ई० आर० कम्पनी, १९२० (Giband vs. G. E. R. Co., 1920) के मुकदमे में यह उद्धोषित किया गया कि प्रलेख की प्रसंविदा-सम्बन्धी शर्तों को बिना विरुद्ध वाक्य (protest) कहे स्वीकृत करने को भी मौन स्वीकृति कहते हैं। इस मौन स्वीकृति को समझाते हुए भी Anson कहते हैं कि स्वीकृति साफ-साफ शब्दों में दी जाती है या स्वीकारक के काम, बातचीत, तौर-तरीके इत्यादि के जरिये जानी जाती है (made by words or conduct)। उदाहरण में वे दो मुकदमों को पेश करते हैं—

(i) फेल्ड हाउस बनाम बिण्डले, १८६२\*—फेल्ड हाउस ने अपने भतीजे के घोड़े को ३० पौ० १५ शि० में खरीदने का प्रस्ताव पत्र द्वारा किया और पत्र में यह लिख दिया कि अगर मैं कुछ और न सुनूँगा तब समझूँगा कि उक्त कीमत में घोड़ा मेरा हो गया। पत्र का कुछ भी जवाब नहीं दिया गया पर भतीजे ने बिण्डले से, जो नीलाम करनेवाला था, कहा कि यह घोड़ा मेरे चाचाजी के हाथ बिकने को है, इसे अलग बाँध दो। लेकिन बिण्डले ने गलती से वह घोड़ा बेच दिया। जब फेल्ड हाउस ने घोड़े के लिए बिण्डले पर मुकदमा किया तो न्यायालय ने फैसला दिया कि भतीजे ने कभी भी घोड़ा फेल्ड हाउस से बेचने का वचन नहीं दिया था। यहाँ उनके प्रस्ताव की स्वीकृति हुई ही नहीं है, इसलिए यह प्रसंविदा नहीं है। अतएव मुकदमा जो बिण्डले पर लाया गया है वह सही नहीं है।

(ii) दूसरा मुकदमा पॉवेल बनाम ली (powell vs. Lee) का है—इसमें मुद्दा एक स्कूल की हेडमास्टरी के लिए उम्मीदवार था और उसका इंटरव्यू (interview) एक बोर्ड ऑफ मैनेजर्स ने लिया। इंटरव्यू के बाद इस बोर्ड के एक आदमी ने गुप्त रीति से उसे बतलाया कि आपकी बहाली हो गयी है, पर बाद में लोगों की राय बदल गयी और दूसरे आदमी की बहाली हो गयी। इसपर जब उस उम्मीदवार ने मुकदमा दायर किया तब न्यायालय ने फैसला दिया कि "मैनेजर्स की पूरी समिति की

\* Felt House vs. Bindley 1862 C. B. N. S. (869).

ओर से स्वाधिकार-सम्मत सूचना के अभाव में यहाँ कोई सम्पूर्ण प्रसंविदा हुई ही नहीं।”\*

इसलिए इन दो मुकदमों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि (क) प्रस्ताव प्रस्तुत करनेवाले का किसी पत्र के बारे में मौन रह जाना उसके प्रस्तावों की स्वीकृति नहीं है। (ख) स्वीकृति केवल उसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए जिसे स्वीकारक की ओर से इसका अधिकार इस हद तक प्राप्त हो कि उसकी स्वीकृति स्वयं स्वीकारक की स्वीकृति समझी जा सके।†

#### ५. प्रस्ताव की शर्तों की निष्पन्नता द्वारा स्वीकृति\*\*—

भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा ८ के अनुसार, प्रस्ताव की शर्तों का निष्पादन (performance) प्रस्ताव की स्वीकृति ही है। उदाहरणार्थ, जब खोयी हुई चीजों का पता लगाने के लिए या किसी वधिक को पकड़ने के लिए पुरस्कार देने का प्रस्ताव रखा जाता है तब आवश्यक (required) कार्य करने पर प्रस्ताव प्रसंविदा का रूप धारण कर लेता है।

वास्तव में प्रस्ताव की स्वीकृति सदैव शब्दों द्वारा ही प्रकट करना जरूरी नहीं है। कभी-कभी प्रस्ताव किसी व्यक्ति-को सम्बोधित न होकर सामान्य जनता के सामने रखा जाता है और उसे ही कोई व्यक्ति, जो स्वीकार करने का इच्छुक है, अपने आवरण या व्यवहार द्वारा जैसे स्वीकार कर लेता है वैसे ही वह प्रसंविदा का रूप धारण कर लेता है। अतः किसी खोयी हुई वस्तु के सम्बन्ध में सबसे पहले आवश्यक सूचना देनेवाले व्यक्ति के प्रति ही प्रस्ताव होगा।

#### ६. अस्पष्ट शर्तों की स्वीकृति\*†—

प्रस्तावक की स्वीकृति का मतलब है कि सभी प्रस्तावों की स्वीकृति हो, किन्तु अगर शर्त प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हो और न स्वीकारक का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया गया हो तो स्वीकारक ऐसी शर्तों के लिए बाध्य नहीं होगा।

#### ७. लाभ द्वारा स्वीकृति\*†—

मान लिया कि एक बस ड्राइवर (Bus Driver) यात्रियों को नयी दिल्ली से कश्मीरी गेट ३७ पैसे में ले जाने का प्रस्ताव करता है। Z बस के अन्दर घुस जाता है और कश्मीरी गेट जा पहुँचता है। यहाँ Z ने प्रस्तावित लाभ का आनन्द उठाया है। इसलिए Z ने ३७ पैसे देना स्वीकार किया है।

### स्वीकृति की सूचना (Communication of Acceptance)

भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा ४ के अनुसार स्वीकृति की सूचना प्रस्तावक के विरुद्ध तब पूरी मानी जायेगी जब कि वह प्रस्तावक के पास प्रेषण की ऐसी स्थिति में हो कि स्वीकृति को वापस लेना स्वीकारक की शक्ति के बाहर हो जाय

\* “In the absence of an authorised communication from the whole body of managers there was no complete contract.”

† “That silence to a letter making an offer is not an acceptance of the terms proposed in it.”

‡ “An acceptance should be made only by the person authorised on that behalf to make the acceptor liable as acceptor.”

\*\* Acceptance by performance of the conditions of proposal.

\*† Acceptance of vague conditions.

\*‡ Acceptance by taking benefits.

और स्वीकृति की सूचना स्वीकारक के विरुद्ध उस समय पूरी होती है जिस समय स्वीकृति प्रस्तावक को ज्ञात हो जाय। उदाहरणार्थ, अगर X Y के प्रस्ताव को पत्र द्वारा स्वीकार करता है तो ऐसी स्थिति में स्वीकृति की सूचना Y के विरुद्ध उसी समय पूरी हो जाती है जब X स्वीकृति-पत्र डाक में छोड़ देता है और इसका वापस लेना X की शक्ति के बाहर हो जाता है। अब X के विरुद्ध स्वीकृति की सूचना उस समय पूरी होगी जब कि स्वीकृति-पत्र Y के हाथ में आ जाता है और Y, X की स्वीकृति की बात जान जाता है।

वास्तव में स्वीकृति की सूचना तब होती है जब स्वीकारक प्रस्ताव के आदेशानुसार आवश्यक कार्य करे। अतः जब प्रस्तावक स्वीकृति की सूचना पाने की उम्मीद करता है तब ऐसी स्थिति में तब तक स्वीकृति नहीं होगी जब तक उसे स्वीकृति की सूचना प्राप्त न हो जाय। प्रायः साधारण प्रथा के अनुसार हम लोग स्वीकृति की सूचना देने के लिए डाकघर का सहारा लेते हैं। अब ऐसी स्थिति में **हेंथोर्न बनाम फ्रजर, १८९२ (Henthorn vs. Fraser, 1892)** के मुकदमे के फैसले के अनुसार स्वीकृति की सूचना स्वीकृति-पत्र को डाक में छोड़ने के साथ ही पूरी हो जाती है। इतना ही नहीं, इस पत्र के खो जाने या देर से पहुँचने या गलत जगह पहुँचने के लिए स्वीकारक या पत्र भेजनेवाला जिम्मेदार नहीं होगा, अगर उसने पता सही-नहीं और ठीक ढंग से लिखा है। इस सिद्धान्त की पुष्टि में हम **डनलप बनाम हिगिस, १८४८ (Donlop vs. Higgings, 1848)** का मुकदमा ले सकते हैं। यहाँ डनलप साहब ने २८ जनवरी को २,००० टन पिग-आयरन (pig iron) डाक द्वारा निश्चित कीमत पर बेचने का प्रस्ताव किया। डनलप साहब का प्रस्ताव-पत्र हिगिस साहब को ३० जनवरी को मिला और उन्होंने उसी दिन अपना स्वीकृति-पत्र डाक में छोड़ दिया। किन्तु डाकघर की गलती से चिट्ठी १ फरवरी को २ बजे दिन में डनलप साहब को मिली। इस बीच कीमत बढ़ जाने के कारण डनलप साहब ने माल देने से इनकार किया। न्यायालय ने इस मुकदमे में यह फैसला दिया कि प्रस्ताव प्रसंविदा का रूप धारण कर चुका था अतः डनलप साहब इस प्रसंविदा का किमी तरह उल्लंघन नहीं कर सकते। इस तरह वे प्रसंविदा को पूरा करने के लिए जिम्मेदार ठहराये गये।

वास्तव में इस सिद्धान्त (principle) के पीछे बहस यह है कि जब प्रस्तावक ने साफ तरीके से (expressly) या सांकेतिक (implied) ढंग से डाकघर को स्वीकृति की सूचना देने का माध्यम चुन लिया है तब ज्योंही स्वीकृति-पत्र डाक में छोड़ दिया जाता है, त्योंही स्वीकृति प्रस्तावक के एजेंट (agent) यानी डाकघर के पास पहुँच जाती है। अतः यदि प्रस्तावक का एजेंट प्रस्तावक को चिट्ठी सौंपने का अपना कर्तव्य भूल जाता है तो भी स्वीकृति की सूचना पूरी हो जाती है। फिर भी, हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि डाकिये के हाथ में स्वीकृति-पत्र का अर्पण करना चिट्ठी डाक में छोड़ना नहीं है क्योंकि डाकिये का यह काम नहीं है कि वह डाकघर के लिए चिट्ठी ले।

किन्तु अगर स्वीकारक की गलती से स्वीकृति गलत पते से भेज दी जाय तो प्रस्तावक इस प्रकार की स्वीकृति के लिए बाध्य नहीं होगा तथा इस तरह की स्वीकृति उचित ढंग की नहीं समझी जायगी। उदाहरणार्थ, पते में 'प्रयाग' लिखने के बदले 'स्वीकारक अगर 'पटियाला' लिख दे तो इस गलती की वजह से प्रस्तावक जिम्मेदार न होगा। किन्तु अगर प्रस्तावक ने स्वयं गलत पता दिया है और यह पता स्वीकारक द्वारा प्रयोग में लाया जाता है, तब इस तरह की स्वीकृति नियमानुकूल

समझी जायेगी ।

स्वीकृति सूचित करने की रीतियाँ (Modes of communication of Acceptance)

स्वीकृति सूचित करने की मुख्य तीन रीतियाँ हैं—

१. कथित (Oral),
२. लिखित (Written) और
३. उपक्रम (Conduct or Action) ।

प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए स्वीकारक चाहे तो प्रस्तावक से स्वयं कह दे सकता है या उसके पास पत्र लिखकर भेज सकता है कि वह उसके प्रस्ताव को स्वीकार करता है ।

परन्तु अक्सर ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जहाँ स्वीकारक अपने कार्य से ही यह साबित कर देता है कि उसने प्रस्ताव स्वीकार किया । उदाहरणार्थ, Carbclic Smoke Ball Co. के मुकदमे को ही ले लीजिए । इसमें Carlill ने दवा खाकर ही यह साबित कर दिया कि उसने प्रस्ताव स्वीकार किया और इसी आधार पर उसे १०० पाउंड का इनाम मिला था ।

इसी तरह किसी बताये गये काम को कर देने से स्वयं ही स्वीकृति पूरी हो जाती है । यदि किसी खोये हुए लड़के का पता लगाकर लानेवाले को इनाम देने की प्रतिज्ञा (promise) हो तो उस काम को कर देने से ही प्रस्ताव स्वीकृति में परिणत हो जाता है ।

किन्नी चीज से लाभ उठाने पर भी यह कहा जायगा कि स्वीकृति हो गयी । जैसे, यदि रेलवे कम्पनी बम्बई से इलाहाबाद तक एक व्यक्ति को ले जाने के लिए बारह रुपये भाड़ा ले और कोई व्यक्ति बम्बई में रेलगाड़ी में सवार होकर इलाहाबाद तक की यात्रा करे तो वही हालत में यह कहा जायगा कि उस व्यक्ति ने रेलवे कम्पनी से यात्रा करके लाभ उठाया है । यहाँ उसकी स्वीकृति हो गयी और उसे बारह रुपये चुकाने पड़ेंगे ।

स्वीकृति का खंडन (Revocation of an Acceptance)

अंगरेजी कानून (English Law) के मुताबिक किसी भी प्रस्ताव की स्वीकृति दे देने के बाद प्रसविदा (contract) पूरी हो जाती है और यदि स्वीकृतिपत्र (acceptance letter) प्रस्तावक को नहीं भी मिला हो तब भी स्वीकारक (acceptor) उन् प्रस्ताव का खंडन नहीं कर सकता ।

परन्तु भारतीय विधान (Indian Law) के अनुसार स्वीकृति का खंडन हो सकता है और इसका खंडन उतने समय के भीतर किया जा सकता है जितना समय स्वीकृति-पत्र को प्रस्तावक के पास पहुँचने में लगेगा । अतः स्वीकारक (acceptor) अपनी स्वीकृति का खंडन तब तक कर सकता है जब तक कि यह प्रस्तावक को ज्ञानम नहीं हो जाता ।

उदाहरण—X ने अपना मकान Y के हाथ १,००० रु० पर बेचने का प्रस्ताव एक पत्र द्वारा किया । Y ने उस पत्र के जवाब में पत्र लिखकर X के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । कुछ दिनों के बाद Y ने अपनी स्वीकृति का खंडन करने के लिए तार दिया । इस उदाहरण में यदि X को पहले स्वीकृति-पत्र और बाद को

तार मिले तो स्वीकृति का खंडन नहीं होगा ।

यदि X को स्वीकृति-पत्र मिलने के पहले ही तार मिल जाय तो Y की स्वीकृति का खंडन हो जायगा और यहाँ न किसी प्रकार का अनुबन्ध (agreement) और न प्रसविदा (contract) ही हुई समझी जायगी । यहाँ उदाहरण के रूप में *Byrle vs. Van Tien Hoven*, 1880 के मुकदमे का वर्णन किया जा सकता है । इस मुकदमे की वस्तुस्थिति (facts) इस प्रकार है कि मुद्ई (plaintiff) ने वस्तु-विक्रय का प्रस्ताव मुद्दालह (defendant) के समक्ष पहली अक्टूबर को रखा । प्रस्ताव-पत्र ग्यारह अक्टूबर को मिला, फिर भी यह प्रस्ताव तार द्वारा तुरन्त स्वीकार किया गया । मुद्दालह (defendant) ने अपना प्रस्ताव ८ अक्टूबर को वापस ले लिया । किन्तु प्रस्ताव वापस ले लेने की चिट्ठी २० अक्टूबर को मिली । यहाँ न्यायालय ने फैसला दिया कि प्रस्ताव वापस लेने के पहले स्वीकृति पूरी हो चुकी थी ।

### University Questions

1. What do you understand by acceptance ? What conditions must be fulfilled to convert a proposal into a promise ?

(स्वीकृति से आप क्या समझते हैं ? प्रस्ताव को वचन में परिवर्तित करने के लिए किन-किन शर्तों की पूर्ति करनी चाहिए ?)

2. "Performance of the conditions of a proposal is an acceptance of the proposal." Comment.

("प्रस्ताव की शर्तों का निष्पादन प्रस्ताव की स्वीकृति होती है ।" विश्लेषण कीजिए ।)

3. (a) "A mere mental acceptance not evidenced by words or conduct is, in the eyes of Law, no acceptance." Comment giving examples.

(b) "There cannot be a contract to make a contract." Comment.

[(क) "केवल मानसिक स्वीकृति, जिसे शब्दों या आचरण के द्वारा प्रमाणित नहीं किया गया हो, वैधानिक दृष्टि से स्वीकृति नहीं होती है ।" उदाहरणसहित व्याख्या कीजिए ।

(ख) "अनुबन्ध करने के लिए अनुबन्ध नहीं किया जा सकता है ।" विवेचना कीजिए ।]

4. Describe how the communication of an acceptance and revocation of a proposal are made ? Explain how the communication of a proposal is complete when the parties are at a distance ?

(प्रस्ताव एवं स्वीकृति का संवहन एवं खंडन किस प्रकार किया जा सकता है ? इस बात की भी व्याख्या करें कि जब पक्षकार एक-दूसरे से दूर रहते हों तब प्रस्ताव का संवहन किस प्रकार पूरा होता है ।)

5. "Acceptance must be something more than mere mental assent." Discuss giving examples

("स्वीकृति केवल मानसिक सम्मति से कुछ और अधिक होनी चाहिए ।" उदाहरण देते हुए इस कथन की विवेचना कीजिए ।)

6. State whether there is any contract made in the following cases Give reasons for your answer—

(i) A takes his seat in a Tram Car. (ii) Ram bids at a public auction. (iii) Mohan puts Ten Paise in the slot of a weighing

machine placed at a Railway station. (iv) A minor of an aristocratic family buys a necklace for his new bride on credit. (v) On June 3rd Ram writes from Kanpur to Krishna in Calcutta, offering to sell 500 bales of cotton for Rs. 50,000. On June 7th, just after the receipt of Ram's letter, Krishna replies accepting the letter. But before the acceptance letter reached him, Ram sent a telegram to Krishna withdrawing the offer.

7. Discuss how special conditions to a contract are communicated and accepted by the parties with reference to a leading case.

---



## प्रतिफल (Consideration)

भारतीय प्रसंविदा-विधान (Indian Contract Act) की धारा १० के अनुसार किसी भी प्रसंविदा के वैध या कानूनी होने के लिए प्रतिफल का होना अत्यावश्यक है।

इसकी परिभाषा Exchequer Chamber ने १८७५ ई० में Currie vs. Misa (1875) L. R. 10 Ex. at P. 162 के मुकदमे में दी है कि—

“A valuable consideration in the sense of the Law may consist either in some right, interest, profit or benefit accruing to the one party or some forbearance, detriment, loss, responsibility given, suffered or undertaken by the other.”

“विधान की नजर में योग्य प्रतिफल वह है जिससे यदि एक पक्ष को किसी प्रकार का अधिकार, नफा या लाभ प्राप्त होता है तो दूसरे पक्ष को भी उसका उत्तर-दायित्व, घाटा या नुकसान होता है।”

भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा २ डी [Sec 2 (d)] में प्रतिफल की परिभाषा इस प्रकार है —

“When at the desire of the promisor, the promisee or any other person has done or abstained from doing or does or abstains from doing, or promises to do or to abstain from doing something, such act or abstinence or promise is called a consideration for the promise.”

“जबकि वचनदाता की इच्छा पर वचनग्राहक अथवा किसी दूसरे व्यक्ति ने किसी कार्य को किया हो या नहीं किया हो या वह कोई कार्य करता हो या नहीं करता हो या उसे करने या नहीं करने का उसने वचन दिया हो तो ऐसे कार्य का करना या नहीं करना अथवा वचन देना उस वचन का प्रतिफल कहलाता है।”

अतः हम देखते हैं कि किसी चीज को खोने या देने के बदले जो हम पाते हैं वही प्रतिफल हुआ। हरेक प्रसंविदा में दो पक्ष होते हैं और दोनों पक्ष एक-दूसरे के लिए कुछ करने या बचने का वचन देते हैं। इसलिए कहा गया है कि हरेक वचन के साथ-साथ यह आवश्यक है कि कोई प्रतिफल भी अवश्य रहे यानी वचन और प्रतिफल दोनों तरफ से तथा दोनों के लिए ही हों। उदाहरणार्थ, X Y को वचन देता है कि वह Y के हाथ अपनी मोटर १०,००० रु० में बेच देगा। ऐसी स्थिति में Y का १०,००० रु० देने का वचन देना X के मोटर बेचने के वचन का प्रतिफल है और X के मोटर बेचने का वचन Y के १०,००० रु० अदा करने का प्रतिफल है। यह प्रतिफल वैधानिक रूप से ठीक है।

‘प्रतिफल’ पारिभाषिक (technical) शब्द है, इसलिए इसे समझाते हुए लोगों ने कहा है कि यह Quid Pro Quo (Something in return—एक के बदले में कुछ पाने) के अभिप्राय में प्रयुक्त होता है। अतः इसे वचनदाता के लिए लाभदायक

अथवा वचनप्राप्तक (Promisee) के लिए अहितकर अथवा दोनों ही होना चाहिये। किन्तु कभी-कभी यह पता लगाना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि वचनदाता को लाभ हो रहा है अथवा नहीं तथा वचनप्राप्तक का अहित हो रहा है अथवा नहीं। अतः इसी कारण यह कहा गया है कि प्रतिफल का सिद्धान्त एकमात्र टेक्निकलिटी (technicality) ही है।

**उदाहरण—**A B के समक्ष एक प्रस्ताव रखता है तथा इस प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए एक हफ्ते तक रुकने का वचन देता है। B कहता है अगर आप ऐसा करे तो मैं बहुत ही खुश होऊँगा। यहाँ प्रतिफल के अभाव में कोई प्रसविदा नहीं हुई। किन्तु अगर B A से प्रतिज्ञा करने के बदले कुछ धन देने का वादा करे और A इसे स्वीकार कर ले तो यह प्रसविदा का रूप धारण कर लेगा। इस नियम को और भी साफ-साफ समझने के लिए एक-दो निर्णीत अभियोग (decided cases) हम पेश कर रहे हैं।

पहला मुकदमा है **अब्दुल अजीज बनाम मज्जुम अली\***। इसकी वस्तुस्थिति (facts) इस प्रकार है कि एक व्यक्ति ने एक मसजिद-समिति (Mosque Committee) के सेक्रेटरी को मसजिद के नाम ५०० रु० चन्दा देने का जवानी वचन दिया। फिर बाद में इसे देने से इन्कार कर दिया। इसपर मसजिद-समिति के सेक्रेटरी ने उस व्यक्ति पर मुकदमा किया। न्यायालय से यह फैसला हुआ कि “चूँकि जिस व्यक्ति ने ५०० रु० देने की प्रतिज्ञा की वह अपनी प्रतिज्ञा के बदले कुछ पाता नहीं है तथा सेक्रेटरी को उस व्यक्ति का वादा पाने के लिए किसी प्रकार की क्षति भी नहीं होती है, अतः ऐसी प्रतिज्ञा प्रतिफल न रहने के कारण बाध्य नहीं हो सकती।”

इसी तरह का दूसरा मुकदमा **केदारनाथ बनाम गोरी मुहम्मद** का है।<sup>†</sup> इसकी वस्तुस्थिति (facts) इस प्रकार है कि गोरी मुहम्मद ने हाबड़ा टाउन-हाल (Howrah Town Hall) के निर्माण के लिए १०० रु० दान देने का वचन दिया था। सेक्रेटरी ने इस व्यक्ति के वचन पर विश्वास कर भवन-निर्माण के लिए १०० रु० की देनदारी—सामान वगैरह खरीदकर तथा ठेकेदारों को नियुक्त कर—कर ली। रुपया न पाने पर सेक्रेटरी ने उस रुपये के लिए मुकदमा किया। न्यायालय ने यह फैसला दिया कि यद्यपि इस मुकदमे में वचनदाता को कोई लाभ नहीं हो रहा है तो भी यहाँ प्रतिफल का अभाव नहीं है, क्योंकि सेक्रेटरी ने उस व्यक्ति की प्रतिज्ञा पर विश्वास रखकर उतने की देनदारी कर ली थी।

### प्रतिफल के भेद (Kinds of Consideration) :

प्रतिफल की परिभाषा से यह साफ जाहिर होता है कि प्रतिफल तीन प्रकार का होता है—

१. वर्त्तमान (Present or Executed)
२. भविष्यत् (Future or Executory)
३. भूत (Past)

**वर्त्तमान प्रतिफल (Present or Executed Consideration)**—वर्त्तमान प्रतिफल तब कहा जाता है जब दो पक्षों में से एक पक्ष केवल दूसरे पक्ष के ऊपर उसके दायित्व को छोड़कर प्रस्ताव की स्वीकृति द्वारा सभी कार्य—जो वह प्रसविदा के अन्तर्गत

\* Abdul Aziz vs. Mazzum Ali (1914) 36 All. 268.

† Kedar Nath vs. Gori Mohammad (1886) 14 Cal. 64.

करने के लिए बाध्य है—कर चुका है। अतः प्रसंविदा करने के समय तुरत ही कार्य का करना वर्तमान प्रतिफल कहलाता है।\* जैसे, A B से कहता है कि अगर वह (B) कलकत्ते से दमदम तक दौड़ जाय तो उसे वह दस रुपये देगा। A के वचन के लिए यह १० रु० तब तक प्रतिफल नहीं होगा जब तक कि B सचमुच कलकत्ते से दौड़कर दमदम (Dum-Dum) चला नहीं जाय। सिर्फ वचन को स्वीकार कर लेने से ही B प्रतिफल का भागी नहीं होगा। लेकिन अगर B दौड़ जायगा तब A की प्रतिज्ञा वर्तमान प्रतिफल होगी।

**भविष्यत् प्रतिफल (Future or Executory Consideration)**—किसी वचन के बदले किसी कार्य को भविष्य में करने का वचन भविष्यत् प्रतिफल कहा जाता है। उदाहरण—A B से कहता है कि तुम अपनी गाय मुझे दे दो तो तुम्हें २५० रु० दूंगा। B इसपर गाय देने का वचन देता है। यहाँ एक-दूसरे का वचन आपस में एक-दूसरे के लिए भविष्यत् प्रतिफल हुआ।

**भूत प्रतिफल (Past Consideration)**—भूतकाल में किये गये कार्य के बदले यदि कोई वचन (Promise) दिया जाय तो वह किया गया कार्य भूत प्रतिफल कहलायगा। इसमें प्रस्ताव होने के पहले ही कार्य पूर्णरूपेण (completely) हो जाता है। उदाहरणार्थ—यदि B पिछले सप्ताह कलकत्ते से दमदम (Dum-Dum) दौड़ गया था और A उसे १० रु० देने का वादा आज करे तो B के दौड़ने का काम और A का रुपया देने का वादा भूत प्रतिफल (Past Consideration) होगा।

अंगरेजी विधान (English Law) के अनुसार भूत प्रतिफल कानून की नजर में मान्य नहीं होता है (Past Consideration is no Consideration)। इसका मूल सिद्धान्त है कि एक व्यक्ति कोई ऐसा कार्य भूतकाल में दूसरे के लिए कर चुके जिससे कि दूसरे व्यक्ति को किसी प्रकार की अति या हानि नहीं हो। यदि दूसरा व्यक्ति बाद में पहले व्यक्ति के कार्य को सराहता है तो वह ऐसा कर सकता है; जैसा कि धर्मार्थ के बारे में होता है। किन्तु इस प्रकार के वादे से वचनदाता बाध्य नहीं होता। इसके दो अपवाद हैं जहाँ भूत प्रतिफल मान्य है—

१. यदि वचनप्रापक ने भूतकाल में स्पष्ट रूप से (expressly) या आचक्षण से (impliedly) उस व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य को करने का अनुरोध किया है।

२. जब वह पक्ष जो लिमिटेशन कानून (Law of Limitation) या किसी दूसरे कानून के कारण अवधिविरुद्ध (time-barred) ऋण का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं है तो भी एक ऋण के भुगतान के लिए एक लिखित वचन देता हो।

**प्रतिफल के कुछ नियम (Certain Rules regarding Consideration) :**

सन्निधिम के अन्दर प्रतिफल के कुछ नियम इस प्रकार दिये गये हैं—

१. प्रतिफल का पर्याप्त होना जरूरी नहीं है— इसका मतलब है कि न्यायालय इस बात की जाँच-पड़ताल नहीं करने जायगा कि जो काम किया गया है

\* Executed Contract means a contract performed wholly on one side, while an executory contract is one which is either wholly performed or in which there remains something to be done on both sides.

† Consideration need not be adequate.

या जिसे करने के लिए वादा किया गया है या किया जा रहा है, वह दिष्ट प्रतिफल के बराबर है या नहीं।

**उदाहरण**—अगर A B के पुराने टिकट (old stamp) के लिए १००० पौड देने का वचन देता है तब बाद में वह यह नहीं कह सकता कि उस पुराने टिकट का दाम प्रतिज्ञापित रुपये से बहुत कम है।

२. **प्रतिफल वास्तविकतापूर्ण हो, न कि हवाई किला**—जैसे, A B से वादा करता है कि अगर तुम मुझ चाँद (moon) के पास ले चलोगे तो मैं तुम्हें १००० पौड दूँगा। यहाँ प्रतिफल अपर्याप्त और हास्यास्पद है, क्योंकि B का कार्य असम्भव है।

३. **प्रतिफल गैरकानूनी नहीं होना चाहिए**—भारतीय प्रसविदा विधान की धारा २३ के अनुसार जब किसी सविदा का प्रतिफल गैरकानूनी होता है तो ऐसी सविदा व्यर्थ तथा अप्रवर्तनीय होती है। साथ ही किसी प्रसविदा का प्रतिफल गैरकानूनी होता है तो प्रसविदा के भंग होने से होनेवाली क्षति के लिए अभियोग नहीं चलाया जा सकता।

धारा २३ के अनुसार निम्नलिखित प्रतिफल गैरकानूनी (illegal) समझे जाते हैं—

(क) अगर कोई प्रतिफल कानून द्वारा विवर्जित हो (is forbidden by Law);

(ख) अगर प्रतिफल कपटमय हो (is fraudulent);

(ग) अगर प्रतिफल हानिप्रद हो (involves or implies injury to the person),

(घ) अगर प्रतिफल व्यभिचार के लिए हो अथवा लोकनीति के विरुद्ध हो (if it is immoral or opposed to public policy)।

(ङ) **प्रतिफल भूतकालीन न हो**—पहले बताया जा चुका है कि सिर्फ दो अपवादों के अलावा अंगरेजी विधान में भूत प्रतिफल का कोई स्थान नहीं है।

(च) **प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर दिया जाना आवश्यक है**\*—यह नियम एक कहावत (maxim) द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—“प्रसविदा के प्रतिफल के लिए कोई अपरिचित आदमी मुकदमा नहीं कर सकता।”†  
**उदाहरणार्थ**, A ने C को रुपया देने के लिए B के प्रतिफल का, जिसने मकान बनाने के लिए वादा किया है, रुपया देने का वचन दिया। B मकान बनाता है और अगर A रुपया नहीं देता है तो C मुकदमा नहीं कर सकता, क्योंकि C ने न तो काम किया है, न उसे इस प्रसविदा से कुछ नुकसान ही हुआ है और न A के वचन के बदले उसने कुछ काम करने का वचन ही दिया था।

अंगरेजी सन्निधम के अनुसार प्रतिफल वचनप्रापक (promisee) की तरफ से होना चाहिए। अतः इंग्लैण्ड में प्रतिफल से अपरिचित (stranger to consideration) व्यक्ति मुकदमा नहीं कर सकता। किन्तु भारत में वचनदाता की इच्छा

\* Consideration must be real and not sham.

† Consideration must not be illegal.

‡ Consideration must not be past.

\*\*\* Consideration must move from the Promisee, i. e., Consideration must move from the party entitled to sue on the contract

\*† No stranger to the consideration can sue on contract

या प्रार्थना पर ही प्रतिफल होना चाहिए। अतः भारत में चिनाया बनाम रमैया\* के मुकदमे के अनुसार वचनप्रापक अथवा किसी दूसरे व्यक्ति की तरफ से भी प्रतिफल हो सकता है, जिस प्रकार भारत में प्रतिफल से अपरिचित व्यक्ति द्वारा भी प्रतिफल के आधार पर मुकदमा चलाया जा सकता है। किन्तु भारत तथा इंग्लैण्ड, दोनों जगहों में किसी प्रसंविदा से अपरिचित (stranger to a contract) व्यक्ति इस प्रसंविदा के आधार पर मुकदमा नहीं चला सकता है। फिर भी ट्रस्ट (Trust) की प्रसंविदा में 'बेनिफीशियरी' (beneficiary) अपने अधिकार के लिए मुकदमा कर सकता है। उदाहरणार्थ, Khwaja Muhammad vs. Husaini Begum (1910) 32 All 410 के मुकदमे को लिया जा सकता है। यहाँ एक मुसलमान महिला ने 'खर्चा पानदान' (नाम नपका या दैनमोहर) का १५,००० रु० वसूल करने के लिए अपने ससुर (Father-in-Law) पर मुकदमा चलाया था। इस महिला को 'खर्चा पानदान' के रुपये मिलने की प्रसंविदा इसके पिता तथा ख्वाजा मुहम्मद के बीच इसकी शादी ख्वाजा मुहम्मद के लड़के के साथ होने के पहले हुई थी। अतः 'खर्चा पानदान' के रुपये इसकी शादी ख्वाजा मुहम्मद के लड़के के साथ होने के प्रतिफल में मिलना चाहिए था। शादी के वक्त यह महिला तथा इसका पति ख्वाजा का लड़का दोनों नाबालिग थे। प्रीवी-कौंसिल (Privy Council) ने ख्वाजा को 'खर्चा पानदान' के रुपए के लिए दायी ठहराया, यद्यपि ख्वाजा ने यह तर्क किया कि महिला प्रसंविदा से बिल्कुल अपरिचित थी तथा वह इस प्रसंविदा का कोई पक्ष नहीं थी।

(छ) 'कुछ प्रतिफल' अवश्य होना चाहिए [There must be some consideration ('something')]-प्रतिफल की परिभाषा के अनुसार प्रतिफल के अन्दर 'कुछ प्रतिफल' का होना आवश्यक है।

भारत में धारा २५ के अपवाद के अनुसार कुछ प्रसंविदाएँ बिना प्रतिफल के भी मान्य (valid) हो सकती हैं। किन्तु इंग्लैण्ड में बिना उचित प्रतिफल के कोई भी प्रसंविदा—जो किसी वसीका (Deed) द्वारा न की गयी हो—व्यर्थ होती है। साथ ही हमें यह भी याद रहना चाहिए कि अगर कोई व्यक्ति ऐसा करता है—जो वह वैधानिक रूप में करने के लिए बाध्य है—तो यह प्रतिफल न होगा। अतः अँगरेजी सन्निधम के अनुसार अगर जॉन (John) ने विलियम (William) से ५० पौंड कर्ज लिया था और अब वह केवल ४५ पौंड ही देता है और विलियम से ५० पौंड की रसीद ले लेता है तो विलियम रसीद देने के बावजूद ५ पौंड के लिए जॉन पर मुकदमा चला सकता है तथा रुपया वसूल सकता है।

किन्तु भारत में भारतीय प्रसंविदा-अधिनियम की धारा ६ के अनुसार कोई भी व्यक्ति वचनदाता (Promisor) को बिना किसी प्रतिफल के पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से (in part) किसी दायित्व से मुक्त कर सकता है। अतः भारत में जहाँ वचन-प्रापक ऋण का एक भाग या पूरा ही ऋण छोड़ देता है तो यह वैध होगा। इंग्लैण्ड में इसे वेवर (Waiver) कहते हैं तथा इंग्लैण्ड में यह तभी मान्य होगा जब इसके प्रतिफल में कुछ दिया जाय अथवा यह वसीका (Deed) के रूप में हो तथा इसपर कचहरी की मुरह लगी हुई हो।

भारत में भूत प्रतिफल (past consideration) एक उत्तम प्रतिफल समझा जाता है, पर इंग्लैण्ड में ऊपर के दो अपवादों को छोड़ वह मान्य नहीं माना जाता।

है। इस नियम को हम *Sindhi vs. Abraham* के मुकदमे में देख सकते हैं। मुद्दा ने मुद्दालह के आग्रह पर उसकी नाबालिग अवस्था में उसकी देखरेख की और उसकी देखरेख वह आग्रह करने पर बालिग-अवस्था में भी करता गया। अब प्रश्न यह उठता है कि इस तरह की देखरेख के लिए मुद्दालह को पूरा रूपया बालिग और नाबालिग अवस्था का मिलेगा अथवा नहीं। इसपर न्यायालय से यह फैसला हुआ कि यह भूतकाल की देखरेख की भी संविदा जयज है और उसे वह रूपया भी मिलना चाहिए।

### प्रतिफल की अनुपस्थिति का प्रसंविदा पर प्रभाव (Effects of Contract without Consideration)

साधारणतः बिना प्रतिफल की कोई भी प्रसंविदा मान्य नहीं समझी जाती है। इसलिए हर एक प्रसंविदा में प्रतिफल का होना बहुत जरूरी है; क्योंकि बिना प्रतिफल की प्रसंविदा जुए (gambling) की प्रसंविदा समझी जाती है जो विवर्जित (void) है।

किन्तु विधान के कुछ अपवाद (exceptions) भी हैं जो भारतीय विधान की धारा २५ में दिये गये हैं जिनमें यदि प्रतिफल न भी रहे तो भी प्रसंविदा वैज्ञानिक दृष्टि से मान्य (lawful) होती है तथा उस प्रसंविदा पर प्रतिफल की अनुपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपवाद निम्नलिखित हैं—

१. यदि कोई समझौता या प्रतिज्ञा नजदीकी सम्बन्धियों में स्वाभाविक प्रेम और स्नेह (Promise on account of natural love and affection) होने के कारण की गयी है तथा वह समझौता लिखित हो और समय के नियम के अनुसार उस दस्तावेज (document) की रजिस्ट्री करा दी गयी हो।

उदाहरण—X अपने लडके Y को स्वाभाविक प्रेम और स्नेह के कारण ५,००० रु० देने का वादा करता है जिसे वह लिखकर रजिस्ट्री करा लेता है। यह प्रसंविदा मान्य है।

इसका दूसरा उदाहरण एक निर्णय किये गये मुकदमे से जिसका नाम *Mrs. X vs. Mr. X* 98 I. C. 217. है, लिया जा सकता है। इसकी वस्तुस्थिति इस प्रकार है कि Mr. X ने अपनी स्त्री को उसके निर्वाह की सामग्री का वचन दिया। बाद किसी कारण से वह उसे सामग्री नहीं दे सका। अब Mrs. X के मुकदमा लाने पर न्यायालय ने यह फैसला दिया कि यह समझौता मान्य नहीं है, क्योंकि इसमें स्वाभाविक प्रेम और स्नेह नहीं था। यह लिखित और रजिस्टर्ड भी नहीं था।

२. स्वेच्छा से किये गये कार्य की क्षतिपूर्ति के लिए वचन (Promise to compensate for voluntary services)—यदि यह ऐसे व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करने का वचन है जिससे भूतकाल में वचनदाता की भलाई के लिए स्वेच्छा से कुछ किया गया है।

उदाहरण—(क) X Y का रास्ते में गिरा हुआ मनीबैग (Purse) पाकर Y को देता है। इसपर Y यह प्रतिज्ञा करता है कि वह X को २० रु० देगा। यह मान्य (lawful) प्रसंविदा हुई।

(ख) राम श्याम की लडकी को मोटर से धक्का लगने से बचा लेता है। इसपर श्याम राम को १०० रु० देने का वादा करता है। यह मान्य प्रसंविदा है।

३. ऐसी स्थिति में जहाँ वचनप्रापक को वैधानिक दृष्टि से वचन देना अनिवार्य था (Any act legally compelled to do)।

उदाहरण — (क) X, Y के छोटे बच्चे का पालनपोषण करता है। इसके लिए Y वादा करता है कि वह X को इस प्रकार के समस्त व्यय अदा करेगा जो लालनपालन में लगेंगे। यह मान्य प्रसविदा है।

(ख) X अमेरिका जाने के समय अपने घोड़े को Y को रखने के लिए देता है। Y उस घोड़े को खिलाने-पिलाने का सारा व्यय बर्दाश्त करता है। X इस व्यय को चुका देने का वादा करता है। यह मान्य (valid) प्रसविदा होगी, क्योंकि वैधानिक दृष्टि से भी X का कर्तव्य हो जाता है कि Y ने उसके घोड़े के लिए जो-कुछ व्ययित किया है उसे वह पूरा करे।

४. अवधि-आक्रान्त ऋण के भुगतान का वचन (Promise to pay a Time-barred Debt) — जब प्रसविदा में अवधि-आक्रान्त ऋण (Time-barred Debt) के भुगतान का वचन हो तथा वचन लिखित एवं वचनदाता द्वारा अथवा उसके अधिकृत एजेंट (Authorised Agent) द्वारा हस्ताक्षरित (Signed) हो, तो भारतीय अवधि-निर्धारण-विधान (Indian Limitation Act) की धारा १९ और २० के अनुसार निश्चित अवधि (due date) बीत जाने के बाद ऋणी (Debtor) से कर्ज की रकम वसूल नहीं कर सकता। परन्तु इस कानून के अनुसार यदि ऋणी या उसका एजेंट फिर से उस ऋण को लेने का वादा लिखकर करे तो ऋणदाता पहली निश्चित अवधि बीत जाने के बाद भी कर्ज वसूल कर सकता है, यद्यपि इस प्रकार का वादा बिना किसी प्रतिफल के हुआ है।

उदाहरण — X ने ५,००० रु० Y से कर्ज लिया था जो अवधि-आक्रान्त (Time-barred) हो गया है। इसके बावजूद X उस ऋण को चुका देने की प्रतिज्ञा लिखकर और उसपर हस्ताक्षर कर Y को दे देता है। यह मान्य प्रसविदा होगी।

५. एजेंसी का अपवाद : एजेंट की नियुक्ति का वचन (Promise to appoint an Agent) — भारतीय प्रसविदा-विधान की धारा १८५ के अनुसार एजेंसी की नियुक्ति की प्रसविदा (contract of agency) बिना प्रतिफल (consideration) के भी मान्य (valid) प्रसविदा हो सकती है (No consideration is necessary to create an agency)।

६. साथ ही, जहाँ तक दाता (Donor) तथा दानप्रापक (Donee) का सम्बन्ध है, दान (Gift) में प्रतिफल का होना कोई जरूरी नहीं है; अगर किसी व्यक्ति ने सम्पत्ति-अंतरण-सन्निधम, १८८२ के अनुसार लिखित एवं पंजीकृत पत्र द्वारा किसी सम्पत्ति का किसी व्यक्ति अथवा संस्था को दान कर दिया है।

### अपर्याप्त प्रतिफल (Inadequate Consideration)

धारा २५ के मुताबिक कोई भी प्रसविदा सिर्फ अपर्याप्त प्रतिफल होने की वजह से अमान्य नहीं होगी, अगर वचनदाता ने स्वतन्त्र सहमति दी है, किन्तु न्यायालय यह निश्चित करते समय कि वचनदाता की सहमति स्वतन्त्र रूप से दी गयी थी या नहीं, प्रतिफल की अपर्याप्तता को भी विचार में रख सकता है।

उदाहरणार्थ — (क) अगर A अपना ₹०,००० रुपये का मकान १०० रु० में

बेचने की प्रसंविदा करता है। A ने प्रसंविदा के लिए स्वतन्त्र सहमति दी है। अपर्याप्त प्रतिफल होने पर भी यह प्रसंविदा पूरी तरह समझौता है।

(ख) अगर A १०,००० रुपये का मकान १०० रु० में बेचने की प्रसंविदा करता है। A इस बात से कि प्रसंविदा में उसकी स्वतन्त्र सहमति थी मना करता है। प्रतिफल का अपर्याप्त होना एक ऐसा तथ्य है जिसपर न्यायालय को यह निर्णय करते समय कि A की सहमति स्वतन्त्र रूप से प्रदान की गयी थी या नहीं, विचार करना चाहिए।

इंगलिश सन्नियम के मुताबिक भी प्रतिफल का पर्याप्त होना कोई जरूरी नहीं है। इसका मतलब यह है कि कचहरी यह नहीं देखेगी कि किसी खास मामले में प्रतिफल वचन के मूल्य के बराबर है या नहीं। कम प्रतिफल भी पर्याप्त है, लेकिन 'न्यायालय के विचार में उसकी कुछ कीमत' (Some value in the eye of law) होना जरूरी है।

### भारतीय तथा इंगलिश सन्नियम में प्रतिफल के सम्बन्ध में अन्तर (Difference between Indian and English Law as to Consideration)

१. भारतीय सन्नियम के अनुसार, धारा २५ में लिखे गये अपवादों को छोड़कर, हर एक समझौते के लिए प्रतिफल का होना जरूरी है, क्योंकि बिना प्रतिफल के कोई भी समझौता सही नहीं है। इंगलिश सन्नियम के अनुसार हर एक 'साधारण समझौता' प्रतिफल के आधार पर ही होना चाहिए, किन्तु 'कुछ समझौते' बिना प्रतिफल के भी वैध है।

२. भारतीय सन्नियम के अनुसार, प्रतिफल, अगर वचनदाता की इच्छा के आधार पर है, वचनग्रहीता की तरफ से अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से भी हो सकता है; लेकिन इंगलिश सन्नियम के अनुसार, प्रतिफल खुद ही वचनग्रहीता की ही ओर से सम्पन्न होना चाहिए, अर्थात् प्रतिफल उसी पक्षकार की तरफ से होना चाहिए जिसे अनुबन्ध के सम्बन्ध में दावा करने का अधिकार है। उदाहरणार्थ — A कुछ रुपया B द्वारा एक मकान C के लिए बना देने के वचन के प्रतिफल में देना का वचन देता है। B मकान बना देता है। इंगलिश सन्नियम के मुताबिक C A पर उसके वचन के लिए दावा नहीं कर सकता, क्योंकि C की स्वयं की ओर से कोई प्रतिफल नहीं है। C ने न तो कोई काम किया है, न कोई हानि उठायी है और न C ने वचन के बदले में कोई वचन दिया है। लेकिन भारतीय सन्नियम से वह दावा कर सकता है।

३. भारतीय सन्नियम के अनुसार, प्रतिफल भूत अथवा वर्तमान अथवा भावी हो सकता है लेकिन इंगलिश सन्नियम भूत प्रतिफल को कबूल ही नहीं करता। उसका विचार है 'भूत प्रतिफल' बाद में किये हुए वचन के लिए पर्याप्त नहीं है। भारतीय सन्नियम में 'भूत प्रतिफल' भी अनुबन्ध के लिए पर्याप्त प्रतिफल है, अगर वह वचनदाता की इच्छा पर किया गया था।

४. भारतीय सन्नियम के अनुसार, सिर्फ अपर्याप्त प्रतिफल होने की वजह से कोई समझौता अमान्य नहीं होता, लेकिन न्यायालय, यह निश्चित करते समय कि वचनदाता की सहमति स्वतन्त्र रूप से दी गयी थी या नहीं, प्रतिफल की अपर्याप्तता का विचार कर सकता है। इंगलिश सन्नियम के अनुसार भी प्रतिफल पर्याप्त होना कोई जरूरी नहीं है लेकिन 'न्यायालय के विचार में प्रतिफल का कुछ मूल्य' अवश्य



होना चाहिए । उदाहरणार्थ—X Y को एक पुरानी टिकट के प्रतिफल में १०० रु० देने का वचन देता है । Y द्वारा दावा करने पर X यह नहीं कह सकता कि टिकट वस्तुतः कम मूल्य का था ।

### University Questions

1. Define 'Consideration'. State the exceptions to the rule that an agreement without consideration is void.

‘प्रतिफल’ की परिभाषा दीजिए । बिना प्रतिफल के एक अनुबन्ध व्यर्थ होता है, इस नियम के अपवादों का वर्णन कीजिए ।

2. Define 'Consideration'. State the cases in which consideration is dispensed with

‘प्रतिफल’ की परिभाषा दीजिए । उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनमें प्रतिफल का त्याग किया गया है ।

Or, Define 'Consideration'. Mention the cases in which consideration is not needed.

‘प्रतिफल’ की परिभाषा दीजिए । उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जब प्रतिफल की आवश्यकता नहीं होती ।

3. Define 'Consideration'. Is the existence of Consideration essential for the validity of Contracts ?

‘प्रतिफल’ की परिभाषा दीजिए । क्या प्रतिफल का विद्यमान होना एक वैध प्रसविदा के लिए आवश्यक है ?

4. Explain, what is meant by 'Consideration'. 'Consideration may move from the promisee or somebody else'. Discuss.

‘प्रतिफल’ का क्या अर्थ है, इसकी व्याख्या कीजिए । ‘प्रतिफल वचनग्रहीता अथवा किसी दूसरे व्यक्ति की तरफ से हो सकता है ।’ इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

5. Explain 'Consideration' as an element in a valid Contract.. State the exceptions to the rule that 'an agreement without consideration is void'.

वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व के रूप में ‘प्रतिफल’ की व्याख्या कीजिए । ‘बिना प्रतिफल का एक समझौता विवर्जित होता है,’ इस नियम के अपवादों का वर्णन कीजिए ।

6. 'Consideration need not be adequate, but must be real'. Comment on this statement with reference to the Indian Contract Act.

‘प्रतिफल का पर्याप्त होना कोई आवश्यक नहीं, किन्तु वास्तविक होना आवश्यक है ।’ भारतीय प्रसविदा-सन्धिनियम का निर्देश देते हुए इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

7. What agreements are contracts though made without consideration ? Does an agreement become void merely because the consideration is inadequate ? Give reasons.

वे कौन-से अनुबन्ध प्रसविदा होते हैं, जो बिना प्रतिफल के किये गये हैं ? क्या केवल प्रतिफल के अपर्याप्त होने के कारण ही एक समझौता विवर्जित हो जाता है ? कारण बतावें ।

8. 'A Promise without Consideration is a gift, one made for Consideration is a bargain.'—(Salmond and Winfield) Comment.

‘प्रतिफल के बिना दिया गया वचन एक उपहार होता है और प्रतिफल के बदले जो वचन दिया जाता है वह एक वैध व्यवहार होता है।’—सालमण्ड एण्ड विन्कील्ड। उपर्युक्त कथन की आलोचना कीजिए।

9. ‘The legal effects of a Contract are confined to the contracting parties’. Comment.

‘अनुबंध का वैधानिक प्रभाव केवल अनुबन्ध करनेवाले पक्षकारों तक सीमित रहता है।’ आलोचना कीजिए।

10. Discuss the following with reference to both English and Indian Law—

(a) Consideration may be executory or executed; it must not be past.

(b) Can an agreement be valid without Consideration ?

(c) Consideration need not be adequate to the promise but must be of some value in the eye of Law.

(d) ‘A Past Consideration is no Consideration.’ Discuss with reference to both English or Indian Law.

11. Discuss the following **Problems**—

(i) A writes a letter to B, his son, wherein he promises to pay Rs. 10,000 to the latter without any consideration and on account of natural love and affection. Can B enforce the contract ? [Raj. 1952]

[उत्तर—यहाँ B अनुबन्ध को लागू नहीं कर सकता क्योंकि यह रजिस्टर्ड नहीं है। Sec 25]

(ii) A promises to drop a prosecution which he has instituted against B, and B promises to restore the value of things. Can A enforce this promise ? If so, give reasons. [Raj. 1953]

[उत्तर—Sec. 23—यह opposed to public policy है और void है इसलिए A enforce नहीं कर सकता।]

(iii) A saves B's property from fire. Is A entitled to compensation ? [Bihar 1953]

(iv) A writes to B, ‘At the risk of your own life you saved me from a serious motor accident. I promise to pay you Rs. 1,000.’ A does not pay. Advise the parties.

[उत्तर—Sec. 25 (b) के अनुसार B को A के वचन को कानूनी ढंग से लागू कराने का अधिकार है।]

Or, X, a beneficiary of trust, enters into an agreement to give away part of the property covered by the trust to the trustee in consideration for the services rendered by him. Examine the validity of the agreement. [Luck. 1954]

[उत्तर—Sec. 25 (b) के अनुसार सही प्रसविदा है।]

(v) H promises a subscription of Rs 10,000 to the Gandhi Memorial Fund. He does not pay. Is there any remedy in a court of law ?

[उत्तर—Abdul Aziz vs. Mazum Ali के मुकदमे के अनुसार का A वचन न्यायालय से लागू नहीं कराया जा सकता।]

(vi) The Lucknow Nagrik Sangh decided to raise subscriptions for the relief of flood stricken people. With this idea, some represen-

tatives of the Sangh approached Seth Bihari Lal who promised to donate Rs 1,000 for the purpose. Relying on the promise, the Sangh got milk worth Rs. 100, flour worth Rs. 250 and kerosine oil worth Rs. 25, distributed among the flood-stricken people. However, on the advice of Mrs. Behari Lal, Seth Behari Lal refused to fulfil his promise. Discuss the legal rights of the Lucknow Nagrik Sangh.

[Luck. 1959, All India 1962]

[उत्तर—लखनऊ नागरिक संघ सेठ बिहारीलाल के वचन को कानूनी ढंग से लागू करा सकता है। Kedar nath vs. Gauri Mohammad के आधार पर।]

(vii) A finds B's purse and gives it to him. B promises to give A Rs. 50. Can A recover the amount ?

[उत्तर—Sec. 25 के अनुसार A B से ५० रु० वसूल कर सकता है।

[Yes, Sec. 25 (c)]

(viii) A agrees with B to sell a house worth Rs. 10,000 for Rs. 10. A does not sell. Can B bring an action against A in the Court. Advise B.

[Ans.—The agreement is a contract notwithstanding the inadequacy of the consideration. Sec. 25 (f)]

(ix) A promised to give B Rs. 500 as a birth day present on B's birth day. A failed to fulfil his promise. B wants to file a suit against A for the realisation of the amount. Advise B.

[उत्तर—A के वचन को कानूनी ढंग से लागू नहीं कराया जा सकता।

Sec. 25]

(x) G owes D Rs. 5,000 but the debt is barred by the Limitation Act. C signs a written promise to pay D Rs. 2,500 on account of the debt.

[This is a contract. Sec. 25 (e)]

(xi) A, being in want of money, sells B for Rs. 100 a picture that is worth Rs. 500. Can A afterwards set aside the sale on the ground of inadequacy of consideration ?

[Agra 1939]

[उत्तर—यहाँ A सिर्फ प्रतिफल के अपर्याप्त होने के आधार पर ही अनुबन्ध को रद्द नहीं कर सकता।]

Or, A, being in dire need of money, sells his new car purchased two months ago at a cost of Rs. 8,000 for Rs. 1,000. Afterwards seeks to set aside the contract on the ground of inadequacy of consideration. Can he succeed ?

[उत्तर—इसमें भी A केवल प्रतिफल के अपर्याप्त होने के आधार पर ही प्रसविदा को रद्द नहीं कर सकता।]

(xii) A sells 5 bighas of land in Allahabad for Rs. 5 to B. Is this Contract a valid one ? A decides to have it aside. Can he do so ? If so, under what circumstances ?

[उत्तर—Sec. 25 (2) के अनुसार A इस अनुबन्ध को तभी रद्द कर सकता है जब वह न्यायालय में यह सिद्ध कर दे कि उसने स्वतन्त्र सहमति नहीं दी थी।]

## पक्षों को प्रसंविदा करने के योग्य होना चाहिए (The parties must be competent to contract)

(धाराएँ ११-१२)

भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा ११ के मुताबिक “प्रत्येक वह व्यक्ति प्रसंविदा-योग्य बताया गया है जो अपने देश के विधान के अनुसार बालिग (major) हो और उसका दिमाग ठीक हो तथा उसपर लागू होनेवाले किसी विधान के अनुसार प्रसंविदा करने के अयोग्य न घोषित किया गया हो।”\*

इस परिभाषा के अनुसार उन व्यक्तियों को, जो प्रसंविदा के अयोग्य हैं, दो भागों में बाँट सकते हैं—

१. वे व्यक्ति जो दिमागी कमजोरी के कारण प्रसंविदा के तथ्य को ठीक-ठीक समझ नहीं सकते, यथा—

- (a) बच्चे या नाबालिग (Infants or Minors),
- (b) उन्मत्त या पागल (Lunatics),
- (c) मूर्ख या निबुद्धि (Idiots),
- (d) शराबी या बेसुध (Drunken or Delirious Person)।

२ स्थिति (states) जो अन्य व्यक्तियों से प्रसंविदा करने की योग्यता पर प्रभाव डालती है, यथा—

- (a) विदेशी सम्राट्, राजदूत तथा उनके प्रतिनिधि (Foreign Sovereigns, Ambassadors and Representatives),
- (b) विदेशी शत्रु (Alien Enemy),
- (c) व्यावसायिक व्यक्ति: जैसे, डॉक्टर और बैरिस्टर (Professional persons like Physicians & Barristers),
- (d) कम्पनी (Corporation),
- (e) विवाहित स्त्री (Married Women),
- (f) कैदी या कारावासी (Convicts)।

### नाबालिग या बच्चे की प्रसंविदा (Contracts by a Minor or Infant)

भारतीय बालिग-विधान, १८७५ (Indian Majority Act, 1875) की धारा ३ के अनुसार भारत में वे सभी व्यक्ति नाबालिग हैं जिनकी उम्र १८

\* “Every person is competent to contract who is of the age of majority according to the law to which he is subject and who is of sound mind and is not disqualified from contracting by any law to which he is subject.” [Sec 11]

वर्ष से कम हो। जिस दिन वे १८ वर्ष के होंगे उसी दिन से वे बालिग माने जायेंगे। परन्तु कुछ लड़के इस प्रकार के भी होते हैं जिनके लिए न्यायालय (Court) के द्वारा एक संरक्षक (Guardian) नियुक्त कर दिया जाता है। यही संरक्षक वैसे लड़के की सम्पत्ति की देखभाल करता है। या कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लड़के की सम्पत्ति की देखभाल कोर्ट-ऑफ-वार्ड्स (Court of Wards) स्वयं करता है। इन हालतों के लिए लड़का जब २१ साल का हो जाता है तब वह बालिग कहा जाता है। अँगरेजी विधान (English Law) के द्वारा लड़का २१ साल का होने पर बालिग माना जाता है।

१. भारतवर्ष में नाबालिग के साथ की गयी प्रसंविदा पूर्ण रूप से अमान्य है (Absolutely Void) —

साधारणतः यह बतलाया जा चुका है कि नाबालिग को प्रसंविदा करने की योग्यता नहीं है। इसलिए भारतीय प्रसंविदा-विधान (Indian Contract Act) के मुताबिक नाबालिग का अनुबन्ध (agreement) मान्य नहीं होता है। नाबालिग से प्रसंविदा करने के पहले प्रत्येक व्यक्ति को छानबीन कर लेनी चाहिए कि जिस व्यक्ति से हम प्रसंविदा कर रहे हैं वह किस प्रकृति का है— नाबालिग नफा उठा सकता है, पर घाटा नहीं सह सकता। वह प्रसंविदा का उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता। अतः नाबालिग से प्रसंविदा अपनी जोखिम (risk) पर ही की जा सकती है, उसकी जोखिम पर नहीं। यहाँ तक कि बालिग अपनी नाबालिग अवस्था में की गयी प्रसंविदा को स्वीकार कर उसे मान्य (valid) नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए है कि यदि एक नाबालिग को दूसरा व्यक्ति किसी प्रसंविदा के द्वारा बाध्य नहीं कर सकता तो एक नाबालिग भी उस प्रसंविदा के लिए दूसरे व्यक्ति को बाध्य (liable) न कर सके। कहने का मतलब यह है कि यदि कोई भी प्रसंविदा नाबालिग की इच्छा पर विवर्जनीय (voidable) नहीं है और यदि उसकी इच्छा रहे भी तो वह किसी प्रसंविदा को न लागू कर सकता है और न रद्द कर सकता है; बल्कि प्रसंविदा तो स्वयं ही अमान्य (void ab-initio) होती है।

यही बात मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष १९०३\* के मशहूर मुकदमे में कही गयी थी। वस्तुतः इसी मुकदमे ने भारतीय राजनियम के क्षेत्र में बहुत बड़ी क्रांति पैदा कर दी है, क्योंकि इस मुकदमे के फैसले के पहले भारतीय न्यायालय का मत था कि नाबालिग की प्रसंविदा केवल विवर्जनीय (voidable) है, विवर्जित (void) नहीं। इस मुकदमे में नाबालिग ने २०,००० रु० रेहन (mortgage) लिखा था जिसमें से महाजन ने उसे केवल ८,००० रु० दिया। बाद में नाबालिग ने रेहन को रद्द कर देने के लिए मुकदमा किया। महाजन की तरफ से यह तर्क किया गया कि चूँकि प्रसंविदा विवर्जनीय (voidable) थी अतः उसने जो रुपया नाबालिग को दिया था वह Sec. 65 के अनुसार उसे वापस मिलना चाहिए। इसपर प्रीवी काउंसिल (Privy Council) ने यह फैसला दिया कि नाबालिग के द्वारा जो कोई भी प्रसंविदा होती है वह विवर्जनीय (voidable) नहीं बल्कि विवर्जित (void) होती है। अतः ऐसी परिस्थितियों में रुपयों को वापस करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

२. नाबालिग का अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए प्रसंविदा के दायित्व (Minor's liability for necessity) —

भारतीय प्रसंविदा-विधान की ६८वीं धारा (Sec. 68) के अनुसार कहा

गया है कि “जो व्यक्ति प्रसंविदा करने के अयोग्य है या जिसे विधान ने यह अधिकार दिया है कि जीवनयापन का खर्च दूसरों से वसूल कर सकता है, यदि वह व्यक्ति अपनी जीवनस्थिति के अनुसार अपनी जरूरी चीजों को दूसरे से लेता है तब आवश्यक वस्तुओं को प्रदान करनेवाला व्यक्ति नाबालिग की सम्पत्ति से परिशोध (Reimbursement) कर सकता है या उसका अधिकारी है।” \* अतः नाबालिग की प्रसंविदा अगर उसकी आवश्यक वस्तुओं के लिए की गयी है तब वह मान्य (valid) है। पर यहाँ एक ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि अपनी जरूरी चीजों (necessaries) के लिए भी नाबालिग स्वयं (personally) बाध्य (liable) नहीं होता है, बल्कि रूपया उसकी सम्पत्ति (property) से वसूल किया जाता है। अगर नाबालिग के पास कोई जायदाद या सम्पत्ति नहीं है तब व्यापारी अपने रुपये को गँवा बैठता है।

अंगरेजी विधान (English Law) के अनुसार तो नाबालिग अपनी जरूरी चीजों के लिए स्वयं भी बाध्य किया जा सकता है।

लेकिन अब सवाल यह उठता है कि किसी नाबालिग के लिए आवश्यक वस्तुएँ कौन-कौन-सी हैं। जीवन की आवश्यकताएँ नाबालिग की आर्थिक स्थिति तथा जीवनस्तर (Standard of living) पर निर्भर रहती हैं। खाना और कपड़ा जीवन की आवश्यकताओं के साधारण उदाहरण हैं किन्तु रईस के लिए घोड़ा, मोटर, नौकर इत्यादि जीवन की आवश्यकताएँ हो सकती हैं। फिर भी न्यायालय (Court) को यह पूर्ण अधिकार है कि वह इस विषय पर अपना स्वतंत्र निर्णय दे। **पेटर्स बनाम फ्लेमिंग** के मुकदमे में न्यायाधीश श्री बैरन पार्क (Baron Park) ने जरूरत की चीजों (necessaries) को इस प्रकार लिखा है कि वे सभी वस्तुएँ जो बिल्कुल शृंगार तथा सजावट के लिए हैं जीवन की आवश्यकताएँ नहीं हो सकती तथा नाबालिग उन चीजों की कीमत के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता। (That all such articles as are purely ornamental, are not necessities..whether they were bought for necessary use of the party in order to support himself properly in the degree, state and station of life in which he moved.)

इसलिए नाबालिग के लिए आवश्यक चीजें वही हैं जिनके बिना उसका जीवन-निर्वाह होना कठिन है और सचमुच उन चीजों की कमी उसे प्रचुर मात्रा में है। इसमें भी जो चीजें उसके पास बहुत अधिक तायदाद में हैं उन चीजों को हम आवश्यक चीजों में नहीं गिन सकते हैं। इस नियम की पुष्टि हम **नाश बनाम इनमान** के मुकदमे से कर सकते हैं। इस मुकदमे की वस्तुस्थिति इस प्रकार है कि कॉलेज के एक विद्यार्थी को एक दर्जी ने (Suit) बना दिये। उनकी कीमत माँगने पर नाबालिग विद्यार्थी के पिता ने यह साबित किया कि उसके पास पहले से ही उस प्रकार के बहुत काफी सूट थे और इसलिए दर्जी ने जो सूट बनाये वे नाबालिग के लिए आवश्यकता की वस्तु न थे।

\* “If person, incapable of entering into a contract, or any one whom he is legally bound to support is supplied by another person with necessaries suited to his condition in life, the person who has furnished such supplies is entitled to be reimbursed from the property of such incapable person” (Sec. 68)

† Peters vs. Fleming 1840 9 L.-J. E 81.

‡ Nash vs. Inman 1808 2 K. B. 1.

अगर कोई शाही खानदान का लड़का है जिसके गिता महाराजा है तो उसके लिए घोड़ा या मोटर, रेशमी वस्त्र, घड़ी इत्यादि आवश्यक वस्तुएँ हो सकती हैं, परन्तु ऐश-आराम की सामग्री (Luxuries)—जैसे चुरट, हीरा, हीरे का बटन इत्यादि—उसके लिए आवश्यक वस्तु कदापि नहीं हो सकते।

हिन्दुस्तान में निम्नलिखित चीजें नाबालिग की आवश्यकताओं में गिनी जाती हैं—

१. नाबालिग की सम्पत्ति की रक्षा के लिए तथा उसकी शादी में किये गये खर्चें। (Kedar Nath vs. Ajudhia 1883. P. R. No. 185)

२. नाबालिग का बिस्तर, उसकी पत्नी का बिस्तर और दवा।

३. कही आने-जाने का खर्चा और श्राद्ध का खर्चा।

४. कोई जरूरी सामान खरीदने के लिए जिससे कि वह समाज में अपनी इज्जत बचा सके।

श्री कोक (Coke) ने भी आवश्यक वस्तुओं के विषय में कहा है—

१. "The necessities of an infant include his necessary meat, drink, apparel, physic and such other necessities and likewise for his good teaching or instruction whereby he may profit himself afterwards."

२. हालाँकि एक नाबालिग सही अनुबन्ध नहीं कर सकता, फिर भी नाबालिग के संरक्षक अथवा उसकी सम्पत्ति की देखभाल करनेवालों के द्वारा नाबालिग की ओर से किया गया अनुबन्ध नाबालिग द्वारा तथा नाबालिग के खिलाफ प्रवर्तनीय है अगर वह दो शर्तों के अधीन किया गया है—

(i) संरक्षक अथवा निरीक्षक नाबालिग की ओर से प्रसंविदा करने के योग्य है तथा

(ii) प्रसंविदा नाबालिग के लाभ के लिए अर्थात् कानूनी तरीके से किया गया है।

[Subramanyam vs. Subba Rao 1948, 75. I. A. 115.]

३. नाबालिग की स्थिति में की गयी प्रसंविदा का बालिग होने पर पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता है (No ratification of a minor's acts)। नाबालिग के साथ की गयी प्रसंविदा शुरू से (ab initio) ही अमान्य है, इसलिए नाबालिग द्वारा बालिग होने पर ही नाबालिग की अवस्था में की गयी प्रसंविदाओं का पुष्टीकरण (ratification) नहीं हो सकता। (Bindeshri vs. Chandika. 49 All. 137)। इसी आधार पर अगर एक नाबालिग बालिग होने पर किसी और व्यक्ति के लिए एक प्रतिज्ञापत्र लिखता है जो किसी पहले के प्रतिज्ञापत्र के बदले है, जबकि वह नाबालिग था और जिसका प्रतिफल उसने उसी अवस्था में प्राप्त किया है, तब ऐसा प्रतिज्ञापत्र भी सन्नियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हो सकता।

४. प्रत्यास्थापन का नियम लागू नहीं होता है (No restitution) — एक प्रसंविदा, जिसके अन्दर नाबालिग का कुछ दायित्व हो, नाबालिग के खिलाफ प्रवर्तनीय नहीं हो सकती, लेकिन भारतीय प्रसंविदा-सन्नियम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिससे कि नाबालिग वचनग्रहीता होने से रोका जा सके। दूसरे शब्दों में, नाबालिग के हित लाभ प्राप्त करने के लिए कोई रुकावट नहीं है। इसी सिद्धान्त के आधार पर यह फैसला हो चुका है कि नाबालिग के लाभ के लिए विक्रय या बन्धक के रूप में किया गया हस्तान्तरण, जिसकी प्रतिफल-राशि नाबालिग दे चुका है, अमान्य नहीं है।

और नाबालिग द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रवर्तनीय है [Satyadev vs. Tirbeni (1936) A. I. R. Pat. 153.]। इसी तरह एक नाबालिग एक विनिमयसाध्य विलेख देने के अयोग्य है लेकिन आदाता या पृष्ठाकिनी होने के अयोग्य नहीं है। [33 All. 667, 24 M. L. J 368]। दूसरे शब्दों में, एक नाबालिग कोई विनिमयसाध्य विलेख लिख सकता है, दूसरे को हस्तान्तरित कर सकता है, लेकिन इस सम्बन्ध में उसे छोड़कर सभी पक्षों का दायित्व हो सकता है। वे सभी प्रसंविदाएँ जिनमें कि प्रसंविदा करने के अयोग्य कोई व्यक्ति प्रसंविदा का एक पक्ष है तब ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अमान्य है, लेकिन वह खुद उसके अधीन लाभ प्राप्त कर सकता है।

५. नाबालिग के खिलाफ 'अवरोध का सिद्धान्त' भी लागू नहीं होता (No estoppel against a minor)—एक नाबालिग हमेशा अपनी उम्र का सहारा ले सकता है, चाहे झूठ बोलकर अथवा कपट (False or Fraudulent Representation) द्वारा ही अपने आपको बालिग बताकर उसने कोई कर्ज प्राप्त किया हो अथवा कोई प्रसंविदा की हो। (Kanhaya Lal vs. Girdhari Lal (1912) 9 A. L. J 103 दूसरा मुकदमा Dhanmulla vs. Ramchandra (1897) 24 Cal. 265.]

लेकिन अगर एक नाबालिग ने कपटमय वर्णन (Fraudulent Representation) द्वारा कोई कर्ज लिया हो या उसने इस तरह कोई सम्पत्ति बेची हो और यह व्यवहार नाबालिग द्वारा अमान्य होते हैं तो न्यायालय (Specific Relief Act की धारा ४१ के अनुसार) नाबालिग को दूसरे को पक्ष की क्षतिपूर्ति का आदेश दे सकता है। [Jagar Nath vs. Lalta Prasad 31. All. 21.]

६. नाबालिग को लाभ पाने का अधिकार होता है (Minor can be a beneficiary)—एक नाबालिग अपने कर्ज के लिए अथवा लाभ प्राप्त करने के विचार से किसी वस्तु अथवा सम्पत्ति के क्रय के लिए कानूनी प्रसंविदा नहीं कर सकता, लेकिन वह अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऐसी प्रसंविदा कर सकता है और उसके लिए उसकी सम्पत्ति दायी होगी। वह व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा। [Sec. 68 Indian Contract Act.]

लेकिन इस सम्बन्ध में इंगलिश सन्निधम भिन्न है। इसमें जीवन की आवश्यकताओं के लिए नाबालिग व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार है। इस तरह, भारतवर्ष में अगर एक नाबालिग को जीवन की आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की गयी है और वह उनका मूल्य नहीं चुका पाता है और उसके पास कोई सम्पत्ति नहीं है, तब व्यापारी उन वस्तुओं का मूल्य प्राप्त नहीं कर सकता है।

७. नाबालिग के लिए प्रतिभूति (Guarantee for a minor)—नाबालिग द्वारा लिये गये कर्ज के भुगतान के लिए प्रतिभूति (guarantee) देनेवाला व्यक्ति कर्ज के भुगतान के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है यद्यपि उस कर्ज का भुगतान किया जाना नाबालिग के लिए अनिवार्य नहीं होता है।

८. नाबालिग का एजेंट बनना (Minor as an Agent)—एजेंसी के नियम के अनुसार नाबालिग की बहाली एजेंट के समान हो सकती है और वह एजेंट का काम कर सकता है, पर उसके प्रत्येक कार्य के लिए मालिक (principal) बाध्य (liable) होगा। अगर वह प्रसंविदा के अनुसार काम नहीं करता या किसी प्रकार की गलती जानबूझकर करता है तो मालिक (principal) को सब भुगतान पड़ेगा और उसको वह कुछ नहीं कर सकता।



९. **वस्तु-विक्रय-सन्निधय में नाबालिग (Minor in Sale of Goods Act)**— हमलोग जान चुके हैं कि अगर कोई व्यक्ति, जो नाबालिग है, दूसरे व्यक्ति से सामान खरीद-विक्री करने के लिए प्रसविदा करे तो वह मान्य नहीं होगा, क्योंकि वह खरीद, विक्री, लाभ या हानि का व्यापार स्वयं नहीं कर सकता।

१०. **नाबालिग दिवालिया नहीं होता (A minor cannot be insolvent)**— भारतीय प्रसविदा विधान में यह बतलाया गया है कि जो व्यक्ति प्रसविदा करने के लायक नहीं है तथा जो देनदारी के लिए स्वयं बाध्य नहीं हो सकता वह देनदार (debtor) भी नहीं हो सकता, कारण कि जो देनदार (debtor) नहीं है वह दिवालिया किस प्रकार घोषित किया जा सकता है? इसलिए अगर कोई नाबालिग स्वयं ही दिवालिया घोषित करने के लिए दरखास्त दे या उसका महाजन (creditor) दिवालिया घोषित करनेवाली कचहरी (Insolvency Court) में निवेदन करे तब भी वह दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता।

लेकिन अंगरेजी विधान (English Law) के अनुसार, चूँकि नाबालिग अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए स्वयं (personally) बाध्य है, इसलिए उसकी देनदारी के लिए वह दिवालिया भी घोषित किया जा सकता है।

११. **नाबालिग साझेदार (Minor Partner)**— भारतीय प्रसविदा अधिनियम के अनुसार साधारणतया एक नाबालिग व्यक्ति किसी फर्म (firm) का साझेदार नहीं हो सकता, किन्तु समस्त साझेदारों की अनुमति से फर्म के हित के लिए वह एक साझेदार बना लिया जा सकता है। भारतीय साझेदारी के अधिनियम की धारा ३० के मुताबिक नाबालिग अवस्था में उसकी स्थिति दूसरे साझेदारों की तरह रहती है, अर्थात् वह दूसरे साझेदारों की भाँति फर्म में पूँजी का विनियोग करता है, व्यापार में हाथ बँटाता है, लाभ-हानि का भागी होता है, व्यापार की पुस्तकों, हिसाब-किताब (Books and Books of Accounts) का निरीक्षण तथा उनकी नकल कर सकता है, किन्तु उसका उत्तरदायित्व उसकी पूँजी तक ही सीमित रहता है। वह व्यक्तिगत रूप से किसी भी हानि अथवा ऋण के लिए दायी नहीं होता। यदि उसने व्यापार में ८,०००) रु० लगाया है, किन्तु हानि होने पर उसका भाग १०,०००) रु० होता है तो दूसरे साझेदार अतिरिक्त २,०००) रु० के लिए उसे उत्तरदायी नहीं टहरा सकते।

बालिग होने की तिथि से छः माह के अन्दर समाचारपत्रों द्वारा उसे घोषित कर देना चाहिए कि वह व्यापार में रहेगा या नहीं। यदि वह एक बालिग साझेदार के रूप में रहने का निश्चय करता है तो उसका उत्तरदायित्व उसी घोषणा की तिथि से दूसरे साझेदारों की तरह असीमित हो जाता है और तब वह हानि की पूर्ति के लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से दायी हो जाता है। लेकिन अगर वह जन-साधारण को इस बात की सूचना नहीं देता तो ६ महीने के बाद यह मान लिया जायगा कि अब वह उस फर्म का साझेदार बन गया। अगर वह फर्म (firm) का साझेदार नहीं रहना चाहता तो घोषणा करने की तिथि तक उसका उत्तरदायित्व उसकी पूँजी तथा लाभ तक ही सीमित रहता है। सूचना देने की तिथि के पश्चात् वह किसी भी व्यवहार के लिए दायी नहीं होता।

१२. **नाबालिग का मिश्रित पूँजी कम्पनी में स्थान (Minor's position in a Joint Stock Co.)**—नाबालिग किसी भी कम्पनी का शेयर (share) खरीद सकता

है, अगर कम्पनी के अन्तर्नियम (articles of association) वर्जित नहीं करते। किन्तु वह याचनाओं (calls) के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होया, यद्यपि वह कम्पनी की बची हुई सम्पत्ति में हिस्सेदार हो सकता है। लेकिन उसे आंशिक भुगतान वाला (partly paid-up) शेयर नहीं दिया जाता, क्योंकि वह किसी भी समय शेयर-होल्डर रहने से इनकार कर सकता है। इसलिए उसे केवल पूरे भुगतान वाला (fully paid-up) शेयर ही दिया जाता है। किन्तु **स्टेनबर्ग बनाम स्केल (लीड्स) लि० (१९२३)\*** के मुकदमे में यह निर्णय किया गया कि जब नाबालिग कम्पनी से शेयर (share) खरीदने के संविदे को रद्द करता है तब वह जो कुछ रुपया उन शेयरों पर दे चुका है, उसे तब तक पाने का हकदार नहीं है जब तक प्रतिफल (consideration) का पूर्णतः अभाव न हो।

**१३. विक्रय-साध्य रुकके में नाबालिग का स्थान (Position of a Minor in a Negotiable Instrument)**—यह हमलोग देख चुके हैं कि नाबालिग की प्रसंविदा साधारणतः विवर्जित (void) मानी जाती है। अतः उसके द्वारा हुई हरेक प्रकार की प्रसंविदा मान्य (valid) नहीं है तथा प्रसंविदा द्वारा उसे बाध्य नहीं किया जा सकता और न स्वयं ही वह अपने को बाध्य कर सकता है। इसी प्रकार नाबालिग विनिमय-पत्र (bill of exchange), प्रण-पत्र (promissory note) तथा चेक (cheque) लिख या बनाकर हस्तान्तरित (transfer) करके, सुपुंङ्गी देकर अथवा इसका बेचान (negotiation) करके दूसरे पक्षों को उत्तरदायी बना सकता है। किन्तु वह स्वयं उत्तरदायी नहीं हो सकता, यद्यपि इन पत्रों के दूसरे सभी पक्ष उत्तरदायी होंगे। (Sec. 26 Negotiable Instrument Act)

**नाबालिगता एक बरदान (Minority a blessing)**—नाबालिग के प्राप्त विशेषाधिकारों की ओर गौर करने से यह कहा जा सकता है कि नाबालिगता कोई अयोग्यता (disqualification) नहीं होती है बल्कि यह एक ढाल के समान नाबालिगों को आवश्यक सुरक्षा प्रदान करती है। कानून द्वारा नाबालिगों को अपरिपक्व व्यक्ति माना जाता है। इन्हें स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा सुगमतापूर्वक ठगा जा सकता है और इसीलिए कानून द्वारा इनके हितों की सुरक्षा का प्रयास किया गया है। **सालमण्ड** ने इनकी विशेषाधिकारपूर्ण स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है - ‘कानून नाबालिगों की रक्षा करता है, उनके अधिकारों एवं सम्पत्तियों को सुरक्षित रखता है, उनकी त्रुटियों को क्षमा करता है और उन्हें प्रतिवाद प्रस्तुत करने में सहायक होता है। न्यायाधीश नाबालिगों के परामर्शदाता होते हैं, न्यायसभा के सदस्य (jury) उनके सेवक होते हैं और कानून उनका अभिभावक होता है।’ (“The Law protects their persons, preserves their rights and estates, excuseth their laches, assists them in their pleadings, the judges are their counsellors, the Jury are their servants and Law is their guardian.”—Lord Salmond)

**नाबालिग की स्थिति के बारे में भारतीय और इंगलिश कानून में अन्तर (Difference between Indian and English Law over the position of a Minor)**—१ भारतीय प्रसंविदा विधान के अनुसार साधारणतः भारतवर्ष का प्रत्येक नागरिक १८ वर्ष की उम्र में बालिग समझा जाता है लेकिन अँगरेजी प्रसंविदा सन्निधय के अनुसार बालिग होने की उम्र २१ वर्ष है।

२. प्रसंविदा void या voidable— भारतवर्ष में नाबालिग के साथ की गयी प्रसंविदा पूर्ण रूप से void है लेकिन अँगरेजी सन्निधम के अनुसार नाबालिग द्वारा की गयी सब प्रसंविदा void नहीं होती है। कुछ voidable भी होते हैं।

३. सम्पत्ति उत्तरदायी होती है— भारतीय प्रसंविदा सन्निधम के अनुसार नाबालिग द्वारा किये गये आवश्यक वस्तुओं के प्रसंविदे में नाबालिग व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता है बल्कि उसकी सम्पत्ति उत्तरदायी होती है। लेकिन अँगरेजी सन्निधम के अनुसार नाबालिग अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए किये गये प्रसंविदा के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

४. भारतीय प्रसंविदा विधान के अनुसार नाबालिग दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है, लेकिन अँगरेजी विधान के अनुसार नाबालिग दिवालिया घोषित किया जा सकता।

### उन्मत्त या पागल की प्रसंविदा (Contract of a Lunatic)

भारतीय प्रसंविदा अधिनियम की धारा १२ के अनुसार ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क का कहा जा सकता है जो प्रसंविदा करने के समय उसे समझ सकता है तथा जिसमें यह भी समझने की शक्ति हो कि उसके हितों पर इस प्रसंविदे का क्या प्रभाव पड़ेगा। इस धारा के मुताबिक कोई भी व्यक्ति जो साधारणतया अस्वस्थ मस्तिष्क का रहता है, किन्तु कभी-कभी स्वस्थ दिमाग का हो जाता है, तो वह उस समय प्रसंविदा कर सकता है, जब उसका मस्तिष्क स्वस्थ है। किन्तु जिस व्यक्ति का मस्तिष्क साधारणतया स्वस्थ रहता है, किन्तु कभी-कभी अस्वस्थ हो जाता है, तो वह उस समय प्रसंविदा नहीं कर सकता जब उसका मस्तिष्क अस्वस्थ है।

उदाहरण—कोई व्यक्ति पागलपन का रोगी है और उसे पागलखाने में भरती कर दिया गया है, जिसका दिमाग कभी-कभी स्वस्थ हो जाता है तो जब वह स्वस्थ है तब प्रसंविदा कर सकता है। अँगरेजी विधान (English Law) के अनुसार यदि व्यक्ति किसी पागल या उन्मत्त (lunatic) से, यह बिना जाने कि वह व्यक्ति पागल है तथा उसका दिमाग सही और दुरुस्त नहीं है, प्रसंविदा कर लेता है तो वह मान्य (valid) प्रसंविदा होगी। परन्तु भारतीय प्रसंविदा विधान इस नियम का समर्थन नहीं करता। यहाँ पर चाहे वह व्यक्ति जानता है या नहीं, पागल के साथ प्रसंविदा करने पर वह सही (valid) नहीं हो सकती। अतः *Durham vs. Durham* (1885) 10 Pr D 80 के मुकदमे के अनुसार किसी पागल के साथ मान्य (valid) प्रसंविदा करना करने के लिए भी नहीं हो सकती। यदि पागल अपने जीवन-निर्वाह की ज़रूरी चीजों के लिए प्रसंविदा करता है तब उस चीज की कीमत पागल की सम्पत्ति (property) से वसूल की जा सकती है चाहे वह सामान उसका दिमाग स्वस्थ रहने पर या अस्वस्थ रहने पर दिया गया हो।

### मूर्ख व्यक्ति की प्रसंविदा (Contract of an Idiot)

मूर्ख वह व्यक्ति है जो जन्म से ही मूर्ख होता है और जिसे सोचने-समझने की बुद्धि नहीं होती। उनका दिमाग पागल (lunatic) के जैसा समय-समय पर स्वस्थ नहीं होता। किसी प्रसंविदे का क्या असर पड़ेगा इस बात का विवेकपूर्ण निर्णय (rational judgment) वह कर ही नहीं सकता। अतः उसके जीवन की आवश्यक वस्तुओं के प्रसंविदे को छोड़कर और जितने प्रकार के प्रसंविदे होंगे, वे अँगरेजी

(English) तथा भारतीय (Indian) विधानों द्वारा विवर्जित (void) है और आवश्यक वस्तुओं की कीमत उसकी सम्पत्ति से वसूल की जा सकती है।

**मदिरापान किये हुए या बेसुध व्यक्ति का प्रसंविदा (Contract of a Drunken or Delirious Person)**

भारतीय प्रसंविदा विधान में एक शराबी या बेसुध का स्थान पागल-सा ही है— अगर एक व्यक्ति जो बुखार से विस्तर पर बेसुध पड़ा है या उसने इतनी शराब पी ली है कि वह प्रसंविदा की शर्तों को समझ नहीं सकता है, वह यह भी समझ नहीं सकता कि इस प्रसंविदा का असर उसके हितों पर क्या पड़ेगा तो ऐसी प्रसंविदा के लिए वह बाध्य नहीं किया जा सकता और वह प्रसंविदा विवर्जित (void) होगी। लेकिन इस प्रकार के व्यक्तियों को यदि आवश्यक वस्तु दी जाय तो उसके लिए ये बाध्य होंगे।

अंगरेजी नियम के अनुसार नशे में बेसुध शराबी द्वारा किया हुआ मुकदमा केवल विवर्जनीय (voidable) है। अतः शराबी अपनी किये हुए प्रसंविदा की पुष्टि (ratification) कर सकता है। अगर कोई व्यक्ति किसी प्रसंविदा को यह कह कर कि मैं प्रसंविदे के समय शराब के नशे में था, रद्द करता है तब उसे ही इस बात को साबित करना होगा।

**स्थिति के अनुसार अयोग्यताएँ**

**विदेशी सम्राट्, राजदूत तथा प्रतिनिधि (Foreign Sovereigns, Ambassadors and Representatives)**— विदेशी सम्राट्, उनके प्रतिनिधि या राजदूत भारतीय न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के अधीन नहीं हैं, इसलिए उन पर भारत की किसी कचहरी में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। परन्तु उन्हें अधिकार है कि वे चाहें तो यहाँ पर प्रसंविदा करके उसे पूरा करने के लिए यहाँ की कचहरी की सहायता ले सकते हैं। सिविल प्रोसीडियर कोड (Civil Procedure Code) की धारा ८४, ८५, ८६, ८७ के अनुसार अगर कोई भारतीय इन पर मुकदमा करना चाहे तो सबसे पहले केन्द्रीय सरकार (Central Govt.) की आज्ञा ले लेनी पड़ेगी। केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित स्थितियों में आज्ञा देती है—

१. जब किसी विदेशी सम्राट् या राजकुमार ने किसी व्यक्ति के विरुद्ध यहाँ की कचहरी में मुकदमा चलाया है।

२. जब कोई विदेशी राजकुमार स्वयं या अपने किसी एजेंट (agent) के द्वारा भारतीय न्यायालय की न्याय-सीमा (jurisdiction) के भीतर व्यापार करता है।

३. जब विदेशी राजकुमार यहाँ के न्यायालय की न्याय-सीमा (jurisdiction) के भीतर कोई जमीन-जायदाद या अचल सम्पत्ति (immovable property) का मालिक है और उस पर रुपया बाकी होने का आक्षेप लगाया गया है या उस सम्पत्ति पर कोई झगड़ा (case) है और उम पर मुकदमा चलाया जा सकता है।

**विदेशी शत्रु (Alien Enemy)**— भारतीय संघ (Indian Union) के साथ अगर किसी दूसरे देश की लड़ाई है तब वह देश विदेशी शत्रु (alien enemy) कहा जायगा। यह साधारण बात है कि लड़ाई जारी रहने तक कोई भी विदेशी शत्रु किसी तरह भी प्रसंविदा किसी भारतीय (Indian) से नहीं कर सकता है।

अगर कोई प्रसंविदा पहले कर चुका है, तब लड़ाई के जमाने में चाहे तो वह विल्कुल रद्द (dissolve) कर दी जायगी नहीं तो तब तक के लिए स्थगित (suspend) कर दी जायगी जब तक कि लड़ाई चलती रहेगी। अगर प्रसंविदा लड़ाई चलने तक स्थगित कर दी गयी है तब वह फिर से चालू की जा सकती है अगर प्रसंविदा की अवधि समाप्त नहीं हुई है।

इस नियम को अच्छी तरह से समझने के लिए कुछ मुकदमों के निर्णयों का वर्णन आवश्यक होगा। पहले *Zinc Corporation vs Hirsset* (1916) K. B. 14 C. A. का मुकदमा लें। यहाँ पर जिक्र कारपोरेशन ने अपनी खान के सम्पूर्ण उत्पादन विदेशी शत्रु के हाथ अपने देश के साथ युद्ध छिड़ने के पहले ही बेचने की प्रसंविदा की थी। युद्ध छिड़ने पर इस मुकदमे में न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह प्रसंविदा अवश्य ही खत्म (dissolve) होनी चाहिए, क्योंकि इस प्रसंविदा के पालन से खान का सम्पूर्ण उत्पादन देश के लाभ के लिए उपलब्ध नहीं होगा।

दूसरा *Ertel Biebr vs. Rai Tinto* (1918) A. C. 260 के मुकदमे में भी, जो इसी तरह का था, प्रसंविदा को खत्म करने का निर्णय हुआ। यद्यपि इस प्रसंविदा में स्पष्ट तौर से लिखा हुआ था कि युद्ध छिड़ने पर इस प्रसंविदा को युद्ध-काल के लिए 'स्थगित' कर दिया जायगा, फिर भी न्यायालय ने इसे 'खत्म' कर देने की आज्ञा दी।

**व्यावसायिक व्यक्ति, जैसे डाक्टर तथा बैरिस्टर (Professional persons like physicians and Barristers)**—इंग्लैंड के अधिनियम के अनुसार इंग्लैंड के बैरिस्टर अपनी फीस के लिए मुवक्किल पर मुकदमा नहीं चला सकते हैं, क्योंकि वहाँ यह व्यवसाय प्रतिष्ठापूर्ण समझा जाता है। पर भारत में १९२७ के बाद कौंसिल अधिनियम (Bar Council Act of 1927) के पास होने के बाद से हर एक बैरिस्टर और एडवोकेट को अपने व्यवसाय के लिए प्रसंविदा करने तथा फीस के लिए मुकदमा करने का अधिकार है। **निहालचन्द बनाम दिलावर खाँ\*** के मुकदमे में इलाहाबाद हाई कोर्ट ने यह निर्णय देते हुए कहा है कि भारतीय बैरिस्टर उच्च न्यायालय (High Court) के वकील के रूप में अपना नाम दर्ज करा कर अपने मुवक्किलों के साथ प्रसंविदा कर सकते हैं तथा उनपर फीस के लिए मुकदमा भी चला सकते हैं।

आजकल डाक्टरों को (उन्हें छोड़कर जिनपर सरकार द्वारा या उनके नियुक्ति-कर्ता की ओर से कोई रोक है) भी यह अधिकार प्राप्त है कि अपनी फीस के लिए वे मरीजों पर मुकदमा दायर कर सकते हैं। यह अधिकार उन्हें पहले प्राप्त नहीं था।

**कम्पनियाँ (Corporations)**—कम्पनी को विधान ने एक बनावटी आदमी (artificial person) कहा है। इसका कोई स्थूल या शारीरिक (physical) रूप नहीं होता। अतः इसके बदले में इसके एजेंट, डाइरेक्टर, मैनेजर, सेक्रेटरी या चेयरमैन कम्पनी के मेमोरेण्डम (memorandum of association) का ख्याल रखते हुए अपने हस्ताक्षर द्वारा कम्पनी की मुहर अवश्य लगी रहनी चाहिए। साथ ही, कुछ प्रसंविदा ऐसे भी हैं जिन्हें कम्पनियाँ नहीं कर सकती हैं, जैसे शादी करने की प्रसंविदा।

**विवाहित स्त्रियाँ (Married Women)**—पहले इंग्लैंड में विवाहित स्त्रियाँ

\* *Nihal Chand vs. Dilawar Khan* (1933) 55, All. 570.

(English) तथा भारतीय (Indian) विधानों द्वारा विवर्जित (void) हैं और आवश्यक वस्तुओं की कीमत उसकी सम्पत्ति से वसूल की जा सकती है।

**मदिरापान किये हुए या बेसुध व्यक्ति का प्रसविदा (Contract of a Drunken or Delirious Person)**

भारतीय प्रसविदा विधान में एक शराबी या बेसुध का स्थान पागल-सा ही है— अगर एक व्यक्ति जो बुद्धि से विस्तर पर बेसुध पड़ा है या उसने इतनी शराब पी ली है कि वह प्रसविदा की शर्तों को समझ नहीं सकता है, वह यह भी समझ नहीं सकता कि इस प्रसविदा का असर उसके हितों पर क्या पड़ेगा तो ऐसी प्रसविदा के लिए वह बाध्य नहीं किया जा सकता और वह प्रसविदा विवर्जित (void) होगी। लेकिन इस प्रकार के व्यक्तियों को यदि आवश्यक वस्तु दी जाय तो उसके लिए यह बाध्य होगा।

अंगरेजी नियम के अनुसार नशे में बेसुध शराबी द्वारा किया हुआ मुकदमा केवल विवर्जनीय (voidable) है। अतः शराबी अपनी किये हुए प्रसविदा की पुष्टि (ratification) कर सकता है। अगर कोई व्यक्ति किसी प्रसविदा को यह कह कर कि मैं प्रसविदे के समय शराब के नशे में था, रद्द करता है तब उसे ही इस बात को नाबित करना होगा।

**स्थिति के अनुसार अयोग्यताएँ**

**विदेशी सम्राट्, राजदूत तथा प्रतिनिधि (Foreign Sovereigns, Ambassadors and Representatives)**— विदेशी सम्राट्, उनके प्रतिनिधि या राजदूत भारतीय न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के अधीन नहीं हैं, इसलिए उन पर भारत की किसी कचहरी में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। परन्तु उन्हें अधिकार है कि वे चाहें तो यहाँ पर प्रसविदा करके उसे पूरा करने के लिए यहाँ की कचहरी की सहायता ले सकते हैं। सिविल प्रोसीडियर कोड (Civil Procedure Code) की धारा ८४, ८५, ८६, ८७ के अनुसार अगर कोई भारतीय इन पर मुकदमा करना चाहे तो सबसे पहले केन्द्रीय सरकार (Central Govt.) की आज्ञा ले लेनी पड़ेगी। केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित स्थितियों में आज्ञा देती है—

१. जब किसी विदेशी सम्राट् या राजकुमार ने किसी व्यक्ति के विरुद्ध यहाँ की कचहरी में मुकदमा चलाया है।

२. जब कोई विदेशी राजकुमार स्वयं या अपने किसी एजेंट (agent) के द्वारा भारतीय न्यायालय की न्याय-सीमा (jurisdiction) के भीतर व्यापार करता है।

३. जब विदेशी राजकुमार यहाँ के न्यायालय की न्याय-सीमा (jurisdiction) के भीतर कोई जमीन-जायदाद या अचल सम्पत्ति (immovable property) का मालिक है और उस पर रुपया बाकी होने का आक्षेप लगाया गया है या उस सम्पत्ति पर कोई झगड़ा (case) है और उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है।

**विदेशी शत्रु (Alien Enemy)**— भारतीय संघ (Indian Union) के साथ अगर किसी दूसरे देश की लड़ाई है तब वह देश विदेशी शत्रु (alien enemy) कहा जायगा। यह साधारण बात है कि लड़ाई जारी रहने तक कोई भी विदेशी शत्रु किसी तरह भी प्रसविदा किसी भारतीय (Indian) से नहीं कर सकता है।

अगर कोई प्रसंविदा पहले कर चुका है, तब लड़ाई के जमाने में चाहे तो वह विलकुल रद्द (dissolve) कर दी जायगी नहीं तो तब तक के लिए स्थगित (suspend) कर दी जायगी जब तक कि लड़ाई चलती रहेगी। अगर प्रसंविदा लड़ाई चलने तक स्थगित कर दी गयी है तब वह फिर से चालू की जा सकती है अगर प्रसंविदा की अवधि समाप्त नहीं हुई है।

इस नियम को अच्छी तरह से समझने के लिए कुछ मुकदमों के निर्णयों का वर्णन आवश्यक होगा। पहले *Zinc Corporation vs Hirset* (1916) K. B. 14 C. A. का मुकदमा लें। यहाँ पर जिक्र कारपोरेशन ने अपनी खान के सम्पूर्ण उत्पादन विदेशी शत्रु के हाथ अपने देश के साथ युद्ध छिड़ने के पहले ही बेचने की प्रसंविदा की थी। युद्ध छिड़ने पर इस मुकदमे में न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह प्रसंविदा अवश्य ही खत्म (dissolve) होनी चाहिए, क्योंकि इस प्रसंविदा के पालन से खान का सम्पूर्ण उत्पादन देश के लाभ के लिए उपलब्ध नहीं होगा।

दूसरा *Ertel Biebr vs. Rai Tinto* (1918) A. C. 260 के मुकदमे में भी, जो इसी तरह का था, प्रसंविदा को खत्म करने का निर्णय हुआ। यद्यपि इस प्रसंविदा में स्पष्ट तौर से लिखा हुआ था कि युद्ध छिड़ने पर इस प्रसंविदा को युद्ध-काल के लिए 'स्थगित' कर दिया जायगा, फिर भी न्यायालय ने इसे 'खत्म' कर देने की आज्ञा दी।

**व्यावसायिक व्यक्ति, जैसे डाक्टर तथा बैरिस्टर (Professional persons like physicians and Barristers)**—इंगलैंड के अधिनियम के अनुसार इंगलैंड के बैरिस्टर अपनी फीस के लिए मुवक्किल पर मुकदमा नहीं चला सकते हैं, क्योंकि वहाँ यह व्यवसाय प्रतिष्ठापूर्ण समझा जाता है। पर भारत में १९२७ के बाद कौंसिल अधिनियम (Bar Council Act of 1927) के पास होने के बाद से हर एक बैरिस्टर और एडवोकेट को अपने व्यवसाय के लिए प्रसंविदा करने तथा फीस के लिए मुकदमा करने का अधिकार है। **निहालचन्द बनाम दिलावर खाँ\*** के मुकदमे में इलाहाबाद हाई कोर्ट ने यह निर्णय देते हुए कहा है कि भारतीय बैरिस्टर उच्च न्यायालय (High Court) के वकील के रूप में अपना नाम दर्ज करा कर अपने मुवक्किलों के साथ प्रसंविदा कर सकते हैं तथा उनपर फीस के लिए मुकदमा भी चला सकते हैं।

आजकल डाक्टरों को (उन्हें छोड़कर जिनपर सरकार द्वारा या उनके नियुक्ति-कर्ता की ओर से कोई रोक है) भी यह अधिकार प्राप्त है कि अपनी फीस के लिए वे मरीजों पर मुकदमा दायर कर सकते हैं। यह अधिकार उन्हें पहले प्राप्त नहीं था।

**कम्पनियाँ (Corporations)**—कम्पनी को विधान ने एक बनावटी आदमी (artificial person) कहा है। इसका कोई स्थूल या शारीरिक (physical) रूप नहीं होता। अतः इसके बदले में इसके एजेण्ट, डाइरेक्टर, मैनेजर, सेक्रेटरी या चेयरमैन कम्पनी के मेमोरेण्डम (memorandum of association) का ख्याल रखते हुए अपने हस्ताक्षर द्वारा कम्पनी की मुहर अवश्य लगी रहनी चाहिए। साथ ही, कुछ प्रसंविदा ऐसे भी हैं जिन्हें कम्पनियाँ नहीं कर सकती हैं, जैसे शादी करने की प्रसंविदा।

**विवाहित स्त्रियाँ (Married Women)**—पहले इंगलैंड में विवाहित स्त्रियाँ

\* *Nihal Chand vs. Dilawar Khan* (1933) 55, All. 570.

व्यक्तिगत रूप से सम्पत्ति नहीं रख सकती थीं तथा प्रसंविदा भी नहीं कर सकती थीं, लेकिन Married Women's Property Act, 1882 के पास हो जाने के बाद विवाहित स्त्री भी अब व्यक्तिगत सम्पत्ति (separate property) रख सकती हैं और स्वच्छन्दतापूर्वक प्रसंविदा करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं।

भारत में भी विवाहित स्त्रियाँ प्रसंविदा कर सकती हैं तथा उनका स्त्री-धन प्रसंविदा के लिए दायी होगा। किन्तु उनकी प्रसंविदा उनके पतियों को नहीं बाध्य कर सकती है जब कि वे उनके जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए हों। इस तरह Married Women's Property Act की धारा ४ के मुताबिक हर एक विवाहित स्त्री, चाहे वह मुसलमान, पारसी, सिक्ख, ईसाई या हिन्दू हो, पृथक् सम्पत्ति रख सकती है तथा प्रसंविदा कर सकती है। राजनियम के अनुसार पति अपनी स्त्री का भरण-पोषण करने के लिए उत्तरदायी है। अतः अगर कोई पति अपनी स्त्री का भरण-पोषण करने से इनकार करता है तो सभी जातियों की स्त्रियाँ जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए प्रसंविदा कर सकती हैं और ऐसी प्रसंविदा के लिए उनके पति दायी होंगे। लेकिन पति अपनी स्थिति के अनुसार ही अपनी पत्नी की आवश्यकताएँ पूरी कर सकता है। किन्तु अगर कोई स्त्री स्वेच्छा से अपने पति का आश्रय छोड़ देती है तो ऐसी स्थिति में उसका पति उसकी प्रसंविदा के लिए, चाहे वह जीवन की आवश्यकताओं के लिए ही क्यों न हों, उत्तरदायी नहीं होगा।

अपराधी (Convicts)—कोई अपराधी या कारावासी वैध प्रसंविदा नहीं कर सकता। किन्तु अगर वह सजा पाने के पहले कोई प्रसंविदा कर चुका है तो उस प्रसंविदा को पूरा करने के लिए वह प्रबन्धक (Administrator) बहाल कर सकता है या उस प्रसंविदा को स्थगित कर सकता है और बाद में जब वह छूटता है तब उसे पूरा कर सकता है या दूसरों को करने के लिए मजबूर कर सकता है। इस तरह कारावासी के लिए मुकदमा चलाने का अधिकार तथा प्रसंविदा करने का अधिकार सिर्फ कुछ साल के लिए स्थगित ही हो जाता है।

### University Questions

1. What do you understand by 'Competency to Contract'? Who are the various persons regarded as incompetent by Law to enter into contract?

(‘अनुबन्ध करने की योग्यता’ से आप क्या समझते हैं? वे विभिन्न व्यक्ति कौन हैं जो कानून के द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य समझे जाते हैं?)

2. Discuss the contractual position of a minor under Indian and English Laws.

(भारतीय और अँगरेजी सन्निधय के अन्तर्गत, अनुबन्ध करने के सम्बन्ध में एक नाबालिग की स्थिति का वर्णन कीजिए।)

3. Discuss fully the law relating to minor's contracts according to Indian Law. How does Indian Law on the point differ from English Law?

(भारतीय कानून के अनुसार नाबालिग के अनुबन्धों के नियम का पूर्ण वर्णन कीजिए। इस विषय पर भारतीय और अँगरेजी सन्निधय में क्या अन्तर है?)

4. What protection is afforded to minors by the Indian Contract Act? In what circumstances is an infant bound by his contract for necessities?



(भारतीय प्रसंविदा सन्निधय द्वारा नाबालिगों को कौन-सी सुरक्षा प्रदान की गयी है ? किन्-किन परिस्थितियों में एक नाबालिग अपने जीवन की आवश्यकताओं के अनुबन्ध के लिए उत्तरदायी है ?)

5. Discuss the legal contractual capacities of (a) an intoxicated person, (b) an alien, (c) a lunatic, (d) a convict, (e) a barrister and (f) a corporation.

[निम्नलिखित व्यक्तियों के अनुबन्ध करने की वैध योग्यता का वर्णन कीजिए—  
(क) बेसुध शराबी, (ख) एक विदेशी, (ग) पागल व्यक्ति, (घ) अपराधी व्यक्ति, (ङ) बैरिस्टर और (च) कॉरपोरेशन।]

6. Can a married woman enter into a valid contract ? To what extent has a wife authority to pledge her husband's credit ?

(क्या एक विवाहित स्त्री वैध अनुबन्ध कर सकती है ? किस सीमा तक पत्नी को अपने पति की साख को बन्धक रखने का अधिकार है ?)

7. What do you understand by 'Capacity to Contract' ? State the rules regarding contracts made by minors.

(‘अनुबन्ध करने की क्षमता’ से आप क्या समझते हैं ? नाबालिग द्वारा किये गये अनुबन्धों से सम्बन्धित नियमों का वर्णन कीजिए।)

8. A Contract made by an infant may be (i) void, (ii) voidable and (iii) voidable. What contracts come under each of these categories ?

[एक शिशु द्वारा की गयी प्रसंविदा (i) वैध (ii) विवर्जित और (iii) विवर्जनीय हो सकती है। इनमें से प्रत्येक शीर्षक के अधीन कौन-कौन-से अनुबन्ध आते हैं ?]

9. What protection is afforded to minors by the Indian Contract Act ? Does a minor by his conduct lose his protections ?

(भारतीय प्रसंविदा सन्निधय द्वारा नाबालिगों को कौन-सी सुरक्षा प्रदान की गयी है ? क्या नाबालिग अपने आचरण से अपनी सुरक्षा खो देता है ?)

10. Discuss the following problems—

(i) X, an infant, buys clothes and food from shops in Calcutta and does not pay ? What is your advice ?

[उत्तर—यहाँ सर्वप्रथम यह देखना होगा कि कपड़े और भोजन की सामग्री नाबालिग के लिए जीवन की आवश्यकताएँ हैं या नहीं। अगर X के लिए जीवन की आवश्यकताएँ हैं तब X व्यक्तिगत रूप से इसके लिए उत्तरदायी नहीं होगा बल्कि उसकी सम्पत्ति अगर कुछ है तो वह दायी होगा। (धारा 66)]

(ii) A minor, pretending to be a major, buys on credit certain goods from a shopkeeper. Has the shopkeeper any remedy against the minor ?

[उत्तर—जगरनाथ सिंह बनाम लालता प्रसाद के मुकदमे के अनुसार दूकानदार को पैसा पाने का अधिकार प्राप्त है।]

(iii) A minor is supplied with necessities of life by a grocer. The minor makes out a P/N in favour of the grocer. Is the grocer entitled to claim payment under the P/N ? Discuss in this connection the rights of the grocer.

[उत्तर—इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले के अनुसार कोई भी नाबालिग विनिमय-साध्य लेख-पत्र का लेखक (drawer) नहीं हो सकता। भारतीय प्रसंविदा सन्निधय

की धारा ६८ के अनुसार जीवन की आवश्यकताओं के लिए भी विनिमय-साध्य लेख-पत्र लिखकर या स्वीकार करके नाबालिग उत्तरदायी नहीं हो सकता। लेकिन जीवन की आवश्यकताएँ प्रदान करने वाला व्यक्ति नाबालिग की सम्पत्ति से भुगतान पा सकता है।]

(iv) Can a promise by a person on attaining majority to repay money lent to him during his minority be enforced? State reasons for your answer.

[उत्तर—यहाँ पर नाबालिग का बालिग होने पर दिया गया वचन कानून की निगाह में लागू नहीं कराया जा सकता। नाबालिग द्वारा किये गये समझौते का पुष्टिकरण उसके बालिग होने पर नहीं हो सकता। Mohiri Bibi vs. Dharmodas Ghose का मुकदमा देखे।]

(v) An infant fraudulently represented to a money-lender that he was of full age and executed a mortgage deed for Rs 10,000. Has the money-lender any right of action against the infant for the money lent or for damages for fraudulent misrepresentation?

[उत्तर—ऋणदाता Specific Relief Act की धारा 41 के आधार पर तथा Jagarnath Singh vs. Lalita Prasad के विवाद के फैसले के अनुसार नाबालिग से 10,000 रु० का अधिकारी है।]

(vi) A supplies B, a lunatic, with necessaries suited to his condition of life. Is A entitled to be paid for?

[उत्तर—धारा ६८ के अनुसार A भुगतान पाने का अधिकारी है।]

(vii) X, a barrister, sues (i) his client for his fees, (ii) his tenant for arrears of rent. What is your advice?

[उत्तर—भारत में बैरिस्टर को अपनी फीस के लिए अपने मुवक्किल (client) पर मुकदमा करने का अधिकार है, किन्तु इंग्लैण्ड में नहीं है। एक बैरिस्टर बकाया किराये के लिए भी अपने किरायेदार पर मुकदमा कर सकता है।]

(viii) A supplies food to B, wife of C, who is a lunatic. C has assets worth one lakh. On non-payment can A proceed against the assets of C? Would your answer be the same if C instead of being a lunatic is an infant?

[उत्तर—दोनों हालतों में 'A' 'C' की सम्पत्ति से भुगतान पा सकता है।]

(ix) X, the wife of Y, buys goods from a shop from Calcutta and does not pay. What is your advice?

[उत्तर—धारा ६८ के अनुसार X के द्वारा खरीदी गयी वस्तुएँ, अगर वे जीवन की आवश्यकताएँ हैं तो Y उसके लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। किन्तु इसके लिए X का Y के संरक्षण में होना आवश्यक है। अगर X हिन्दू विवाहित स्त्री है तो X का स्त्री-धन अगर कुछ हो, X के जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए भी दायी होगा।]

(x) X, a barrister in Calcutta, sues Y, his client for his professional fees. Will he succeed? Will your answer be the same if X is a surgeon?

[उत्तर—बैरिस्टर तथा सर्जन दोनों X के ऊपर मुकदमा कर सकते हैं।]

(xi) Z, the wife of X, pledges with A the furniture and the books in the library, belonging to her husband for the prices of

(i) Jewellery, (ii) Food necessary for her maintenance without X's knowledge and consent. What are the rights of A ?

[उत्तर—जब पति अपनी पत्नी के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति न करे तब पत्नी को जीवन की आवश्यकताओं के लिए पति की साख गिरवी रखने का अधिकार है। किन्तु जेवर या दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं के लिए पत्नी को अपने पति की साख गिरवी रखने का अधिकार नहीं है। अतः इसमें X की जानकारी और स्वीकृति के बिना Z द्वारा X की सम्पत्ति को A के पास गिरवी रखे जाने पर A इस सम्पत्ति को तब तक रोक कर रख सकता है जब तक कि भोजन वगैरह की वह कीमत न पा जाय।]

---

अनुबन्ध दोनों पक्षों की स्वतन्त्र अनुमति से ही होना चाहिए  
(The agreement must have been made with the free consent of the parties)

यह पहले बताया जा चुका है कि किसी भी जायज प्रसविदा के लिए दोनों पार्टियों की स्वतन्त्र सहमति (free consent) होनी जरूरी है। जिन प्रसविदों में यह गायब रहती है वह प्रसविदा मोघ (voidable) हो जाती है।

**सहमति (Consent)**—भारतीय प्रसविदा विधान की धारा १३ के अनुसार दो या दो से अधिक व्यक्तियों का किसी प्रसविदा का स्वीकार करना उस मध्य माना जाता है जब वे एक ही बात पर एक ही भाव में राजी हों। या हम यों कह सकते हैं कि जब वे एक बात को एक ही भाव में समझें।

उदाहरण के लिए *Raffiess vs Wichelhaus* 1864, 2H & Co. 906 का मुकदमा ले सकते हैं। इस मुकदमे की वस्तुस्थिति इस प्रकार है कि एक पार्टी ने १२५ गॉट रुई खरीदने की प्रसविदा की जिसे दम्बई से 'पिरलेस' (Peerless) नाम के जहाज से आना था। दम्बई से चलने वाले 'पिरलेस' नाम के दो जहाज थे। एक पार्टी के दिमाग में वह जहाज था जो अक्तूबर में पहुँचने को था और दूसरी पार्टी ने यह समझा कि प्रसविदा उस जहाज के बारे में हुई जो दिसम्बर में पहुँचने को है। अतः न्यायालय ने इस मुकदमे में फैसला दिया कि यहाँ पर वास्तव में कोई वैध प्रसविदा ही नहीं हुई, क्योंकि तीनों पार्टियाँ एक ही बात पर एक भाव से राजी नहीं हुई थी।

**स्वतन्त्र सहमति (Free Consent)**—भारतीय प्रसविदा-विधान की धारा १४ के अनुसार निम्नलिखित हालतों में स्वतन्त्र अनुमति (free consent) नहीं हो सकती—

१. जहाँ धारा १५ के अनुसार दबाव डालकर या जबरदस्ती (by coercion) प्रसविदा करायी गयी हो।

२. जहाँ धारा १६ के अनुसार अनुचित प्रभाव (undue influence) द्वारा संविदा काराई गयी हो।

३. जहाँ धारा १७ के अनुसार कपट (fraud) या धोखा देकर संविदा करायी गयी हो।

४. जहाँ धारा १८ के अनुसार असत्य भाषण या मिथ्या वर्णन (misrepresentation) के द्वारा संविदा की गयी हो।

५. जहाँ धारा २०, २१ तथा २२ के अनुसार कुछ गलतियों की वजह से संविदा की गयी हो।

**दबाव या जबरदस्ती (Coercion)**—धारा १५ के अनुसार दबाव या जबरदस्ती का आशय ऐसे कार्य से होता है जब कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर दबाव डालकर तथा धमका और डराकर किसी काम को कराये जो काम भारतीय दंड-

विधान (Indian Penal Code) के मुताबिक निषिद्ध है, तो इस तरह का दबाव डालना, धमकाना या डराना जबरदस्ती (coercion) कहलाता है। भारतीय प्रसंविदा सन्निधम की पन्द्रहवीं धारा के अनुसार—“It is the committing or threatening to commit any of the acts forbidden by the Indian Penal Code, or the unlawful detaining or threatening to detain any property to the prejudice of any person whatever, with the intention of causing any person to enter into an agreement.”

**उदाहरण—**A, B से कहता है, तुम (B) अपनी गाय को ₹५०० में बेच दो नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूंगा। इस पर B कहता है कि मेरी जान न लो, मैं अपनी गाय ₹५०० में तुम्हें दे दूंगा।

इसमें A ने गाय बेचने के लिए B को धमकी देकर मजबूर कर दिया। इसलिए B ने जो स्वीकृति दी है वह जबरदस्ती ली गयी है।

इस प्रकार की प्रसंविदा, जो दबाव देकर और मजबूर करके हुई है वह कानून द्वारा विवर्जनीय (voidable) है। यहाँ पर जिस पार्टी पर दबाव डाला गया है उस पर निर्भर करता है कि वह चाहे तो प्रसंविदा रद्द कर सकता है या पूरी-पूरी कर सकता है। इस नियम को अच्छी तरह समझने के लिए कुछ निर्णय किये गये मुकदमों का जिक्र किया जाता है।

*Ranganayakamma vs Alwarsetti* (1889) 13 Mad. 214 के मुकदमे में एक तेरह वर्षीय विधवा को एक बालक को गोद लेने के लिए इस धमकी पर बाध्य किया गया कि उसके पति के मृतक शरीर को दाह-क्रिया के लिए नहीं ले जाने दिया जायगा। न्यायालय ने निर्णय किया कि यहाँ पर स्वतन्त्र सहमति नहीं दी गयी थी बल्कि सहमति दबाव देकर ली गयी थी, क्योंकि जो मनुष्य किसी मृतक शरीर को दाह-क्रिया के लिए जाने से रोकता है वह भारतीय विधान की धारा २९६ के अनुसार अपराधी है। अतः यहाँ पर गोद लेना गैरकानूनी घोषित किया गया।

इसी प्रकार, दूसरा मुकदमा अमीराजू बनाम शेषम्मा [*Ammirazu vs. Seshamma* (1917) 41 Mad-30] में एक व्यक्ति ने आत्महत्या की धमकी देकर अपनी स्त्री तथा बच्चे से मुक्ति-लेख (release deed) ले लिया। न्यायालय ने इस डीड (deed) को जबरदस्ती या दबाव डाला हुआ बतला कर अस्वीकार कर दिया क्योंकि आत्महत्या भारतीय दंडविधान द्वारा वर्जित है।

लेकिन क्लार्क बनाम टर्नबुल\* के मुकदमे के निर्णय के अनुसार महाजन द्वारा ऋणी को वैधानिक ढंग से कैद करवाने की कानूनी धमकी, दबाव या जबरदस्ती नहीं होगी।

वास्तव में भारतीय दबाव ‘Coercion’ अंगरेजी विवाध्यता ‘Duress’ या भिनास ‘Menace’ से ज्यादा विस्तीर्ण है। विवाध्यता (duress) प्रसंविदा करने वाले एक पक्ष के ऊपर या उसकी स्त्री या उसके माँ-बाप या बच्चों के ऊपर दूसरे पक्ष द्वारा अपने या उसके लाभ करने के लिए किसी व्यक्ति द्वारा वास्तविक बलात्कार या धमकी के रूप में बलात्कार या गैरकानूनी कारावास होता है। अतः विवाध्यता (duress) किसी व्यक्ति के विरुद्ध होता है, किसी सम्पत्ति के विरुद्ध नहीं।

**दबाव का प्रभाव (Effect of Coercion)**—धारा १९ के अनुसार, जब किसी

प्रसंविदा की सहमति दबाव द्वारा प्राप्त की गयी है तब वह प्रसंविदा एक ऐसा अनुबन्ध है जो कि उस पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय है जिसकी सहमति इस प्रकार ली गयी थी ।

**अनुचित प्रभाव (Undue-influence) :** (धारा १६)— किसी प्रसंविदा का अनुरित प्रभाव के द्वारा होना तब कहा जायगा जब कि पक्षों के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध हो कि उसमें से एक पक्ष किसी दूसरे पक्ष को प्रभावित करने की स्थिति में हो और वह दूसरे पर अनुचित लाभ पाने की इच्छा से उस स्थिति को प्रयोग में भी लाये ।

भारतीय प्रसविदा विधान की सोलहवीं दफा (Sec. 16) के मुताबिक "A contract is said to be induced by undue influence where the relation subsisting between the parties are such that one of the parties is in a position to dominate the will of the other and uses that position to obtain an unfair-advantage over other."

अतः किसी प्रसंविदा में अनुचित प्रभाव होने का सबूत देते समय इन दो बातों को दिखाना पड़ता है—

१. कि एक पक्ष की स्थिति इस प्रकार की थी कि वह दूसरे पक्ष की इच्छा को अपने मन के अनुसार बना सके ।

२. कि प्रसविदा अनुचित और उसकी आत्मा के विरुद्ध (unfair and unconscionable) है ।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की इच्छा का अधिकारी निम्नलिखित हालतों में हो सकता है—

(क) यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का यथार्थ (in fact) अधिकार रखता हो, जैसे एक पिता को अपने पुत्र पर रहता है । कल्पना करो कि A अपने लड़के B को १०० रु० देकर २०० रु० का हैंडनोट (handnote) लिखवाता है तो A यह अपने पिता होने के प्रभाव का अनुचित लाभ उठाता है ।

(ख) यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का आश्रित (fiduciary relationship) हो; जैसे—बैरिस्टर या वकील के आश्रित उसके मुक्किल (client) । यदि A (बैरिस्टर) अपने मुक्किल B से कहता है कि अगर तुम मुझे २,००० रु० नहीं दोगे तो मैं तुम्हारा मुकदमा बिगाड़ दूंगा । इस उदाहरण में A, B का बैरिस्टर होने का अनुचित लाभ उठाता है । इसी तरह एक अध्यापक अपने विद्यार्थी पर, एक महाजन अपने ऋणी पर, एक जमींदार अपने किसान पर प्रभाव रखता है ।

(ग) यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर, जिसकी दिमागी ताकत (mental capacity) ज्यादा उम्र या बीमारी की वजह या किसी मानसिक या शारीरिक कष्ट की वजह से ठीक न हो (यह कष्ट स्थायी हो या अस्थायी) प्रभाव रखता है; जैसे—एक डाक्टर अपने मरीज पर । A बीमार है और B उसका डाक्टर है । यदि B, A से कहे कि अगर तुम १,००० रु० दो तो मैं तुम्हें शीघ्र स्वस्थ कर दूंगा तो B, A पर अपने प्रभाव का अनुचित व्यवहार करता है ।

(घ) इसके अलावा ऐसी भी स्थितियाँ हैं, जिनमें अनुचित प्रभाव का प्रयोग नहीं कहा जा सकता । ऐसी स्थितियों को सावधानी से अनुचित प्रभाव से भिन्न समझना चाहिए । उदाहरणार्थ—अगर A किसी बैंकर से ऐसे समय में कर्ज के लिए प्रार्थना करता है जब कि द्रव्य-बाजार में रुपये की कमी है । बैंकर ज्यादा व्याज की दर के अतिरिक्त कर्ज देने से इनकार कर देता है । A उन्ही शर्तों पर कर्ज लेना स्वीकार

कर लेता है। यह व्यवहार व्यापार की साधारण प्रगति में है और अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित होकर नहीं किया गया है।

सर एरू० पॉलक (Sir F. Pollock) के शब्दों में— “जब किसी व्यक्ति पर कोई समझौता कराने के लिए या सम्पत्ति का व्ययन (disposal) कराने के लिए ऐसा दबाव डाला जाय जिससे पक्षकार की क्षमता, सौदे की प्रकृति एवं अन्य सभी सम्बद्ध परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रतीत हो कि अनुबन्ध करने वाले व्यक्ति को स्वतंत्र एवं विवेकपूर्ण निर्णय नहीं करने दिया गया है तो यह कहा जायगा कि स्वीकृति प्राप्त करने में अनुचित प्रभाव का प्रयोग किया गया है।”

लॉर्ड हालैंड (Lord Holland) के अनुसार—“अनुचित प्रभाव से मतलब एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर उस अधिकार के अनुचित प्रयोग से है जो उन पक्षों के पारस्परिक सम्बन्धों के कारण उत्पन्न किसी वर्तमान या पुराने अभिभावी नियंत्रण (dominating control) द्वारा प्राप्त किया गया हो।”

इस तरह हम देखते हैं कि अनुचित प्रभाव एक तरह का नैतिक दबाव होता है। वे सभी धमकियाँ जिनके प्रतिरोध का वचनदाता में साहस नहीं होता है इसमें शामिल किये जाते हैं। इसके अलावा, इस तरह की ऐसी नैतिक आज्ञाकारिता (moral command) भी, जिसे सामान्य शांति के लिए अथवा मानसिक पीड़ा या सामाजिक असुविधा से बचने के लिए प्रयोग या सहन किया गया हो, जिसमें चाहे बलप्रयोग या उसकी धमकी मौजूद न हो तथापि अगर उसका इस सीमा तक प्रयोग किया गया है कि वचनदाता से उसके निर्णय करने, चुनाव करने अथवा इच्छानुसार काम करने की स्वतंत्रता छीन ली जाय, तो वह भी अनुचित प्रभाव कहलायेगा।\* लेकिन सिर्फ इस तथ्य के कारण कि प्रसंविदा से पक्षकार को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा या प्रसंविदा न्यायोचित नहीं है, प्रसंविदा के पक्षकार को प्रसंविदा के उत्तरदायित्वों से बचने की अनुमति नहीं मिल सकती है।

**अनुचित प्रभाव को प्रमाणित करने का दायित्व** (Liability to prove undue influence) —यह प्रमाणित करने के लिए कि प्रसंविदा अनुचित प्रभाव के कारण किया गया है, अनुचित प्रभाव की बातें जो ऊपर बतलायी गयी हैं वे मौजूद रहनी चाहिए। किसी भी प्रसंविदा में अनुचित लाभ प्राप्त करने लिए अधिशासी (dominate) स्थिति का प्रयोग नहीं किया गया था— इसको प्रमाणित करने का दायित्व उस पक्षकार पर होगा जो दूसरे की इच्छाशक्ति को अधिशासित (dominate) करने की स्थिति में था। पक्षकारों में इस तरह का सम्बन्ध प्रमाणित होने से कि एक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से दूसरे के परामर्श पर भरोसा करता था, अनुचित प्रभाव को प्रमाणित हुआ नहीं जाना जा सकता है। इस बात का भी प्रमाण होना चाहिए कि प्रभाव का प्रयोग गलत तरीके से लाभार्जन के लिए किया गया था। सिर्फ प्रतिफल की अपर्याप्तता के आधार पर यह नहीं माना जा सकता है कि अनुबन्ध को अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित किया गया था। धन की तुरन्त आवश्यकता भी एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार की इच्छाशक्ति को अधिशासित करने की वास्तविक या प्रत्यक्ष अधिकार की कसौटी नहीं हो सकती है। जब तक भय की स्थिति इस तरह प्रमाणित न हो जाय जिसे मस्तिष्क को दुर्बल कर देने वाले मानसिक दबाव की श्रेणी में रखा जा सके और जब तक यह प्रमाणित न हो जाय कि अनुचित प्रभाव का वास्तविक रूप से प्रयोग प्रस्ताव के लिए दूसरे पक्ष की सहमति प्राप्त करने के लिए किया गया था तब तक किसी भी समझौते को मानसिक दबाव के आधार पर समाप्त नहीं किया जा सकता है।

**पर्दानशीन औरतें (Pardanashin Women)**—पर्दानशीन औरतों का मतलब उन महिलाओं से है जो सामाजिक रीति-रिवाज के कारण घर की चहारदीवारी में रहती हैं और सामान्यतः जनसाधारण से सम्पर्क नहीं रखती हैं। एकान्त अथवा अज्ञानता के कारण उन पर अनुचित प्रभाव का प्रयोग बहुत सरलता से किया जा सकता है। कानून के द्वारा उनको अधिक संरक्षण देने की कोशिश की गयी है। पर्दानशीन औरत के खिलाफ किसी भी प्रसंविदा के निष्पादन के लिए किसी प्रकार की वैधानिक कार्रवाई करने से पहले दूसरे पक्ष के लिए प्रमाणित करना बहुत जरूरी होता है कि पर्दानशीन महिला की सहमति अनुचित प्रभाव के द्वारा प्राप्त नहीं की गयी है।

**इस्माइल मुसाजी बनाम बेग हाफिज बू\*** के मुकदमे के निर्णय में यह बताया गया है कि कौन-सी स्त्री पर्दानशीन है और कौन नहीं है। इस निर्णय के अनुसार वह स्त्री जो न्यायालय जाती है एवं गवाही देती है, किरायेदारों से किराया तय और वसूल करती है और अपने परिवारवालों के अलावा दूसरे व्यक्तियों के साथ व्यापार-सम्बन्धी (matters of business) बातें करती है या पत्र-व्यवहार करती है, पर्दानशीन नहीं कही जा सकती, चाहे वह पर्दे के भीतर बैठकर या बुर्का डालकर ही सभी काम क्यों न करती हो।

पर्दानशीन औरत के साथ प्रसंविदा करते समय बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए क्योंकि इस तरह के प्रसंविदा के सम्बन्ध में मुकदमा चलाने पर पक्षकार को यह साबित करना पड़ता है कि (i) प्रसंविदा की शर्तें उचित एवं न्यायपूर्ण हैं; (ii) समझौता वास्तविक एवं सद्भावपूर्ण है; (iii) पर्दानशीन औरत को प्रसंविदा की सारी शर्तें बतला दी गयी थी; (iv) उसने सभी शर्तों को अच्छी तरह समझ लिया था; (v) प्रसंविदा के सम्बन्ध में उसकी सहमति स्वतन्त्र थी तथा उसने प्रसंविदा के अपने हितों पर पड़ने वाले प्रभाव को अच्छी तरह समझ लिया था।

फिर इसमें यह भी सिद्ध करना पड़ता है कि प्रसंविदा करते समय बल-प्रयोग तथा अनुचित प्रभाव का प्रयोग नहीं किया गया था और पर्दानशीन औरत ने अपनी सहमति स्वतन्त्र इच्छा से दी थी।

**अनुचित प्रभाव का प्रसंविदा के निष्पादन पर प्रभाव (Effect of undue influence on the performance of a Contract)**—अनुचित प्रभाव से जो भी प्रसंविदा की जाती है वह अनुचित और अन्यायपूर्ण होती है और इस तरह से जिस पक्ष द्वारा अनुमति प्राप्त की जाती है उस पक्ष के विकल्प (option) पर यह निर्भर करता है कि वह चाहे तो इस प्रसंविदा को पूर्ण करे या इसको रद्द करने (to set aside) का दावा करे। [धारा 19 (A)]

**दबाव तथा अनुचित प्रभाव में अन्तर (Difference between coercion and undue influence)**—(i) सहमति—दबाव एवं अनुचित प्रभाव दोनों परिस्थितियों में किसी भी एक पक्षकार की प्रसंविदा के लिए सहमति स्वतंत्र नहीं हो सकती है, लेकिन दबाव में यह सहमति भारतीय दण्डसंहिता (Indian Penal Code), 1960 द्वारा परिभाषित अपराध का काम करके या काम करने की धमकी देकर अथवा किसी सम्पत्ति को अवैध रूप से रोककर या रोक रखने की धमकी देकर प्राप्त की जाती है, जब कि अनुचित प्रभाव में दूसरे पक्षकार द्वारा अपनी अधिशासित (dominate) स्थिति का दुरुपयोग करके सहमति प्राप्त की जाती है ॥



(ii) प्रयोग का ढंग—दबाव में शारीरिक बल (physical force) का भी प्रयोग किया जाता है जब कि अनुचित प्रभाव में मानसिक बल का।

(iii) पक्षकार—दबाव वचनग्रहीता द्वारा वचनदाता अथवा किसी भी अन्य पक्ष के खिलाफ प्रयोग में लाया जा सकता है जब कि अनुचित प्रभाव वचनग्रहीता द्वारा वचनदाता पर ही डाला जाना चाहिए।

(iv) सम्बन्ध—दबाव में वचनदाता एवं वचनग्रहीता के बीच किसी भी प्रकार के सम्बन्ध का होना आवश्यक नहीं होता है लेकिन अनुचित प्रभाव में दोनों पक्षों के बीच किसी प्रकार के वास्तविक अथवा विश्वासी सम्बन्ध (fiduciary relationship) का होना आवश्यक होता है; जैसे—डाक्टर और रोगी, ऋणदाता या ऋणी इत्यादि।

**कपट (Fraud) : (धारा १७)**

यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को धोखा देने के विचार से जानबूझकर गलत बात बताता है तो उसे कपट कहते हैं। भारतीय प्रसंविदा-विधान की सतरहवीं दफा (Sec 17) के अनुसार, "Where a party commits an act with the intention of deceiving the other party, or does an act or omits to do an act or omits a fact (Suppressio Veri) as is specially declared by the law to be fraudulent or says something which is false (Suggestio falsi) or actively conceals a defect so that the same may not be discovered by the other party to this Contract, or makes a promise without intending to perform it." "यदि किसी प्रसंविदा में एक पक्ष या उसका एजेंट गलत सुझाव द्वारा या यथार्थ बात को सचेष्ट रूप से छिपाकर किसी दूसरे व्यक्ति या उसके एजेंट को धोखा देने के उद्देश्य से या उससे प्रसंविदा करवाने के उद्देश्य से यथार्थ बात का असत्य वर्णन करता है या निम्नलिखित कामों में से कोई एक करे तो इस काम को कपट (fraud) कहेंगे।\*

१. यदि प्रसंविदा का एक पक्ष कोई ऐसा सुझाव देता है जिसकी अवयर्थता का ज्ञान उसे पहले से ही है तब वह वास्तव में दूसरे पक्ष को कपट द्वारा प्रसंविदा के लिए प्रेरित करता है; जैसे—X धोखा देने के विचार से Y से कहता है कि राम को उसके आम के बगीचे से १,००० रु० की आमदनी प्रति वर्ष है, यद्यपि X यह अच्छी तरह जानता है कि उसके बगीचे से १,००० रु० का आम नहीं बिकता। इस मिथ्या

\* According to Sec. 17 of Indian Contract Act "Fraud means and includes any of the following acts committed by a party to contract, or with his connivance or by his agent, with intent to deceive another party thereto or his agent or to induce him to enter into the contract—

1. the suggestion as a fact, of that which is not true by one who does not believe it to be true;
2. the active concealment of a fact by one having knowledge or belief of the fact;
3. a promise made without any intention of performing it;
4. any other act fitted to deceive;
5. any such act or omission as the law specially declares to be fraudulent."

कथन पर Y अगर बगीचा खरीदने के लिए तैयार हो जाता है, तब यह कहा जायगा कि X ने कपट (fraud) किया है। परन्तु डेरी बनाम पीक (Derry vs Peak) के मुकदमे के निर्णय के अनुसार सुझाव देने वाला व्यक्ति सुझाव को अगर स्वयं सत्य समझ रहा हो तो ऐसे सुझाव को कपट नहीं समझा जायगा।

२. यदि एक पक्ष किसी मूल बात को, जिसे बताने का दायित्व (obligation) उसके ऊपर है और जो प्रसंविदा की जड़ (material) है, छिपाता है तो वह कपट करने का दोषी ठहराया जा सकता है। जैसे—A अपनी सम्पत्ति को B के हाथ बेचना चाहता है और उससे यह बतला कर कि यह सम्पत्ति भार-रहित (free from encumbrance) है उसे वह सम्पत्ति खरीदने को प्रोत्साहित करता है, लेकिन वास्तव में वह सम्पत्ति बन्धक रखी हुई है तो यह कपट का जीता-जागता नमूना होगा।

किन्तु वैसी बात को न बतलाना जिसे बतलाने के लिए पक्ष कानूनी तौर पर बाध्य न हो, कपट नहीं कहलायेगा।

**उदाहरणार्थ**—अगर श्रीजान नीलाम द्वारा एक घोड़े को बेच रहे हैं, किन्तु घोड़े की बीमारी के विषय में कुछ बतलाते नहीं हैं तो यह कपट नहीं कहलायेगा, क्योंकि 'क्रेता सावधान' (caveat emptor) के नियम के अनुसार खरीदार (buyer) का यह कर्तव्य होता है कि वह चीज को देख-सुन कर खरीदे। विक्रेता उसी बात को छिपाने के लिए दायी होगा जो उसे किसी अधिनियम के अनुसार अवश्य बतलाना चाहिए।

३. सद्भावना वाले अनुबन्धों के सम्बन्ध में दायित्व (Obligation to disclose in Contracts Uberti mae fidei)—ये इस तरह के समझौते हैं जिनके अन्दर पूरी तरह से सद्भावना की माँग की जाती है। वे सभी तरह के समझौते 'सद्भावना वाले समझौते' कहे जाते हैं जिनमें यह माना जाता है कि एक पक्षकार को समझौते के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए कुछ साधन उपलब्ध हैं जो दूसरे पक्ष को नहीं है। इसलिए इस पक्ष का यह दायित्व और कर्तव्य हो जाता है कि वह दूसरे पक्ष को इन सब बातों को बतला दे। निम्नलिखित प्रकार के सभी समझौते 'सद्भावना वाले समझौते' हैं—

(i) बीमे का समझौता—इस तरह के समझौते में बीमा कराने वाले का यह कर्तव्य है कि वह बीमा कराने वाले को वे सब बातें बतला दे जो समझौते करने के निर्णय पर अथवा प्रीमियम नियत करने पर प्रभाव डाल सकती हों।

(ii) कम्पनी के शेयर खरीदने से सम्बन्धित समझौते—अगर कोई कम्पनी जनता के बीच अपना प्रविवरण प्रकाशित करती है तो सचालकों का यह कर्तव्य है कि उसमें विनियोग-सम्बन्धी इस तरह की सभी बातें जाहिर कर दें जो शेयर खरीदने वालों के निर्णय पर प्रभाव डाल सकती हों।

(iii) साझेदारी के समझौते—अगर एक साझेदार को साझेदारी की मुख्य बातों का पूरा ज्ञान हो तब वैसी हालत में उसका कर्तव्य होता है कि वह उन बातों को अन्य साझेदारों को बतला दे।

(iv) गारण्टी का समझौता—गारण्टी के समझौते में कर्ज देने वाले का यह कर्तव्य होता है कि कर्ज लेने वाले के बारे में उन सब बातों की ठीक-ठीक जानकारी प्रतिभू (surety) को बता दे जो गारण्टी करने के निर्णय पर प्रभाव डाल सकती हों।

(v) इस तरह के और समझौते वकील तथा मुवक्किल, डाक्टर तथा मरीज अथवा पिता और पुत्र के होते हैं। इन सभी दशाओं में महत्वपूर्ण बातों को बतला

देना आवश्यक होता है और मौन रहना कर्त्तव्य-भंग समझा जाता है। अगर यह जानबूझ कर धोखा देने के विचार से किया गया है तब यह 'कपट' है और अगर जानबूझ कर नहीं किया गया है तब यह 'मिथ्या-वर्णन' कहलाता है।

४. किसी व्यक्ति को धोखा देने के निमित्त किया गया मोघ वचन कपट कहलायेगा; जैसे—वापस न करने की इच्छा से लिये जाने वाले ऋण की वापसी की प्रतिज्ञा करना असत्य वचन होने के कारण कपट कहलायेगा।

५. और कोई काम जिससे धोखा दिया जा सके।

६. किसी ऐसे काम को करना जिसे विधान द्वारा कपटपूर्ण (fraudulent) घोषित कर दिया गया है। जैसे यदि किसी मकान या जायदाद को, जिसे रेहन (mortgage) रख दिया गया है, महाजन को धोखा देने के उद्देश्य से किसी दूसरे के हाथ बेचना, 'धन हस्तान्तरित विधान' (Transfer of Property Act) के द्वारा कपटपूर्ण घोषित किया गया है।

### मौन द्वारा कपट (Fraud by Silence)

धारा १७ के मुताबिक साधारणतः मौन कपट नहीं होता, भले ही उससे किसी व्यक्ति की प्रसविदा करने की इच्छा पर प्रभाव पड़े। जैसे—

१. A अपना घोड़ा B के हाथ नीलाम द्वारा बेचता है। A घोड़े के विषय में यह जानता है कि घोड़े में कुछ दोष है और वह इस बात को B से नहीं कहता है; यहाँ पर A ने B के साथ कोई कपट नहीं किया।

२. A और B दो व्यापारियों के बीच में कुछ माल खरीद-विक्री करने की प्रसविदा हुई। A को विश्वस्तसूत्र (reliable source) से माल के मूल्य में कमी हो जाने की खबर मिलती है। यहाँ पर A इस खबर को B से कहने को बाध्य नहीं है, क्योंकि अगर इस बात की सूचना B को दे दे तो इससे B की प्रसविदा करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और हो सकता है B, A से माल खरीदने के लिए तैयार न हो।

किन्तु इसी परिस्थिति में, जहाँ बोलना आवश्यक होता है, मौन रहना कर्त्तव्य-भंग समझा जाता है और यदि ऐसा धोखा दे देने के उद्देश्य से किया जाता है तो वह कपट हो जाता है। अतः निम्नांकित हालतों में मौन भी कपट समझा जाता है—

१. जहाँ परिस्थिति ऐसी है कि मौन रहने वाले व्यक्ति को बोलना वैधानिक कर्त्तव्य है; जैसे—B, A की पुत्री है जो अभी बालिग (mature) हुई है। यहाँ दोनों पक्षों में इस तरह का सम्बन्ध है कि A को घोड़े का दोष B से कह देना कर्त्तव्य हो जाता है। यदि B नहीं बताती तो यह 'कपट' कहा जायगा।

२. जहाँ मौन स्वयं बोलने के बराबर है; जैसे—X, Y से कहता है कि 'अगर आप स्वीकार नहीं करते हैं तो मैं मान लेता हूँ कि घोड़ा स्वस्थ है।' Y मौन रह जाता है। यहाँ Y का मौन रहना भाषण के तुल्य है। और यदि पाया गया कि घोड़े में दोष था, जिसे Y ने चुप रह कर छिपाया है तो यह Y का 'कपट' करना कहा जायगा।

इसी नियम के आधार पर भारतीय प्रसविदा विधान की धारा १४३ (Sec. 143) में कहा गया है कि 'कोई भी जमानत (guarantee) जिसे महाजन (creditor) ने मौन धारण कर तथा भौतिक अवस्थाओं (material circumstances) को वा० बि० त०—५

छिपाकर प्राप्त किया है, नियमविरुद्ध (invalid) है।\* जैसे—A ने B को रुपया वसूल करने के लिए किरानी (clerk) के रूप में बहाल किया है। B कुछ रुपयों का हिसाब न दे सका। इस पर A ने B को जमानत देने को कहा। यदि C, B का जमानतदार बनता है और A, B की पहली बातों को नहीं बताता और कुछ दिन बाद फिर B हिसाब में गड़बड़ी करता है तो C इसके लिए दायी नहीं होगा, क्योंकि जमानत नियम-विरुद्ध (invalid) है।

### कपट का प्रभाव (Effect of Fraud) : (धारा 19)

यदि कोई व्यक्ति संविदा की सहमति कपट का प्रयोग करके लेता है तो वह व्यक्ति जिसे धोखा दिया गया है—

१. प्रसंविदा को भंग करने का अधिकार—प्रसंविदा को भंग (void) कर सकता है। किन्तु उसकी सहमति अगर मौन (silence) द्वारा ली गयी है तो वह ऐसा नहीं कर सकता, यदि साधारण परिश्रम से ही वह सत्य का पता लगा सकता था या सत्य का पता लगने के साधन या उपाय उसके पास मौजूद थे।

२. क्षतिपूर्ति का अधिकार—प्रसंविदा की अभिपुष्टि (affirmation) कर सकता है, यदि वह चाहे तो दूसरे पक्ष से प्रसंविदा करा सकता है और कपट के रहने पर उसकी जो अवस्था होती, वही अवस्था प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा, जिससे कपट किया गया है उसे अधिकार है कि यदि चाहे तो कपट करने वाले पर मुकदमा करके क्षति (damages) की पूर्ति का दावा कर सकता है।

३. मुकदमा करने का अधिकार—अगर कपट का ज्ञान हो जान पर कोई व्यक्ति प्रसंविदा को भंग करने की बात नहीं सोचता या इच्छा प्रकट नहीं करता तो वह प्रसंविदा की पुष्टि करने अथवा भंग करने के अधिकार को खो देगा। यदि वह कपट के लिए मुकदमा चलाता है तो उलटे वह दोषी ठहराया जा सकता है। अगर वह प्रसंविदा भंग करता है तब उसे जो भी लाम प्रसंविदा पर हुआ है या उसने पाया है, वापस कर देना पड़ेगा।

उदाहरण—(i) A, B को धोखा देने के विचार से मिथ्या वर्णन करता है कि उसके कारखाने में १,००० गज कपड़ा प्रतिदिन बनाया जाता है और इस तरह B को कारखाना खरीदने के लिए प्रेरित करता है। यह अनुबन्ध B की इच्छा पर व्यर्थनीय है।

(ii) A कपटमय इच्छा से B को सूचित करता है कि उसकी सम्पत्ति भार से मुक्त है (is free from incumbrance), और इस कथन के आधार पर B सम्पत्ति खरीद लेता है। वास्तव में सम्पत्ति एक बन्धक के अधीन है। B अगर चाहे तो अनुबन्ध को तोड़ सकता है अथवा A द्वारा उसके पूरा करने तथा बन्धक कर्ज की पूर्ति के लिए जोर दे सकता है।

### मिथ्या वर्णन (Misrepresentation) : (धारा 18)

भारतीय प्रसंविदा-विधान की अठारहवीं धारा (Sec. 18) में मिथ्या वर्णन (misrepresentation) की परिभाषा इस प्रकार है—“मिथ्या वर्णन वह असत्य कथन है जो निर्दोषपूर्वक किया गया हो तथा जिसकी असत्यता का ज्ञान वक्ता को न

\* “Any guarantee which the creditor has obtained by means of keeping as to material circumstances is invalid.”—Sec. 143

हो, बल्कि उसका पूर्ण विश्वास इस बात पर हो कि वर्णित विषय ही सत्य है, यद्यपि वस्तुतः यह असत्य होता है।”\* अतः किसी भी बात के असत्य कथन (misrepresentation) होने के लिए नीचे लिखे कारण होने चाहिए—

१. कथन किसी निश्चित बात से सम्बन्धित होना चाहिए।

२. कथन किसी पक्ष को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने के वास्ते होना चाहिए।

३. कथन धोखा देने के उद्देश्य से नहीं होना चाहिए।

४. अन्त में कथन का वाक्य उस पक्ष को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित भी करता हो।

### मिथ्या वर्णन के तरीके (Modes of Misrepresentation)

१. निःसन्देह विवरण द्वारा (Misrepresentation by positive statement) —इस नियम के सम्बन्ध में धारा १८ (१) के अनुसार किसी ऐसी बात का निश्चयात्मक कथन भी सत्य नहीं है पर दूसरे पक्ष का यह विश्वास है कि वह सत्य है तो उसका सत्य होने का विश्वास ही मिथ्या वर्णन या असत्य कथन है। उदाहरणार्थ— A, B से कहता है कि मेरी इस जमीन में एक हजार मन गेहूँ पैदा होता है। उसके इस कथन पर विश्वास कर अगर B उस जमीन को खरीद लेता है और बाद में उसमें खेती करने पर देखता है कि उसमें सिर्फ ८०० मन गेहूँ होता है तो B को यह हक है कि वह असत्य कथन (misrepresentation) की वजह बता कर प्रसंविदा तोड़ सकता है। लेकिन A ने अगर यह कहा हो जो उसे मालूम था और जिस पर उसने विश्वास किया था, और उस पर दूसरे पक्ष को विश्वास करने को कहा था तब उसके कथन को हम असत्य नहीं मान सकते। इस गलती को हम आपसी गलती (mutual mistake) कहेंगे।

२. कर्तव्य-भंग द्वारा—मिथ्या वर्णन जो कपटाभिप्राय के बिना किया गया हो (Misrepresentation by breach of duty which is without an intent to deceive)।†

धारा १८ (२) के अनुसार अगर कोई व्यक्ति कपट के विचार के बिना ही एक ऐसा कर्तव्य भंग करता हो जिससे ऐसा करने वाले व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति अथवा उसके अधीन अधिकार रखने वाले व्यक्ति को हानिप्रद भुलावा देकर कोई लाभ अथवा सुविधा प्राप्त होती हो तो यह असत्य कथन ही होगा। उदाहरणार्थ, अगर A बीमा की प्रसंविदा करते समय अपनी उम्र ३५ वर्ष ही पूर्ण विश्वास के साथ बतलाता है पर सचमुच में वह ३७ वर्ष का है जिसे वह स्वयं नहीं जानता था तो यह मिथ्या वर्णन या असत्य कथन होगा, क्योंकि कम उम्र बताने से बीमा करने वाले को कम प्रीमियम देना पड़ेगा।

\* According to Sec. 18 “Misrepresentation means and includes the positive assertion, in a manner not warranted by, the information of the person making it, of that which is not true though he believes it to be true.”

† Misrepresentation by breach of duty which is without an intent to deceive.”

### निर्दोषपूर्ण विवरण के द्वारा मिथ्या वर्णन\* (Misrepresentation by innocent assertion)

३. धारा १८ (३) के अनुसार अगर कोई व्यक्ति किसी सविदा से सम्बद्ध ऐसी वस्तु के विषय में जो सविदा का विषय हो, गलती करा दे तो यह मिथ्या वर्णन होगा—चाहे यह कितनी ही निर्दोषपूर्ण रीति से क्यों न किया गया हो।

**उदाहरणार्थ—**A, B से कहता है कि मेरे मकान में कहीं भी कोई खराबी नहीं है। B उसकी बातों पर विश्वास करके मकान खरीदता है। A को यह मालूम नहीं था कि मकान की नींव (foundation) में ही दरार है और जिसके रहने से यह खतरा है कि मकान किसी समय गिर जा सकता है। जब कभी B को इस दोष का पता चल जाता है तभी वह प्रसविदा को असत्य कपट या मिथ्या-वर्णन के नाम पर रद्द कर सकता है। पर अगर B यह पाता है कि मकान की एक खिड़की टूटी है तो वह असत्य कथन के नाम पर प्रसविदा को रद्द नहीं करेगा; क्योंकि जिस चीज के विषय में सविदा हुई थी उसमें दोष नहीं है। मिथ्यावर्णन करने वाले पक्ष का यह कर्तव्य है कि असत्य का पता लग जाने पर वह दूसरे पक्ष को भी बता दे, अन्यथा उसका यह कार्य कपट (fraud) का मार्ग ठहराया जायगा।

**मिथ्या-वर्णन का प्रभाव (Effect of Misrepresentation)—**धारा १९ के अनुसार असत्य कथन से पीड़ित पक्ष को निम्नलिखित प्रतिकार (remedies) प्राप्त है—

१. वह प्रसविदा को रद्द कर सकता है, जब तक कि स्थिति इस प्रकार की न हो कि वह साधारण प्रयास से ही सच्ची बात का पता लगा सकता था।

२. वह प्रसविदा की अभिपुष्टि (affirmation) कर सकता है और प्रसविदा की बातों को पूरा करने के लिए मुकदमा भी कर सकता है।

३. वह प्रत्यस्थापन (restitution) की माँग कर सकता है, किन्तु क्षति के लिए मुकदमा नहीं कर सकता। किन्तु निर्दोषपूर्ण रीति से किये हुए मिथ्या वर्णन में पीड़ित पक्ष को केवल प्रसविदा के खण्डन (rescission) तथा प्रत्यस्थापन (restitution) की माँग करने का प्रतिकार (remedies) ही प्राप्त है।

**कपट और मिथ्या-वर्णन में अन्तर (Difference between Fraud and Misrepresentation)**

(i) **उद्देश्य (Object)**—कपट एवं मिथ्यावर्णन दोनों ही में असत्य बात कही जाती है, परन्तु मिथ्या-वर्णन में झूठ बोलने का उद्देश्य किसी को धोखा देकर अनुचित लाभ उठाना नहीं होता है जबकि कपट में मिथ्या-वर्णन जानबूझ कर या परिणाम की चिन्ता किये बिना (deliberately or recklessly) दूसरे पक्षकार को धोखा देकर प्रसविदा करने को प्रेरित करने के स्पष्ट अभिप्राय से किया जाता है। कपट हमेशा जान-बूझकर किया जाता है जबकि मिथ्या-वर्णन अनजाने में होता है। यह निश्चल प्रकृति का होता है।

(ii) **अधिकार (Rights)**—मिथ्या-वर्णन पर आधारित प्रसविदों में पीड़ित पक्षकार को सिर्फ प्रसविदा की पुनःस्थापना कराने का ही अधिकार होता है। वह क्षतिपूर्ति की माँग नहीं कर सकता है। परन्तु कपट के प्रसविदों में पीड़ित पक्षकार

\* “Misrepresentation by innocent assertion by a party to an agreement to make a mistake as to the substance of the thing which is the subject of the agreement.”

को पुनःस्थापना करने के अतिरिक्त अपनी हानि की पूर्ति के लिए भी माँग कर सकता है। प्रत्यस्थापन (restitution) का अधिकार दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों में एक समान उपलब्ध है।

(iii) प्रतिवाद (Defence)—कपट करने वाला व्यक्ति अर्थात् प्रतिवादी यह प्रतिवाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है कि वादी को सचाई का पता लगाने के साधन उपलब्ध थे या वह सामान्य परिश्रम द्वारा सत्य का पता लगा सकता था। परन्तु मिथ्या-वर्णन में इस तर्क का सहारा लिया जा सकता है। अगर पीड़ित पक्षकार को सामान्य परिश्रम द्वारा सत्य का पता लगाने के साधन प्राप्त थे, परन्तु उसने उनका प्रयोग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया तो प्रसविदा उसके विकल्प पर व्यर्थ नहीं होगी।

### University Questions

1. "Two or more persons are said to consent when they agree upon the same thing in the same sense." Explain the meaning of this statement with illustrations.

("दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सहमति उस समय मानी जाती है, जब वे एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होते हैं।" इस कथन की व्याख्या कीजिए और उदाहरण दीजिए।)

2. "The essence of every agreement is that there ought to be free consent on both sides." Explain clearly what do you understand by free consent under the Indian Contract Act

("प्रत्येक अनुबन्ध का यह सार-तत्त्व है कि दोनों पक्षकारों की ओर से स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिए।" भारतीय प्रसविदा सन्निधय के अन्तर्गत स्वतन्त्र सहमति से अप क्या समझते हैं? इसकी व्याख्या कीजिए।)

3. "An agreement requires a meeting of the minds." Comment.  
("समझौते के लिए मानसिक समन्वय की आवश्यकता होती है।" टिप्पणी लिखिए।)

4. What is meant by 'Free Consent'? When is Consent not free? Discuss its importance in contracts.

(स्वतन्त्र सहमति का क्या अर्थ है? सहमति कब स्वतन्त्र नहीं मानी जाती? अनुबन्ध में इसके महत्त्व का वर्णन कीजिए।)

5. When is contract said to be given under 'Coercion'? What is the liability of a person to whom money has been paid or goods have been delivered under coercion? How coercion differs from undue influence?

(सहमति 'दबाव' से की गयी कब कहलाती है? जिस व्यक्ति को धन का भुगतान या माल की सुपुर्दगी दबाव द्वारा की गयी हो, उसके क्या दायित्व है? दबाव तथा अनुचित प्रभाव में क्या अन्तर है?)

6. Define fraud, and point out its effects on the validity of an agreement. Give suitable examples to illustrate your answer.

('कपट' की परिभाषा कीजिए और समझौते की वैधता पर इसके प्रभाव बतलाइए। अपने उत्तर को स्पष्ट करने के लिए उचित उदाहरण दीजिए।)

7. When a contract is said to be induced by influence? Discuss the effects of undue influence on a contract. Under what

circumstances can undue influence be presumed ?

(अनुबन्ध कब अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित किया हुआ कहनाता है ? अनुबन्ध की रचना पर 'अनुचित प्रभाव' की विवेचना कीजिए । किन परिस्थितियों में अनुचित प्रभाव की धारणा हो सकती है ?)

8. What do you mean by a fraud in law ? How does it differ from misrepresentation ? Explain the effects of fraud.

(कानून के अन्तर्गत 'कपट' से आप क्या समझते हैं ? यह मिथ्या-वर्णन से भिन्न कैसे है ? कपट के प्रभाव की व्याख्या कीजिये ।)

9. "Mere silence as to facts likely to affect the willingness of a person to enter into a contract is not fraud, unless the circumstances of the case are such that regard being had to them, it is the duty of the person keeping silence to speak or unless his silence is equivalent to speech." Explain.

(“किसी व्यक्ति के अनुबन्ध करने की इच्छा को प्रभावित करने वाले तथ्यों के सम्बन्ध में केवल मौन रहना तब तक कपट नहीं कहलायेगा जब तक कि अनुबन्ध की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उस व्यक्ति का कर्तव्य मौन रहने के स्थान पर तथ्यों का वर्णन करना न रहा हो या उसका मौन रहना ही कथन के समान न समझा जाय ।” व्याख्या कीजिए ।)

10. Distinguish between fraud and misrepresentation. What is their effect on the validity of a contract ?

(कपट और मिथ्या-वर्णन में क्या अन्तर है ? अनुबन्ध की वैधता पर उनका क्या प्रभाव होता है ?)

11. "An attempt at deceit, which does not deceive, is no fraud." Comment.

(“ऐसे धोखे का प्रयत्न, जिससे धोखा नहीं हुआ हो, कपट नहीं कहलायेगा ।” व्याख्या करें ।)

12. Explain with illustrations, the effect of mistake of fact on agreements with reference to (i) mistake relating to the subject matter, (ii) mistake relating to the identity of parties.

[निम्नलिखित प्रकार की गलतियों के सम्बन्ध में समझौतों पर तथ्य-सम्बन्धी गलती के प्रभाव उदाहरणसहित समझाइये— (i) विषयवस्तु-सम्बन्धी भूल, (ii) पक्षकारों की पहचान-सम्बन्धी भूल ।]

13. "Fundamental error will not prevent a contract from coming into existence unless the mistake be as to identity of the other party as opposed to his attributes, as to the substance of the subject matter as opposed to its qualities or as to the nature of the transaction as opposed to its terms." Discuss.

(“अगर भूल किसी दूसरे पक्षकार के विशेष गुणों के विपरीत उसकी पहचान के सम्बन्ध में विषयवस्तु के गुणों के विपरीत उसके सारतत्त्व के बारे में था, गौदे की शर्तों के विपरीत उसकी प्रकृति के बारे में न हो, तो वह अनुबन्ध के अस्तित्व में रुकावट नहीं डाल सकेगा ।” विवेचना कीजिए ।)

14. Write short notes on—

(i) Free Consent, (ii) Co-ercion, (iii) Duress, (iv) Undue influence, (v) Fraud, (vi) Caveat Emptor and (vii) Contracts of utmost good faith.



[संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

- (i) स्वतन्त्र सहमति, (ii) दबाव, (iii) ड्यूरेस, (iv) अनुचित प्रभाव, (v) कपट, (vi) केवियट एम्प्टर, और (vii) परम सद्विश्वास की प्रसंविदा।]

15. What is meant by 'Caveat Emptor'? Explain and illustrate the exceptions to this rule.

(‘केवियट एम्पटर’ से क्या समझते हैं? उसके अपवादों की उदाहरण के साथ व्याख्या करें।)

16. Discuss the following problems—

(i) M Sells by auction to N a horse which M knows to be unsound. M says nothing to N about the horse's unsoundness.

उत्तर—यह कपट नहीं है। धारा 17 (a)।

(ii) A's son has forged B's name to a promissory note. B, under threat of prosecuting A's son, obtains a bond from A for the amount of the forged note. B sues A on the bond. Will he succeed?

उत्तर—धारा 19 (a) के उदाहरण के अनुसार B को मुकदमा करने पर सफलता नहीं प्राप्त होगी क्योंकि न्यायालय इस बाण्ड को रद्द कर सकता है।

(iii) Define 'Co-ercion'. A young widow was forced to adopt a boy under the threat of preventing the body of her husband, who had just died, from being removed for cremation. Is this adoption valid under Law?

उत्तर—रंगनाथकम्मा बनाम अलवरसेट्टी के मुकदमे के अनुसार इस प्रकार गोद लेना कानून की दृष्टि से मान्य नहीं हो सकता है।

(iv) A fraudulently informs B that A's house is free from encumbrances. B thereupon buys the house. The house is subject to a mortgage. What are the rights of B?

उत्तर—धारा 17 (2) के अनुसार B अनुबन्ध को रद्द कर सकता है। यह Active Concealment of facts है।

(v) A sold some land to B. At the time of sale both the parties believed in good faith that the area of the land sold was 100 acres. It, however, turns out that the area was 80 acres only. How is the contract of sale affected? Give reasons.

उत्तर—धारा २० के अनुसार यहाँ दोनों पक्षकार विषय-वस्तु के अस्तित्व की गलती पर हैं, अतः यह अनुबन्ध रद्द किया जा सकता है।

(vi) A, who is about to sell a horse to B, says, "The horse is a beauty and is worth Rs 1,000." B buys the horse for Rs 800. Afterwards B learns that A had bought it for Rs 400 and B cannot get more than Rs 300 for it. What is B's remedy?

उत्तर—B अनुबन्ध को रद्द नहीं कर सकता है। Abdulla Khan vs. Gir-dhari Lall

(vii) A and B, being traders, enter upon a contract. A has private information of a change in prices which would affect B's willingness to proceed with the Contract. Is A bound to inform B?

उत्तर—धारा 17 (d) के अनुसार यहाँ A, B को सूचना देने के लिए बाध्य नहीं है।

(viii) A contracts to sell to B a piece of silk. B thinks that it is English silk. A knows that B thinks so, but knows that it is Japanese

silk. A does not correct B's impression. Subsequently B discovers that it is not English silk. Can he repudiate the contract ?

**उत्तर**—धारा 17 के अनुसार B प्रसविदा रद्द नहीं कर सकता ।

(ix) X contracts with Y to buy a necklace, believing that it is made of Pearls, whereas in fact it is made of imitation pearls of no value. Y knows that X is mistaken and takes no steps to correct the error. Is X bound by the contract ?

**उत्तर**—धारा 17 के अनुसार X अनुबन्ध के लिए बाध्य है ।

(x) A purchased an electric fan thinking that it was powerful enough to keep his room cool. The fan turned out to be inadequate for the entire room. So he wanted to return the fan to the seller and to get out of the contract on the ground of mistake. Can he succeed ?

**उत्तर**—इसमें A ने खुद गलती की है इसलिए वह अनुबन्ध का त्याग नहीं कर सकता है ।

(xi) A agrees to buy from B a certain horse. It turns out that the horse was dead at the time of the bargain, though neither party was aware of the fact. Advise the parties.

**उत्तर**—धारा 20 (C) के अनुसार यह अनुबन्ध विवर्जित (void) है ।

(xii) In what circumstances does mistake avoid a contract ? B bought rice from A by sample. The rice was new B thought he was buying old rice. Can B avoid the contract ?

**उत्तर**—इसमें B अनुबन्ध का त्याग नहीं कर सकता है ।

(xiii) A, a money lender, advances Rs. 100 to B, a farmer, and by undue influence induces B to sign a promissory note for Rs 200 with interest at 6% per month. Can B recover the amount of the promissory note ? If so, what amount and interest ?

**उत्तर**—धारा 19 (a) के उदाहरण (b) के अनुसार A 100/ और न्यायालय द्वारा निश्चित किया गया उचित ब्याज पाने का अधिकारी है ।

(xiv) One Sapruji Paymaster started business as Barron & Co. at 10 Apolo Street, Bombay. He entered into correspondence with M/s Excelsiors Ltd. to buy some groceries on credit. The latter honestly believing that firm to be the wellknown firm of Barron & Sons, with whom they had previous dealing supplied some groceries on credit to Barron & Co. The goods were subsequently sold to Mr. J. S. Vakil. Discuss the legal position of M/s Excelsiors Ltd. & J. S. Vakil.

**उत्तर**—चूंकि इसमें व्यक्ति को पहचानने की गलती है अतः M/S Excelsiors Ltd. अनुबन्ध को रद्द कर सकता है तथा Mr. J. S. Vakil को गलती से बेचे गये माल को भी वापस ले सकता है ।

## गलतियाँ (Mistakes)

गलती (Mistake) : (धारा २०-२२)

भारतीय प्रसविदा विधान की धारा २० के अनुसार “जब प्रसविदा के दोनों व्यक्ति संविदा के किसी सच्ची और व्यावहारिक बात (fact) में गलती पर हैं तो ऐसी हालत में सहमति स्वतन्त्र नहीं कही जा सकती और संविदा व्यर्थ होगी।”\*

**उदाहरणार्थ**—(क) A, B से कुछ माल बेचने के लिए प्रसविदा करता है और कहता है कि मैं उम्मीद करता हूँ कि मेरा माल इंग्लैण्ड से बम्बई के लिए चल चुका है। लेकिन बाद में यह जाहिर होता है कि संविदा करने के एक दिन के पहले ही जहाज-माल-सहित समुद्र में डूब गया था। इसलिए यह प्रसविदा व्यर्थ (void) है क्योंकि दोनों पार्टियों को चीज की उपस्थिति का ज्ञान पहले से नहीं था।

(ख) A, B से एक घोड़ा खरीदने के लिए प्रसविदा करना है। लेकिन बाद में मालूम होता है कि प्रसविदा करने के समय घोड़े की मृत्यु हो चुकी थी, हालाँकि दोनों पार्टियों में किसी को भी इस बात (facts) का ज्ञान प्रसविदा करते समय नहीं था, इसलिए यह प्रसविदा व्यर्थ (void) है।

साथ ही, धारा २१ के अनुसार “जब प्रसविदा के दोनों व्यक्ति किसी ऐसे नियम के सम्बन्ध में गलती पर हैं जो भारत में प्रचलित नहीं है तो ऐसी दशा में प्रसविदा व्यर्थ (void) होगी।”†

**उदाहरणार्थ**—A, B से एक ऐसी प्रसविदा करता है जो जर्मनी में विनिमय-पत्र (Bill of Exchange) से सम्बद्ध नियमों में एक भ्रामक विश्वास पर आधारित तथ्य की प्रसविदा व्यर्थ होगी। किन्तु भारत में प्रचलित किसी नियम के आधार पर की गयी गलती के कारण प्रसविदा व्यर्थ नहीं हो सकती।

इसलिए धारा २२ के अनुसार एक पक्ष किसी प्रसविदा के तथ्य (fact) के विषय में गलती पर है तो प्रसविदा व्यर्थ नहीं हो सकती।‡

\* Sec. 20. “Where both the parties to an agreement are under a mistake as to matter of fact essential to the agreement, the agreement is void.”

† Sec 21. “A contract is not voidable because it was caused by a mistake as to any law in force in British India; but a mistake as to a law not in force in British India had the same effect as to a mistake of fact.”

‡ Sec 22. “A contract is not voidable merely because it was caused by one of the parties to it being under a mistake as to a matter of fact.”

**उदाहरण—**A, B से चावल खरीदता है और यह समझता है कि जो चावल मैं खरीदता हूँ वह पुराना है, पर वास्तव में चावल नया है। तब A इस निजी गलती के लिए प्रसविदा व्यर्थ नहीं कर सकता।

किन्तु यदि एक ही पक्षकार गलती पर है तो ऐसी दशा में प्रसविदा तब व्यर्थ होने के लायक (voidable) हो सकती है जब यह सिद्ध या साबित कर दिया जाय कि गलती दूसरे पक्ष के कपट अथवा अमत्य कथन (fraud or misrepresentation) के कारण हुई है।

साधारणतः गलती दो प्रकार की हो सकती है—(१) नियम-सम्बन्धी गलती (mistake of law) तथा (२) तथ्य-सम्बन्धी गलती (mistake of fact)।

**तथ्य-सम्बन्धी गलती (Mistake as to matter of fact)**

यह बतलाया जा चुका है कि भारतीय प्रसविदा विधान की धारा २० के अनुसार जब सविदा के दोनों व्यक्ति सविदा के किसी तथ्य (fact) के सम्बन्ध में गलती पर है तो ऐसी हालत में सहमति स्वतन्त्र नहीं होती और सविदा व्यर्थ होती है। अतः प्रसविदा को तथ्य-सम्बन्धी गलती के आधार पर व्यर्थ (void) घोषित करने के लिए चेष्टा दोनों व्यक्तियों या पार्टियों की तरफ से होनी चाहिए तथा इसे सविदा के किसी आवश्यक तथ्य से सम्बद्ध भी होना चाहिए।

१. पक्षों के इरादे या प्रसविदा की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में गलती (Mistake in expression of contract or intention of parties)—अगर किसी लिखित प्रसविदा में दोनों पक्षों ने एक ही गलती की है जिसकी वजह से वह प्रसविदा दोनों पक्षों की इच्छा को अभिव्यक्त (express) कर रही हो तब सचमुच यह सही प्रसविदा नहीं मानी जाती है। न्यायालय भी अक्सर इस तरह के प्रसविदे को 'न लागू होने लायक' कहता है जिससे उसे यह विश्वास होता है कि प्रसविदा दोनों पक्षों की इच्छा को अभिव्यक्ति (express) नहीं कर रही है। परन्तु अगर कोई गलती किरानी की अमावधानी की वजह से दस्तावेज (document) में हो जाती है और यह गलती स्पष्ट है तब न्यायालय उस गलती को सुधार सकता है। किन्तु न्यायालय एक नयी प्रसविदा नहीं बना सकता, बल्कि उसी प्रसविदा की गलती का सिर्फ सुधार कर सकता है।

२. प्रसविदा की प्रकृति-सम्बन्धी गलती (Mistake as to nature of contract)—अगर दो व्यक्तियों में से एक व्यक्ति प्रसविदा की प्रकृति (nature) के विषय में गलती करता है तो सचमुच जो प्रसविदा वह करना चाहता है वह नहीं हुई, और अगर वह गलती दूसरे व्यक्ति की वजह से कपट (fraud) द्वारा होती है तब भी प्रसविदा व्यर्थ (void) होगी। उदाहरण के लिए हम फोस्टर बनाम मैकिनन\* के मुकदमे को ले सकते हैं। इस मुकदमे की वस्तु-स्थिति (fact) इस प्रकार है—एक वृद्ध तथा दुर्बल व्यक्ति ने जिसकी आँखें कमजोर थी, एक विनिमय-पत्र (Bill of Exchange) पर हस्ताक्षर किया। किन्तु दस्तखत करते समय बूढ़े आदमी ने कागज (document) की प्रकृति (nature) के विषय में पूछनाछ की तो दूसरे व्यक्ति ने बतलाया कि वह उसके लड़के की ईमानदारी का जमानत-पत्र (fidelity guarantee bond) है। न्यायालय ने यह फैसला दिया कि वृद्ध तथा दुर्बल व्यक्ति ने

\* Foster vs. Mackinnon (1869) L. R. 4 C. P. 704.

प्रसंविदा की प्रकृति के विषय में गलती की; किन्तु यह वृद्ध व्यक्ति असावधान नहीं था। यह गलती दूसरे पक्ष द्वारा धोखा देने के कारण ही हुई। अतः यह प्रसंविदा व्यर्थ (void) घोषित की गयी।

३. प्रसंविदा की विषय-वस्तु से सम्बद्ध गलती (Mistake as to subject matter of contract)—पहले बताया जा चुका है कि अगर दोनों पक्ष किसी विषय-वस्तु (subject matter) के सम्बन्ध में गलती पर है तो प्रसंविदा व्यर्थ है; और इस तरह की गलतियाँ विषय-वस्तु के अस्तित्व (existence), इसकी पहचान, इसके कार्यान्वित या आयोजित करने वालों के स्वत्व और इसके मूल्य, सख्या तथा लक्षण या गुण से सम्बद्ध हो सकती हैं।

४. विषय-वस्तु के अस्तित्व से सम्बद्ध गलती (Mistake regarding existence of subject matter)—इस नियम को हम कौटोर्न बनाम हैस्टी\* के मुकदमे से इस प्रकार समझ सकते हैं कि एक जहाज लंदन से बम्बई के लिए रवाना हुआ। जहाज पर की वस्तुओं को खरीदने का प्रस्ताव हुआ था। प्रसंविदा करने वालों के अनुसार जहाज समुद्र में मौजूद था, किन्तु वास्तव में जहाज बहुत पहले ही डूब चुका था और यह बात किसी को मालूम न थी। अतः न्यायालय ने प्रसंविदा को रद्द कर दिया।

५. विषय-वस्तु की पहचान-सम्बन्धी गलती (Mistake regarding identity of subject matter)—अगर प्रसंविदा करने वाले व्यक्ति विषय-वस्तु की पहचान के बारे में आश्वस्त नहीं है तब प्रसंविदा व्यर्थ (void) होती है।

उदाहरणार्थ—A, B से सूरत की कपास (Surat cotton) खरीदने की प्रसंविदा करता है जो ex-peerless नामक जहाज पर बन्दरगाह में आ रहा है। Ex-peerless नाम के दो जहाज थे। यहाँ पर इसी नाम के जहाज पर लदी हुई वस्तु को बेचने की प्रसंविदा हुई थी। किन्तु विक्रेता के दिमाग में इस नाम का पहला जहाज तथा क्रेता के दिमाग में इस नाम का दूसरा जहाज था। अतः इस प्रसंविदा की विषय-वस्तु को न पहचानने के कारण यह प्रसंविदा व्यर्थ घोषित की गयी।

६. विषय-वस्तु की स्वत्व-सम्बन्धी गलती (Mistake regarding title to subject matter)—अगर एक पार्टी यह विश्वास करती है कि विक्रेता जिस वस्तु को बेच रहा है, वह उसका मालिक है, किन्तु सचमुच वह उसका मालिक नहीं है तो इस प्रकार की प्रसंविदा व्यर्थ (void) होगी। उदाहरणार्थ—अगर A एक मकान, जिसका वह मालिक नहीं है, B के हाथ बेच रहा है तब यह विक्रय वैधानिक नहीं होगा।

७. विषय-वस्तु की मूल्य-सम्बन्धी गलती (Mistake regarding price of subject matter)—विक्रय-वस्तु के मूल्य के विषय में वास्तविक गलती हो जाना पर प्रसंविदा व्यर्थ हो जाती है। उदाहरणार्थ, A अपनी सम्पत्ति B के हाथ बेचना चाहता था और सम्पत्ति का मूल्य २,३४० पौण्ड लिखना चाहता था, पर गलती से १,३४० पौण्ड लिख दिया गया और क्रेता ने इस गलती को जानते हुए भी प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। न्यायालय ने यह प्रसंविदा व्यर्थ (void) घोषित की।

८. विषय-वस्तु की सख्या-सम्बन्धी गलती (Mistake as to quantity of subject matter)—जब किसी प्रसंविदा में विषय-वस्तु की सख्या के सम्बन्ध में गलती होती है तब प्रसंविदा व्यर्थ (void) होती है। उदाहरणार्थ, A, B से सोलह

मन चावल खरीदने की संविदा करता है और B समझता है कि वह साठ मन चावल खरीदेगा। अगर B साठ मन चावल भेज देता है और A सिर्फ सोलह मन रख कर बाकी लौटा देता है तब A पर B खर्च का दावा करे तो न्यायालय से फैसला होगा कि A सिर्फ सोलह मन का भागी है।

९. **विषय-वस्तु की गुण-सम्बन्धी गलती (Mistake as to quality of subject matter)**—अगर किसी गलती के कारण विषय-वस्तु में जिस वस्तु के लिए सौदा किया गया, उसके लक्षण या गुण मौजूद नहीं हैं तो प्रसंविदा व्यर्थ (void) होगी।

१०. **जिस मनुष्य के साथ प्रसंविदा की जा रही है उस मनुष्य को पहचानने में गलती (Mistake as to identity of person contracted with)**—इस तरह की गलती तभी सही समझी जायगी जबकि गलती दूसरे पक्ष की असावधानी से या कपट-प्रयोग करने से हो गयी हो।

**उदाहरणार्थ**—हमलोग काण्डी बनाम लिण्डसे\* के मुकदमे के फैसले को ले सकते हैं—इसके फैसले के अनुसार जिस मनुष्य के साथ प्रसंविदा की गयी है उसको पहचानने में गलती के कारण प्रसंविदा दूषित होकर व्यर्थ हो जाती है।

फिर कानून के मृताविक, यदि कोई व्यक्ति A के साथ संविदा करने का अभिप्राय रखता है तो B इसके अधीन अपने-आपको कोई अधिकार नहीं दे सकता। इसलिए जब कोई ऐसी संविदा की जाती है, तब कोई अन्य व्यक्ति संविदा लागू नहीं कर सकता।

**उदाहरणार्थ**—Lake vs. Simmos (1927) A. C. 487 के मुकदमे में एक स्त्री ने जौहरियों की एक फर्म के सामने कपटपूर्वक यह कर कि वह किसी एक बैरन (Baron) की पत्नी है, खरीदने की दृष्टि से अपने पति को दिखाने का बहाना करके मोतियों के दो हार ले लिये। निर्णय यह हुआ कि जौहरियों और स्त्री के बीच कोई संविदा नहीं है और उस स्त्री से हार खरीदने वाला उसका स्वामी नहीं बनता और उसे वे हार जौहरियों को लौटाने चाहिए। इस नियम का मतलब यह है कि यद्यपि स्त्री ने भौतिक रूप से कब्जा ले लिया, पर यहाँ मानसिक अनुमति नहीं थी क्योंकि जौहरी उसके साथ सौदा करने का अभिप्राय नहीं रखते थे, बल्कि सर्वथा भिन्न व्यक्ति, बैरन की पत्नी से व्यवहार करने का अभिप्राय रखते थे।

११. **बैधानिक गलती (Mistake of law)**—धारा २१ के नियम पहले बतलाये जा चुके हैं कि विदेशी कानून के अलावा किसी भी कानून की गलती आत्म-रक्षा (self-defence) का आधार नहीं बन सकती और यहाँ (भारत में भी) जो नियम प्रचलित हैं उनकी गलती के कारण प्रसंविदा व्यर्थ नहीं हो सकती। जो मनुष्य, समाज में रहते हैं और साधारण प्रकृति के हैं उनसे यह उम्मीद की जाती है कि यदि वे समाज के साधारण कानूनों को जानते हुए भी कोई कानूनी गलती कर बैठते हैं तो यह उनकी सद्दोष असावधानी है, और बाद में इस तरह की गलती को वे अपनी प्रतिरक्षा (self defence) के रूप में पेश नहीं कर सकते। परन्तु कोई व्यक्ति तथ्य-सम्बन्धी (facts) गलती के लिए प्रतिरक्षा को पेश कर सकता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति तथ्य-सम्बन्धी सभी बातों को जानने वाला अनुमानित नहीं किया जा सकता। इसीलिए यह कहा गया है कि विधान की अनभिज्ञता क्षम्य नहीं है, लेकिन तथ्य की अनभिज्ञता क्षम्य है। "Ignorance of law is no excuse

but ignorance of fact is excusable.'

अभी बताया जा चुका है कि विधान-सम्बन्धी गलती के कारण कोई भी प्रसविदा व्यर्थ या व्यर्थ होने के योग्य घोषित नहीं की जा सकती; पर इस नियम के भी कुछ अपवाद (exceptions) हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. जहाँ गलती मौलिक (fundamental) है कि वह पार्टियों के बीच वास्तविक संविदा के पूरा होने में रुकावट डालती है।

२. जहाँ वैयक्तिक अधिकार के अस्तित्व से सम्बन्ध रखनेवाली गलती हो।

३. जहाँ विदेशी विधान-सम्बन्धी गलती हो।

४. जहाँ न्यायालय के अधिकारी द्वारा धन या दूसरी सम्पत्ति की प्राप्ति के परिणाम में परिवर्तन हो जाता हो।

अन्त में भारतीय प्रतविदा-विधान की धारा ७२ में एक नियम और है जिसके तथ्य (fact)-सम्बन्धी गलती के अन्दर दिया हुआ धन वापस लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, A और B दोनों मिलकर C से ₹ १,००० रु० उधार लेते हैं। केवल A इस रकम को अदा कर देता है। B इस बात को न जानने के कारण C को ₹ १,००० रु० फिर से दे देता है। अतः यहाँ पर C, B को ₹ १,००० रु० लौटा देने के लिए बाध्य होगा।

### University Questions

1. In what circumstances does mistake avoid a contract? B bought rice from A by sample. The rice was new. B thought he was buying old rice. Can B avoid the contract?

[Patna 1952 A; Bihar '56 A]

(किन परिस्थितियों में गलती प्रसविदा को भंग कर देती है?)

[Ans. No, B cannot. Under Sec 22]

2. "Two or more persons are said to consent when they agree upon the same thing in the same sense." Explain the meaning with illustrations and also contract the case of parties apparently but not really agreeing upon the same matter and the case of both parties being under a mistake of fact relating to the matter.

[Agra 47; Cal. 46]

3. Solve the following Problems—

(a) A and B, being traders, enter upon a contract. A has private information of a change in prices which would affect B's willingness to proceed with the contract. Is A bound to inform B?

[Ans. A is not bound to inform B. Sec. 17; Example (d)]

(b) A agrees to buy from B a certain horse. It turns out that the horse was dead at the time of the bargain, though neither party was aware of the fact. Advise the parties.

[Ans. The agreement is void. Sec. 20 (b)].

अनुबन्ध इस प्रकार का न हो कि वह किसी कानून के द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया हो

(The agreement must not have been one which has been expressly declared to be void under the Act)

यह बतलाया जा चुका है कि भारतीय प्रसविदा विधान की धारा १० के अनुसार किसी प्रसविदा को वैध प्रसविदा (legal contract) होने के लिए इस प्रकार का नहीं होना चाहिए जो किसी नियम (Act) के द्वारा स्पष्ट रूप से अवैध घोषित कर दिया गया हो। इसलिए भारतीय प्रसविदा विधान की भिन्न-भिन्न धाराओं के अनुसार निम्नलिखित अनुबन्ध (agreements) वैध प्रसविदा (legal contracts) का रूप धारण नहीं कर सकते—

१. प्रसविदा विधान की धारा २३ के अनुसार वैसे अनुबन्ध जिनका उद्देश्य अवैध है; \* अगर

(क) किसी प्रसविदा का उद्देश्य राज-नियम के द्वारा निषिद्ध है।† जैसे A ने B से कहा कि अगर आप वह डकैती का मुकदमा, जो आपने मेरे खिलाफ किया है, उठा लीजियेगा तब मैं ५०० रु० दूंगा। यह अनुबन्ध विवर्जित (void) होगा।

(ख) जब किसी प्रसविदा का उद्देश्य इस तरह का हो कि अगर उसे पूरा करने की अनुमति दे दी जाय तो वह किसी अधिनियम के आदेशों को निष्फल कर देगा।‡

उदाहरण —A, B से कहता है कि अगर तुम मुझे १,००० रु० दो तो मैं तुम्हें पैरवी द्वारा नौकरी दिलवा दूँ। इस प्रकार का अनुबन्ध गैर-कानूनी होगा, क्योंकि प्रसविदा का प्रतिफल गैर-कानूनी है।

•(ग) अगर किसी प्रसविदा का उद्देश्य धोखा देने का हो।\*\* जैसे—A, B और C आपस में यह तय करते हैं कि हमलोग राम को व्यापार में ठगकर जो पैसा प्राप्त करेंगे उसे आपस में बाँट लेंगे। इस तरह की प्रसविदा अवैध है, क्योंकि उसका उद्देश्य धोखा देने का है।

(घ) यदि प्रसविदा का उद्देश्य किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचाना हो।‡† जैसे—A, B से कहता है अगर तुम राम के मुकदमे से, जिसमें तुम गवाही दे रहे हो, निश्चित तारीख को गैरहाजिर हो जाओ तो मैं तुम्हें २०० रु० दूंगा। यह प्रसविदा इसलिए अवैध है कि यहाँ राम के व्यक्तित्व तथा उसकी

\* Agreements, the object of which is unlawful.

† When the object of an agreement is forbidden by law.

‡ When the object of an agreement is of such a nature that if permitted, it would defeat the provision of any law.

\*\* If the object of an agreement is fraudulent.

‡† If the object of an agreement involves or implies injury to the person or property of another.



सम्पत्ति दोनों की हानि होगी।

(ङ) जब किसी प्रसविदा का उद्देश्य दुराचार या व्यभिचार करना हो।\* जैसे— A, B से अनुबन्ध करता है कि मैं अपनी लड़की को वेश्यावृत्ति के लिए किराये पर दूँगा। यह अनुबन्ध भी विवर्जित (void) है, क्योंकि प्रसविदा का उद्देश्य दुराचार एवं व्यभिचार है। इसी तरह किसी नर्तकी की पोष्यपुत्री का अनैतिक और अवैध साझेदारी के शेयर की रकम के लिए किया हुआ मुकदमा नहीं टिक सकता।†

फिर, अगर कोई जमींदार या मकान-मालिक अपने मकान को वेश्यावृत्ति के लिए, यह जानते हुए कि इसमें वेश्यावृत्ति होगी, किराये पर लगाता है, तब वह किराया भी कानूनी तरीके से वसूल नहीं कर सकता है; क्योंकि प्रसविदा का उद्देश्य दुराचार एवं व्यभिचार है।‡

फिर, किसी वेश्या को जान-बूझकर उसके व्यभिचारी व्यापार को चलाने के लिए कर्ज के रूप में दिया गया रुपया वसूल नहीं किया जा सकता।\*‡

फिर, किसी सराय के मालिक द्वारा किसी लड़की को लोगों को आकृष्ट करने और वेश्या-गमन को प्रोत्साहित करने के लिए दिये गये आभूषण वैध रीति से वापस नहीं लिये जा सकते।\*†

(च) जब किसी प्रसविदा का उद्देश्य लोकनीति के विरुद्ध हो।\*‡

**उदाहरणार्थ**—अगर A अपना मकान B को जुआ खेलने के लिए किराये पर देता है तब यह प्रसविदा मान्य (valid) नहीं है, क्योंकि यह लोकनीति के विरुद्ध (opposed to public policy) है।

**लोकनीति के विरुद्ध समझौते (Agreements Opposed to Public Policy)**

लोकनीति का सिद्धान्त वह है जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति कानूनी तरीके से ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकता है जिसकी प्रकृति जनता या उसके हित के प्रति हानिकारक समझी जाती हो। हालाँकि लोकनीति-विरोधी समझौतों की कोई अच्छी सूची तैयार नहीं की जा सकती है, फिर भी सर्वसाधारण के हितों के प्रतिकूल किये गये कामों को लोकनीति के विरुद्ध माना जाता है। जॉनसन बनाम ड्राइटोनिखन कंसोलीडेटेड माइन्स लि० (Jhonson vs. Drietonein Consolidated Mines Ltd 1902 A. C. 484) के मुकदमे में लार्ड हेल्सबरी ने कहा कि “लोकनीति के

\* “When the object of an agreement is immoral.”

† “No suit would lie by an adopted daughter of a dancing girl for an amount of a share of an immoral and illegal partnership.”

‡ “On account of its immoral object a landlord cannot recover the rent of lodgings knowingly let to a prostitute who carries on vocation there.”

\*‡ “Money lent to a prostitute expressly to enable her to carry on her trade cannot be recovered.”

\*† “Ornaments lent by a brothel keeper for attracting men and to encourage prostitution cannot be recovered back.”

\*‡ “When the object of agreement be opposed to public-policy; 26, 27, 28.”

अन्दर आने वाले समझौतों में अब कोई नया नियम नहीं जोड़ा जा सकता है।” इसलिए कोई भी न्यायालय लोकनीति का नया अर्थ लगाने की सामर्थ्य नहीं रखता है।

भारतवर्ष में यह भारतीय प्रसंविदा सन्निधय की धारा २३ के अन्दर न्यायालयों को लोकहित और लोकनीति से सम्बद्ध प्रश्नों का निर्णय करने का अधिकार दिया गया है। लेकिन इस अधिकार का इस्तेमाल सिर्फ ऐसे ही स्पष्ट मामलों में ही किया जाता है जिनमें जनता का अपकार सही माने में निर्विवाद होना हो।

निम्नलिखित कुछ परिस्थितियों में समझौतों को न्यायालय द्वारा लोकनीति के विरुद्ध माना गया है—

१. शत्रु के साथ व्यापार (Trading with the Enemy)—भारत का कोई भी नागरिक सरकार की पूर्व-अनुमति के बिना विदेशी शत्रु से व्यापार नहीं कर सकता। लड़ाई शुरू होने के पहले सभी अनुबन्धों को अगर पक्षकारों अथवा सरकार ने पहले से ही रद्द न कर दिया हो तो युद्धसमाप्ति के बाद उनको निष्पादित किया जा सकता है।

२. दण्डनीय मुकदमे के संचालन में बाधा डालने वाले समझौते (Agreements for striding Criminal Prosecution)—अगर किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है तब वह दण्ड का भागी होता है। अतः कोई भी न्यायालय किसी भी ऐसे समझौते का प्रवर्तन नहीं करेगा जिसमें कानून के प्रशासन को न्यायधीशों के हाथों से निकालकर व्यक्तियों के हाथ में देने की कोशिश की गयी हो।\* लेकिन किसी भी दीवानी मुकदमे का पत्र-निर्णय के लिए सौंपना पूर्णतः वैध होता है। उदाहरणार्थ, अगर X, Y को वचन देता है कि यह चोरी के उस मुकदमे का परित्याग कर देगा जो उसने Y के खिलाफ चलाया हुआ है, अगर Y उसे चोरी के कारण होने वाली हानि के लिए प्रतिकार दे दे। Y इसके लिए तैयार हो जाता है। यह समझौता अमान्य होगा क्योंकि इसका उद्देश्य एक दण्डनीय अपराध-सम्बन्धी अभियोग में रुकावट डालना है।

३. परिसीमा की हालत में परिवर्तन करने के सौदे (Agreements to make Alterations in the Period of Limitation) —जिन समझौतों का उद्देश्य भारतीय परिसीमा सन्निधय द्वारा निश्चित परिसीमा-अवधि में परिवर्तन करना होता है, वे अमान्य होते हैं। समझौतों के द्वारा वैधानिक प्रावधानों को निष्क्रिय अथवा बेकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक कि उस सन्निधय में ही इस प्रकार का प्रावधान मौजूद न हो।

४. विवाह की दलाली की प्रसंविदा (Marriage Brokerage Contracts)—किसी तरह का प्रतिफल अथवा पारितोषिक प्राप्त करने के लिए किये गये विवाह-सम्बन्ध का समझौता अमान्य होगा, हालाँकि विवाह की मान्यता में कोई अन्तर नहीं आयगा। लेकिन वास्तविक रूप से खर्च किया गया धन वापस नहीं किया जा सकता है और अगर धन मिला ही न हो, तो जो भी इनाम पाने का वचन मिला था उसकी प्राप्ति के लिए भी मुकदमा नहीं चनाया जा सकता है।† अगर धन दे दिया जा चुका है लेकिन शादी न हो सकी है तब अवैधानिक उद्देश्य पूरा न होने के कारण

\* Sudhindra Kumar vs Ganesh Chandra (1938) Cal. 846; Eastern Mercantile Bank vs. Phillip (1960) er. 194.

† Baldeo Das vs. Maha Maya. (1911) 15. C. W. N. 447.

धन को वापस लिया जा सकता है।

**उदाहरण—**(क) जौन ने एक पादरी को यह वचन दिया कि 'अगर वह उसके लिए एक और पत्नी खोज लायेगा तो वह उसे 500 रु० देगा। यह वचन अवैधानिक है, इसलिए अप्रवर्तनीय है।

(ख) माता-पिता या सरक्षकों को अपनी लड़की की शादी के लिए प्रतिफल में कोई भी धनराशि देने का समझौता अमान्य होता है।

५. अनुचित रूप से मुकदमेबाजी को प्रोत्साहन देनेवाले समझौते (Agreements for the Improper Promotion of Litigation)—इस सम्बन्ध में अंगरेजी सन्निधयम के अनुसार दो तरह के समझौते होते हैं—मैटीनेन्स (maintenance) और (ii) चैम्पर्टी (champerty)।

मैटीनेन्स का अर्थ ऐसा सौदा होता है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किसी मुकदमे को चालू रखने के विचार से आर्थिक या अन्य प्रकार की सहायता देने का वचन देता है, जिसमें स्वयं उसका कोई हित नहीं होता है।

चैम्पर्टी के समझौते में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को मुकदमे के द्वारा पुनः सम्पत्ति प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है और वह दूसरा व्यक्ति फलस्वरूप पहले व्यक्ति को पुनः प्राप्त की गयी सम्पत्ति में से कुछ भाग देने की प्रतिज्ञा करता है।

इंग्लैण्ड में इस तरह के सभी समझौते अवैध एवं अप्रवर्तनीय होने हैं लेकिन भारत में ऐसे समझौतों को अगर वे किसी ऐसे दावे की वास्तविक मदद करने के लिए किये जायें, जिनके न्यायोचित होने का विश्वास हो और प्रतिफल की राशि भी वचित हो, पूर्णतः वैध माना जाता है। भारत में इस तरह के समझौते अभी अमान्य माने जाते हैं जब वे लोकनीति के खिलाफ हों। यह सिद्धान्त न्याय, समन्याय एवं अन्तर्विवेक (justice, equality and good conscience) पर आधारित है और अगर कोई समझौता इसके विरुद्ध प्रकृति का होगा तब प्रवर्तनीय नहीं माना जायगा। उदाहरण—अगर X, Y की सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए होनेवाला सम्पूर्ण खर्च उठाने को तैयार है। Y एक मानले में सम्पत्ति का 60 % भाग, दूसरे में 15% और तीसरे में 50% भाग X को देने का समझौता करता है। चूँकि इस समझौते का प्रतिफल अनुचित है इसलिए पक्ष सिर्फ उतना ही धन एवं उसका सूद ही वसूल कर सकता है जो उसने वास्तविक तरीके से खर्च किया था।

६. कर्त्तव्य के पालन के विरुद्ध समझौते (Agreements Creating Interest Oppose to Duty)—अगर कोई व्यक्ति इस तरह समझौता करे जिसके कारण उसे अपने सामाजिक या व्यावसायिक कर्त्तव्यों के खिलाफ काम करना पड़ जाय तो वह समझौता अमान्य होता है।

अगर किसी एजेंट द्वारा अपने लिए गुप्त लाभ कमाने का समझौता, किसी लोक-अधिकारी द्वारा सम्पत्ति खरीदने का समझौता जय कि सन्निधयम द्वारा उसका सम्पत्ति खरीदना अमान्य हो, या किसी सम्पादक द्वारा कुछ प्रतिफल के बदले में किसी खास व्यक्ति से सम्बद्ध समाचारों को अपने समाचारपत्र में न छापने का समझौता करना आदि सभी अमान्य समझौते होंगे क्योंकि ये उन व्यक्तियों के कर्त्तव्यों के विपरीत होंगे। लोकनीति के खिलाफ तो ये हैं ही बल्कि इनसे अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति को भी हानि पहुँचेगी।

७. वैवाहिक सम्बन्धों में हस्तक्षेप करने के समझौते (Agreements interfering with Marital Status)—वैवाहिक सम्बन्ध में हस्तक्षेप करनेवाले सभी

समझौते अमान्य होते हैं। उदाहरणार्थ— किसी स्त्री को इस बात के लिए रुपया उधार देने का समझौता करना कि वह अपने पति को तलाक (divorce) देकर दूसरे व्यक्ति से विवाह कर ले, कानून के निगाह में अमान्य होता है क्योंकि इससे लोगों को वैवाहिक रिश्ता तोड़ने का प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए यह लोकनीति के विरुद्ध समझा जाता है।

८. सार्वजनिक पदों की विक्री (Traffic in Public Offices)— अगर आर्थिक प्रतिफल के बदले में सार्वजनिक पदों की विक्री के समझौते को कानूनी मान्यता दे दी जाय तो सार्वजनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार फैल जायगा। इसलिए इस तरह के समझौते अमान्य घोषित कर दिये गये हैं। उदाहरणार्थ— अगर जौन अपने लड़के को किसी सरकारी दफ्तर में नौकरी दिलवाने के लिए घूस (रिश्वत) देने का वचन स्मिथ को देता है तो ऐसा वचन अमान्य है क्योंकि घूस लेकर नौकरी देना कानून द्वारा वर्जित है और यह अपराध माना गया है।

९. पैत्रिक अधिकारों में रुकावट के समझौते (Agreements in Restraint of Paternal Rights)— नाबालिग बच्चों की देखरेख की जिम्मेवारी साधारणतः पिता की होती है। पिता अगर न रहे तब यह भार माँ के ऊपर आ जाता है। किसी भी समझौते द्वारा इस अधिकार की खरीद-विक्री नहीं हो सकती है। एक मुकदमे में एक पिता ने अपने दो नाबालिग बच्चों की देखरेख किसी महिला को कुछ प्रतिफल के लिए हस्तांतरित करने का समझौता किया था और बच्चों को वापस न लेने का भी वचन दिया था। न्यायालय ने इस तरह के समझौते को अमान्य बताया।

ऊपर लिखी गयी बातों के अलावा विवाह को रोकने के समझौते, वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने के समझौते, व्यापार की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने-वाले समझौते आदि भी लोकनीति के खिलाफ होते हैं।

अब कुछ ऐसे अनुबन्धों का वर्णन किया जा रहा है जो वैधानिक दृष्टि से मान्य नहीं हैं तथा विधान द्वारा विवर्जित (void) घोषित किये जा चुके हैं।\* ये निम्न-लिखित हैं—

१. गलती से हुए अनुबन्ध (Agreement under mistake : Sec. 20)— यह पहले बताया जा चुका है कि अगर अनुबन्ध (agreement) में दोनों पार्टियों में से किसी को विषय की जानकारी न हो तथा दोनों तथ्य की गलती (mistake of fact) कर रहे हों तो पूर्ण समझौते के प्रधान अंग के अभाव में प्रसविदा का होना असम्भव है। इसलिए ऐसा अनुबन्ध विवर्जित (void) होगा। जैसे A ने B से एक घोड़ा खरीदने-बेचने का समझौता किया। किन्तु जिस समय समझौता हुआ उसके पहले ही घोड़ा मर चुका था, जिसकी जानकारी उन दोनों में से किसी को न थी। अतः अनुबन्ध विवर्जित (void) हुआ।

२. यदि समझौता विधि-विहित ऋद्धि के लिए न हो तो वह विवर्जित है।† जैसे—A, B से एक मकान भाड़े पर इस विचार से लेता है कि वह उस मकान में विद्रोहपूर्ण भाषण देगा। यह समझौता विवर्जित (void) है।

३. जो प्रतिफल (consideration) वैधानिक दृष्टि से मान्य या वैध नहीं है उसके लिए किया गया किसी भी प्रकार का अनुबन्ध विवर्जित (void) है।‡

\* Contracts which are declared to be void.

† Agreements which have illegal objects. Secs. 23 and 24.

‡ Agreements which have illegal consideration. Secs. 23 and 24.

उदाहरणार्थ—A, B से कहता है कि अगर तुम C को जान से मार दोगे तो मैं तुम्हें १,००० रु० दूंगा। यह समझौता विवर्जित है।

४. जो अनुबन्ध विधान द्वारा निषिद्ध हो या जो वैधानिक नियमों के प्रतिकूल हो, वह मान्य नहीं है।\* जैसे A अपने-आप पर एक हुण्डी बनाता है जो रिजर्व बैंक ऐक्ट (Reserve Bank Act) के द्वारा मान्य नहीं है।

५. यदि अनुबन्ध इस प्रकार हो जिसे न्यायालय अनैतिक (immoral) समझता हो तो वह विवर्जित है।† (Hussain Ali vs Duibai, 1924; Bom. 135)

उदाहरणार्थ—X अपनी लड़की Y को Z के साथ भाड़े पर वेश्यावृत्ति के लिए दे देता है तब यह अनुबन्ध विवर्जित है। इस प्रकार यदि वेश्यावृत्ति के लिए कर्ज दिया जाय तो वह वापस नहीं मिल सकता।

६. जिस अनुबन्ध का उद्देश्य कपटपूर्ण या जालसाजी हो वह अनुबन्ध विवर्जित है।‡

उदाहरणार्थ—A, B से कहता है कि आप यह मकान खरीद लीजिये, इस पर किसी का कोई अधिकार नहीं है और इसमें कोई खराबी भी नहीं है। परन्तु वह मकान दूसरे के हाथ बेच दिया गया था और उसमें जहाँ-तहाँ भूकम्प होने की वजह से दरार हो गयी है। यह अनुबन्ध कपटपूर्ण है, इसलिए यह मान्य नहीं है।

७. जब किसी अनुबन्ध का उद्देश्य लोकनीति के विरुद्ध (opposed to public policy) घोषित किया जा चुका हो,\*\* तब वह विवर्जित समझा जायगा। फिर जो अनुबन्ध जनता या राज्य की भलाई के खिलाफ हो उसे सार्वजनिक या लोकनीति के विरुद्ध समझते हैं। उदाहरणार्थ, अपने देश के दुश्मन से व्यापार करने की प्रसविदा करना, किसी पर आक्रमण (assault) करने का अनुबन्ध करना, पब्लिक ऑफिस (public office) विक्री करने का समझौता करना, न्याय के मार्ग में अड़चन डालने का समझौता करना, अनैतिक बातों के लिए अनुबन्ध करना तथा अपने मकान को जुए वर्गरह के लिए भाड़े पर लगाना इत्यादि लोकनीति के विरुद्ध समझे जाते हैं।

८. भारतीय प्रसविदा-विधान की धारा २५ के अनुसार बिना प्रतिफल की संविदाएँ, सिवा इस धारा के अपवादों के, मान्य नहीं हैं।†\*

उदाहरणार्थ—X बिना किसी प्रतिफल (consideration) के Y को ५,००० रु० देने का वादा करता है। यह विवर्जित (void) है।

स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित अनुबन्ध (Agreements Expressly Declared As Void)

[धाराएँ २६-३० एवं ५६]

१. विवाह में रूकावट डालनेवाले अनुबन्ध (Agreements in Restraint of

\* Agreements which are forbidden by or opposed to law. Sec. 23.

† Immoral Agreements. Sec. 23.

‡ Agreements with an object to defraud. Sec. 23.

\*\* Agreements which are opposed to public policy. Sec. 23.

†\* Agreements without consideration are void, except those covered by the exception of Sec. 25.

Marriage) [धारा २६]—भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा २६ के अनुसार वैसा अनुबन्ध जो नाबालिग के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति के विवाह में रूकावट डालता हो, मान्य नहीं होता।\*

उदाहरणार्थ—(क) X Y के विवाहोत्सव पर Y से कहता है कि तुम इस स्त्री के जीवन तक दूसरी शादी और करो तो हम तुम्हें हर एक साल ८०० रु० दिया करेंगे। यह विवर्जित अनुबन्ध है।

(ख) X, Y से कहता है कि यदि तुम आजीवन ब्रह्मचारी रहो तो हम तुम्हें ७०० रु० प्रतिमाह दिया करेंगे। यह समझौता भी मान्य नहीं है।

(ग) X, Y से कहता है अगर तुम Z से विवाह न करो तो मैं तुम्हें ६०० रु० दूँगा। यह अनुबन्ध मान्य है।

(घ) A, जो B नामक वर (bridegroom) का पिता है, X से, जो Y नामक दुल्हिन (bride) का पिता है, कहता है कि तुम्हें B की शादी में ५००० रु० देना होगा। यह अनुबन्ध विवर्जित है। परन्तु हिन्दू विधान (Hindu Law) के अनुसार यदि लड़की के पिता ने रुपया चुका दिया है तो वह फिर लड़के के पिता से वापस नहीं ले सकता और यदि लड़की का पिता नहीं देता है तो उसे लड़के का पिता कानूनी तरीके से माँग नहीं सकता। यदि शादी नहीं होती है और लड़की के पिता ने कुछ रुपया चुका दिया है तो उसे वह रुपया वापस मिल जायगा।

२ व्यापार में रूकावट डालनेवाले अनुबन्ध (Agreements in Restraint of Trade) [धारा २७]—भारतीय प्रसंविदा विधान की धारा २७ के अनुसार व्यापार में रूकावट डालनेवाली प्रसंविदा, सिवा इस धारा के अववादों को छोड़कर जो अनुबन्ध किया जाय वह विवर्जित है।†

उदाहरणार्थ—(i) व्यापारिक संगठन (trade combination) जो आपस की प्रतियोगिता (competition) को रोकने तथा लाभ-वितरण (profit pooling) के लिए हो, उसका अनुबन्ध मान्य (valid) है।

(ii) जो अनुबन्ध सभी पक्षों के लाभ के लिए नहीं, बल्कि एकाधिकार (monopoly) कायम करने के लिए हो, वह विवर्जित है।

(iii) राम, श्याम से कहता है कि अगर तुम मेरी पान की दुकान के सामने अपनी पान की दुकान न खोलो तो मैं १,००० रु० दूँगा। यह अनुबन्ध विवर्जित है।

(iv) फिर Oakes & Co vs. Jackson (1876) 1 Mad. 134 के मुकदमे में मुद्दालह (defendant) ने मुद्दै (plaintiff) से यह वादा किया कि वह कभी भी किसी दूसरी जगह मजदूरी नहीं करेगा। बाद में उसने पहली जगह पर काम करना छोड़ दिया। नियोजक (employer) ने उस पर मुकदमा किया। पर अदालत-से फैसला हुआ कि यह अनुबन्ध मान्य नहीं है क्योंकि मजदूर को यह अधिकार है कि वह जहाँ चाहे, काम कर सकता है।

(v) इसी तरह का एक मुकदमा शेख कालू बनाम रामशरण भगत ‡ के मुकदमे में पटना सिटी (Patna City) की ३० कंधी बनानेवाली कम्पनियों में से

\* Agreements in restraint of marriage of any person other than a minor. Sec. 26.

† Agreements in restraint of trade except those covered by the exception of Sec. 27.

‡ Shaikh Kalu vs Ram Saran Bhagat (1939) C. W. U 388

२९ ने रामशरण भगत से यह वादा किया कि वे रामशरण भगत के अलावा किसी दूसरे को अपनी कंधियाँ विक्री नहीं करेंगी और उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि अगर रामशरण को पटना, कलकत्ता और दूसरी जगह पर इन कंधियों का बाजार न मिल सके तो वह उन कंधियों को लेने से इनकार कर सकता है। न्यायालय से यह समझौता विवर्जित हुआ।

**अपवाद (Exceptions)**— भारतीय प्रसविदा-विधान की २७वीं धारा में ऊपर लिखे गये नियम के कुछ अपवाद भी हैं जो इस प्रकार हैं—

(i) जब कोई अपने व्यापार की ख्याति (goodwill) बेचता है—अगर कोई व्यक्ति अपने व्यापार (business) की विक्री करते समय उसकी ख्याति (goodwill) भी बेच देता है, तब खरीदार बेचनेवाले से यह वादा ले सकता है कि वह (goodwill) बेचनेवाला किन्हीं निश्चित स्थानीय सीमाओं (specified local limits) के भीतर तब तक उस प्रकार का व्यापार नहीं करेगा जब तक कि खरीदार या प्रसिद्धि (goodwill) खरीदनेवाले व्यक्ति व्यापार करते रहेंगे।

(ii) साझा भग होने के पहले साझेदार के बीच समझौता\*—साझेदारी (partnership) भंग होने पर या भंग होने के कुछ लक्षण दिखलाई पड़ने पर साझेदार इस पर राजी हो सकते हैं कि साझेदारी के कुछ या सभी साझेदार किन्हीं निश्चित स्थानीय सीमाओं (specified local limits) के भीतर इस प्रकार का व्यापार नहीं करेंगे। [धारा ५४]

(iii) कोई साझेदार अपने अन्य साझेदारों से यह समझौता कर सकता है कि साझेदार न रहने पर वह फर्म के कारबार जैसा कोई कारबार उल्लिखित अवधि के भीतर और उल्लिखित सीमाओं के भीतर नहीं करेगा, बशर्त्त कि निबंधन (restriction) युक्तियुक्त हों। [भारतीय साझेदारी सन्निधय, धारा ३६ (२)]

(iv) साझेदारी कायम रहने के समय फिर आगे साझेदार इस बात पर भी समझौता कर सकते हैं कि जब तक वे साझेदार रहेंगे तब तक साझे को छोड़कर कोई दूसरा व्यापार नहीं करेंगे। [भारतीय साझेदारी सन्निधय, धारा ११ (२)]

(v) फिर, अगर नौकरी करनेवाला व्यक्ति अपने नियुक्ति-कर्त्ता (employer) से प्रतिज्ञा करे कि वह एक निश्चित समय तक इस काम को छोड़कर कहीं दूसरी जगह काम करने नहीं जायगा। किसी निश्चित अवधि तक अनन्यतः (exclusively) एक व्यक्ति की सेवा करने का समझौता विधिपूर्ण समझौता है। [Charlswarth vs. Meedonald (1899) 23 Bomb. 103]

(vi) जब कोई व्यक्ति अपनी चीज को बेचने के लिए दूसरे से वादा करता है तब वह फिर उस चीज को तीसरे के हाथ नहीं बेच सकता। इस तरह की रोक मान्य है।

**३. वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालनेवाले अनुबन्ध (Agreements in Restraint of Legal Proceedings)** [धारा २८]—भारतीय प्रसविदा की धारा २८ के अनुसार पचायन को सुपुर्द करनेवाली सविदा के अतिरिक्त वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालनेवाली सभी सविदाएँ विवर्जित (void) हैं; क्योंकि पंचों का फैसला अपील होने पर रद्द किया जा सकता है या परिवर्तित किया जा सकता है। किन्तु

\* Agreement between partners pri r to dissolution.

+ Agreement in restraint of legal proceedings except agreement

पंचों के फैसलों को अन्तिम निर्णय (final decision) बनाने की संविदा, गैरकानूनी होगी। उदाहरणार्थ—

(i) X, एक अपराधी से कहता है कि यदि तुम मुझे ७०० रु० दो तो मैं जज से पैरवी कर तुम्हारे पिता को जेल से छुड़ा दूंगा। यह प्रसंविदा विवर्जित है।

(ii) X, Y से कहता है कि तुम जीतनेवाले रुपये का आधा रुपया मुझे दे दोगे तो मैं तुम्हें मुकदमा जीतने में रुपये की मदद करूंगा। यह अनुबन्ध विवर्जित है।

ऊपर बतलाया गया है कि वैधानिक रीति का दुरुपयोग करने की प्रसंविदा विवर्जित होती है। इसके सुन्दर उदाहरण अँगरेजी कानून (English Law) के मेण्टीनेन्स तथा चैम्पर्टी (maintenance and champerty) हैं।

मेण्टीनेन्स (maintenance) वह कर्म है जिसमें अगर कोई व्यक्ति किसी ऐसे मुकदमे में किसी पक्ष को रखा या किसी दूसरी तरह से मदद करने का वचन देता है जिसमें उसका कोई हित नहीं है तो ऐसी संविदा 'मेण्टीनेन्स' कहलायेगी। अँगरेजी राज-नियम के द्वारा इस तरह की संविदा निषिद्ध है (is illegal and unenforceable) तथा इस तरह की सहायता देनेवाला व्यक्ति राजनियम की दृष्टि में अपराधी है और उस पर मुकदमा चलाकर उससे क्षति (damage) वसूल की जा सकती है। किन्तु इंग्लैंड में भी अगर कोई व्यक्ति किसी गरीब आदमी को सहायता पहुँचाने के लिए बिना किसी हित के मुकदमा चलाने का खर्च देना है तो यह काम गैर-कानूनी नहीं होगा।\* किन्तु भारतीय कानूनों के अन्तर्गत सभी तरह की संविदा व्यर्थ या गैरकानूनी नहीं है। भारत में इस प्रकार की केवल वही संविदा गैर-कानूनी है जो स्पष्ट रूप से कठोर, अनुचित तथा लोकनीति के विरुद्ध है।† रामकुमार बनाम चन्द्रकान्त के भारतीय मुकदमे में भी यही निर्णय दिया गया था।

चैम्पर्टी (champerty) 'मेण्टीनेन्स' (maintenance) का ही एक रूप है जहाँ पर समुचित ढंग से मुकदमे की पैरवी करनेवाला व्यक्ति सम्पत्ति में से हिस्सा लेने की संविदा करता है। दूसरे शब्दों में, 'चैम्पर्टी' एक ऐसा व्यवहार है जिसके द्वारा एक पक्ष दूसरे पक्ष की सम्पत्ति वापस लेने में मुकदमे की पैरवी द्वारा सहायता देता है और बदले में मुकदमे से प्राप्त सम्पत्ति में हिस्सा पाता है। मुकदमे की पैरवी का अर्थ आर्थिक सहायता भी है। अतः 'चैम्पर्टी' का उद्देश्य मुकदमे से प्राप्त सम्पत्ति में हिस्सा लेना है और 'मेण्टीनेन्स' का उद्देश्य मुकदमेबाजी को बढ़ाना है। अँगरेजी विधान के अनुसार 'चैम्पर्टी' की प्रसंविदा विवर्जित (void) है। परन्तु हिन्दुस्तान में प्रीवी काउंसिल (Privy Council) ने एक मुकदमे में अपना निर्णय दिया था कि प्रसंविदा जो इंग्लैंड में 'चैम्पर्टी' के अन्तर्गत मानी जाती है, भारत में गैरकानूनी नहीं हो सकती। भारत में गैरकानूनी होने के लिए इस तरह की प्रसंविदा को लोकनीति (public policy) के खिलाफ होना जरूरी है। अतः वे संविदाएँ जो अनुचित मुकदमे को बढ़ावा देने में मदद करती हैं या अच्छी नीति (good policy) के विरुद्ध हैं, भारत में गैरकानूनी होंगी।

to refer to arbitration, Sec. 28.

\* Oram vs. Hull (1114) 1 Ch. 98.

† Ram Kumar vs. Chandra Kant, 2 Cal. 233 (P. C.)

‡ Bhagwat Dayal Singh vs. Devi Dayal Sahu (1908) 35 Cal. 420.



४. अनुबन्ध जिसका अर्थ निश्चित नहीं है (Agreement involving Uncertainty [धारा २९]— भारतीय संविदा-विधान की धारा २९ के अनुसार वैसी संविदाएँ जिनका अर्थ निश्चित नहीं है अथवा जिनका अर्थ निश्चित बनाने योग्य भी नहीं है, अनिश्चित संविदा कहलाती है, और ऐसी संविदाएँ विवर्जित (void) हैं।\*

उदाहरणार्थ—(i) X, Y के हाथ २०० टन तेल और १०० मन दाल बेचने का वादा करता है परन्तु यह साफ-साफ जाहिर नहीं करता है कि तेल किस किस्म का चाहिए और दाल किस किस्म का चाहिए। अतः यह समझौता अनिश्चित होने के कारण विवर्जित है।

(ii) X, Y से कहता है कि मैं अपना मकान ४,००० रु० और ६,००० रु० के बीच में बेचूंगा। परन्तु इस कथन से यह स्पष्ट नहीं होता है कि वह कितने में मकान बेचेगा। अतः यह समझौता मान्य नहीं है।

(iii) X, Y से वादा करता है कि कलकत्ते वाले गोदाम में जितना चावल है वह उसे दे देगा। यह समझौता मान्य होगा।

५. बाजी लगाने के रूप में किये गये अनुबन्ध† (Wagering Agreements) [धारा ३०]— Mr Anson के अनुसार बाजी (Wager) की संविदा वह है जिसमें “किसी अनिश्चित घटना के निश्चित हो जाने पर धन अथवा धन के बदले वस्तु देने का वचन है।” पर कार्लिल बनाम कारबोलिक स्मोक बॉल कं० [Carlill vs. Carbollic Smoke Ball Co. (1893) 256] के मुकदमे में Justice Hawkins ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है—

“A wagering contract is one by which two persons professing to hold opposite views touching the issue of a future uncertain event, mutually agree that, dependent on the determination of that event, one shall win from the other, and that the other shall pay or handover to him a sum of money or other stake; neither of the contracting parties having any interests in that contract than the sum or stake, he will so win or lose, there being no other real consideration for the making of such contracts by either of the parties.”

बाजी की संविदा वह संविदा है जिसके द्वारा दो व्यक्ति जो किसी भावी अनिश्चित घटना के विषय में विपरीत विचारों के अनुयायी हैं, परस्पर इकरार करते हैं कि उस घटना के निश्चित हो जाने पर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करेगा और दूसरा व्यक्ति धन देगा या दूसरा दाँव लगाने की अनुमति देगा।

अर्थात् बाजी की प्रसंविदा (wagering contract) होने के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

(i) एक निश्चित रकम या उतने का कोई सामान चुकाने का वादा हो।

(ii) वादा को एक खाम घटना के घटने या न घटने पर पूरा किया जायगा जिसके लिए दोनों पक्षों का एक-दूसरे से प्रतिकूल (opposite) ख्याल (view) रहता है।

(iii) घटना अनिश्चित हो; वह अतीत (past) या भविष्य (future) की हो

\* Agreements which are void for uncertainty. Sec. 29.

† Agreements by way of wager are void.

सकती है। किन्तु इसके बारे में दोनों पक्षों को सही जानकारी नहीं होनी चाहिए।

(iv) घटना के घटित हो जाने के पहले दोनों पक्ष संयोग (chance) पर ही निर्भर रहते हैं जिसके लिए वे जोखिम उठाते हैं।

(v) घटना के घटित होने के बाद दाँव (stake) पर रखे गये रुपये की हार-जीत होती है—अगर एक पक्ष जीतता है तो दूसरे पक्ष की हार होती है।

(vi) दाँव के हारने-जीतने के अतिरिक्त दूसरी कोई प्रसविदा, प्रतिज्ञा या प्रतिकूल नहीं रहता।

(vii) प्रसविदा तब तक पूर्ण नहीं कही जाती जब तक कि अनिश्चित घटना के विषय पर कुछ फैसला न हो।

**उदाहरणार्थ**— Jones, Smith से कहता है कि घोड़ों की दौड़ (horse racing) में White Way नामक घोड़ा सबसे आगे रहेगा, पर Smith कहता है कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। इस पर दोनों बाजी लगाते हैं। Jones कहता है कि अगर वह घोड़ा आगे नहीं रहा तो मैं ३०० रु० दूँगा और अगर आगे आ गया तब मैं आपसे यही रकम लूँगा। यह बाजी प्रसविदा हुई और इसलिए यह विवर्जित हुई।

**अपवाद (Exceptions)**— पर इसके कुछ अपवाद भी हैं और वे इस प्रकार हैं—

(i) घुड़दौड़ (horse race) के विजेता को ५०० रु० या इससे अधिक का पुरस्कार या इनाम (prize) देने के लिए चन्दा या दान देना गैरकानूनी नहीं है।

(ii) किसी पहेली में रिक्त स्थानों की पूर्ति करने की प्रतियोगिता (crossword competition) जिसके द्वारा ठीक-ठीक शब्द भरने वाले को इनाम देने का वादा किया जाता है, जुआ की प्रसविदा (wagering contract) नहीं है।

(iii) बीमा की प्रसविदा (insurance contract) जिनमें बीमा-योग्य हित (insurable interest) और क्षतिपूर्ति का वादा (promise for indemnity) रहता है। यदि बीमा-योग्य हित न रहे तो वह जुए की प्रसविदा कहलायेगी।

(iv) तेजी-मन्दी का सौदा (Option Dealings)—जब तक कि ऐसी प्रसविदा से यह साबित नहीं हो जाता है कि दोनों पक्षों की माल खरीदने या बेचने की नीयत शुरू से ही नहीं थी, बल्कि सिर्फ कीमत के अन्तर (difference of price) से उन्हें ताल्लुक था, तब तक यद्यपि यह फाटके के स्वभाव की है, इसे विवर्जित नहीं किया जा सकता और यह मान्य होगी।

(v) सरकारी हुकम से लाटरी (lottery) निकालना — यद्यपि लाटरी निकालना या इसका आफिस रखना मान्य (legal) नहीं है फिर भी अगर कोई लाटरी हुकम ले लेने के बाद यानी रजिस्टर्ड करवा कर निकाली जाती है तब यह जायज है और लाटरी निकालनेवाले को कोई सजा नहीं दी जायगी।

**६. जुए की प्रसविदा से सम्बद्ध अनुबन्ध (Agreements collateral to wage-ring contracts)**—बाम्बे प्रेसीडेंसी (Bombay Presidency) को छोड़कर हर एक जगह जुए की प्रसविदा से सम्बद्ध अनुबन्ध मान्य होता है।

**उदाहरण**—John, Hicks से बाजी लगाता है जिसमें John १०० रु० हार जाता है। John, Smith से १०० रु० कर्ज लेकर जीतनेवाले को देता है। अब यदि Smith चाहे की वह १०० रु० John से वसूल करे तो वह अँगरेजी विधान या बाम्बे प्रेसीडेंसी के विधान के अनुसार वसूल नहीं कर सकता है। पर भारत की

और जगहों में यह रुपया बसूला जा सकता है। यही नियम वेजड़ की प्रसंविदा पर की दलाली (brokerage) के लिए लागू होगा।

**ब्या बीमे की प्रसंविदा बाजी का समझौता होती है ?**—यद्यपि बीमे की संविदा का निष्पादन भी किसी अनिश्चित घटना के होने पर ही निर्भर करती है तथापि निम्नलिखित कारणों से यह समझौता बाजी का नहीं कहा गया है—

(i) बीमे की संविदा में आगोपित का उस व्यक्ति या सम्पत्ति में जिसका बीमा हुआ है, बीमा-योग्य हित अवश्य रहना चाहिए। बीमा-योग्य हित का अर्थ होता है कि जिस घटना के लिए बीमा कराया गया हो उसके घटित हो जाने पर आगोपित को कुछ अधिकार-संबंधी नुकसान अवश्य ही होना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि अगर बीमा करायी गयी विषयवस्तु सुरक्षित रहे तो आगोपित को आर्थिक लाभ होगा और अगर वह बरबाद हो जाय तब उसे आर्थिक हानि होगी। यह नियम स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति उस सम्पत्ति या व्यक्ति के जीवन का बीमा नहीं करा सकता है जिसकी सुरक्षा में उसका कोई हित नहीं है, अन्यथा बीमा की संविदा सिर्फ एक बाजी की संविदा होगी और यह अमान्य होगी।

(ii) बीमा-योग्य हित के अलावा, सिर्फ जीवन बीमा को छोड़कर और तरह की बीमा संविदा क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा होती है। इनके द्वारा सिर्फ वास्तविक हानि की पूर्ति के लिए ही व्यवस्था की जाती है। बीमे की प्रसंविदा में किसी भी व्यक्ति को क्षतिपूर्ति के अलावा लाभ अर्जन करने का अवसर नहीं दिया जाता है। जीवन-बीमा में बीमा की गयी रकम को ही हानि की राशि मान लिया जाता है, क्योंकि किसी भी व्यक्ति के जीवन का सही मूल्य लगाना संभव नहीं होता है।

(iii) बीमा की प्रसंविदा समाज के सामान्य हित के लिए होती है इसलिए उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है। परन्तु बाजी के समझौतों को सामाजिक हित के खिलाफ माना जाता है, इसलिए इनको अमान्य घोषित किया गया है।

**बाजी के समझौतों का प्रभाव (Effects of Waging Contracts)**—बाजी के समझौते अमान्य होते हैं किन्तु अवैध नहीं (are void but not illegal)। बम्बई सन्नियम, 1865 (Bombay Act, 1865) के द्वारा गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्यों में बाजी के समझौतों को अवैध घोषित कर दिया गया है। इन राज्यों को छोड़कर शेष भारत में बाजी के समझौतों को अपराध नहीं माना जाता है, लेकिन इन समझौतों का न्यायालय द्वारा प्रवर्तन भी नहीं कराया जा सकता है। बाजी के समझौते के अन्दर जीती गयी रकम अथवा वस्तु हारनेवाले व्यक्ति से न्यायालय की सहायता द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती है। अगर किसी तीसरे व्यक्ति के पास बाजी से सम्बद्ध रकम या वस्तु जमा कर दी गयी हो तब भी बाजी जीतने वाला व्यक्ति उसमें यह रकम या वस्तु प्राप्त करने के लिए मुकदमा नहीं चला सकता है। लेकिन बाजी हारनेवाला व्यक्ति तीसरे व्यक्ति से, जिसके पास बाजी की रकम या वस्तु जो धरोहर के रूप में रखी गयी थी, वापस ले सकता है अगर उस तीसरे व्यक्ति ने उस रकम या वस्तु को जीतनेवाले व्यक्ति को न दिया हो। अगर हारनेवाले व्यक्ति द्वारा तीसरे व्यक्ति को यह निश्चित आदेश दिये जाने पर भी कि विजेता को रुपया न दिया जाय, तीसरा व्यक्ति उसे रुपया दे देता है तब हारनेवाला व्यक्ति, तीसरे व्यक्ति को दोषी नहीं ठहरा सकता है।

**समपाक्षिक व्यवहारों पर प्रभाव (Effect on collateral transactions)**—बाजी के समझौते महाराष्ट्र एवं गुजरात को छोड़कर बाकी पूर्ण भारत में अमान्य

होते हैं, अवैध नहीं। इसलिए इनके समपादितक व्यवहार भी पूर्णतः वैध होते हैं। उदाहरणार्थ, बाजी\*के व्यवहार के लिए बहाल किया गया एजेंट संबद्ध पक्षकार से अपना पारिश्रमिक प्राप्त कर सकता है। इसी तरह अगर उसने नियोक्ता की तरफ से बाजी के व्यवहार में हुए नुकसान के लिए धन का भुगतान किया है तब वह अपने नियोक्ता से धन पा सकता है अथवा क्षतिपूर्ति करा सकता है। इसी तरह बाजी में हारे गये धन का भुगतान करने के लिए दिया गया कर्ज भी कर्जदाता द्वारा प्राप्त किया जा सकता है चाहे कर्जदाता को कर्ज देते समय कर्ज लेने के उद्देश्य की पूर्ण जानकारी ही क्यों न हो।

७ असम्भव कार्य करने के अनुबन्ध (Agreements to do impossible Acts) [धारा ३६, ५६] — भारतीय प्रसंविदा विधान की धारा ५६ के अनुसार ऐसे कार्य को करने की सविदा जो स्वयं असम्भव है, व्यर्थ होती है।\* पर ऐसे कार्य के लिए भी, जो शुरू में सम्भव हो परन्तु बाद में असम्भव हो जाता है (supervening impossibility), समझौता विवर्जित है।

उदाहरणार्थ — (i) A, B से यह वादा करता है कि वह एक खजाना जादू से निकालेगा। यह असम्भव होने के कारण विवर्जित है।

(ii) X अपने लडके Y की शादी Z की लडकी P के साथ करने का वादा करता है। शादी के पहले P की मृत्यु हो जाती है। यह सविदा विवर्जित हुई।

(iii) A, B से वादा करता है कि अगर तुम दो समानान्तर (parallel) सरल रेखाओं को मिला दोगे तब मैं १,००० रु० दूंगा। यह सविदा विवर्जित हुई।

८ अनुबन्ध का लिखित तथा रजिस्टर्ड होना (Agreements in Writing and Registered) — ऐसे अनुबन्ध जो स्थानीय विधान के अनुसार न रहें, विवर्जित होंगे। जैसे यह अनिवार्य है कि किसी भी अस्थायी सम्पत्ति (immovable property) की विक्री, गिरवी या पट्टे के लिए दस्तावेज लिखित एवं रजिस्टर्ड होना चाहिये। अगर इस तरह के दस्तावेज इन बातों की पूर्ति नहीं करते हैं तब उनका अनुबन्ध मान्य नहीं होगा।

### University Questions

1. What is a void agreement? Briefly state the various agreements that are expressly declared to be void by the Indian Contract Act.

(एक विवर्जित अनुबन्ध क्या है? संक्षेप में उन विभिन्न विवर्जित अनुबन्धों की व्याख्या कीजिए जिनको भारतीय प्रसंविदा सन्निधयम ने स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर रखा है।)

2. What are those cases when the object or the consideration of an agreement is deemed to be unlawful?

(ऐसे कौन-से मामले होते हैं जिनमें किसी समझौते के उद्देश्यों और प्रतिफलों को अवैध माना जाता है?)

3. What do you understand by the doctrine of Public Policy? Are there any limits to it? Give important cases which are ordinarily considered to be opposed to public policy.

\* Agreements to do impossible acts or events are void. Sec. 36 and 56.

(आप लोकनीति के सिद्धान्त से क्या समझते हैं ? क्या उसकी कोई परिसीमाएँ हैं ? ऐसे महत्वपूर्ण मामले बतलाइए, जिन्हें सामान्यतः लोकनीति के विरुद्ध माना जाता है ।)

4. What is meant by agreements against Public Policy ? A offers to buy B's cow for Rs 400. B accepts A's offer. Before B can deliver the cow, the cow dies. Who is to bear the loss ?

(‘लोकनीति के खिलाफ’ समझौते से क्या समझते हैं ? A ने B की गाय को 400 में खरीदने का प्रस्ताव किया । B ने A के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । किन्तु B के गाय हस्तान्तरित करने के पहले ही गाय मर जाती है । बताये, कौन नुकसान सहन करेगा । (B सहन करेगा ।)

5. Discuss the law relating to agreements in restraint of trade. How far is it correct to say that agreements in restraint of trade are void ?

[‘व्यापार के अवरोध’ संविदा-सम्बन्धी नियमों की विवेचना कीजिये । यह कहना कहाँ तक ठीक है कि व्यापार अवरोधक संविदा अमान्य (void) होती है ?]

6. “Liberty to trade is not an asset which the law will permit a person to barter except in special circumstances within well recognised limitations.” Comment.

(‘व्यवसाय की स्वतंत्रता ऐसी सम्पदा नहीं है कि विधि सौदा करने की मान्य परिसीमाओं के अंतर्गत विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त अनुमति दे सके ।’ व्याख्या कीजिये ।)

7. “Agreements in restraint of trade are void.” Explain and criticise this statement. Are there any exceptions to this rule ? If so, enumerate them.

(‘व्यापार में रुकावट डालनेवाले अनुबन्ध अमान्य होते हैं ।’ इस कथन की व्याख्या और आलोचना कीजिये । क्या इस नियम के अपवाद हैं ? यदि हैं, तो उनकी व्याख्या कीजिए ।)

8. What is an agreement by way of wager ? Is such an agreement void or illegal ? Is a contract of insurance a wager ?

(बाजी का समझौता क्या है ? क्या इस तरह के समझौते अमान्य अथवा अवैधानिक होते हैं ? क्या एक बीमा का अनुबन्ध बाजी लगाने का अनुबन्ध है ?)

9. What is an agreement by way of wager ? What tests would you apply to determine, if or not, an agreement is by way of wager ? Distinguish between a wagering agreement, and a good contract.

(बाजी का समझौता किसे कहते हैं ? यह निश्चित करने के लिए कि अमुक समझौता बाजी का है या नहीं, आप क्या जाँच अपनायेंगे ? बाजी के समझौते एवं सामान्य अनुबन्ध में अन्तर बतलाइये ।)

10. “Insurance contracts are basically wagering agreement.” Comment.

(‘बीमे के अनुबन्ध मूलतः बाजी के समझौते होते हैं ।’ विवेचना कीजिए ।)

11. How does wagering contracts differ from a speculative transaction ? Are contracts for options (Teji-Mandi) wagering contract ?

(किस प्रकार बाजी लगाने के अनुबन्ध सट्टे की लेनदेन से भिन्न होते हैं ? क्या तेजी-मन्दी के अनुबन्ध बाजी लगाने के अनुबन्ध हैं ?)

12. "The jurisdiction of courts of law to decide disputes arising from contractual relations cannot be ousted by agreement between parties." Discuss.

("पक्षकारों को पारस्परिक समझौते द्वारा अनुबंध-सम्बन्धी विवादों का निर्णय करने क न्यायालयों के परिक्षेत्र को सीमित नहीं किया जा सकता है।" विवेचना कीजिए।)

13. A person ought not to be allowed to restrain himself by contract from exercising any lawful craft or business at his own discretion and in his own way." Discuss.

("किसी भी व्यक्ति को अनुबंध द्वारा स्वयं अपने ऊपर कोई ऐसी रोक लगाने की अनुमति नहीं देनी चाहिए कि वह अपने इच्छानुसार एवं अपने ढंग से कोई वैधानिक उद्योग या व्यापार आदि न कर सके।" व्याख्या कीजिए।)

14. Write short notes on—

(i) Agreements in restraint of marriage, (ii) Agreements in legal restraint of trade.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें—

(i) विवाह में रूकावट डालनेवाले अनुबंध, (ii) वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले अनुबंध।]

15. Discuss the following Problems—

(i) A promises to pay a certain sum of money to B, who is an intended witness in a suit against A, in consideration of B's absenting himself at the trial. [Ans. This is a void contract. Sec. 28]

(ii) In a suit by A against B for the recovery of Rs. 2,000, A is in need of money. C agrees to provide funds to A in consideration of sharing half the money recovered from B. [Ans. It is a case of Champerty and in English and Indian Law it is illegal and unenforceable]

(iii) A promises B in consideration of Rs. 1,000 never to marry throughout his life. [Ans. The contract is void. Sec. 26].

(iv) A promises B in consideration of Rs. 1,000 never to marry a particular individual. [Ans. This is good contract i.e. valid.]

(v) Messrs Sinha & Co. a firm holding the licence for the distribution of Nestle's Chocolates in the Indian Union, enter into a contract with Sharma & Co. who are the sole distributors of Powntree's Chocolates, fixing the rates at which the goods are to be sold and the area of the distribution of their respective producers. Is the agreement valid? Discuss the law on the subject.

[Ans. धारा 27 के अनुसार समझौता विवर्जित (void) है] [Luck. 1948]

Or, The Grand Hotel and the Hindustan Hotel of Lucknow enter into a reciprocal agreement not to charge less than Rs. 12 per day for a single room. Subsequently the Hindustan Hotel in order to attract customers reduced its charges to Rs. 10. The Grand Hotel sued for an injunction restraining the Hindustan Hotel from charging less than Rs. 12. Is the agreement enforceable at law in this country? Give reasons. [Ans. धारा 27 के अनुसार अनुबंध void है] [Luck. '52, 1962]

(vi) A promises to obtain for B employment in the public service and B promises to pay Rs. 1,000 to A. Is the agreement

enforceable ? [**Ans.** The agreement is void, as the consideration for it is unlawful Sec. 23 (f).]

(vii) During his wife's life-time A promised to marry B when his wife was dead. The wife died and A refused to marry B. Advise B.

[According to Sec. 23, B cannot bring any action as the contract is void.]

(viii) X borrowed Rs. 1,000 from Y, for starting a gambling house. Afterwards he refused to pay back the money. What is the remedy of Y in this case ?

[**Ans.** Y cannot file a suit as it is a void contract. Section 23]

(ix) A promises to maintain B's child and B promises to pay A Rs. 1,000 yearly for the purpose. [**Ans.** This is a lawful consideration. Sec. 23 (d).]

(x) A was appointed sole agent of Paul & Co. for the distribution of the products of the Co. in the Bombay State for 5 years on the condition that A was not to handle similar goods of any other Co. during the term of agency. Examine the validity of the above agreement. [Luck. 1956; Alld. 1956, '58]

(xi) A agrees to sell to B 'a hundred tons of oil' Is the agreement valid ? [**Ans.** No—Sec. 29 के अनुसार] [Cal. 1951, '58]

(xii) A who is a dealer in coconut oil only, agrees to sell to B "one hundred tons of oil." Is the agreement void ? **Ans** (Yes—Sec. 29) [Cal. 1951, '58]

(xiii) A agrees to sell to B his "white horse for Rs. 500 or Rs. 1,000." Is this agreement void ? [**Ans.** Yes—Sec 29]

(xiv) A agrees to sell to B 'one thousand maunds of rice at a price to be fixed by C.' Is the agreement void ? [**Ans** Yes—Sec. 29] [Cal. 1951. '58]

---

## सांयोगिक प्रसंविदा (Contingent Contracts)

भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा ३१ के अनुसार सांयोगिक प्रसंविदा (contingent contract) उस घटना से सम्बद्ध है जिसमें घटना के घटित होने अथवा नहीं होने पर किसी कार्य को करने अथवा न करने की प्रसंविदा हो।\*

**उदाहरणार्थ—**A, B से यह प्रतिज्ञा करता है कि यदि उसका (B का) मकान जल गया तो वह (A) B को ₹, ००० रु० देगा।

सांयोगिक प्रसंविदा का सबसे सुन्दर उदाहरण बीमा की प्रसंविदा है, जहाँ बीमा कम्पनी बीमा करायी हुई सम्पत्ति के नष्ट या बरबाद होने पर एक निश्चित रकम देने की प्रतिज्ञा करती है।

फिर धारा ३२ के अनुसार अगर कोई वादा, किसी घटना के होने पर ही पूरा किया जाता हो, तो उस घटना के नहीं होने पर या किसी कारण से असम्भव हो जाने पर वादा पूरा नहीं किया जा सकता, क्योंकि घटना हुई नहीं।

**उदाहरणार्थ—**A, B को कुछ रुपया उस समय देने की प्रतिज्ञा करता है जब B, C के साथ शादी कर ले। C की मृत्यु B के साथ शादी हुए बिना ही हो जाती है, तो यह प्रसंविदा व्यर्थ हो जायगी।

इसी प्रकार अगर किसी प्रसंविदा में यह वादा हो कि अमुक घटना एक निश्चित समय के अन्दर हो या नहीं तो वादा पूरा किया जायगा तब उस समय के अन्दर ही उस घटना के होने पर या न होने पर वादा पूरा किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

**उदाहरण—**१. X, Y से कहता है कि अगर Ex-pearless नामक जहाज इंग्लैंड से हिन्दुस्तान नहीं लौटेगा तो वह Y को ₹ १००० रु० देगा। वह जहाज रास्ते में डूब गया। अब X को ₹ १,००० रु० देना पड़ेगा।

२. इसी तरह अगर X, Y से कहता है कि अगर Ex-pearless नामक जहाज छः महीने के भीतर इंग्लैंड से वापस हिन्दुस्तान आ जायेगा तो वह Y को ₹ १,००० रु० देगा। यदि वह जहाज छः महीने के भीतर वापस आ जाता है तब तो प्रसंविदा को पूरा करना पड़ेगा और यदि वह जहाज डूब जाता है तब उसे पूरा करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अब धारा ३६ के अनुसार (Agreement Contingent on impossible events are void) किसी असम्भव घटना के घटित होने पर किसी कार्य को करने अथवा नहीं करने की सांयोगिक सविदा व्यर्थ होती है, चाहे सविदा करने के समय उसके पक्षकारों को घटना की असम्भाव्यता ज्ञात हो अथवा न हो।

**उदाहरणार्थ—**A, B को ₹ १,००० रु० देने की सविदा करता है, यदि B, A

\* “A Contingent Contract is a contract to do or not to do something, if some event collateral to such contract does or does not happen. (Sec. 31)



की लड़की C के साथ शादी कर ले। संविदा के समय C की मृत्यु हो चुकी है। अतः यह संविदा व्यर्थ होगी।

### सांयोगिक प्रसंविदा की विशेषताएँ (Special Features of a Contingent Contract)

(i) सांयोगिक प्रसंविदा में एक पक्ष अपना वादा पूरा करने के लिए बाध्य नहीं होता जब तक कि प्रसंविदा से सम्बद्ध कोई घटना घटित न हो। इस तरह सांयोगिक प्रसंविदा पूर्ण प्रसंविदा से भिन्न होती है, क्योंकि पूर्ण प्रसंविदा में हर एक पक्ष प्रसंविदा के करते ही जिम्मेदारियों से बंध जाता है और उनको पूरा करने के लिए बाध्य हो जाता है। अग्नि-बीमा, जल-बीमा इत्यादि प्रसंविदाएँ सांयोगिक प्रसंविदा होती हैं।

(ii) सांयोगिक प्रसंविदा जिस घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर रहती है और उस घटना को मुख्य प्रसंविदा का अंग नहीं होना चाहिए। उसे केवल मुख्य प्रसंविदा से ही सम्बद्ध होना चाहिए। उस घटना का होना निश्चित नहीं होना चाहिए। उसमें अनिश्चितता का होना आवश्यक है अर्थात् वह घटना घट भी सकती है, नहीं भी घट सकती है। केवल उस सम्बद्ध घटना के घटित होने की सम्भावना मात्र ही होनी चाहिए।

(iii) प्रसंविदा से सम्बद्ध घटना (contingency) किसी एक या दोनों पक्षों की शक्ति के अन्दर हो सकती है या उनमें से दोनों की शक्ति के बाहर भी हो सकती है। यह किसी तीसरे व्यक्ति पर निर्भर हो सकती है।

**उदाहरणार्थ—**X, Y से कहे कि अगर Z कहे तो वह उसे (Y को) ₹१०० देगा। इसी तरह अग्नि-बीमा, क्षतिपूर्ति करने का ठहराव करना इस बात पर निर्भर है कि बीमा कम्पनी के डायरेक्टर्स उस रकम को देना मंजूर कर लें। यहाँ अग्नि-बीमा करना एक सांयोगिक प्रसंविदा है और प्रसंविदा का पूरा किया जाना डायरेक्टर्स की स्वीकृति पर मुनहसर है।

(iv) प्रसंविदा से सम्बद्ध घटना वचनदाता के कार्य पर निर्भर हो सकती है न कि वचनदाता की इच्छा मात्र पर। अगर X, Y से कहे कि यदि उसकी (X की) इच्छा होगी तो वह Y को ₹३०० देगा। ऐसी हालत में यह सांयोगिक प्रसंविदा नहीं कहलायेगी। सत्य तो यह है कि उपर्युक्त उदाहरण में किसी भी तरह के समझौते का होना नहीं कहा जा सकता।

(v) घटना का घटित होना प्रसंविदा होने के लिए बहुत जरूरी है।

(vi) घटना असम्भव नहीं होनी चाहिए। असम्भव घटना के होने पर प्रसंविदा लागू नहीं की जा सकती। जैसे A, B से कहता है कि अगर गंगा नदी मैसूर होकर बहने लगे तो वह B को ₹१०,००० देगा। यह प्रसंविदा असम्भव की है अतः निष्प्रभाव है।

**बीमा तथा और सभी हानि-रक्षा-सम्बन्धी प्रसंविदा (Contracts of Insurance and Indemnity)—** बीमा तथा और सभी हानि की रक्षा-सम्बन्धी प्रसंविदा सांयोगिक प्रसंविदा की श्रेणी में आती है। किसी निश्चित संयोग के होने पर अर्थात् किसी व्यक्ति के एक निश्चित समय तक जीवित रहने पर अथवा उसकी मृत्यु पर पॉलिसी में निश्चित किया हुआ धन देय होता है। इसी तरह से अग्नि एवं सामुद्रिक बीमे में किसी सम्पत्ति या वस्तु के बरबाद हो जाने या हानि

पहुँचने पर ही क्षतिपूर्ति का वचन होता है। एक इस तरह की प्रसविदा जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को धन देने का वचन देता है जो किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा निश्चित किया जाता है, एक सांयोगिक प्रसविदा है। [Secretary of State vs. Arahoon : 1882 5 Mad. 174] किसी ठीकेदार के साथ इस तरह की गयी प्रसविदा जिसमें कि उसका पारिश्रमिक इंजीनियर द्वारा प्रमाण-पत्र देने पर निर्भर है, सांयोगिक प्रसविदा है। [Morgan vs. Birine 9 Bing 672] किसी उत्सव को देखने के लिए किसी निश्चित स्थान का प्रयोग करने की प्रसविदा सांयोगिक हो सकती है, क्योंकि वह उस उत्सव के होने या न होने पर निर्भर है। [Krell vs. Henry (1903) 2 K. B. 7 40.]

### बाजी की प्रसविदा तथा संयोगिक प्रसविदा में अन्तर (Difference between Wagering Contract and Contingent Contract)

दोनों तरह की प्रसविदा किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर पूरी की जाती है। इसलिए ऐसा मालूम होता है कि दोनों में समानता है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। दोनों में बहुत अन्तर है जो कि निम्नलिखित हैं—

१. बाजी की सविदा (wagering contract) में दोनों पक्षों का मतलब प्रसविदा की शर्तों का पूरा करना नहीं होता बल्कि सिर्फ मूल्यान्तर (difference of values) प्राप्त करना होता है। इसके विपरीत, सांयोगिक प्रसविदा में ऐसा नहीं होता है।

२. बाजी की सविदा जुए के समान होती है जब कि सांयोगिक प्रसविदा वास्तविक होती है।

३. बाजी की सविदा में हमेशा ऐसा ही होता है कि प्रथम पक्ष को लाभ होने पर दूसरे को हानि होती है और दूसरे पक्ष को लाभ होने पर प्रथम पक्ष को हानि होती है। सांयोगिक प्रसविदा में यह जरूरी नहीं है।

४. बाजी सविदा निष्प्रभाव होती है और कानून के अन्तर्गत लागू नहीं की जा सकती, परन्तु सांयोगिक प्रसविदा मान्य होती है और लागू नहीं की जा सकती है।

### University Questions

1. What do you understand by a 'Contingent Contract' ? Discuss how far the Contingency may be dependent on the act of the party.

(‘सांयोगिक अनुबन्ध’ से आप क्या समझते हैं ? अनिश्चित घटना पक्षकार के कार्य अथवा आचरण पर कहाँ तक निर्भर कर सकती है ? विवेचना कीजिए।)

2. Write a short note on Contingent Contracts. Distinguish between a Contingent Contract and Wagering Contract. What elements are essential to make a contract a Contingent one ?

(‘सांयोगिक अनुबन्धों’ पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए। सांयोगिक अनुबन्ध और बाजी लगानेवाले अनुबन्ध में अन्तर बतलाइये। एक अनुबन्ध को सांयोगिक होने के लिए, कौन-कौन सी आवश्यक बातें होती हैं ?)

3. To what extent the impossibility of the Contingency affects the performance of the Contract ?

(संयोग की असंभाव्यता अनुबन्ध के निष्पादन को किस सीमा तक प्रभावित कर सकती है ?)

4. What do you mean by assignment of contract ? What conditions should be fulfilled for assignment of contract ? What is assignment by operation of Law ?

(अनुबन्ध के समर्पण से आप क्या समझते हैं ? अनुबन्ध के समर्पण के लिए कौन-कौन-सी शर्तें पूरी होनी चाहिए ? सन्नियम के मुताबिक समर्पण क्या है ?)

5. Distinguish between a Contingent Contract and Wagering Contract. Discuss the rules regarding enforcement of Contingent Contracts.

(सांयोगिक अनुबन्ध और बाजी लगाने वाले अनुबन्ध में अन्तर बतलाइए। सांयोगिक अनुबन्धों के प्रवर्तन से सम्बद्ध नियमों का वर्णन कीजिए।)

5. Discuss the following **Problems**—

(i) A promises to pay B a sum of money if a certain ship returns within a year. The ship is burnt within a year. Advise B.

(उत्तर— धारा 35 के अनुसार यह अनुबन्ध जहाज के जल जाने के साथ ही अमान्य हो जाता है।)

(ii) During his wife's life time A promised to marry B, when his wife was dead. The wife died and A refused to marry B. Advise B.

(उत्तर—यह प्रसंगिक अमान्य है।)

(iii) What is Contingent Contract ? Discuss the special features of a Contingent Contract.

## प्रसंविदा से मुक्ति या उसकी समाप्ति (Discharge or Termination of Contract)

धाराएँ ३७-६७

यह ऊपर बताया जा चुका है कि जब प्रसंविदा होती है तब दोनों पक्षों का कुछ न कुछ अधिकार और उत्तरदायित्व रहता है। जब वचनदाता और वचनप्रापक के अधिकार और उत्तरदायित्व समाप्त हो जाते हैं तो हम कह सकते हैं कि प्रसंविदा की समाप्ति हो गयी। अब यहाँ उन अवस्थाओं का वर्णन किया जा रहा है जिनके अनुसार दोनों पक्ष (वचनदाता और वचनप्रापक) अपनी प्रसंविदा को समाप्त या पूर्ण कर सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. सम्पन्न या पूरा करके\*—By performance or fulfilment,
  २. नये सिरे से समझौता करके†—By fresh agreement,
  ३. सम्पन्न या पूर्ति होने की असम्भाव्यता द्वारा‡—By impossibility of performance,
  ४. वचन को भंग करके\*\*—By breach or renunciation of contract,
  ५. कानून से प्रभावित होकर—By operation of rules of law (धारा ३७ का प्रभाव),
  ६. समय के व्यतीत हो जाने से—By lapse of time (लिमिटेशन सन्नि-यम का प्रभाव)।
- १- प्रसंविदा सम्पन्न करके मुक्त होना (Discharge by Performance—  
धाराएँ ३७-३८, ५१-५४)

प्रत्येक प्रसंविदा में वचनदाता एवं वचनप्रापक किसी-न-किसी कार्य के लिए एक-दूसरे को वचन देते हैं। जब ये लोग अपने वचन पूरा कर देते हैं तब प्रसंविदा समाप्त हो जाती है। यदि एक पक्ष अपना वचन पूरा कर देता है तो हम कह सकते हैं कि वह प्रसंविदा के दायित्व से छट्टी पा गया (discharged, Sec. 37)।

अगर एक पार्टी या व्यक्ति अपने वचन पूरा करने के लिए तैयार है, परन्तु दूसरी पार्टी या दूसरा व्यक्ति उसे ऐसा करने से मना करता है या रोकता है तो इसके लिए पहली पार्टी या पहला व्यक्ति उत्तरदायी नहीं होगा (धारा ३८)। फिर यदि प्रसंविदा को पूरा करने के पहले ही वचनप्रापक की मृत्यु हो जाय तो उसके प्रतिनिधियों (representatives) को उन वचनों को पूरा करना पड़ता है, यदि

\* Sections 37, 38, 51-54.

† Section 62.

‡ Section 56.

\*\* Section 39.

इसके लिए कोई विपरीत उद्देश्य (contrary intention) न हो। लेकिन अगर प्रसंविदा करते समय यह साफ-साफ कहा गया हो कि वचनप्रापक को ही प्रसंविदा पूरा करना पड़ेगा तब उसके प्रतिनिधि या एजेंट को उसे पूरा करने का अधिकार नहीं होगा (धारा ४०)।

**उदाहरण—**X, Y से यह प्रतिज्ञा करता है कि वह Y की तस्वीर एक निश्चित समय के भीतर एक निश्चित कीमत पर बना देगा। X निश्चित अवधि के पहले ही बिना तस्वीर बनाये मर जाता है। इसमें X का प्रतिनिधि या एजेंट इस प्रसंविदा को पूरा नहीं कर सकता।

परन्तु किसी प्रसंविदा की एक पार्टी, पक्ष या व्यक्ति अपने वचन को पूरा करने से इनकार करता है या वह इस हालत में नहीं है कि वचन को पूरा कर सके तो वचन-प्रापक (promisee) पूरी प्रसंविदा को खत्म कर सकता है यदि उसने (promisee) व्यक्त या अव्यक्त रूप से उस प्रसंविदा का पुनर्संचालन (re-continuance) करने के लिए अपनी स्वीकृति प्रसन्नतापूर्वक न दी हो (धारा ३९)।

**उदाहरण—**१. एक नर्तकी ने किसी थियेटर (theatre) के मैनेजर से उसके थियेटर में चार माह तक हफ्ते में चार रात नाचने की प्रसंविदा की। जिसके बदले में मैनेजर ने हर रात के नाच के लिए २०० रु० देने की प्रतिज्ञा की। आठवीं रात को नर्तकी जानबूझ कर थियेटर में नहीं आयी। अब यदि मैनेजर चाहे तो उस प्रसंविदा को समाप्त कर सकता है।

२. ऊपर दिये गये उदाहरण के अनुसार अगर मैनेजर फिर उसे नवीं रात को नृत्य के लिए अनुमति दे दे तो मैनेजर चाहकर भी उस प्रसंविदा को खत्म नहीं कर सकता। हाँ, इतना जरूर है कि आठवीं रात को (जानबूझ कर) नृत्य नहीं करने से उसे (मैनेजर को) जो क्षति हुई है, उसे नर्तकी से वसूल कर सकता है।

**संयुक्त वचनों की पूर्ति (Performance of Joint Promises)**—संयुक्त वचनों की पूर्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं—

१. **संयुक्त दायित्वों का निबटारा**—धारा ४२ के अनुसार अगर किसी प्रसंविदा में एक ही कार्य को करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्ति वादा करते हैं, तब जब तक कि समझौते से कोई विपरीत अभिप्राय जाहिर न हो, अपने जीवनकाल में उन सबको मिलकर वचन पूरा करना होगा और उनमें से किसी की मृत्यु के बाद उसके प्रतिनिधि को और वचनदाताओं के साथ मिलकर वचन पूरा करना होगा। अगर सभी वचनदाता मर जाते हैं तब उन सबके प्रतिनिधि संयुक्त रूप से वचन की पूर्ति करेंगे।

लेकिन इंगलिश सन्निधम के अनुसार, “संयुक्त वचनदाताओं की दशा में वचन की पूर्ति का दायित्व जीवित व्यक्तियों पर रहता है तथा मृत वचनदाताओं के प्रतिनिधि उत्तरदायी नहीं होते।”

२. **संयुक्त वचनदाताओं में से कोई भी व्यक्ति वचन की पूर्ति के लिए मजबूर किया जा सकता है**—धारा ४३ के अनुसार अगर दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी प्रसंविदा को पूरा करने के लिए संयुक्त वचन देते हैं, तब इसके विपरीत किसी स्पष्ट समझौते के अभाव में वचनगृहीता को अधिकार होगा कि वह सभी वचन-दाताओं में से किसी एक या अधिक को सम्पूर्ण वचन की पूर्ति के लिए मजबूर करे। **उदाहरणार्थ—**A, B और C मिलकर वादा करते हैं कि वे X को ५,००० रु० देगे। अब X को अधिकार है कि वह किसी एक से भी ५,००० रु० वसूल कर सकता है।

लेकिन इंगलिश सन्निधम के अनुसार, संयुक्त वचनदाताओं को विर्फ 'संयुक्त' रूप से प्रसंविदा की पूर्त्ति के लिए मजबूर किया जा सकता है। इसी के आधार पर अगर किसी व्यक्ति का किसी फर्म के खिलाफ कोई अधिकार है, तब भारतीय सन्निधम के मुताबिक वह साझेदारों में से किसी एक या सभी साझेदारों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर सकता है। [Khimji vs Purushottam (1882) 6 Bom. 700] लेकिन इंगलिश सन्निधम के अनुसार सभी साझेदारों पर विर्फ संयुक्त रूप से मुकदमा किया जा सकता है यही नियम संयुक्त बन्धक करने वालों, संयुक्त किरायेदारों अथवा संयुक्त वचनदाताओं के लिए लागू होता है। [Raghunath Dass vs. Baleshawar Prasad (1928) 7. Pat 353.]

३. प्रत्येक वचनदाता अपने हिस्से के रुपये के लिए मजबूर किया जा सकता है— धारा ४३ के ही अन्दर दो या दो से ज्यादा वचनदाताओं में से प्रत्येक को अधिकार होता है कि वह प्रत्येक दूसरे वचनदाता को वचन की पूर्त्ति के लिए अपने साथ बराबर-बराबर अंश देने को मजबूर कर सकता है। उदाहरणार्थ—A, B और C संयुक्त रूप से D को ३,००० रु० देने को वचन देते हैं। C पूरा कर्ज चुकाने के लिए मजबूर किया जाता है। अब C को यह अधिकार है कि वह A और B प्रत्येक को १,००० रु० देने के लिए मजबूर कर सकता है।

इस नियम के अन्दर यह बात याद रखने की है कि अगर संयुक्त वचनदाताओं में से कुछ वचनदाता प्रतिभू (surety) के रूप में है, तब इसमें अंशदान का सवाल ही नहीं उठता है। अगर संयुक्त वचनदाताओं में से प्रतिभू के रूप में वचनदाता ने कर्ज चुकाया है तब सभी रकम मूल कर्जदार के रूप में वचनदाता से वसूल की जा सकती है। अगर फर्म की रकम खुद मूल कर्जदार द्वारा चुकायी गयी है तब उसे प्रतिभू के रूप में वचनदाताओं से कोई हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। उदाहरणार्थ—A, B और C संयुक्त रूप से D को ३,००० रु० देने का वादा करते हैं। A और B, C के केवल प्रतिभू हैं। A और B पूरा कर्ज चुकाने के लिए मजबूर किये जाते हैं। वे दोनों पूरा धन C से वसूल करने के अधिकारी हैं। इसके अलावा अगर पूरा धन C द्वारा चुकाया गया होता, तब C को A और B से कोई अंश लेने का अधिकार नहीं होता।

४. संयुक्त वचनदाताओं में से कोई व्यक्ति दिवालिया हो जाता है या चुकाने में असमर्थ है—अगर संयुक्त वचनदाताओं में से कोई भी व्यक्ति अपने हिस्से का रुक्या चुकाने में असमर्थ है, तब शेष वचनदाताओं को उसके रुपये को सहन करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ—X, Y और Z मिलकर यह वादा करते हैं कि वे P को ८००० रु० देंगे। Z दिवालिया हो जाता है और उसके पास कुछ भी नहीं रह जाता है कि वह ८,००० रु० में अपना हिस्सा दे सके। P, Y से सारी रकम ले लेता है। अब Y, X को मजबूर कर सकता है।

५. किसी एक संयुक्त वचनदाता के मुक्त होने का प्रभाव—धारा ४४ के अनुसार संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को मुक्त कर देने से अन्य वचनदाता इसके भार से मुक्त नहीं हो जाते और इस तरह से मुक्त किया हुआ वचनदाता अन्य वचनदाताओं के प्रति भी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो जाता है।

लेकिन इंगलिश सन्निधम के अनुसार, वचनदाताओं में से किसी एक को मुक्त कर देने पर सभी वचनदाता मुक्त हो जाते हैं।

संयुक्त वचनगृहीताओं के अधिकार (Rights of Joint Promisees)—धारा ४५ के अनुसार जब किसी व्यक्ति ने दो या दो से अधिक व्यक्तियों को संयुक्त

रूप में कोई वादा किया है तब, जब तक समझौते से कोई विपरीत अभिप्राय जाहिर नहीं होता, समझौते की पूर्ति कराने का अधिकार अपने संयुक्त जीवनकाल में उन सब व्यक्तियों को रहता है और उनमें से किसी की भी मृत्यु होने के बाद उसके प्रतिनिधि तथा बचे हुए वचनगृहीताओं को यह अधिकार रहता है और उन सब मूल वचनगृहीताओं की मृत्यु के बाद संयुक्त रूप से सब प्रतिनिधियों के पास रहता है। उदाहरणार्थ— X Y और Z से ८,००० रु० प्राप्त करने के प्रतिफल में संयुक्त रूप से Y और Z को उक्त धन निर्दिष्ट दिन पर सूद-सहित लौटाने का वचन देता है। Y की मृत्यु हो जाती है। पूर्ति माँगने का अधिकार संयुक्त रूप से Y के प्रतिनिधि तथा Z को रहता है और Z की भी मृत्यु के बाद संयुक्त रूप से Y और Z के प्रतिनिधियों को रहता है।

**सम्पन्न करने का समय और स्थान (Time and Place of Performance)**  
[धाराएँ ४६-५०]—भारतीय प्रसंविदा सन्निधम की धारा ४६ से ५० तक के अन्दर वचन की पूर्ति के लिए समय तथा स्थान क्या होगा, इसका वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है—

१. भारतीय प्रसंविदा सन्निधम की धारा ४६ के अनुसार अगर किसी वचनदाता को अपना वचन, वचनप्रापक के आवेदन बिना पूरा करना हो और उसे पूरा करने के लिए कोई समय बताया नहीं गया हो तो वचन यथासमय (within a reasonable time) पूरा किया जाना चाहिए। 'यथासमय' क्या है (What is a reasonable time)? यह तथ्य-विषयक प्रश्न (question of fact) है और हर एक खास मामले में यह परिस्थितियों पर, व्यापार में प्रचलित रिवाज (customs and usage) पर और उन तथ्यों पर जिनका ध्यान पक्षों की प्रसंविदा करते समय था, निर्भर करता है।

**उदाहरणार्थ—**A ने अपने घोड़ी को कपड़े धोने के लिए दिया। यहाँ मुनासिब समय तीन या चार दिन का है, ज्यादा से ज्यादा एक हफ्ता या दस दिन का। लेकिन एक महीना या दो महीना मुनासिब समय नहीं है।

२. फिर धारा ४७ के अनुसार अगर प्रसंविदा को पूरा करने के लिए कोई खास दिन नियत (fixed) कर दिया गया हो तो यह नियम है कि वचनदाता को चाहिए कि वह उस नियत दिन पर किसी भी समय, जो व्यापार के साधारण समयों (usual business hours) के अन्दर हो और उस स्थान पर जहाँ वचन पूरा करना है, वचन को पूरा कर दे।

३. धारा ४८ के अनुसार जबकि वचन की पूर्ति का दिन तय हो और वचन-दाता को अपना वचन वचनगृहीता के आवेदन पर पूरा करना है, तो वचनगृहीता का यह कर्तव्य होता है कि वह यथोचित स्थान तथा समय पर पूर्ति के लिए आवेदन करे। 'यथोचित स्थान तथा समय' क्या है, यह हर एक तथ्य की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

४. फिर धारा ४९ के अनुसार जब वचनप्रापक के आवेदन किये बिना ही वचन को पूरा करना हो और पूरा करने के लिए कोई स्थान नहीं बताया गया हो तब वचनदाता का यह कर्तव्य होगा कि वह वचनगृहीता से कोई उचित स्थान तय करने को कहे और ऐसे निश्चित स्थान पर इसको पूरा करे। उदाहरणार्थ, A, B को ५०० मन चावल एक निश्चित दिन देने का वचन देता है। A का कर्तव्य है कि इस काम के लिए B से कोई यथोचित स्थान तय करने का आवेदन करे और फिर उसी स्थान

पर माल की सुपुर्दगी करे।

५. धारा ५०<sup>१</sup> के अनुसार ऊपर लिखी गयी परिस्थितियों के अलावा, वचन की पूर्ति किसी भी समय अथवा किसी भी तरीके से की जा सकती है जिसके लिए वचन-गृहीता आदेश करता है।

**उदाहरणार्थ—**(क) A, १०० रु० से B का कर्जदार है। B कर्ज के कुछ भाग के भुगतान में A का कुल माल स्वीकार कर लेता है। माल की सुपुर्दगी कर्ज का आंशिक भुगतान माना जायेगा।

(ख) A, १००० रु० से B का कर्जदार है। B, A से कहता है कि A उसे १०० रु० डक द्वारा भेज दे। जब A, B का ठीक पता लिखकर रुपया भेज देता है, उसी समय कर्ज का भुगतान मान लिया जायेगा।

**प्रसंविदा का सार, समय (Time as the essence of the Contract)—**जिन प्रसंविदाओं में वचन-निष्पादन के समय को पक्षकारों द्वारा प्रसंविदा का सार निर्धारित किया गया हो उनमें अगर कोई भी पक्षकार अपने दिये गये वचन को अगर निश्चित समय के अन्दर पूरा न कर सके तो सविदा दूसरे पक्षकार की इच्छा पर विवर्जनीय (voidable) हो जायेगी, लेकिन यह निर्धारित करना कि किसी विशिष्ट सविदा में सविदे की रचना के समय-निष्पादन के लिए निश्चित किये गये समय को पक्षों द्वारा सविदा का सार माने जाने का अभिप्राय था या नहीं, बहुत मुश्किल होता है। किसी काम को किसी विशिष्ट समय तक पूरा करने के वचन-मात्र से ही समय-संविदा का सार नहीं हो जाता है। निष्पादन के लिए निश्चित समय को सविदा का सार मानने का पक्षकारों का मतलब था या नहीं, इसका निश्चय सिर्फ सविदा की शर्तों की प्रकृति के अध्ययन के बाद ही किया जा सकता है।

**साधारणतः** यह कहा जाता है कि व्यापारिक संविदाओं में वचन के निष्पादन या माल की सुपुर्दगी में, समय-सम्बन्धी शर्त को सविदा का सार माना जाता है लेकिन किसी विपरीत संविदा के अभाव में धन या मूल्य के भुगतान के समय की शर्त को कभी भी संविदा का सार नहीं माना जाता है।

बहुत-सी वस्तुओं के मूल्य में साधारणतः बहुत तेजी के साथ परिवर्तन होता रहता है इसलिए माल की सुपुर्दगी में समय की पाबन्दी अवश्य ही रखनी चाहिए, परन्तु ऐसी वस्तुओं से सम्बद्ध संविदाओं में, जिनकी कीमत कुछ समय तक के लिए स्थिर रहती है (जैसे भूमि, मकान आदि), सामान्यतः वचन-निष्पादन के समय को सविदे का सार नहीं माना जाता है।

इसी प्रकार बन्धक के कर्ज का भुगतान किसी भी समय किया जा सकता है और बन्धक रखी गयी सम्पत्ति को कर्ज की परिपक्वता की तिथि के बाद भी छुड़ाया जा सकता है। ऐसी प्रसंविदाओं में भी, जिनमें निष्पादन-समय को साधारणतः सविदा का सार नहीं माना जाता है, पक्षों द्वारा यह स्पष्टतः तय किया जा सकता है कि अगर संविदा का निष्पादन किसी निश्चित तारीख तक नहीं किया जाता है तब दूसरे पक्ष को सविदा समाप्त करने का विकल्प प्राप्त हो जायगा।

जिन संविदाओं में समय-संविदा का सार नहीं होता है उनका भी निष्पादन यथोचित समय में किया जाना चाहिए, अन्यथा वे वचनगृहीता के विकल्प पर विवर्जनीय (voidable) हो जायेंगे।

यह गौर करने की बात है कि जब संविदा-निष्पादन के लिए समय एक आवश्यक



तत्त्व रहा हो, लेकिन निर्धारित समय के अन्दर संविदा को निष्पादित न किया गया हो, तो वचन गृहीता को अपने संविदा के परित्याग (rescission) करने का अधिकार छोड़ने की स्वतन्त्रता होगी और वह निश्चित समय के अलावा अन्य समय पर भी संविदा का निष्पादन किया जाना स्वीकार कर सकता है। जब वचनगृहीता द्वारा अपने अधिकार का इस तरह परित्याग कर दिया गया हो तो वह वचनदाता से निश्चित समय के अन्दर वचन के निष्पादित न होने के कारण होनेवाले किसी भी नुकसान के लिए प्रतिकार की माँग नहीं कर सकता है जब तक कि उसने क्षति-पूर्ति की माँग करने के अपने अभिप्राय की सूचना वचनदाता को पहले से न दे दी हो।

### भुगतानों का नियोजन (धारा 59 से 61) (Appropriation of payments)

जब किसी कर्जदार को कर्जदाता के कई अलग-अलग कर्जों का भुगतान करना हो और कर्जदार द्वारा भुगतान में दी गई रकम सभी कर्जों को चुकाने के लिए पर्याप्त न हो तब सवाल यह उठता है कि प्राप्त धन को किस कर्ज के भुगतान में नियोजित किया जाय। इंग्लैण्ड में इस विषय पर क्लेटन के मुकदमे [Clayton's Case (1816) 1 Mor 572] के फ़ैसले को आधार माना जाता है। भारत में भुगतानों के नियोजन-सम्बन्धी नियम भारतीय प्रसविदा सन्निधय की धारा 59 से 61 में दिये गये हैं।

इस सम्बन्ध में त्राफ़्ट बनाम लुमले [Croft vs Lumley (1858) 5 E & B. 648 के मुकदमे में न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किये गये निम्नलिखित विचार याद रखने योग्य हैं—

“कानून का यह प्रामाणिक सूत्र है कि जब धन प्राप्त किया गया हो तो उसका नियोजन धन देनेवाले व्यक्ति के इच्छानुसार किया जाना चाहिए, धन पानेवाले व्यक्ति की इच्छा के अनुसार नहीं। जिस पक्ष को धन दिया गया है अगर वह भुगतानकर्ता द्वारा व्यक्त की गयी इच्छा के अनुसार उसका नियोजन करने के लिए सहमत नहीं है तो उसे धन लेने से अस्वीकार कर देना चाहिए और सन्निधय द्वारा उपलब्ध अधिकारों का प्रयोग करना चाहिए।” [“There is an established maxim of Law that, when money is paid, it is to be applied according to the expressed will of the payee, not the receiver. If the party to whom the money is offered does not agree to apply it according to the express will of the party offering it, he must refuse it and stand upon the rights which the law gives him.”]

भारतीय प्रसविदा सन्निधय में भुगतानों के नियोजन के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम दिये गये हैं—

१. कर्जदार द्वारा नियोजन (धारा 59)— (i) जब किसी कर्जदार द्वारा कर्जदाता को धनराशि का भुगतान ऐसे स्पष्ट या गभित निर्देश-सहित दिये जायें कि उसे किसी विशेष कर्ज के प्रति प्रयुक्त किया जाना है, तब अगर कर्जदाता उस भुगतान को स्वीकार करता है तो उसे प्राप्त धन को कर्जदार के निर्देशानुसार ही प्रयोग करना चाहिए। [Vasudeo vs Namdeo (1951) Nag. 155.]

(ii) अगर कर्जदाता के और भी कर्ज हों जो देय हो गये हों और कर्जदार धन

को अपने इच्छानुसार कर्जों के भुगतान में प्रयुक्त करने के लिए इस प्रकार का आग्रह करे जो कि कर्जदाता को स्वीकार न हो तो वह धन लेने से मना कर सकता है। भुगतान-नियोजन मूलतः कर्जदार का अधिकार है और उसी के लाभ के लिए है। इसलिए कर्जदाता को कर्जदार के निर्देश का अक्षरशः पालन करना चाहिए।

(iii) कर्जदार द्वारा दिये गये निम्नलिखित विविध निर्देशों पर अगर कर्जदाता सहमत नहीं होता है तब उसे धन प्राप्त करने से मना कर देना चाहिए। यद्यपि वह कर्जदार के खिलाफ सामान्य नियम के अन्दर प्राप्त अपने सभी अधिकारों का प्रयोग कर सकता है लेकिन किसी भी हालत में धन के भुगतान को आपत्ति-सहित (under protest) स्वीकार नहीं कर सकता है और नहीं भुगतान प्राप्त करने के बाद उसके नियोजन में परिवर्तन कर सकता है।

(iv) कर्जदार द्वारा नियोजन-सम्बन्धी सूचना (information of appropriation) धन के भुगतान के साथ-साथ देना चाहिए। नियोजन-सम्बन्धी निर्देश, शब्दों या आचरण दोनों प्रकार से दिया जा सकता है।

**उदाहरणार्थ—**(क) अगर किसी व्यक्ति पर एक कर्ज ५० रु० का है और दूसरा ८० रु० का है और वह ८० रु० का भुगतान करता है तो यह समझा जायेगा कि उसने ४० रु० का ही कर्ज चुकाया है।

(ख) X को Y के अन्य कर्जों के अलावा एक प्रतिज्ञापत्र के ८०० रु० भी देना है जो मार्च ३१ को देय है तो इस रकम का Y का और कोई कर्ज X पर बाकी नहीं है। ३१ मार्च को X, Y को ८०० रु० देता है। इस धन को प्रतिज्ञापत्र के भुगतान के लिए ही समझा जाना चाहिए।

(ग) A को B के अन्य कर्जों के अलावा ५०१ रु० की रकम का भुगतान करना है। B, A को पत्र लिखकर इस रकम के भुगतान की माँग करता है। A, B को लिखा गया रुपया भेज देता है। इस रकम का नियोजन सिर्फ उसी कर्ज के भुगतान में करना चाहिए, जिसके लिए B ने माँगपत्र भेजा था।

**२. कर्जदाता द्वारा नियोजन (धारा ६०)—**अगर किसी व्यक्ति से कर्जदाता को कई कर्जों का भुगतान प्राप्त करना हो और भुगतान के समय कर्जदार द्वारा नियोजन-सम्बन्धी कोई निर्देश नहीं दिया गया हो, तो कर्जदाता उस रकम को अपने इच्छानुसार अवधि-आक्रान्त (time-barred) कर्जों-सहित किसी भी वैधानिक कर्ज के भुगतान के लिए नियोजन कर सकता है। नियोजन का यह काम कर्जदाता द्वारा केवल तभी प्रयोग किया जा सकता है जबकि कर्जदार को नियोजन-सम्बन्धी निर्देश देने का अधिकार प्राप्त था, लेकिन उसने उसका इस्तेमाल नहीं किया है। कर्जदाता नियोजन के अपने अधिकार का अन्तिम क्षण तक प्रयोग कर सकता है उसके लिए अपने नियोजन-अभिप्राय को स्पष्ट शब्दों द्वारा बतलाने की कोई जरूरत नहीं होती है।

कर्जदाता अपने नियोजन में अन्तिम समय तक परिवर्तन कर सकता है, अर्थात् अगर उसने प्राप्त रकम को किसी एक कर्ज के भुगतान के लिए नियोजन कर लिया है, लेकिन कर्ज के अपने नियोजन की कोई सूचना नहीं दी है तब वह किसी भी अन्य कर्ज के भुगतान के लिए उस रकम को नियोजित कर सकता है।

लेकिन जब कर्जदाता द्वारा एक बार रकम को नियोजन करके उसकी खबर कर्जदार को दे दी गयी है तब उसका नियोजन में हेर-फेर करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

प्राप्त रकम का नियोजन कानूनन एवं समन्यायी (equitable) दोनों प्रकार के कर्ज के प्रति किया जा सकता है, चाहे कानूनी कार्रवाई के द्वारा उनका भुगतान प्राप्त करना असम्भव ही क्यों न हो गया हो; जैसे—अवधि-आक्रान्त कर्ज। परन्तु कर्जदार द्वारा दी गयी रकम को कर्जदाता अवैध या अमान्य के समझौतों के अन्दर उत्पन्न हुए कर्जों के भुगतान में नियोजित नहीं कर सकता है।

३. जब किसी पक्ष ने नियोजन के सम्बन्ध में कोई विशिष्ट स्थिति नहीं अपनायी हो (धारा ६१)—जब किसी पक्ष ने भुगतान किये गये धन के विषय में कोई निश्चय न किया हो तब प्राप्त रकम का कर्जों के समय के क्रम के अनुसार नियोजन किया जायेगा, चाहे वे कर्ज अवधि-आक्रान्त हो गये हों या नहीं। अगर कर्जों का समय-क्रम एक ही हो, तो प्राप्त होनेवाली रकम का आनुपातिक रूप से प्रत्येक कर्ज के भुगतान में नियोजन किया जायगा। यह नियम पक्षों द्वारा विपरीत अभिप्राय का प्रमाण दे दिये जाने पर मान्य नहीं होगा।

४. सूद का भुगतान—अगर किसी कर्ज पर सूद भी देना हो और कर्जदार द्वारा भुगतान की गयी रकम के नियोजन के विषय में कोई विशिष्ट निर्देश नहीं दिया गया हो तो साधारणतः पहले रकम का नियोजन देय सूद के भुगतान के लिए किया जाना चाहिए और सिर्फ शेष रकम का ही मूलधन के भुगतान के लिए नियोजन किया जाना चाहिए।

५. यदि दूसरा पक्ष किसी विशेष कर्ज के भुगतान के लिए कहता है तो इस माँग पर किया गया भुगतान उस कर्ज के हिसाब में लगाया जाना चाहिए।

६. जहाँ दूसरा पक्ष कई कर्जों के भुगतान के लिए कहता है और पहला पक्ष एक एकत्र धनराशि भेजता है वहाँ वह धनराशि उन कई कर्जों के हिसाब में अनुपात से डाली जायगी।

७. जहाँ दूसरा पक्ष बिना यह बताये भुगतान करता है कि यह व्याज का भुगतान है या मूल का, वहाँ यह पहले व्याज या सूद के हिसाब में, और यदि कुछ शेष रहे तो मूल के हिसाब में डाला जायगा। [1५50. Fed. Court 38]

## २. नये सिरे से समझौता करके (By Fresh Agreement)

किसी अनुबन्ध (agreement) के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिए यदि वचन-प्रापक और वचनदाता इस बात पर राजी हो जायें कि किये गये अनुबन्ध को रद्द करके वे खत्म करते हैं तो वह प्रसंविदा समाप्त हो जाती है। धारा ६२ में यह बतलाया गया है कि किस प्रकार आपस के अनुबन्ध या समझौते समाप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

“If the parties to a contract agree to substitute a new contract for it, or to rescind or alter it, the original contract need not be performed.”

१. इस प्रसंविदा के स्थान पर नयी प्रसंविदा को रखना चाहें, अथवा

२. इस प्रसंविदा का खंडन (rescind) करना चाहें, अथवा

३. इस प्रसंविदा का परिवर्तन करना चाहें तो मूल (original) प्रसंविदा को सम्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(a) नवीकरण (Innovation)—जब नयी प्रसंविदा का उदय होता हो और पुरानी प्रसंविदा की समाप्ति होती हो तो इसे प्रसंविदा का नवीकरण कहते हैं। यह तभी संभव है जब कि प्रसंविदा को सम्पन्न करने का अधिकारी किसी तीसरे व्यक्ति से

उसे संपन्न कराने पर राजी हो। अतः इससे मौलिक प्रसंविदा करानेवाले के स्थान पर एक नये व्यक्ति को स्थानापन्न किया जाता है। मिलर का मुकदमा (Miller's case 1875, 3 Ch. D. 391) नवीकरण का ज्वलंत और सुन्दर उदाहरण है। यहाँ पर एक बीमा कम्पनी ने मिलर को एक निश्चित वार्षिक प्रीमियम (yearly premium) देने के बदले में यह स्वीकार किया था कि मिलर की मृत्यु के बाद कम्पनी उसके परिवार को २०० पौंड की वार्षिक वृत्ति (annuity) देगी। कुछ दिनों के बाद एक यूरोपियन एसोसिएशन (European Association) ने उस बीमा कम्पनी को खरीद लिया और यह वादा किया कि यूरोपियन एसोसिएशन ही अब बीमा कम्पनी की प्रत्येक प्रसंविदा के लिए बाध्य रहेगी। मिलर ने भी इस संविदा को मान लिया और प्रीमियम देता गया। यहाँ प्रसंविदा का नवीकरण हुआ। मिलर और ऐन्गेनिंगन की पूर्वाधिकारिणी बीमा कम्पनी के बीच हुई प्रसंविदा की समाप्ति हो गयी।

(b) खंडन (Rescission or Waiver—वेवर)—धारा ६३ के अनुसार अगर वचनप्रापक चाहे तो वचनदाता को उसके प्रतिज्ञा-पालन करने से छुटकारा दे सकता है (Every promisee may dispense with or remit wholly or in part the performance of the promise made to him.) !

भारतीय विधान का खंडन (rescission) अंगरेजी विधान में दिये गये वेवर (Waiver) शब्द से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वेवर का अर्थ होता है 'स्वत्व-त्याग' यानी अपना अधिकार त्याग देना। खंडन में भी 'स्वत्व-त्याग' का होना आवश्यक है। खंडन के अनुसार दोनों पक्ष आपस के सनझौते द्वारा अपने-अपने अधिकारों का परित्याग करते हैं जिनके फलस्वरूप मौलिक (original) संविदा खत्म हो जाती है।

उदाहरणार्थ—१. X ने Y से एक साल के लिए १,००० रु० कर्ज लिया। छः महीने के बाद X, ५०० रु० Y को देता है जिसे Y अपने पूरे कर्ज के लिए मान लेता है। अतः पूरा कर्ज अदा हो गया।

२. X ने Y को १,००० रु० कर्ज यह कहकर दिया कि तुम्हें तीन महीने के बाद यह रकम लौटा देनी होगी। तीन महीने का समय खत्म हो जाने पर Y, X के पास जाकर थोड़ा समय और माँगता है। अगर X ने कहा कि मैंने तुम्हें दो महीने का और समय दिया तो पुरानी प्रसंविदा समाप्त हो जायगी।

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि भारतीय राजनियम के अनुसार ऐसा त्याग करने के लिए किसी प्रतिफल की आवश्यकता नहीं है हालाँकि इंगलिश सन्नियम के अनुसार ऐसा प्रतिफल जरूरी है।

(c) परिवर्तन (Alteration)—धारा ६२ के अनुसार अगर दोनों पक्षों की राय से किसी प्रसंविदा के अन्तर्गत कोई परिवर्तन किया जाता है, जो मौलिक (original) शर्तों से विल्कुल भिन्न हो, तो इसे परिवर्तन कहा जाता है और फिर प्रसंविदा का नया रूप तैयार हो जाता है तथा मौलिक (original) प्रसंविदा को रद्द कर दिया जाता है और साथ-साथ पुरानी प्रसंविदा का उत्तरदायित्व भी समाप्त हो जाता है।

उदाहरणार्थ—मेशाह अहरोनेल बनाम नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया के मुकदमे\*

के अनुसार यदि डी० पी० बिल (D/P or Document against Payment Bill) का परिवर्तन डी० ए० बिल (D/A or Document against Acceptance) में कर दिया जाय तो यह तात्त्विक परिवर्तन (material alteration) होगा और और फिर डी० पी० बिल पर का अधिकार और उत्तरदायित्व खत्म हो जायगा।

(d) शर्त या घटना—जब किसी प्रसविदा में साफ-साफ लिखा हो कि कोई निश्चित घटना घटने पर प्रसविदा की समाप्ति हो जायगी तब उस निश्चित घटना पर प्रसविदा की समाप्ति हो जाती है और आपस के अधिकार और उत्तरदायित्व सब खत्म हो जाते हैं।

### ३. सम्पन्नता या पूर्ति की असम्भाव्यता से (By Impossibility of Performance)

धारा ५६ के अनुसार किसी कार्य को करने की प्रसविदा जिसका करना प्रसविदा हो चुकने के बाद असम्भव हो जाने अथवा किसी ऐसी घटना के घट जाने के कारण जो वचनदाता के वश के बाहर थी अथवा विधान में परिवर्तन होने या स्थिति के बदल जाने के कारण अवैधानिक हो जाय, तो वह उसी समय व्यर्थ हो जाती है जिस समय कार्य का सम्पन्न होना असम्भव हो जाता है। इसको 'अव्यवधायक-असम्भाव्यता' (supervening impossibility) कहते हैं। इसका दूसरा नाम लोगों ने 'निराशा' (frustration) भी रखा है क्योंकि इससे प्रसविदा का उद्देश्य (object) ही खत्म हो जाता है। इस सम्बन्ध में लैटिन के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं— (क) "राजनियम उसको कोई मान्यता नहीं देता जो असम्भव है" ("Lex Non cogit ad impossibilia", i. e. the Law does not recognise what is impossible) (ख) "जो असम्भव है वह कोई उत्तरदायित्व उत्पन्न नहीं करता" (Impossibilium Nulla obligatio est", i. e.; What is impossible does not create an obligation.)।

ऊपर लिखे गये नियम के अनुसार किसी व्यक्ति की 'अव्यवधायक असम्भवता' (supervening impossibility) होने के निम्नलिखित कारण बतलाये गये हैं—

(i) अगर किसी नये विधान के होने से (Change of Law) प्रसविदा में रुकावट पड़ जाती है तो प्रसविदा समाप्त हुए बिना ही समाप्त हो जाती है। इस तरह की प्रसविदा निम्नलिखित तरीके से खत्म होती है—

(क) अगर किसी देश की व्यवस्थापिका-सभा (legislature) ने कोई नया कानून बना दिया जिसकी वजह से प्रसविदा में रुकावट आ गयी तो प्रसविदा समाप्त हो जाती है। इस नियम पर कुसील बनाम टिम्बर औपरेटर्स और कन्ट्रेक्टर्स\* का मुकदमा प्रसिद्ध है। इसके अनुसार दोनों पक्षों में समझौता हुआ कि लटेविया के जंगल (Latavian forests) से कुछ लकड़ी भेजी जायेगी। पर प्रसविदा होने के कुछ ही दिन बाद लटेविया की सरकार ने किसी भी प्राइवेट कम्पनी को जंगल से लकड़ी काटने में रोक लगा दी। इसलिए दूसरा पक्ष जिसे लकड़ी भेजनी थी वह प्रसविदा सम्पन्न करने में असमर्थ है। इसलिए अदालत ने फैसला दिया कि नये कानून के हो जाने से प्रसविदा भंग समझी जाये।

\* *Kursell vs. Timber Operators and Contractors* (1927) I. K. B 298. (1876) 1. Q. B. D. 258.

(ख) अगर दो राज्यों के बीच युद्ध छिड़ गया तब भी प्रसंविदा उन दोनों देशों या राज्यों के लिए भंग समझी जाती है।

**उदाहरण**—X जो भारत का रहने वाला है एक अमेरिकी व्यापारी से सामान खरीदने की प्रसंविदा करता है। अगर प्रसंविदा सम्पन्न होने के पहले ही भारत और अमेरिका में लड़ाई छिड़ जाय तथा जो सामान खरीदता था उस पर भारत सरकार प्रतिरोध लगा दे तो अमेरिकी व्यापारी बेचने के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायगा।

(ii) प्रसंविदा करने वाले व्यक्तियों की मृत्यु होने से या सटिक के विषय का नाश होने से (By death of the parties or destruction of subject matter)—ऐसी प्रसंविदा, जिसको पूरा करने के लिए पक्षों का जीवित रहना आवश्यक है, उनकी मृत्यु के बाद आप से आप समाप्त (discharge) हो जाती है।

**उदाहरण**—यदि A, एक कलाकार ताजमहल का चित्र बनाने का वादा करे और वह अगर १० दिन के बाद मर जाय या उसका हाथ कट जाय या वह अन्वा हो जाय तब प्रसंविदा समाप्त हो जाती है। फिर होवेज बनाम कूपलैण्ड (Howell vs. Coupland) के अनुसार जिस विषय के लिए प्रसंविदा की गयी हो यदि उस विषय का नाश (destruction) हो जाय तब प्रसंविदा समाप्त हो जाती है और पक्षों को अपने-अपने अधिकार का परित्याग करना पड़ता है। इस मुकदमे की वस्तु-स्थिति (facts) इस प्रकार है कि मुद्दालह ने मुद्ई को १,००० मन आलू वसन्त ऋतु में देने का वादा किया था पर वसन्त ऋतु के पहले ही मुद्दालह की आलू की फसल में कीड़े लग जाने से फसल खराब हो गयी। इसलिए मुद्दालह वादे को पूरा करने से असमर्थ रहा और मुकदमा होने पर यह फैसला हुआ कि वस्तु के नाश से प्रसंविदा का नाश हो गया।

इसी तरह से टेलर बनाम कॉलडवेल\* [Taylor vs. Caldwell (1863) 3 B 85, 826] के मुकदमे में मुद्दालह ने संगीत-सदन या भवन (Music Hall) को भाड़े पर देने की प्रसंविदा की थी। पर संगीत-सदन में आग लग जाने के कारण वह जल गया तो यह प्रसंविदा समाप्त हो गयी और प्रतिज्ञाकर्ता प्रसंविदा पूरा करने से मुक्त कर दिया गया।

(iii) किसी निश्चित घटना के घटित होने या प्रसंविदा की किसी शर्त के पूरा होने से भी प्रसंविदा समाप्त की जाती है (Occurrence of an event or fulfilment of a condition)—साधारणतः यह प्रसंविदाओं की शर्त में देखा गया है कि किसी भी शर्त के पूरा होने के पहले (condition precedent) या बाद में (a condition subsequent) या साथ-साथ (a condition concurrent) पूरा किये जाने की प्रसंविदा हो तो उसे उसी समय सम्पन्न किया जाना चाहिए। जैसे—

१. A, B से कहता है कि यदि तुम अपनी गाय को दूध कर यह दिखा दोगे कि वह दो सेर दूध देती है तो मैं उसे २००) रु० में खरीद लूंगा। इसलिए अगर B की गाय दो सेर दूध न देगी तो A उसे खरीदने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

२. A, B से उसका मकान इस शर्त पर खरीदने का वादा करता है कि

\* (1863) 3 B. and S. 826.

खरीदने के वक्त उसके मकान की नाली साफ रहनी चाहिए। A, B का मकान तब तक नहीं खरीदने के लिए मजबूर है जब तक कि मकान की नाली एकदम साफ सुथरी न हो।

३. A ने B का मकान तीन साल के ठीके (contract) पर लिया और शर्तनामे में यह लिखा गया कि जिस समय मकान की नाली खराब हो जायगी या बेमरम्मत हो जायगी, ठेका टूट जायगा। अगर एक साल के बाद ही नाली बेमरम्मत हो जाती है तब A को यह अख्तियार है कि वह प्रसविदा तोड़ दे।

इस नियम के आधार पर अगर किसी पक्ष ने किसी प्रसविदा के लिए दिया है और कुछ रुपया पेशगी अनिश्चित घटना के घट जाने से प्रसविदा पूरी नहीं की जाती है तब प्रसविदा भंग हो जायगी और वह आदमी पेशगी का रुपया वापस माँग सकता है या नहीं—इस प्रश्न का उत्तर क्रेल बनाम हेनरी\* (Krell vs Henry) के मुकदमे में दिये गये निर्णय से मिलता है। इस मुकदमे की वस्तुस्थिति (facts) इस प्रकार है कि हेनरी ने क्रेल के मकान की ऊपरी छत, सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक का जूलूस देखने के लिए दो दिन (२६ और २७ जून, १९०८) के लिए किराये पर ली। पर जो दिन जूलूस के गुजरने के लिए तय थे उसके दो दिन पहले यह घोषणा हुई कि राजा के बीमार होने की वजह से अब जूलूस उस दिन नहीं निकलेगा। क्रेल ने बाक़ी रुपये के लिए हेनरी पर मुकदमा किया और हेनरी ने अपनी पेशगी की वापसी के लिए। १९०२ के फैसले से यह हुआ कि “जिसका जितना नुकसान हुआ हुआ है वह वहीं रहे (The loss lay where it fell.)”।

लेकिन १९४२ के Fibrosa Spolka Akcyjna vs. Fairbairn Law son Combe Barbour Ltd. के निर्णय के अनुसार अगर किसी व्यक्ति ने किसी प्रसविदा के लिए पेशगी दी है और वह प्रसविदा पार्टी की कोई गलती नहीं रहने पर भी पूरी नहीं की जा सकी तब पेशगी के रूप में दिया गया रुपया वापस हो जायगा।

(iv) व्यापारिक असम्भाव्यता (Commercial Impossibility)—यह एक महत्वपूर्ण बात है कि किसी भी प्रसविदा को असम्भाव्यता के आधार पर अमान्य होने के लिए वैधानिक अथवा शारीरिक असम्भाव्यता (legal or physical impossibility) का होना जरूरी है। शारीरिक असम्भाव्यता का मतलब यह है कि जब कोई काम मानव-साधनों के द्वारा नहीं किया जा सकता है, कोई भी समझौता व्यापारिक असम्भाव्यता की वजह से अमान्य नहीं हो सकता। इसका मतलब यह है कि कोई भी समझौता इसलिए अमान्य नहीं हो सकता कि उसकी पूर्ति कठिन मालूम हो अथवा वह ज्यादा हानि उठाये बिना पूरा नहीं किया जा सकता।

उदाहरण—१. A ने किसी खास मिल द्वारा बनायी गयी धोतियों की २०० गाँठ B को बेचने का समझौता किया। विक्रेता थोड़े ही माल की सुपुर्दगी दे सका, क्योंकि मिल बाक़ी माल तैयार करके देने में असफल रही। ऐसी हालत में B विक्रेता से समझौते की पूर्ति न होने के कारण हर्जाना वसूल करने का अधिकारी है। [47 om. 344].

२. A, B का माल बम्बई से सिंगापुर १०० प्रति टन के भाड़े पर भेजने का समझौता करता है। समझौता होने के बाद लड़ाई शुरू हो जाती है जिसकी वजह से वह जहाजी कम्पनी जिसके साथ A उस माल को भेजने को सोच रहा था, किराया बढ़ाकर ४०० रु० प्रति टन कर देता है। अब A को B के साथ अपने समझौते की

पूर्ति करनी होगी, अन्यथा उसे हर्जाना देना पड़ेगा [40 Bom. 301]।

अव्यवधायक असम्भाव्यता के कारण हुए प्रसंविदा की समाप्ति होने की दशा में पत्रकारों के अधिकार (Rights of Parties in case of discharge by Supervening Impossibility)—धारा ५६ के अनुसार अगर अकस्मात् असम्भाव्यता की वजह से कोई प्रसंविदा अमान्य हो जाती है और ऐसी हालत में अगर किसी पक्ष ने प्रसंविदा के अधीन लाभ प्राप्त कर लिया है, तब धारा ६५ के मुताबिक वह उस लाभ को दूसरे पक्ष को लौटाने के लिए बाध्य है। उदाहरणार्थ, A, B के यहाँ उसके लड़के के जन्मदिवस पर ११००) रु० गाने के लिए प्रसंविदा करता है। रुपया पेशगी (advance) में दे दिया जाता है। A बीमारी के कारण गाने में असमर्थ है। A को B के लिए ११००) रु० वापस करना होगा।

इसके अलावा, जबकि वचनदाता यह जानता था, या यथोचित उद्योग से जान सकता था और वचनगृहीता नहीं जानता था कि वह काम जिसके लिए वचन दिया गया था असम्भव या अवैधानिक था, तो वचनदाता को वचनगृहीता के नुकसान को पूरा करना होगा। उदाहरणार्थ, X जिसकी शादी Y के साथ पहले ही हो चुकी है, Z के साथ शादी करने की प्रसंविदा करता है और जिस राजनियम के अधीन वह रहता है उसके अनुसार एक साथ एक से ज्यादा शादी करना अमान्य घोषित किया गया है। X को Z के नुकसान की पूर्ति करनी होगी, जो कि उसको अपने वचन की पूर्ति न करने की वजह से पहुँचा हो।

#### ४. वचन को भंग करने से (By Breach or Renunciation of Contract)

यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कोई कार्य नहीं करता है तब उसका कार्य 'प्रतिज्ञा भंग करना' कहलावेगा। धारा ३९ के अनुसार अगर किसी प्रसंविदा का एक पक्ष प्रसंविदा को सम्पन्न करने से वे-वजह साफ इनकार (flat refusal) करता हो या उसके आचरण (conduct) से यह साफ जाहिर होता हो कि वह वादा पूरा नहीं करना चाहता तब हम प्रसंविदा को भंग हुआ समझेंगे।

वचनभंग निम्नलिखित तरीकों से हो सकता है और इसमें किसी भी तरह से भंग होने पर पीड़ित पक्ष को अपने अधिकारों के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार हो जाता है—

१. पूर्व-ज्ञात प्रतिज्ञा-भंग (Anticipatory or Constructive Breach), और
२. वास्तविक या सत्यतः (Actual Breach)।

**उदाहरण—**X, Y से अपना मकान ७,००० रु० में बेचने का वादा करता है पर वह Z को अपना मकान ९,००० रु० में बेच देता है। यहाँ उसके आचरण (conduct) से यह साफ जाहिर होता है कि वह अपने मकान को Y के हाथ नहीं बेच सकता। इस प्रकार प्रतिज्ञा-भंग करने को 'पूर्व-ज्ञात प्रतिज्ञा-भंग' (Anticipatory Breach of Contracts) कहते हैं, क्योंकि यहाँ पर एक पक्ष के आचरण से यह साफ पता चल गया कि उस व्यक्ति को या तो प्रसंविदा पूरा करने का विचार नहीं है या वह प्रतिज्ञा को पूरा करने में असमर्थ है।

फिर प्रतिज्ञा-भंग का पूर्व-ज्ञान होते हुए भी वह पक्ष उस दिन तक सन्तोष-पूर्वक प्रतीक्षा करता है, जिस दिन उसका अन्तिम दिन पड़ता हो तो उसे 'सत्यतः प्रतिज्ञा-भंग' (Actual Breach of Contracts) कहते हैं।

**उदाहरण—**(१) X, जो एक ठीकेदार है, एक साल के अन्दर Y का मकान



बनाने की प्रतिज्ञा करता है, परन्तु दस महीने तक उसने मकान बनाने का सामान भी नहीं मँगवाया है। ऐसी हालत में यह पूर्वज्ञान प्रतिज्ञा-भंग (Anticipatory Breach of Contract) कहा जायगा।

२. अगर X, Y से यह प्रतिज्ञा करता है कि वह थोड़ा-थोड़ा करके दो साल के अन्दर उसे १,००० टन कोयला देगा। अगर X ७०० टन कोयला देने के बाद कोयला देना बन्द कर दे तो प्रसंविदा भंग हुई समझी जायगी, लेकिन Y दो साल की अवधि तक बाकी कोयले के लिए इन्तजार कर सकता है।

**वचनभंग का प्रभाव (Effect of Breach)**— धारा ३९ के अनुसार अगर कोई पक्ष अपने वचन की पूरी तरह पूर्ति करने से इनकार कर देता है या पूरी तरह पूर्ति करने में अपने-आपको असमर्थ पाता है या बना लेता है तब वचनगृहीता प्रसंविदा खत्म कर सकता है। लेकिन अगर वचनगृहीता अपने शर्तों तथा आचरण द्वारा प्रसंविदा के जारी रहने के लिए अपनी सम्मति दे देता है तब बाद में भी वचनदाता अपने वचन का पूर्ण निष्पादन कर सकता है।

**उदाहरण—A**, एक नर्तकी, एक थियेटर के प्रबन्धक के साथ अगले दो माह तक उसके थियेटर में प्रति सप्ताह तीन रात नाचने की प्रसंविदा करती है और प्रबन्धक प्रत्येक रात के नाच के लिए १००० रु० देने का वचन देता है। पाँचवीं रात को नर्तकी अपने इच्छानुसार थियेटर से गैरहाजिर हो जाती है, तब ऐसी हालत में प्रबन्धक को प्रसंविदा समाप्त कर देने का अधिकार है।

३. A, एक नर्तकी एक थियेटर के प्रबन्धक के साथ अगले दो माह तक उसके थियेटर में प्रति सप्ताह दो रात नाचने की प्रसंविदा करती है और प्रबन्धक प्रत्येक रात के नाच के लिए १००० रु० देने का वचन देता है। पाँचवीं रात को नर्तकी अपनी इच्छा से थियेटर से गैरहाजिर हो जाती है, फिर प्रबन्धक की सहमति से छठी रात गाती है। यहाँ प्रबन्धक ने समझौते को चालू रखने की अपनी मौन सम्मति प्रकट कर दी है और अब वह इसे तोड़ नहीं सकता है, परन्तु वह पाँचवीं रात को नर्तकी के न नाचने की वजह से जो नुकसान हुआ उसकी पूर्ति कराने का अधिकारी है।

यह एक बहुत ही महत्व की बात है कि अगर किसी पक्ष द्वारा समझौते का खंडन होता है तब दूसरे पक्ष को सिर्फ समझौते को खत्म कर देने का ही अधिकार नहीं मिल जाता, बल्कि साथ ही साथ उसे 'अपने अधिकारों की प्राप्ति' (Remedies for Breach of Contract) का अधिकार भी मिल जाता है।

#### ५. कानून से प्रभावित होकर (By Operation of Rules of Law)

कानून के प्रवर्तन से कभी-कभी प्रसंविदा की समाप्ति हो जाती है। ये प्रसंविदाएँ तीन परिस्थितियों में समाप्त होती हैं—

१. **संमिलन द्वारा (By Merger)**— जब किसी छोटी प्रसंविदा के स्थान पर किसी दूसरी बड़ी प्रसंविदा को स्वीकार कर लिया जाता है तो इसे संमिलन कहते हैं और इस प्रकार छोटी प्रसंविदा का अधिकार और उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है।

अतः संमिलन के लागू होने के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है—

- (i) जब वे ही (same) अर्थात् पहली प्रसंविदा वाले ही हों;
- (ii) विषय भी एकसम (identical) हो;

(iii) भिन्न-भिन्न मूल्य (value) के दो जमानत-पत्र होने चाहिए यानी एक कम कीमत का और दूसरा उससे ज्यादा कीमत का।

२. किसी दस्तावेज (document) के खो जाने के बाद उससे प्राप्त अधिकारों को पूरा नहीं कराया जा सकता।

३. किसी दस्तावेज की विषय-वस्तु की शर्तों में अधिकार-परिवर्तन (unauthorised alteration) करने पर भी प्रसंविदा की समाप्ति हो जाती है।

४. जब कोई व्यक्ति दिवालिया घोषित करने वाले न्यायालय (insolvency court) के द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तब वह व्यक्ति अपने समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है।

६. समय व्यतीत हो जाने से (By Lapse of Time)

प्रत्येक प्रसंविदा का यह साधारण नियम है कि अगर वह प्रसंविदा एक निश्चित अवधि के अन्दर सम्पन्न होने के लिए है या उसको सम्पन्न करने का वादा है तब पक्षों को अपने-अपने वादे को उसी निश्चित समय के अन्दर पूरा कर देना चाहिये। भारतीय प्रसंविदा-नियम की धारा ६० के अनुसार अगर प्रसंविदा निश्चित अवधि के अन्दर न पूरी की गयी तब 'लिमिटेशन लॉ' (Law of Limitation) के द्वारा यह मान लिया जाता है कि प्रसंविदा हो गयी तथा दोनों पक्ष अपने-अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

**उदाहरणार्थ—**अगर A, B से ६०० रुपये हैंडनोट (handnote) लिख कर ले तो यह दस्तावेज तीन साल तक मान्य (valid) रहेगा। अगर तीन अन्दर रुपया अदा नहीं किया गया तब इसके बाद B चाहे तो मुकदमा करके वसूल नहीं सकता।

### University Questions

1. Explain the various ways in which a contract may discharged.

(अनुबन्ध की समाप्ति की विभिन्न रीतियों का व्याख्यात्मक विवेचन कीजिए।)

2. "Tender is attempted performance". Comment.

("टेन्डर, प्रस्तावित निष्पादन होता है।" व्याख्या कीजिए।)

3. What is a tender of performance and what is the legal effect of refusal to accept an offer of performance? State the conditions which must be fulfilled by such an offer.

(निष्पादन का निवेदन क्या है तथा निष्पादन के प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार करने का वैध प्रभाव क्या होता है? इन शर्तों का वर्णन कीजिए जो ऐसे प्रस्ताव द्वारा अवश्य ही पूरी होनी चाहिए।)

4. State by whom contract should be performed. Is the promisee bound to accept performance from persons other than the promisor?

(अनुबन्ध का निष्पादन किसके द्वारा किया जाना चाहिए? क्या वचनग्रहीता वचनदाता के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से निष्पादन स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है?)

5. Mention how contracts are discharged by (a) performance, (b) tender of performance and its refusal, and (c) waiver ?

[व्याख्या करें कि किस प्रकार अनुबन्धों की समाप्ति (क) निष्पादन द्वारा, (ख) निष्पादन के निवेदन और उसकी अस्वीकृति द्वारा तथा (ग) त्याग द्वारा होती है।]

6. What do you understand by reciprocal promises ? State the provisions of the Indian Contract Act which deal with the order of performance of reciprocal promises

(पारस्परिक वचनों से आप क्या समझते हैं ? भारतीय सविदा-सन्धिनियम में पारस्परिक वचनों के निष्पादन के क्रम-सम्बन्धी जो प्रावधान किये गये हैं उनका वर्णन कीजिए।)

7. What are the rules of law relating to the time and place of the performance of a contract ? When is the time deemed to be the essence of the contract in the performance of contracts and with what consequences ?

(एक अनुबन्ध के निष्पादन के समय और स्थान के सम्बन्ध में क्या वैधानिक नियम है ? अनुबन्धों के निष्पादन में समय कब अनुबन्ध का सार माना जाता है और इसके क्या परिणाम होते हैं ?)

8. What are the rules relating to appropriation of payments made by a debtor who owes a number of distinct debts to his creditor ?

(ऐसे ऋणी द्वारा भुगतान में दी गयी धनराशियों के नियोजन-सम्बन्धी नियम क्या हैं, जिस पर एक ही ऋणदाता के कई ऋणों के भुगतान करने का उत्तरदायित्व हो ?)

9. What is 'Novation of a contract' ? How is it effected ? What are its legal consequences ? How does it differ from 'alteration' ?

(अनुबन्ध के नवीकरण से आप क्या समझते हैं ? यह किस प्रकार किया जाता है ? इसके वैधानिक परिणाम क्या होते हैं ? नवीकरण और परिवर्तन में क्या अन्तर है ?)

10. What do you understand by 'anticipatory breach of contract' ? What are the rights and liabilities of parties in case of an anticipatory breach of contract ?

(‘प्रत्याशित अनुबन्ध-भंग’ से आप क्या समझते हैं ? प्रत्याशित अनुबन्ध-भंग की दशा में पक्षकारों के अधिकार और उत्तरदायित्व क्या होते हैं ?)

11. Explain with illustrations what is meant by the frustration of a contract ? Discuss fully the legal effects of frustration of a contract.

(उदाहरण-सहित ‘अनुबन्ध की नैराश्र्यता’ के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए। अनुबन्ध के विवशताग्रस्त हो जाने के वैधानिक परिणामों की विस्तृत विवेचना कीजिए।)

12. Under what circumstances contracts need not be performed ?

(किन परिस्थितियों में अनुबन्ध के निष्पादन की कोई आवश्यकता नहीं होती है ?)

13. Write short notes on the following—

(i) Novation, (ii) Rescission or waiver, (iii) Accord and

Satisfaction, (iv) Alteration, (v) Anticipatory Breach of contract, (vi) Renunciation or Repudiation and (vii) Supervening Impossibility or Frustration.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) नवीकरण, (ii) त्याग, (iii) आश्वासन एवं सन्तुष्टि, (iv) परिवर्तन, (v) प्रत्याशित अनुबन्ध-भंग, (vi) उत्तरदायित्व का त्याग और (vii) अकस्मात् असम्भाव्यता या नैराश्य ।]

#### 14. Discuss the following Problems—

(i) A, B and C jointly promise to pay D three thousand rupees. A and B are untraceable. Can D compel C to pay in full ?

(Bihar 1954; Pat. 28)

(Ans. D को अधिकार है कि वह C को सम्पूर्ण रुपया चुकाने के लिए मजबूर कर सकता है । (धारा ४३)

(ii) A makes a promise to three joint promisees X, Y and Z. X and Y died before the promise is performed. Who can demand performance of the promise ?

(Luck. 1955, '59)

(Ans. धारा ४५ के अनुसार वचन की पूर्ति कराने का अधिकार X एवं Y के प्रतिनिधियों तथा Z को है ।)

(iii) If a trustee deposits Rs. 500 being trust money with a bank and subsequently deposits Rs. 1000 of his own in the same account and thereafter withdraws Rs. 500 which he appropriates. Against which deposit, should the withdrawal be debited ?

(R.A. 1955, Pat. 52)

(Ans. Hallet's estate के मुकदमे के फैसले के अनुसार ५०० रु० का धन जिसका ट्रस्टी ने दुर्हययोग किया है उसी के नाम में निकाला हुआ माना जायगा, ट्रस्ट के हिसाब में नहीं ।)

(iv) A enters into a contract with B for the supply of 500 mds. of ghee on or before the 30th Sept., 1951. The seller fails to perform his contract on the due date. Can B avoid the Contract ? Would it make any difference if A had contracted with B to complete some construction work on or before the above date and failed to do so ?

(Luck. 1951)

(Ans. धारा ३९ के अनुसार B को प्रसविदा तोड़ने का अधिकार है । इसके अलावा उसके और अधिकार भी सुरक्षित हैं ।)

(v) A and B executed a promissory note for Rs. 2000 in 1949 in favour of C. In 1950 the said pronote was replaced by another pronote for the full amount by B alone. In 1951 B died. Can C bring a suit on the basis of the old pronote of 1949, against A ?

(Ans. धारा ६२ के अनुसार C, A के खिलाफ मुकदमा नहीं कर सकता क्योंकि नवीकरण द्वारा A अपने दायित्व से मुक्त कर दिया गया ।)

(vi) A says to B, "Give C a receipt in full for the debt which he owes you and I will pay the amount." B agrees. Discuss what kind of contract is this.

(Ans. यह नवीकरण है ।)

## प्रसंविदा-भंग का परिणाम (Consequences of Breach of Contract)

धाराएँ ७३-७५

अगर किसी प्रसंविदा में एक अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देता है, जिसमें दूसरे पक्ष का कोई दोष नहीं है, और इस तरह पहले पक्ष के प्रतिज्ञा तोड़ने पर अगर दूसरे पक्ष को कुछ नुकसान होता है तब भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा ७३, ७४ और ७५ के अनुसार निर्दोष पक्ष को कुछ अधिकार दिये गये हैं और वे निम्नलिखित हैं—

१. खास तरीके से पूरा करना (Specific Performance),
२. निषेधाज्ञा (Injunction),
३. उचित पारितोषिक (Quantum Meruit Compensation),
४. हर्जाना (Damages), और
५. निष्पादन से मुक्ति (Exoneration)।

१. खास तरीकों से पूरा करना (Specific Performance)—किसी प्रसंविदा को खास तरीके से पूरा करने का अर्थ है—जो प्रसंविदा जिस तरीके से की गयी है उस प्रसंविदा को उसी तरीके से पूरा करना। अगर दूसरा पक्ष इसे विपरीत तरीके से पूरा करता है या भंग करना चाहता है तब न्यायालय से यह आज्ञा ली जाती है कि वह इसे उसी प्रकार पूरा करे। न्यायालय भी आज्ञा देने के पहले इस बात की पूरी जानकारी कर लेता है कि प्रतिज्ञा-भंग के लिए क्षतिपूर्ति की जा सकती है या नहीं और जब न्यायालय जानेगा कि उचित क्षतिपूर्ति (compensation) नहीं की जा सकती तब वह प्रसंविदा को उसी प्रकार पूरा करने का आदेश देता है।

**उदाहरण**—अगर A एक मृत् पेन्टर की बनायी ताजमहल की तस्वीर को B के हाथ में बेचने का वादा करता है और बाद में A प्रतिज्ञा को भंग करता है तब न्यायालय A को इस प्रकार की आज्ञा दे सकता है कि वह अपनी प्रतिज्ञा का पालन ठीक तौर से (in specie) करे। अतः A को अपनी तस्वीर B के हाथ बेचनी ही पड़ेगी।

२. निषेधाज्ञा (Injunction)—अगर किसी प्रसंविदा में एक पक्ष अपनी प्रतिज्ञा को भंग करता है और निर्दोष पक्ष इन्साफ के लिए न्यायालय की शरण लेता है, और इसके लिए वह निवेदन-पत्र (petition) देता है तब निषेधाज्ञा के अनुसार न्यायालय द्वारा प्रतिज्ञा भंग करने वाले पक्ष को प्रतिज्ञा पूरी करने की आज्ञा नहीं दी जाती, बल्कि उसे प्रतिज्ञा भंग करने से रोका जाता है। अतः इसमें उस पक्ष को ऐसा काम करने से रोका जाता है जिससे प्रतिज्ञा भंग होने की संभावना हो।

**उदाहरण**—जेन, स्मिथ के थियेटर में पन्द्रह दिन तक लगातार नृत्य के लिए प्रतिज्ञा करती है और वह यह भी वादा करती है कि इतने दिन के अन्दर कहीं दूसरी जगह नृत्य करने नहीं जायेगी। ऐसी दशा में यदि जेन कहीं दूसरी जगह नृत्य के

लिए जाती है तो उसे न्यायालय निषेधाज्ञा (injunction) के द्वारा दूसरी जगह नृत्य करने से रोक सकता है।

३. परिणाम के अनुसार पारितोषिक (Quantum Meruit Compensation)—“क्वैन्टम मेरिट” का शाब्दिक अर्थ है “किसी मनुष्य को उतना ही देना जितना उसने अर्जित किया है”। परन्तु भारतीय प्रसंविदा-विधान के अनुसार किसी भी पक्ष को उतना ही पारितोषिक मिलना चाहिए जितने का वास्तव में उसे अधिकार है और जिसके लिए उसने मेहनत की है।

**उदाहरण**—Y, X से मकान बनाने के लिए कहता है। X ने आधा ही मकान बनाया था कि Y ने उसे आगे बनाने से मना कर दिया। अतः X ने जितना काम किया है उतने का पारितोषिक वह Y से माँग सकता है।

अगर X की तरफ से प्रतिज्ञा भंग हुई है तो इसका पारितोषिक दो बातों पर निर्भर करता है—

(क) प्रतिज्ञा का पूर्ण होना आवश्यक है या नहीं। यदि प्रतिज्ञा उस प्रकृति की है कि उसका पूर्ण होना आवश्यक है तो बगैर प्रतिज्ञा की पूर्ति किये वह पारितोषिक माँग नहीं सकता।

(ख) प्रसंविदा को विभाजित किया जा सकता है या नहीं। यदि प्रसंविदा का विभाजन टुकड़ों में नहीं किया जा सकता तो पूरा काम किये बिना माँग नहीं माँगा जा सकता। अगर X ने Y से १,००० मन गेहूँ बेचने का वादा किया था और सिर्फ ५०० मन गेहूँ बेचा तो ५०० मन के लिए पारितोषिक लिया जा सकता है, क्योंकि पूर्ण प्रसंविदा का टुकड़ा किया जा सकता है।

(ग) जब किसी प्रसंविदे को किसी तकनीकी कमी (technical difficulty) के कारण अप्रवर्तनीय पाया जाय तो जिस व्यक्ति ने प्रसंविदा के अधीन कुछ काम किया है उसे प्रसंविदा के अमान्य होते हुए भी किये गये काम के लिए उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार होता है।

**उदाहरण**—किसी कम्पनी के संचालकमंडल द्वारा X की बहाली कम्पनी के मैनेजर के रूप में की गयी। X ने काम करना शुरू कर दिया लेकिन कुछ समय के बाद कम्पनी के संचालकमंडल का गठन ही अवैधानिक पाया गया जिसकी वजह से X की बहाली अनियमित (irregular) हो गयी। X को कम्पनी से जितने समय के लिए उसने काम किया है, उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार होगा।

(घ) अगर कोई व्यक्ति किसी ऐसे काम या सेवा का लाभ उठाता है, जिसे बिना पारिश्रमिक के करने का दूसरे पक्ष का कोई अभिप्राय नहीं था तो पहले पक्ष को उस काम या सेवा के लिए दूसरे पक्ष को उचित पारिश्रमिक देना होगा।

**उदाहरण**—X, Y के घर अपनी कोई वस्तु गलती से छोड़ देता है। Y उस वस्तु का अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर लेता है। X, Y को उस वस्तु की कीमत देने के लिए बाध्य कर सकता है।

(ङ) अविभाज्यीय प्रसंविदे में, जब कि सम्पूर्ण कार्य के पूरा होने पर ही प्रतिफल के भुगतान करने का वचन दिया गया हो, आशिक निष्पादन से किसी पक्षकार को पारिश्रमिक इत्यादि माँगने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है।

**उदाहरण**—Ex Pearlless नामक एक जहाज पर एक नाविक को इस शर्त पर काम करने के लिए रखा गया कि उसे जहाज की पूरी यात्रा की समाप्ति पर पारिश्रमिक इकट्ठे ही दिया जायगा। यात्रा पूरी होने से पहले ही नाविक की मृत्यु हो

गयी। न्यायालय द्वारा यह फैसला दिया गया कि उसके उत्तराधिकारियों को न तो पूरी रकम प्राप्त करने का अधिकार है और न वे मृतक नाविक द्वारा की गयी सेवाओं के लिए पारिश्रमिक की माँग ही कर सकते हैं। [Cutter vs. Powell—(1807) 2 Sm. L. C. I.]

४. हर्जाना (Damages)—जब एक पक्ष प्रसंविदा को भंग कर देता है तब इससे दूसरे पक्ष को जो हानि होती है उस हानि की पूर्ति जिस चीज से की जाती है, उसे हर्जाना कहते हैं। हर्जाना बहुत तरह के होते हैं, पर किस प्रकार की क्षति मिलनी चाहिए और किस प्रकार की नहीं, यह साबित करने की जिम्मेदारी क्षति उठाने वाले व्यक्ति पर निर्भर करती है। यदि क्षति उठाने वाला व्यक्ति सार-सम्बन्धी क्षति (substantial damage) साबित कर सकता है तो वह सार-सम्बन्धी क्षति का हकदार होगा। किन्तु यदि वह नाममात्र की क्षति (nominal damage) सिद्ध करता हो तो वह नाममात्र की क्षति का ही हकदार होगा। इसलिए भारतीय प्रसंविदा-विधान में क्षतियाँ निम्नलिखित प्रकार की मानी गयी हैं—

(क) साधारण (General or Ordinary),

(ख) विशेष या असाधारण (Special),

(ग) आदर्श (Exemplary) या प्रतिकारक हर्जाना (Vindictive),

(घ) निश्चित (Liquidated) और दण्ड (Penalty), तथा

(ङ) सूद (Interest)।

(क) साधारण क्षति (General or Ordinary Damages)—साधारण क्षति भारतीय प्रसंविदा-विधान के द्वारा इस प्रकार बतलायी गयी है जिसमें दोनों पक्ष यह अच्छी तरह और आसानी से सोच सकते हैं कि यदि संविदा को भंग किया जाय तो उसकी जिस चीज से पूर्ति की जाती है उसे साधारण क्षति कहा जाता है। हैडले बनाम बक्सेनडेल [Hadly vs Baxendale) 9 Ex 341] के मुकदमे के नियमानुसार मुद्दै (plaintiff) सिर्फ वास्तविक क्षति का ही हकदार है। वह दूरस्थ क्षति या परोक्ष क्षति (remote or indirect loss) का हकदार नहीं। इस मुकदमे की वस्तु-स्थिति इस प्रकार है—इंगलैंड में हैडले बनाम बक्सेनडेल (Hadley vs Baxendale) के मुकदमे में एक मिल के मालिक ने टूटे हुए मशीन शैफ्ट (मशीन का लम्बा धुरा की जगह) एक नये शैफ्ट के निर्माण के लिए साधारण वाहकों के द्वारा एक दूकान पर भेजा जिन्होंने अकारण देरी कर दी, जिसका फल यह हुआ कि मिल के स्वामी को नया शैफ्ट जिसका वह आर्डर दे चुका था, कुछ समय तक प्राप्त नहीं हुआ और इसलिए मिल बन्द कर देनी पड़ी। इस कारण मिल के स्वामियों ने सार्वजनिक वाहकों पर लाभ की हानि के कारण क्षतिपूर्ति का दावा ठोक दिया, क्योंकि मिल के बन्द होने के कारण मिल को लाभ नहीं हो पाया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि मिल के मालिक उस अप्रत्यक्ष क्षतिपूर्ति (indirect loss) के प्राप्त करने के अधिकारी नहीं हैं। फिर धारा ७३ की ओर गौर करने से यह पता चलता है कि साधारण क्षति के लिए दो स्थितियों का होना आवश्यक है।

१. क्षति प्रसंविदा के खंडन का स्वाभाविक परिणाम (natural effect) हो, या

२. दोनों पक्षों को प्रसंविदा करते समय यह पहले से ज्ञात रहे कि इसके खंडन से किस प्रकार का परिणाम होगा।

उदाहरण—(i) X ने Y से यह प्रतिज्ञा की कि वह १७ अगस्त, १९१७ को दस गाँठ (bales) कपास ८०० रुपये प्रति गाँठ की दर से Y के हाथ बेचेगा।

निश्चित तारीख को X माल नहीं भेज सका। अब Y को यह अधिकार है कि वह X से तय की गई कीमत (contract price) और बाजार दर (market price) में जो अन्तर हो, वह साधारण क्षति (general damage) के रूप में वसूल कर ले।\*

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह क्षति के रूप को बढ़ा दे क्योंकि समय पर कपास नहीं मिलने से मिल (Mill) को बन्द कर देना पड़ा और नफा का नुकसान हुआ, इसलिए नफा का रूपया भी मिलना चाहिए। इस तरह की क्षति के लिए X भागी नहीं है। बल्कि Y कपास दूसरी जगह से खरीद कर अपना काम चलाता। अगर निश्चित से ज्यादा कीमत देनी पड़ती तो दोनों का अन्तर X से पूरा कराता और यह सही था।

(ii) फजल इलाही नामक व्यापारी ने कानपुर से पार्सल (parcel) द्वारा कुछ पटाखे (crackers) किसी त्योहार के अवसर पर इलाहाबाद भेजे। पटाखे के इलाहाबाद पहुँचने के पहले ही त्योहार खत्म हो चुका। फजल इलाही ने रेलवे कम्पनी पर मुकदमा किया और हर्जाना तथा लाभ जो उस त्योहार के अवसर पर होता उसके लिए दावा किया। न्यायालय ने फजल इलाही को लागत मूल्य (cost price) और उस समय की बाजार-दर (market price) में जो अन्तर था, वह दिलवाया। परन्तु लाभ जो उस त्योहार के अवसर पर होता, उसे नामंजूर कर दिया।†

(ख) विशेष या असाधारण क्षति (Special Damages)—विशेष क्षति तब प्रत्यादेय हो सकती है जब कोई व्यक्ति किसी प्रकार का जनकार्य (public duty) करने के लिए एक इंस्ट्रूमेंट (instrument) लिख कर सरकार के हवाले करता है। वह अगर हक्के में लिखी गयी शर्त का खडन करता है तब उसे पूरी रकम अदा करनी पड़ती है।

उदाहरण—X, Y से वादा करता है कि यदि वह निश्चित तिथि पर २०० रु० न दे सका तो ५०० रु० का देनदार होगा। X ने निश्चित तारीख पर २०० रु० Y को नहीं दिया। अतः Y को यह अधिकार है कि ५०० रु० या जितना कि अदालत उचित समझे, Y से वसूल कर सकता है।

(ग) आदर्श हर्जाना (Exemplary Damages) या प्रतिकारक हर्जाना (Vindictive Damages)—कभी-कभी यह देखा जाता है कि प्रतिज्ञा के भंग होने की वजह से दूसरे पक्ष को साधारण क्षति के अलावा उसकी मानहानि हो, प्रतिष्ठा पर चोट पहुँच, या व्यापारिक जगत् में इसकी ख्याति कम हो। इसके लिए भारतीय प्रसविदा-विधान में पर्याप्त हर्जाना का कहीं पर वर्णन नहीं है। इसलिए ऐसी दो बातों के लिए लॉ-ऑफ टॉर्ट्स (Law of Torts) के अनुसार दो स्थितियों में हर्जाना का दावा किया जा सकता है। वे निम्नलिखित हैं—

(i) विवाह करने के वचन का भंग करना—यदि विवाह करने का वचन भंग किया गया हो तो जिस पक्ष ने भंग किया है उससे प्रतिकारक हर्जाना (vindictive damages) अदालत द्वारा वसूल किया जा सकता है।

(ii) चेक की अप्रतिष्ठा (Dishonourment of a Cheque)—अगर किसी व्यापारी का बैंक में रकमा जमा रहन पर भी बैंक अकारण उसके चेक की अस्वीकृति कर दे तो इससे व्यापारिक जगत् में उसकी मानहानि होती है और इसके लिए वह अदालत के द्वारा प्रतिकारक हर्जाना (vindictive damages) वसूल कर सकता है।

\* Williams Bros. vs. Ed. T. Agins Ltd. (1914).

† Fazal Illahi vs. East India Rly. Co. (1922) 43 All. 623.



(घ) निश्चित हर्जाना या निस्तीर्ण क्षति एवं दण्ड (Liquidated Damages and Penalty)—इस प्रकार के हर्जाना के अनुसार प्रसंविदा करते समय ही दोनों पक्षों में यह समझौता हो जाता है कि यदि कोई भी पक्ष वचन को भंग करेगा तो उसे निर्दोषी पक्ष को एक निश्चित रकम हर्जाना के रूप में देनी पड़ेगी। इस प्रकार के हर्जाने का मुख्य ध्येय है दोषी पक्ष को प्रतिज्ञा भंग करने के बदले में दण्ड देना।

उदाहरण—A, B से संविदा करता है कि अगर A कलकत्ता शहर के अन्दर डाक्टरी करेगा तब B उसे ५,००० रु० देगा। A कलकत्ता शहर के अन्दर ही डाक्टरी करता है इसलिए B ५,००० रु० का ही देनदार है और ज्यादा का नहीं।

इसके अनुसार हम पाते हैं कि चाहे जो भी हर्जाना पहले से निश्चित किया गया हो, उसे अदालत घटा सकती है यदि वह हर्जाना अनुचित सिद्ध हो, परन्तु उसे बढ़ाया नहीं जा सकता।

(ङ) सूद की शक्ल में हर्जाना (Interest by way of damages)—भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा ७४ के अनुसार अगर प्रसंविदा में दी गयी निश्चित तारीख के बाद वचन भंग करने से ब्याज बढ़ा दिये जाने की शर्त रहे तो वह सम्मान हो सकती है, अगर ज्यादा ब्याज लगाने का समझौता आपस में पहले से हो। परन्तु भारतीय ऋण नियम (Loan Act) के अनुसार न्यायालय को यह अधिकार मिला है कि वह चाहे तो ब्याज की दर को घटा-बढ़ा सकता है। अगर

(i) ब्याज की दर अत्यन्त अधिक हो, और

(ii) आपस का समझौता वस्तुतः अन्यायपूर्ण हो।

फिर भी, न्यायालय अगर चाहे तो अत्यन्त अधिक ब्याज की दर को मान सकता है, अगर वह उसकी नजर में अन्यायपूर्ण न हो।

उदाहरण—X, Y को ५,००० रु० कर्ज इस शर्त पर देता है कि यदि Y हर साल के अन्त में समय पर ब्याज चुका देगा तो सिर्फ ८ प्रतिशत ब्याज लगेगा और अगर समय पर न चुका सकेगा तो उसे १६ प्रतिशत की दर से ब्याज देना होगा। इस प्रकार की शर्त दण्ड के रूप में नहीं है इसलिए यदि Y समय पर ब्याज न दे सका तो उसे १६ प्रतिशत की दर से ही ब्याज देना पड़ेगा।

(iii) न्यायालय प्रायः चक्रवृद्धि ब्याज (compound interest) के पक्ष में नहीं होते। अगर यह समझौते के कागज पर लिखा हुआ है तभी हो सकता है। अगर प्रसंविदा में यह लिखा हुआ है कि मूलधन पर साधारण ब्याज का भुगतान न करने पर इसी दर से चक्रवृद्धि ब्याज देना होगा तब धारा ७४ के अनुसार वह देना होगा और वह सही देन कहा जायगा। लेकिन अगर चक्रवृद्धि ब्याज की दर साधारण ब्याज की दर से ज्यादा होगी तब वह सही नहीं है और उसमें कमी की जायगी। ऐसी हालत में न्यायालय या तो साधारण ब्याज की दर बढ़ाकर या साधारण ब्याज की दर से चक्रवृद्धि ब्याज दिला सकता है।

(iv) अगर किसी प्रसंविदा में ऐसा लिखा गया है कि सूद २५% सलाना दर से दिया जायगा और यह भी लिखा गया है कि अगर कर्जदार प्रत्येक साल के आखिर में बिना देर किये सूद देता है तब कर्ज देनेवाला १५% की दर से सूद स्वीकार कर लेगा तब भुगतान की तारीख पर देर होने की दशा में कर्ज देनेवाला २५% सलाना की दर से सूद लेने का अधिकारी है। इतना सूद लेना गैरकानूनी नहीं है।

उपयुक्त रूप से प्रसंविदा निरस्त करनेवाले पक्षकार को क्षतिपूर्ति का अधिकार (Party rightfully rescinding contract entitled compensation)—अगर

कोई व्यक्ति उद्युक्त रूप से किसी प्रसविदा को निरस्त करता है, तब वह इस तरह की क्षतिपूर्ति के लिए अधिकारी है जो कि उसे प्रसविदा की पूर्ति न होने की वजह से उठानी पड़ी है।

**उदाहरण—**A, एक नर्तकी, किसी थियेटर के मैनेजर B के साथ उसके थियेटर में दो महीने तक प्रत्येक सप्ताह तीन दिन नाचने की प्रसविदा करती है और B उसे प्रत्येक रात के नाच के लिए ३०० रु० देने का वचन देता है। पाँचवी रात को A अपनी इच्छापूर्वक जानबूझकर थियेटर से गैरहाजिर हो जाती है, जिसके फलस्वरूप B प्रसविदा को समाप्त कर देता है। B, A से इस तरह के नुकसान की क्षतिपूर्ति का अधिकारी है जो उसे प्रसविदा की पूर्ति न होने की वजह से हुई है। [धारा ७५]

५. निष्पादन से मुक्ति (Exoneration)— पीड़ित पक्ष अपनी प्रसविदा को समाप्त समझ सकता है, अगर वह अपने हिस्से की पूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं है।

**ध्वनित संविदाएँ (Quasi-Contracts)**— कभी-कभी न्यायालय पक्षों के आचरण और सम्बन्ध को ऐसे अधिकार और बन्धन पैदा करनेवाली प्रतिज्ञाएँ मान लेते हैं, मानो वास्तविक संविदा हुई हो। ऐसे सम्बन्ध, जो संविदाओं द्वारा जनित सम्बन्धों के समान होते हैं, ध्वनि-संविदाएँ (quasi-contracts) कहलाते हैं।

ध्वनि-संविदाओं (quasi-contracts) का वर्णन भारतीय संविदा सन्नियम की धारा ६८-७२ में दिया गया है—

धारा ६८ के मुताबिक अगर कोई व्यक्ति किसी नाबालिग को, या किसी पागल के बाल-बच्चों को उनकी आवश्यक चीजों से मदद करता है तो इसकी वसूली वह व्यक्ति स्वयं उससे नहीं कर सकता बल्कि उसकी सम्पत्ति से करेगा। धन की वसूली के लिए मुकदमा लाने का अधिकार इन अवस्थाओं में पैदा हो सकता है—

जहाँ मुद्दई (plaintiff) ने मुद्दालह (defendant) को— (i) तथ्य की गलती से, (ii) उस संविदा के पालन-स्वरूप जिसका प्रतिफल नहीं हुआ, और (iii) विवर्जनीय संविदा (voidable contract) के अधीन, धन दे दिया था।

धारा ६९ के मुताबिक जहाँ मुद्दई (plaintiff) ने ऐसे तीसरे पक्ष को धन दे दिया है जिसे देने के लिए मुद्दालह विधिबद्ध (bound by law) था और मुद्दई ने या तो इसलिए दे दिया कि उसे देने के लिए कानून द्वारा मजबूर किया गया अथवा अदा करने में वह स्वयं रुचि रखता (interested) था।\*

**उदाहरण—**यदि एक रैयत अपने रैयती-अधिकार के रक्षार्थ, ताकि रेवेन्यू-विक्री द्वारा यह रद्द न कर दिया जाय, जमीन्दार द्वारा दिया जानेवाला रेवेन्यू स्वयं दे देता है तो वह उस जमीन्दार से, जो रेवेन्यू देने के लिए प्रधानतः उत्तरदायी था, पुनर्भुगतान पाने का अधिकारी होगा।

धारा ७१ के मुताबिक जहाँ तक वस्तुओं के वास्तविक स्वामित्व का सम्बन्ध है, वस्तुओं को पानेवाला निशेष-प्रहीता (bailee) है, और उसे वस्तुओं की उस तरह देखभाल करनी चाहिए जैसे साधारण बुद्धि का आदमी ऐसी परिस्थितियों में अपनी वस्तुओं की करता है। उसे वस्तुओं को अपने निजी कार्य में विनियोग (appropriate) नहीं करना चाहिए। वास्तविक स्वामी को ढूँढ़ने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए और अगर स्वामी का पता लग जाय तो वस्तुएँ उसे सौंप देनी चाहिए।

\* Govind vs. Gondal State 1950. P. C. 99.

माल पाने वाले को मालिक से वे खर्च वसूल करने का हक है जो उसने वस्तुओं की देखभाल (protection) या संरक्षण (preservation) करने में किये हों।

फिर धारा ७० के मुताबिक अगर कोई व्यक्ति कानूनी तरीके से किसी दूसरे व्यक्ति के लिए कोई काम करता है या उसे कोई चीज देता है और ऐसा करते हुए निःशुल्क कार्य (gratuitously benefit) का अभिप्राय नहीं रखता तथा दूसरा व्यक्ति उसके किये गये लाभ को मंजूर करता है और उपभोग (enjoys) करता है, तब लाभ मंजूर करने वाले व्यक्ति को कार्य के लिए प्रतिफल देना होगा या प्राप्त की गयी वस्तु उसे लौटानी होगी।

**उदाहरण —** अगर कोई पालिश करने वाला आपके जूतों की पालिश करता है और आप उसे करने देते हैं, वहाँ आपको उसे उचित पारिश्रमिक देना होगा।

अगर कोई व्यापारी गलती से कुछ वस्तुएँ A के मकान के बजाय B के मकान पर दे आता है, तो B को चाहिए कि उन वस्तुओं को वापस कर दे। अगर वह उन वस्तुओं को लौटाना नहीं चाहता तो उसे उनकी कीमत चुकानी होगी। यहाँ पक्षों का मतलब संविदा करने का कभी नहीं था, पर विधि यहाँ ध्वनित संविदा (quasi-contract) मानती है। [धारा ७२]

### University Questions

1. State briefly the different kinds of remedies available for breach of contract

(अनुबन्ध-भंग के प्रति प्राप्य विभिन्न प्रकार से उपचारों की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।)

2. State the different remedies available to the aggrieved party for a breach of contract and explain the principles on which damages are assessed for breach of contract.

(अनुबन्ध के खडन होने की परिस्थिति में पीड़ित पक्षकार को उपलब्ध होनेवाले विभिन्न उपचारों का वर्णन कीजिए और जिन सिद्धान्तों के आधार पर अनुबन्ध भंग होने के कारण होनेवाली हानियों के लिए प्रतिकर का अनुमान लगाया जाता है उनकी व्याख्या कीजिए।)

3. "If the contract is broken, the law will endeavour so far as money can do to place the injured party, in the same position as if the contract had been performed." Discuss

(“अनुबन्ध के भंग किये जाने पर, जहाँ तक सम्भव हो सकता है, विधि धन की सहायता से पीड़ित पक्षकार को उसी परिस्थिति में लाने का प्रयत्न करेगी जिसमें वह अनुबन्ध के निष्पादन कर दिये जाने पर होता।” विवेचना कीजिए।)

4. Explain the circumstances in which the court may grant specific performance of a contract.

(उन परिस्थितियों की व्याख्या कीजिए जिनमें न्यायालय एक अनुबन्ध के निर्दिष्ट निष्पादन की आज्ञा दे सकता है।)

5. What is the difference between penalty and liquidated damages? What bearing has this distinction in India upon the question of compensation on breach of contract?

(‘दण्ड’ एवं ‘निस्तीर्ण क्षतिपूर्ति’ में क्या अन्तर है? भारत में अनुबन्ध भंग होने

पर दिये जाने वाले प्रतिकर के निर्धारण के प्रश्न पर इस अन्तर का क्या प्रभाव पड़ता है ?)

6. What do you understand by the doctrine of Quantum Meruit? When and how does it come in operation? Are there any limitations to this doctrine?

(‘परिणाम के अनुसार पारितोषिक’ के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इसका प्रवर्तन कब और कैसे होता है? क्या इस सिद्धान्त की कोई परिसीमाएँ भी हैं?)

7. Discuss the circumstances under which restitution could be ordered by the court in respect of benefits received under a contract.

(अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त लाभों के विषय में न्यायालय द्वारा किन-किन परिस्थितियों में प्रत्यस्थापन का आदेश दिया जा सकता है?)

8. What are quasi-contracts? Enumerate and discuss in detail the quasi-contracts dealt with under the Indian Contract Act.

(ध्वनि-सविदाएँ अर्थात् अर्द्ध-अनुबन्ध किसे कहते हैं? भारतीय प्रसविदा-सन्निधय में दिये गये ध्वनि-सविदाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।)

9. Discuss the rights and duties of a finder of goods.

(खोई हुई वस्तु पाने वाले के क्या-क्या अधिकार एवं दायित्व होते हैं?)

10. What is the difference between a quasi-contract and a contract? State the various quasi-contracts.

(ध्वनि-सविदा और सविदा में क्या अन्तर है? विभिन्न ध्वनि-सविदाओं का वर्णन कीजिए।)

11. Write short notes on—

(i) Quantum Meruit, (ii) General Damage, (iii) Special Damage, (iv) Exemplary Damage, (v) Liquidated Damage and (vi) Interest by way of damage.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) परिणाम के अनुसार पारितोषिक, (ii) साधारण क्षति, (iii) विशेष या असाधारण क्षति, (iv) आदर्श हर्जाना, (v) निस्तीर्ण क्षति, (vi) ब्याज के रूप में क्षतिपूर्ति।]

12. What is a quasi-contract? Give examples of such contracts. A, a tradesman, leaves goods at B's house by mistake. B treats the goods as his own. Is B bound to pay for them?

(उत्तर—धारा 70 के अनुसार B को A के माल का दाम देना पड़ेगा।)

13. Discuss the following Problems—

(i) A undertook to write a book in six volumes, each volume dealing with a distinct subject. After completing four volumes A died. Can his legal representatives get payment for the work done?

(उत्तर—यह प्रश्न ‘Quantum Meruit’ से सम्बद्ध है। इसमें A का वैधानिक उत्तराधिकारी उचित पारितोषिक पाने का अधिकारी है।)

(ii) X, a sculptor, contracts with Y to make a marble bust of Y. After making a plaster cast, X expresses his inability to make the bust in marble himself and requests Y to get the work done by somebody else. Is X entitled to payment? If so, on what basis?

[Luck. 1960]

(उत्तर—यह प्रश्न भी ‘Quantum Meruit’ से सम्बद्ध है। इसमें Y

कोई धन पाने का अधिकारी नहीं है क्योंकि ऐसी दशा में उसने कोई धन अर्जित नहीं किया है ।)

(iii) Bharat Line Ltd. contracts with Ram Krishna, an advocate of Lucknow, to convey him from Bombay to London in S. S. Jai Bharat, a ship owned by the company, sailing on March 1, and Ram Krishna pays to the Company by way of deposit, one-half of his passage money. The ship does not sail on March 1, and Ram Krishna, after being, in consequence, detained in Bombay for some time, and thereby put to some expense, proceeds to London in another vessel, and in consequence arrives too late in London to appear before the Privy Council and thus loses his fees. Discuss the right of Shri Ram Krishna against the company. Would it make any difference if Shri Ram Krishna had made the purpose of his voyage known to the Bharat Line Ltd, at the time of entering into the contract ?

(उत्तर—धारा ७३ तथा Hedley vs. Baxendale के मुकदमे के आधार पर रामकृष्ण कम्पनी से हानि के रूप में केवल उतना ही धन पाने का अधिकारी है जो कि उसको ठहरने के कारण खर्च करना पड़ा । वह अपनी फीस की हानि नहीं पा सकता । अगर वह कम्पनी को यात्रा का आशय बतला देता तो वह हानि भी कम्पनी से प्राप्त करता ।)

(iv) X, a debtor, enters into an agreement with the creditor to repay the loan with interest at 7% after 6 months, but on default, to pay compound interest at the same rate from the date of the loan. Discuss if X is liable to pay compound interest from the date of the loan.

(उत्तर—धारा ७४ के अनुसार भुगतान न होने पर प्रसविदा की तारीख से चक्रवृद्धि व्याज माना जायगा परन्तु न्यायालय उसमें कमी कर सकता है ।)

(v) A, a singer, contracts with B to sing at his theatre three nights every week during the next two months, and B engages to pay him Rs. 200 for each night's performance. On the sixth night, A wilfully absents himself from the theatre. What are B's rights ?

(उत्तर—धारा ७५ के अनुसार A द्वारा समझौता भंग किये जाने के कारण उससे उचित क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है ।)

---

## क्षतिपूर्ति, प्रतिभूति तथा प्रतिभू की प्रसंविदा (Contract of Indemnity, Guarantee and Surety)

धाराएँ १२४-१४७, भारतीय प्रसंविदा-सन्निधम

### क्षतिपूर्ति प्रसंविदा की परिभाषा

भारतीय प्रसंविदा की धारा १२४ के अनुसार, “यदि किसी प्रसंविदा में एक पक्ष दूसरे पक्ष को इस बात का वचन दे कि वह अपने या किसी दूसरे व्यक्ति के आचरण (conduct) से हुई क्षतिपूर्ति स्वयं करेगा तो इसे क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा कहने है।”\* वचनदाता (प्रतिज्ञाकर्ता) को क्षतिपूर्तिकर्ता (indemnifier) और वचनप्राप्त को हानिरक्षाधारी (indemnified) कहते हैं।

उदाहरण—A का जहाज समुद्रयात्रा के लिए जा रहा है। कुछ प्रीमियम पाने के बदले में अगर लायड्स इन्श्योरेंस कम्पनी (Lloyd's Insurance Co.) यह वादा करती है कि जहाज को या उस पर के माल को कुछ नुकसान होने पर वह क्षति की पूर्ति कर देगी तो यह क्षतिपूर्ति का उत्तम उदाहरण है।

### प्रतिभूति प्रसंविदा की परिभाषा

धारा १२६ के अनुसार, “जिस प्रसंविदा में एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के वचन या ऋण को उसके द्वारा पूरा न होने पर स्वयं पूरा करने का वचन दे, उसे प्रतिभूति की प्रसंविदा कहते हैं।”† इस प्रकार, वचन देनेवाले को ‘प्रतिभू’ (surety), ज़िम्मे लिए वचन दिया जाता है उसे ‘मूलऋणी’ (principal debtor) तथा जिसको वचन दिया जाता है उसे ‘महाजन’ (creditor) कहते हैं। यह लिखित तथा मौखिक (written or verbal) दोनों प्रकार की हो सकती है।

उदाहरण—X, Y से कहता है कि तुम P को ₹५,००० रु० का जेवर उधार दे सकते हो। अगर वह दाम न देगा तब मैं उसका देनदार रहूँगा। यहाँ पर X प्रतिभू (surety) है, P मूलऋणी (principal debtor) है तथा Y महाजन (creditor) है।

\* “A Contract by which one party promises to save the other from loss caused to him by the conduct of the promisor himself, or of any other person, is called a ‘Contract of Indemnity.’” Sec. 124.

† “A Contract of Guarantee, is a contract to perform the promise, or to discharge the liability of a third person in case of his default.”

—Sec. 126.

## क्षतिपूर्ति तथा प्रतिभूति प्रसंविदा में अन्तर (Difference between Contract of 'Indemnity' and 'Guarantee')

क्षतिपूर्ति तथा प्रतिभूति की प्रसंविदाओं में निम्नलिखित अन्तर हैं—

१. क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में वचनदाता का प्रधान (primary) उत्तरदायित्व होता है, किन्तु प्रतिभूति की प्रसंविदा में उसका उत्तरदायित्व अप्रधान (secondary) होता है, क्योंकि इसमें मूलऋणी के वचन को खंडित करने पर ही यह दायित्व उत्पन्न होता है।

२. क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में केवल दो पक्ष होते हैं— वचनदाता (insurer) और हानिरक्षाधारी (insured), परन्तु प्रतिभूति की प्रसंविदा में तीन पक्ष होते हैं, प्रतिभू (surety), मूलऋणी (principal debtor) और महाजन (creditor)।

३. क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में वचनदाता अभ्यर्पण (assignment) के सिवा क्षतिपूर्ति करने के बाद अपने नाम से तीसरे पक्ष पर अभियोग नहीं चला सकता, परन्तु प्रतिभूति की प्रसंविदा में प्रतिभू अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मूलऋणी की देनदारी चुका देने के बाद अपने नाम से मूलऋणी पर मुकदमा कर सकता है। [Vyavan Chettoar vs. Official Assignee (1932) 5. Mad. 949.]

४. क्षतिपूर्ति में सिर्फ एक ही मूल प्रसंविदा वचनदाता और हानिरक्षाधारी (indemnified) के बीच होती है, परन्तु प्रतिभूति की प्रसंविदा में तीन प्रसंविदा हो जाती हैं—पहली मूलऋणी और महाजन के बीच; दूसरी महाजन और प्रतिभू के बीच और तीसरी प्रतिभू और मूलऋणी के बीच।

५. क्षतिपूर्ति में किसी भावी या अनिश्चित घटना से होने वाले जोखिम से रक्षा करने का वचन रहता है परन्तु प्रतिभूति में प्रतिभू अपने ऊपर दूसरे का कर्ज देने की जिम्मेदारी लेता तथा दूसरे की साख (credit) या शुद्ध आचरण (good conduct) के लिए जमानतदार बनता है।

## प्रतिभूति के भेद (Kinds of Guarantee)

प्रतिभूतियाँ साधारणतः दो प्रकार की होती हैं—

१. पश्चादृशी (Retrospective)—इससे पहले से लिखे हुए ऋण (existing debt) के लिए प्रतिभूति दी जाती है।

२. दूरदृशी (Prospective)—इसके आधार पर भविष्य में लिये जानेवाले ऋण (future debt) के लिए प्रतिभूति दी जाती है।

दूरदृशी (prospective) प्रतिभूति के दो और प्रकार माने गये हैं—

(क) विशिष्ट (Specific)—यह प्रतिभूति सिर्फ एक ही खास ऋण के लिए दी जाती है और इसका भुगतान हो जाने के बाद वचनदाता की जिम्मेदारी खत्म हो जाती है।

(ख) निरन्तर प्रतिभूति (Continuing Guarantee)—यह अनेक तथा विस्तृत ऋणों के लिए जो सर्वदा भिन्न और पृथक् हों, दी जाती है (which extends to a series of transactions)। इसमें किसी विशेष ऋण का भुगतान कर देने पर दूसरे सभी ऋणों के उत्तरदायित्व से छुटकारा नहीं मिल जाता है। (धारा १२९)

उदाहरण—१. X, Y को यह वचन देता है कि यदि Y, Z को अपनी जमीन्दारी का रेन्ट (rent) वसूल करने के लिए बहाल करेगा तो वह (X), Z के

कामों के लिए ७,००० रु० तक का जिम्मेदार होगा। यह निरन्तर प्रतिभूति हुई।

२. X, Y से कहता है कि तुम Z को व्यापार करने के लिए २०० रु० की चीज दे सकते हो और उतनी कीमत के लिए मैं जिम्मेदार हूँ। Y ने Z को २०० रु० की चीज दी और Z ने समय पर उसका भुगतान कर दिया। फिर कुछ दिन बाद Y, Z को ५०० रु० की कीमत की चीज देता है। दाम नहीं पाने पर वह (Y) X को सिर्फ २०० रु० देने के लिए मजबूर कर सकता है, ज्यादा देने के लिए नहीं। यहाँ पर X ने जो प्रतिभूति दी वह 'निरन्तर प्रतिभूति' कहलायेगी और X, २०० रु० का दायी बराबर होगा।

### निरन्तर प्रतिभूति का खण्डन (Termination of Continuing Guarantee)

निम्नलिखित तरीके से निरन्तर प्रतिभूति का खंडन किया जा सकता है—

१. सूचना द्वारा (By Notice)—यदि प्रतिभू चाहे तो ऋणदाता को सूचना दे दे कि वह (प्रतिभू) अबसे 'मूलऋणी' के ऋणों का दायी नहीं होगा (धारा १३०)। परन्तु इसमें एक विशेष बात गौर करने की यह है कि खंडन की सूचना के बाद के ऋणों के लिए वह (प्रतिभू) जिम्मेदार नहीं है पर सूचना से पहले जो ऋण दिया जा चुका है उसके लिए वह (प्रतिभू) दायी रहता है।

उदाहरण—X, Y को २०० रु० तक का चावल एक साल के अन्दर बेचने के बदले में Z को वचन देता है कि यदि Y उन रुपयों का भुगतान नहीं करेगा तो वह (X) उसके लिए जिम्मेदार है। Z ने केवल १,००० का चावल Y को दिया था कि X ने अपनी दी गयी निरन्तर प्रतिभूति के खंडन की सूचना भेजी और कहा कि आज से भावी व्यवहार के लिए वह (X) दायी नहीं रहेगा। ऐसी दशा में यदि Y, १,००० रु० Z को नहीं चुकाता है तो उसका भुगतान X को करना पड़ेगा।

२. प्रतिभू की मृत्यु होने पर (By Surety's Death)—यदि प्रतिभू की मृत्यु हो जाय तो जिस दिन उसकी मृत्यु हुई उस दिन से भावी व्यवहारों (future transactions) के लिए 'निरन्तर प्रतिभूति' का खंडन स्वयं हो जाता है। परन्तु उसके जीवनकाल में किये गये व्यवहारों (transactions) के लिए प्रतिभू का वैधानिक प्रतिनिधि (legal representative) दायी होगा। (धारा १३१)

अंगरेजी कानून के अनुसार इस तरह की प्रतिभूति के खंडन के लिए प्रतिभू की मृत्यु की जानकारी ऋणदाता को होनी आवश्यक है परन्तु भारतीय कानून में इसकी आवश्यकता नहीं होती।

३. प्रसंविदा के नवीकरण (Novation) के द्वारा भी खंडन होता है।

४. प्रतिभू की सम्मति के बिना संविदा में परिवर्तन करके (Alteration in the contract without the Consent of Surety)।

५. महाजन के किसी कार्य (act) या कार्यलोप (omission) द्वारा जिससे प्रतिभू का अन्तिम उपचार परिक्षीण (impaired) हो जाता हो।

६. फर्म (Firm) के गठन में परिवर्तन द्वारा।

### प्रतिभू का दायित्व (Liability of Surety)

हमलोग देख चुके हैं कि प्रतिभू का दायित्व दूसरा या अप्रधान या गौण (secondary) होता है, प्रधान दायित्व (primary liability) तो मूलऋणी का ही होता है। मूल कर्जदार के कर्ज का भुगतान नहीं करने पर ही प्रतिभू का दायित्व मूल कर्जदार के दायित्व के साथ सह-विस्तृत (co-extensive) होता है।



**उदाहरण—A, B के लिए C द्वारा स्वीकार किये गये बिल के लिए प्रतिभू होता है। C बिल को अस्वीकृति (dishonour) कर देता है। ऐसी हालत में A बिल में लिखे गये धन को चुकाने के लिए ही बाध्य न होगा बल्कि आवश्यक सूद तथा और अन्य खर्चों के लिए भी बाध्य किया जा सकता है। इसका मतलब यह है कि प्रतिभू उस सभी धन को चुकाने के लिए दायी है जो कि मूलऋणी को चुकाना पड़ता है। लेकिन अगर प्रतिभू चाहे तो समझौता करते समय अपने दायित्व की सीमाएँ निश्चित कर सकता है और ऐसी हालत में मूलऋणी के दायित्व की सीमाएँ चाहे कितनी ही क्यों न हों, प्रतिभू का दायित्व निर्धारित सीमा से ज्यादा कभी भी नहीं होगा। उदाहरण के लिए, अगर मूलऋणी ऋणदाता के प्रति ४,००० रु० के लिए दायी है और प्रतिभू सिर्फ १,५०० रु० के लिए ही दी है तब प्रतिभू १,५०० रु० से ज्यादा के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। इसलिए कभी-कभी प्रतिभू को “विशेष सुविधा वाला ऋणी” (favoured debtor) भी कहते हैं। लॉर्ड सेलेवर्नी (Lord Selborne) ने कहा है—“A surety is undoubtedly and not unjustly an object of some favour both at Law and equity.”**

(धारा १२८)

ऊपर लिखी गयी बातें प्रतिभू के दायित्व की सीमा बताती है जब कि समझौते की शर्तें उसके दायित्व को सीमित नहीं करती, लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि जब मूलऋणी उत्तरदायी नहीं है तब प्रतिभू भी उत्तरदायी नहीं होगा। प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से सिर्फ इसलिए मुक्त नहीं हो जाता कि मूलऋणी तथा ऋणदाता के बीच समझौता (मूलऋणी में समझौता करने की क्षमता नहीं होने की वजह से) मूलऋणी की इच्छा पर व्यर्थनीय है तथा उसके द्वारा निरस्त भी कर दिया जाता है। ऐसी हालत में प्रतिभू मूलऋणी के रूप में भी दायी होता है।

जब दो व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति के साथ किसी दायित्व का भार लेने के लिए समझौता करते हैं, और वे एक-दूसरे के साथ यह भी समझौता करते हैं कि उनमें से एक सिर्फ दूसरे की त्रुटि पर ही दायी होगा तब पहले समझौते के अधीन तीसरे व्यक्ति के प्रति इन दोनों व्यक्तियों का दायित्व दूसरा समझौता होने की वजह से प्रभावित नहीं होगा, चाहे ऐसे तीसरे व्यक्ति को उस दूसरे समझौते की जानकारी क्यों न हो। दूसरे शब्दों में हमलोग यह भी कह सकते हैं कि जब संयुक्त रूप से कर्ज लेने वाले दो व्यक्तियों में, एक व्यक्ति वास्तव में दूसरे के लिए प्रतिभू है तो भी ऋणदाता के प्रति उसका उत्तरदायित्व कम नहीं होता और वह प्रतिभू के अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।

**उदाहरण—A और B, C के लिए एक संयुक्त एवं अलग प्रतिज्ञा-पत्र लिखते हैं। A, वास्तव में, इसे B के प्रतिभू के रूप में लिखता है और C इस बात को प्रतिज्ञा-पत्र लिखे जाने के समय ही जानता है। यह बात कि A ने C की जानकारी में यह पत्र B के प्रतिभू के रूप में लिखा था, C द्वारा A के खिलाफ मुकदमा करने पर प्रतिरक्षा के लिए कोई आधार न होगी। (धारा १३२)**

**प्रतिभू का अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होना (Discharge of Surety)**

एक प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से निम्नलिखित तरह से मुक्त हो जाता है—

**१. प्रतिभूति अनुबन्ध के खण्डन की दशा में (By Revocation of Contract of Guarantee)—** अगर प्रतिभू अपने अनुबन्ध का खंडन करता है तो वह अपने

उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। उदाहरण—A, B को कुछ रुपया C की प्रतिभूति पर उधार देता है। यहाँ C प्रतिभूति समझौते का खंडन नहीं कर सकता क्योंकि उत्तरदायित्व उत्पन्न हो चुका है। लेकिन अगर उत्तरदायित्व उत्पन्न नहीं हुआ है तब प्रतिभू नोटिस द्वारा समझौते का खंडन कर सकता है। उदाहरण के लिए, अगर A ने अभी B को कर्ज नहीं दिया है, हालाँकि प्रतिभूति का समझौता हो चुका है, तो C ऋणदाता को नोटिस देकर समझौते का खंडन कर सकता है। निरन्तर अथवा चालू गारंटी की दशा में एक प्रतिभू किसी समय धनी को नोटिस देकर भविष्य के व्यवहारों के उत्तरदायित्व से अपने-आपको मुक्त कर सकता है। (धारा १३०)

२. प्रतिभू की मृत्यु होने पर (By Surety's Death)—कोई विपरीत समझौता नहीं हुआ है, तो अगर प्रतिभू की मृत्यु हो जाय, तो भविष्य के व्यवहारों के सम्बन्ध में चालू गारंटी समाप्त हो जाती है और उसके बाद के व्यवहारों के लिए प्रतिभू का कोई उत्तरदायित्व नहीं रहता। (धारा १३१)

३. प्रसविदा की शर्तों में परिवर्तन करक (By Variance in terms of Contract)—अगर प्रतिभू की बगैर राय के, मूलऋणी तथा ऋणदाता प्रसविदा की शर्तों में कुछ परिवर्तन कर लेते हैं, तब प्रतिभू परिवर्तन के बाद किये गये व्यवहारों के लिए उत्तरदायी नहीं होता। Lord Westbury ने एक मुकदमे में फैसला देते हुए लिखा है कि अगर प्रतिभू की राय के बगैर समझौते में परिवर्तन किया जाता है, और वह उसके हित के लिए भले ही क्यों न हो, प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।\* लेकिन अगर प्रतिभू ने किसी परिवर्तन के लिए अपनी राय दी है तब वह दायित्व से मुक्त नहीं होगा। ऐसी हालत में यह साबित करने का भार कि परिवर्तन के लिए प्रतिभू ने अपनी राय दे दी थी ऋणदाता पर होगा। [धारा १३३]

उदाहरण—(i) A, C के बैंक में मैनेजर के रूप में B के आचरण के लिए C के पास प्रतिभू हो जाता है। इसके बाद B और C बगैर A की राय के समझौता करते हैं कि B का बतन बढ़ा दिया जायगा और वह अधिविकर्ष (overdraft) की हानियों पर एक-चौथाई के लिए दायी होगा। B एक ग्राहक को अधिविकर्ष देता है जिससे बैंक को उतने रुपये की हानि हो जाती है। समझौते में उसकी राय के बगैर किये गये परिवर्तन के लिए A अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है और इस हानि की क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा।

(ii) X, Y से यह प्रसविदा करता है कि वह Z को पहली मार्च को २,००० रु० देगा और P इस रकम के भुगतान के लिए प्रतिभूति देता है। फिर X पहली जनवरी को ही २,००० रुपया Y को दे देने का वादा करता है। अब इस २,००० रुपये के लिए P का दायित्व समाप्त हो गया, क्योंकि प्रसविदा की शर्त में परिवर्तन कर दिया गया और अब X अगर चाहे तो पहली जनवरी को पहले भी Y

\* Lord Westbury said, "You bind him (surety) to the letter of his engagement. If that engagement be altered without the Surety's consent in a single line, no matter whether it is altered for his benefit, no matter whether the alteration be innocently made, he has a right to say : 'The contract is no longer that to which I engaged to be surety; you have put an end to the contract that I guaranteed and my obligation therefore is at an end'."

से रूपा वसूल करने की नालिषा कर सकता है।

४. मूलऋणी को मुक्त कर देने से (By Release or Discharge of Principal Debtor)—अगर मूलऋणी और ऋणदाता आपस में समझौता करते हैं जिससे मूलऋणी अपने कर्ज से मुक्त हो जाता है तब उस कर्ज से प्रतिभू भी मुक्त हो जायगा, चाहे वह ऋणदाता के द्वारा एक नयी प्रसविदा करने से हो या उसके प्रतिज्ञा-भंग करने से हो। [धारा १३४]

उदाहरण—(i) A, B के साथ अपनी भूमि पर नील की खेती करने तथा एक निश्चित दर पर B को सुपुर्द करने का समझौता करता है और C, A के द्वारा इस समझौते की पूर्ति की प्रतिभूति देता है। B पानी के किसी नाले को, जो A की जमीन की सिंचाई के लिए आवश्यक है, दूसरी ओर मोड़ देता है और इस प्रकार A को नील की खेती करने से रोक देता है। इसका वैधानिक परिणाम यह होगा कि A अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है और इसलिए C अब अपनी प्रतिभूति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

(ii) X, Y से प्रतिज्ञा करता है कि वह एक निश्चित समय के अन्दर Y का मकान का एक खास रकम के बदले में निर्माण कर देगा जिसके लिए Y को आवश्यक लकड़ी देनी पड़ेगी। Z, X के कार्य के लिए प्रतिभू बनता है। परन्तु Y आवश्यक लकड़ी नहीं देता है। इसमें Y के द्वारा प्रतिज्ञा भंग होती है फलतः Z अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने से मुक्त हो गया।

५. ऋणदाता द्वारा मूलऋणी के साथ अनुबन्ध कर लेने पर उसे समय देकर, अथवा उस पर मुकदमा न करने का वचन देकर (By Creditor's compounding with, giving time to or agreeing not to sue, the Principal Debtor)—अगर ऋणदाता और मूलऋणी प्रतिभू की राय बगैर ऐसा कोई समझौता कर लेते हैं जिसके मुताबिक ऋणदाता मूलऋणी को समय देने, अथवा उस पर मुकदमा न करने का वचन देता है, तब प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। [धारा १३५]

प्रतिभू का कब छुटकारा नहीं होता?—निम्नलिखित परिस्थितियों में गारंटी के लिए प्रतिभू अपने दायित्व से छुटकारा नहीं पाता—(i) अगर मूलऋणी को समय देने की प्रसविदा ऋणदाता ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ की है, और मूलऋणी के साथ नहीं की है, तब प्रतिभू अपने दायित्व से छुटकारा नहीं पाता। उदाहरणार्थ, A एक ऐसे विनियम-पत्र का धारक है जिसके भुगतान की तारीख बीत चुकी है और जो कि C के द्वारा B के प्रतिभू के रूप में लिखा गया था और B द्वारा स्वीकार किया गया था। A एक अन्य व्यक्ति D के साथ B को ज्यादा समय देने का समझौता करता है। ऐसी हालत में C अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता। [धारा १३६]

(ii) अगर प्रसविदा में कोई अन्य विपरीत आदेश नहीं है तब ऋणदाता की ओर से मूलऋणी पर मुकदमा न चलाने से या उसके खिलाफ और कोई उपाय लागू न करने से ही प्रतिभू अपने दायित्व से छुटकारा नहीं पाता। उदाहरणार्थ—B पर C का एक कर्ज है, जिसकी A ने प्रतिभूति दी है। कर्ज देय हो जाता है। C, B पर कर्ज देय हो जाने के समय से एक वर्ष बाद तक मुकदमा नहीं करता है। ऐसी हालत में A प्रतिभू के दायित्व से मुक्त नहीं होगा। [धारा १३७]

(iii) अगर किसी प्रसविदा में सह-प्रसविदा (co-sureties) है, और ऋणदाता उनमें से किसी एक को दायित्व से मुक्त कर देता है तो ऐसी हालत में शेष सह-प्रतिभू

अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाने और न इस तरह से छूटकारा पाया हुआ प्रतिभू ही दूसरे प्रतिभूओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। इसका वर्णन हमलोग धारा ४४ के अन्दर भी देख चुके हैं। [धारा १३८]

६. ऋणदाता द्वारा कोई ऐसा कार्य या भूल हो जो प्रतिभू के अधिकार का बाधक हो (By Creditor's act or omission impairing Surety's remedy)—अगर ऋणदाता कोई ऐसा काम करता है जो प्रतिभू के अधिकार के असंगत (inconsistent) है, अथवा वह किसी ऐसे काम को करने में गलती करता है जिसका करना प्रतिभू के प्रति उसके कर्तव्यों के अनुसार आवश्यक है, और जिससे मूलऋणी के खिलाफ प्रतिभू के अधिकारों में कमी हां जाती है तो ऐसी हालत में प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। [धारा १३९]

उदाहरणार्थ—(i) X ने अपने बैंक में Y को खजाची के लिए बहाल किया, जिसकी प्रतिभूति Z ने दी। लेकिन X ने यह प्रतिज्ञा की कि वह हरेक महीने के अन्त में कम से कम यह देखेगा कि Y रुपये का ठीक-ठीक हिसाब रखता है या नहीं। X ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार Y का हिसाब नहीं देखा और Y ने कुछ रुपया छल से चुरा लिया (embezzled)। ऐसी हालत में Z उत्तरदायी नहीं होगा।

(ii) B, C के लिए जहाज बनाने का अनुबन्ध करता है और इसके प्रतिफल के रूप में एक निश्चित रकम, जिसका भुगतान किस्तों में कार्य की प्रगति के अनुसार होगा, तय हुई। B द्वारा प्रसविदा की उचित पूर्ति के लिए A, C के प्रति प्रतिभू हो जाता है। C, A की जानकारी के बिना, B को आखिरी दो किस्त समय के पहले ही दे देता है। A इस अग्रिम भुगतान के कारण अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

७. प्रतिभूति प्रसविदा के अवैध हो जाने पर (By Invalidation of Contract)—ऋणदाता द्वारा प्राप्त की गयी प्रतिभूति अगर गैरकानूनी साबित होती है तब प्रतिभू अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

८. धनी द्वारा प्रतिभूतियों को छिपाने अथवा प्रतिभू की बिना सहमति के उनके ऋण लौटा देने पर—अगर धनी उन प्रतिभूतियों में से, जो कि मुख्य ऋणी ने गिरवी के रूप में धनी के पास रखी है, कुछ खो देता है या अलग कर देता है तब प्रतिभू उनके मूल्य की सीमा तक छूट जाता है। [धारा १४१]

उदाहरणार्थ—C ने अपने किरायेदार B को A की गारंटी पर २,००० रुपया उधार दिया। B ने A की गारंटी के अलावा अपना फरनीचर भी गिरवी रखा। C ने गिरवी रखे फरनीचर को वापस कर लिया। B दिवालिया हो गया और C ने A पर रुपये के लिए दावा किया। A फरनीचर के मूल्य की सीमा तक उत्तरदायित्व से छूट जायगा।

९. मिथ्याकथन द्वारा प्राप्त प्रतिभूति (Guarantee obtained by Misrepresentation)—अगर कोई भी प्रतिभूति ऋणदाता के ऐसे मिथ्याकथन के द्वारा जो उसकी राय से या उसके जानते रहने पर की गयी है और जो तथ्य के विषय की हो, तो वह प्रतिभूति बाध्य नहीं होगी। [धारा १४२]

१०. मौन द्वारा कपट से प्राप्त की गयी प्रतिभूति (Guarantee obtained by Concealment)—अगर किसी तथ्य के विषय पर ऋणदाता चुप रहकर या सचाई को छिपाकर प्रतिभूति प्राप्त कर लेता है तब वह प्रतिभू बाध्य नहीं होगी। [धारा १४३]

**उदाहरण** — X रुपया वसूल करने के लिए Y को बहाल करता है। Y कुछ रुपयों का हिसाब सही-सही नहीं दे पाता है। इस पर X ने Y से जमानतदार माँगा। Z ने Y के ठीक-ठीक हिसाब के लिए प्रतिभूति दी। परन्तु X ने Y के पहले की घटना के बारे में कुछ नहीं कहा। बाद में Y ने फिर रुपये के हिसाब में गड़बड़ी की। ऐसी दशा में प्रतिभू बाध्य नहीं होगा।

११. सभी सह-प्रतिभूतियों के शामिल न होने पर प्रतिभूति अवैध मानी जाती है (Guarantee on contract that creditor shall not act on in until co-surety joins is invalid) — अगर कोई व्यक्ति इस शर्त पर प्रतिभूति देता है कि ऋणदाता तब तक प्रसंविदा नहीं करेगा जब तक कि कोई दूसरा व्यक्ति भी सम्मिलित प्रतिभू (co-surety) नहीं वनेगा, तो ऐसे व्यक्ति के शामिल नहीं होने पर प्रथम प्रतिभू अपनी प्रतिज्ञा के लिए बाध्य नहीं है। [धारा १४४]

१२. गारंटी प्रसंविदा में प्रतिफल न होने पर (Absence of Consideration in Guarantee Contract) — हर एक प्रसंविदा के लिए प्रतिफल का होना जरूरी है। इसलिए गारंटी प्रसंविदा बगैर प्रतिफल के अवैध होगी और प्रतिभू अपने दायित्व से छूटा हुआ समझा जायेगा।

१३. फर्म के संगठन में परिवर्तन द्वारा (Change in the Constitution of the Firm) — फर्म के संगठन में परिवर्तन की तारीख से धर्म के व्यवहारों के सम्बन्ध में दी गयी चालू गारंटी भविष्य के व्यवहारों के लिए समाप्त हो जाती है।

### प्रतिभू के अधिकार (Rights of Surety)

प्रतिभू के अधिकार निम्नलिखित हैं—

१. मूलऋणी के विरुद्ध (Rights against the Principal Debtor),
२. ऋणदाता के विरुद्ध (Rights against the Creditor) और
३. सह-प्रतिभू के विरुद्ध (Right against Co-sureties)।

१. मूलऋणी के विरुद्ध अधिकार (Rights Against the Principal Debtor) — (i) जब प्रतिभू, मूलऋणी द्वारा कर्ज नहीं चुकाने पर कर्ज चुका देता है, अथवा प्रतिभूति कर्तव्य की पूर्ति कर देता है तब उसको वे सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो कि ऋणदाता को मूलऋणी के विरुद्ध प्राप्त थे। उदाहरणार्थ— प्रतिभूति की पूर्ति के बाद प्रतिभू खुद मूलऋणी के खिलाफ रुपया वसूल करने के लिए मुकदमा कर सकता है। इसी तरह उसे बेचे हुए माल के सम्बन्ध में माल को रोक रखने अथवा मार्ग में रूकवाने का अधिकार है। [धारा १४०]

(ii) प्रतिभूति के हर एक समझौते में मूलऋणी द्वारा प्रतिभू की हानि-रक्षा का गतिमत वचन (implied promise) होता है और प्रतिभू मूलऋणी से ऐसा कोई भी धन पाने का अधिकारी है जो उसने प्रतिभूति के अन्दर कानूनी तरीके से चुकाया है, किन्तु ऐसा कोई भी धन पाने का हकदार नहीं जो कि उसने गलत ढंग से (wrongfully) चुकाया है। [धारा १४५]

**उदाहरण** — B, C का कर्जदार है और A कर्ज के लिए प्रतिभू है। B द्वारा ऋण का भुगतान न किए जाने पर C, A से भुगतान करने को कह सकता है और उसके इनकार करने पर उस रकम के लिए मुकदमा कर सकता है। कुछ उचित आधार होने की वजह से A मुकदमा लड़ सकता है लेकिन कर्ज की रकम तथा खर्च भी चुकाने के लिए बाध्य किया जाता है। वह B से मूल ऋण एवं खर्चों के रूप में

चुकाया गया धन दोनों ही वसूल कर सकता है। अगर इसमें मुकदमा लड़ने का कोई आधार न होना तब A, B से सिर्फ मूल ऋण ही वसूल कर सकता।

२. ऋणदाता के विरुद्ध अधिकार (Rights Against the Creditor)—प्रतिभूति कर्तव्य को पूरा कर देने पर प्रतिभू इस तरह की हर एक जमानत का लाभ पाने का अधिकारी है जो ऋणदाता के पास मूलऋणी के विरुद्ध उस समय थी जब कि प्रतिभूति का समझौता किया गया था, चाहे प्रतिभू को इस तरह की जमानत का पता हो या नहीं। अगर ऋणदाता ऐसी जमानत खो देता है, अथवा सह-प्रतिभू की राय के बिना उसको अलग कर देता है तब प्रतिभू उस जमानत के मूल्य की सीमा तक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। [धारा १४१]

उदाहरण— C, B को A की प्रतिभूति पर २,००० रु० उधार देता है। C उक्त २,००० रु० के लिए एक और जमानत B के फर्नीचर के बन्धक के रूप में ले लेता है। C बन्धक को निरस्त कर देता है। B दिवालिया हो जाता है और C, A पर उसकी प्रतिभूति के अनुसार मुकदमा करता है। A फर्नीचर के मूल्य की रकम तक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

३. सह-प्रतिभूओं के विरुद्ध अधिकार (Rights Against Co-sureties)—

(i) जहाँ दो या दो से ज्यादा व्यक्ति, संयुक्त या अलग रूप से, किसी एक ही कर्ज या कर्तव्य के लिए सह-प्रतिभू हैं, वहाँ किसी विपरीत प्रसंविदा के अभाव में कुछ कर्ज या उसके भाग के लिए जो मूलऋणी द्वारा चुकाया नहीं गया है, आपस में प्रत्येक बराबर-बराबर अंश चुकाने के लिए जिम्मेदार हैं। यह कहना गलत होगा कि वे एक अथवा विभिन्न अनुबन्धों के अन्दर अपने को बाध्य करते हैं, अथवा अनुबन्ध करते समय उन्हें दूसरे प्रतिभू के होने का पता था या नहीं। [धारा १४६]

उदाहरण— A, B और C, Z को उधार दिये गये ६,००० रुपये के लिए D के प्रतिभू हैं। अगर Z समय पर भुगतान नहीं करता है तब A, B और C आपस में प्रत्येक २,००० रुपये का भुगतान करने के लिए दायी हैं।

(ii) अगर सह-प्रतिभू भिन्न-भिन्न धन के लिए बाध्य है तब वे जहाँ तक उनके दायित्व की सीमाएँ रहेंगी, बराबर-बराबर भुगतान के लिए दायी हैं। [धारा १४७]

उदाहरण— A, B और C, D द्वारा E को ठीक तरह से लेखा देने के लिए, D के प्रतिभूओं के रूप में भिन्न-भिन्न दण्डों के लिए पृथक् रूप से तीन प्रतिज्ञापत्र लिखते हैं अर्थात् A ५,००० रुपये के दण्ड का, B १०,००० रुपये के दण्ड का और C २०,००० रुपये के दण्ड का। D १५,००० रुपये तक के धन के सम्बन्ध में चुकता नहीं करता है। A, B और C हर एक ५,००० रु० के भुगतान के लिए दायी हैं।

अवैध प्रतिभूति (Invalid Guarantee)

निम्नलिखित हालतों में प्रतिभूति अवैध मानी जाती है—

१. ऐसी हर एक प्रतिभूति जो कर्जदाता द्वारा, अथवा उसकी जानकारी और सम्मति से व्यवहार के किसी महत्वपूर्ण भाग के सम्बन्ध में, मिथ्या वर्णन द्वारा प्राप्त की गयी है, अवैध होती है। [धारा १४२]

२. ऐसी हर एक प्रतिभूति जो कर्जदाता द्वारा व्यवहार की किन्हीं महत्वपूर्ण हालतों के सम्बन्ध में मौन रहकर प्राप्त की गयी है, अवैध होती है। [धारा १४३]

३. जहाँ कोई एक व्यक्ति किसी प्रसंविदा के सम्बन्ध में इस शर्त के साथ

प्रतिभूति देता है कि कर्जदाता उसको उस समय तक लागू नहीं करेगा जब तक कि दूसरा व्यक्ति उसमें सह-प्रतिभू होना स्वीकार नहीं कर लेता, तब वह प्रतिभूति वैध नहीं होगी, अगर वह दूसरा व्यक्ति इसमें शामिल नहीं होता। [धारा १४४]

### University Questions

1. Distinguish between a contract of guarantee and a contract of indemnity. Explain continuing guarantee and show how it is terminated.

(क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध तथा गारण्टी के अनुबन्ध में अन्तर बताइए। चालू गारण्टी की व्याख्या कीजिए और यह दिखलाइए कि यह कैसे निर्धारित होती है।)

2. What is the 'Contract of Indemnity'? Give instances of liability arising by operation of law. Discuss the rights of indemnity-holder when sued.

(‘क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध’ किसे कहते हैं? विधि-प्रवर्तन द्वारा उत्पन्न होने वाले क्षतिपूर्ति के दायित्वों के कुछ उदाहरण दीजिए। फिर, मुकदमा करने पर हानिरक्षाधारी को प्राप्त होनेवाले अधिकारों की विवेचना कीजिए।)

3. Define the 'Contract of Guarantee'. How and in what respects is it different from a 'Contract of Indemnity'?

(‘गारण्टी अनुबन्ध’ की परिभाषा दीजिए। इस प्रकार के अनुबन्धों तथा ‘हानिरक्षा-अनुबन्धों’ में क्या अन्तर है?)

4. Explain 'Continuing Guarantee' and show how it is terminated.

(‘चालू प्रतिभूति’ की व्याख्या कीजिए और यह भी बताइए कि वह कैसे समाप्त होती है।)

5. What are those circumstances when a surety will be discharged from liability?

(किन परिस्थितियों में प्रतिभू को अपने दायित्वों से मुक्ति मिल सकती है?)

6. Does the release by the creditor of one of the sureties discharge the others? Explain the rule that — “Between co-sureties there is equality of burden and benefit.” Comment.

(क्या ऋणदाता द्वारा जमानतदारों में से किसी एक की मुक्ति दूसरे जमानतदारों को भी मुक्त कर देती है? “सह-प्रतिभूओं में दायित्व एवं लाभ के लिए समानता होती है।” इस नियम की व्याख्या कीजिए।)

7. Is a surety liable to the creditor, when the original contract between the creditor and the principal debtor is (i) void, or (ii) voidable?

[ऋणदाता और प्रमुख ऋणी के मध्य मूल अनुबन्ध के—(i) व्यर्थ, अथवा (ii) व्यर्थनीय होने पर, क्या प्रतिभू ऋणदाता के प्रति उत्तरदायी होता है?]

8. What is the nature of the Surety's authority? On payment of the debt, what are the rights of the surety against (i) the creditor, (ii) the principal debtor and (iii) the co-sureties? Under what circumstances can he exercise these rights?

[प्रतिभू का अधिकार किस प्रकृति का होता है? ऋण के भुगतान के बाद प्रतिभू को (i) ऋणदाता, (ii) प्रमुख ऋणी एवं (iii) सह-प्रतिभूओं के विरुद्ध क्या-क्या

अधिकार प्राप्त होते हैं ? किन परिस्थितियों में वह इन अधिकारों का प्रयोग कर सकता है ?]

9. What are the rights of a surety as against the creditor and the principal debtor ?

(ऋणदाता और मूलऋणी के प्रति जमानतदार के क्या अधिकार हैं ?)

10. "The liability of the surety is coextensive with that of the principal debtor, unless it is otherwise provided by the contract." Explain this and discuss the liability of a surety for the repayment of a loan where it subsequently turns out that the principal debtor is a minor and therefore, the loan is void (Sec 128)

["अनुवन्ध में दिपरीत व्यवस्था विद्यमान नहीं होने पर प्रतिभू का दायित्व प्रमुख ऋणी के दायित्व के समान अथवा सहविस्तृत होता है।" उपर्युक्त कथन की व्याख्या कीजिए और ऐसे ऋण की अदायगी के सम्बन्ध में प्रतिभू के दायित्वों की विवेचना कीजिए जिनमें अनुवन्ध करने के पश्चात् यह पता लगे कि मूलऋणी अवयस्क था और इसलिए उसको दिया जानेवाला ऋण विवर्जित है। (धारा १२८)

11. Discuss the following Problems—

(i) A asks for a loan of Rs. 1,000 from B. B is willing to accommodate A, provided the latter offers some suitable security. A is unable to provide any security. In the meantime C without the knowledge of A agrees to stand as a guarantee for the loan. A defaults and C has to pay the amount guaranteed by him. Discuss C's rights.

[Ans. According to Madras High Court—प्रतिभू प्रधान कर्जदार की स्पष्ट या गम्भीर प्रार्थना पर ही कोई उत्तरदायित्व ले सकता है और ऐसा करने पर ही वह प्रधान कर्जदार के खिलाफ ऐसे धन को प्राप्त करने का अधिकार रखेगा जो कि उस प्रतिभूति प्रसविदा में ऋणदाता को चुकाने पड़े हो। इस प्रश्न में C ने A की जानकारी बगैर उसके द्वारा लिये गये कर्ज के लिए B को प्रतिभूति दी। पैसा नहीं चुकाने पर C को B के लिए प्रतिभूति कर्ज चुकाना पड़ा। C, A से धन पाने का अधिकारी नहीं है। ऐसी हालत में प्रतिभूति की कोई प्रसविदा नहीं हुई क्योंकि प्रसविदा में तीनों पक्षदार शामिल नहीं थे, बल्कि वास्तव में वह B तथा C के बीच हानिरक्षा की प्रसविदा हुई।]

(ii) A advances to B, a minor, Rs. 5,000 on the guarantee of C. On a demand for repayment, B refuses to pay on the ground of his minority. Can A recover the amount from C ?

[Ans. यह प्रश्न 'प्रतिभूति प्रसविदा के पक्षकारों' के सम्बन्ध में है। इसमें A, C से यह धन प्राप्त कर सकता है, क्योंकि ऐसी दशा में A तथा C के बीच हुई प्रसविदा स्वतन्त्र तथा प्रधान मानी जाती है।]

(iii) A guarantees to B, against the misconduct of, in an office to which C is appointed by B, and of which the duties are defined by an Act of Legislature. By a subsequent Act, the nature of the office is materially altered. Afterwards, C misconducts himself. The misconduct is in respect of a duty not affected by the later Act. Is A discharged by the change from future liability under his guarantee ? Give reasons.

[Ans. यह प्रश्न 'प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति' से सम्बद्ध है। धारा १३३ के अनुसार A परिवर्तन के बाद C के आचरण के सम्बन्ध में अपने दायित्व से



मुक्त हो जाता है, हालाँकि C का दुराचरण ऐसे कर्तव्य के सम्बन्ध में है जिस पर बाद में प्रसविदा के सन्निधयम का कोई असर नहीं पड़ता है।]

(iv) C contracts to lend B rupees two thousand on 1st April, 1952. A guarantees repayment. C pays the amount to B on 1st February, 1952. Is A discharged ?

[Ans. इसमें भी धारा १३३ के अनुसार A अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है, क्योंकि प्रसविदा में परिवर्तन हो जाने की वजह से C ऊपर लिखे गये धन के लिए B के खिलाफ पहली अप्रैल से पहले भी मुकदमा कर सकता है।]

(v) A contracts with B for a fixed price to build a house for B within 6 months, B supplying the necessary timber. C guarantees A's performance of the contract. B fails to supply the timber. Discuss the liabilities of C.

[Ans. धारा १३४ के अनुसार C अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है, क्योंकि B द्वारा लकड़ी न दिये जाने की वजह से A अपने निष्पादन-दायित्व से मुक्त हो जाता है।]

(vi) A guarantees to B a loan advanced by B to C. B omits through oversight, to sue C within the limitation period, with the result that his suit against C is time-barred. B then calls upon A to repay the loan in term of his guarantee. Will he succeed ?

[Ans. धारा १३४ के अनुसार B, A से यह धन पाने का अधिकारी नहीं है और उसका अधिकार समाप्त हो जाता है।]

(vii) Discuss if the surety is discharged if the claim is barred against the debtor but not against the surety.

[Ans. इस सवाल का जवाब भी ठीक उसी तरह दिया जायगा जिस तरह प्रश्न vi का लिखा गया है।]

(viii) B owes C a debt guaranteed by A. C does not sue B for a year after the debt has become payable. Is A discharged from his suretyship ?

[Ans. धारा १३७ के अनुसार A प्रतिभू-दायित्व से मुक्त नहीं होगा।]

(ix) A bank in whose favour fidelity guarantee was given for the good conduct of an employee excused the employee on one occasion when he misappropriated the bank's money without informing the surety about it and the employee again misappropriates. Discuss if the surety is discharged.

[Ans. धारा १३९ के अनुसार प्रतिभू इस तरह के दुरुपयोग के लिए उत्तरदायी नहीं है। वह उस समय ही अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है जब कि कर्मचारी ने पहले अवसर पर दुरुपयोग किया था और बैंक ने प्रतिभू को सूचना दिये बिना उसे क्षमा कर दिया था।]

(x) A, B and C are sureties for D into the several bonds, each in a different penalty, namely A in the penalty of Rs. 1,000, B in that of Rs. 2,000 and C in that of Rs. 4,000 conditioned for D's duty accounting to E. D makes a default to the extent of Rs. 4,000. Discuss the liabilities of A, B and C.

(Ans. धारा १४७ के अनुसार A, १,००० रु० के लिए B एवं C प्रत्येक १,५०० रु० के भुगतान के लिए दायी है।)

(xi) A, B and C guaranteed a loan granted by D to E for Rs 6,000. A guaranteed the loan to the extent of Rs. 1,000; B to the extent of Rs. 2,000; and C to the extent of Rs. 3,000. E repaid Rs. 2,000 to D. To what extent A, B and C shall respectively be liable for the repayment of the loan to D in the event of E's default in making payment of the balance ?

[**Ans.** इस सवाल का भी जवाब ठीक उसी तरह दिया जायगा जिस तरह प्रश्न दस का दिया गया है ।]

---

## न्यास या निक्षेप (Bailment)

धाराएँ १४८-१७१

‘बैलमेंट’ शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द ‘बैलचर’ से जिसका अर्थ सुपुर्द करना होता है, हुई है। साधारण शब्दों में किसी तरह की भी सुपुर्दगी को ‘निक्षेप’ कह सकते हैं। परन्तु, कानून की दृष्टि से स्वेच्छा से एक व्यक्ति जब दूसरे व्यक्ति को कब्जा (possession) देता है तब उसे ‘निक्षेप’ कहते हैं। भारतीय प्रसंविदा विधान की धारा १४८ के अनुसार “यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इस विशिष्ट प्रयोजन से माल सुपुर्द करता है कि उद्देश्य के पूरा हो जाने पर वह वापस कर दिया जाय या उसको आदेशानुसार दे दिया जाय तो ऐसी प्रसंविदा को ‘निक्षेप प्रसंविदा’ (contract of bailment) कहते हैं।”\* इस परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि निक्षेप में माल का मालिक उसे अपने अधिकार से दूसरे के अधिकार में दे देता है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं होता कि माल पानेवाला स्वयं उसका मालिक हो जाता है। फिर माल की सुपुर्दगी हमेशा अस्थायी (temporary) उद्देश्य के लिए होनी चाहिए। जहाँ कोई ग्राहक बैंक में चालू खाते (current account), सेविंग बैंक एकाउण्ट या फिक्स्ड डिपॉजिट एकाउण्ट (fixed deposit A/c.) में धन जमा करता है और इसलिए वही (identical) धन वापस करने का कोई बन्धन नहीं है, बल्कि इसके समतुल्य (equivalent) धन लौटाने का बन्धन है, वहाँ निक्षेपण (bailment) नहीं है बल्कि कर्जजार और महाजन का सम्बन्ध पैदा होता है। माल की सुपुर्दगी दो प्रकार की होती है—

१. वास्तविक (Actual), और
२. कृत्रिम (Constructive)।

माल को यथार्थतः हस्तान्तरित करना वास्तविक सुपुर्दगी (actual delivery) कहलाती है। फिर माल की सुपुर्दगी एक के यहाँ से दूसरे के यहाँ न हो, बल्कि पहले से जिस व्यक्ति के यहाँ वह हो, वही उस माल को अमेनत में लेनेवाला व्यक्ति हो जाय। इसे कृत्रिम सुपुर्दगी (constructive delivery) कहते हैं।

**उदाहरण**—१. X अपनी गाय Y को दूध खाने के लिए देता है। यह ‘वास्तविक सुपुर्दगी’ है।

२. X, Y से उसकी गाय खरीद कर कहता है कि आप इसे आठ दिन और अपने

\*“Bailment is the delivery of goods by one person to another for some purpose, upon a contract that they shall, when the purpose is accomplished, be returned or otherwise disposed of according to the directions of the person delivering them. The person delivering the goods is called the ‘bailor’. The person to whom they are delivered is called the ‘bailee’.”

(Sec. 148)

पास रखे, मैं नवें दिन इसे ले जाऊँगा। Y गाय रख लेता है। यह 'कृत्रिम सुपुर्दगी' है।

**निक्षेप के पक्ष—**निक्षेप में दो पक्ष होते हैं—

(i) निक्षेपक (Bailor), और

(ii) निक्षेप-प्रापक (Bailee)।

माल की सुपुर्दगी करनेवाले को 'निक्षेपी' (bailor) कहते हैं तथा जिस व्यक्ति को माल सुपुर्द किया जाता है उसे निक्षेप-प्रापक (bailee) कहते हैं। ऊपर के उदाहरण में X निक्षेपी है और Y निक्षेप-प्रापक है।

**निक्षेप अनुबन्ध के लक्षण (Features or characteristics of Bailment)—**निक्षेप की परिभाषा के अनुसार इसके निम्नलिखित लक्षण कहे जाते हैं—

१. माल के अधिकार का हस्तान्तरण (Transfer of Possession)—निक्षेप अनुबन्ध होने के लिए माल के अधिकार का हस्तान्तरण होना जरूरी है जो कि वास्तविक या रचनात्मक सुपुर्दगी द्वारा हो सकता है। इसके बगैर माल की देखभाल या रखवाली निक्षेप नहीं हो सकती है। जैसे—अगर एक नौकर अपने मालिक के सामान की देखभाल करता है तब वह निक्षेप नहीं है।

२. अस्थायी उद्देश्य (Temporary Purpose)—माल के अधिकार का हस्तान्तरण सिर्फ थोड़े समय के लिए अस्थायी उद्देश्य से होना चाहिए। जैसे, वस्तु का हस्तान्तरण सिर्फ देखकर करने के लिए या कुछ समय तक इस्तेमाल करने के लिए होना चाहिए। इसमें 'स्वामित्व का हस्तान्तरण' नहीं होना चाहिए।

३. निर्दिष्ट वस्तु को वापस पाने का अधिकार (Right of Return of Goods in Specie)—माल का हस्तान्तरण इस शर्त के साथ होता है कि निर्दिष्ट माल को वापस कर दिया जायगा। बैंक के खाते में रुपया जमा करना निक्षेप नहीं है बल्कि अगर 'सुरक्षित रखने' के लिए बक्स में बन्द करके गहना या सिकका बैंक को दिया जाता है तब यह निक्षेप है।

**निक्षेप के भेद (Kinds of Bailment)**

निक्षेप के निम्नलिखित भेद हैं—

१. सुरक्षित रखने के लिए, या व्यवहार करने या भाड़े के लिए निक्षेप (Bailment for safe custody, Bailment for use) और

२. किसी प्रतिफल के लिए या निर्मूल (For reward or gratuitous)।

१. सुरक्षित रखने के लिए या व्यवहार करने या भाड़े के लिए निक्षेप—सुरक्षित रखने का निक्षेप तब होता है जब कि निक्षेपी निक्षेप-प्रापक को माल सिर्फ हिफाजत के लिए देता है। जैसे A अपना फोटोकैमरा B को छह महीने तक हिफाजत से रखने के लिए देता है। लेकिन व्यवहार की सुरक्षा या निक्षेप उसे कहते हैं, जिसमें निक्षेपी अपने माल को निक्षेप-प्रापक को किसी खास व्यवहार के लिए या साधारण तरीके से व्यवहार करने के लिए देता है और इसके लिए अगर वह भाड़ा लेता है तब यह भाड़े के लिए (for hire) किया गया निक्षेप होता है। जैसे—A अपना फोटोकैमरा B को छह महीने के लिए इसलिए देता है कि B इस कैमरा से 'फोटो खींच सके'।

२. किसी प्रतिफल के लिए या निर्मूल निक्षेप—फिर, अगर निक्षेप-प्रापक माल

की हिफाजत के लिए कुछ प्रतिफल चाहता है तब उसे प्रतिफल के लिए (for reward) किया गया निक्षेप कहते हैं। लेकिन, अगर वह बगैर कुछ लिये हुए या बिना प्रतिफल के हिफाजत करता है तब उसे निर्मूल (gratuitous) निक्षेप कहते हैं।

### निक्षेपी के कर्त्तव्य या उत्तरदायित्व (Duties or Responsibilities of the Bailor)

निक्षेपी के कर्त्तव्य या उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं—

१. माल-सम्बन्धी दोषों को बता देना (To disclose the faults in the goods bailed)—धारा १५० के अनुसार निक्षेप के लिए माल की सुपुर्दगी करते समय निक्षेपी का यह कर्त्तव्य होता है कि माल-सम्बन्धी दोषों को जो वह जानता हो, निक्षेप-प्रापक से कह दे या उनकी सूचना दे दे। यदि वह दोषों की सूचना निक्षेप-प्रापक को नहीं देता है और उससे पूर्ण रूप से वस्तु के उपयोग में विघ्न उपस्थित होता है अथवा असाधारण दायित्व वहन करना पड़ना है, तो निक्षेपी स्वयं ऐसी क्षति के लिए उत्तरदायी होगा जो निक्षेप-प्रापक को उठाना पड़ेगा।

उदाहरण—(क) X अपना घोड़ा जो दुष्ट प्रकृति का है, Y को सुपुर्द करता है। परन्तु घोड़े की दुष्टता के बारे में Y से कुछ नहीं कहता। घोड़ा Y को अपनी पीठ पर लेकर बहुत तेजी से भागा। घोड़े के भागने से Y गिर पड़ा और उसे काफी चोट आई। ऐसी हालत में Y की जो भी क्षति हुई उसके लिए X उत्तरदायी है।

(ख) A ने कुछ पटाखे, पाटाखा बनाने के सामान और मशाल एक बक्से में भरकर कानपुर के पार्सल क्लर्क (Parcel Clerk) को इलाहाबाद भेजने के लिए दिया। परन्तु उसने यह नहीं बताया कि बक्से में ब्या है। बिना किसी असाधारण सावधानी के स्टेशन का कुली बक्से को एक जगह से दूसरी जगह ले गया। फलस्वरूप बक्से के पटाखे फट गये और कुली को चोट आयी तथा आसपास की बहुत सी चीजों को नुकसान पहुँचा। इस नुकसान के लिए A उत्तरदायी है।

लेकिन जब निक्षेप भाड़े के लिए होता है, तो निक्षेपी का उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उसे जाने हुए दोषों के उत्तरदायित्व के अलावा ऐसे दोषों के लिए भी दायी होना होता है जिनकी जानकारी उसे स्वयं भी नहीं है।

उदाहरण—A, B की गाड़ी किराये पर लेता है। गाड़ी असुरक्षित है। लेकिन जानकारी B को नहीं है। A गाड़ी से गिर पड़ा और उसे चोट लग गयी। B इसके लिए दायी है।

अगर यह निक्षेप किराये (hire) का न किया गया होता, बल्कि निर्मूल (gratuitous) रहता, तो B दायी नहीं होता।

२. निक्षेप-प्रापक के द्वारा किये गये आवश्यक व्ययों का भुगतान करना (To repay all the necessary expenses incurred by bailee)—धारा १५८ के अनुसार जब निक्षेप-प्रापक को कोई वस्तु रखनी हो, उसे ले जाना हो या कोई कार्य करना हो, किन्तु उसे पारिश्रमिक (remuneration) नहीं मिलता हो, तो ऐसी स्थिति में निक्षेप-प्रापक द्वारा जो आवश्यक व्यय होगा उसका भुगतान निक्षेपी को करना पड़ेगा। किन्तु निक्षेप-प्रापक वैसे व्यय की माँग नहीं कर सकता जिससे स्वयं अपना लाभ हो।

उदाहरण—(i) X, Y के माल को अपनी मोटर के द्वारा निःशुल्क पहुँचाने

का प्रत्यक्ष करता है। किन्तु, माल को चढ़ाने तथा उतारने के लिए कुलियों को पारिश्रमिक देना पड़ता है। यहाँ पर Y को यह पारिश्रमिक दे देना चाहिए।

(ii) A अपना घोड़ा B के अस्तबल में रखता है और B इसके लिए बिना पारिश्रमिक लिये तैयार हो जाता है। परन्तु घोड़े को खिलाना होगा तथा उसकी देखभाल करनी होगी। ऐसी हालत में A, B को ऐसे सब खर्च चुकाने के लिए बाध्य है जो कि B द्वारा घोड़े के रखने में हुआ है, यद्यपि B अपने लिए कोई पारिश्रमिक नहीं लेता है।

३. निक्षेप-प्रापक की क्षति को बर्दाश्त करना (To bear the losses sustained by the bailee)—धारा १६४ के अनुसार यदि निक्षेप-प्रापक को निम्नलिखित कारणों में से किसी एक या अधिक कारणों से क्षति पहुँचती है तो निक्षेपी को वह क्षति स्वयं उठानी पड़ेगी।

(i) सुपुर्दगी का अधिकार न होने पर भी निक्षेपी जब निक्षेप के लिए सुपुर्दगी करे; जैसे—A ने C को, जो नीलाम करनेवाला व्यक्ति है, एक मोटर नीलाम करने के लिए दिया जो वास्तव में B की है। C ने यह समझकर कि यह A की है, मोटर को बेच दिया। B ने C पर अनधिकृत विक्री (unauthorised sale) के लिए मुकदमा किया। यहाँ पर A, C के सभी तरह के नुकसान, जो कचहरी आदेश करे, अवश्य करे।

(ii) जब निक्षेप दी गयी वस्तु को वापस लेने का अधिकारी निक्षेपी स्वयं न हो और उसने उसे वापस लिया हो।

(iii) जब निक्षेप पर दी गयी वस्तु को किसी अन्य व्यक्ति को दे देने का हुक्म देने का निक्षेपी को अधिकार न हो और निक्षेपी ने इस प्रकार का हुक्म दे दिया हो।

## निक्षेपी के अधिकार (Rights of Bailor)

भारतीय प्रसविदा सन्निधय के अनुसार निक्षेपी के निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं—

१. माल को वापस पाने का अधिकार (Right to take return of the goods)—निक्षेपी का यह अधिकार है कि वह निक्षेप-प्रापक से निक्षेप का माल उस समय के समाप्त होने पर जिसके लिए निक्षेप किया गया है अथवा उद्देश्य की पूर्ति पर वापस ले ले अथवा उसके आदेशानुसार निक्षेप-प्रापक किसी और व्यक्ति को दे दे। (धारा १५९)

२. माल को उसमें होनेवाली वृद्धि अथवा लाभ-सहित पाना (Right to take increase or benefit earned out of the goods)—अगर किसी विपरीत मतलब का अनुबन्ध नहीं है तब निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निक्षेप-प्रापक से माल में होनेवाले प्रत्येक लाभ या वृद्धि को ले ले। [धारा १६३]

उदाहरण—A अपनी गाय को B के पास देखभाल के लिए छोड़ देता है। कुछ समय के बाद गाय को एक बछड़ा पैदा हो जाता है। यहाँ A को यह अधिकार है कि वह B से गाय और बछड़ा दोनों को ही वापस ले ले।

३. निक्षेप-अनुबन्ध को समाप्त करने का अधिकार (Right of terminating the contract of bailment)—अगर निक्षेप-प्रापक निक्षेपी की शर्तों के अनुसार काम नहीं करता है तब निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निक्षेप-अनुबन्ध

समाप्त कर दे। [धारा १५३]

**उदाहरण**—A, B को एक घोड़ा उसकी निजी सवारी के लिए किराये पर देता है। B घोड़े को अपनी गाड़ी में चलाता है। ऐसी हालत में A की इच्छा पर अनुबन्ध समाप्त किया जा सकता है।

४. **क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार (Right to be indemnified)**—अगर निक्षेप-प्रापक निक्षेप-अनुबन्ध के खिलाफ कोई काम करता है और उसके द्वारा उपयोग में अथवा उपयोग के समय माल को कोई हानि पहुँचती है, तब निक्षेपी को यह अधिकार होगा कि वह निक्षेप-प्रापक से ऐसी हानि की पूर्ति करा ले। [धारा १५४]

**उदाहरण**—A, B को सिर्फ उसी की सवारी के लिए घोड़ा किराये पर देता है। B, John को जो उसके परिवार का सदस्य है, घोड़े पर चढ़ने की आज्ञा दे देता है। John घोड़े पर सावधानी से सवार होता है लेकिन अकस्मात् घोड़ा गिर कर घायल हो जाता है। ऐसी हालत में A को क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार होगा।

५. **खर्च पाने का अधिकार (Right to claim for expenses incurred)**—अगर निक्षेप-प्रापक निक्षेपी की सहमति से उसके माल को अपने निजी माल के साथ मिला देता है, तो इस प्रकार की मिलावट में निक्षेपी का अधिकार उसके अंश के अनुसार होगा। अगर निक्षेप-प्रापक निक्षेपी की सहमति के बिना उसके माल को अपने निजी माल के साथ मिला देता है तो यदि माल अलग-अलग किया जा सकता है तो दोनों पक्षकार अपने-अपने माल के अधिकारी रहेंगे, परन्तु निक्षेपी को निक्षेप-प्रापक की मिलावट से होनेवाली किसी क्षति को प्राप्त करने का अधिकार होगा। अगर माल अलग-अलग करना, उसको वापस लौटाना असम्भव है, तो निक्षेपी निक्षेप-प्रापक से कुल माल की हानि-पूर्ति के लिए अधिकारी है। [धारा १५५-१५७]

६. **उचित देखभाल के अभाव में हुए नुकसान (Right to claim for improper care)**—अगर निक्षेप-प्रापक निक्षेपित माल की उचित देखभाल नहीं करता है तब निक्षेपी, निक्षेप-प्रापक से ऐसी क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है जो ऐसी देखभाल के अभाव के कारण हुई है। [धारा १५२]

७. निश्चित समय बीत जाने पर, अथवा उद्देश्य पूरा हो जाने पर निक्षेपी निक्षेपित माल को बिना माँगे ही वापस पाने का अधिकार रखता है। [धारा १६०]

**निक्षेप-प्रापक के कर्तव्य या उत्तरदायित्व (Duties or Responsibilities of Bailee)**—भारतीय प्रसंगिक सन्निधिम के अनुसार निक्षेप प्रापक के निम्नलिखित कर्तव्य या उत्तरदायित्व हैं—

१. **वस्तु की साधारण तरीके से देखभाल करना (To take care of the goods bailed)**—धारा १५१ में यह दिया हुआ है कि वस्तु की देखरेख निक्षेप-प्रापक को उतनी ही दूर तक करनी पड़ती है या करनी चाहिए जितनी देखरेख या निगरानी एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति वैसी ही परिस्थितियों में उस परिमाण, गुण और मूल्य के अनुसार अपनी वस्तु की देखभाल करता। **गीबन बनाम ग्रेट्यूटियस बायल\*** के मुकदमे के अनुसार प्रतिफल न पानेवाला निक्षेप-प्रापक (gratuitous bailee) भी निक्षेप की गयी वस्तु की उतनी ही देखभाल करने के लिए दायी है जितना प्रतिफल (reward) पानेवाला निक्षेपग्रहीता का उत्तरदायित्व होता है। अगर निक्षेपग्रहीता ने साधारण तरीके से वस्तु की देखभाल की है तो बिना विशिष्ट प्रसंगिक (special contract) के किसी प्रकार की क्षति, विनाश या ह्रास

के लिए वह उत्तरदायी न होगा। किन्तु यदि कोई निक्षेपग्रहीता किसी विशिष्ट प्रमविदा के द्वारा वस्तु की क्षति, आकस्मिक घटना, चोरी अथवा दैवी प्रकोप (Act of God), जैसे आग या तूफान से होनेवाली क्षति होने पर पूर्ति करने का वादा करे तो वह क्षति होने पर उत्तरदायी होगा, अन्यथा नहीं। लेकिन सबसे बड़ा जटिल प्रश्न यह उठता है कि साधारण बुद्धि (ordinary prudence) से देखभाल की है या नहीं या देखभाल किस अंश तक होना यथोचित है, उसकी सीमा का निर्धारण न्यायालय भिन्न-भिन्न दिशाओं में उसकी स्थिति को समझ कर, उसकी रीति या रिवाज का अध्ययन कर निश्चित करता है।

**उदाहरण—**(क) X ने सीमेंट के कुछ बोरे Y को रखने के लिए दिये। Y ने उन्हें अपने गोदाम में रख दिया। Y यह जानता था कि गोदाम की छत में दरार है और फिर भी उसने उसकी मरम्मत नहीं करायी। एक दिन वर्षा हुई और सीमेंट का बोरा पानी टपकने से भीग कर पत्थर हो गया। ऐसी दशा में Y उत्तरदायी होगा, क्योंकि उसने साधारण बुद्धि से काम नहीं लिया और छत की मरम्मत समय पर नहीं करायी।

(ख) ऊपर के उदाहरण में हम मान लें कि Y ने उस छत की मरम्मत समय पर करायी थी, परन्तु पानी के साथ तेज तूफान आने से छत का एक हिस्सा टूट गया जिसके फलस्वरूप यदि X का सीमेंट पत्थर हो गया तो इसके लिए Y उत्तरदायी नहीं होगा।

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक नहीं होगा कि निक्षेप-प्रापक केवल अपनी असावधानी की ही नहीं, बल्कि वह अपने नौकरों की असावधानी से हुई हानि का भी दायी है। यदि निक्षेप-प्रापक यह साबित कर देता है कि उचित और आवश्यक (reasonable) सावधानी के बाद भी हानि को किसी प्रकार से रोका नहीं जा सकता था, तो वह इस प्रकार की हानि के लिए दायी नहीं होगा। **रामपाल सिंह बनाम मूर एण्ड कम्पनी \*** के मुकदमे का निर्णय इसकी पुष्टि के लिए उदाहरण के रूप में दिया जा सकता है।

**२. निक्षेप की शर्तों के विरुद्ध या असंगत कोई काम नहीं करना** (Not to do any act inconsistent with the condition of the bailment)—धारा १५३ के अनुसार यदि निक्षेप में दी गयी शर्तों का पालन निक्षेप-प्रापक नहीं करता है तो निक्षेप को यह अधिकार है कि वह चाहे तो अपनी इच्छा पर प्रमविदा समाप्त कर सकता है और माल को वापस ले सकता है।

**उदाहरण—**X ने Y को अपना घोड़ा सिर्फ उसी के चढ़ने के लिए दिया। Y ने उस घोड़े को गाड़ी में जोत दिया। इस हालत में X यदि चाहे तो निक्षेप को रद्द कर सकता है।

**३. दिये गये अधिकार के अतिरिक्त निक्षिप्त वस्तु का व्यवहार न करना** (Not to make any unauthorised use of the goods bailed)—धारा १५४ के अनुसार अगर निक्षेप-प्रापक को निक्षिप्त वस्तु जिस व्यवहार के लिए दी गयी है उसका अनधिकृत (unauthorised) उपयोग या व्यवहार करता है, तो ऐसी क्षति की पूर्ति करने का उत्तरदायित्व निक्षेप-प्रापक के ऊपर है।

**उदाहरण—**(क) X अपना घोड़ा Y को निजी सवारी के लिए देता है।

\* Ram Pal Singh vs. Murrey and Co. 22 All. 164.



Y ने वह घोड़ा Z को चढ़ने के लिए दिया। Z ने सावधानी के साथ सवारी की, फिर भी घोड़ा अकस्मात् गिर पड़ा और उसका एक पैर टूट गया। ऐसी दशा में घोड़े की टाँग टूटने से जो क्षति हुई उसकी पूर्ति Y को करनी पड़ेगी।

(ख) X कलकत्ता में Y से पटना जाने के लिए एक घोड़ा भाड़े पर लेता है। X बहुत सावधानी के साथ सवारी करता है किन्तु पटने के बदले घोड़ा कटक चला जाता है और अकस्मात् वह इस प्रकार गिर जाता है कि उसे काफी चोट पहुँचती है। यहाँ X, Y के घोड़े की चोट की क्षतिपूर्ति का दायी है।

८. निक्षेपित वस्तु को अपने माल के साथ सम्मिलित नहीं करना (Not to mix goods bailed with his own goods)—धारा १५५ के अनुसार निक्षेप-प्रापक को निक्षेप की गयी वस्तु को अपनी वस्तु के साथ मिलाने का अधिकार नहीं है और न यह अधिकार उसे मिलना ही चाहिए। किन्तु यदि निक्षेपी के ऐसा करने की इजाजत दे देने पर निक्षेप-प्रापक ऐसा करता है तब निक्षेपी तथा निक्षेप-प्रापक मिश्रित वस्तुओं के मालिक अपने-अपने हिस्से के अनुसार होंगे।

उदाहरण—A बीस सेर आटा B को निक्षेप करता है। A, B की सहमति से अपना निजी दस सेर आटा A के आटे में मिला देता है। पूर्ण मिलावट में A का भाग दो-तिहाई है और B का भाग एक-तिहाई।

धारा १५६ के अनुसार यदि निक्षेप-प्रापक निक्षेपी की स्वीकृति के बिना ही अपनी वस्तु निक्षेप की गयी वस्तु से मिला देता है, तो ऊपर की धारा के अनुसार दोनों व्यक्ति अपने अपने हिस्से के मालिक हैं, किन्तु वस्तुओं को अलग-अलग करने में जो खर्च होगा या मिलने से जो क्षति होगी उसके लिए निक्षेप-प्रापक ही उत्तरदायी होगा।

उदाहरण—X एक खास तरह की १०० गाँठ कपास Y को निक्षेप के रूप में देता है। Y बिना X की इजाजत के उक्त १०० गाँठों को अपनी विभिन्न प्रकार की गाँठों के साथ मिला देता है। X को यह अधिकार है कि वह अपनी गाँठों को अलग करवाकर वापस ले ले तथा ऐसा करने में जो खर्च होगा वह Y को सहना पड़ेगा।

फिर धारा १५७ के अनुसार यदि निक्षेप-प्रापक निक्षेपी की बिना स्वीकृति के उसके माल को अपने माल के साथ मिला देता है जिससे कि माल को किसी दूसरे माल से अलग करना सम्भव नहीं होता तो निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निक्षेप की गयी वस्तु की क्षति की पूर्ति निक्षेप-प्रापक से करा ले।

उदाहरण—X एक बोरा आटा, जिसकी कीमत ४५ रु० है, Y को निक्षेप में देता है। Y, X के आटे को अपने यहाँ के एक बोरा आटे में, जिसकी कीमत ३० रु० है, बिना X की इजाजत के मिला देता है। ऐसी दशा में X का आटा अलग करके वापस नहीं किया जा सकता। इसलिए X को जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति Y को करनी पड़ेगी।

५. वस्तु वापस कर देना (To return the goods)—धारा १६० के अनुसार निक्षेप-प्रापक का यह कर्तव्य है कि निक्षेप की गयी वस्तु की अवधि समाप्त हो जाने पर या जिस प्रयोजन के लिए वस्तु दी गयी थी उसके पूरा हो जाने पर निक्षेपी के आदेशानुसार वस्तु वापस कर दे। धारा १६१ के अनुसार यदि ऐसा वह नहीं करता है, तो वस्तु की होनेवाली क्षति के लिए वह उत्तरदायी होगा। फिर धारा १६६ के अनुसार अगर निक्षेपी निक्षेप की गयी वस्तु का वास्तविक मालिक न हो, किन्तु निक्षेप-प्रापक भलमनसाहत के साथ और विश्वास पर (good faith) वह वस्तु

निक्षेपी को वापस कर देता है तो ऐसी हालत में वह वस्तु के वास्तविक मालिक के प्रति दायी नहीं होगा। धारा १६७ के अनुसार वस्तु के स्वामी को चाहिए कि वह न्यायालय में दरखास्त देकर निक्षेपी के प्रति माल की सुपुर्दगी रक्वाने तथा माल के वास्तविक अधिकारी के निर्णय की प्रार्थना करे।

६. निक्षिप्त वस्तु से हुई वृद्धि या लाभ को वापस करते समय लौटा देना (To return any increase or profit)—धारा १६३ के अनुसार निक्षेप-प्रापक का यह कर्त्तव्य होता है कि अगर निक्षिप्त वस्तु में किसी प्रकार की वृद्धि या लाभ होता है तब जिस समय वह उस वस्तु को निक्षेपी के आदेशानुसार वापस कर रहा है उस समय उस वस्तु से होनेवाली वृद्धि या लाभ को वापस कर दे।

उदाहरण—X अपनी गाय Y को निक्षेप के रूप में देता है। कुछ दिनों के बाद गाय एक बछड़ा देती है। X को गाय के साथ बछड़ा भी वापस दे देना पड़ेगा।

७. द्षित अधिकार न कायम करना (Not to set up adverse title)—यदि निक्षेप-प्रापक निक्षिप्त वस्तु को निक्षेपी को न देकर किसी दूसरे व्यक्ति को देता है तब इण्डियन एवीडेंस ऐक्ट (Indian Evidence Act) की धारा ११७ के मुताबिक उसे ही यह साबित करना पड़ेगा कि वह दूसरा व्यक्ति उस समय उस माल का मालिक था। इसलिए निक्षेप-प्रापक कोई ऐसा काम साधारण तरीके से न करे जिससे निक्षेपी के अधिकार में बाधा पड़े। और, उसे निक्षेप के अधिकार को स्वीकार नहीं करना पड़े और न अपना या किसी दूसरे व्यक्ति का अधिकार निक्षेपी के अधिकार के विपरीत निक्षिप्त माल के लिए लागू करना पड़े।

निक्षेप-प्रापक के अधिकार (Rights of a Bailee)

निक्षेप-प्रापक के निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं—

१. आवश्यक व्ययों के भुगतान पाने का अधिकार (Right to receive necessary expenses)— धारा १५८ के अन्दर निक्षेप-प्रापक को यह अधिकार है कि वह निक्षेपी से निक्षेप के सम्बन्ध में किये गये आवश्यक व्ययों का भुगतान पाये।

२. निक्षेपी द्वारा निश्चित समय से पहले ही खंडन करने पर निक्षेप-प्रापक को हुई हानि की पूर्ति कराने का अधिकार (Right to compensation for revoking the bailment before its due date)— धारा १५८ के अन्दर अगर निक्षेपी किसी माल को निक्षेप-प्रापक के पास बिना मूल्य के रख देता है, तब उनको अधिकार है कि वह ऐसी निक्षेपित वस्तु को किसी भी समय माँग ले, भले ही उसने वस्तु एक निश्चित समय अथवा एक निश्चित उद्देश्य के लिए दी हो। लेकिन अगर निक्षेप-प्रापक यह समझकर कि वस्तु तो उसके पास एक निश्चित अवधि या एक निश्चित उद्देश्य के लिए है ही, उस पर कोई ऐसा काम शुरू कर देता है, जिससे अगर वस्तु निश्चित समय अथवा उद्देश्य पूरा होने के पहले ही ले ली जाये, तब उसे प्राप्त लाभ से अधिक हानि उठानी पड़ेगी और अगर निक्षेपी ऐसी परिस्थितियों के अन्दर अपनी वस्तु वापस करने के लिए निक्षेप-प्रापक को मजबूर करता है, तब निक्षेप-प्रापक का यह अधिकार होगा कि वह उस राशि की क्षतिपूर्ति करा ले, जो कि लाभ से ज्यादा हुई हो। धारा १६२ के अनुसार, अगर निक्षेपी अथवा निक्षेप-प्रापक में से किसी एक की भी मृत्यु हो जाये तब निश्चित निक्षेप समाप्त हो जाता है।

३. निक्षेपी के वास्तविक स्वामी न होने पर निक्षेप-प्रापक को हुई हानि की पूर्ति कराने का अधिकार (Right to claim for the loss incurred in the absence of the real owner)—धारा १६४ के अनुसार, निक्षेप-प्रापक को निक्षेपी से उस हानि को भी पूरा कराने का अधिकार है, जो उसे इस कारण हुई हो कि निक्षेपी को उन वस्तुओं को निक्षेप करने का कोई अधिकार ही न था अथवा उनको वापस लेने या उनके सम्बन्ध में कोई आदेश देने का अधिकार नहीं था।

४. किसी भी सह-निक्षेपी के निर्देशानुसार माल वापस कर देने का अधिकार (To return the goods)—धारा १६५ के अनुसार, जब एक वस्तु के एक से ज्यादा निक्षेपी हों तब निक्षेप-प्रापक को यह अधिकार है कि वह किसी भी एक निक्षेपी को अथवा किसी भी एक निक्षेपी के आदेशानुसार किसी एक सह-निक्षेपी को निक्षेपित वस्तु वापस करे।

५. तीसरे पक्ष द्वारा निक्षेपित माल के प्रति किये गये गलत काम का दावा (Claim and compensation against wrong doers)—धारा १८० के अनुसार, अगर कोई अन्य व्यक्ति जबरदस्ती निक्षेप किये गये माल को निक्षेप-प्रापक से छीनता है या उसे कोई हानि पहुँचाता है तब निक्षेप-प्रापक ऐसे उपाय प्रयोग में ला सकता है, जो कि माल का स्वामी समान परिस्थितियों में प्रयोग में लाता। निक्षेपी अथवा निक्षेप-प्रापक ऐसी हानि या खर्च के लिए उस अन्य व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा भी चला सकता है।

फिर धारा १८१ के अनुसार, इस तरह के होनेवाले मुकदमों से जो कुछ भी सहायता या क्षतिपूर्ति के रूप में रकम मिलेगी, उसका बँटवारा निक्षेपी तथा निक्षेप-प्रापक के बीच उनके हितों के अनुसार किया जायगा।

६. माल को रोक रखने का अधिकार (Right of Lien)—धारा १७० के अनुसार, अगर निक्षेप-प्रापक ने उसको सौंपे हुए माल की कोई ऐसी देखरेख की हो, जिसमें विशेष परिश्रम या चतुराई की आवश्यकता पड़ी हो, तब वह उस समय तक माल को रोक कर रखता है, जब तक कि उसे देखरेख के लिए उचित पारिश्रमिक न मिल जाय। दूसरे शब्दों में, निक्षेप-प्रापक का यह विशेषाधिकार उसी दशा में होगा जब कि—

(i) निक्षेप-प्रापक ने कोई ऐसी देखरेख की हो जिसमें विशेष परिश्रम या चतुराई की आवश्यकता पड़ी हो;

(ii) देखरेख निक्षेप के आदेशानुसार की गयी हो;

(iii) देखरेख निक्षेप किये गये माल के सम्बन्ध में हो और

(iv) कोई विपरीत अनुबन्ध नहीं हो।

उदाहरण—A किसी दर्जी को कोट बनाने के लिए देता है। दर्जी A को यह वचन देता है कि वह कोट को पूरा होते ही हवाले कर देगा। दर्जी को कोट तब तक अपने पास रोकने का अधिकार है, जब तक उसका पारिश्रमिक न मिल जाय।

७. निक्षेप प्रापक निक्षेपी से ऐसी हानि प्राप्त करने का अधिकार रखता है जो निक्षेप-प्रापक को निक्षेपी के द्वारा निक्षेप किये गये माल के दोषों को प्रकट न करने के कारण हुई है। [धारा १५०]

### निक्षेप की समाप्ति (Termination of Bailment)

निक्षेप की समाप्ति निम्नलिखित स्थितियों में हो जाती है—

१ जिस उद्देश्य या प्रयोजन के लिए निक्षेप किया गया हो उसके पूरा हो  
वा० वि० त०-१०

जाने पर; जैसे—X, Y को अपना घोड़ा बारांत में ले जाने के लिए देता है। इस उदाहरण में Y की बारांत जब वापस आयगी तब निक्षेप की समाप्ति हो जायगी और Y को घोड़ा वापस कर देना होगा। [धारा १६० के प्रभाव से]

२. जितने समय के लिए निक्षेप किया गया उतना समय बीत जाने पर; उदाहरणार्थ—X अपनी मोटर Y को तीन दिनों के लिए देता है। अतः तीन दिन के बाद निक्षेप की समाप्ति हो जायगी। [धारा १५९ के प्रभाव से]

३. जिस कार्य के लिए वस्तु का निक्षेप किया गया है उस कार्य या उसकी शक्तों के विरुद्ध वस्तु का व्यवहार करने पर। [धारा १५९]

४. निक्षेपी और निक्षेप-प्रापक में से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर निर्मूल्य (gratuitous bailment) की समाप्ति हो जाती है।

५. अगर निक्षेप-प्रापक अपने पास के निक्षिप्त माल का अनधिकृत उपयोग करता है तब अगर निक्षेपी चाहे तो निक्षेप की समाप्ति कर सकता है। [धारा १५३ के प्रभाव से]

६. अगर निक्षेप निर्मूल्य (gratuitous) रहे तो अवधि या समय तथा कार्य या प्रयोजन के पूरा होने के पहले ही निक्षेपी चाहे तो प्रसविदा को समाप्त कर दे सकता है।

**खोयी हुई वस्तु के पाने के अधिकार और कर्तव्य (Rights and duties of finder of lost goods)**

धारा ७१ के अनुसार अगर कोई व्यक्ति किसी की खोयी हुई चीज पाता है तब उसे चाहिए कि वह उस चीज के उचित अधिकारी की खोज करके उसे वापस कर दे और जब तक कि उसे वह व्यक्ति नहीं मिलता है और वह उस माल को अपने पास रखता है तब तक उसकी स्थिति ठीक एक निक्षेप-प्रापक के समान हो जाती है और उसके लिए निक्षेप-प्रापक के कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का पालन आवश्यक हो जाता है। उसके अधिकार निम्नलिखित हैं—

१. **इनाम पाने का अधिकार (Right of Reward)**—धारा १६८ के अनुसार, अगर किसी खोयी हुई वस्तु का मालिक यह विज्ञापित या घोषित करता है कि जो व्यक्ति मेरी यह चीज खोजकर ला देगा उसे अमुक वस्तु या अमुक रकम इनाम में दी जायगी, तो माल पानेवाले को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि माल पाकर उसके मालिक को वापस कर देने पर अगर मालिक घोषित पुरस्कार की रकम देने से इनकार करे तो वह मुकदमा करके इनाम की रकम वसूल करे। किन्तु इनाम की घोषणा खोयी हुई वस्तु पानेवाले को वह वस्तु पाने के पहले से ही मालूम हो। जैसा कि हम लोग लालमन शुक्ल बनाम गौरी दत्त (१९३०) के मुकदमे में देख चुके हैं, इनाम की घोषणा, खोई हुई चीज पानेवाले को वह पाने के पहले ही मालूम होनी चाहिए।

२. **प्राप्त माल को रोकने का अधिकार (Right of Lien)**—धारा १६८ के अनुसार, अगर खोये हुए माल के मालिक ने माल पानेवाले को किसी प्रकार का इनाम न देने की घोषणा की हो और कोई व्यक्ति माल को खोजता हो तथा खोजने के समय या माल को सुरक्षित रखने या असली मालिक के पता लगाने में उसने कुछ खर्च किया हो तब इस प्रकार के खर्चों को वह कानूनी कार्रवाई करके वसूल नहीं कर सकता, बल्कि माल पानेवाले को यह अधिकार है कि वह पाये हुए माल को

अपने यहाँ तब तक रोक रखे जब तक कि खर्च किया हुआ पैसा वापस न मिल जाय ।

चूँकि माल पानेवाला व्यक्ति जो कुछ भी खर्च करता है वह अपने मन से करता है, इसलिए अंगरेजी विधान (English Law) के अनुसार उसे निक्षेपी से कुछ नहीं मिलेगा और न वह सामान ही रोक सकता है । अगर निक्षेपी कुछ देता है तो अपनी मर्जी से । परन्तु भारतीय विधान (Indian Law) के अनुसार मुनासिब खर्चों की पूर्ति निक्षेपी करेगा ।

माल रोकने के अधिकार दो प्रकार के होते हैं—

(i) विशिष्ट (Particular Lien) और

(ii) व्यापक (General Lien) ।

धारा १७० के अनुसार विशिष्ट अधिकार वह है जिसमें पानेवाले को निश्चित वस्तु के प्रति किये गये खर्च या श्रम की पूर्ति करने का अधिकार सिर्फ उसी माल पर प्राप्त रहता है । जैसे, X एक हीरे (diamond) का टुकड़ा किसी सुनार को चमकाने के लिए देता है । सुनार उसे चमका देता है । यहाँ सुनार को यह अधिकार होगा कि वह हीरा अपने पास तब तक रोक रखे जब तक X से उसका पारिश्रमिक (remuneration) न मिल जाय ।

फिर धारा १७१ के अनुसार व्यापक अधिकार के अनुसार निक्षेप-प्रापक को निश्चित वस्तु के सम्बन्ध में हुए खर्च या श्रम की पूर्ति (compensation) कराने का अधिकार निक्षेपी की दूसरी चीजों पर भी रहता है । इसका मतलब यह है कि अगर निक्षेप-प्रापक के पास निक्षेपी का और माल है तब निक्षिप्त माल पर किये गये खर्चों के लिए वह उन दूसरी वस्तुओं को तब तक रोके रख सकता है जब तक कि उसका किया हुआ खर्च पूरा-का-पूरा न मिल जाय । व्यापक खर्चों को वसूलने का अधिकार सभी लोगों को नहीं है, बल्कि सिर्फ बैंकर (Banker), फैक्टर (Factor), वार्फिंगर (Wharfinger), हाईकोर्ट के एटर्नी (Attorney of High Court) तथा बीमापत्र के दलाल (Policy-Broker) को ही प्राप्त है क्योंकि ये लोग निक्षेप की गयी वस्तु को अपने अधिकार में रखते हैं ।

**उदाहरण—**अगर कोई व्यक्ति किसी बैंकर से जमा की हुई रकम से ज्यादा रुपया (overdraft) लेता है और बैंकर के पास उसकी और चीजें हैं—जैसे गहना या विनिमय-पत्र या दूसरी प्रतिभूतियाँ (securities) तब जमा से ज्यादा लिये रुपये को समय पर वापस नहीं करने पर बैंकर को यह अधिकार है कि वह तब तक इन चीजों को न दे जब तक कि उसे पूरी रकम वापस न मिल जाय ।

**व्यापक और विशिष्ट अधिकार में अन्तर (Difference between General lien and Particular lien)**

दोनों में अन्तर इस प्रकार है—

(क) व्यापक अधिकार सभी को नहीं प्राप्त है, बल्कि सिर्फ विशेष व्यक्तियों को ही प्राप्त है । लेकिन विशिष्ट अधिकार सभी निक्षेप-प्रापकों को प्राप्त है ।

(ख) व्यापक अधिकार निक्षेप-प्रापक के पास रहनेवाली सभी वस्तुओं पर प्राप्त होता है, पर विशिष्ट अधिकार सिर्फ वस्तु-विशेष पर ही होता है और वह भी जिन पर कुछ श्रम-व्यय किया गया हो ।

**३. विक्रय का अधिकार (Right to Sell)—**अगर माल पानेवाले व्यक्ति को

बहुत खोज-खबर के बाद भी मालिक का पता नहीं लगता है या उचित पारिश्रमिक माँगने के बाद भी नहीं दिया जाता है तब पानेवाला पाये माल को बेच दे सकता है। अगर (क) उसे यह आशंका है कि पाये हुए माल को बेच नहीं दिया जाय तो वह नष्ट हो जायगा या उसकी कीमत का ह्रास हो जायगा।

(ख) पानेवाला व्यक्ति वस्तु की रक्षा के सम्बन्ध में उसके मूल्य का दो-तिहाई भाग तक खर्च कर चुका हो। [धारा १६९]

### पानेवाले व्यक्ति के कर्तव्य (Duties of a finder)

धारा ७१ के अनुसार कोई खोयी हुई वस्तु पानेवाले व्यक्ति के निम्नलिखित कर्तव्य हो जाते हैं—

१. उसे चाहिए कि खोये हुए माल के वास्तविक मालिक का पता लगाने की अच्छी तरह कोशिश करे।

२. पाये हुए माल को अपना माल समझकर साधारण तरीके से उसकी देख-भाल करनी चाहिए। अगर वस्तु की हिफाजत में कुछ खर्च पड़ रहा हो तब वह खर्च करने में उसे हिचकिचाना नहीं चाहिए। अगर उसे कोई बीमारी हो तब उसके लिए दवा-दारू का प्रबन्ध भी करना चाहिए।

३. पायी हुई वस्तु को अपनी वस्तु से नहीं मिलाना चाहिए।

४. खोई हुई वस्तु के मालिक का पता लग जाने पर उससे खर्च की हुई रकम लेकर माल वापस कर देना चाहिए।

५. अगर माल को रखने में उससे किसी प्रकार का लाभ या वृद्धि होती है तो मालिक का पता लग जाने पर उसे लाभ और वृद्धि सब वापस कर देना चाहिए।

**उदाहरण—**X ने Y की भूली हुई गाय पायी और अपने यहाँ रख ली। अगर गाय से एक बछड़ा (calf) जन्मा है तो गाय को वापस करने के साथ-साथ बछड़े को भी वापस कर देना चाहिए। [धारा १६३]

**निक्षेप-प्रापक तथा निक्षेपी का तीसरे व्यक्तियों के विरुद्ध अधिकार (Right of Bailee and Bailor against Third Parties)**—धारा १८० के अनुसार, अगर कोई तीसरा व्यक्ति दोषपूर्ण रूप से निक्षेप-प्रापक को निक्षेपित माल के उपयोग अथवा अधिकार से वंचित करता है, अथवा कोई हानि पहुँचाता है तो निक्षेप-प्रापक ऐसे उपचार प्रयोग में ला सकता है जो कि माल का स्वामी समान परिस्थितियों में उस दशा में प्रयोग में लाता जब कि निक्षेप न होता; और निक्षेपी अथवा निक्षेप-प्रापक कोई भी ऐसे तीसरे व्यक्ति के विरुद्ध इस प्रकार वंचित करने अथवा हानि पहुँचाने के लिए मुकदमा कर सकता है।

फिर धारा १८१ के अनुसार इस तरह मुकदमे में क्षतिपूर्ति के रूप में जो कुछ भी मिले, निक्षेपी तथा निक्षेप-प्रापक के बीच उनके हितों के अनुसार बाँटा जायगा।

**रेलवे कम्पनी निक्षेप-प्रापक की स्थिति में (A Railway Company as a Bailee)**—भारतीय प्रसंविदा-विधान के अनुसार भारतवर्ष की रेलवे कम्पनियाँ सार्वजनिक वाहिका (common carrier) के रूप में नहीं हैं, बल्कि वे निक्षेप-प्रापक का स्थान ग्रहण करती हैं और इनका कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व ठीक उसी के समान, जो धारा १५१, १५२ और १६१ में दिया गया है, हो जाता है। परन्तु रेलवे कम्पनियाँ इस धारा द्वारा निर्दिष्ट नहीं होतीं, बल्कि उनका कानून अलग है जिसे रेलवे विधान (Railway Act) कहा जाता है और उसकी धारा ७२ में वही

बातें पायी जाती हैं जो भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा १५१, १५२, १६१ में पायी जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि रेलवे कम्पनी सुपुर्दे किये गये माल की उतनी देखभाल करे जितनी कि एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति वैसी ही परिस्थिति में तथा उसी मात्रा, गुण व कीमत की अपनी चीज की देखभाल करेगा। इंग्लैण्ड के रेलवे विधान को देखने से यह पता चलता है कि वहाँ की रेलवे कम्पनियाँ, जहाँ तक माल ढोने का सम्बन्ध है, सार्वजनिक वाहिका (common carrier) हैं और उनका उत्तरदायित्व किसी एक निक्षेपी से भी ज्यादा रहता है। फिर भी वे अपने दायित्व को, अगर चाहें तो, रेलवे एण्ड केनल ट्रैफिक ऐक्ट, १८५४ और १८८८ तथा रेगुलेशन ऑफ रेलवे ऐक्ट के उपबन्ध (provision) के अधीन किसी विशिष्ट प्रसंविदा द्वारा सीमित कर सकती हैं।\*

भारत में भी रेलवे कम्पनियों ने अपने उत्तरदायित्व को कम करने के लिए एक रिस्क नोट फॉर्म (Risk Note Form) चलाया है जिसका अनुमोदन (approval) केन्द्रीय सरकार द्वारा कराया गया होता है। इसे माल के स्वामी से हस्ताक्षरित (signed) होना चाहिए। जोखिम-पत्र दो प्रकार के होते हैं—(१) स्वामी के द्वारा जोखिम-पत्र (Owner's Risk Note) और (२) कम्पनी के द्वारा जोखिम-पत्र (Company's Risk Note)। स्वामी द्वारा जोखिम-पत्र (Owner's Risk Note) में जो माल का मालिक का है वह जोखिम-पत्र पर अपना दस्तखत करके अपनी जोखिम पर माल भेजता है और रेलवे कम्पनी तथा उसके कर्मचारियों को मार्ग (transit) में होनेवाले खतरे के दायित्व से मुक्त कर देता है और इसके बदले में रेलवे कम्पनी भाड़े में बहुत कमी कर देती है। इससे यही समझना चाहिए कि अगर रेलवे कम्पनी या उसके कर्मचारी जानबूझ कर गलती (wilful neglect) करें जिनकी वजह से माल की क्षति हो, तो रेलवे कम्पनी इस क्षति के लिए दायी नहीं होगी बल्कि उसे सम्पूर्ण क्षति का भुगतान करना पड़ेगा। फिर वैसी क्षति जो रेलवे कर्मचारियों की अपनी गलती से हो या पूरा का पूरा माल, या एक या एक से अधिक पैकेट (packet) उसके रेलवे गोदाम से या मार्ग (transit) में गायब हो जायें तो उसके लिए 'स्वामी के द्वारा जोखिम-पत्र' (Owner's Risk Note) रहने पर ही रेलवे कम्पनी उस क्षति की पूर्ति करेगी। किसी-किसी 'जोखिम-पत्र' में यह साफ-साफ लिखा रहता है कि यदि क्षति आकस्मिक अथवा दैवी घटना के कारण हो जाय या आग लगने के कारण हो जाय या चलती गाड़ी में डकैती हो जाय तो इसे रेलवे कर्मचारियों की गलती नहीं मानी जायगी। परन्तु रेलवे कम्पनी को यह साबित करना होगा कि माल की क्षति न रेलवे कर्मचारियों की गलती से हुई है और न उसके आदमियों ने चोरी की है। एक मुकदमे के फैसले के अनुसार साबित करने का भार ज्यादातर या प्रधानतया वादी (plaintiff) के ऊपर होता है।†

रेलवे कम्पनी का उत्तरदायित्व उसी समय से शुरू हो जाता है, जिस समय माल कम्पनी को दे दिया जाता है और वह माल स्वीकार कर लेती है, चाहे उसने स्वीकृति की रसीद भेजने वाले को दी हो या नहीं।‡

\* *Railway and Canal Traffic Acts, 1854 and 1888; Regulation of Railway's Acts.*

† *B. B. & C. I. Railway vs. Sakar Chand*, 24 Bom. L. R. 787 and *H & C Smith Ltd vs. W. & Co.* (1921) 2 K. B. 237.

‡ *G. I. P. Rly. Co. vs. A. B. Tamboli*, 28 Bom. L. R. 718.

## सार्वजनिक वाहक (Common Carriers)

जब माल अनेकों सार्वजनिक वाहकों (common carriers) द्वारा ढोया गया हो और निर्दिष्ट स्थान (destination) पर माल की पूरी सुपुर्दगी देने के बजाय कुछ कम माल की सुपुर्दगी की गयी हो और बाद को यह मालूम हुआ हो कि अनेकों सार्वजनिक वाहकों में से एक के द्वारा माल को नुकसान हुआ है तो इसमें अन्तिम वाहक दायित्व में मुक्त नहीं हो जाता, क्योंकि यहाँ पर प्रसविदा एक है और वह अविभाज्य (indivisible) नहीं है। अगर किसी माल ढोनेवाले को यह पता चल जाना है कि माल बरबाद हो गया है तो उसे उसी समय यह बता देना चाहिए तथा उसे आगे माल ले जाने से इनकार कर देना चाहिए। बम्बई के एक मुकदमे के निर्णय के अनुसार अगर माल के पुलिन्दे (packages) निर्दिष्ट स्थान पर ठीक हैं और उनमें का कुछ सामान गायब है तो उसके लिए रेलवे कम्पनी उत्तरदायी नहीं होगी।

## सराय या होटल वाले (Inn-keepers and Hotel-keepers)

सर दीन शाह मुल्ला (Sir Din Shah Mulla) के विचार से सराय वालों या होटल वालों का दायित्व बही होता है जो एक निक्षेप-प्रापक का होता है। फिर इलाहाबाद और बम्बई हाईकोर्ट ने जैन एण्ड सन्स बनाम कैमेरन नामक मुकदमे में निर्णय देते हुए कहा कि सराय या होटल में ठहरे हुए मुसाफिरो के नुकसान के लिए सराय या होटलवालों का दायित्व एक निक्षेप-प्रापक की तरह ही है।\*

## नदी में चलनेवाले स्टीमर (Steamer)

भारत की नदियों में जो स्टीमर भाड़े पर माल ढोते हैं वे सार्वजनिक वाहक (common carrier) समझे जाते हैं। अगर इनके कर्मचारी की जानी-बूझी गलती के कारण माल भेजनेवाले के माल को नुकसान पहुँचता है तो ऐसे माल के नुकसान के लिए स्टीमर का मालिक निक्षेप-प्रापक के समान होता है।†

## बसें और ट्रक (Buses and Trucks)

ये भी सार्वजनिक वाहक हैं और अपने अधीन रखे हुए माल-असबाब के लिए निक्षेप-प्रापक की तरह ही माल-असबाब के मालिकों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

## समुद्री जहाज (Carriers by Sea for Hire)

समुद्री रास्ते से माल ढोनेवाले जहाज सार्वजनिक वाहक नहीं माने गये हैं। अगर ये चाहें तो अपनी जहाजी फर्म में एक पद (clause) साफ-साफ लिखकर अपने कर्मचारियों द्वारा की गयी असावधानी के कारण हुई क्षति के दायित्व को सीमित कर सकते हैं या उससे एकदम मुक्त हो सकते हैं। उदाहरणार्थ—एक जहाजी कम्पनी के कर्मचारियों ने माल को पानी में भीगने के लिए छोड़ दिया जिसकी वजह से माल नुकसान हुआ और हर्जाने के लिए मुकदमा हुआ। पर न्यायालय ने निर्णय किया कि

\* Jain & Sons vs. Cameron (1922), 44 Alld. 735.

† Indian General Steam Navigation Co. vs. Bhagwan Chandra Pal (1913) 40 Cal. 716.



“यद्यपि यह कार्य कम्पनी की असावधानी का सूचक है, फिर भी कम्पनी इस तरह के नुकसान के लिए दायी नहीं है”, क्योंकि कम्पनी ने जहाजी बिल्टी (Bill of Lading) में यह साफ-साफ बतला दिया है कि जहाज का मालिक अपने कर्मचारियों की असावधानी से हुई क्षति की पूर्ति के लिए बाध्य नहीं होगा।\*

### हवाई जहाज द्वारा ढुलाई (Carriage by Air)

हवाई जहाज के द्वारा माल ढुलाने से उस पर क्षति के लिए, कम्पनी अपने नियम (Carriage by Air Act, 1934) का अनुकरण करती है। वह अपने एक पत्र, एयर कनसाइनमेंट नोट (Air Consignment Note) के जरिये माल-ढुलाई की प्रसविदा करती है, जो माल-ढुलाई के लिए पाने तथा ढुलाई की शर्तों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। पत्र (note) में पैकेट की दशा, संख्या, तौल इत्यादि का जिक्र रहता है। यहाँ पर भी जहाज का मालिक चाहे तो एक विशिष्ट प्रसविदा द्वारा अपने को कर्मचारियों की असावधानी (negligence) से हुई क्षति से मुक्त रख सकता है।

अगर हम अपना बिस्तरा या कोई दूसरा माल जहाज से ढुलायें तब जहाज के मालिक का उत्तरदायित्व प्रत्येक किलोग्राम (kilogram) पर २५० फ्रैंक (Francs) से ज्यादा न होगा। [Rule 22 (2) the Carriage by Air Act, 1934]

फिर अगर माल भेजनेवाला अपने माल की घोषणा तथा उसकी कीमत जहाज के मालिक से शुरू में ही सुनिश्चित करते समय कर देता है और उसकी देखभाल के लिए अधिक भाड़ा चुकाता है तो ऐसी दशा में क्षति होने पर जहाज के मालिक को ‘घोषित रकम तक हुई क्षति की पूर्ति’ करनी पड़ेगी।

### University Questions

1. What is a Contract of bailment ? What is the ‘Standard of Care’ a bailee has to take in respect of goods bailed to him ? What do you understand by bailee’s right of particular lien ?

(निक्षेप-प्रसविदा किसे कहते हैं ? निक्षेपिती को निक्षेपित वस्तुओं के सम्बन्ध में कितनी सावधानी बरतनी चाहिए ? निक्षेपिती के विशिष्ट ग्रहणाधिकार से आप क्या समझते हैं ?)

2. Define ‘bailment’ and give its essentials. What are its kinds ? Explain the duties of a bailee.

(निक्षेप की परिभाषा दीजिए और उसके आवश्यक लक्षण बतलाइए। यह कितने प्रकार का होता है ? निक्षेपग्रहीता के कर्तव्यों की व्याख्या कीजिए।)

3. Explain what a bailment means and discuss the rights and liabilities of a bailor and a bailee.

(निक्षेप के अर्थ की व्याख्या कीजिए और निक्षेपी तथा निक्षेप-ग्रहीता के अधिकारों और उत्तरदायित्वों का वर्णन कीजिए।)

4. What is bailment ? What is the extent of the responsibility of a railway Company in India as a bailee ?

\* Haji Ismail Sait vs. The Company of the Messageries Maritimes of France (1905) 28 Mad. 400.

(निक्षेप क्या है ? भारत में निक्षेपग्रहीता के रूप में रेलवे कम्पनी के उत्तरदायित्व का क्षेत्र क्या है ?)

5. State briefly the obligations of a bailor under the Indian Contract Act. What are the rights of the bailor when the bailee mixes the goods bailed with his own goods ?

(भारतीय सन्निधिम द्वारा निर्धारित निक्षेपक के दायित्वों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए । जब निक्षेपिनी द्वारा निक्षेपित वस्तुओं को अपनी वस्तुओं में मिला लिया गया हो तो निक्षेपक के क्या अधिकार होते हैं ?)

6. What is 'gratuitous bailment' ? What is the law in regard to such bailment ?

(निःशुल्क निक्षेप क्या है ? ऐसे निक्षेप के सम्बन्ध में क्या नियम हैं ?)

7. Distinguish between 'general lien' and 'Particular lien'. In what category would you place the bailee's lien? Who are entitled to a general lien ?

(‘सामान्य ग्रहणाधिकार’ और ‘विशिष्ट ग्रहणाधिकार’ में क्या अन्तर है ? निक्षेपिनी के ग्रहणाधिकार को आप किस श्रेणी में रखेंगे ? सामान्य ग्रहणाधिकार के कौन-कौन अधिकारी होते हैं ?)

8. A finds a lost Cow which has got a wound. Discuss the rights and duties of A as bailee.

(A एक भूली हुई गाय पाता है, जिसे घाव है । निक्षेपग्रहीता के रूप में A के अधिकार और उत्तरदायित्व का वर्णन कीजिए ।)

9. What is the amount of Care that should be taken by the following persons in respect of goods bailed to them— (a) Common carrier, (b) A carrier by railway, (c) A carrier by sea for hire, and (d) An inn-keeper.

[निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा निक्षेपित माल के सम्बन्ध में उन्हें जो सावधानी रखनी चाहिए उसकी क्या सीमा है— (क) एक सार्वजनिक वाहक, (ख) रेल द्वारा वाहक, (ग) सामुद्रिक वाहक जो भाड़े पर लिया गया है, और (घ) सराय-रक्षक ।]

10. Write short notes on— (i) Bailment, (ii) Gratuitous Bailment, (iii) Particular Lien, (iv) Finder of goods, (v) A Railway Company as a bailee.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए— (i) निक्षेप, (ii) निःशुल्क निक्षेप, (iii) विशिष्ट ग्रहणाधिकार, (iv) माल पानेवाला, (v) रेलवे कम्पनी निक्षेपग्रहीता की स्थिति में ।]

## II. Discuss the following Problems—

(i) A lends a horse, which he knows is vicious, to B. He does not disclose the fact that the horse is vicious. The horse runs away. B is thrown and injured. Is A liable to pay B for damages sustained ?

[Ans. Yes; धारा १५० के उदाहरण (a) के अनुसार A क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि A का कर्तव्य था कि वह उन सब दोषों को बतलाये जिसकी उसे जानकारी थी ।]

(ii) A hires a carriage of B. The carriage is unsafe though B is not aware of it, and A is injured. Is B responsible to A for the injury ?

[Ans. धारा १५० के उदाहरण (b) के अनुसार B चोट के लिए A के प्रति दायी है क्योंकि यहाँ निक्षेप (bailment) किराये पर किया है ।]

(iii) A lends his horse to B for his own riding only. B allows C a member of his family to ride the horse. C rides with care but the horse accidentally falls and is injured. What remedy has A against B ?

[Ans. धारा १५४ के अनुसार B के खिलाफ A का उपचार यह है कि वह B से घोड़े के घायल हो जाने के फलस्वरूप होनेवाली हानि की क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है, क्योंकि B ने घोड़े का ऐसा उपयोग किया जो कि निक्षेप की शर्तों के अनुसार नहीं है ।]

(iv) A leaves a cow in the custody of B to be taken care of, and the cow gets a calf. Should B return the calf along with the cow ?

[Ans. Yes. धारा १३३ के अनुसार B का कर्त्तव्य है कि गाय के साथ बछड़ा भी A को सुपुर्द कर दे ।]

(v) A gives cloth to B, a tailor, to make it into a shirt. B promises to deliver the suit within a week, but takes a fortnight to make it. On demand by A, B refuses to deliver the suit until the charges are paid. Discuss the rights of A and B.

[Ans. धारा १७० के अनुसार B को सूट रोकने का अधिकार नहीं है और A को सूट वापस लेने का अधिकार है, क्योंकि सेवा निक्षेप के उद्देश्य के अनुसार नहीं की गयी । निक्षेप के उद्देश्य के अनुसार सूट एक सप्ताह में तैयार हो जाना चाहिए था ।]

(vi) A delivers a rough diamond to B, a jeweller, to be cut and polished, which is accordingly done. A refuses to pay the labour charges to B. What are the rights and duties of A and B ?

[Ans. Sec 170 example (a) के अनुसार B is entitled to retain the stone till he is paid for the service he has rendered.]

(vii) A gives cloth to B, a tailor, to make it into a coat. B promises to deliver the coat as soon as it is finished and to give a three month's credit for the price. Is B entitled to retain the coat for the price ?

[Ans. Sec. 170 example (b). B को सूट रोकने का अधिकार नहीं है ।]

12. निक्षेप किसे कहते हैं ? निक्षेप किये गये माल के सम्बन्ध में निक्षेपी के क्या कर्त्तव्य हैं ? जब निक्षेप-ग्रहीता निक्षेपी के माल को अपने निजी माल के साथ मिला देता है तब निक्षेपी के निक्षेप-ग्रहीता के विरुद्ध क्या अधिकार हैं तथा निक्षेपी के अन्य अधिकार भी बताइये ।

13. निक्षेप क्या है ? निक्षेप किये गये माल के सम्बन्ध में निक्षेप-ग्रहीता के अधिकार तथा कर्त्तव्य बताइये ।

14. State the rights of a bailor against a bailee when the latter mixes his own goods with those bailed (a) with consent and (b) without consent of the bailor.

## बंधक (Pledge)

धाराएँ १७२-१७६

**परिभाषा**—भारतीय प्रसविदा-विधान की धारा १७२ के अनुसार, “किसी ऋण का भुगतान अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए जमानत के रूप में धन का निक्षेप करना बन्धक (pledge) कहलाता है।” \* इसमें निक्षेपी को बन्धक-कर्त्ता (pawnor) तथा निक्षेपप्राप्त को बन्धक-ग्राही (pawnee) कहते हैं। उदाहरणार्थ—A अपनी सोने की घड़ी B के यहाँ जमानत रखकर १०० रु० कर्ज लेता है। इस लेनदेन को बन्धक कहते हैं—यहाँ A ‘बन्धक-कर्त्ता’ तथा B ‘बन्धक-ग्राही’ है।

परिभाषा की ओर ध्यान देने से यह साफ पता चलता है कि बन्धक निक्षेप के ही समान है, इसलिए बन्धक-ग्राही को जमानत में दी गयी वस्तु की एक साधारण तरीके से देखभाल करनी चाहिए (to take reasonable care)। उसको (pawnee) यह अधिकार नहीं है कि जमानत में दी गयी वस्तु का इस्तेमाल करे। अगर वह ऐसा करता है और उसकी वजह से क्षति होती है तब वह उसका जिम्मेदार होगा। बन्धक की प्रसविदा के पूरा होने के लिए जमानत की वस्तु की सुपुर्दगी (delivery) होना आवश्यक है, वह वास्तविक (actual) हो या रचनात्मक (constructive)। बन्धक में साधारण वस्तुएँ, बहुमूल्य चीजें, दस्तावेज, कम्पनियों के शेयर, गवर्नमेंट सिक्यूरिटी (Govt. Securities) वगैरह निक्षेप के रूप में दिये जा सकते हैं। अमृतसर शहर की व्यापारिक प्रथा के अनुसार अगर कोई मनुष्य कोई वस्तु किसी दूसरे मनुष्य के यहाँ रख देता है और फिर यदि उस पर ऋण लेता है तो वह ऋण उस वस्तु की जमानत पर लिया हुआ ऋण समझा जायगा तथा बन्धक के अधिकारों और दायित्वों का उदय होगा।†

### वैध बंधक के आवश्यक लक्षण (Essentials of a Valid Pledge)

१. वैध बंधक होने के लिए सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि बन्धक रखने वाले के पास माल का ‘वैधानिक अधिकार’ (legal possession) होना चाहिए, ‘केवल अधिकार’ (mere possession) होना ही पर्याप्त नहीं है। इस तरह एक नौकर अपने स्वामी के माल का वैध बन्धक नहीं कर सकता, भले ही माल उसके अधिकार में हो। जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे माल को गिरवी रखता है जिसमें उसका सिर्फ एक सीमित हित है तब बंधक केवल हित की सीमा तक ही वैध है। ऐसा कोई व्यक्ति

\* “The bailment of goods as security for payment of a debt or performance of a promise is called pledge.” (Sec. 172)

† Prithi Mal vs. Gopi Nath (1886) P. R. No. 34.

जिसके पास माल का सिर्फ अधिकार है वैध बंधक रख सकता है अगर—

(i) बंधक रखने वाला सद्भाव से बंधक रखता है और उसके लिए मूल्यवान प्रतिफल दे देता है।

(ii) बंधक रखने वाले ने माल को किसी अपराध या कपट से प्राप्त नहीं किया है।

२. बंधक के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि माल का अधिकार निक्षेप-प्राप्तक के लिए हस्तान्तरण हो जाना चाहिए।

३. बंधक सिर्फ चल-वस्तुओं के सम्बन्ध में ही सम्भव है और किसी भी प्रकार की चल-वस्तुएँ (जैसे—मूल्यवान पदार्थ, प्रतिभूतियाँ) बंधक रखी जा सकती हैं।

### बन्धकग्राही के अधिकार (Rights of Pawnee)

बन्धकग्राही के निम्नलिखित अधिकार हैं —

१ वस्तु रोक रखने का अधिकार (Rights of Retainer)—जब तक बन्धककर्त्ता (pawnor) ऋण का भुगतान या वचन का पालन नहीं कर देता है तब तक बन्धकग्राही, बन्धक की गयी वस्तु को अपने अधीन रख सकता है। इतना ही नहीं, बल्कि ऋण के व्याज तथा उन सभी आवश्यक खर्चों के लिए भी, जो उसने मान के कच्चे के सम्बन्ध में अथवा सुरक्षा के सम्बन्ध में किया हो वह माल को रोक सकता है (धारा १७३)। अगर प्रसंविदा में यह लिखा न हो कि बन्धकग्राही सभी ऋणों के लिए माल को रोक सकता है तब तक बन्धकग्राही सिर्फ वस्तु को उसी ऋण के भुगतान तथा वचन के पालन के लिए रोक सकता है जिसके लिए यह बन्धक रखी गयी है। फिर भी, उसी वस्तु पर बाद में दिये गये ऋण को उसी प्रसंविदा के अन्तर्गत समझा जाता है और इस ऋण के लिए भी वह जमानत दिये माल को रोक सकता है। [धारा १७४]

२. असाधारण व्यय का भुगतान कराने का अधिकार (Rights for recovery of extra-ordinary expenses incurred)—अगर बन्धकग्राही बन्धक में ली गयी वस्तु के प्रति कोई असाधारण व्यय करता है तो उसे यह अधिकार है कि ऐसे व्यय का भुगतान बन्धककर्त्ता से करा ले। लेकिन अगर बन्धककर्त्ता ऐसे व्यय का भुगतान नहीं करता है तब वह सिर्फ नालिश कर व्यय के रुपये को वसूल सकता है उसे माल रोकने का अधिकार नहीं है। [धारा १७५]

उदाहरण—X, Y से अपनी गाय की जमानत पर १५० रु० लेता है। एक दिन अकस्मात् गाय के पैर में चोट लग जाती है जिसकी दवा-दारू के लिए वह २० रु० खर्च करता है। कुछ दिनों के बाद X १५० रु० चुका कर अपनी गाय ले जाता है, परन्तु व्यय का २० रु० देने से इनकार करता है। ऐसी दशा में Y को अधिकार है कि वह X पर नालिश करके २० रु० वसूले।

३. बन्धककर्त्ता के वचन भंग होने पर बन्धकग्राही के अधिकार (Pawnee's right where pawnor makes default)—अगर बन्धककर्त्ता ऋण का भुगतान या वचन का पालन निश्चित समय पर नहीं करता है तो धारा १७६ के अनुसार (क) बन्धककर्त्ता पर मुकदमा करके ऋण का भुगतान या प्रतिज्ञा का पालन अदालत (court) के द्वारा कराया जा सकता है तथा बन्धक में दी गयी वस्तु को जमानत को अतिरिक्त जमानत (collateral security) के रूप में रख सकता है।

(ख) बन्धकग्राही बन्धककर्त्ता पर मुकदमा कर सकता है कि बन्धककर्त्ता स्वयं अपनी

वस्तु की विक्री करके ऋण का भुगतान करे।

(ग) वह स्वयं भी बन्धककर्ता के माल को उचित सूचना देकर बेच सकता है, पर ऐसी सूचना माल बेचने के पहले देना आवश्यक है। विक्री करने बाद रुपया जो आये उससे वह अपने ऋण का भुगतान कर ले और अगर भुगतान के बाद रुपया बच जाता है तब वह उसे बन्धककर्ता को वापस कर देना पड़ेगा। यदि माल बेचने के पश्चात् रुपया वचन के पालन के लिए पर्याप्त न हो तो बन्धकग्राही बाकी रकम के लिए बन्धककर्ता पर मुकदमा कर सकता है।

(घ) यदि अदालत से डिग्री (degree) हो जाने के बाद ऋण की सम्पत्ति नीलाम (auction) में बेची जा रही हो तो बन्धकग्राही को भी अपने लिए डाक बोलने का अधिकार है।

### बंधकग्राही के कर्तव्य (Duties of a Pawnee)

बन्धकग्राही के निम्नलिखित कर्तव्य हैं—

१. बन्धक में दी गयी वस्तु की देखभाल उसी तरह करनी चाहिए जिस तरह एक साधारण व्यक्ति अपनी चीज की देखभाल उसी परिमाण तथा स्थिति में करता है।

२. बन्धक की चीज किसी दूसरे ऋण या प्रतिज्ञा के लिए अपने अधिकार में नहीं रख सकता। [धारा १७४]

३. बन्धक की गयी चीजों को वह अपने व्यवहार में नहीं ला सकता। अगर वह लाता है और इससे वस्तु को किसी तरह की क्षति होती है तब इसका दायित्व उस पर होगा।

४. बन्धक में दी गयी वस्तु की विक्री अगर बन्धकग्राही स्वयं करता है तो उसे उस वस्तु को अपने ही नहीं खरीद लेना चाहिए, क्योंकि कानून की दृष्टि में एक ही व्यक्ति एक वस्तु के लिए विक्रेता तथा क्रेता दोनों नहीं हो सकता।

५. असाधारण व्यय के लिए वह बन्धक में दी गयी वस्तु को अपने अधिकार में नहीं रोक सकता।

६. बन्धक की वस्तु को अगर बन्धकग्राही स्वयं बेचता है और बेचने पर ऋण की रकम से ज्यादा रकम मिलती है तो उसे अधिक रकम बन्धककर्ता को वापस कर देनी चाहिए।

७. ऋण का भुगतान हो जाने पर या वचन का पालन हो जाने पर उसे बन्धक में दी गयी वस्तु वापस कर देनी चाहिए।

### बंधककर्ता के अधिकार (Rights of Pawnor)

बन्धककर्ता के निम्नलिखित अधिकार हैं—

१. ऋण का भुगतान या प्रतिज्ञा का पालन कर देने पर बन्धककर्ता को वस्तु वापस ले लेने का अधिकार है।

२. यदि बन्धक में दी गयी वस्तु की विक्री ऋण का भुगतान करने के लिए की जाती है तो ऋण से जो अधिक रकम होगी उसको वापस ले लेने का अधिकार बन्धककर्ता को है।

३. यदि बन्धककर्ता निश्चित समय के अन्दर ऋण का भुगतान या वचन का पालन नहीं करता है जिसके कारण बन्धक की वस्तु की विक्री होने वाली है तो जब

तक वस्तु की विक्री न हो जाय तब तक ऋण का तथा वस्तु के सम्बन्ध में किये गये उचित व्ययों का भुगतान करके वह वस्तु को वापस ले सकता है।\*

४. यदि बंधकग्राही किसी खास उद्देश्य से बंधककर्ता के अनुसार वस्तु के कब्जे को फिर से प्राप्त करता है, तो बंधककर्ता को वस्तु वापस ले लेने का अधिकार है।

### बंधककर्ता के कर्तव्य (Duties of Pawnor)

बंधककर्ता के निम्नलिखित कर्तव्य हैं—

१. बंधककर्ता को चाहिए कि बंधक की वस्तु के सम्बन्ध के प्रत्येक अवगुण और जोखिम बन्धकग्राही को बतला दे।

२. बंधककर्ता को चाहिए कि अगर ऋण के भुगतान अथवा वचन के पालन के लिए कोई अवधि निश्चित कर दी गयी हो तो उसी के अन्दर भुगतान कर दे।

३. अगर बंधकग्राही ने वस्तु की रक्षा के सम्बन्ध में कुछ साधारण या असाधारण खर्च किया हो तो बन्धककर्ता को चाहिए कि उसे चुका दे।

### कौन बंधक रख सकता है ? (Who may pledge ?)

१. माल का मालिक (Owner of Goods)— यह साधारण-सी बात है कि कोई भी मालिक अपने माल को बन्धक रख सकता है।

२. परन्तु माल के मालिक के अलावा (pledge by non-owners) भी बहुत-से ऐसे व्यक्ति हैं जो माल के मालिक नहीं हैं, फिर भी कुछ विशिष्ट स्थिति में उसे बन्धक रख सकते हैं। पर इतना जरूरी है कि ऐसा व्यक्ति मालिक से किसी तरह का व्यापारिक सम्बन्ध जरूर रखता हो और बन्धक रखते समय माल उसके कब्जे (possession) में हो। इस तरह के व्यक्ति निम्नलिखित हैं—

(i) व्यापारिक अभिकर्ता या एजेंट (Pledge by a Mercantile Agent)—यदि एक व्यापारिक एजेंट अपने मालिक की राय से जो व्यापार की साधारण प्रगति में एक व्यापारिक एजेंट की स्थिति में काम कर रहा है, अगर माल या माल के अधिकार के दस्तावेज को, जो उसके कब्जे में है, बन्धक करता है तो उसका ही किया हुआ बन्धक उतना वैध (valid) होगा, मानो वस्तु के मालिक से वह ऐसा करने के लिए अधिकृत (authorised) था या मालिक ने उसे खुद किया था। हालाँकि सद्भावना (good faith) से काम करे तथा उसे यह भी मालूम न हो कि बन्धककर्ता को बन्धक रखने का अधिकार नहीं है। [धारा १७८]

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कोई भी साधारण व्यक्ति, जो व्यापारिक एजेंट नहीं है, अपने अधिकार में आये हुए दूसरे के माल को बन्धक रख दे। इसी तरह अगर कोई व्यक्ति अपने नौकर या स्त्री को अपनी सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए कहे तो उस नौकर या स्त्री को न्यस्त सम्पत्ति बन्धक कर देने का अधिकार नहीं है।

(ii) विवर्जनीय प्रसंविदा में माल का अधिकारी व्यक्ति (Pledge by a person in possession under Voidable Contract)—अगर किसी व्यक्ति ने किसी

\* Sec. 177.

† Biddomoyee vs. Sitaram 4 Cal. 497, and j W. Seager vs. Hukma Kessa 24 Bom. 458.

विघर्जनीय प्रसंविदा के द्वारा माल पर अधिकार (possession) प्राप्त किया है तब वह उस माल को बन्धक कर सकता है, लेकिन ऐसी प्रसंविदा का खण्डन माल बन्धक रखने के पहले न कर दिया गया हो। यदि बन्धकग्राही ने सद्भावना (good faith) से तथा विश्वासपूर्वक असली मालिक को न जानते हुए कार्य किया है तो उसका माल पर अधिकार न्यायपूर्ण होगा। [धारा १७८ ए]

(iii) बन्धककर्ता का हित सीमित हो (Pledge where Pawnor has only a Limited Interest)—धारा १७९ के अनुसार कोई व्यक्ति यदि ऐसी वस्तु को बन्धक रखता है जिसमें उसका केवल एक सीमित हित है तो बन्धक केवल उसके हित की सीमा तक ही वैध (valid) होगा। अतः कोई रेहनदार (mortgagee) अथवा ग्रहणाधिकारी (lien owner) उसे अपने हित तक बन्धक रख सकता है। इसी तरह भली हुई वस्तु को पानेवाला (finder of lost goods) भी पायी हुई वस्तु को अपने हित तक बन्धक रख सकता है।

उदाहरण—X, Y की गाय को रास्ते में पाता है। उसके पैर में गहरा जख्म है। X गाय के जख्म को अच्छा करने के लिए उसकी दवा करवाता है। गाय का जख्म अच्छा हो जाने पर X, Z के हाथ उसको ६० रु० में बन्धक रख देता है। ऐसी स्थिति में Y अगर अपनी गाय वापस लेना चाहे तो उसे X को गाय की दवा करवाने का खर्च देना पड़ेगा।

(iv) सहस्वामियों द्वारा बन्धक (Pledge by co-owners)—यदि एक वस्तु के एक से अधिक मालिक हों और वस्तु अगर एक के ही अधिकार (possession) में हो तब अगर वह अपने सहस्वामियों की राय से उस वस्तु को बन्धक रखता है तो वह बन्धक मान्य (valid) होगा।

(v) विक्री के बाद विक्रेता या क्रेता द्वारा बन्धक (Pledge by a Seller or Buyer in possession after Sale)—भारतीय वस्तु-विक्रय-विधान या अधिनियम (Indian Sale of Goods Act) की धारा ३० के अनुसार वह विक्रेता जिसके पास विक्री के बाद भी माल पर अधिकार है या वह क्रेता (purchaser) जिसे कीमत चुकाने के पहले ही माल पर कब्जा दे दिया गया है, कानूनी तरीके से बन्धक रख सकते हैं, वशत् कि बन्धकग्राही सद्भावना से कार्य करता हो तथा उसे पूर्व-विक्रय (prior sale) या मूल विक्रेता के किसी ग्रहणाधिकार अथवा प्रभार (charge) की कोई सूचना न हो।

रेहन तथा बन्धक में समानता और भिन्नता (Similarity and Distinction between a Pledge and a Mortgage)

समानता (Similarity)—१. दोनों में किसी ऋण के भुगतान या प्रतिज्ञा का पालन एक निश्चित अवधि के भीतर करने के लिए वस्तु जमानत के रूप में रेहनदार या बन्धकग्राही के हवाले की जाती है।

२. दोनों में माल का अधिकार रेहनदार तथा बन्धककर्ता को थोड़े दिन के लिए दिया जाता है। वे माल के मालिक नहीं बन सकते।

३. दोनों ऋण का भुगतान या प्रतिज्ञा का पालन हो जाने पर माल मालिक को वापस कर दिया जाता है।



**भिन्नता (Distinction)**—रेहन तथा बन्धक में निम्नलिखित अन्तर हैं—

१. बन्धक साधारणतः चल वस्तु (movable goods), जैसे गाय, घोड़ा शेयर इत्यादि पर होता है, लेकिन रेहन सर्वदा अचल सम्पत्ति (immovable goods), जैसे जमीन, मकान इत्यादि पर होता है।

२. बन्धक में अधिकार का हस्तान्तरण अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु रेहन में अचल वस्तुओं का हस्तान्तरण कोई आवश्यक नहीं है।

३. रेहन में यह परमावश्यक है कि १०० रु० से अधिक की सम्पत्ति होने पर यह लिखित तथा रजिस्टर्ड (registered) हो और दो दूसरे व्यक्तियों की गवाही हो, परन्तु बन्धक में यह आवश्यक नहीं है।

४. रेहन में दी गयी वस्तु को रेहनदार (mortgagee) अपने व्यवहार में ला सकता है, जैसे खेत रेहन पर लिये जाने पर उसको जुतवाकर अनाज उत्पन्न करा सकता है। परन्तु बन्धक में दी गयी वस्तु को बन्धकग्राही अपने काम में नहीं ला सकता है।

५. रेहन में एक ही सम्पत्ति पर उसकी कीमत तक एक से अधिक बार तथा एक से अधिक रेहनदारों से जमानत रखकर ऋण लिया जा सकता है।

६. एक बन्धकग्राही बन्धक में ली गयी वस्तु को दूसरे के यहाँ बन्धक रखकर रुपया कर्ज नहीं ले सकता। किन्तु एक रेहनदार रेहन में दी हुई रकम तक अपने हित के लिए दूसरे व्यक्ति से उस वस्तु का फिर से रेहन (sub-mortgage) कर सकता है।

**निक्षेप तथा वधक में भिन्नता (Distinction between Bailment and Pledge)**

निक्षेप तथा बन्धक (pledge) में निम्नलिखित अन्तर है—

१. निक्षेप में वस्तुएँ प्रयोग के लिए दी जाती हैं, लेकिन बन्धक में किसी कानूनी दायित्व के यथायोग्य छुटकारे के लिए वस्तुएँ जमानत के रूप में रखी जाती हैं।

२. बन्धक में प्रतिफल का होना आवश्यक है, परन्तु निःशुल्क निक्षेप में प्रतिफल का होना आवश्यक नहीं है।

३. निक्षेप में निक्षेप-प्रापक (bailee) को वस्तुओं पर केवल पूर्वाधिकार (lien) ही प्राप्त है, विक्रय करने का अधिकार नहीं है। किन्तु बन्धक-ग्राही (pawnee) को कुछ दशाओं में वस्तुओं को बेचने का अधिकार प्राप्त है।

४. बन्धक-ग्राही (pawnee) को माल प्रयोग करने का अधिकार नहीं है। निक्षेप में कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। देखा जाय तो निक्षेप में वस्तुएँ प्रयोग करने के लिए ही दी जाती हैं।

### University Questions

1. What do you mean by 'Pledge'? Distinguish it from bailment. (बन्धक से आप क्या समझते हैं? निक्षेप से इसका अन्तर बतलाइये।)
2. Define 'Pledge'. State the respective rights and duties of the pawnor (pledger) and pawnee (pledgee). ('बन्धक' की परिभाषा दीजिए। बन्धकग्राही तथा बन्धककर्त्ता के अधिकारों और कर्त्तव्यों का अलग-अलग वर्णन कीजिए।)

3. What do you mean by 'Pledge' ? What are the rights of the pawnee when pawnor makes default in payment of the debt ?

(‘बन्धक’ से आप क्या समझते हैं ? बन्धकग्राही के क्या अधिकार हैं जबकि बन्धककर्ता निश्चित समय पर कर्ज का भुगतान नहीं करता है ?)

4. Explain, what do you understand by a 'Pledge' ? Distinguish it from a bailment and a lien. State the respective rights and duties of the pawnor and pawnee.

(‘बन्धक’ से आप क्या समझते हैं ? उसमें और निक्षेप-अनुबन्ध एवं ग्रहणाधिकार में अन्तर बतलाइये। बन्धक रखनेवाले पक्षकार एवं बन्धककर्ता के अधिकारों एवं कर्तव्यों का वर्णन कीजिए।)

5. When can a pledge, made by a non-owner of goods, be valid ? (वस्तुओं के स्वामी के अतिरिक्त किसी व्यक्ति द्वारा वस्तुओं का बन्धक रख देना किन परिस्थितियों में वैध हो सकता है ?)

6. When is a pledge made by a mercantile agent without the authority of the owner valid ?

(बिना मालिक से अधिकार पाये, व्यापारिक एजेंट द्वारा बन्धक रखना कब वैध होता है ?)

7. Discuss the following Problems—

(i) A obtains possession of 5 table fans from B by fraud. Subsequently he pledges them with C. Discuss the rights of B and C.

[Ans. धारा १७८ अ के मुताबिक अगर C ने सद्भावना से काम किया है तथा उसे A के अधिकार-सम्बन्धी दोष की सूचना नहीं थी तब वह माल में वैध अधिकार प्राप्त कर लेता है और वास्तविक स्वामी B, C के विरुद्ध कोई अधिकार नहीं रखता। विपरीत दशा में विपरीत परिणाम होगा।]

(ii) A sends some goods to B for 'sale or return'. B keeps the goods and afterwards pledges them to X. B fails to pay the price. Can A recover the goods from X ?

[Ans. माल-विक्रय-सन्निधम की धारा ३० के अनुसार यहाँ A, X से माल वापस नहीं ले सकता।]

(iii) A delivers some household goods to B to be kept by the latter for safe custody and to be returned to A after 3 months. Subsequently A hypothecates these goods to C who gives a notice of his lien to B. Discuss B's legal position.

[Ans. A द्वारा बन्धक रखने पर C, B को अपने अधिकार होने की सूचना दे सकता है और B को वह माल सुपुर्द कर देना चाहिए।]

## एजेंसी (Agency)

धाराएँ १८२-२३८, भारतीय सविदा-सन्धियम, १८७२

**परिभाषा (Definition)**— प्रसविदा-विधान का अध्ययन करते समय हमलोग देख चुके हैं कि किसी भी प्रसविदा के लिए दो व्यक्तियों का होना अनिवार्य होता है। विस्तृत व्यापारिक क्षेत्र की दुनिया में आज पार्टियों के लिए सम्भव नहीं है कि किसी भी प्रसविदा के लिए वे खुद एक-दूसरे के सामने आयें। उदाहरणार्थ, अगर मेरी एक सूती कपड़े की मिल कलकत्ते में है, तो हमें मिल के लिए कपास, सूत, धागे इत्यादि आस-पास के लोगों से खरीदने होंगे। फिर बम्बई, अहमदाबाद या हिन्दुस्तान के बाहर से भी ये चीजें मँगानी होंगी। तो क्या मेरे लिए यह सम्भव है कि मैं सभी लोगों से खुद प्रसविदा कर सकूँ? हाँ नहीं। इसलिए इस काम के लिए मुझे अपने कुछ अधिकार दूसरों को देने होंगे। हो सकता है कि मेरा लड़का (son) बम्बई में रहे, फिर मेरा छोटा भाई (younger brother) अहमदाबाद में रहे जहाँ वह मेरी तरफ से (on my behalf) कच्चा माल (raw-material) खरीदने में वहाँ के व्यापारियों से प्रसविदा करे। इसी तरह मेरा कोई दूसरा आदमी रहेगा जो विदेश के व्यापारियों से प्रसविदा करेगा। इस तरह के व्यक्ति जिनको कि मैं अपनी तरफ से प्रसविदा करने के लिए बहाल करूँगा वे कानूनी शब्दों में 'एजेंट' (Agent) कहालायेगे तथा मैं 'प्रधान' (Principal) कहालाऊँगा। भारतीय प्रसविदा-विधान की धारा १८२ के अनुसार—

“एजेंट वह व्यक्ति है जो अपने प्रधान के किसी काम को करने या बाहर के लोगों के सामने उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है।”\*

“जिस व्यक्ति के लिए या बदले में कार्य किया जाता है या जिसका प्रतिनिधित्व किया जाता है वह प्रधान (Principal) कहा जाता है।”†

**अभिकर्तृत्व**—एक प्रधान और एजेंट के बीच में जो प्रसविदा होती है, उन्हें ‘अभिकर्तृत्व’ (agency) कहते हैं।

अतः ऊपर की परिभाषा के अनुसार एजेंट वह व्यक्ति है जो प्रधान तथा किसी तीसरे व्यक्ति के बीच प्रसविदात्मक सम्बन्ध (contractual relations) स्थापित करता हो।‡ इसलिए एजेंसी से सम्बद्ध दो महत्वपूर्ण नियम

\* “An agent is a person employed to do any act for another or represent another in dealings with third persons.” (Sec. 182)

† “The person for whom such act is done, or who is represented is called the Principal.” (Sec. 182)

‡ “A contract of Agency is the employment of one person by

निम्नलिखित है—

(क) जो व्यक्ति किसी कार्य को स्वयं नहीं करके किसी दूसरे के द्वारा करवाता है तो इसका अर्थ यही समझा जाता है कि वह कार्य को स्वयं कर रहा है। यानी, एजेंट का जो कार्य है वह प्रधान कार्य है। इसलिए 'रोमन' में जो कहावत है—*Qui facit per alium facit per se*\* वह सही समझी गयी है।

(ख) जो व्यक्ति किसी कार्य को स्वयं करने की क्षमता रखता है और यदि वह चाहे तो वही कार्य दूसरे के द्वारा करा सकता है। परन्तु जहाँ प्रसंविदा खुद संपन्न करने की होती है वहाँ उसे खुद ही करना चाहिए। जैसे, अगर प्रसंविदा ताजमहल का फोटो बनाने की हुई है तो उस व्यक्ति को ताजमहल का फोटो खुद बनाना चाहिए।

कौन अभिकर्ता नियुक्त कर सकता है ? (Who may employ an Agent ?)

धारा १८३ के अनुसार एजेंट प्रत्येक व्यक्ति बहाल कर सकता है, यदि वह वैधानिक दृष्टि में प्रसंविदा करने योग्य है, यानी वह बालिग तथा सही दिमाग का है और प्रसंविदा की बातों को समझ सकता है।

कौन अभिकर्ता बन सकता है ? (Who may be an Agent ?)

धारा १८४ के अनुसार प्रधान तथा तीसरे व्यक्ति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कोई भी व्यक्ति एजेंट हो सकता है। परन्तु वह व्यक्ति जो बालिग नहीं हुआ है तथा सही दिमाग का नहीं है, इस अर्थ में एजेंट नहीं हो सकता कि वह अपने प्रधान तथा तीसरे व्यक्ति के बीच सम्बन्ध स्थापित करके प्रधान के प्रति ठीक उसी प्रकार दायी हो, जिस प्रकार उसका प्रधान उसके कार्यों के लिए तीसरे व्यक्ति के प्रति दायी है। संक्षेप में इसका मतलब यह है कि जो एजेंट बनना चाहता है उसमें प्रसंविदा करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए। फिर भी, यदि कोई व्यक्ति अपने कार्य के लिए किसी नाबालिग (minor) या गलत दिमाग (unsound mind) वाले को बहाल करता है तो उसे ऐसा करने में कोई वैधानिक रुकावट नहीं है। वह नाबालिग या और दूसरे अयोग्य व्यक्ति को एजेंट बना सकता है और किसी योग्य व्यक्ति की तरह वह भी अपने प्रधान को अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहरा सकता है। परन्तु नाबालिग स्वयं अपने कार्य के लिए प्रधान का उत्तरदायी नहीं हो सकता। उसका स्थान सदा सुरक्षित है, किन्तु यदि बालिग और सही दिमाग के एजेंट के बुरे आचरण (misconduct) की वजह से प्रधान को हानि होती है तो उसके लिए एजेंट खुद उत्तरदायी रहेगा। परन्तु नाबालिग एजेंट की गलती या बुरे आचरण (misconduct) के कारण प्रधान को होनेवाली क्षति के लिए नाबालिग दायी नहीं होगा।

निर्मूल्य या प्रतिफल-रहित एजेंसी (Gratuitous Agency)

धारा १८५ के अनुसार एजेंसी के निर्माण के लिए प्रतिफल का होना कोई

another in order to bring the latter into legal relation with a third person."

\* "He who acts through an agent is himself acting."

आवश्यक नहीं है। बिना किसी प्रतिफल के भी अभिकर्ता की बहाली हो सकती है। अतः जिस प्रकार कमीशन, पारिश्रमिक या पुरस्कार लेकर कार्य करनेवाले एजेंट को अपने प्रधान का कार्य करना आवश्यक रहना है और उसे ऐसा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, उस तरह अवैतनिक (unpaid) एजेंट अपने प्रधान के कार्य को करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। परन्तु इतना निश्चय है कि जिस कार्य को करना उसने आरम्भ किया है उसे अन्त तक अपने प्रधान के संतोष के लायक करना पड़ेगा।

### एजेंसी की स्थापना (Creation of Agency)

एजेंसी की स्थापना के लिए किसी विशेष प्रकार की संविदा अथवा प्रसंविदा या प्रलेख (documents) या प्रतिफल (consideration) की आवश्यकता नहीं होती है। वास्तव में अपने प्रधान का अपने एजेंट द्वारा प्रतिनिधित्व कराने की सहमति देना ही पर्याप्त अहित (detriment) है। फिर भी, एजेंसी की स्थापना मुख्यतः दो प्रकार से होती है—

१. स्पष्ट (Express) और

२. अस्पष्ट (Implied)।

जब कोई मनुष्य लिखकर या कहकर किसी दूसरे मनुष्य को अपना कार्य करने का अधिकार दे तो इन दोनों के बीच जो प्रसंविदा होगी उसे स्पष्ट एजेंसी (express agency) कहते हैं। साधारणतः एजेंट की बहाली आपस की बातचीत से ही हो जाती है। यह प्रतिदिन के कार्यों में देखा जाता है कि कोई व्यक्ति शेयर या स्टॉक, जमीन या मकान, चल या अचल सम्पत्ति, किसी एजेंट को मुख से कह कर ही खरीदने का अधिकार दे देता है। फिर भी, कुछ ऐसी एजेंसियाँ (agencies) हैं जिनके लिए लिखित प्रमाण होना आवश्यक है; जैसे—रजिस्ट्रार के सम्मुख रजिस्ट्रेशन के लिए प्रलेख (document) पेश करना, मकान को बेचना या रेहन द्वारा ऋण लेना इत्यादि।

जब एजेंसी पहले से न हो, बल्कि प्रधान के उपलक्षण (implication) से यह जाहिर हो कि दो व्यक्तियों के बीच एजेंसी है तो उसे अस्पष्ट (implied) एजेंसी कहते हैं। उपलक्षण द्वारा स्थापित एजेंसी की उत्पत्ति पक्ष के आचरण (conduct) से होती है तथा स्थिति द्वारा प्रकरण की परिस्थितियों तथा पक्षों के सम्बन्ध से यह निर्णय किया जा सकता है कि दो व्यक्तियों के बीच प्रधान अथवा एजेंट का सम्बन्ध समझा जाय या नहीं।

**उदाहरण**—पति या पत्नी के सम्बन्ध में यही समझा जाता है कि जब पत्नी गृह-प्रबन्धक के रूप में काम करती हो तब अपने क्षेत्र में उसे जरूरी वस्तुओं को खरीदने का अधिकार प्राप्त है।

स्पष्ट तथा अस्पष्ट एजेंसी के अलावा भी कई तरह से एजेंसी की स्थापना होती है, वे निम्नलिखित हैं—

(क) **पूर्वापेक्षित-गत्यावरोध (By Estoppel)**—यदि प्रधान आचरणों अथवा शब्दों द्वारा किसी व्यक्ति का एजेंट होना घोषित करे और दूसरा व्यक्ति इसके आधार पर उस व्यक्ति से प्रधान की ओर से व्यापार अथवा प्रसंविदा कर ले तो प्रधान ऐसे व्यक्ति के एजेंट होने के तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता। कानून की नजर में ऐसा व्यक्ति एजेंट होता है, क्योंकि प्रधान ने उसके सम्बन्ध में ऐसी

घोषणा की है।

भारतीय प्रमाण-विधान (Indian Evidence Act) की ११५वीं धारा में 'पूर्वपिहित गत्यावरोध' की परिभाषा जो दी गयी है, उसका अर्थ इस प्रकार है—जब एक व्यक्ति ने अपने कथन, कार्य या भूल के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को किसी बात की सत्यता का विश्वास दिलाया है तथा यदि उसी विश्वास पर दूसरे व्यक्ति ने किसी प्रकार का व्यवहार किया है, तो वह प्रथम व्यक्ति या उसका प्रतिनिधि किसी मुकदमे में जो दूसरे व्यक्ति या उसके प्रतिनिधि और प्रथम व्यक्ति के बीच में हो, उस बात की स्थापित सत्यता को मिटा नहीं सकता और न इनकार ही कर सकता है।

उदाहरण—१. X जानबूझकर Y से झूठ बोलता है कि अमुक जमीन उसकी अपनी है। Y इस पर विश्वास करके X से वह जमीन खरीद लेता है। कुछ दिनों बाद उस जमीन पर X का अधिकार हो जाता है। अब Y से X यह कहता है कि विक्री के समय चूँकि वह जमीन मेरी न थी इसलिए उसकी विक्री नहीं करूँगा। ऐसी हालत में X को यह साबित नहीं करने दिया जायगा कि वह जमीन उसकी न थी और उसे वह जमीन B के हाथ बेच देनी पड़ेगी।

२. इसी तरह *Soanes vs L. S. W. R.\** के मुकदमे में मुद्दा अपने कुछ सामानों को मुद्दालह द्वारा स्वीकृत बर्दी पहने हुए कुली (porter) को स्टेशन पर जिम्मा देकर बाहर गया। सामान चोरी हो गया। रेलवे कम्पनी ने अपने उत्तरदायित्व से अलग होने के लिए यह तर्क दिया कि वह कुली (porter) उस समय ड्यूटी (duty) पर नहीं था। लेकिन न्यायालय से फैसला हुआ कि कुली को कम्पनी द्वारा यह अधिकार (authority) दिया गया था कि वह मालों को स्वीकार करे। इसलिए कम्पनी उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी है। लॉर्ड हाल्सबरी (Lord Halsbury) ने स्टोपेल (estoppel) की परिभाषा इस प्रकार दी है—“जब किसी व्यक्ति को किसी बात की सत्यता से इनकार करने से रोका जाता है, जिसे (यद्यपि यथार्थतः वह सत्य है) उसने सत्य बताया है, तब 'पूर्वपिहित गत्यावरोध की उत्पत्ति' होती है।”†

गत्यावरोध द्वारा (by estoppel) एजेन्सी तीन तरह से स्थापित होती है—

१. जब कोई व्यक्ति, जो न अभी उसका एजेंट है, न कभी था, प्रधान द्वारा एजेंट मान लिया गया हो।‡

उदाहरण—X, Y से कहता है “तुम हमें Z के लिए ४०० मन चावल देना।” जब ये बातें हो रही थी उस समय Z भी वहाँ मौजूद था और Y ने यह देखा कि Z ने X की बातों को सुना और उसका विरोध नहीं किया। अतः Y यह विश्वास करके कि X, Z का एजेंट है ४०० मन चावल दे देता है। ऐसी दशा में Z को यह मानना पड़ेगा कि X उसका एजेंट है और उसे X के कार्यों के लिए Y के प्रति बाध्य होना पड़ेगा।

२. जब कोई व्यक्ति अपने एजेंट के उससे अधिक व्यापक अधिकारों को

\* (1919) 88 L. T. . B. 524.

† “Estoppel arises when you are precluded from denying the truth of anything which you have represented as fact although it is not a fact.”

‡ “A person may hold out another as his agent although that other is not or never been his agent.”

स्वीकृत कर ले कि जितने अधिकार उसने उसे पहले दिये थे ।\*

**उदाहरण—** Wattean vs. Fenuick† के मुकदमे के अनुसार एक पब्लिक हाउस (Public House) के मैनेजर को सिर्फ खनिजीय पानी (mineral water) और बोतलों में भरी बीयर शराब (bottled beers) खरीदने का अधिकार दिया गया था । लेकिन मैनेजर ने कुछ सिगार (cigars) भी खरीद लिये । पब्लिक हाउस (public house) के मालिक (owners) सिगार के लिए जिम्मेदार ठहराये गये, क्योंकि उन लोगों के आचरण से यह पता लगा कि उन लोगों ने मैनेजर को इतना हुक्म दिया था कि पब्लिक हाउस से सम्बद्ध जो कार्य हो, उन सभी कार्यों को वह करे ।

३. जब कोई व्यक्ति किसी आदमी को तब अपने एजेंट के रूप में स्वीकार कर ले जब कि उसने उसकी एजेंसी का काम बन्द कर दिया हो, या स्वयं मालिक ने उसे छुड़ा दिया हो ।‡

इसी तरह धारा २३७ में यह दिया गया है कि जब एजेंट बिना प्रधान की आज्ञा के किसी तीसरे पक्ष के साथ प्रधान के लिए प्रसंविदा करता है तो प्रधान उसके कार्यों के लिए दायी रहेगा यदि प्रधान ने स्पष्ट रूप से या अपने आचरण से उस तीसरे व्यक्ति को यह विश्वास दिलाया है कि एजेंट ने प्राप्त अधिकार के भीतर ही कार्य किया है ।

**उदाहरण—** X, Y के यहाँ कुछ माल भेजता है और एक निश्चित दर के नीचे विक्री न करने को कहता है । Z इस बात को नहीं जानता था और वह Y से निश्चित दर से कम कीमत पर खरीदने की प्रसंविदा करता है । X इस प्रसंविदा को सम्मन्न करने के लिए बाध्य रहेगा ।

(ख) प्रदर्शन (Holding Out)— ‘प्रदर्शन’ (holding out) ‘पूर्वापिहित-गत्यावरोध’ (estoppel) से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, इसलिए हमलोग इसको उसी का अंग कह सकते हैं । इस नियम के अनुसार—

“यदि कोई व्यक्ति व्यक्त रूप से या अपने आचरण से किसी दूसरे व्यक्ति से यह स्वीकार कर ले कि अमुक व्यक्ति मेरा प्रतिनिधि है और यदि वह दूसरा व्यक्ति इस विश्वास पर उम प्रतिनिधि से कोई प्रसंविदा करे तो इसके लिए पहला व्यक्ति बाध्य होगा, यद्यपि यथार्थतः वह दूसरा व्यक्ति उसका प्रतिनिधि नहीं था ।”

प्रदर्शन के द्वारा एजेंसी में प्रधान के द्वारा निश्चयात्मक आचरण (affirmative conduct) की आवश्यकता होती है ।

**उदाहरण—** लोहे के एक व्यापारी ने अपने एक आदमी को कुछ लोहा X की दुकान से उधार खरीदने के लिए भेजा । बाद में उसने उसकी कीमत चुका दी । फिर, कुछ दिनों के बाद उसने उसी आदमी को नकद दाम के साथ कुछ लोहा खरीदने के लिए भेजा । उस आदमी ने पैसे रख लिये और लोहा उधार खरीद लिया । इसमें लोहे के व्यापारी को बाकी रकम चुकानी पड़ेगी, क्योंकि उसके पहले के कारोबार से यह साफ जाहिर होता है कि उस व्यक्ति को उधार माल खरीदने का अधिकार

\* “A person may hold out his agent as having a wider authority than he was given authority for.”

† (1892) 1 Q. B. 346.

‡ “A person may hold out another as his agent although that other has ceased to be so.”

था और उसकी एक लेनदेन (transaction) के लिए वह जिम्मेदार रह चुका था। इसलिए वैसे ही बाद की लेनदेन के लिए भी वह जिम्मेदार है।

(ग) कठिनाई की दशा में तथा आवश्यकतानुसार एजेंसी की स्थापना (Agency by Necessity)— धारा १८९ में लिखा गया है कि संकटकाल में दूसरे की सम्पत्ति के प्रति वैसी ही व्यवहार करना उचित है जैसा कि कोई अपनी सम्पत्ति के लिए वैसी हालत में करता है। ठीक इसी प्रकार, दूसरे की सम्पत्ति अपने अधीन रखनेवाला व्यक्ति उस सम्पत्ति के प्रति आवश्यकतानुसार व्यवहार कर सकता है।

अतः जब कोई सम्पत्ति किसी दूसरे व्यक्ति को दी जाती है तो उस व्यक्ति को यह अव्यक्त अधिकार उस सम्पत्ति के लिए मालिक से प्राप्त हो जाता है कि किसी संकटकाल में या आवश्यकता होने पर, जब कि वह इस बात की सूचना अपने मालिक को देने में असमर्थ हो, जैसा वह उचित समझे, कर सकता है।

यदि कोई आदमी अपनी स्त्री को घर से निकाल दे और उसे अलग रहने के लिए मजबूर करे तो वैसी दशा में स्त्री यदि चाहे तो अपने जीवन की आवश्यक वस्तुओं को अपने पति के नाम पर उधार ले सकती है, चाहे वह उसके पति के मन के विरुद्ध भी क्यों न हो।

जब समुद्र में किसी जहाज या माल पर अचानक आपत्ति आ जाती है और कप्तान उस बात की सूचना उसके मालिक के पास उचित समय के अन्दर न भेज सके तो वैसी हालत में उसे यह अधिकार है कि जहाज की समुद्रीय योग्यता के लिए या उस पर लदे हुए माल की रक्षा के लिए साख (credit) पर रुपया लेकर खर्च करे या जहाज की मरम्मत कराये जिसमें जहाज तथा माल की रक्षा हो।

इसी तरह सार्वजनिक वाहक (common carrier) मालधनी का एजेंट है और उसे यह अधिकार है कि यदि कोई आकस्मिक आपत्ति आ जाये तो वैसी दशा में वह माल की रक्षा के लिए उसकी साख (credit) पर रुपया लेकर उसे सुरक्षित रखे।

उदाहरण— X ने कुछ घोड़े गया स्टेशन से कलकत्ता भेजे। कलकत्ता पहुँचने पर घोड़ों को X स्टेशन से छुड़ा नहीं ले गया और न उसने उनके खाने-पीने का ही कोई प्रबन्ध किया। फलतः स्टेशन मास्टर को उन घोड़ों को खिलाना पड़ा, जिसमें उसे खर्च करना पड़ा। ऐसी दशा में स्टेशन मास्टर आवश्यकतानुसार X का एजेंट हुआ। अतएव स्टेशन मास्टर ने जो भी खर्च घोड़े को खिलाने में किया है, वह X को चुकाना पड़ेगा। कठिनाई की दशा में या आवश्यकतानुसार एजेंसी की स्थापना उस एजेंट के लिए भी हो सकती है जो अपने प्राप्त अधिकारों से बाहर का कार्य करता हो, यदि—

१. वह कार्य उसने आकस्मिक आपत्ति आने या आवश्यकता पड़ने पर किया है;
२. उस समय माल को सुरक्षित रखते हुए वह प्रधान के पास उस बात की सूचना नहीं भेज सकता है;
३. उसने वही किया है जो उचित था; और
४. उसने पूर्ण सद्भावना के साथ वैसा कार्य किया है।

### एजेंटों के भेद (Kinds of Agents)

एजेंटों का वर्गीकरण (classification) भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है जिनके प्रमुख भेद ये हैं—



१. **सरकारी या वैयक्तिक एजेंट (Public or Private Agents)**—सरकारी एजेंट वे हैं जो किसी राज्य के अधीन राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैयक्तिक एजेंट उन्हें कहते हैं जो किसी फर्म या कम्पनी या व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

२. **घरेलू या परदेशी एजेंट (Home Agents or Foreign Agents)**—घरेलू एजेंट उसे कहते हैं जो देश के भीतर ही एजेंसी-कार्य करता है तथा परदेशी एजेंट उसे कहते हैं जो देश के बाहर विदेश में अपने प्रधान का कार्य करता है।

३. **विशेष (Special), व्यापक (General) अथवा सर्वव्यापक (Universal) एजेंट**—जो व्यक्ति किसी एक कार्यविशेष के लिए नियुक्त किया जाता है उसे विशेष एजेंट कहते हैं। जो व्यक्ति अपने प्रधान की जगह पर हर तरह का कार्य करे उसे 'व्यापक' एजेंट कहते हैं। सर्वव्यापक एजेंट वह है जिसे प्रधान के द्वारा असीम अधिकार प्राप्त हैं और वह अपने प्रधान के लिए सब कुछ करने का अधिकारी है।

४. **व्यापारिक तथा अव्यापारिक एजेंट (Mercantile or Non-mercantile, Commercial or Non-commercial Agents)**—'व्यापारिक एजेंट' वह है जो किसी व्यापारी के द्वारा खरीद-विक्री करने के लिए नियुक्त किया जाये। ऐसे एजेंट उत्पादक और थोक विक्रेताओं के बीच मध्यस्थ (intermediary) का काम करते हैं।

'अव्यापारिक एजेंट' उम एजेंट को कहते हैं जो क्रेता तथा विक्रेता को मिलता न हो तथा वह प्रधान के लिए ऐसे कार्यों को करता हो जिनका सम्बन्ध व्यापार से कुछ भी नहीं हो, बल्कि जो प्रधान के अधिकारों तथा कर्तव्यों से सम्बद्ध हो।

**व्यापारिक एजेंटों के भेद (Kinds of Mercantile Agents)**

कोई भी व्यापारी जिसका बड़े पैमाने पर व्यापार होता हो, अपने व्यापार से सम्बद्ध सभी कार्यों के लिए अलग-अलग नाम का एजेंट बहाल करता है। माधारणतः व्यापारिक एजेंट निम्नांकित प्रकार के होते हैं—

(१) फैक्टर (factor), (२) दलाल या ब्रोकर (broker), (३) यात्रा करने वाले एजेंट (travelling agent), (४) फॉरवार्डिंग एजेंट (forwarding agent), (५) क्लियरिंग एजेंट (clearing agent), (६) डेल क्रेडियर (del-credere agent), (७) नीलाम करनेवाला (auctioneer), (८) बैंकर (banker), (९) शेयर विक्रेता (underwriter), (१०) आयात करनेवाला एजेंट (importing agent), (११) निर्यात करनेवाला एजेंट (exporting agent), (१२) स्टॉक ब्रोकर (Stock Broker)।

१. **फैक्टर (Factor)**—फैक्टर वह एजेंट है जिसको माल का कब्जा दे दिया जाता है और उसे उस माल को निजी नाम पर बेचने के लिए नियुक्त किया जाता है। फैक्टर को या तो माल दे दिया जाता है या कागज दे दिये जाते हैं जिनको उपस्थित करने पर माल लिया जा सकता है। वह माल की विक्री अपने नाम में करता है और इस सम्बन्ध में सारा उत्तरदायित्व उसी का होता है। वह आवश्यकता पड़ने पर खरीदार के ऊपर अपने नाम से मुकदमा चला सकता है और प्रसविदा तोड़ने पर स्वयं उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है। माल खरीदनेवाले को माल के असली स्वामी का नाम नहीं बताया जाता। यदि फैक्टर चाहे तो प्रधान के

विशेष एजेण्ट की हैसियत से माल की विक्री कर दे; उसी दशा में वह नहीं, वरन् उसका प्रधान उत्तरदायी होगा। फैंक्टर मूल्य का कुछ प्रतिशत कमीशन के रूप में लेता है।

२. **ब्रोकर या दलाल (Broker)**—ब्रोकर वह एजेण्ट है जिसे माल की विक्री के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए नियुक्त किया जाता है। ब्रोकर को माल का कब्जा नहीं दिया जाता। वह केवल माल की विक्री के लिए बातचीत करता है। माल का सौदा उसके प्रधान के नाम में ही होता है जो कि इस सम्बन्ध में उत्तरदायी होता है। ब्रोकर के द्वारा माल खरीदनेवाला व्यक्ति माल के स्वामी का नाम जान जाता है। ब्रोकर अपनी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप ब्रोकरेज (brokerage) या दलाली वसूल करता है।

३. **कमीशन एजेण्ट (Commission Agent)**—जब कमीशन देकर किसी खास काम को करने के लिए कोई एजेण्ट बहाल किया जाता है तो उसे कमीशन एजेण्ट कहते हैं। साधारणतया उसे अपने प्रधान के लिए माल खरीदने का काम सौपा जाता है। वह इस बात की चेष्टा करता है कि कम से कम दरों पर माल खरीदे। वह अपने प्रधान से माल की असली कीमत, खरीद के खर्च और कमीशन वसूल करता है। किन्तु 'कमीशन एजेण्ट' विस्तृत अर्थ का शब्द है और इसके अन्तर्गत वे सभी एजेण्ट आ जाते हैं जो कमीशन के बदले में काम करते हैं।

४. **फॉरवार्डिंग एजेण्ट (Forwarding agent)**—यह विदेशों में माल भेजने का सारा काम करता है। यह रेलवे स्टेशन से सामान लेता है, जहाज से भेजने का सारा प्रबन्ध करता है, निर्यात की चुंगी अदा करता है और अगर दूसरे आवश्यक कार्य होते हैं तो वह भी करता है। ऐसे एजेण्ट फॉरवार्डिंग एजेण्ट (forwarding agent) कहलाते हैं।

५. **क्लियरिंग एजेण्ट (Clearing Agent)**—जिस प्रकार विदेशों को माल भेजनेवाला फॉरवार्डिंग एजेण्ट रखा जाता है, उसी प्रकार देश में माल आयात करने वाला एक क्लियरिंग एजेण्ट बहाल करता है। आयातकर्ता के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह स्वयं बन्दरगाह पर जाय और सामान की सुपुर्दगी ले। वह एक एजेण्ट नियुक्त करता है जो जहाज से माल की सुपुर्दगी लेता है, आयात-कर देता है और आयात किया गया माल रेल द्वारा व्यापारी के यहाँ भेज देता है। ऐसे एजेण्ट क्लियरिंग एजेण्ट (Clearing Agent) कहलाते हैं।

६. **डेल क्रेडियर एजेण्ट (Del-Credere Agent)**—डेल-क्रेडियर एजेण्ट माल बेचने के लिए नियुक्त किया जाता है और वह एक विशेष कमीशन, जिसे डेल-क्रेडियर कमीशन कहते हैं, के बदले में इस बात की जिम्मेदारी लेता है कि यदि उसके द्वारा बेचे गये माल का रुपया न मिला तो वह इस प्रकार हुई क्षति की पूर्ति कर देगा। साधारणतः विक्री करनेवाला एजेण्ट इस बात का जिम्मेदार नहीं होता कि खरीदार उधार रुपया अदा करेगा ही, किन्तु यह साधारण प्रथा है कि प्रधान जा कि अपने एजेण्ट की उधार विक्री पर विश्वास करता है, अपने एजेण्ट को रुपये की वसूली के लिए जिम्मेदार कर देना चाहता है। इसलिए वह एजेण्ट को विशेष कमीशन देकर उसके द्वारा होनेवाली उधार विक्री के लिए उसे जिम्मेदार ठहरा लेता है। यह विशेष 'डेल-क्रेडियर कमीशन' कहलाता है।

७. **नीलाम करनेवाला (Auctioneer)**—नीलाम करनेवाला वह एजेण्ट है जिसको आम जनता में नीलाम द्वारा सामान बेचने का अधिकार दिया जाता है। वह सबसे ऊँची बोली बोलनेवाले के हाथ माल बेचता है और उसमें से अपना

कमीशन काटकर शेष रुपया अपने प्रधान को दे देता है। साधारणतः नीलाम करने वाले को प्रधान के उन आदेशों का पालन करना पड़ता है।

८. बैंकर (Banker)—बैंक में जो व्यक्ति अपना खाता खोले हुए हैं वे सिर्फ रुपयों की लेनदेन ही नहीं करते, बल्कि बैंक को उनके लिए सिक्योरिटी (security) खरीदने, चेक, बिल ऑफ एक्सचेंज और बीमा कंपनियों का प्रीमियम इत्यादि का रुपया वसूल करने का कार्य भी करना पड़ता है। अतः इन कार्यों को करने के लिए बैंक अपने ग्राहकों का एजेंट है। यह तय है कि वह प्रत्येक कार्य के लिए कमीशन लेता है।

९. शेयर-विक्रेता (Underwriter)—शेयर-विक्रेता वे हैं जो किसी संयुक्त पूंजी की कंपनी (Joint Stock Company) के शेयर कमीशन पर बेचने की गारण्टी देते हैं और इसके लिए उन्हें जो कमीशन दिया जाता है उसे शेयर बेचने का कमीशन (underwriter's commission) कहा जाता है।

१०. आयात करनेवाला एजेंट (Importing Agent)—इस तरह के एजेंट का प्रधान कहीं दूसरी जगह विदेश में रहता है। इसका काम माल को आयात करके तथा बेच कर विक्री की रकम को प्रधान के पास भेज देना है।

११. निर्यात करनेवाला एजेंट (Exporting Agent)—जब कोई व्यक्ति दूसरे देशों से अपने प्रधान के लिए माल खरीद कर उसके पास भेजने का कार्य करता है तो उसे निर्यात करनेवाला एजेंट कहते हैं। अक्सर बड़े-बड़े व्यापारी विदेशों से कच्चा माल मँगाने के लिए इन्हें बहाल करते हैं।

१२. स्टॉक ब्रोकर्स (Stock Brokers)—बड़े या छोटे स्टॉक-एक्सचेंज (stock-exchange) अपने प्रधान के लिए स्टॉक खरीदनेवाले और बेचनेवाले स्टॉक ब्रोकर होते हैं। ये उस एक्सचेंज के मेम्बर होते हैं और खरीद-विक्री के व्यवहारों के लिए अपने प्रधान से कमीशन लेते हैं।

### अव्यापारिक एजेंटों के भेद

अव्यापारिक एजेंट प्रधान के व्यापारिक कार्यों को नहीं करता, बल्कि जब व्यापार में व्यापारियों की प्रसविदा सम्पन्न नहीं हो पाती तो मुकदमा करने के लिए किमी एजेंट—जैसे वकील, एडवोकेट वगैरह को—नियुक्त किया जाता है। इसके अलावा, किसी-किसी राज्य का संरक्षण किसी दूसरे व्यक्ति से करवाना, पुरुष की गैरहाजिरी में स्त्री को घर का कामकाज देखने या चलाने का भार सौंपना इत्यादि अव्यापारिक एजेंटों की बहाली के उदाहरण हैं। साधारणतः बैरिस्टर, एजेंट तथा व्यावहारिक न्यायवादी (Barrister, Advocate and Attorney) को अपने मुवक्किल के लिए दोनों पक्षों में समझौता कराने का अधिकार है, किन्तु वकील बिना अपने मुवक्किल की स्वीकृति के समझौता नहीं कर सकता।

### एजेंट के रूप में पत्नी (Wife as an Agent)

अगर कोई स्त्री अपने पति की तरफ से घर के सभी कार्य खुद करती है और देखती है और जरूरत पड़ने पर किंगी से कर्ज भी लेती है तब उसके ऐसे कर्ज के लिए उसका पति जिम्मेदार होता है हालाँकि उसने कर्ज लेते समय पति से उसकी इजाजत नहीं ली थी। इसी तरह कुछ समय के लिए पति के बाहर चले जाने पर कोई स्त्री पति की साख (credit) पर जीवन की आवश्यक वस्तुओं को खरीद सकती है तथा संकटकाल में गहनों को बन्धक रख सकती है। अतः आवश्यकता पड़ने पर

अथवा मंकटकाल में प्रत्येक स्त्री अपने पति का एजेंट बन सकती है। यदि कोई पति अपनी स्त्री को बिना उसकी गलती के घर से निकाल दे और उसे अलग रहने पर मजबूर करे तो वह स्त्री अपने जीवन की आवश्यक वस्तुओं को अपने पति के नाम पर उधार ले सकती है; चाहे वह पति के मन के विरुद्ध ही क्यों न हो। लेकिन अगर कोई स्त्री अपने मन में पति से अलग रहती है जो न्यायपूर्ण न हो, तो पति का उत्तरदायित्व उस स्त्री की आवश्यक वस्तुओं के लिए भी न होगा, क्योंकि पति पर किसी प्रकार से वैसी स्त्री को खिलाने-पिलाने का दायित्व नहीं है। अपने स्त्री के ऋण के लिए कोई पति उत्तरदायी होगा या नहीं, यह एजेन्सी के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके सम्बन्ध में इल हावाद हाईकोर्ट ने गिरधारी लाल बनाम क्राफोर्ड (Girdhari Lal vs. Crawford 1887. 9 Alld. 146) के मुकदमे में फैमला दिया था कि “पति केवल वैनी दशा में बाध्य किया जा सकता है जब कि साबित हो जाय कि जो कुछ भी स्त्री ने किया है वह अपने पति की आज्ञा से किया है, चाहे यह आज्ञा स्पष्ट रूप से दी गयी हो या स्थितियों से व्यक्त हो।” जब पति ने अपनी स्त्री को व्यक्त (expressly) रूप में कर्ज लेने अथवा अपनी साख पर व्यवहार करने की आज्ञा दी हो तब यह दायी होगा ही, किन्तु यदि पति ने अपनी स्त्री को अव्यक्त रूप से गभित अधिकार (implied authority) दिया हो तब यह कहना कठिन हो जाता है कि वह उत्तरदायी होगा या नहीं। किन्तु जब पति पत्नी एक साथ रहते हो तो साधारणतः पत्नी को अपने पति के नाम पर जीवन की आवश्यकताओं को खरीदने का गभित अधिकार है। किन्तु पति अगर चाहें तो वह उत्तरदायित्व से वरी भी हो सकता है यदि वह निम्नलिखित में से किसी एक बात को साबित कर दे—

१. उसने स्पष्ट रूप से अपनी स्त्री को कर्ज लेने अथवा उधार सौदा खरीदने से मना कर दिया था;
२. जो सामान खरीदे गये थे वे जीवनयापन के लिए आवश्यक नहीं थे;
३. आवश्यक वस्तुओं को खरीदने के लिए उसने पर्याप्त रकम अपनी स्त्री को दे दी थी तथा इस बात की जानकारी विक्रेता को भी थी;
४. उसने व्यापारियों को स्पष्ट रूप से उधार देने से मना कर दिया था और
५. यदि स्त्री अपनी मर्जी से अपने पति का साथ छोड़कर कहीं और अलग रहती हो।

#### • एजेंट के अधिकार (Authority of Agent)

भारतीय प्रसंविदा-विधान के अनुसार एजेंट को निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं—

१. स्पष्ट तथा गभित अधिकार (Expressed or Implied Authority) [Sec. 186 & 187]—धारा १८७ के अनुसार एजेंट के अधिकार स्पष्ट (expressed) या गभित (implied) हो सकते हैं। स्पष्ट अधिकार वह अधिकार है जिसे प्रधान ने लिखकर या कहकर अपने एजेंट को बता दिया हो। गभित अधिकार उसे कहते हैं जो उसे समय की स्थिति तथा व्यवहार की साधारण प्रगति की परिस्थितियों से प्राप्त हों। उदाहरणार्थ, X पटना में रहता है किन्तु वह गया में दूकान करता है और कभी-कभी दूकान का निरीक्षण करने जाता है। दूकान का प्रबन्ध Y करता है। Y दूकान के लिए X के नाम में Z से माल मँगाया करता है और वह X की जानकारी से माल की कीमत X के क्रय से भुगतान करता है। इसलिए यहाँ पर Y को दूकान के लिए

X के नाम Z से माल मँगाने का गर्भित (implied) अधिकार है।

२. अधिकार की सीमा (Extent of Agent's Authority) (sec. 188)—धारा १८८ के अनुसार एक एजेंट को, जिसे किसी कार्य का अधिकार प्राप्त हो, यह भी अधिकार प्राप्त है कि मूल कार्य की सफलता के लिए दूसरे वैधानिक कार्य आवश्यकता पड़ने पर करे। इसलिए एक एजेंट को, जिसे कोई कारोबार करने या चलाने का अधिकार है, उस कारोबार से सम्बद्ध ऐसे सभी वैधानिक कार्य करने का अधिकार है जो उसके लिए आवश्यक हो या जो ऐसे कारोबार को चलाने में साधारणतया किये जाते हैं।

उदाहरण—(i) X से कोई लंदन का व्यापारी कर्ज लिये हुए है। अतः X, Y को जो लंदन में रहता है, कर्ज वसूल करने के लिए बहाल करता है। ऐसी दशा में Y को यह अधिकार प्राप्त है कि कर्ज वसूल करने के लिए जो भी वैधानिक कार्य करना आवश्यक हो, उसे वह करे अर्थात् उसे कोई वकील बहाल कर मुकदमा लड़ना हो तो वह उसे बहाल करके मुकदमा लड़ सकता है।

(ii) X, Y को अपना एजेंट बनाता है और उसे जहाज बनाने का कार्यभार सौंप देता है। ऐसी दशा में Y को यह अधिकार हो जाता है कि वह लकड़ी तथा दूसरी चीजें खरीदे और मजदूरों को बहाल करे क्योंकि जहाज बनाने के लिए इन सब चीजों का होना आवश्यक है।

३. संकटकाल में एजेंट के अधिकार (धारा १८९) (Agent's Authority in an Emergency : Sec. 189)—धारा १८९ के अनुसार एजेंट को संकटकाल में या आकस्मिक आवश्यकता के समय अपने प्रधान के माल को क्षति या हानि से बचाने के लिए ऐसे सभी कार्य करने का अधिकार है जिन्हें वैसी ही दशा में कोई बुद्धिवाला व्यक्ति अपने निजी मामले में करता।

उदाहरण—गया का व्यापारी X, Y के यहाँ जो कलकत्ते में रहता है, यह कहकर कुछ शराब भेजता है कि वह (Y) उस शराब को Z के यहाँ जो कटक में रहता है, भेज दे। जब Y को शराब मिलती है तो वह देखता है कि यदि उसे Z के यहाँ भेजा जायगा तो वह वहाँ पहुँचने तक सड़ जायगी। अतः ऐसी हालत में X को क्षति से बचाने के लिए वह (Y) शराब कलकत्ते में बेच दे सकता है।

४. एजेंट को प्रतिनिधि बहाल करने का अधिकार (Delegation of Authority)—धारा १९० के अनुसार जब किसी एजेंट ने स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से किसी काम को स्वयं पूरा करने का उत्तरदायित्व लिया हो या वादा किया हो तो वह किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त करके उस कार्य को नहीं करा सकता। रोमन भाषा में यह कहावत प्रचलित है—“*Delegatus non potest Delegare*”—A delegate cannot further delegate.” इसका मतलब यह है कि जो स्वयं प्रतिनिधि है, वह प्रतिनिधि नियुक्त नहीं कर सकता। इसलिए एक एजेंट जो स्वयं अपने प्रधान का प्रतिनिधि है, आने उत्तरदायित्व का अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं सौंप सकता।

अपवाद (Exception)—इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं जो निम्नलिखित हैं—

- (i) जब प्रधान ने एजेंट को ऐसा करने का अधिकार दे दिया हो;
- (ii) जब व्यापारिक प्रथा प्रतिनिधि बहाल करने की अनुमति दे;
- (iii) जब एजेंसी इस प्रकृति की हो कि उसको पूरा करने के लिए एजेंट को एक प्रतिनिधि बहाल करना आवश्यक हो;
- (iv) जब कोई आफिस (office) का काम हो तथा उस कार्य में किसी विशिष्ट

प्रकार के विवेक या बुद्धि की आवश्यकता न हो; जैसे—किरानी का काम और (v) जब कोई आकस्मिक संकटकाल आ पड़े और एजेण्ट को अपना प्रतिनिधित्व बहाल करना जरूरी हो।

### अन्वयिकर्ता (Sub-agent)

भारतीय प्रसंविदा-विधान की १९१वी धारा के अनुसार 'सब-एजेण्ट' (sub-agent) वह व्यक्ति है जिसे एजेण्ट बहाल करना है तथा जो मूल एजेण्ट के अधीन रहकर एजेंसी के कामों में सहायता करता हो।"\*

उदाहरण—अगर X, मद्रास का एक व्यापारी, दिल्ली के किसी व्यापारी Y को एजेण्ट बहालकर अपने यहाँ के तैयार माल की बिक्री करने की आज्ञा देता है तो यह काम करने के लिए कुछ ऐसे कार्य भी करना आवश्यक है जिसे साधारणतः एक बैक करता है। अतः दिल्ली का व्यापारी Z नामक एक बैकर को बहाल करता है। यहाँ Z सब-एजेण्ट (sub-agent) कहलायेगा।

निम्नलिखित परिस्थितियों में कोई भी एजेण्ट अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए तब तक सब-एजेण्ट की बहाली कर सकता है जब तक कि स्पष्ट रूप से उसे ऐसा करने से रोक न दिया गया हो—

(i) जब व्यवसाय की सामान्य प्रचलित प्रथा के अनुसार एजेण्ट बहाल करने का अधिकार प्राप्त हो;

(ii) जब प्रधान कार्य के निष्पादन के लिए सब-एजेण्ट की बहाली आवश्यक हो;

(iii) जब कार्य केवल लिपिक-प्रकृति (clerical nature) का हो और जिसके लिए किसी प्रकार की समझ-बूझ या गोपनीयता की आवश्यकता न हो;

(iv) जब प्रधान ने स्पष्ट या गम्भीर रूप से ऐसे सब-एजेण्ट की बहाली के लिए अपनी सहमति दे दी हो और

(v) जब अकस्मात् कोई आपत्कालीन स्थिति उत्पन्न हो गयी हो।

प्रधान एवं सब-एजेण्ट के सम्बन्ध इस बात पर निर्भर करते हैं कि एजेण्ट को सब-एजेण्ट बहाल करने का अधिकार था अथवा नहीं और अगर अधिकार था तो सब-एजेण्ट की बहाली नियमानुसार हुई है या नहीं।

जब सब-एजेण्ट की बहाली नियमानुसार हुई हो तो जहाँ तक अन्य पक्षकारों का सवाल है, सब-एजेण्ट, प्रधान का प्रतिनिधित्व उसी प्रकार करेगा और उसके कार्यों के लिए प्रधान उसी प्रकार उत्तरदायी होगा जैसे कि वह प्रधान द्वारा मूलतः बहाल किया गया एजेण्ट हो। इस तरह, सब-एजेण्ट के सभी वचनों के निष्पादन के लिए प्रधान बाध्य होता है। परन्तु प्रधान, सब-एजेण्ट को कण्ट या जान-बूझकर की गयी हानियों के अलावा, अन्य कामों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है।

[धारा १९२]

जब किसी एजेण्ट ने बगैर किसी प्रकार के प्राधिकार (authority) के किसी व्यक्ति को सब-एजेण्ट के रूप में काम करने के लिए बहाल कर दिया हो, अर्थात् सब-एजेण्ट की बहाली वैधानिक नहीं रही हो, तो उसे प्रधान का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा अर्थात् प्रधान, सब-एजेण्ट के कामों के लिए

\* "A Sub-agent is a person employed by and acting under the control of the original agent in the business of the agency." (Sec. 191)

किसी प्रकार से भी उत्तरदायी नहीं होगा और न वह सब-एजेंट को किसी भूल अथवा गलती के लिए उत्तरदायी ठहरा सकेगा। प्रधान तथा अन्य पक्ष दोनों के प्रति सब-एजेंट के दुष्कार्यों के लिए मूल-एजेंट ही उत्तरदायी होगा।

[धारा १९३]

**एजेंट तथा सब-एजेंट का पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual relation between agent and sub-agent)**

भारतीय प्रसंविदा-विधान की धारा १९० में यह कहा गया है कि सब एजेंट (sub-agent) मूल एजेंट (original agent) के अधीन रहकर एजेंसी का कार्य करता है, इसलिए एजेंट तथा सब-एजेंट का पारस्परिक सम्बन्ध उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार का सम्बन्ध एक प्रधान और उसके एजेंट के बीच होता है। चूंकि सब-एजेंट को प्रधान बहाल नहीं करता, इसलिए उसका सम्बन्ध प्रधान से नहीं रहता और न वह अपने पारितोषिक का पैसा प्रधान से माँग सकता है। उसके पारितोषिक के लिए एजेंट ही जिम्मेदार है।

अगर एजेंट अपने प्रधान से बिना हुक्म या अधिकार पाये ही सब-एजेंट और एजेंट को बहाल करता है तो वैसी दशा में एजेंट के बीच प्रधान एजेंट के जैसा व्यवहार रहेगा और एजेंसी के हर एक कार्य के लिए मूल-एजेंट ही प्रधान का और तीसरे पक्षों का उत्तरदायी होगा। [धारा १९३]

**प्रधान और सब-एजेंट का पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual relation between principal and sub-agent)**

प्रसंविदा-विधान की धारा १९२ के अनुसार यदि सब-एजेंट की बहाली उचित ढंग एवं नियम के अनुसार हुई है तो वैसी दशा में यदि सब-एजेंट ने प्रधान के लिए प्रतिनिधित्व कर किसी तीसरे व्यक्ति से व्यवहार (transaction) किया है तो ऐसी परिस्थिति में प्रधान ऐसे सब-एजेंट के कार्यों के लिए उसी प्रकार बाध्य तथा दायी होता है, जिस प्रकार वह अपने द्वारा बहाल किये हुए एजेंट के कार्यों के लिए हो सकता है। इसके अलावा, सब-एजेंट के कार्यों के लिए, एजेंट प्रधान का उत्तरदायी होता है, किन्तु सब-एजेंट प्रधान का स्वयं उत्तरदायी नहीं होता। परन्तु सब-एजेंट जहाँ कपट से जानबूझकर गलती करता है, वहाँ स्वयं ही उस कपट या गलती के लिए प्रधान का उत्तरदायी होता है। अतः सब-एजेंट अपने पारिश्रमिक तथा पारितोषिक के लिए प्रधान पर मुकदमा नहीं चला सकता और न प्रधान ही सब-एजेंट पर मुकदमा चलाकर किसी तरह से बाकी रकम वसूल कर सकता है। दोनों (सब-एजेंट और प्रधान) अपने-अपने अधिकारों के लिए एजेंट को उत्तरदायी ठहरा सकते हैं, क्योंकि एजेंट ही उन दोनों का नजदीकी (immediate) पक्ष है। वास्तव में सब-एजेंट का कोई सम्बन्ध प्रधान से नहीं रहता क्योंकि प्रधान उसे बहाल नहीं करता। जब सब-एजेंट की बहाली उचित ढंग से तथा प्रधान की राय से नहीं हुई हो तो ऐसी दशा में सब-एजेंट अपने प्रधान का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, बल्कि वह अपने एजेंट का प्रतिनिधित्व उसे ही प्रधान मानकर करता है। अतः ऐसे एजेंट के कार्यों से प्रधान को उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता और न वही प्रधान को उत्तरदायी ठहरा सकता है। यही नहीं, सब-एजेंट द्वारा की गयी गलती या कपट के लिए भी प्रधान उसे दायी नहीं ठहरा सकता। पर इतना

अवश्य है कि कोई तीसरा पक्ष ऐसे सब-एजेण्ट के कार्यों से प्रभावित होने पर, ऐसे सब एजेण्ट के कार्यों के लिए, एजेण्ट को उत्तरदायी ठहरा सकता है तथा उनसे नुकसान भी वसूल सकता है।

५. एजेण्ट का नामकरण, संकलन या प्रतिष्ठापन करने का अधिकार (Authority to appoint, select and to nominate)—धारा १९४ के अनुसार यदि एजेण्ट को किसी दूसरे व्यक्ति का नाम प्रधान के पास देने का स्पष्ट या गर्भित अधिकार प्राप्त हो और वह दूसरा व्यक्ति प्रधान के लिए एजेंसी का कार्य करता रहे तो यदि एजेण्ट ऐसा नाम दे तो वह दूसरा व्यक्ति 'सब-एजेण्ट' नहीं है बल्कि प्रधान का ही एजेण्ट है जिसे कोई खास कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया है।

उदाहरण—(i) X अपने वकील से अपनी सम्पत्ति नीलाम के द्वारा बेचने के लिए एक नीलाम करनेवाला व्यक्ति (auctioneer) बहाल करने को कहता है। Y, Z को नीलाम करने के लिए चुनता है (selects)। ऐसी दशा में वह 'सब-एजेण्ट' नहीं है, बल्कि प्रधान का एजेण्ट है जो उसके लिए नीलाम करने का कार्य करेगा।

(ii) X बम्बई के एक व्यापारी Y को Smith & Co. से कर्ज वसूल करने के लिए एक आदमी बहाल करने का अधिकार देता है। Y इस कार्य को करने के लिए Z से कहता है। ऐसी दशा में Z 'सब-एजेण्ट' नहीं है, बल्कि X का वकील है।

संकलन के समय एजेण्ट का कर्तव्य (Duty of an agent at the time of selection)—जब कोई एजेण्ट अपने प्रधान की आज्ञा से किसी व्यक्ति का चुनाव करता है तो उसे चुनाव करते समय उतने ही विवेक से काम लेना चाहिए जितना कि वैसी परिस्थिति में अपने लिए एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति करता है, और यदि ऐसा करता है तो वह ऐसे चुने हुए एजेण्ट के कार्यों तथा असावधानी (negligence) के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

उदाहरण—(i) X, Y नामक व्यापारी को अपने लिए एक जहाज खरीदने को कहता है। Y इस कार्य के लिए ख्याति-प्राप्त जहाज-सर्वेक्षक (a ship-surveyer of good reputation) Z को बहाल करता है। Z जहाज के चुनाव में गलती करता है जिससे जहाज समुद्र में चलने के अयोग्य (unseaworthy) सिद्ध हो जाता है तथा नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में Y, X के लिए उत्तरदायी नहीं होगा बल्कि Z उत्तरदायी होगा।

(ii) X अपना कुछ माल बेचने के लिए Y के यहाँ भेजता है। कुछ दिनों बाद Y यह माल नीलाम से बेचने के लिए एक नीलाम करनेवाले व्यक्ति (auctioneer) को बहाल करता है और उसे विक्री का पैसा स्वयं वसूल करने को कहता है। माल बेचने के बाद नीलाम करनेवाला व्यक्ति X को बगैर हिसाब दिये ही दिवालिया हो जाता है। ऐसी दशा में Y, X का जिम्मेदार नहीं होगा।

### स्थानापन्न एजेण्ट (Substituted Agent)

यदि किसी एजेण्ट के एजेंसी का काम छोड़ देने पर उसको जगह पर कोई दूसरा व्यक्ति उस काम को करता है तो वह दूसरा व्यक्ति 'स्थानापन्न एजेण्ट' (substituted agent) कहा जाता है (धारा १९४)। अतः स्थानापन्न एजेण्ट मूल एजेण्ट के स्थान पर बहाल किया जाता है और नियमानुसार मूल एजेण्ट की तरह स्थानापन्न एजेण्ट भी प्रधान को अपने पारितोषिक के लिए बाध्य कर सकता है एवं प्रधान भी सही हिसाब और गलतियों के लिए स्थानापन्न एजेण्ट को उत्तरदायी



बना सकता है। प्रतिस्थापित (nominated) एजेंट को स्थानापन्न एजेंट भी कहते हैं, क्योंकि उसमें भी संकलन के बाद मूल एजेंट का कार्य समाप्त हो जाता है। 'सब-एजेंट' और 'स्थानापन्न एजेंट' में अन्तर (Distinction between Sub-Agent and Substituted Agent)—'सब-एजेंट' और 'स्थानापन्न एजेंट' में निम्नलिखित विभेद है—

१. साधारणतः किसी एजेंट के एजेंसी का काम छोड़ देने पर उसकी जगह पर स्थानापन्न एजेंट काम करता है अथवा जहाँ पर एजेंट काम नहीं कर सकता वहाँ पर स्थानापन्न एजेंट स्वतन्त्र रूप से प्रधान के एजेंट के समान काम करता है किन्तु सब-एजेंट, एजेंट के अधीन काम करता है।

२. स्थानापन्न एजेंट, मूल एजेंट के चले जाने के बाद उसका स्थान ग्रहण करता है और वह अपना मिह्नताना या पारितोषिक प्रधान से माँग सकता है, किन्तु सब-एजेंट यह मिह्नताना नहीं माँग सकता है।

३. प्रधान स्थानापन्न एजेंट को उसके कार्यों के लिए तथा असावधानी के लिए दायी ठहरा सकता है, किन्तु सब-एजेंट को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है।

४. सब-एजेंट को एजेंट केवल उसी समय नियुक्त कर सकता है जबकि नियुक्ति व्यवसाय की साधारण प्रथा के अनुसार उचित हो अथवा एजेंसी की प्रकृति के अनुसार आवश्यक हो। किन्तु स्थानापन्न एजेंट ऐसे एजेंट द्वारा नियुक्त किया जाता है जिसे प्रधान से ऐसा करने का स्पष्ट या गम्भीर अधिकार प्राप्त हो।

### पुष्टिकरण का सिद्धांत (Doctrine of Ratification)

पुष्टिकरण (doctrine of ratification) के अनुसार जिस एजेंसी की स्थापना होती है उसे 'Fix post facto agency' अर्थात् 'घटित हो जाने के उपरान्त की एजेंसी' भी कहते हैं। इसका वर्णन धारा १९६ से २०० में किया गया है जिसकी महत्वपूर्ण व्याख्या नीचे की जाती है—

जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए बिना किसी पूर्वाधिकार के कोई कार्य करता है और यदि वह कार्य बाद में दूसरे व्यक्ति द्वारा स्पष्ट रूप से (लिखकर या कहकर) या अपने आचरण से मंजूर कर लिया जाता है तो वह दूसरा व्यक्ति इस स्वीकृति के द्वारा प्रथम व्यक्ति के कार्य से बाध्य किया जायगा तथा इस हालत में हम कह सकते हैं कि पुष्टिकरण के द्वारा एजेंसी की स्थापना हुई।

उदाहरण—(i) X बिना Y से अधिकार पाये उनके लिए कुछ माल की खरीद करता है। कुछ दिनों बाद Y उस माल को Z के हाथ अपने नाम से बेच देता है, तो यहाँ Y का आचरण इस प्रकार का है जिससे यह पता चलता है कि उसने X के कार्य को स्वीकार कर लिया है।

(ii) X बगैर Y से अधिकार पाये उसका (Y का) १,००० रु० Z को कर्ज देता है। बाद में Y, Z से कर्ज का ब्याज ले लेता है। इससे यह साफ जाहिर होता है कि Y ने X के कार्य की अपने आचरण द्वारा पुष्टि करके अपनी स्वीकृति दे दी।

### पुष्टिकरण को बाध्य करने के लिए आवश्यक शर्तें (Conditions or Rules for a Valid Ratification)

१. जिस दिन से एजेंट ने काम किया उसी दिन से एजेंसी की स्थापना हो जाती है, न कि पुष्टिकरण के दिन से।

२. जिस समय एजेण्ट कार्य करता है उस समय प्रधान का अस्तित्व (existence) होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ Kelner vs. Bakster\* के मुकदमे के फसले के अनुसार कोई कम्पनी कानून की दृष्टि में स्थापित होने के पहले ही किसी प्रसविदा की पुष्टि नहीं कर सकती है। अतः जो काम हुआ हो, या होता है उस समय प्रधान का अस्तित्व (existence) होना भी जरूरी है।

३. पुष्टिकरण के समय प्रधान को कार्य का पूरा विवरण अच्छी तरह मालूम हो।†

४. प्रधान को एजेण्ट के पूर्ण कामों का पुष्टिकरण करना पड़ेगा, किसी हिस्से या टुकड़े का नहीं।

५. एजेंसी की प्रसविदा इस तरह की न हो जो शुरू से ही अमान्य (void) हो। उदाहरण के लिए जाली दस्तखत का पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता। इसी तरह, कम्पनी के एजेण्ट के द्वारा किये गये वैसे कार्यों का पुष्टीकरण नहीं किया जा सकता। इसी तरह कम्पनी के एजेण्ट के द्वारा किये गये वैसे कार्यों का पुष्टीकरण नहीं किया जा सकता है जो कम्पनी के मेमोरेण्डम (Memorandum of Association) के उद्देश्याचरण (object clause) में नहीं दिया गया।‡

६. पुष्टिकरण उचित अवधि के अन्तर्गत हो।

७. पुष्टिकरण की स्पष्टता जाहिर हो।

८. काम इस तरह का नहीं होना चाहिए जिससे तीसरे पक्ष को उसके पुष्टीकरण से नुकसान हो या उसके अधिकार या हित का नाश हो।\*\*

उदाहरण—X बगैर Y से अधिकार पाये Z से Y की उस सम्पत्ति को माँगता है जो उसने Y से कुछ दिन पूर्व अपने इस्तेमाल के लिए निर्मूल्य ली थी। X के माँगने के अधिकार का पुष्टिकरण Y, Z को उत्तरदायी बनाने के लिए हर्गिज नहीं कर सकता है।

**निम्नलिखित कार्यों का पुष्टिकरण (Ratification) नहीं हो सकता—**१. वह कार्य, जो शुरू से ही अमान्य या निष्प्रभाव है, उसका पुष्टिकरण नहीं हो सकता।

२. वह कार्य, जिसके स्वीकार करने में एक तीसरा व्यक्ति हानि के लिए उत्तरदायी बताया जाय उसकी पुष्टि नहीं हो सकती।

३. धारा २०० के अनुसार उस कार्य की पुष्टि नहीं की जा सकती जिसके द्वारा किसी हित और अधिकार का अन्त हो जाय।

उदाहरण—B, A को अपनी जमीन का पट्टा दे रहा है जिसका अन्त तीन मास की नोटिस पर हो सकता है। C, जो कि अनधिकृत (unauthorised) व्यक्ति है, A को पट्टा-समाप्ति की नोटिस देता है। B इस नोटिस की पुष्टि नहीं कर सकता।

**पारस्परिक अधिकार एवं कर्तव्य (Mutual Rights & Duties) (धारा २११-२१९)**

अपने प्रधान के प्रति एजेण्ट के निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं—

१. प्रधान के आदेशानुसार काम करना (To work according to the

\* Kelner vs. Bakster (1367) L. R. 2 C. P. 175.

† Section 198.

‡ Section 199.

\*\* Section 200.

instructions of the principal)—धारा २११ के अनुसार एजेंट को प्रधान के आदेशानुसार एजेंसी का काम करना चाहिए, क्योंकि अगर वह उनके आदेशानुसार काम नहीं करता है और व्यापार में कोई हानि हो गयी तो उसका देनदार एजेंट होगा और यदि कोई लाभ हुआ तब उस लाभ का हकदार प्रधान ही होगा।

**उदाहरण—**X ने अपने एजेंट Y को १०,००० रुपये बिहार बैंक में जमा करने का आदेश दिया और एजेंट ने नाथ बैंक में जमा कर दिया। तो ऐसी स्थिति में अगर नाथ बैंक फेल हो जाय तब एजेंट को क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

**२. आदेश की गैरहाजिरी में साधारण रिवाजों का अनुकरण करना (To follow Customs in the absence of instructions)—**धारा २११ ने ही अपनी दूसरी लाइन में बताया है कि यदि प्रधान ने एजेंट को व्यापार से सम्बद्ध कोई आदेश न दिया हो तो वैसी दशा में एजेंट को वहाँ की प्रथा के अनुसार तथा व्यापार-सम्बन्धी रीति-रिवाजों के अनुसार काम करना चाहिए। यदि एजेंट ऐसा नहीं करता है और इससे प्रधान को नुकसान उठाना पड़ता है तो उस नुकसान के लिए वह उत्तरदायी होगा तथा उससे लाभ होने पर प्रधान को दे देना होगा।

**उदाहरण—**X, Y के लिए एजेंट का काम करता है। जो काम X कर रहा है वैसे काम में यहाँ रिवाज था कि एजेंट के पास जो भी रुपये रहेंगे उनको वह व्याज पर विनियुक्त (invest) कर देगा। X के पास कुछ रुपये रहते हैं और उनका वह विनियोग नहीं करता है। इस हालत में X को जितना व्याज मिला होगा या मिलता, देना पड़ेगा।

**३ उचित विवेक, परिश्रम तथा कौशल से कार्य करना (To carry out the work with reasonable care, skill and diligence)—**एजेंट को चाहिए कि अपने प्रधान के कार्य को पूरी कुशलता तथा तत्परता के साथ करे। उसको पूरा करने के लिए उसे पूरा परिश्रम करना चाहिए। Misconduct से किसी काम में गलती कर दे तो उसके लिए उत्तरदायी होना पड़ेगा तथा उसे क्षति की पूर्ति भी करनी पड़ेगी। [धारा २१२]

**उदाहरण—**(क) X ने अपने एजेंट Y को साख (credit) पर साल बेचने का अधिकार दिया। Y ने Z के हाथ में ५,००० रुपये का माल बिना उसकी आर्थिक दशा का पता लगाये ही बेच दिया। जब यह माल Z को बेचा जा रहा था तब Z दिवालिया हो गया था। इस हालत में Y का यह कर्तव्य था कि उसके हाथ माल न बेचे। अतः कर्तव्यच्युत होने के कारण अब Y को ५,००० रु० अपने प्रधान को देना पड़ेगा।

(ख) जौन ने स्मिथ नामक एक बीमा के दलाल (insurance broker) को एक जहाज का बीमा कराने लिए बहाल किया। किन्तु, स्मिथ यह देखने में गलती करता है कि बीमा-पत्र (policy) में स्वाभाविक पद (usual clauses) लिखे गये हैं या नहीं। बाद जहाज बरबाद हो जाता है। पदों (clauses) की त्रुटि की वजह से अण्डरराइटर्स (underwriters) से कुछ नहीं मिलता है। इसलिए यहाँ स्मिथ, जौन को क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है।

**४. एजेंसी का ठीक-ठीक हिसाब रखना तथा प्रधान को देना (To keep and to render account to the Principal)—**धारा २१३ के अनुसार एजेंट को चाहिए कि जो भी लेनदेन (transaction) वह करे उसका हिसाब ठीक-ठीक रखे और जिस समय प्रधान हिसाब माँगे या देखना चाहे, वह हिसाब दे या दिखाने के लिए तैयार रहे। अतः कितना उन्होंने खर्च किया, कितना कमीशन हुआ, कितने

का माल बेचा गया वगैरह का हिसाब-किताब उसे पूरा और सही रखना चाहिए। उसे प्रधान के रुपयों को अपने पास नहीं रखना चाहिए और न अपने रुपयों के साथ मिलाना ही चाहिए। यह अधिकार सिर्फ बैंकर को मिला है कि वह ग्राहक के रुपये अपने रुपयों में मिला सके।

५. आपत्तिकाल में प्रधान को सूचित करना (To communicate the Principal in emergency)—धारा २१४ के अनुसार एजेंट का कर्तव्य है कि अगर कार-वार करने के समय कोई अड़चन या कठिनाई आ पड़े तो बैसे दशा में प्रधान को खबर करे और उससे तत्सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने की कोशिश करे। किन्तु यदि प्रधान के सूचना देने का समय न रहा तो ऐसी दशा में यह साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति के समान सावधानी से काम करे। पर अगर उसकी उपेक्षा या दुराचरण के कारण नुकसान हो तो उसे उसका भुगतान करना पड़ेगा।

उदाहरण—X ने अपने एजेंट को दिल्ली में माल बेचने के लिए दिया। एजेंट ने सोचा कि दिल्ली में इस पर नफा न हो सकेगा, वह माल लेकर बम्बई में बेचने के लिए बिना प्रधान की स्वीकृति लिये चला गया। उसने वहाँ माल बेचा, परन्तु नफा होने के बदले नुकसान हुआ। इस भुगतान के लिए एजेंट अपने प्रधान के प्रति उत्तरदायी होगा।

६. अपने प्रधान के नाम पर पाये रुपयों का भुगतान करना (To make payment of the money received in name of Principal)—एजेंट को चाहिए कि एजेंसी से सम्बद्ध खर्च और कमीशन काटकर बाकी रकम जिसे उसने प्रधान के लिए क्रेताओं से पाया, प्रधान के हवाले कर दे (धारा २१८)। इसलिए अपने कमीशन और व्यय के सिवा और किसी प्रकार का लाभ होता है तो एजेंट का कर्तव्य है कि वह उस लाभ को अपने प्रधान के हवाले कर दे।\*

उदाहरण—X अपने मकानों को किराये पर देने तथा किरायेदारों से भाड़ा वसूल करने के लिए Y को १०० रु० प्रतिमाह के वेतन पर बहाल करता है। Y को नये किरायेदारों से किराये के अलावा ३०० रु० सलामी मिलती है। ऐसी दशा में वह सिर्फ १०० रु० का ही अधिकारी है, सलामी का नहीं, अतः सलामी X लेगा।

७. एजेंसी का सौदा अपने लिए खरीदना या बेचना (Not to deal on his own account)—एजेंट को अपने प्रधान की सहमति के बिना एवं महत्वपूर्ण परिस्थितियों की जानकारी प्रधान को कराये बिना, एजेंसी के व्यवहार का अपने निज के हिसाब में व्यवहार नहीं करना चाहिए। अगर वह ऐसा करता है तो इस प्रकार से होने वाले लाभ का दावा प्रधान कर सकता है। एजेंट सिर्फ उचित तथा कानूनी पारिश्रमिक के सिवा किसी प्रकार के लाभ का अधिकारी नहीं होता। (धारा २१५)

८. कुल अपवादों (exceptions) को छोड़कर एजेंट को एजेंसी का काम स्वयं करना चाहिए तथा किसी भी हालत में उसे अपने प्रतिनिधि बहाल करने का अधिकार नहीं है (Not to delegate authority)।

९. निम्नलिखित कार्य को न करना (Not to do the following work)—

(i) प्रधान के माल पर उसके अधिकार का विरोध करना।

(ii) एजेंसी से अपने लिए नफा कमाना।

\* Morrison vs. Thompson (1874) L. R. I. B. 480.

## एजेंट के अधिकार (Rights of an Agent)

एजेंट के निम्नलिखित अधिकार हैं—

१. उचित व्यय तथा कमीशन प्राप्त करना (Right to receive remuneration and expenses incurred)—अगर एजेंट ने किसी प्रकार की, बिना पारितोषिक लिये काम करने की, प्रतिज्ञा न की हो तो उसे यह अधिकार है कि जितना उसकी एजेंसी के लिए उचित खर्च किया गया है या जितना उसे कमीशन मिलना चाहिए, वह अपने प्रधान को अग्रिम (advance) के रूप में रुपया दिया हो अथवा व्यापार करने में धन खर्च किया हो तो तब एजेंसी के व्यापार में प्राप्त धन में से उपर्युक्त रकम रोक कर रख सकता है। इसके अलावा, जो भी पारिश्रमिक उसे मिलना है अगर वह नहीं मिला हो तो उक्त धन में से वह भी रोक कर रख सकता है। धारा २१९ के अनुसार किसी खास प्रसंविदा के अभाव में कोई काम करने के फलस्वरूप एजेंट का भुगतान तब तक बाकी नहीं समझा जाता जब तक कि वह कार्य पूरा न हो जाय। फिर भी, एजेंट बिके हुए माल के लिए प्राप्त रकम को रोक कर रख सकता है चाहे सम्पूर्ण माल जो उसे भेजा गया, वह बिका न हो अथवा वास्तव में विक्रय पूरा नहीं हुआ हो। किन्तु जब एजेंट अपने आचरण से दोषी है तो जिस काम में दोषी है उसके लिए वह पारितोषिक पाने या माँगने का अधिकारी नहीं है (धारा २२०)। यदि एजेंट खुद काम करने के लिए तैयार है परन्तु प्रधान की गलती या आचरण से वह काम करने से रोक दिया जाता है तो भी एजेंट को अपना उचित कमीशन वसूल करने का अधिकार है। [धारा २२५]

उदाहरण—X, Y को ५०० रु० तक के कर्जदार Z से वसूल करने के लिए कहता है परन्तु Y की गलती के कारण वह रुपया वसूल न हो सका। ऐसी दशा में Y को पारितोषिक नहीं मिलेगा, साथ ही प्रधान को क्षति पहुँचने पर उसकी पूर्ति करनी पड़ेगी। [धारा २२०]

२. माल रोकने का अधिकार (Rights of Lien)—धारा २२१ के अनुसार एजेंट को किसी विपरीत प्रसंविदा के अभाव में प्रधान से माल, कागजात तथा दूसरी चल अथवा अचल सम्पत्तियों को उस समय तक रोक रखने का अधिकार है जब तक उसे इसके सम्बन्ध में किये गये खर्चों तथा कमीशन का भुगतान न कर दिया जाय। इस अधिकार को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि एजेंट के कब्जे में प्रधान की सम्पत्ति अवश्य हो। फैक्टर (Factor) को इस प्रकार का अधिकार होता है, क्योंकि उन्हें प्रधान के माल या दूसरी सम्पत्ति पर वास्तविक या कृत्रिम अधिकार रहता है।

३. माल को रास्ते में रोकना (Stoppage in Transit)—जब एजेंट को जिस व्यक्ति के नाम से उसने माल बेचा है उसके पास माल भेजने के बाद यह मालूम होता है कि खरीदनेवाला दिवालिया हो गया है तो रास्ते में जाते हुए माल को वाहक (carrier) से कहकर रोक ले सकता है या रुकवा सकता है, क्योंकि वैसी हालत में उसका अधिकार मूल्य न चुकाये हुए विक्रेता (unpaid-seller) के समान होता है। माल को मार्ग में रोकने का अधिकार एजेंट को दो हालतों में प्राप्त होता है—  
(i) यदि उसने प्रधान के लिए अपने रुपयों से ही माल खरीदा हो अथवा (ii) अपनी जमानत पर ही खरीदा हो। यदि वह एजेंट 'डेल क्रेडियर' (Del Credere) एजेंट है तब तो यह अधिकार पूर्ण रूप से उसे प्राप्त हो जाता है, क्योंकि माल की कीमत उसे स्वयं मालधनी को अवश्य चुकानी होगी।

४. क्षतिपूर्ति करना (Rights of Indemnification)—एजेण्ट एजेन्सी के काम के सिलसिले में उसके द्वारा किये गये समस्त वैध कार्यों के परिणामों के विरुद्ध नियोक्ता द्वारा हानि-रक्षा कराने का अधिकारी है। किन्तु यदि उसने कुछ धन स्वेच्छापूर्वक अथवा दोष-रीति से चुकाया हो तो उसे हानि-रक्षा कराने का कोई अधिकार नहीं है यद्यपि उसने प्रधान के लाभ के लिए ही ऐसा किया है। [धारा २२२]

**उदाहरण**—कलकत्ते के X के आदेशानुसार सिगापुर का Y, Z के साथ उसको कुछ माल देने की प्रसविदा करता है। X, Y को उक्त माल नहीं भेजता है इसलिए Z ने प्रतिज्ञा भंग करने के कारण Y पर मुकदमा किया। इस बात की सूचना Y ने X को दी। इसपर X ने Y को मुकदमे की पैरवी करने का अधिकार दिया। इस कार्य के लिए Y को व्यय करना पड़ा तथा हर्जाना भी देना पड़ा। ऐसी दशा में व्यय और हर्जाना चुकाने के लिए X बाध्य है।

इसी तरह यदि एक व्यक्ति दूसरे को कोई काम करने के लिए बहाल करता है और वह एजेण्ट परम सद्विश्वास (utmost good faith) के साथ काम करता है और यदि ऐसी हालत में एजेण्ट को नुकसान हो तो प्रधान को इसकी पूर्ति करनी पड़ेगी, चाहे इसमें किसी तीसरे पक्ष का अधिकार नष्ट क्यों न होता हो। [धारा २२३]

**उदाहरण**—Y के आदेशानुसार X, Y के अधीन रहे माल को बेचता है। किन्तु यह नहीं जानता कि उस माल का असली मालिक Y नहीं है और विक्री के रुपये Y के सुपुर्द करता है। इसके बाद Z जो उस माल का असली मालिक है, X पर नालिश करता है तथा खर्च वसूल कर लेता है। ऐसी हालत में X को Y की क्षति तथा उसके द्वारा किये गये खर्चों की पूर्ति करनी पड़ेगी।

एजेण्ट को उसकी क्षतिपूर्ति प्रधान द्वारा तभी हो सकती है जबकि जिस काम के लिए उसकी बहाली हुई है उसी के सम्बन्ध में एजेण्ट ने खर्च किया है। इसके अलावा, यह आवश्यक है कि एजेण्ट जो कुछ खर्च करता है वह उचित तथा परम विश्वास के साथ करता है। यदि एजेण्ट छल-कपट या अपराधपूर्ण काम करता है तो पूर्ति करवाने का उसे अधिकार नहीं है। [धारा २२४]

**उदाहरण**—X, Y को बहाल करता है और वादा करता है कि यदि वह Z को पीटे तो उससे जो उसे क्षति होगी उसकी पूर्ति वह करेगा। Y, Z को पीटता है और फलस्वरूप उसे ३०० रु० हर्जाना देना पड़ता है। किन्तु Y, ३०० रु० का हर्जाना X से कानूनन नहीं ले सकता।

५. एजेण्ट को प्रधान से, प्रधान की उपेक्षा अथवा चतुराई के अभाव के कारण उसको पहुँची हुई क्षति की पूर्ति करने का अधिकार है। [धारा २२५]

**उदाहरण**—X एक घर बनाने में Y को ईंट रखनेवाले के रूप में नियुक्त करता है और स्वयं मंचान (scaffolding) तैयार करता है। मंचान चतुराई से नहीं बनाया जाता और फलस्वरूप Y को चोट लग जाती है; X, Y की क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी है।

अन्य व्यक्तियों के साथ की गयी प्रसविदों पर एजेन्सी का प्रभाव (धारा २२६ से २३४) (Effect of Agency on Contracts made with third persons)

एजेण्ट द्वारा अपने सेवाकाल में किये गये कामों का तीसरे पक्षों के साथ उत्पन्न

होनेवाले सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव का निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्दर अध्ययन किया जा सकता है—

१. जब एजेंट स्पष्ट रूप से, नामांकित प्रधान के एजेंट के रूप में प्रसंविदा करता है।

२. जब एजेंट स्पष्ट रूप से, अ-नामांकित (un-named) प्रधान के एजेंट के रूप में प्रसंविदा करता है।

३. जब एजेंट किसी अप्रकट प्रधान (undisclosed principal) की ओर से प्रसंविदा करता है।

१. जब एजेंट द्वारा नामांकित प्रधान की ओर से प्रसंविदा की गयी हो (Where an agent contracts on behalf of a named principal)—  
(क) एजेंट द्वारा प्राधिकार सीमा-क्षेत्र के अन्दर (within the authority) किये गये काम— एजेंट द्वारा प्राधिकार के सीमा क्षेत्र के अन्दर किये गये सभी कार्यों के निष्पादन के लिए प्रधान उत्तरदायी होता है। जब तीसरे पक्ष को एजेंट के स्पष्ट प्राधिकार की परिसीमा का ज्ञान नहीं हो, तब प्रधान को तीसरे पक्षों के प्रति, एजेंट के ऐसे कामों के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जो उसके वास्तविक प्राधिकार के बाहर है परन्तु प्रत्यक्षतः उसके प्राधिकार के अन्दर प्रतीत होते हैं।

उदाहरण—A नीलामकर्ता B के पास अपने घोड़े को इस आदेश के साथ छोड़ देता है कि घोड़े को ५०० रु० से कम में न बेचा जाय। B घोड़े को ४०० रु० में Z को बेच देता है जिसे A के विशेष आदेश की कोई जानकारी नहीं थी। A घोड़े के विक्रय-प्रसंविदा को निरस्त (rescind) नहीं कर सकता है।

(ख) एजेंट के द्वारा प्राधिकार सीमाक्षेत्र के बाहर (outside the scope of the authority) किये गये कार्य—जब कोई एजेंट अपने प्राधिकार से अधिक काम करता है और ऐसे कार्य को प्राधिकृत कामों से अलग किया जा सकता है तब प्रधान केवल उसी काम के निष्पादन के लिए उत्तरदायी होगा जो कि एजेंट के प्राधिकार के अन्दर था। अतिरिक्त कामों के निष्पादन के लिए उसको बाध्य नहीं किया जा सकता है। (धारा २२७)

उदाहरण—X एक जहाज एवं उस पर लदे माल का मालिक है। वह Y को जहाज का ३०,००० रु० का बीमा कराने का प्राधिकार देता है। Y जहाज के लिए ३०,००० रु० की बीमा-पॉलिसी लेता है और उतनी ही राशि की एक और पॉलिसी जहाज पर लदे माल के लिए भी ले लेता है। X को जहाज की पॉलिसी के प्रीमियम का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, लेकिन माल की बीमा-पॉलिसी के प्रीमियम का भुगतान करने के लिए उसको बाध्य नहीं किया जा सकता।

जब एजेंट द्वारा अपने प्राधिकार से बाहर कोई काम किया गया हो और इस तरह के काम को प्राधिकार के अन्दर किये गये कामों से अलग नहीं किया जा सकता हो, तब प्रधान इस तरह के सभी कामों को निरस्त (rescind) कर सकता है। इसे इन व्यवहारों को मान्यता देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। (धारा २२८)

उदाहरण—A, B को अपने लिए १०० गाय खरीदने का प्राधिकार देता है। B, ६००० रु० में १०० गाय एवं ७० बछड़ा खरीद लेता है। A सम्पूर्ण व्यवहार को अस्वीकार कर दे सकता है।

(ग) जब प्रधान द्वारा कोई ऐसा काम किया गया हो जिसकी वजह से अन्य

**व्यक्ति एजेंट के अनधिकृत (unauthorised) कार्यों को अधिकृत कार्य मान सकते हैं**—जब एजेंट ने प्राधिकार के बगैर प्रधान की ओर से कुछ काम किया हो या दायित्व लिया हो तो उन कार्यों या दायित्वों के लिए प्रधान को तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जब उसने अपने आचरण या शब्दों द्वारा अन्य पक्षों को यह विश्वास दिलाने का उपक्रम किया हो कि उस कार्य या दायित्व एजेंट के प्राधिकार के अन्दर था। (धारा २३७)

**उदाहरण**—A, B को कुछ माल बेचने के लिए प्रेषित करता है तथा उसे वह माल एक निश्चित कीमत से कम पर न बेचने का आदेश देता है। Z जिसे A के आदेश की जानकारी नहीं थी, B से उस माल को आरक्षित मूल्य से कम दाम पर खरीदने की प्रसंविदा करता है। A इस प्रसंविदा के निष्पादन के लिए बाध्य होगा।

(घ) **एजेंट को सूचना (Notice to the agent)**—एजेंसी के सम्बन्ध में एजेंट को व्यापार के सिलसिले में दी गयी अथवा उसके द्वारा प्राप्त की गयी कोई भी सूचना वही परिणाम प्रस्तुत करती है जैसे कि यह सूचना प्रधान को दी गयी हो अथवा प्रधान द्वारा प्राप्त की गयी हो। (धारा २२९)

**उदाहरण**—B, A को K से कुछ माल खरीदने के लिए बहाल करता है जिसका प्रत्यक्ष मालिक K है। A आदेशानुसार माल खरीद लेता है। विक्रय के समझौता के मध्य A को पता चलता है कि वह सब माल वास्तव में Z का है परन्तु B को इन सब बातों का पता नहीं है। K को एक कर्ज का भुगतान B को करना है। B इन मालों के देय मूल्य को अपने कर्ज के भुगतान के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकता है।

(ङ) **एजेंट द्वारा मिथ्या-वर्णन या कपट (Misrepresentation or Fraud committed by an agent)**—एजेंट के उन सभी मिथ्या-वर्णन या कपट के लिए प्रधान उत्तरदायी होता है जो उसने एजेंसी व्यापार के सिलसिले में किया हो (धारा २३८)। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि वह मिथ्या-वर्णन या छल-कपट किसके लाभ के लिए किया गया था। परन्तु एजेंट के उन कपटों या मिथ्या-वर्णन के लिए प्रधान एकदम उत्तरदायी नहीं होगा जो उसने अपने प्राधिकार की परिसीमा-क्षेत्र के बाहर (beyond the authority) अतिरिक्त विषयों के सम्बन्ध में किया हो।

**उदाहरण**—(i) A, B का विक्रय एजेंट है। वह C को अपने ऐसे मिथ्या-वर्णन द्वारा कुछ माल खरीदने के लिए प्रलोभित कर लेता है, जिसका उसे B ने कोई प्राधिकार नहीं दिया था। B एवं C के बीच हुई प्रसंविदा C के विकल्प पर विवर्जनीय होगी।

(ii) M के जहाज के कप्तान N ने जहाजी बिल्टी (bill of lading) में वर्णित माल प्राप्त किये बिना, जहाज के लदान-पत्र पर दस्तखत कर दिया। झूठे प्रेषक (pretending consigner) और M के बीच लदान-पत्र अमान्य होगा।

(च) **एजेंट द्वारा दी गयी स्वीकृति (Admissions made by an agent)**—नियम के अनुसार प्रधान और एजेंट को एक ही व्यक्ति माना गया है, इसलिए एजेंट के रूप में काम करते हुए एजेंट द्वारा दी गयी प्रत्येक स्वीकृति प्रधान की ही स्वीकृति मानी जायेगी और वह उसके लिए बाध्य होगा।

**उदाहरण**—माल भूलने पर रेलवे के स्टेशन मास्टर द्वारा दी गयी स्वीकृति रेलवे कम्पनी को बाध्य करती है।



२. जब एजेंट बिना नाम के प्रधान की ओर से प्रसंविदा करता है (Where an agent contracts for unnamed principal)—जब एजेंट द्वारा यह बात साफ-साफ कह दी गयी हो कि वह सिर्फ एक एजेंट के रूप में काम कर रहा है और प्रधान का नाम नहीं बतलाया गया हो, तब अन्य पक्षों के प्रति उसका कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता है। अन्य पक्ष सिर्फ प्रधान के खिलाफ कारवाई कर सकते हैं, एजेंट के खिलाफ नहीं। लेकिन जब एजेंट पूछताछ करने के बाद भी तीसरे पक्षों के बारे में प्रधान को नहीं बतलाता है तब स्वयं उसको भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

३. जब एजेंट अप्रकट प्रधान की ओर से प्रसंविदा करता है (When the agent contracts for an undisclosed principal)—जब एजेंट किसी ऐसे आदमी के साथ प्रसंविदा करता है जिसे उसके एजेंट होने की न कोई जानकारी है और न कोई आशंका ही है तो ऐसी हालत में प्रधान, अप्रकट प्रधान कहलाता है। ऐसी हालत में तीसरे पक्ष, प्रधान एवं एजेंट के सम्बन्ध निम्नांकित प्रकार के होंगे—

(i) अगर तीसरे पक्ष को एजेंट के खिलाफ न्यायालय का निर्णय प्राप्त करने से पहले प्रधान के अस्तित्व का पता चल जाय, तब वह प्रधान या एजेंट या दोनों पर मुकदमा चला सकता है। अगर वह प्रधान के खिलाफ मुकदमा चलाना चाहता है तब उसे एजेंट से प्राप्त रकम का लाभ प्रधान को देना पड़ेगा। (धारा २३१)

उदाहरण—X, Y को रूई की सौ गाँठें १०,००० रु० में देने की प्रसंविदा करता है और उससे ४०० रु० पेशगी के रूप में ले लेता है। बाद में X को पता चलता है कि Y तो Z के एजेंट के रूप में काम कर रहा है। X, Z पर प्रसंविदा के निष्पादन के लिए मुकदमा चला सकता है, परन्तु उसे Z के एजेंट Y द्वारा दिये गये ४०० रु० का लाभ Z को देना पड़ेगा और इस प्रकार वह Z से केवल १,६०० रु० का ही भुगतान प्राप्त कर सकता है।

(ii) ऐसी हालत में अगर प्रधान चाहे तो हस्तक्षेप करके तीसरे पक्ष के खिलाफ मुकदमा चला सकता है। ऐसी हालत में तीसरे पक्ष को प्रधान के खिलाफ वे सभी अधिकार प्राप्त होंगे जो कि उसे उस समय प्राप्त होते जब कि एजेंट ही प्रधान होता।

उदाहरण—A, जिसको B का ५०० रु० देना है, B के हाथ ११०० रु० का गेहूँ बेचता है। इस व्यापार में A, Z के एजेंट के रूप में काम कर रहा है, किन्तु B को इस स्थिति की कोई जानकारी नहीं है और न उसको इसकी कोई आशंका है। Z, B को A के कर्ज का भुगतान गेहूँ की कीमत में से काटे जाने की अनुमति दिये बिना गेहूँ लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है।

(iii) धारा २३१ के अनुच्छेद २ (Para 2 of Section 231) में यह कहा गया है कि अगर प्रसंविदा के पूरा होने के पहले प्रधान खुद को प्रकट कर दे और प्रसंविदा करनेवाला तीसरा पक्ष यह साबित कर सके कि अगर वह पहले से प्रधान के विषय में जानता या उसे यह मालूम रहता कि एजेंट प्रधान नहीं है, तब वह प्रसंविदा नहीं करता, तो वह तीसरा पक्ष प्रसंविदा के अन्दर उत्पन्न होने वाले दायित्वों को पूरा करने से मना कर सकता है।

यह बात याद रखना चाहिए कि तीसरे पक्ष को प्रसंविदा के परित्याग का अधिकार सिर्फ तभी प्राप्त होगा जबकि प्रधान ने स्वयं अपने-आपको प्रकट कर दिया हो। जब तीसरे पक्ष को प्रधान के विषय में और किसी व्यक्ति द्वारा सूचना दी गयी हो, या अन्य किसी साधन से उसको सूचना प्राप्त हुई हो, तो उसे प्रसंविदा का निष्पादन करने से मना करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

(iv) धारा २३४ के अनुसार जब एजेंट के साथ प्रसंविदा करनेवाला व्यक्ति एजेंट को इस विश्वास के साथ काम करने के लिए प्रेरित करता है कि सिर्फ प्रधान को ही प्रसंविदा के निष्पादन के लिए उत्तरदायी माना जायगा या प्रधान को इस विश्वास के साथ काम करने के लिए प्रेरित करे कि प्रसंविदा के निष्पादन के लिए एजेंट को ही उत्तरदायी ठहराया जायगा तो बाद में यह क्रमशः एजेंट या प्रधान को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है।

**उदाहरण —** X ने सिन्हा एण्ड कम्पनी को अपने लिए Y से माल खरीदने के लिए कहा। बाद में वही माल खरीदने के लिए X ने खुद Y से बातचीत की। Y यह जानता था कि सिन्हा एण्ड कम्पनी, X के लिए माल खरीद रही थी, किन्तु उसने सिन्हा एण्ड कम्पनी को ही प्रधान समझना ज्यादा अच्छा समझा और माल उनके नाम ही लिखा। सिन्हा एण्ड कम्पनी माल की कीमत का भुगतान नहीं कर पायी और Y ने कीमत के लिए X पर मुकदमा किया। न्यायालय द्वारा यह फैसला दिया गया कि Y को X से रुपया वसूल करने का अधिकार नहीं है क्योंकि Y ने शुरू से ही यह स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था कि उसने माल सिन्हा एण्ड कम्पनी को उधार दिया है यद्यपि उसे वास्तविक प्रधान के अस्तित्व का भी ज्ञान था।

**बनावटी एजेंट के दायित्व (Liability of a pretended Agent) —** धारा २२५ के अनुसार अगर कोई व्यक्ति स्वयं को झूठमूठ ही दूसरे व्यक्ति का एजेंट बतलाता है और इस तरह दूसरे व्यक्ति को अपने साथ एजेंट के रूप में व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है तब यदि उसका तथाकथित प्रधान उसके कार्यों की पुष्टि नहीं करता है, तो वह उसके इस प्रकार व्यवहार करने के कारण दूसरे व्यक्ति को होनेवाली हानियों के लिए क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा।

**उदाहरण —** A और B ने जो एक कम्पनी के संचालक हैं, कम्पनी की ओर से Z से कर्ज लिया। कम्पनी के पार्षद सीमा-नियम के अनुसार कम्पनी को धन उधार लेने का कोई अधिकार नहीं था। Z यद्यपि कम्पनी से कर्ज का रुपया वसूल नहीं कर सकता है, परन्तु अपने कर्ज के भुगतान के लिए वह कम्पनी के दोनों संचालकों, A और B को उत्तरदायी ठहरा सकता है।

**तीसरे पक्षों के प्रति एजेंट का उत्तरदायित्व (Personal Liability of Agent to the Third Parties)**

हमलोग जान चुके हैं कि एजेंट अपने प्रधान की तरफ से प्रसंविदा करता है; पर एजेंट अपने प्रधान के लिए की गयी प्रसंविदा को सम्पन्न कराने के लिए न तो तीसरे पक्ष को खुद बाध्य कर सकता है और न तीसरा पक्ष उसे बाध्य कर सकता है (धारा २३०)। परन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनमें एजेंट को तीसरे पक्ष के साथ व्यवहार करने के कारण उत्तरदायी बनाया जाता है; वे निम्नलिखित हैं—

१. जब वह किसी विदेशी प्रधान के लिए खरीद-विक्री की प्रसंविदा करता है (When the agent acts for foreign principal; Sec. 230)—धारा २३० के अनुसार जब एजेंट किसी विदेशी प्रधान के लिए खरीद-विक्री करता है तो वह स्वयं उत्तरदायी होता है। यह नियम उस समय लागू किया गया था जबकि आवागमन के साधन आजकल की तरह विकसित नहीं थे। अतः मिलर गिब्स एण्ड कम्पनी बनाम टाइरर लिमिटेड\* के मुकदमे में यह फैसला दिया गया था कि यह

नियम वहीं पर लागू हो सकता है जहाँ अब भी यह पुराना रिवाज मौजूद हो। किन्तु यदि प्रसंविदा में यह स्पष्ट कर दिया गया हो कि विदेशी प्रधान ही उत्तरदायी होगा तो रिवाज के मौजूद होने के बावजूद विदेशी प्रधान ही दायी होगा।

२. जब वह किसी 'अप्रकट प्रधान' के लिए प्रसंविदा करता है (When he contracts for an undisclosed principal; Sec. 230)—यदि एजेंट अपने प्रधान के लिए प्रसंविदा करता है जिसका नाम उसने तीसरे पक्ष से नहीं बतलाया है और यह भी नहीं कहा है कि वह स्वयं प्रधान नहीं, बल्कि एजेंट है तो वैसी दशा में तीसरा पक्ष एजेंट को प्रसंविदा पूरा करने के लिए बाध्य कर सकता है।

३. जब वह अपने प्रधान का नाम बताये, किन्तु उस पर नालिश नहीं की जा सके (Where the principal, though disclosed, cannot be sued; Sec. 230)—यदि किसी एजेंट ने तीसरे पक्ष के सामने अपने प्रधान का नाम प्रकट किया हो लेकिन उसके विरुद्ध मुकदमा नहीं किया जा सकता हो तो ऐसी दशा में एजेंट स्वयं उत्तरदायी होगा।

उदाहरण—जब एजेंट किसी नाबालिग अथवा विदेशी राजदूत के लिए काम करता हो तो इसके लिए स्वयं दायी होता है।

४. जब वह अपने अधिकार के बाहर काम करता है और उसकी पुष्टि (ratification) प्रधान के द्वारा नहीं की जाती है (When he acts beyond authority; Sec. 227-228)।

५. जब कपट या मिथ्या कथन करता है (When he commits fraud or misrepresentation)—जब एजेंट अपने अधिकार के बाहर कार्य करते समय दूसरे पक्ष से कपट या मिथ्या-वर्णन द्वारा रुपया ले लेता है या और किसी तरह का कपट करता है तो वैसी दशा में प्रसंविदा तीसरे पक्ष की इच्छा पर विवर्जनीय (voidable) है तथा वह एजेंट से हर्जाना भी वसूल कर सकता है।

उदाहरण—X, Y को माल बेचने के लिए बहाल करता है। Y, Z को मिथ्या-वर्णन (misrepresentation) द्वारा, जैसा करने का उसे अधिकार न था, माल खरीदने को कहता है। यह प्रसंविदा Z की इच्छा पर विवर्जनीय है तथा एजेंट दोनों (प्रधान और तीसरे पक्ष) के प्रति उत्तरदायी होगा।

६. जब तीसरा पक्ष प्रसंविदा करते समय साफ-साफ यह कह देता है कि इसे पूरा करने के लिए एजेंट ही उत्तरदायी होगा (Personal liability of an agent by agreement; Sec. 233-234)—जब एजेंट समझौता द्वारा साफ-साफ यह कहता है कि वह प्रसंविदा की बातों का व्यक्तिगत रूप से दायित्व स्वीकार करता है।

७. जब वह अपने नाम से कोई बेचान-साध्य रुक्का लिखता है (When he signs a negotiable instrument in his own name)—यदि कोई एजेंट किसी तीसरे पक्ष के बेचान-साध्य रुक्का (negotiable instrument) पर अपना हस्ताक्षर कर दे और यह स्पष्ट तरीके से नहीं बतलाये कि वह अपने प्रधान के लिए हस्ताक्षर कर रहा है तो उसके लिए एजेंट स्वयं ही उत्तरदायी होगा।

८. जब वह एक 'कुटिल एजेंट' है (When he is a Pretended Agent)—जब एक व्यक्ति दूसरे से यह कहे कि वह अमुक व्यक्ति का एजेंट है और ऐसा कहकर उस पक्ष को प्रसंविदा करने के लिए राजी कर ले तो वैसी दशा में प्रधान द्वारा पुष्टिकरण (ratification) न होने पर उस कुटिल एजेंट को ही मजबूर

किया जा सकता है और दूसरे व्यक्ति को किसी प्रकार का नुकसान होने पर उसे 'कुटिल एजेंट' को पूरा करना होगा।

९. जब एजेंसी में उसका अपना हित सम्मिलित हो (When agency is one 'coupled' with interest)—जब किसी एजेंसी में एजेंट का अपना हित (interest) या स्वार्थ हो तो हित की रकम के लिए एजेंट स्वयं बाध्य हो सकता है और वह दूसरों को बाध्य कर सकता है।

उदाहरण—X, Y से कहता है कि अगर तुम मेरा मकान बेच दोगे तो मैं तुम्हें २०० रु० दूंगा तथा तुम मकान की कीमत में से यह रकम काटकर शेष हमें देना। ऐसी दशा में Y २०० रु० तक के लिए प्रधान को या तीसरे पक्ष को बाध्य कर सकता है। लेकिन यदि किसी अन्य व्यक्ति ने Y से कर्ज लिया है तो वह दूसरा व्यक्ति मकान विक्री हो जाने पर भी २०० रु० तक के लिए एजेंट को बाध्य कर सकता है।

१०. जब एजेंट किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति पर हानि पहुँचाता है (Where the agent inflicts loss or damage over the property of others)—इस तरह के नुकसान के लिए एजेंट तथा प्रधान दोनों अलग-अलग तथा सम्मिलित रूप से बाध्य किये जा सकते हैं। यदि एजेंट का ऐसा काम उसके अधिकार के बाहर का हो तो उसके लिए एजेंट स्वयं बाध्य होगा।

११. ब्रोकर के उत्तरदायित्व (Liability of a Broker)—यह कहना बहुत कठिन है कि कोई ब्रोकर किसी प्रसंविदा पर दस्तखत करके अपने को स्वयं दायी बनाता है या अपने प्रधान को बनाता है, किन्तु यहाँ न्यायालय प्रसंविदा के शब्दों पर विचार करके अपना फैसला देता है। अतः कोई ब्रोकर व्यक्तिगत रूप से दायी है अथवा नहीं, यह बात प्रसंविदा की लिखावट पर निर्भर रहती है।

### प्रधान के अधिकार (Right of the Principal)

प्रधान को निम्नलिखित अधिकार एजेंट के विरुद्ध प्राप्त हैं—

१. जब एजेंट बिना प्रधान की स्वीकृति लिये या बिना इस बात की जानकारी कराये, एजेंसी का काम करते समय अपने नाम से व्यापार करता है या व्यापार करने की प्रसंविदा करता है तो प्रधान वंसी प्रसंविदा का खण्डन कर सकता है। किन्तु इसका खण्डन करने के पहले प्रधान को यह साबित करना पड़ेगा कि एजेंट ने किसी तत्त्व को कपटपूर्वक छिपा रखा था, एजेंट का काम प्रधान के लिए अहितकर था। [धारा २१५]

उदाहरण—X, Y से कहता है कि वह उसके मकान की विक्री कर दे। Y, Z के नाम से अपने लिए मकान खरीद लेता है। जब X को यह मालूम होता है कि Y ने अपने लिए मकान खरीदा है तो वह उस विक्री को रद्द कर दे सकता है, यदि वह इस बात को साबित कर दे कि Y ने उससे किसी तत्त्व की बात को छिपाया है या उस विक्री से हानि हुई है।

२. यदि एजेंट, बिना प्रधान को बताये, प्रधान के नाम व्यापार न करके अपने नाम से करता है तो प्रधान को यह अधिकार है कि इससे हुए लाभ को एजेंट से ले ले। [धारा २१६]

उदाहरण—X, Y से उसके लिए एक विशिष्ट मकान को खरीदने के लिए कहता है। Y, X से यह कहता है कि मकान को खरीदना असम्भव है और अपने लिए

खरीद लेता है। जब X को इस बात का पता लग जायगा तब Y को उस मकान को खरीदी गयी कीमत पर उसके हाथ बेचने को बाध्य कर सकता है।

### तीसरे पक्ष के विरुद्ध प्रधान के अधिकार (Principal's Rights against Third Parties)

१. एजेंट द्वारा की हुई प्रसंविदा को तीसरे पक्ष से सम्पन्न कराने का अधिकार।

२. माल की विक्री करने पर तीसरे पक्ष से उसकी कीमत वसूल करने का अधिकार।

३. तीसरे पक्ष द्वारा प्रतिज्ञा-भंग करने पर, उस पर मुकदमा करके हर्जाना वसूल करने का अधिकार।

४. यदि प्रधान की स्थिति 'मूल्य न चुकाया गया विक्रेता' (unpaid seller) की तरह हो तो उसे माल को अपने अधीन रोक रखने (lien) का तथा उसकी सुपुर्दगी न होने देने का अधिकार है।

### एजेंट के प्रति प्रधान के कर्त्तव्य (Duties of the Principal to the Agent)

वास्तव में एजेंट के प्रति प्रधान का वही कर्त्तव्य होता है जो एजेंट का प्रधान के विरुद्ध अधिकार है। एजेंट के प्रधान के विरुद्ध अधिकार के विषय में वर्णन किया जा चुका है, अतः संक्षेप में एजेंट के प्रति प्रधान के कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं—

१. धारा २१७ के अनुसार एजेंट के द्वारा किये गये उचित व्यय और पारितोषिक का भुगतान करना।

२. धारा २२२ के अनुसार एजेंट को अधिकार के भीतर किये गये कामों से हुई क्षति की पूर्ति करना।

३. धारा २२३ के अनुसार सद्विश्वास के साथ कार्य पर एजेंट को होने वाली क्षति की पूर्ति करना।

४. धारा २२५ के अनुसार प्रधान की गलती से या विवेक की कमी से यदि एजेंट को घाटा हो तो उसकी पूर्ति प्रधान को करनी होगी।

**उदाहरण—**X, Y से छत की मरम्मत के लिए ईंट जोड़ने को कहता है और इस काम के लिए वह खुद बाँस का मचान बाँधता है। किन्तु मचान विवेकपूर्ण न था, इसलिए गिर पड़ा और Y को चोट लगी। इसके लिए X को Y की क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

### तीसरे पक्ष के लिए प्रधान के कर्त्तव्य (Duties of the Principal to Third Parties)

वास्तव में प्रधान अपने एजेंट के उन कार्यों के लिए तीसरे पक्ष के प्रति दायी होता है जो उसने अपने अधिकार के अधीन किया हो अथवा प्रधान की सहमति या राय से किया हो, अथवा जिसका प्रधान ने बाद में पुष्टिकरण कर दिया हो। इसका कारण यह है कि ऐसे सभी मामलों में प्रधान प्रसंविदा करने वाले के पक्ष में हो जाता है और एजेंट तो केवल प्रसंविदात्मक सम्बन्ध स्थापित करने वाला एक यंत्र-मात्र होता है। अतः तीसरे पक्ष के प्रति प्रधान के निम्नलिखित कर्त्तव्य होते हैं—

१. एजेंट के अनुबन्धों का प्रवर्तन एवं परिणाम—एजेंट द्वारा किये गये

प्रसविदे तथा एजेण्ट के कार्यों से उत्पन्न दायित्व उसी प्रकार प्रवर्तित कराये जा सकते हैं और उनके वैसे ही वैध परिणाम होते हैं मानो वे प्रसविदे तथा कार्य प्रधान द्वारा स्वयं ही किये गये हों। [धारा २२६]

**उदाहरण—**(i) A, B से माल खरीदता है (यह जानते हुए कि वह विक्री के लिए एजेण्ट है किन्तु यह न जानते हुए कि प्रधान कौन है)। B का प्रधान A से माल का मूल्य माँगने के लिए अधिकारी व्यक्ति है और A प्रधान द्वारा प्रस्तुत बाद में उस माँग के प्रति B से प्राप्य अपने कर्ज का प्रतिसाद (set off) नहीं कर सकता।

(ii) B का एजेण्ट A उसके लिए रुपया प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होने के कारण C से B के लिए प्राप्य रकम प्राप्त करता है; C उक्त धन B को भुगतान करने के दायित्व से मुक्त हो जाता है।

**२. एजेण्ट द्वारा अनधिकृत काम करने पर प्रधान केवल अधिकृत अंश के लिए ही दायी है—**अगर एजेण्ट प्राप्त अधिकार से अधिक काम करता है और अगर उसके कार्य में से अधिकृत अंश अनधिकृत अंश से अलग किया जा सकता है तब प्रधान सिर्फ अधिकृत अंश के लिए ही तीसरे पक्षकार के प्रति दायी होता है।

**उदाहरण—**A एक जहाज तथा उस पर लदे हुए माल दोनों का मालिक है। वह B को ८,००० रुपये में जहाज के सामुद्रिक बीमा का अधिकार देता है। B ८,००० रुपये की एक पॉलिसी जहाज पर तथा दूसरी पॉलिसी ८,००० रुपये के माल पर भी ले लेता है। A सिर्फ जहाज के लिए ही पॉलिसी पर प्रीमियम देने के लिए बाध्य है; माल की पॉलिसी के लिए नहीं। [धारा २२७]

**३. एजेण्ट का अनधिकृत कार्य सम्पूर्ण कार्य से अलग न करने योग्य होने पर प्रधान दायी नहीं होता—**यदि एजेण्ट उसको दिये हुए अधिकार से परे काम करता है और यदि उसके कार्य में से अधिकृत अंश के लिए ही दायी है, किन्तु यदि यह अलग नहीं किया जा सकता तो प्रधान पूरे व्यवहार के लिए दायी नहीं है। [धारा २२८ तथा २३१]

**उदाहरण—**X, Y को २०० भेडे खरीदने का अधिकार देता है। Y चाहे तो इसका खडन कर सकता है। परन्तु पुष्टिकरण (ratification) द्वारा यदि प्रधान उसके ऐसे कार्यों को भी मान ले तो उनके लिए भी वह बाध्य होगा।

**४. एजेण्ट को दी गयी नोटिस का परिणाम—**चूँकि एजेण्ट प्रधान का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए व्यापार के सिलसिले में एजेण्ट द्वारा प्राप्त किसी सूचना अथवा जानकारी के, प्रधान तथा तीसरे पक्षकारों के सम्बन्ध से ऐसे वैध परिणाम होते हैं मानो वे प्रधान द्वारा स्वयं ही प्राप्त की गयी हों और इस बात की ओर ध्यान न देते हुए कि एजेण्ट ने उसको सूचित करने में त्रुटि की है, प्रधान उपर्युक्त बातों के लिए दायी है। [धारा २२९]

**उदाहरण—**(i) A, B को C से ऐसी वस्तु खरीदने के लिए बहाल करता है जिसका C प्रत्यक्ष स्वामी है और तदनुसार A उसे खरीद लेता है। विक्रय के सिलसिले में A को यह ज्ञात होता है कि वास्तव में वस्तु D की है, किन्तु B इस तथ्य से अनभिज्ञ है। B वस्तु के मूल्य में से C के प्राप्य एक ऋण-प्रतिसाद (set off) करने का अधिकारी नहीं है।

(ii) B, A को C से ऐसी वस्तु खरीदने के लिए बहाल करता है जिसका C प्रत्यक्ष स्वामी है। इस प्रकार नियुक्ति होने के पहले A, C के यहाँ नौकर था और तब उसे पता था कि वास्तव में माल का स्वामी C है, किन्तु B इस तथ्य से अनभिज्ञ है। अपने एजेण्ट की जानकारी के होते हुए भी B वस्तु के मूल्य में से C से प्राप्त

ऋण-प्रतिनाद कर सकता है।

५. एजेंट के अनधिकृत कार्य को अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाने पर प्रधान का उत्तरदायित्व—यदि प्रधान शब्दों अथवा आचरण द्वारा तीसरे व्यक्ति का यह विश्वास करता है कि यह अधिकार बिना एजेंट द्वारा किये गये कार्य उसके द्वारा अधिकृत हैं तो वह ऐसे कार्यों के लिए दूसरे व्यक्तियों के प्रति दायी है। इसे प्रदर्शन द्वारा (holding out) उत्पन्न दायित्व कहते हैं। [धारा २३७]

६. एजेंट के कपट तथा मिथ्या-वर्णन के लिए—प्रधान एजेंट के कपट तथा मिथ्या-वर्णन के लिए भी दायी है, जबकि वे एजेंसी के व्यापार के सिलसिले में (in the ordinary course of business) किये गये हों। [धारा २३८]

उदाहरण—A, जो वस्तु-विनिमय के लिए B का एजेंट है, C को ऐसे मिथ्या-वर्णन द्वारा उक्त वस्तु के लिए प्रेरित करता है जिसके लिए उसे B से कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। B और C के बीच यह प्रसंविदा C की इच्छा पर व्यर्थ होने योग्य (voidable) है।

बेट्स बनाम डीट्री [Betts vs Ditre (1968) 3 Ch 429] के मुकदमे के फैसले के अनुसार यहाँ एजेंट ने अपने अधिकार के अन्दर कार्य करते समय किसी तीसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति पर हानि (tort) पहुँचायी हो तो उसके लिए प्रधान अलग से तथा एजेंट के साथ सम्मिलित रूप से भी उत्तरदायी होता है।

७. एजेंट द्वारा स्वीकृत तथ्य के लिए प्रधान बाध्य होता है (The Principal is bound by the admission made by the agent)—एक मुकदमे में किसी मुसाफिर का सामान स्टेशन का एक कुली लेकर भाग गया। स्टेशन ने इसकी खबर पुलिस को दी। अतः स्टेशन मास्टर के द्वारा स्वीकार किया गया तथ्य रेलवे कम्पनी को मानना पड़ा क्योंकि स्टेशन मास्टर रेलवे कम्पनी का एजेंट था। इस प्रकार इस मुकदमे में न्यायालय ने रेलवे कम्पनी को मुसाफिर का सामान देने के लिए बाध्य किया।

८. प्रधान अपने एजेंट के गलत कामों के लिए भी उत्तरदायी होता है—R vs. Huggins (1730) Str. 1882 के मुकदमे के अनुसार प्रधान अपने एजेंट के गलत कामों के लिए भी उत्तरदायी होता है, अगर वह काम प्रधान के यहाँ नौकरी करते समय किया गया है। प्रधान एजेंट की लापरवाही के लिए भी उत्तरदायी होता है, किन्तु वह लापरवाही एजेंट द्वारा प्रधान के यहाँ नौकरी के सिलसिले में ही होनी चाहिए। किसी नौकर द्वारा अपने मालिक या प्रधान के काम में मालिक की मोटर को किसी घोड़े से टकरा देने पर वह स्वयं इसके लिए उत्तरदायी होगा, उसका प्रधान नहीं होता है।

प्रसंविदा जहाँ प्रधान अप्रकट हो (Contracts where Principal is undisclosed)

अप्रकट प्रधान उसे कहते हैं जिसका नाम प्रसंविदा करते समय गुप्त रखा गया है। एक प्रधान उस समय भी अप्रकट प्रधान माना जायगा जब एजेंट एक ऐसे पक्ष से प्रसंविदा करता है जो न तो जानता हो और न सन्देह करने का उसके पास कोई कारण ही हो कि वह जिस व्यक्ति से व्यवहार कर रहा है, वह एजेंट है, प्रधान नहीं है। दूसरे शब्दों में, जहाँ कोई एजेंट, जिसे किसी दूसरे की ओर से प्रसंविदा करने का अधिकार प्राप्त है, इस तथ्य को छिपाकर कि वह केवल एक प्रतिनिधि है, प्रसंविदा

अपने नाम में करता है, तो अप्रकट प्रधान का सिद्धान्त लागू होता है। इस प्रकार, जहाँ एजेंट को यथार्थ में अधिकार प्राप्त है, किन्तु एजेंसी के तथ्य को प्रकट नहीं करता [अर्थात् प्रधान का अस्तित्व तथा उसका परिचय (identity) प्रकट नहीं करता] तो ऐसी दशा में प्रधान अप्रकट प्रधान (undisclosed principal) कहलाता है। [धारा २३०]

अप्रकट प्रधान के निम्नलिखित दायित्व और अधिकार हैं—

१. अगर कोई एजेंट ऐसे व्यक्ति के साथ प्रसंविदा करता है जो उसको (एजेंट को) प्रधान समझकर ही व्यवहार करता है, तो उसका प्रधान प्रसंविदा के निष्पादन की माँग कर सकता है। साथ-ही-साथ प्रसंविदा करनेवाले अन्य पक्ष को ठीक वही अधिकार प्रधान के विरुद्ध प्राप्त है जो एजेंट के विरुद्ध उस समय प्राप्त होते जब एजेंट स्वयं प्रधान होता। दूसरे शब्दों में, अगर प्रधान अपना यह अधिकार समझता है कि वह दूसरे पक्ष से प्रसंविदा को पूरा कराये, तो इस पक्ष को भी प्रधान के विरुद्ध प्रसंविदा से उत्पन्न अधिकार प्राप्त है।

किन्तु, अगर प्रधान प्रसंविदा के पूरा होने से पहले ही अपने-आपको प्रकट कर देता है तब दूसरी प्रसंविदा को पूरा करने से इस शर्त पर मना कर सकता है कि प्रसंविदा में अगर उसे यह मालूम रहता है कि प्रधान कौन है अथवा उसे यह मालूम होता है कि प्रसंविदा करनेवाला व्यक्ति एजेंट है, प्रधान वही है, तो वह कदापि प्रसंविदा नहीं करता। [धारा २३१]

२. फिर, अगर कोई एजेंट किसी ऐसे व्यक्ति से प्रसंविदा करता है जो न तो यह जानता है और न उसके पास ऐसा करने के यथोचित कारण ही है कि वह जिससे व्यवहार कर रहा है, एजेंट है अथवा वह प्रधान नहीं और यदि ऐसा प्रधान प्रसंविदा के निष्पादन की माँग करता है, तो उसे एजेंट के विरुद्ध प्रसंविदा से उत्पन्न होनेवाले उस पक्ष के अधिकार तथा दायित्व को ध्यान में रखना होगा और तभी वह प्रसंविदा को पूरा कर सकता है।

उदाहरण—A जो B का ₹१,०००) रु० के लिए ऋणी है B, को ₹२,०००) रु० का चावल बेचता है। इस व्यवहार में A, C के एजेंट के रूप में कार्य कर रहा है। किन्तु B को न तो इसका ज्ञान ही है और न सन्देह करने का उचित आधार ही है कि स्थिति ऐसी है, तो C, B को A के ऋण के लिए प्रतिसाद किये बिना चावल लेने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। [धारा २३२]

३. किन्तु एजेंट का व्यक्तिगत दायित्व समाप्त हो जाता है अगर यह प्रमाणित हो जाय कि अन्य पक्ष प्रधान का नाम जानता है।

४. साधारण नियम यह है कि जब एक एजेंट अन्य पक्ष से व्यवहार करता है बिना इस बात को बतलाये हुए कि वह एजेंट है और अगर बाद में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह केवल एजेंट है तब भी वह अपने नाम कर रहा था, तो अन्य पक्ष की इच्छा पर निर्भर है कि चाहे वह एजेंट के विरुद्ध दावा करे या प्रधान के विरुद्ध दावा करे।

एजेंट द्वारा अप्रकट प्रधान की ओर से की गयी किसी प्रसंविदा के परिणाम निम्नलिखित हैं—

१. प्रसंविदा एजेंट द्वारा अथवा उसके विरुद्ध प्रवर्तनीय होती है।

२. अप्रकट प्रधान दूसरे पक्ष से निष्पादन तभी माँग सकता है जबकि वह दूसरे पक्ष को अपने विरुद्ध उसी प्रकार के अधिकार दे जिस प्रकार कि दूसरे पक्ष को एजेंट के विरुद्ध प्राप्त थे। इस प्रकार, एक प्रतिसाद (set off) जो तीसरे पक्ष को एजेंट के विरुद्ध प्राप्त था, प्रधान के विरुद्ध भी प्रयोग में लाया जा सकता है।



## एजेन्सी की समाप्ति (Termination of Agency)

भारतीय प्रसंविदा विधान के अनुसार निम्नलिखित तरीकों से एजेन्सी की समाप्ति होती है—

१. प्रधान द्वारा एजेण्ट के अधिकारों का खण्डन (Revocation),
२. एजेण्ट द्वारा परित्याग (Renunciation),
३. प्रसंविदा का निष्पादन (Completion),
४. प्रधान या एजेण्ट का पागल हो जाना (Unsoundness),
५. प्रधान या एजेण्ट की मृत्यु (Death),
६. प्रधान का दिवालिया हो जाना (Insolvency),
७. एजेन्सी की अवधि का अन्त हो जाना (If the period of agency expired),
८. एजेन्सी के कार्य को पूरा करना असम्भव हो जाना (If the work agency has become impossible to perform),
९. दोनों पक्षों (प्रधान और एजेण्ट) का समझौता (Agreement between both the parties), और
१०. विषय-वस्तु का नाश हो जाना (Destruction of the subject-matter)।

इसकी व्याख्या नीचे दी जाती है—

१. खंडन (Revocation)— धारा २०६ के अनुसार प्रधान यदि चाहे तो एजेण्ट के अधिकारों को किसी भी समय उसे काम शुरू करने के पहले वापस ले सकता है। अतः यदि किसी एक काम को करने का अधिकार दिया गया हो तो उसके शुरू होने के पहले तक प्रधान खंडन कर सकता है। यदि उसका कोई एक भाग भी हो चुका है तो जब तक वह पूरा नहीं हो जाता, प्रधान उसका खंडन नहीं कर सकता।\*

यदि एजेण्ट को सतत कार्य (continuous agency) मिला हो और यदि प्रधान उसका खंडन करना चाहे तो उस हालत में प्रधान को चाहिए कि आम जनता को तथा एजेण्ट को पहले इसकी खबर (notice) दे दे। [धारा २०३]

यदि प्रधान इसकी खबर नहीं देता है तो इससे एजेण्ट को जो नुकसान होगा, उसकी पूर्ति उसे करनी पड़ेगी तथा तीसरे पक्ष के प्रति भी, जिसने विश्वास के साथ कार्य किया है, बाध्य होना पड़ेगा। यदि एजेन्सी किसी निश्चित समय के लिए हो और यदि प्रधान यह चाहे कि उसका खंडन समय बीतने के पहले ही कर दे तो उसे पहले इस बात की सूचना एजेण्ट को देनी पड़ेगी। यदि ऐसी दशा में खंडन बिना वजह के हुआ तो उसके लिए प्रधान को एजेण्ट क्षतिपूर्ति के लिए बाध्य कर सकता है।†

खंडन स्पष्ट और गर्भित दोनों प्रकार से होता है।

उदाहरण—X, Y से उसके मकान को किसी तीसरे के हाथ भाड़े पर देने के लिए कहता है। इसके बाद X खुद उस मकान में रहने लगता है। X ने Y के अधिकार को अपने आचरण द्वारा समाप्त कर दिया।

परन्तु प्रसंविदा-विधान में कुछ ऐसी भी स्थितियाँ दी गयी हैं जिनमें प्रधान

\* Sec. 204.

† Secs. 205 & 207.

अपने एजेण्ट के कार्य करने के अधिकार को वापस नहीं ले सकता है ।

(i) जब एजेन्सी के विषय में एजेण्ट का हित भी सम्मिलित हो ।\*

धारा २०२ के अनुसार यदि एजेन्सी की विषय-वस्तु में एजेण्ट का स्वयं कोई हित हो तो किसी स्पष्ट प्रसंगिकता के अभाव में ऐसे हित को हानि पहुँचाने के लिए प्रधान के खंडन द्वारा एजेन्सी समाप्त नहीं की जा सकती है । ऐसी परिस्थिति में प्रधान की मृत्यु तथा पागलपन भी एजेन्सी को समाप्त नहीं कर सकते हैं ।

**उदाहरण—**(क) X, Y को अपनी जमीन बेचने का तथा प्राप्त रकम में से अपने ऋण के भुगतान का अधिकार देता है । X इस अधिकार का खंडन नहीं कर सकता है और न यह प्रधान की मृत्यु अथवा पागलपन से ही समाप्त हो सकता है ।

(ख) X, Y को १,००० गाँठ रुई भेजता है । Y ने रुई पर बयाना (advance) दिया है । X यह चाहता है कि Y रुई बेचकर अपना बयाना दिया हुआ रुपया प्राप्त मूल्य में से ले ले । X इस अधिकार का खंडन नहीं कर सकता है और न उसकी मृत्यु अथवा पागलपन से ही यह समाप्त हो सकता है ।

(ii) जब एजेन्सी का अधिकार किसी विशिष्ट तथा एक ही काम करने के लिए मिला हो और यदि एजेण्ट उस सम्पूर्ण काम के कुछ भागों को कर चुका हो तो वैसे दशा में जब तक कि काम पूरा नहीं हो जाता, प्रधान उनका खंडन नहीं कर सकता । [धारा २०४]

(iii) जब एजेण्ट ने अपने दायित्व पर प्रधान के लिए कोई काम किया हो तब प्रधान उस एजेन्सी की समाप्ति नहीं कर सकता जब तक एजेण्ट का दायित्व खत्म नहीं हो जाता ।

**२. एजेण्ट द्वारा परित्याग (By Renunciation)**—साधारण एजेण्ट प्रधान को उचित सूचना देकर एजेन्सी को समाप्त कर सकता है । धारा २०५ के अनुसार यदि एजेन्सी किसी निश्चित समय के लिए हो और यदि एजेण्ट इस समय के पूर्व ही बिना किसी पर्याप्त कारण के एजेन्सी समाप्त करता हो तथा यदि इससे प्रधान को किसी प्रकार का नुकसान होता हो तो एजेण्ट को प्रधान के इस नुकसान को पूरा करना होगा ।

फिर धारा २०६ के अनुसार एजेण्ट को इस परित्याग के लिए प्रधान को उचित सूचना देनी चाहिए अन्यथा इस सूचना के न मिलने के कारण यदि प्रधान को किसी प्रकार की क्षति होती है तो एजेण्ट को उसे पूरा करना पड़ेगा ।

फिर धारा २०७ के अनुसार परित्याग स्पष्ट तथा गंभीत हो सकता है ।

**३. प्रसंगिकता का निष्पादन (By Completion)**—जिस काम के लिए प्रधान ने एजेण्ट को बहाल किया हो उस काम के पूरा हो जाने पर एजेन्सी की समाप्ति आप ही हो जाती है ।

**उदाहरण—**Z ने X को २०० मन चावल खरीदने को कहा । Z ने X के लिए २०० मन चावल खरीदा । ऐसी दशा में Z ने जैसे ही अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति की वैसे ही एजेन्सी की समाप्ति हो गयी ।

**४. प्रधान या एजेण्ट का पागल हो जाना (Unsoundness)**—प्रधान या एजेण्ट के पागल होने पर भी एजेन्सी समाप्त हो जाती है । यद्यपि एजेण्ट को नियुक्त करते समय किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी एजेण्ट के पागल होने पर कानून यह कहता है कि एजेन्सी समाप्त कर दी जाय । इंग्लैंड तथा हिन्दुस्तान दोनों जगहों में

\* Where agent has an interest in the subject matter.

एजेंसी समाप्त करने के लिए एजेंट तथा प्रधान के पागल होने की सूचना देना आवश्यक है।

५. प्रधान या एजेंट की मृत्यु (By Death)—चूँकि एजेंट और प्रधान का पारस्परिक सम्बन्ध अटूट है, इसलिए दोनों में से यदि किसी एक की मृत्यु हो जाती है तो वैसी दशा में पारस्परिक सम्बन्ध टूट जाता है और एजेंसी की समाप्ति हो जाती है। यदि प्रधान की मृत्यु हो जाय तो उसके बाद एजेंट के कार्यों के लिए प्रधान के उत्तराधिकारी बाध्य नहीं होंगे, क्योंकि उनसे एजेंसी की प्रसंविदा नहीं हुई। अगर प्रधान की मृत्यु के बाद एजेंट के कार्यों का पुष्टिकरण उसके उत्तराधिकारी करें तो वे उत्तरदायी होंगे।

६. प्रधान का दिवालिया हो जाना (By Insolvency)—जब कोई व्यक्ति दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो कानून की दृष्टि से वह प्रसंविदा करने के योग्य नहीं रहता है। अतः दिवालिया मनुष्य भविष्य में प्रधान की तरह कार्य नहीं कर सकता है तथा उसकी तरफ से कोई उसका प्रतिनिधित्व भी नहीं कर सकता। इसलिए प्रधान के दिवालिया घोषित कर दिये जाने पर एजेंट फिर एजेंट नहीं रह जाता और एजेंसी की समाप्ति हो जाती है।

७. एजेंसी की अवधि का अन्त हो जाना (If the period of agency has expired)—यदि एजेंसी किसी निश्चित समय के लिए हुई है तो समय के बीत जाने के बाद एजेंसी की समाप्ति आप-से-आप हो जाती है। फिर अगर प्रधान और एजेंट आपस में यह तय करें कि कुछ समय के लिए एजेंसी का समय को बढ़ा दिया जाय तो वे ऐसा कर सकते हैं।

८. एजेंसी के कार्य को पूरा करना असम्भव हो जाना (If the work of agency has become impossible to perform)—किसी सरकारी कानून के द्वारा प्रतिबन्ध लगा देने पर अथवा किसी दूसरे कारण से जब एजेंसी के कार्य का पूरा करना भविष्य में असम्भव हो जाय तो वैसी दशा में प्रधान और एजेंट दोनों लाचार होकर एजेंसी की समाप्ति कर देते हैं।

९. दोनों पक्षों का समझौता (Agreement between both the parties)—एजेंसी की समाप्ति एजेंट और प्रधान दोनों आपस में मिलकर समझौता द्वारा कभी भी कर सकते हैं। ऐसा करने में किसी प्रकार की कानूनी रुकावट नहीं है। वे निश्चित समय या कार्य होने के पूर्व ही एजेंसी की समाप्ति कर सकते हैं।

१०. विषयवस्तु का नाश होना (By destruction of the subject-matter)—जो कार्य एजेंसी का प्रधान अंग है और जिसके बिना एजेंसी की प्रतिज्ञा को पूरा करना असंभव है उस प्रधान अंग का या विषयवस्तु (subject-matter) का नाश हो जाने पर स्वभावतः एजेंसी की समाप्ति हो जाती है।

निम्नांकित अवस्थाओं में एजेंसी की समाप्ति नहीं हो सकती (Agency cannot be revoked)—१. अगर एजेंसी की सम्पत्ति में एजेंट का अपना हित है (If the agent has interest in the property of agency)—धारा २०२ के अनुसार अगर एजेंसी की सम्पत्ति में एजेंट का अपना हित है, तो किसी ऐसी एजेंसी का अन्त नहीं किया जा सकता जिसके होने से एजेंट के हित को क्षति पहुँचे। यह तभी सम्भव है जब कोई ऐसी प्रसंविदा हो गयी हो जिसमें यह निश्चित हो गया हो कि हर दशा में चाहे एजेंट का हित ही क्यों न हो एजेंसी समाप्त कर दी जायगी।

२. अगर एजेंट ने कोई जिम्मेदारी व्यक्तिगत रूप से ले ली है (If the agent has taken any responsibility personally)—अगर एजेंट ने कोई जिम्मेदारी

व्यक्तिगत रूप से ले ली हो, तब भी एजेंसी का अन्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि नियोक्ता (principal) को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह एजेंट को जोखिम में डालकर खुद पीछे हट जाय । [धारा २०४]

३. अगर एजेंट ने अपने अधिकारों का आंशिक रूप से प्रयोग किया है (If the agent has used his right partially) — फिर, धारा २०४ के अनुसार अगर एजेंट ने अपने अधिकारों का आंशिक रूप से प्रयोग किया है और उसके कुछ उत्तरदायित्व उत्पन्न हो चुके हैं तब एजेंसी को समाप्त करके नियोक्ता इन उत्तरदायित्वों को समाप्त नहीं कर सकता । अर्थात्, जहाँ तक उन कार्यों तथा जिम्मेदारियों का सम्बन्ध है, एजेंसी का अन्त नहीं हो सकता ।

**एजेंसी की समाप्ति का इस्तेमाल या प्रयोग (When termination of agency takes effect) :**

धारा २०८ के अनुसार प्रसंविदाओं पर या तीसरे पक्षों के प्रति एजेंसी की समाप्ति तब तक लागू नहीं समझी जाती जब तक कि यह बात उन्हें मालूम न हो जाय कि एजेंसी समाप्त हो गयी । अतः यह बात मालूम होने के पहले तक जितनी प्रसंविदाएँ होती हैं उनके लिए प्रधान या उसका प्रतिनिधि (representative) या उत्तराधिकारी बाध्य होता है ।

**उदाहरण—**(i) X, Y को कुछ सामान बेचने के लिए देता है और उसे माल के प्राप्त मूल्य पर १०% कमीशन देने को स्वीकार करता है । कुछ दिनों के बाद X एक पत्र द्वारा Y की एजेंसी के अधिकार का खण्डन करता है । पत्र डाक में देने के बाद परन्तु Y को मिलने के पहले Y उन सामानों को ५०० रु० में बेच देता है । चूँकि खण्डन की सूचना Y को नहीं मिली थी, अतः X, Y के द्वारा विक्री के लिए बाध्य है और Y ५० रु० कमीशन पाने का अधिकारी है ।

(ii) X अपने एजेंट Y को कुछ रुपया देता है कि वह उन रुपयों को Z को दे दे । इसी बीच X की मृत्यु हो जाती है और उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी P बन जाता है । Y, X की मृत्यु के बाद किन्तु इस बात की सूचना पाने के पहले, X से प्राप्त रुपयों को Z को दे देता है । ऐसी दशा में P के प्रति भी Z को चुकाया गया रुपया उचित है ।

**उप-एजेंट के अधिकारों की समाप्ति (Termination of sub-agent's Authority)**

धारा २१० के अनुसार एजेंट के अधिकार की समाप्ति, उसके द्वारा नियुक्त किये गये सभी उप-एजेंटों के अधिकारों को भी समाप्त कर देती है, क्योंकि उप-एजेंट एजेंट द्वारा ही नियुक्त किया जाता है । अतः एजेंट का अस्तित्व न रहने पर उप-एजेंट का अस्तित्व समाप्त हो जाता है ।

### University Questions

1. "He who acts through an agent, is himself acting." Comment.  
("एजेंट के माध्यम से कार्य करनेवाला व्यक्ति स्वयं ही कार्य करता है ।" व्याख्या करें ।)

2. What is an agency ? What are the various ways in which the relationship of agency arises ? What are the extent of agent's

authority ? What is the degree of skill required by an agent ?

(एजेंसी किसे कहते हैं ? एजेंसी किन विभिन्न तरीकों से उत्पन्न हो सकती है ? एजेंट के प्राधिकार का क्षेत्र कितना विस्तृत होता है ? एक एजेंट के लिए किस स्तर की कुशलता की आवश्यकता होती है ?)

3. What is an agency ? Discuss the extent of agent's authority.  
(एजेंसी क्या है ? एजेंट के अधिकार-क्षेत्र की व्याख्या कीजिए ।)

4. Can a minor be appointed as an agent ? What are the mutual rights and liabilities of a minor agent to Principal and third party ?

(क्या एक नाबालिग एजेंट बहाल किया जा सकता है ? प्रधान और तीसरे पक्षकार के प्रति एक नाबालिग एजेंट के पारस्परिक अधिकार और उत्तरदायित्व क्या हैं ?)

5. What is an agency ? Explain the rights and duties of an agent towards his principal ?

(एजेंसी क्या है ? आने प्रधान के प्रति एक एजेंट के अधिकार एवं कर्तव्यों की व्याख्या कीजिये ।)

6. What are the different ways in which an agency may be created ? Is consideration necessary for the creation of an agency ?

(किन विभिन्न रीतियों से एक एजेंसी की स्थापना हो सकती है ? क्या एजेंसी की स्थापना के लिए प्रतिफल आवश्यक है ?)

7. Who is a sub-agent ? When can he be legally appointed ? What is his position in relation to agent, principal and third party ?

(उप-एजेंट या 'उप-अभिकर्ता' किसे कहते हैं ? उसे किन परिस्थितियों में विधिपूर्वक नियुक्त किया जा सकता है ? अभिकर्ता, नियुक्ता एवं तृतीय पक्षकार के सम्बन्ध में उसकी क्या स्थिति होती है ?)

8. Distinguish between a sub-agent and a substituted agent. Indicate their relation to the principal and the third party.

(उप-एजेंट और स्थानापन्न एजेंट में अन्तर बताइये । प्रधान और तीसरे पक्षकार के प्रति उनके सम्बन्ध बताइए ।)

9. 'A delegatus non potest delegare.' Discuss the maxim with special reference to agency contracts.

(“एक प्रतिनिधि अपना कार्य दूसरे को सौंप नहीं सकता ।” एजेंसी-अनुबन्धों का विशेष निर्देश करते हुए इस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ।)

10. Discuss the position of the agent, the sub-agent and the principal when a sub-agent is (i) properly appointed and (ii) improperly appointed.

[एजेंट, उप-एजेंट और प्रधान की स्थिति की व्याख्या कीजिए जबकि उप-एजेंट की नियुक्ति (i) उचित ढंग से होती है और (ii) अनुचित ढंग से होती है ।]

11. What is agency by ratification ? What are the conditions requisite for and consequences of a valid ratification of acts done by a person not authorised to do them ?

(‘पुष्टिकरण द्वारा एजेंसी’ किसे कहते हैं ? जिस व्यक्ति को कोई कार्य करने का अधिकार न दिया गया हो, उसके द्वारा किये गये कार्यों के वैध पुष्टिकरण की

क्या शक्त एवं परिणाम होते हैं ?)

12. What is meant by 'ratification' ? Explain the essentials of a valid ratification.

(‘पुष्टिकरण’ का क्या अर्थ है ? एक वैध पुष्टिकरण के क्या आवश्यक तत्त्व हैं ?)

13. Describe the different kinds of agent. Discuss the legal position of a wife as an agent of her husband.

(एजेंट के विभिन्न भेदों का वर्णन कीजिए । अपने पति के एजेंट के रूप में पत्नी की वैधानिक स्थिति का वर्णन कीजिए ।)

14. What are the chief duties of an agent ? What degree of diligence must an agent show in discharge of his duties ?

(एक एजेंट के मुख्य कर्तव्य क्या हैं ? अपने कर्तव्य के पालन में एक एजेंट को कितना परिश्रम अवश्य करना चाहिए ?)

15. What are the rights of an agent against his principal in respect of (a) remuneration and (b) re-imbursement ?

[ (अ) पारिश्रमिक तथा (ब) अग्रिम वापस पाने के सम्बन्ध में प्रधान के प्रति एजेंट के क्या अधिकार हैं ? ]

16. When is an agent personally liable for contracts entered into by him on behalf of his principal ?

(अपने प्रधान की ओर से किये गये अनुबन्धों के प्रति एजेंट व्यक्तिगत रूप से कब उत्तरदायी होता है ?)

17. "An agent cannot personally enforce contracts entered into by him on behalf of his principal. Is he personally bound on them ?" Discuss and enumerate the exception if any.

(एजेंट अपने प्रधान की ओर से अपने द्वारा किये गये अनुबन्धों को व्यक्तिगत रूप से लागू नहीं करा सकता तथा वह उनके लिए व्यक्तिगत रूप से बाध्य भी नहीं होता ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा इसके अपवादों की विवेचना कीजिए ।)

18. What is the effect of agency on contracts with third parties ? When is a principal bound by the authorised acts of his agent ?

(तीसरे पक्षकारों के साथ की गयी प्रसविदाओं पर एजेंसी का क्या प्रभाव होता है ? कब प्रधान अपने एजेंट के अनधिकृत कार्यों के लिए बाध्य होता है ?)

19. When an agent sue or be sued personally on contracts entered into by him on behalf of his principal ?

(अपने प्रधान की ओर से अपने द्वारा किये गये प्रसविदाओं पर एजेंट कब व्यक्तिगत रूप से मुकदमा कर सकता है तथा उसके ऊपर मुकदमा किया जा सकता है ?)

20. What do you understand by undisclosed principal ? Discuss the effect of a contract made by an agent on behalf of an undisclosed principal.

(अप्रकट प्रधान से आप क्या समझते हैं ? अप्रकट प्रधान की तरफ से एजेंट द्वारा किये गये अनुबन्ध के प्रभाव की व्याख्या कीजिए ।)

21. In the course of bringing about a contract on behalf of a principal, the agent misrepresents certain facts. Discuss the position according as (i) he knew the facts to be untrue, (ii) he did not know the truth but his principal did.

(प्रधान की ओर से प्रसंविदा करते समय एजेंट कुछ तथ्यों के विषय में मिथ्या वर्णन करता है। उस स्थिति का विवेचन कीजिए— (i) जब कि वह उन तथ्यों की असत्यता के विषय में जानता था, (ii) जब कि उसे सत्य की जानकारी नहीं थी, परन्तु प्रधान को थी।)

**22.** What are the different modes in which the authority of an agent may be terminated ? When is an agency irrevocable ?

(एजेंट के प्राधिकार को समाप्त करने की कौन-कौन-सी रीतियाँ हैं ? एजेंसी कब अखण्डनीय या समाप्त नहीं हो सकती है ?)

**23.** Discuss the effect of fraud committed by a person while acting as an agent.

(एजेंट के रूप में कार्य करते समय किसी व्यक्ति द्वारा कपट करने के प्रभाव का वर्णन कीजिए।)

**24.** "The law which super-adds the liability of the agent does not detract from the liability of the principal." Examine this statement and point out the circumstances in which the agent is personally liable for the contracts entered into by him on behalf of the principal.

("जिस सन्नियम के द्वारा एजेंट के दायित्व में वृद्धि की जाती है, उसके द्वारा प्रधान के दायित्व में कमी नहीं की जाती है।" इस कथन का विवेचन कीजिए और उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनमें प्रधान की ओर से किये गये अनुबन्धों के लिए स्वयं एजेंट उत्तरदायी होता है।)

**25.** Write short notes on the followings—

(i) Implied authority, (ii) Sub-agent, (iii) Substituted agent, (iv) Agency by estoppel, (v) Agency by necessity, (vi) Del-credere agent, (vii) Pretended agent, (viii) Agency coupled with interest.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) गर्भित अधिकार, (ii) उप-एजेंट, (iii) स्थानापन्न एजेंट, (iv) अवरोध द्वारा एजेंसी, (v) आवश्यकता द्वारा एजेंसी, (vi) परिशोधी एजेंट, (vii) कुटिल एजेंट, (viii) हित-सहित एजेंसी।]

**26.** State the different ways in which an agency is terminated. A gives authority to B to sell A's land and to pay himself out of the proceeds the debts due to him from A. A dies soon after giving the authority. Does the authority terminate on A's death ?

[Ans. No; the authority cannot be terminated by his insanity or death See Sec. 202 Example (a)]

**27.** How an agency is created by necessity ? What is the agent's authority in an emergency ? A constitutes B his agent to carry on his business of a ship-builder. B purchases timber and other materials from C and hires workmen for the purpose of carrying on the business. Can C and the workmen realise their dues from A ?

[Ans. Yes, See Sec. 118 Example (b)]

**28.** When termination of agent's authority takes effect as to agent and as to third person ? A directs B, his agent to pay a certain sum of money to C. A dies, and D takes out probate to his will. B after A's death, but hearing of it, pays the money to C, D claims the money from B.

[Ans. The payment is good as against D, the executor. See Sec. 208 Example (c) ]

29. What are the rules relating to the rights of indemnify of an agent against his principal ? A employs B to beat C and agrees to indemnify him against all consequences of the act. B thereupon beats C, and has to pay damages to C for so doing. Is A liable to indemnify B for these damages ?

[Ans. No; A is not liable to indemnify B for these damages; See Sec. 224 Example (a) ]

30. Discuss the following Problems—

(i) A consigned provisions to B at Calcutta with directions to send them immediately to C at Cuttack. If on their arrival at Cuttack B believes in good faith that they will not bear the journey to Cuttack without spoiling, can he validly sell them at Calcutta ?

[Ans. धारा १८९ के अनुसार B उनको कलकत्ते में ही बेच देने का वैध अधिकार रखता है ।]

(ii) A appoints B as his agent to represent him in his business dealings. B without informing A, goes out of India leaving instructions with his brother C to do the work during his absence. C enters into a contract with D on behalf of A. What is the position of the parties ?

[Ans. यह प्रश्न 'उप-एजेंट' से सम्बद्ध है । धारा १९३ के अनुसार C के कामों के लिए B उत्तरदायी है, A उत्तरदायी नहीं है; क्योंकि B ने C को अनधिकृत रूप से उप-एजेंट बहाल किया है ।]

(iii) A instructs B, a merchant to pay a ship for him. B employs a ship-surveyor of good reputation to choose a ship for A. The surveyor makes the choice negligently and the ship turns out to be unseaworthy and is lost. A sues B for damages. Give your decision.

[Ans. धारा १९५ के अनुसार A का दावा सफल नहीं होगा और A, B से नुकसान की पूर्ति नहीं करा सकेगा क्योंकि B ने स्थानापन्न एजेंट चुनने में उतने ही विवेक से काम किया है जितना कि एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति अपने निजी मामले में करता ।]

(iv) A makes an offer to sell a machine which B accepts on behalf of C. B had no authority to accept the offer. Subsequently C ratifies B's acceptance. Is A bound to sell the machine to C ?

[Ans. धारा १९६ के अनुसार A, C को मशीन बेचने के लिए बाध्य है. क्योंकि, C ने B की स्वीकृति का पुष्टिकरण कर दिया है ।]

(v) A holds a plot of land on lease from B terminable at six month's notice. C, an unauthorized person, gives notice of termination to A. Can the notice be satisfied by B so as to binding on A ?

[Ans. धारा २०० के अनुसार इस तरह की नोटिस का पुष्टिकरण B नहीं कर सकता, जिससे कि वह A को बाध्य कर सके ।]

(vi) A consigns 1,000 bags of cotton to B who has made advances to him on such cotton and desires B to sell the cotton and repay himself out of sale proceeds the amount of his own advances. A week later A becomes insane and two weeks later he dies. Is the authority to B



to sell A's cotton and to repay himself revoked in either case ? If so, why ? If not, why not ?

[Ans. धारा २०२ के अनुसार B द्वारा रुई के विक्रय करने और उसमें से अग्रिम (advance) की रकम ले लेने का अधिकार तोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि एजेंसी की विषयवस्तु में एजेंट का स्वयं का हित है ।]

(vii) A, a merchant in England, directs B, his agent at Bombay, to send him 100 bales of cotton by a certain ship. B, having it in his power to send cotton, omits to do so. The ship arrives safely in England. Soon after her arrival the price of cotton rises. What is the extent of B's liability to A ?

[Ans. धारा २१२ के अनुसार B, A के प्रति उस लाभ की पूर्ति करने के लिए बाध्य है जो जहाज के पहुँचते समय ही उसको १०० गाँठ से प्राप्त होता; किन्तु वह बाद में कीमत बढ़ जाने के कारण होनेवाले किसी लाभ के लिए उत्तरदायी नहीं है ।]

(viii) A engaged B, an auctioneer to sell some property and promised to pay him Rs. 100 as commission. B received secretly Rs. 50 as commission from the purchaser. State the rights of A and B.

[Ans. धारा २२० के अनुसार B कमीशन पाने का अधिकारी नहीं है । यही नहीं, A, B से प्राप्त गुप्त कमीशन ले सकता है ।]

(ix) A employs B as a bricklayer in building a house, and puts up the scaffolding himself. The scaffolding is unskilfully put up, and B is in consequence hurt. What remedy, if any, has B against A ?

[Ans. धारा २२५ के अनुसार A, B की क्षतिपूर्ति के लिए दायी है ।]

(x) A consigns goods to B for sale, and gives him instructions not to sell under a fixed price. C, being ignorant of A's instructions enters into a contract with B to buy the goods at a price lower than the reserved price. Advise A.

[Ans. धारा २३७ के अनुसार A इस प्रसविदा से बाध्य है ।]

(xi) A, B and C are partners in a firm doing business of carrying goods by motor-trucks. One of the drivers of a truck while driving at a high speed on a highway knocks down a person who dies on the spot. Are A, B and C liable for damages to the legal representative of the deceased ?

[Ans. इस प्रश्न में A, B और C मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारियों के प्रति क्षतिपूर्ति के लिए दायी है, क्योंकि ड्राइवर से गलती काम के दौरान हुई है और उससे ड्राइवर का कोई निजी कार्य या अपना कोई मतलब न था ।]

(xii) A enters into a contract with B to sell him 100 bales of cotton and afterwards discovers that B was acting as the agent of C. Who is liable to pay the price of cotton to A ?

[Ans. धारा २३१ के अनुसार A कीमत के लिए B पर मुकदमा कर सकता है, तथा वह C पर मुकदमा कर सकता है ।]

(xiii) A directs B his solicitor, to sell his estate by auction and to employ an auctioneer for the purpose. B names C as auctioneer, to conduct the sale. State whether C is an agent or sub-agent.

[Ans. Sec. 194 Example (a) C is not a sub-agent but A is agent or the conduct of the sale.]

(xiv) A without B's authority, lends B's money to C. Afterwards B accepts interest of the money from C. Discuss the position of A.

[Sec. 197 (b) B's conduct implied a ratification of the loan.]

(xv) A power of attorney was given by A to B, his agent to present a document for registration. A died before the document was presented for registration. The Registrar was aware of the death of A and registered the document. Examine the position.

---

માલ-વિક્રય-અધિનિયમ, 1930  
(The Sale of Goods Act)



# भारतीय माल-विक्रय अधिनियम (INDIAN SALE OF GOODS ACT)

## विषय-प्रवेश (Introduction)

भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम, १९३० (Indian Sale of Goods Act, 1930), १ जुलाई, १९३० से कार्यान्वित हुआ। इस अधिनियम के बनने से पहले वस्तु-विक्रय से सम्बद्ध नियम भारतीय प्रसंविदा-अधिनियम, १८७२ की ७६ से १२३ धाराओं में सम्मिलित थे। उक्त धाराएँ भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम की धारा ६५ द्वारा निरस्त कर दी गयी थी। किन्तु भारतीय प्रसंविदा-अधिनियम के दूसरे नियम जो भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम के विशेष नियमों के अन्तर्गत नहीं हैं, माल-विक्रय की प्रसंविदाओं पर भी लागू होते रहेंगे। प्रयोग किये गये ऐसे शब्दों का अर्थ जिनकी परिभाषा भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम में नहीं दी गयी है, अपितु भारतीय प्रसंविदा-अधिनियम में दी गयी है, वही है जो उनके उस अधिनियम में है। इस अध्याय में जो भी धाराएँ दी गयी हैं वे भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम, १९३० की हैं।

### परिभाषाएँ

धारा २ के अनुसार भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम में प्रयोग किये गये मुख्य शब्दों की परिभाषा इस प्रकार है—

१. **क्रेता या खरीदार (buyer)** से तात्पर्य है वह व्यक्ति, जो माल को खरीदता या खरीदने का करार करता है और विक्रेता (seller) से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो बेचता अथवा बेचने की सविदा करता है।

२. **‘सुपुर्दगी’ (delivery)** से तात्पर्य है आधिपत्य का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छ हस्तान्तरण करना (voluntary transfer of possession)।

३. **माल तब ‘सुपुर्दगी-योग्य स्थिति’ (deliverable state)** में होना कहा जाता है जब कि वह ऐसी स्थिति में हो कि विक्रेता अनुबन्ध के अधीन उनकी सुपुर्दगी देने को बाध्य हो।

४. **माल-सम्बन्धी स्वत्व का प्रलेख (documents of title to goods)**, जहाज पर लादे गये माल का बीजक (bill of lading), बन्दरगाह पर जहाज के उतारने का शक्तिपत्र (dock warrant), गोदाम-रक्षक (warehouse keepers) का प्रमाणपत्र, घाट के स्वामी (wharfinger) का प्रमाणपत्र, रेलवे की रसीद, माल के सौपने के लिए वारण्ट या आदेश और अन्य कोई ऐसा प्रलेख, जिसका उपयोग व्यापार के साधारण अनुक्रम में माल के आधिपत्य या नियन्त्रण के प्रमाण के रूप में या प्रलेख के आधिपत्य रखनेवाले को, या तो पृष्ठलेखन या सौपने के द्वारा उसके प्रतिनिधित्व किये गये माल के हस्तान्तरण या प्राप्त करने के लिए अधिकृत करते हुए या अधिकृत करने के प्रयोजन से हुआ हो, इसमें सम्मिलित है।

५. 'दोष' (fault) से तात्पर्य है नियम-विरुद्ध कार्य या गलती।

६. दिवालिया (Insolvent)—उस व्यक्ति को 'दिवालिया' कहते हैं जिसने व्यापार की साधारण प्रगति में अपने कर्जों का भुगतान बन्द कर दिया है, अथवा जो अपने कर्जों को भुगतान करने में असमर्थ है, चाहे उसने 'दिवालिया' होने का कोई काम किया है या नहीं। [दिवालिया-सम्बन्धी सन्निधिम के अनुसार दिवालिया होने का कोई काम (act of insolvency) किया हो] लेकिन माल-विक्रय-अधिनियम में इस तरह के काम करना आवश्यक नहीं है।

७. व्यापारिक एजेंट (Mercantile Agent)—'व्यापारिक एजेंट' का मतलब उस तरह के एजेंट से है जिसको व्यापार की साधारण प्रगति में माल बेचने अथवा विक्रय के सम्बन्ध में माल भेजने, अथवा माल खरीदने, अथवा माल की प्रतिभूति पर रक्या प्राप्त करने का अधिकार है।

८. मूल्य (Price)—'मूल्य' से मतलब माल की विक्री के प्रतिफल से है जो अनिवार्य रूप से मुद्रा में होना चाहिए।

९. सम्पत्ति (Property)—'सम्पत्ति' का मतलब माल की सामान्य सम्पत्ति (general property) से है; केवल विशेष सम्पत्ति (special property) से नहीं। माल-विक्रय-अधिनियम में, विक्रेता माल की सामान्य सम्पत्ति का हस्तान्तरण करता है या करने का समझौता करता है। इस प्रकार 'माल-विक्रय-अधिनियम' 'गिरवी' (pledge) से भिन्न है।

१०. माल अथवा वस्तु (Goods)—'माल' का मतलब (अभियोग के योग्य दावे तथा मुद्रा को छोड़कर) हर तरह की चल सम्पत्ति से है; माल के अन्दर स्टॉक तथा शेयर, जमीन की फसल, घास, तथा जमीन में लगी हुई वस्तुएँ जिनको विक्रय से पहले अथवा विक्रय-अनुबन्ध के अधीन अलग करने का समझौता कर लिया गया है, शामिल है। अभियोग के योग्य दावे (actionable claims) तथा मुद्रा माल नहीं हैं। अभियोग के योग्य दावे में अधिकारी व्यक्ति को प्रयोग करने का अधिकार नहीं होता, लेकिन वस्तु को दावे द्वारा वापस पाने का अधिकार होता है, जैसे एक कर्ज मुद्रा का मतलब एक प्रचलित मुद्रा से है। पुराने तथा दुर्लभ सिक्के भी माल में शामिल किये जा सकते हैं। डिक्की के विक्रय का मतलब भी माल के विक्रय से है।

**माल की विक्री की प्रसविदाओं का अर्थ एवं निर्माण (Meaning and Formation of Contract of Sale)—[धाराएँ ४-५]**

माल के विक्रय का अनुबन्ध ऐसा है जिसके द्वारा विक्रेता माल की सम्पत्ति क्रेता को एक मूल्य पर हस्तान्तरित करता है या हस्तान्तरण करने का करार करता है। माल के स्वामित्व को किसी दूसरे माल के बदले हस्तान्तरित करने की कोई संविदा विक्रय नहीं है, अपितु वस्तुविनिमय (Barter) है, जब कि बिना प्रतिफल वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरित उपहार कहलाता है। विक्रय का अनुबन्ध एक आंशिक स्वामी (part-owner) और दूसरे के बीच में हो सकता है तथा विक्रय की प्रसविदा शर्त-रहित या शर्त-सहित भी हो सकती है।

जब किसी विक्रय की प्रसविदा के अन्तर्गत माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है, तब प्रसविदा को विक्रय (sale) कहते हैं।

किन्तु जहाँ माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण किसी भावी समय पर होना है अथवा भविष्य में किसी शर्त को पूरा करने पर निर्भर है तो ऐसी प्रसंविदा को विक्री की संविदा (agreement to sell) कहते हैं।

विक्री की संविदा तब विक्रय हो जाती है जब कि समय समाप्त हो जाना है अथवा उन शर्तों की पूर्ति कर दी जाती है जिनके अधीन वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण होना है। [धारा ४]

### माल विक्री प्रसंविदा के आवश्यक लक्षण (Essential characteristics of a Contract of Sale)

माल विक्री प्रसंविदा के आवश्यक लक्षण निम्नलिखित हैं—

१. दो पक्ष (Two Parties) — प्रत्येक विक्रय प्रसंविदा के लिए विक्रेता और क्रेता के रूप में दो विभिन्न पक्षों का होना अति आवश्यक है। एक ही व्यक्ति क्रेता एवं विक्रेता दोनों ही रूप में काम नहीं कर सकता है। कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने से माल क्रय करने का प्रसंविदा नहीं कर सकता है। किसी एजेंट द्वारा अपने स्वामी के माल का स्वयं क्रय कर लेना अथवा किसी साझेदारी व्यवसाय के साझेदार द्वारा साझेदारी व्यवसाय के ही माल की खरीद कर लेना वगैरह ऊपर लिखे नियम के कुछ अपवाद हैं।

२. चल-सम्पत्ति (Movable good) — विक्रय प्रसंविदा के लिए किसी भी प्रकार की चलायमान वस्तुओं का होना आवश्यक है। माल विक्रय सन्निधिम के अन्दर सिर्फ चलायमान वस्तुओं की विक्री की प्रसंविदा को ही नियमित किया गया है। चलायमान वस्तुओं में अनियोज्य दावाओं (un-actionable claims) एवं मुद्राधन (money) को शामिल नहीं किया जाता है।

उदाहरण— A एक होटल में एक लम्बे समय से रहता चला आ रहा था। होटल का मालिक खाना देने, होटल में रहने एवं अन्य सेवाओं के प्रतिफलस्वरूप A से एक निश्चित रकम लेता था। A के किसी दिन खाना न खाने पर उसे उस निश्चित राशि में से कुछ छूट नहीं दी जाती थी। बाद में यह प्रश्न उठा कि होटल के मालिक द्वारा A को खाना देना विक्रय की प्रसंविदा है अथवा नहीं। न्यायालय ने यह फैसला दिया कि खाना देना विक्रय प्रसंविदा नहीं है, बल्कि सामान्य सेवाएँ प्रदान करने की ही एक प्रसंविदा है और इन सेवाओं के प्रतिफलस्वरूप ही निश्चित राशि दी जाती है। [Associated Hotels of India vs. Excise and Taxation Officer, A. I. R.—(1966) Punjab 249.]

३. मुद्रा प्रतिफल (Money Consideration) — माल-विक्रय-प्रसंविदा में वस्तुओं के स्वामित्व का हस्तान्तरण मुद्रा मूल्य के लिए ही किया जाना चाहिए। मुद्रा मूल्य की आवश्यकता होने के कारण ही वस्तु विनिमय अथवा सेवाओं के मूल्य का वस्तुओं के द्वारा भुगतान किये जाने की प्रणाली (track system of payment) को माल-विक्रय-प्रसंविदा की परिभाषा के अन्दर शामिल नहीं किया जाता है।

४. सामान्य स्वामित्व का हस्तान्तरण (Transfer of general property) — माल-विक्रय-प्रसंविदा का उद्देश्य विक्रेता द्वारा क्रेता को माल के किसी विशेष स्वामित्व का नहीं, बल्कि सामान्य स्वामित्व का हस्तान्तरण किया जाना होता है।

## विक्रय तथा विक्री की संविदा में अन्तर (Distinction between Sale and Agreement to Sell)

विक्रय तथा विक्री की संविदा में निम्नलिखित मुख्य अन्तर हैं—

१. स्वामित्व का हस्तांतरण (Transfer of ownership)—‘विक्रय’ में क्रेता तुरत ही माल का स्वामी हो जाता है, किन्तु विक्री की संविदा में निर्धारित समय के बीत जाने के बाद अथवा संविदा के अधीन शर्तों के पूरा हो जाने पर ही क्रेता माल का स्वामी होता है।

२. प्रसंविदा की प्रकृति (Nature of the Contract)—विक्रय वर्तमान (executed) प्रसंविदा होता है, किन्तु विक्री की संविदा भावी (executory) प्रसंविदा होती है।

३. मूल्य प्राप्त करने एवं क्षतिपूर्ति का अधिकार (Right to recover Price and Damages)—विक्रय में यदि क्रेता माल की कीमत न चुकाये तो विक्रेता माल अपने कब्जे में होने पर भी कीमत के लिए मुकदमा कर सकता है, किन्तु विक्री की संविदा में क्रेता के माल की सुपुर्दगी न लेने पर अथवा उसका मूल्य न चुकाने पर विक्रेता केवल हर्जाने के लिए ही मुकदमा कर सकता है।

४. माल को होनेवाली क्षति की जोखिम (Incidence of risk of Loss to the Goods)—विक्री हो जाने के बाद माल नष्ट हो जाने पर विक्रेता के कब्जे में माल के रहने पर भी हानि क्रेता को ही सहन करनी पड़ती है, किन्तु विक्री की संविदा में हानि विक्रेता को सहन करनी पड़ती है।

५. क्रेता एवं विक्रेता के दिवालिया होने पर (Insolvency of the buyer or the seller)—यदि विक्री में माल की सुपुर्दगी देने के पहले ही विक्रेता दिवालिया हो जाय, तो क्रेता ऑफिसियल रिसीवर (official receiver) से माल की सुपुर्दगी ले सकता है, किन्तु विक्री की संविदा में विक्रेता के दिवालिया होने पर यदि क्रेता ने वस्तु के मूल्य का भुगतान कर दिया हो तो वह केवल अपने अंश के मुताबिक डिविडेंड (receiver dividend) का ही दावा कर सकता है।

६. विक्री शर्त-रहित होती है (Sale is unconditional)—विक्री शर्त-रहित होती है, किन्तु विक्री की संविदा शर्त-सहित (conditional) होती है।

७. विक्री की स्वतन्त्रता (Freedom to sell)—विक्री की संविदा में विक्रेता अपनी इच्छा के अनुसार माल को बेच सकता है तथा क्रेता, विक्रेता के प्रसंविदा-भग के लिए केवल क्षति के लिए मुकदमा कर सकता है। वस्तु-विक्रय में विक्रेता के प्रसंविदा-भग के लिए क्रेता क्षति के लिए मुकदमा चला सकता है तथा उसे माल पर भी अधिकार प्राप्त होता है। अतः विक्रेता यदि माल तीसरे पक्ष को बेच दे तो तीसरे पक्ष से माल वापस पा सकता है।

८. माल की सुपुर्दगी न देना (Not to deliver the goods)—विक्री की संविदा में यदि क्रेता माल की कीमत अदा करने के पहले दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो विक्रेता माल की कीमत न पाने पर माल की सुपुर्दगी नहीं दे सकता। किन्तु विक्रय में किसी ग्रहणाधिकार के अभाव में विक्रेता को माल की सुपुर्दगी ऑफिसियल रिसीवर (official receiver) को अथवा एसाइनी (assignee) को दे देनी पड़ती है।

९. विश्वव्यापी अधिकार (Right against the whole world)—विक्रय से क्रेता को विश्वव्यापी अधिकार (Right against the whole world) प्राप्त



होता है और वह खरीदे माल का किसी भी तरह व्यवहार कर सकता है। परन्तु विक्री की संविदा में व्यक्तिमात्र को प्रभावित करनेवाला अधिकार (right against person) प्राप्त होता है, क्योंकि क्रेता और विक्रेता दोनों में यदि कोई एक गलती करता है या अपनी प्रतिज्ञा को भंग करता है तो उसके लिए दूसरा पक्ष उसे उत्तरदायी ठहरा सकता है और उससे हुई क्षति की पूर्ति करा सकता है।

**विक्रय-प्रसंविदाओं तथा अन्य तरह की प्रसंविदाओं में भिन्नता (Contract of Sale distinguished from other classes of Contracts)**

विक्रय के समझौते होने के लिए धारा ४ में बतलाये गये सभी लक्षणों का होना जरूरी है। अगर इनमें कोई भी लक्षण गैरहाजिर रहता है तब वह विक्रय-समझौता नहीं होगा। निम्नलिखित कुछ अनुबन्ध इस तरह के हैं जो कि विक्रय-प्रसंविदाओं से कुछ भिन्न हैं—

**विक्रय और दान में अन्तर (Sale and Gift)**— विक्रय के लिए मूल्य (मुद्रा में प्रतिफल) का होना जरूरी है। इसलिए अगर किसी प्रसंविदा में बिना किसी प्रतिफल के वस्तुओं का स्वामित्व एक व्यक्ति से दूसरे के पास जाता है, तब उसे 'विक्रय' नहीं, बल्कि 'दान' कहते हैं।

**विक्रय और वस्तुविनिमय में अन्तर (Sale and Barter)**— विक्रय का मूल्य, अर्थात् प्रतिफल मुद्रा में होना जरूरी है। अगर माल के बदले में क्रेता मूल्य मुद्रा के बदले अन्य किसी रीति से, अर्थात् कुछ सामान या चीज देकर चुकाता है तब भी ऐसी प्रसंविदा को विक्रय-प्रसंविदा नहीं कहेंगे।

**विक्रय और निक्षेप में अन्तर (Sale and Bailment)**— निक्षेप में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किसी खास मतलब या कार्य के लिए इस प्रसंविदा पर माल देता है कि उस कार्य की पूर्ति होने पर निक्षेप-ग्रहीता सौंपा हुआ माल निक्षेपी को लौटा देगा। इसलिए निक्षेप में माल का स्वामित्व निक्षेप-ग्रहीता के पास नहीं जाता, सिर्फ कुछ समय के लिए ही माल दिया जाता है। लेकिन विक्रय में माल का स्वामित्व क्रेता को प्राप्त हो जाता है। माल खरीदने वाला वस्तु को अपने विचार से इस्तेमाल कर सकता है। यह अधिकार निक्षेप-ग्रहीता को प्राप्त नहीं होता है।

**विक्रय और रेहन अथवा गिरवी में अन्तर (Sale and Mortgage or Pledge)**— विक्रय में स्वामित्व का हस्तान्तरण हमेशा के लिए हो जाता है, लेकिन रेहन या गिरवी में यह सिर्फ थोड़े समय के लिए माल के सभी हितों का हस्तान्तरण हो जाता है, और बाद में पैसा चुका देने पर वापस हो जाता है।

**विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के समझौते में अन्तर (Sale and Hire Purchase Agreement)**— 'भाड़े पर खरीद का समझौता' इस तरह का समझौता है जिसके मुताबिक माल का मालिक उसे भाड़े पर देता है, और भाड़े पर माल लेने-वाले के लिए उसके द्वारा कुछ भुगतानों को करने की शर्त पर उसको बेच देने का दायित्व लेता है। इसमें दो बातें गौर करने की हैं। प्रथम, माल के मालिक तथा भाड़े पर माल लेनेवाले के बीच भाड़े की एक प्रसंविदा होती है और भाड़े पर लेने वाला एक निश्चित किस्त में एक निश्चित रुपया देने का समझौता करता है। दूसरे, माल के मालिक की ओर से भाड़े पर माल लेनेवाले को माल बेचने का एक शर्त-सहित समझौता करना होता है। माल का मालिक इस शर्त पर माल बेचने का समझौता करता है कि भाड़े पर लेनेवाला सब माल की निश्चित किस्तों का भुगतान कर देगा।

अन्तिम किस्त का भुगतान करने पर ही, प्रसंविदा 'विक्रय' हो जायगी और माल का स्वामित्व माल के मालिक से भाडे पर माल लेने वाले को हस्तान्तरित हो जायगा। जब तक कि निश्चित किस्तों का भुगतान नहीं हो जायगा, स्वामित्व माल के मालिक का ही रहेगा। प्रायः इस तरह की प्रसंविदा में यह व्यवस्था रहती है कि अगर किसी भी किस्त के भुगतान में देरी होगी या नहीं दिया जायगा तब माल का मालिक इस वस्तु को वापस ले सकता है।

**विक्रय-प्रसंविदाएँ वैध रूप से किस तरह उत्पन्न होती हैं (How Contract of Sale is Effectively or Legally Made)**

माल-विक्रय-सन्धियम की धारा ३, ४ तथा ५ के अनुसार वैध विक्रय-प्रसंविदा होने के लिए निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है—

१. एक पक्ष की ओर से माल खरीदने अथवा बेचने के लिए प्रस्ताव होना चाहिए और दूसरे पक्ष की ओर से इस प्रस्ताव की स्वीकृति होनी चाहिए।

२. दोनों पक्षों में प्रसंविदा करने की क्षमता होनी चाहिए।

३. दोनों पक्षों की स्वतन्त्र सहमति (free consent) होनी चाहिए।

४. माल होना चाहिए, जिसके स्वामित्व का हस्तान्तरण मूल्य (मुद्रा में) प्रतिफल के बदले में होना चाहिए।

५. विक्रय-प्रसंविदाओं की शर्तों के अनुसार माल की सुपुर्दगी तुरत हो सकती है और कीमत भी तुरत चुकायी जा सकती है अथवा दोनों ही तुरत किये जा सकते हैं अथवा सुपुर्दगी अथवा भुगतान अथवा दोनों ही किस्तों के रूप में हो सकते हैं अथवा भुगतान अथवा सुपुर्दगी अथवा दोनों ही भविष्य में किये जा सकते हैं।

६. किसी भी प्रचलित सन्धियम के अन्दर, विक्रय की प्रसंविदाएँ स्पष्ट या गर्भित हो सकती हैं। स्पष्ट प्रसंविदाएँ मौखिक या लिखित हो सकती हैं, गर्भित प्रसंविदाएँ पक्षों के व्यवहार में गर्भित हो सकती हैं।

## अध्याय १

### प्रसंविदा की विषय-वस्तु (Subject Matter of Contract)

धाराएँ ६-१७

जो माल विक्रय के अनुबन्ध का विषय बने, या जो विक्रेता का स्वामित्वगत या आधिकार्यगत विद्यमान माल हो या भावी माल हो, ऐसे माल के विक्रय का अनुबन्ध हो सकेगा, जिसकी विक्रेता-द्वारा अवाप्ति ऐसी घटना पर अवलम्बित है जो घटे या न घटे। जहाँ विक्रय के अनुबन्ध द्वारा विक्रेता का प्रयोजन भावी माल को विद्यमान के रूप में बेचना हो, तो अनुबन्ध माल को बेचने के लिए एक करार के रूप में होगा। [धारा ६]

जब प्रसंविदा किसी निर्दिष्ट माल (ascertained goods) के विक्रय के लिए की गयी हो तो प्रसंविदा व्यर्थ नष्ट हो जाती है, यदि प्रसंविदा करते समय विक्रेता की जानकारी के बिना वस्तु नष्ट हो चुकी हो अथवा इतनी खराब हो चुकी हो कि वह अब अपने उस वर्णन से, जो कि प्रसंविदा में दिया गया है, मेल न खाती हो। [धारा ७]

जब किसी निर्दिष्ट वस्तु की विक्री की संविदा की गयी हो और उसके बाद क्रेता को जोखिम हस्तान्तरित होने के पहले वह विक्रेता अथवा क्रेता की ओर से बिना किसी त्रुटि के ही नष्ट हो जाय अथवा इतना खराब हो जाय कि वह उस वर्णन से मेल न खाये जो संविदा में दिया गया है, तो ऐसी स्थिति में भी संविदा व्यर्थ हो जाती है। [धारा ८]\*

उदाहरण—X ने Y के पास ५०० बोरो में चावल भर कर भेजा। जब माल स्टेशन पर पहुँचा तो देखा गया कि सिर्फ ३५१ बोरे हैं और बाकी बोरे रास्ते में चुरा लिये गये हैं। ऐसी दशा में चूँकि कुल माल का विभाजन नहीं हो सकता था, प्रसंविदा विवर्जित घोषित की गयी और क्रेता को बाकी बोरो की सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य नहीं किया गया।

विक्री की प्रसंविदा की विषय-वस्तु का मतलब माल (goods) से है। माल (goods) की परिभाषा धारा २ (७) में दी हुई है जिसका आशय यह है कि “माल से तात्पर्य है, दावे-योग्य माँगों तथा धन को छोड़कर प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति (moveable property) और इसमें सम्मिलित है, सरकारी स्टॉक तथा शेर, उगी हुई फसलें, घास और भूमि से संलग्न या उससे बनी हुई चीजें, जिन्हें विक्रय से पूर्व या विक्रय के अनुबन्ध के अधीन वहाँ से हटा लिया जाना करार पा चुका हो।”

\* यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि धारा ७ तथा ८ के नियम केवल निर्दिष्ट वस्तु की विक्री पर लागू होते हैं, अनिश्चित वस्तु (unascertained goods) की विक्री पर नहीं।

[According to Sec 2 (7) 'goods' means every kind of moveable property other than actionable claims and money; and includes Stock and Shares, growing crops, grass and things attached to or forming part of the land which are agreed to be served before sale or under the Contract of Sale.]

परन्तु रूपये और अभियोग के योग्य दावे (actionable claims) माल की गिनती में नहीं आते। 'रूपये' का अर्थ रिजर्व बैंक के सिक्के और नोटों से होता है। इसमें चेक, बिल और हुण्डियाँ भी शामिल की जाती हैं। परन्तु अभियोग के योग्य दावे वे हैं जिनको सम्पन्न कराने के लिए एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को वैधानिक दृष्टि से बाध्य कर सकता है; जैसे—ऋण।

### माल के प्रकार (Kinds of Goods)

चल सम्पत्ति या माल निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—

१. उपस्थित (existing) या भावी (future),
२. विशिष्ट (specific) या साधारण (general), और
३. निश्चित (ascertained) या अनिश्चित (unascertained)।

**उपस्थित माल (Existing Goods)**—उपस्थित माल वह है जिस पर विक्रेता का विक्री के समय अधिकार रहता है। [धारा ६ (१)]

**उदाहरण**—यदि X, Y से अपना घोड़ा बेचने को कहे और वह घोड़ा मर चुका है तो उसे उपस्थित माल नहीं कहेंगे।

**भावी माल (Future Goods)**—'भावी माल (future goods)' से तात्पर्य है विक्रय के अनुबन्ध करने के पश्चात् विक्रेता द्वारा निमित्त या उत्पन्न या अवाप्त किया जाने वाला है। [धारा ६ (२)]

**उदाहरण**—यदि X, Y से कहे कि तीन महीने के बाद तुम मेरे हाथ १०० मन धान बेचना और यदि Y के पास प्रसविदा के समय धान न भी हो तो वह बाध्य होगा।

भावी माल अनिश्चित (contingent) भी हो सकता है, क्योंकि भविष्य में माल प्राप्त करना किसी घटना पर निर्भर रहता है। इसे अनिश्चित माल भी कहते हैं।

**उदाहरण**—मान लीजिये कि X, Y से कहता है कि यदि रंगून से जहाज कलकत्ता सुरक्षित आ गया तब हम १०० मन चावल बेचेंगे, तो चावल अनिश्चित माल कहा जायेगा, क्योंकि इसमें एक शर्त है, सही पहुँचने की। यदि जहाज नहीं पहुँचता है अर्थात् रास्ते में डूब जाता है तो वैसे हालत में X को चावल बेचने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

**विशिष्ट माल (Specific Goods)**—'विशिष्ट माल' से तात्पर्य है उस समय पर जब कि विक्रय-अनुबन्ध किया गया हो, अभिज्ञापित (identified) और पसन्द किया गया माल हो। यह निश्चित माल (ascertained goods) से मिलता-जुलता है, जिसका वर्णन नीचे दिया गया है।

**साधारण माल (General Goods)**—यदि किसी वस्तु के विषय में खास तरीके से सूचित किया जाय, बल्कि साधारणतः उसका वर्णन कर दिया जाय तो साधारण माल कहेंगे।

**उदाहरण—** X के पास बहुत तरह का चावल है। X, Y से कहता है कि मैं तुम्हारे हाथ २५ मन चावल बेचूँगा, परन्तु इसकी किस्म के बारे में कोई बातचीत नहीं हुई। अतः यह प्रसंविदा एक साधारण माल के लिए हुई। यह अनिश्चित माल (unascertained goods) से मिलता-जुलता है, जिसका वर्णन नीचे दिया गया है।

**निश्चित माल (Ascertained Goods)—** निश्चित माल उस माल को कहते हैं जिसको इस योग्य बना दिया जाता है कि उसकी सुपुर्दगी विक्रेता को दी जा सके। यह ऐसा विशिष्ट माल है जो विक्री के समय सुपुर्दगी योग्य दशा में है या विक्री की प्रसंविदा के बाद इस योग्य दशा में ला दिया गया है और बगैर किसी शर्त के प्रसंविदा के लिए निर्माण (appropriation) कर लिया गया है तथा क्रेता या उसके एजेंट ने उस बात पर अपनी स्वीकृति दे दी है।

ऊपर के उदाहरण में जब X १०० मन चावल अलग इकट्ठा कर लेता है तो यह कहा जायेगा कि यह 'निश्चित माल' है।

**अनिश्चित माल (Unascertained Goods)—** अनिश्चित माल उसे कहते हैं जिस माल की विक्री करने की प्रसंविदा हो, जो प्रसंविदा के समय तैयार न हो, बल्कि उसे तैयार करने के लिए सम्भव है, कहीं से प्राप्त करना पड़े या फैक्ट्री में तैयार करना पड़े या वादे के अनुसार बनाना पड़े जिससे वह सुपुर्द करने योग्य हो जाय। जब माल ऐसी दशा में है कि उसकी सुपुर्दगी क्रेता को नहीं की जा सकती तो उसे अनिश्चित माल कहते हैं।

**उदाहरण—** X, Y से २०० मन चावल बेचने का वादा करता है। चावल सुपुर्दगी के योग्य नहीं है, बल्कि खेतों में लगा है। अतः X जब तक कि धान पकने पर उसे काटता नहीं और फिर धान से चावल तैयार नहीं करता है और उसे इस योग्य नहीं बना देता कि उसकी सुपुर्दगी २०० मन के परिमाण में Y को दी जा सके तब तक उसे अनिश्चित माल कहा जायगा।

**विशिष्ट माल का विक्रय-प्रसंविदा के पहले नष्ट होना (Specific Goods perishing before Contract)—** धारा ७ के अनुसार जब किसी विशिष्ट माल के विक्रय की प्रसंविदा की गयी है और अगर उस माल के संबंध में प्रसंविदा के समय विक्रेता को मालूम नहीं था कि माल नष्ट हो चुका है या वह इतना खराब हो चुका है कि अपने नमूने से मेल नहीं खाता, तब ऐसी प्रसंविदा अमान्य है।

**उदाहरण—** A, B से एक विशिष्ट घोड़ा खरीदने की प्रसंविदा करता है। यह पता लगता है कि प्रसंविदा के समय विक्रेता को मालूम नहीं था कि घोड़ा मर चुका है। यह प्रसंविदा अमान्य है।

[यह प्रसंविदा भारतीय प्रसंविदा-सन्निधय की धारा २० की प्रसंविदा की तरह है जिसके अनुसार जब प्रसंविदा के दोनों पक्ष प्रसंविदा के लिए आवश्यक किसी तथ्य-सम्बन्धी गलती पर होते हैं, तब वह समझौता अमान्य होता है।]

**विशिष्ट माल का 'विक्रय की प्रसंविदा' के बाद किन्तु 'विक्रय' के पहले नष्ट होना (Specific Goods perishing before 'Sale' but after 'Agreement to Sale')—** धारा ८ के अनुसार जब किसी विशिष्ट माल के विक्रय की प्रसंविदा की गयी है और बाद में क्रेता को जोखिम हस्तान्तरित होने से पहले माल विक्रेता अथवा क्रेता की ओर से बगैर किसी कमी के ही बरबाद हो जाता है अथवा इतना खराब हो जाता कि वह अपने नमूने से जो कि प्रसंविदा में दिया गया था, मेल नहीं खाता है तो ऐसी हालत में भी प्रसंविदा अमान्य हो जाती है।

[यह प्रसंविदा भारतीय प्रसंविदा-सन्निधिम की धारा ५६ की तरह है जिसके अनुसार जब प्रसंविदा के कार्य की पूर्ति होना असम्भव हो जाता है, तब उस कार्य के करने का अनुबन्ध अमान्य हो जाता है।] यह मुख्य बात है कि इस दशा में कोई भी कार्य करने की प्रसंविदा उस समय अमान्य हो जाती है जब उस कार्य की पूर्ति होना असम्भव हो जाता है, जब कि पहली हालत में प्रसंविदा शुरू से ही अमान्य होती है।

### मूल्य (The Price)

धारा २ (१०) के अनुसार 'मूल्य' माल के विक्रय के लिए धन-सम्बन्धा प्रतिफल को कहते हैं (Price is the money consideration for sale of goods)। इस परिभाषा से यह साफ जाहिर होता है कि प्रत्येक क्रेता माल की सुपुर्दगी लेने के बदले में उसकी कीमत विक्रेता को चुकाता है।

**मूल्य निश्चय करना (Ascertainment of Price)**—भारतीय माल-अधिनियम की धारा ९ तथा १० के अनुसार मूल्य निश्चित करने के निम्नलिखित नियम हैं—

(i) मूल्य प्रसंविदा-द्वारा तय हो सकता है। प्रसंविदा करते समय पक्ष कुछ भी कीमत निश्चित कर सकते हैं और ऐसी दशा में न्यायालय इस बात की कुछ भी छानबीन नहीं करेगा कि कीमत पर्याप्त है या नहीं।

(ii) प्रसंविदा करते समय यह तय हो सकता है कि माल की कीमत बाद में निश्चित रीति द्वारा निश्चित होने के लिए छोड़ी जा सकती है या यह कहा जा सकता है कि मूल्य वही होगा जो और लोग देंगे।

(iii) मूल्य दोनों पक्षों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। अगर प्रसंविदा में कोई साफ-साफ मूल्य नहीं दिया है और न उसमें मूल्य निश्चित करने की कोई स्पष्ट रीति ही दी है, तो ऐसी हालत में दोनों पक्षों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।

(iv) अगर मूल्य ऊपर लिखी गयी बातों के अनुसार निश्चित नहीं किया गया है तब क्रेता, विक्रेता को यथोचित मूल्य चुकाने के लिए बाध्य है। यथोचित मूल्य क्या है, यह हर मामले की अलग-अलग परिस्थितियों पर निर्भर होता है।

(v) अगर माल इस शर्त पर बेचने की प्रसंविदा की गयी है कि मूल्य किसी तीसरे पक्ष द्वारा निश्चित किया जायगा और वह पक्ष ऐसा मूल्य निश्चित नहीं कर सकता या नहीं करता है तब प्रसंविदा अमान्य होगी। लेकिन अगर वह माल अथवा उसका कोई भाग क्रेता को सुपुर्द कर दिया गया है और वह उसके द्वारा स्वीकार किया जा चुका है तो उसे उसकी मुनासिब कीमत देनी पड़ेगी।

अगर तीसरा पक्ष विक्रेता अथवा क्रेता के दोष के कारण मूल्य निर्धारित करने के लिए रोका जाता है, तब वह पक्ष जो दोषी नहीं है उस पक्ष के खिलाफ हर्जाने के लिए मुकदमा कर सकता है, जो दोषी है।

### प्रतिबन्ध तथा उप-प्रतिबन्ध (Conditions and Warranties)

धाराएँ ११-१७

**क्रेता की सावधानी का नियम (Caveat Emptor)**—प्रतिबन्ध तथा उप-प्रतिबन्ध के विषय में सिद्धान्त की कहावत इस प्रकार प्रचलित है—'पूर्वसचेत क्रेता'

[[क्रेता को सावधान रहना चाहिए] *Caveat Emptor* (Let the buyer be-ware)]। इसकी व्याख्या इस प्रकार है—जब विक्रेता और क्रेता में किसी माल को बेचने और खरीदने का अनुबन्ध होता है तो उस समय क्रेता का यह कर्तव्य हो जाता है कि माल जो वह खरीदता है उसे खरीदने के पहले अच्छी तरह देख ले तथा पूरी तरह उसका निरीक्षण कर ले, क्योंकि माल खरीद लेने के बाद यदि किसी प्रकार का दोष उस माल में पाया जायगा तो उसके लिए विक्रेता जिम्मेदार नहीं होगा। अर्थात्, जब कि क्रेता माल खरीदने के समय अपनी युक्ति (skill) और विवेक से काम लेता है और फिर खरीद लेने पर उस माल में कोई दोष पाता है तो यह कहा जायगा कि इसमें विक्रेता निर्दोष है और क्रेता ही अपने गलत निर्णय के लिए दोषी है। अतः ऐसी दशा में क्रेता विक्रेता को जिम्मेदार नहीं ठहरा सकता।

**उदाहरण—**X, Y के हाथ अपना घोड़ा बेचता है। X यह जानता था कि घोड़ा सही दिमाग का नहीं है, परन्तु इस बात को Y से नहीं कहता। Y घोड़े को देखकर, समझ-बूझकर खरीद लेता है। ऐसी दशा में Y विक्री की प्रसंविदा को रद्द नहीं कर सकता, क्योंकि यहाँ 'क्रेता को सावधान रहना चाहिए' का सिद्धान्त लागू होगा।

### अपवाद (Exception)

साधारणतः माल की विक्री की प्रसंविदा में 'क्रेता को सावधान रहना चाहिए' का सिद्धान्त लागू होता है। परन्तु यदि क्रेता यह चाहता हो कि माल के इच्छित गुण के बारे में विक्रेता से कहे कि वह इस प्रकार का माल चाहता है और उसका अमुक प्रयोजन है तो ऐसा ही युक्त विचार तथा विवेक पर निर्भर करेगा और जैसा विक्रेता बतलाएगा उसपर विश्वास रखकर वह माल खरीदेगा तो वैसी दशा में 'क्रेता को सावधान रहना चाहिए' का सिद्धान्त लागू नहीं होगा। फिर, माल में कोई दोष पाया जायगा तो उसके लिए विक्रेता जिम्मेदार होगा।

जब माल की विक्री प्रसंविदा के पहले ऊपर लिखे विषयों पर साधारणतः बातें होती हैं उस समय विक्रेता माल के गुण-दोष पर अपने विचार क्रेता पर जाद्विर करता है। अतः यदि विक्रेता माल के विषय में कोई बात क्रेता से इस प्रकार कहे जिससे यह जाहिर हो कि वह क्रेता को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि वस्तु इस प्रकार की है जिसका क्रेता को ज्ञान नहीं है तो ऐसे कहे शब्दों को बन्धन (stipulations) कहते हैं। परन्तु ऐसा कथन यदि क्रेता को विश्वास दिलाने के विचार से नहीं किया गया हो, बल्कि विक्री के सम्बन्ध में हो, तो उसे बन्धन (stipulation) नहीं कहते।

Stipulation दो प्रकार के होते हैं—

१. प्रतिबन्ध (conditions), और
२. उप-प्रतिबन्ध (warranty)।

१. **प्रतिबन्ध (Conditions)**—प्रतिबन्ध, अनुबन्ध के मुख्य प्रयोजन के लिए आवश्यक बन्धन है जिसका उल्लंघन अनुबन्ध को छोड़ दिया हुआ माना जाने का अधिकार उत्पन्न करता है।\* [धारा १२ (२)]

\* "A condition is a stipulation essential to main purpose of the contract the breach of which gives rise to a right to treat the

२. उप-प्रतिबन्ध (Warranty)—यह भी अनुबन्ध के मुख्य प्रयोजन से सम्बद्ध ऐसा बन्धन है जिसका उल्लंघन हर्जानों के दावे उत्पन्न करता है, न कि माल को रद्द कर देने और अनुबन्ध छोड़ दिया समझे जाने के अधिकार\* [धारा १२ (३)]

उदाहरण—X, Y के हाथ एक ट्रैक्टर वेचता है और कहता है कि वह एक घण्टे में सिर्फ ८०० वर्गगज जमीन जोतता है। बाद में Y देखता है कि ट्रैक्टर एक घण्टे में सिर्फ ५०० वर्गगज ही जोत सकता है। ऐसी हालत में X का यह कहना कि ट्रैक्टर एक घण्टे में ८०० वर्गगज जोतेगा, एक उप-प्रतिबन्ध (warranty) है; क्योंकि पहले X और Y में इस तरह का अनुबन्ध नहीं हुआ था कि Y ट्रैक्टर को तभी खरीदेगा जब कि वह एक घण्टे में ८०० वर्गगज जोतेगा। X का कथन प्रसंविदा के मुख्य उद्देश्यों से आनुषंगिक (collateral) है, अतः विक्री की प्रसंविदा को भंग नहीं कर सकता। उसे ट्रैक्टर खरीदना पड़ेगा और उसकी कीमत भी चुकानी पड़ेगी परन्तु दाम देने से पहले उसे अधिकार है कि वह X से कहे कि उप-प्रतिबन्ध भंग होने के कारण मूल्य में कमी करे। यदि पहले ही Y ने मूल्य चुका दिया है तो X, Y से हर्जाना वसूल कर सकता है।

यदि विक्री की प्रसंविदा के समय Y ने X से कहा होता—“मैं ट्रैक्टर तभी खरीदूँगा जब कि वह घण्टे में ८०० वर्गगज जमीन जोतता होगा” और यदि उस पर X ने उत्तर दिया हो, “हाँ, वह घण्टे में ८०० वर्गगज जोतता है” तो X को अपने इस कथन को पूरा करना होगा। ८०० वर्गगज जोतने की जो शर्त है वह एक प्रकार से प्रतिबन्ध है जिसका खंडन होने पर X को यह अधिकार है कि वह प्रसंविदा को भंग कर सकता है। अतः यदि ट्रैक्टर ८०० वर्गगज जमीन नहीं जोतता होगा तो Y ट्रैक्टर को खरीदने से इनकार कर सकता है और यदि उसकी कीमत Y ने चुका दी है तो वह X से वापस ले सकता है तथा X के प्रतिज्ञा भंग करने का हर्जाना Y नालिश करके वसूल कर सकता है।

### प्रतिबन्ध तथा उप-प्रतिबन्ध में भिन्नता (Distinction between Conditions and Warranties)

प्रतिबन्ध तथा उप-प्रतिबन्ध में नीचे लिखे भेद हैं—

१. प्रतिबन्ध प्रसंविदा के मुख्य उद्देश्य के लिए समपादित होता है।
२. प्रतिबन्ध के भंग होने पर निर्दोष पक्ष को प्रसंविदा का परित्याग करने का अधिकार है, किन्तु उप-प्रतिबन्ध के भंग होने पर वह प्रसंविदा का परित्याग नहीं कर सकता।
३. प्रतिबन्ध भंग होने पर निर्दोष पक्ष प्रसंविदा को पूरा करने पर छुटकारा पा जाता है तथा दोषी पक्ष पर मुकदमा चलाकर हर्जाना वसूल कर सकता है। उप-प्रतिबन्ध भंग होने पर निर्दोष पक्ष प्रसंविदा को पूरा करने से मुक्त नहीं हो सकता, किन्तु उसे उप-प्रतिबन्ध से होने वाली क्षति की पूर्ति करने का अधिकार है।

contract as repudiated.” [Sec. 12 (2) ]

\* “A warranty is a stipulation collateral to the main purpose of the contract the breach of which gives rise to a claim for damages but not to a right to reject the goods and treat the contract as repudiated.” [ Sec. 12 (3) ]



४. प्रतिबन्ध उन मुख्य स्तम्भों में से किसी एक के समान होता है जो सम्पूर्ण भवन का समर्थन करता है। किन्तु उप-प्रतिबन्ध उन छोटे समर्थन करने वाली शृंखलाओं में से किसी एक के समान होता है जो मुख्य बड़ी शृंखला के समानान्तर होती है, किन्तु उसके टूटने से शृंखला का कुछ भी नुकसान नहीं होता है।

वह स्थिति जब प्रतिबन्ध को उप-प्रतिबन्ध के रूप में समझा जायेगा (When Condition to be treated as Warranty)

धारा १३ के मुताबिक निम्नलिखित दशाओं में कोई प्रतिबन्ध एक उप-प्रतिबन्ध के रूप में समझा जा सकता है —

१. जहाँ विक्रय-प्रसंविदा में कोई ऐसा प्रतिबन्ध है जो विक्रेता को पूरा करना है, तो ऐसी दशा में क्रेता —

(i) प्रतिबन्ध को त्याग सकता है, अथवा,

(ii) प्रतिबन्ध-भंग को केवल उप-प्रतिबन्ध-भंग की भाँति समझ सकता है और प्रसंविदा को समाप्त हुआ समझने का आधार नहीं भी मान सकता है। [धारा १३ (१)]

प्रतिबन्ध भंग होने पर क्रेता प्रसंविदा समाप्त कर सकता है, किन्तु वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है। वह यदि चाहे तो प्रसंविदा को समाप्त हुआ समझने के ऊँचे उपचार का लाभ न उठाये। वह प्रतिबन्ध का परित्याग कर दे अथवा प्रतिबन्ध-भंग को उप-प्रतिबन्ध-भंग की भाँति समझना पसन्द कर ले। यदि वह प्रतिबन्ध त्याग देता है तो इसके बाद वह उसके पालन के लिए आग्रह नहीं कर सकता।

२. (i) जहाँ विक्रय की प्रसंविदा अलग-अलग हो सकने के योग्य न हो तथा क्रेता ने वस्तु अथवा उसके किसी भाग को स्वीकार कर लिया हो, अथवा,

(ii) जहाँ प्रसंविदा किसी निर्दिष्ट वस्तु के लिए हो जिसका स्वामित्व क्रेता के पास चला गया हो।

तो ऐसी स्थिति में जब तक विपरीत आशय की कोई स्पष्ट अथवा गभित प्रसंविदा न हो, विक्रेता द्वारा पालन किये जाने वाले किसी प्रतिबन्ध-भंग को केवल उप-प्रतिबन्ध-भंग की ही संज्ञा दी जा सकती है और वस्तु को अस्वीकार करने तथा प्रसंविदा को समाप्त हुआ समझने का आधार नहीं। [धारा १३ (२)]

स्पष्ट और गभित प्रतिबन्ध तथा उप-प्रतिबन्ध, (Express and Implied Conditions and Warranties)

प्रतिबन्ध तथा उप-प्रतिबन्ध स्पष्ट और गभित दोनों तरह के हो सकते हैं। स्पष्ट प्रतिबन्ध या उप प्रतिबन्ध उसे कहते हैं जो प्रसंविदा में लिखित या मौखिक शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया हो। गभित प्रतिबन्ध या उप-प्रतिबन्ध, पक्षों के आचरण, प्रकरण की परिस्थितियों, किसी जगह के कानूनों, प्रथाओं तथा व्यवहारों से मालूम होता है। स्पष्ट प्रतिबन्ध तथा उप-प्रतिबन्ध से तो पक्ष बाध्य होते ही हैं, साथ-ही-साथ अव्यक्त प्रतिबन्ध और उप-प्रतिबन्ध से भी इन्हें बाध्य होना पड़ता है, यदि इसको न मानने का अलग से कोई समझौता आपस में न हुआ हो। गभित प्रतिबन्ध और उप-प्रतिबन्ध को इसलिए लागू किया जाता है कि स्थितियों से यह आशय निकाला जाता है कि पक्ष उसे मानना चाहते हैं यद्यपि उसे स्पष्ट नहीं किया गया है। गभित

प्रतिबन्ध और उप-प्रतिबन्ध अनेक प्रकार के हो सकते हैं जिनकी व्याख्या नीचे की जाती है।

### गर्भित-प्रतिबन्ध (Implied Conditions)

१. स्वामित्व के प्रतिबन्ध (Implied conditions as to title)—प्रत्येक विक्रय-प्रसविदा में यह गर्भित प्रतिबन्ध रहता है कि विक्रय की दशा में विक्रेता का माल बेचने का अधिकार प्राप्त है तथा विक्री की संविदा की स्थिति में माल का हस्तान्तरण करने के समय उसे बेचने का अधिकार प्राप्त होगा। [धारा १४] रोलेण्ड बनाम दीक्ल के मुकदमे में मुद्दालह (defendant) ने मुद्दे के हाथ एक मोटर बेची थी। कुछ दिनों बाद मोटर असली मालिक को लौटा देनी पड़ी, क्योंकि मुद्दालह मोटर चुरा कर लाया था। मुकदमे में यह फैसला हुआ कि चूँकि स्वामित्व के अधिकार की शर्त पूरी नहीं हुई, इसलिए मुद्दे को यह अधिकार है कि वह प्रसविदा का खंडन करके चुकाई गई कीमत मुद्दालह से वापस ले ले।

२. विवरण के प्रतिबन्ध (Condition as descriptions)—जहाँ माल-विक्रय प्रसविदा के वर्णन द्वारा किया गया हो, वहाँ यह गर्भित प्रतिबन्ध होता है—

(क) कि माल वर्णन के साथ मेल खायेगा। [धारा १५], तथा

(ख) यदि माल ऐसे विक्रेता से खरीदा गया है जो उस वर्णन की वस्तुओं में व्यवहार करता है तो यह कि वस्तुओं में वाणिज्य योग्य गुण होंगे। किन्तु यदि क्रेता ने वस्तुओं की जाँच कर ली हो तो ऐसे दोषों के सम्बन्ध में जो कि उक्त जाँच से स्पष्ट हो जाने चाहिए कोई गर्भित प्रतिबन्ध नहीं माना जायेगा। [धारा १३ (२)]

जब माल का विक्रय नमूनों एवं वर्णन दोनों से किया गया हो, तो यह गर्भित प्रतिबन्ध है कि माल नमूने एवं वर्णन दोनों के साथ मेल खायेगा। [धारा १५]

उदाहरण—X, Y से प्रतिज्ञा करता है कि वह रंगून का २०० मन चावल Y के हाथ बेचेगा। X, Y को चावल का नमूना दिखाता है। X, Y के यहाँ चावल भेजता है जो दिखाये गये नमूने से मिलता-जुलता है, परन्तु वह रंगून का नहीं है। चूँकि विवरण की शर्त पूरी करना अति आवश्यक है, अतः Y को यह अधिकार है कि उस चावल को लेने से इनकार कर दे और दी गई कीमत वापस ले ले।

३. उद्देश्य के अनुसार माल की किस्म और योग्यता होने के प्रतिबन्ध (Condition as to the quality or fitness of goods for a particular purpose)—यह 'क्रेता सावधान हो' का अपवाद है। जब क्रेता स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से विक्रेता को विशेष आशय जिसके लिए वस्तु की आवश्यकता है, बतला देता है और उससे यह प्रकट हो कि वह विक्रेता की कुशलता अथवा विवेक-बुद्धि पर भरोसा करता है और वस्तु उस वर्णन का है जिसकी गुंति विक्रेता अपने व्यापार के दौरान करता है, तो उसमें यह गर्भित प्रतिबन्ध है कि वस्तु उस आशय के लिए यथोचित रूप से उपयुक्त होनी चाहिए। [धारा १६ (२)]

उदाहरणार्थ—यदि कोई जहाज बनाने की लकड़ी माँगे और विक्रेता ऐसी लकड़ी दे दे जो जहाज बनाने के योग्य न हो तो क्रेता उस माल को लेने से इनकार कर सकता है। 'प्रिस्ट बनाम लास्ट'\* के मुकदमे में क्रेता ने गर्म पानी रखने के लिए एक बोतल खरीदी। जब क्रेता की स्त्री ने उस बोतल में गर्म पानी रखा तो बोतल

फट पड़ी और स्त्री घायल हो गयी। पति ने हर्जाना के लिए मुकदमा किया। इसमें फैसला यह हुआ कि विक्रेता हर्जाना देने के लिए बाध्य है।

परन्तु जब माल की विक्री किसी रजिस्टर्ड पेटेंट (patent) के नाम के साथ हो और खरीद लेने के बाद यदि वह क्रेता के उपयोग का न हो तो इसके लिए विक्रेता बाध्य नहीं होगा चाहे क्रेता ने पहले से ही विक्रेता को अपनी जरूरत क्यों न बता दी हो।\*

व्यापारिक प्रथा के अनुसार भी माल की किस्म या उसकी किसी विशेष उपयोग का प्रतिबन्ध पहले से हो सकता है।

४. विक्री किये जाने योग्य माल होने का मनोनीत प्रतिबन्ध (Implied condition as to mercantability)—जब क्रेता पुनः विक्री करने के लिए प्रधान विक्रेता (मिल-मालिक या उत्पादक) से किसी विशेष विवरण का माल खरीदता है तो ऐसी दशा में यह गर्भित प्रतिबन्ध रहता ही है कि माल विक्री किये जाने योग्य होगा। परन्तु यदि उसकी देखभाल खरीदार ने की हो तो उन दोषों के लिए विक्रेता बाध्य नहीं होगा जिनका साधारणतया वैसे निरीक्षण से पता लग जाने की सम्भावना हो। [धारा १६ (२)]

उदाहरण—यदि X बम्बई से काले रंग का ऊन मँगाये और पैकिंग खोलने पर हरे रंग का ऊन निकल जाये तो यह कहा जायेगा कि प्रतिबन्ध भंग हो गया है।

५. व्यापार की रीति के विषय में (As to usage of trade)—किसी विशेष मतलब के लिए किस्म अथवा उपभोक्ता के सम्बन्ध में कोई गर्भित शर्त व्यापार की रीति के अनुसार हो सकती है। इस तरह, अगर किसी माल का ऑर्डर उस माल के उत्पादक को दिया जाता है, तो वह गर्भित शर्त होगी कि ऑर्डर किया हुआ माल वही होना चाहिए, जिसका विक्रेता द्वारा उत्पादन किया जाता है। [धारा १६ (३)]

६. नमूने द्वारा विक्री के प्रतिबन्ध (Condition of sale by samples)—जब वस्तु नमूने द्वारा बेची गई हो तो उसमें गर्भित प्रतिबन्ध होते हैं—

(क) परिणाम (bulk) और गुण में विक्रीत वस्तु नमूने के साथ मेल खायेगी;

(ख) क्रेता को परिमाण की तुलना नमूने के साथ करने का यथोचित अवसर प्राप्त होगा, तथा

(ग) परिमाण में ऐसा कोई दोष नहीं होगा जो यथोचित जाँच पर ज्ञात न हो सके।

उदाहरण—X ने Y से कोट के लिए कुछ कपड़ा खरीदा, परन्तु कपड़े की बुनाई में इस प्रकार का दोष था कि उसकी सिलाई करना असम्भव था। कपड़े की जाँच-परख करते समय उस दोष का पता नहीं लग सकता था। ऐसी दशा में X कपड़ा लेने से इनकार कर देगा तथा Y से चुकाई गई कीमत को हर्जानासहित वसूल कर लेगा। [धारा १७]

### गर्भित उप-प्रतिबन्ध (Implied Warranties)

१. माल पर शान्तिपूर्ण अधिकार तथा उपयोग (Quiet possession over goods and its enjoyment)—यदि पहले से आपस में किसी तरह का विपरीत अनुबन्ध न हुआ हो तो यह गर्भित उप-प्रतिबन्ध दिया जाता है कि क्रेता को माल पर

शान्त अधिकार दिया जायेगा तथा वह उसका बेरोक उपयोग करेगा । [धारा १४ (ब)]

२. माल का रेहन या प्रतिबन्ध से मुक्त होना (Goods free from any charge or condition)—कभी-कभी इस प्रकार का भी गर्भित उप-प्रतिबन्ध क्रेता को दिया जाता है कि जिस माल को वह खरीद रहा है उस माल पर किसी तीसरे पक्ष का हित रेहन के रूप में नहीं रहेगा या तीसरे पक्ष के द्वारा कोई प्रतिबन्ध उस माल पर न होगा । यदि इस प्रकार का प्रतिबन्ध या हित पहले से या प्रसंविदा के समय क्रेता के सम्मुख वर्णन किये बिना रहे तो उससे क्रेता मुक्त रहता है । ऐसी हालत में यदि क्रेता तीसरे पक्ष के रेहन का भुगतान कर देता है तो वह विक्रेता से हर्जाना-सहित, चुकाई गई रकम वसूल कर सकता है । [धारा १४ (स)]

उदाहरण—X, Y के हाथ २०० मन चावल बेचता है । परन्तु X, Y को यह नहीं बतलाता है कि उस चावल की साख (credit) पर उसने Z से २०० रु० ऋण लिया है और न इस बात का पता Y को ही है । Y, Z को २०० रु० देता है । अब Z, X से १०० रु० हर्जाना वसूल कर सकता है ।

---

## सम्पत्ति का हस्तान्तरण (Passing or Transfer of Property)

धाराएँ १८-२६

विक्रेता एवं क्रेता के बीच स्वामित्व के हस्तान्तरण का प्रश्न दोनों पक्षकारों के अधिकार तथा दायित्व का निर्णय करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यदि माल का स्वामित्व क्रेता के पास चला जाता है तो ऐसी दशा में वेचे हुए माल की हानि तथा विनाश की जोखिम क्रेता पर पड़ती है, विक्रेता पर नहीं, यद्यपि माल अभी भी विक्रेता के अधिकार में ही है। विक्रेता का ऋणदाता भी विक्रेता के विरुद्ध किसी डिक्री के लिए माल को कुर्क नहीं करा सकता। यदि क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने के पहले ही विक्रेता दिवालिया हो जाता है तो ऑफिसियल रिसीवर (official receiver) माल पर कोई दावा नहीं कर सकता, चूँकि उनका स्वामित्व पहले ही क्रेता के पास जा चुका है।

विक्रेता तथा क्रेता के बीच स्वामित्व के हस्तान्तरण के आशय से माल को तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है—

१. साधारण अथवा अनिश्चित माल (Unascertained or Generic Goods);

२. निर्दिष्ट अथवा निश्चित माल (Ascertained or Specific Goods); और

३. अनुमोदन के लिए अथवा विक्रय या वापसी पर भेजे हुए माल (Goods sent on Approval or 'on Sale or Return')।

१. साधारण अथवा अनिश्चित माल पर स्वामित्व का हस्तान्तरण (Transfer of Ownership in Unascertained Goods)— अनिश्चित माल पर क्रेता का स्वामित्व निम्नलिखित स्थितियों में होता है—

माल को सर्वप्रथम निश्चित बनाना—जब अनिश्चित काल की विक्री के लिए प्रसंविदा की जाती है तो माल का स्वामित्व क्रेता को उस समय तक नहीं जा सकता जब तक कि माल निश्चित न कर दिया जाये। [धारा १८]

उदाहरण—फरवरी, १९५४ में X अपने बाग में १९५४ की फसल (पहली अप्रैल से तीस जून तक) में लगने वाले सब आम Y को २,००० रु० में बेचने की प्रसंविदा करता है। यह केवल विक्री के लिए एक संविदा है और विक्रय नहीं है, चूँकि माल का स्वामित्व Y को आम की फसल के आने तक नहीं जा सकता।

जब वर्णन द्वारा किसी अनिश्चित अथवा भावी वस्तु के विषय के लिए प्रसंविदा की गयी हो और सुपुर्दगी योग्य स्थिति में उक्त वर्णन की वस्तुएँ पारस्परिक सहमति द्वारा बिना किसी गत के प्रसंविदा के लिए अलग कर दी गई हों, तो ऐसा कर देने पर वस्तु का स्वामित्व क्रेता के पक्ष में चला जाता है।

अलग करने पर या नियोजन द्वारा वस्तु निश्चित हो जाती है। 'नियोजन' (appropriation) से आशय प्रसंविदा से सम्बद्ध वस्तु को निर्दिष्ट करने से है।

जब तक वस्तु अलग नहीं कर दी जाती, यह केवल एक विक्री के लिए संविदा ही होती है। विक्री के लिए की गयी संविदा उस समय विक्रय का रूप धारण कर लेती है जब वस्तु निश्चित कर दी जाती है।

नियोजन (appropriation) शर्त-रहित होना चाहिए। नियोजन उस समय शर्त वाला होता है जब वस्तु के व्यवस्थाकरण (disposal) का अधिकार विक्रेता अपने पास सुरक्षित कर लेता है; जैसे किसी बिल ऑफ लेडिंग (वहन-पत्र) अथवा रेलवे रसीद में दी हुई वस्तुओं की सुपुर्दगी विक्रेता के आदेशानुसार दी जाती हो। [धारा २३]

उदाहरण—X के पास कुछ मात्रा में चीनी है, जो ५० बोरो को भरने के लिए आवश्यकता से भी अधिक परिमाण में है। वह Y के साथ ५० बोरो चीनी बेचने की प्रसंविदा करता है। प्रसंविदा करने के बाद X, ५० बोरो चीनी से भरता है और Y को इसकी खबर देता है कि बोरो तैयार हैं तथा उनको ले जाने की प्रार्थना करता है। Y जल्द-से-जल्द ले जाने का वचन देता है। X के इस नियोजन द्वारा तथा Y की सहमति द्वारा, चीनी का स्वामित्व Y के पास चला जाता है।

जब प्रसंविदा के अनुसार विक्रेता माल को क्रेता के यहाँ भेज देता है या किसी वाहक या निक्षेपी (bailee) के इस उद्देश्य से देता है कि वह क्रेता के यहाँ पहुँचा देगा और यदि विक्रेता अपने पास वस्तु के व्यवस्थाकरण का अधिकार (right of disposal) नहीं रखता है तो यह कहा जायेगा कि विक्रेता को स्वामित्व का हस्तान्तरण शर्त-रहित प्राप्त हो गया। [धारा २३ (२)]

२. निर्दिष्ट अथवा निश्चित माल का हस्तान्तरण (Passing of property in Ascertained Goods)—धारा १९ के मुताबिक जब प्रसंविदा किन्हीं निर्दिष्ट अथवा निश्चित वस्तुओं के विक्रय के लिए होती है तो ऐसी वस्तुओं के स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को उस समय होता है जब प्रसंविदा के पक्षों ने हस्तान्तरण करने का इरादा किया हो। पक्षों के इरादे का निश्चय करने के लिए प्रसंविदा की शर्तों, पक्षों के आचरण तथा प्रकरण की परिस्थिति पर विचार करना होता है। जब तक कोई और अभिप्राय न हो, क्रेता को वस्तु के हस्तान्तरण के स्वामित्व के समय के विषय में पक्षों के इरादे का निश्चय निम्नलिखित नियमों के द्वारा किया जा सकता है—

(i) जब प्रसंविदा की गयी हो—किसी उपस्थित माल की विक्री की शर्त-रहित प्रसंविदा में, जो सुपुर्दगी के योग्य है, क्रेता को स्वामित्व उस माल पर उसी समय हुआ समझा जाता है जब कि विक्री की प्रसंविदा की जाती है, चाहे माल की सुपुर्दगी या मूल्य का भुगतान अथवा दोनों को ही भविष्य में होने के लिए क्यों न छोड़ दिया गया हो। [धारा २०]

(ii) जब माल को सुपुर्दगी योग्य बनाने के लिए कुछ करना पड़े (Specific goods to be put into a deliverable State)—धारा २१ के अनुसार यदि प्रसंविदा निर्दिष्ट अथवा निश्चित वस्तुओं की विक्री के लिए हुई हो तथा उनको सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने के लिए विक्रेता कुछ करने के लिए बाध्य है, तो स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय तक नहीं होता है जब तक इस प्रकार का कार्य न कर दिया जाय तथा क्रेता को इसकी सूचना न दी गई हो। एक मुकदमे में निश्चित मूल्य पर एक इंजन खरीदने की प्रसंविदा हुई थी।\* प्रसंविदा की शर्त यह थी कि इंजन को

\* Underwood Ltd. vs. Burch Castle Brick and Cement Syndicate (1922) 1 K. B. 343.

निर्मूल्य (free of cost) लंदन की रेल की पटरी पर रख दिया जायेगा। न्यायालय ने बताया कि इंजन का स्वामित्व तब तक क्रेता के हाथ में नहीं जा सकता जब तक इंजन को सुरक्षित ढंग से रेल की पटरी पर रख न दिया जाय।

दूसरा उदाहरण इस प्रकार दे सकते हैं कि X, Y से एक जेवर खरीदता है और Y यह कहता है कि वह X को जेवर पर पालिश करके दे देगा। अतः इसमें जेवर का स्वामित्व X को तभी होगा जब कि X उस पर पालिश करके सुपुर्दगी योग्य बना देगा और इसकी सूचना X को दे देगा।

(iii) जब विक्रेता को कीमत निश्चित करने के लिए कुछ करना हो (When seller has to do certain thing to fix price)—धारा २२ के मुताबिक यदि प्रसविदा सुपुर्दगी योग्य स्थिति में किसी निश्चित या निश्चित वस्तु की विक्री के लिए हो किन्तु मूल्य निश्चित करने के लिए विक्रेता को कोई कार्य करना हो, जैसे तौलना, नापना अथवा जाँच करना, तो स्वामित्व उस समय तक हस्तान्तरित नहीं होता है जब तक इस प्रकार के कार्य न किये जायें तथा क्रेता को इसकी सूचना न दे दी जायें।

३. अनुमोदन के लिए अथवा विक्रय वापसी पर भेजे हुए माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण (Passing of Property in case of Goods sent on Approval or on Sale or Return)—जब वस्तु की सुपुर्दगी अनुमोदन (approval) अथवा विक्रय या वापसी पर दी गयी हो, तो ऐसी दशा में स्वामित्व क्रेता के पास उस समय चला जाता है—

(i) जब क्रेता अपनी स्वीकृति विक्रेता को प्रकट कर देता है, अथवा व्यवहार को ग्रहण करने का कोई दूसरा कार्य कर देता है, अथवा

(ii) जब क्रेता निर्धारित अथवा यथोचित समय के भीतर अस्वीकृति की सूचना दिये बिना ही माल अपने पास रख लेता है। [धारा २४]

उदाहरण—X, मार्च, १९५३ में Y के पास एक गैस मोटर भेजता है। Y उसे जाँच के बाद दिसम्बर, १९५३ में वापस कर देता है। गैस मोटर का स्वामित्व Y के पास चला गया है चूंकि उसने यथोचित समय के भीतर अस्वीकृति की सूचना दिये बिना ही इसे अपने पास रोक रखा। नौ महीने का समय यथोचित समय नहीं है।

वस्तुतः माल के साथ जोखिम भी रहती है (Risk 'prima facie' passes with property; or, "Risk Follows The Ownership")—धारा २६ के मुताबिक यदि कोई दूसरी प्रसविदा न हुई हो तो वस्तु उस समय तक विक्रेता की जोखिम पर ही रहती है जब तक कि उसका स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित न कर दिया जाये। किन्तु जब स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित कर दिया जाता है तो वस्तु जोखिम पर होती है, चाहे सुपुर्दगी दी गयी हो अथवा नहीं। लेकिन जब क्रेता अथवा विक्रेता की गलती (fault) से स्वामित्व का हस्तान्तरण करने में देर हुई हो तो ऐसी दशा में माल पर जोखिम ऐसी हानि के सम्बन्ध में, जो गलती के न होने पर होती, दोषी पक्ष पर रहती है। धारा २६ दूसरे पक्ष की वस्तु की निक्षेप-ग्रहीता के रूप में विक्रेता अथवा क्रेता के कर्त्तव्यों अथवा दायित्वों को प्रभावित नहीं करती।

अतः स्वामित्व के हस्तान्तरण के साथ ही जोखिम का भी हस्तान्तरण हो जाता है। किन्तु स्वामित्व (ownership) और कब्जा अथवा अधिकार (possession) में भिन्नता है। वास्तव में जब माल का असली हकदार कोई व्यक्ति हो जाता है

तो उसे माल का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है चाहे क्रेता ने माल का मूल्य चुकाया हो अथवा नहीं तथा माल विक्रेता के गोदाम में ही क्यों न पड़ा हुआ हो। इसी तरह जहाजी बिल्टी (Bill of Lading) या रेलवे बीजक (R/R) क्रेता को प्राप्त हो जाने पर उसे माल का स्वामित्व प्राप्त हो सकता है। किन्तु माल का स्थूल अधिकार (physical possession) प्राप्त हो जाने पर अथवा माल को अपने हाथ में कर लेने पर माल का स्वामित्व नहीं प्राप्त हो जाता।

**उदाहरण—** X, Y के यहाँ से कुछ माल खरीदता है। Y, X को माल का स्वामित्व हस्तांतरित कर देता है, परन्तु माल की वास्तविक सुपुर्दगी नहीं करता तथा माल को वह अपने गोदाम में रखता है। सुपुर्दगी देने के पहले उस गोदाम में आग लग जाती है और उसमें का सारा माल जल कर राख हो जाता है। ऐसी हालत में Y माल की कीमत के लिए दायी होगा।

### माल के स्वत्व का हस्तान्तरण (Transfer of Title)

धाराएँ २७-३०

माल के स्वत्व के हस्तान्तरण का साधारण नियम यह है कि विक्रेता वस्तु के क्रेता को उस वस्तु में अपने श्रेष्ठ अधिकार प्रदान नहीं कर सकता। यह इस लैटिन सिद्धान्त, '*Nemo at Qui Non Habet*' (No one can give that which he has not got) द्वारा प्रकट है कि "कोई भी वह नहीं दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है।" दूसरे शब्दों में, साधारण नियम यह है कि क्रेता वस्तु में विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए यदि कोई मनुष्य चोरी से किसी माल पर कब्जा कर लेता है तथा उसको किसी दूसरे को बेच देता है तो क्रेता को माल पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता (He cannot transfer a better title to the goods to which he himself has not)। यद्यपि क्रेता सचाई से काम करता है तथा उसने उसका दाम भी चुका दिया है तथापि माल का वास्तविक स्वामी क्रेता को कुछ भी दिये बिना माल का कब्जा वापस पाने का अधिकारी है। ऐसा मालूम होता है कि इससे निर्दोष क्रेता को तकलीफ पहुँचती है, किन्तु समाज के हितों तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए यह नियम आवश्यक जान पड़ता है।

### अपवाद (Exceptions)

धारा २७ के मुताबिक विक्रेता को या तो माल का स्वामी होना चाहिए अथवा ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो माल को स्वामी की सहमति से अथवा अधिकार से बेच रहा हो। ऐसी स्थितियों में क्रेता अच्छा अधिकार प्राप्त करता है, अन्यथा विक्रेता अपने को प्राप्त अधिकार से श्रेष्ठ अधिकार प्रदान नहीं कर सकता। किन्तु इस नियम के कि माल का विक्रेता माल पर प्राप्त अपने अधिकार से श्रेष्ठ अधिकार क्रेता को नहीं दे सकता, निम्नलिखित अपवाद (exception) हैं—

१. **गत्यावरोध द्वारा अधिकार-प्राप्ति (Title by Estoppel)**—जब माल का स्वामी अपने शब्दों अथवा आचरणों द्वारा क्रेता को यह विश्वास करा देता है कि विक्रेता माल का स्वामी है, अथवा माल को बेचने के लिए उसे स्वामी से अधिकार प्राप्त है अथवा उसको क्रेता इस विश्वास पर माल खरीदने के लिए प्रेरित करता है तो इसके बाद वह यह नहीं कह सकता कि विक्रेता को माल में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था अथवा उसे बेचने का अधिकार नहीं था, अर्थात् ऐसी परिस्थिति में



क्रेता माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है। [धारा २७]

**उदाहरण—** X किसी माल का स्वामी है, किन्तु वह इस प्रकार का आचरण करता है जिससे Y को यह विश्वास हो जाता है कि उस माल का स्वामी Z है, अथवा उसे X से माल को बेचने का अधिकार प्राप्त है और परिणामस्वरूप Y, Z से माल खरीद लेता है। यहाँ X अपने आचरण के कारण माल में Y के अधिकार के लिए प्रतिवाद करने से वंचित हो जाता है।

**२. व्यापारिक एजेंट द्वारा विक्री (Sale by a Mercantile Agent)—** जब किसी व्यापारिक एजेंट के अधिकार में स्वामी की सहमति से माल अथवा माल के अधिकार-सम्बन्धी प्रलेख हों तो व्यापार के दौरान उसके द्वारा की गई विक्री स्वामी पर बाध्य होगी, भले ही स्वामी ने उसे अधिकार दिया हो अथवा नहीं, बशर्त्ते कि क्रेता ने सद्विश्वास से काम किया हो एवं विक्रय के समय उसे यह सूचना प्राप्त न हो कि विक्रेता को बेचने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। [धारा २७]

**उदाहरण—** X ने एक व्यापारिक एजेंट Y को इस आदेश के साथ एक मोटर सौंपी कि मोटर ५,००० रु० से कम में न बेची जाय। Y ने मोटर Z को बेच दी जिसने सद्विश्वास से उसे ४,००० रु० में खरीद लिया। यहाँ Z को मोटर का विक्रय वैध है तथा वह इसमें अच्छा अधिकार प्राप्त करता है।

**३. संयुक्त स्वामियों में से किसी एक के द्वारा विक्री (Sale by One of Joint owners)—** यदि माल के अनेक संयुक्त स्वामियों में से किसी एक को सह-स्वामियों (coowners) की सहमति से उन पर एकांगी अधिकार मिला हो तो माल का स्वामित्व किसी ऐसे व्यक्ति को हस्तान्तरित हो जाता है जो उनको सद्विश्वास के साथ उससे खरीदता है तथा जिसे विक्रय की प्रसंविदा के समय यह सूचना ज्ञात नहीं थी कि विक्रेता को विक्री करने का अधिकार नहीं है।

**उदाहरण—** यदि X तथा Y किसी माल के संयुक्त स्वामी हैं और Y, X को माल अपने एकांगी अधिकार में रखने की अनुमति दे देता है तो X उनको वैध रूप में किसी को भी बेच सकता है जो उन्हें सद्विश्वास से खरीदता है।

**४. व्यर्थ (शून्य)-करणीय प्रसंविदा के अधीन माल का कब्जा रखने वाले व्यक्ति द्वारा विक्री (Sale by a person in possession under Voidable Contract)—** जब कोई सम्भावनापूर्ण क्रेता किसी ऐसे व्यक्ति से माल खरीदता है जिसने उसका कब्जा मूल विक्रेता से भारतीय प्रसंविदा अधिनियम की धारा १९ तथा १९ (अ) के अधीन व्यर्थकरणीय प्रसंविदा के अन्तर्गत प्राप्त किया है, तो वह विक्रेता का अधिकार दोषपूर्ण होते हुए भी अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है; यदि वह मूल विक्रेता द्वारा प्रसंविदा निरस्त करने के पहले ऐसा कर लेता है। [धारा २९]

**उदाहरण—** X मिथ्या वर्गन द्वारा Y को एक घोड़ा उसे (X) बेचने एवं सुपुर्द करने के लिए प्रेरित करता है। Y द्वारा प्रसंविदा निरस्त करने के पहले ही X घोड़ा Z को बेच देता है। यहाँ Z ने घोड़े पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया है और Y, X से केवल क्षतिपूर्ति करा सकता है।

**५. विक्रय के बाद माल रखने वाले विक्रेता द्वारा विक्री (Sale by a Seller in Possession after Sale)—** जब कोई विक्रेता माल बेच देने के बाद भी माल पर अपना अधिकार रखे रहे या माल के स्वत्व-संलेख (document of title) को अपने पास रखे रहे और फिर उसी माल को किसी तीसरे पक्ष के साथ वह या उसका व्यापारिक एजेंट बेच दे तो नये क्रेता को उस माल का सद्-स्वत्व (goods-title) प्राप्त होगा। परन्तु शर्त्त यह है कि क्रेता को पूर्व-विक्री का ज्ञान न हो और

उसने पूर्ण सद्विश्वास से काम लिया हो। [ धारा ३० (१) ]

यहाँ विक्रेता की स्थिति विक्रेता की तरह ही होनी चाहिए, किसी निक्षेपी (bailee) या किरायेदार (hirer) की तरह नहीं।

**उदाहरण**—X, Y के हाथ एक पुस्तक विक्री करता है। Y, X के यहाँ ही उस पुस्तक को कुछ समय के लिए छोड़ देता है और फिर X उस पुस्तक को Z के हाथ बेच देता है। Z को पूर्व-विक्रय की सूचना नहीं थी और उसने सद्विश्वास के साथ व्यवहार किया था। Z को सद्-स्वत्व प्राप्त है।

**६. माल रखने वाले क्रेता द्वारा विक्री (Sale by a Buyer in possession)**—जब कोई क्रेता विक्रेता की राय से, उसको माल का स्वामित्व हस्तान्तरित होने से पहले माल का कब्जा प्राप्त कर लेता है तथा इसके बाद किसी तीसरे व्यक्ति को बेच देता है, अथवा बन्धक रख देता है अथवा अन्य प्रकार से उसकी व्यवस्था कर देता है और यदि ऐसा तीसरा व्यक्ति सद्विश्वास के साथ तथा मूल विक्रेता की वस्तु पर पूर्वाधिकार अथवा किसी अन्य अधिकार की सूचना के बिना माल की सुपुर्गगी प्राप्त करता है तो वह माल में अच्छा अधिकार प्राप्त करता है [धारा ३० (२)]। यह अपवाद एक सद्भावनापूर्ण क्रेता के लाभ के लिए है जो ऐसे क्रेता से माल खरीदता है जिसे माल पर कब्जा प्राप्त है, यद्यपि उनका स्वामित्व अभी उनके पास नहीं आया है।

**उदाहरण**—X, Y से एक मशीन किराये पर किस्तों में चुकाने की प्रतिज्ञा करके (hire purchase agreement) खरीदता है। फिर X, Z के हाथ विक्री कर देता है जो सद्विश्वास के साथ खरीदता है। Z को सद्-स्वत्व प्राप्त होगा।

**७. पुनः विक्रय (Re-sale)**—धारा ५४ (३) के मुताबिक अप्राप्य-मूल्य (unpaid) विक्रेता माल को मार्ग (transit) में रोक सकता है तथा अपने ग्रहणाधिकार का उपयोग कर सकता है। फिर जब ऐसे विक्रेता ने अपने अधिकार के प्रयोग करके वस्तु पर कब्जा प्राप्त कर लिया हो तो वह इन वस्तुओं पर वैध अधिकार प्राप्त करता है।

**८. बन्धकधारी द्वारा विक्री (Sale by a Pawnee)**—भारतीय प्रसविदा अधिनियम की धारा १७६ के मुताबिक बन्धकग्राही बन्धक रखी हुई वस्तु को बेच सकता है तथा यहाँ पर क्रेता को विक्रेता के अधिकार से भी अच्छा अधिकार प्राप्त होता है।

**९. निक्षेपी द्वारा विक्री (Finder of Lost Goods)**—जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की खोयी हुई वस्तु पा लेता है तो उसे भारतीय प्रसविदा विधान की १६९ के धारा अनुसार उस वस्तु की विक्री करने का अधिकार प्राप्त है।

**१०. सरकारी रिसीवर (Official Receiver) द्वारा विक्री**—यदि किसी के दिवालिया होने पर न्यायालय द्वारा दिवालिया की सम्पत्ति की देखरेख करने के लिए कोई रिसीवर नियुक्त हो, उसे उस समय सम्पत्ति पर दूसरी पार्टी की विक्री द्वारा सद्-स्वत्व देने का अधिकार प्राप्त है।\*

**११. खुले बाजार (Market Overt) में विक्री**—खुले बाजार उस स्थान को कहते हैं जहाँ पर विक्री के लिए वस्तुएँ खोलकर रखी गयी हैं। अंगरेजी संनियम (English Law) के अनुसार यदि कोई व्यक्ति खुले बाजार में चोरी का भी माल अज्ञानवश खरीदे तो उसे उस माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त होगा, और उस

माल का वास्तविक स्वामी भी क्रेता से माल वापस नहीं ले सकता, किन्तु ऐसा तब होगा जब कि चोरी के माल का चोर पकड़ा न गया हो तथा उसे सजा भी न हुई हो और क्रेता ने सद्विश्वास के साथ माल खरीदा हो। किन्तु भारतवर्ष में कानून के द्वारा किसी खुले बाजार को स्वीकार नहीं किया गया है। अतः यह नियम भारतवर्ष में लागू नहीं है।

विक्रेता तथा क्रेता के कर्त्तव्य

विक्री की प्रतंविदा की शर्तों के अनुसार विक्रेता को माल की सुपुर्दगी और क्रेता का उस सुपुर्दगी को स्वीकार करना तथा उसकी कीमत चुकाना मुख्य कर्त्तव्य है।  
[धारा ३१]

---

## माल की सुपुर्दगी (Delivery of Goods)

धारा २ के अनुसार सुपुर्दगी का अर्थ एक व्यक्ति द्वारा स्वेच्छापूर्वक किसी दूसरे व्यक्ति को माल के कब्जे का हस्तान्तरण करना है। सुपुर्दगी से पहले, माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में अवश्य होना चाहिये। विक्रय की प्रसविदा में सुपुर्दगी एक आवश्यक अंग है। प्रसविदा में ऐसा प्रयोजन किया जा सकता है कि सुपुर्दगी तुरत ही दी जाय अथवा किसी आगामी तिथि पर दी जाय अथवा किस्तों द्वारा दी जाय।

### सुपुर्दगी के प्रकार (Modes of Delivery)

सुपुर्दगी मुख्यतः निम्नांकित तीन प्रकार की होती है—

१. वास्तविक (Actual),
२. सांकेतिक (Symbolic), और
३. रचनात्मक (Constructive)।

१. वास्तविक सुपुर्दगी (Actual Delivery)—जब माल यथार्थ विक्रेता द्वारा क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि को प्रदान कर दिया जाता है तो उसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते हैं। अतः क्रेता को या क्रेता के एजेंट को यदि विक्रेता माल की सुपुर्दगी दे दे तो वास्तविक सुपुर्दगी कहेंगे।

२. सांकेतिक सुपुर्दगी (Symbolic Delivery)—जब माल तौल या परिमाण में इतना अधिक रहता है कि उसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाना या भौतिक रूप में हस्तांतरण करना असंभव रहता है तो उसे माल पर क्रेता या उसके एजेंट को हस्तांतरित करने के विचार से केवल संकेत ही प्रसार किया जा सकता है, जिसके द्वारा पूरे माल की सुपुर्दगी की जा सकती है। इस प्रकार की सुपुर्दगी को सांकेतिक सुपुर्दगी (symbolic delivery) कहते हैं। इसमें माल पर अधिकार (possession) का वास्तव में परिवर्तन नहीं होता अर्थात् क्रेता खरीदने के बाद तुरत माल का हस्तांतरण नहीं प्राप्त कर लेता, बल्कि विक्रेता कुछ ऐसा काम करता है जिससे यह मालूम हो जाता है कि विक्रेता को माल पर अधिकार देने का संकेत है।

**उदाहरण**—यदि X, Y के हाथ ५०० मन चावल बेचता है और यदि विक्री के बाद X गोदाम की कुंजी Y को देता है तो कुंजी देना माल पर अधिकार देने का संकेत है।

उसी प्रकार यदि विक्रेता बन्दरगाह पर आये माल की विक्री करके जहाजी बीजक (bill of lading) की बेचान (endorsement) क्रेता के नाम में कर देता है और फिर जहाजी बीजक को उसके हवाले कर देता है तो यह माल पर अधिकार प्राप्त करने का प्रत्यक्ष संकेत होगा।

३. रचनात्मक सुपुर्दगी (Constructive Delivery)—जब माल हाथ से सुपुर्द करने योग्य नहीं है अथवा जब माल विक्रेता की व्यक्तिगत देखभाल में नहीं

है, तो राज-नियम द्वारा उसकी वास्तविक सुपुर्दगी आवश्यक नहीं है। यही पर्याप्त है कि माल विक्रेता के सम्पूर्ण अधिकार में कर दिया जाय। ऐसी सुपुर्दगी रचनात्मक सुपुर्दगी (constructive delivery) कहलाती है। इसे कल्पित सुपुर्दगी (fictitious delivery) भी कहते हैं। रचनात्मक सुपुर्दगी निम्नलिखित रीतियों में से किसी के भी अनुसार की जा सकती है—

(क) जब माल का कब्जा स्वयं क्रोता के पास हो, तो सुपुर्दगी विक्रेता द्वारा विक्रेता के अधिकारों के असंगत कार्य करने से जानी जा सकती है;

(ख) जब विक्रेता क्रोता के लिए माल का कब्जा अपने पास रखता है;

(ग) जब माल किसी तीसरे व्यक्ति के कब्जे में हो तथा वह व्यक्ति उसको क्रोता के लिए अपने पास रखने की सहमति दे दे;

(घ) जब सुपुर्दगी वहन-पत्र (bill of lading), रेलवे रसीद इत्यादि हस्तान्तरित करके कार्यान्वित की जाती है।

इस प्रकार, रचनात्मक सुपुर्दगी कोई ऐसा कार्य करके की जा सकती है जिसको पक्षकारों ने सुपुर्दगी के रूप में मानने की संविदा की हो, अथवा जिसका प्रभाव माल के क्रोता अथवा उसके एजेंट के कब्जे में दे देना हो। [धारा ३३]

विक्रेता का यह कर्तव्य है कि माल की सुपुर्दगी दे तथा क्रोता का यह है कि वह विक्रय-प्रसंविदा की शर्तों के अनुसार उनको स्वीकार करे तथा उनके लिए भुगतान करे, जब तक कि कोई अन्य प्रसंविदा न की हो। माल की सुपुर्दगी एवं मूल्य का भुगतान समकालिक (concurrent) होना चाहिए, अर्थात् विक्रेता को मूल्य के बदले से क्रोता को माल का कब्जा सौंपने के लिए तैयार एवं इच्छुक रहना चाहिए। [धारा ३१ तथा ३२]

किसी स्पष्ट प्रसंविदा के अभाव में माल का विक्रेता उसको उस समय तक सुपुर्द करने के लिए मजबूर नहीं है, जब तक कि विक्रेता सुपुर्दगी के लिए आवेदन न करे। [धारा ३५]

## सुपुर्दगी से सम्बद्ध नियम (Rules as to Delivery)

धारा ३६ (१) के अनुसार सुपुर्दगी से सम्बद्ध निम्नलिखित नियम हैं—

१. सुपुर्दगी का ढंग (Mode of Delivery)—धारा ३६ (१) के अनुसार सुपुर्दगी का ढंग यह है—विक्रेता को माल क्रोता के पास भेजना है अथवा क्रोता को उसका कब्जा प्राप्त करना है यह बात पक्षों की प्रसंविदा पर जो स्पष्ट अथवा गतिमत हो सकती है, निर्भर करती है। ऐसी किसी प्रसंविदा में सुपुर्दगी की रीति, व्यापार की प्रथा के अनुसार निश्चित की जाती है।

२. सुपुर्दगी का स्थान (Place of Delivery)—साधारणतः प्रसंविदा में सुपुर्दगी का स्थान दिया जाता है। अतः जब प्रसंविदा में स्थान दिया हो तो विक्रेता का यह कर्तव्य है वह कार्यान्वित दिन (working day) तथा कार्यान्वित समय (working hours) के भीतर ही सुपुर्दगी दे। फिर, यदि प्रसंविदा में स्थान नहीं दिया गया हो तो बेची हुई चीज की सुपुर्दगी उस स्थान पर दी जायगी जहाँ कि वह विक्री के लिए सविदा करते समय पड़ी हो अथवा यदि माल विद्यमान (existence) न हो तो उस स्थान पर सुपुर्दगी दी जायगी जहाँ कि वह सीमित अथवा उत्पादित किया जाता है। [धारा ३६ (१)]

३. सुपुर्दगी का समय (Time of Delivery)—जब विक्रय-प्रसंविदा के अधीन

विक्रेता माल क्रेता के पास भेजने के लिए बाध्य हो, किन्तु उनको भेजने के लिए कोई समय निर्धारित किया गया हो, तो विक्रेता यथोचित समय के भीतर भेजने के लिए बाध्य है। [धारा ३६ (२)]

४. माल जो तीसरे व्यक्ति के कब्जे में हो (Goods in possession of Third Person)—जब विक्रय के समय माल किसी तीसरे व्यक्ति के कब्जे में हो तो उस समय तक क्रेता को विक्रेता द्वारा कोई सुपुर्दगी नहीं मानी जायेगी जब तक कि ऐसा तीसरा व्यक्ति क्रेता के सम्मुख यह स्वीकार न करे कि वह माल के विक्रेता की ओर से अधिकारी है। इस प्रकार की रचनात्मक सुपुर्दगी को 'Allotment' कहते हैं। अधिकार-सम्बन्धी प्रलेखों का हस्तान्तरण भी माल की सुपुर्दगी के सदृश ही है। [धारा ३६ (३)]

५. सुपुर्दगी की माँग करने अथवा प्रस्तुत करने का समय (Hour for Demand or Tender of Delivery)—सुपुर्दगी की माँग अथवा वस्तु प्रस्तुत करना उस समय तक निष्फल समझा जायेगा जब तक कि यह 'यथोचित समय पर न गयी है'। 'यथोचित समय क्या है,' यह तथ्य-सम्बन्धी प्रश्न है जो व्यापार के रीति-रिवाजों अथवा प्रसंविदा के अनुसार निर्दिष्ट किया जाता है। [धारा ३६ (४)]

६. सुपुर्दगी के व्यय (Expenses of Delivery)—किसी प्रसंविदा के अभाव में माल को सुपुर्दगी-योग्य स्थिति में लाने के तथा इससे सम्बद्ध दूसरे सभी खर्च विक्रेता को सहन करने पड़ेंगे। [धारा ३६ (५)]

७. आंशिक सुपुर्दगी का प्रभाव (Effect of part Delivery)—सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी देने के सिलसिले में माल की आंशिक सुपुर्दगी देने का प्रभाव वही होता है जो सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी देने का होता है। किन्तु सम्पूर्ण माल से विच्छिन्न करने के अभिप्राय से माल की आंशिक सुपुर्दगी शेष माल की सुपुर्दगी नहीं मानी जाती।

८. किस्तों में सुपुर्दगी (Delivery by Instalments)—क्रेता माल की सुपुर्दगी किस्तों में स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है, जब तक कि प्रसंविदा में इसके लिए कोई प्रबन्ध न हो। किसी ऐसी प्रसंविदा में जिसके मुताबिक माल की सुपुर्दगी निर्दिष्ट किस्तों में दी जानी है, जिसको दाम गृह्यन्-गृह्यन् चुकाया जाना है, पक्षकार द्वारा सुपुर्दगी देने में अथवा स्वीकार करने में तथा एक या अधिक किस्तों का मूल्य चुकाने में त्रुटि करने पर यह जरूरी है कि प्रसंविदा समाप्त हो जाय। यह एक ऐसा प्रश्न है जो प्रसंविदा की शर्तों तथा प्रत्येक मामले की विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है। [धारा ३८]

९. वाहक की सुपुर्दगी (Delivery to Carrier or Wharfinger)—जब विक्री की प्रसंविदा के अनुसार विक्रेता को मालों को क्रेता के पास भेजने का अधिकार हो तो ऐसी हालत में किसी एक वाहक (carrier) को जिसका नाम क्रेता के द्वारा बताया गया हो अथवा नहीं, क्रेता के पास माल पहुँचाने के उद्देश्य से माल की सुपुर्दगी अथवा सुरक्षा के लिए wharfinger (wharfinger) को माल की सुपुर्दगी देना क्रेता को ही सुपुर्दगी देना समझा जाता है। फिर, क्रेता द्वारा किसी अधिकार के अभाव में, विक्रेता क्रेता की तरफ से वाहक अथवा wharfinger (wharfinger) के साथ ऐसी प्रसंविदा कर सकता है जो माल की प्रकृति तथा मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए युक्तिसंगत (reasonable) हो। यदि विक्रेता ऐसा करने में असावधानी करे या माल मार्ग अथवा wharfinger (wharfinger) की रखवाली में खो जाय या बरबाद हो जाय, तो क्रेता वाहक को सुपुर्दगी देना अपने

लिए सुपुर्दगी मानने से इनकार कर सकता है अथवा क्षति के लिए विक्रेता को उत्तरदायी ठहरा सकता है।

फिर, किसी दूसरे प्रकार की संविदा के अभाव में यदि माल विक्रेता द्वारा ऐसी स्थिति में जलमार्ग से भेजा जाय कि वैसी स्थिति में माल का बीमा कराना आवश्यक हो, तो विक्रेता को क्रेता को ऐसी सूचना देनी चाहिए जिसमें वह आसानी से माल का बीमा करा ले। किन्तु यदि विक्रेता इस तरह की खबर न दे तो समुद्री यात्रा के समय माल विक्रेता की जोखिम पर समझा जायगा। [धारा ३९]

अतः किसी विशिष्ट प्रसंविदा के अभाव में वाहक की सुपुर्दगी दे देने के बाद माल का स्वामित्व मार्ग में होनेवाली जोखिम के साथ क्रेता के पास चला जाता है। ऐसी दशा में वाहक (carrier) क्रेता का एजेंट हो जाता है। अतः क्रेता माल की क्षति अथवा सुपुर्दगी न देने पर वाहक के ऊपर मुकदमा कर सकता है। इसी प्रकार विक्रेता को सुपुर्दगी दी जानेवाली जगह पर माल के मूल्य के लिए मुकदमा करने का अधिकार प्राप्त है।

### गलत परिमाण और गलत विवरण की सुपुर्दगी (Delivery in wrong quantity and of wrong description)

१. जब विक्रेता, क्रेता के साथ जितना माल भेजने और पाने की प्रसंविदा हुई है, उसमें कम माल भेजता है तो क्रेता उसे लेने से इनकार कर सकता है। किन्तु यदि क्रेता गलत मात्रा का माल स्वीकार कर लेता है तो उसको उस माल का मूल्य चुकाना पड़ेगा।

२. जब विक्रेता क्रेता के यहाँ जितने माल भेजने की प्रसंविदा हुई है उससे अधिक माल भेजता है तो वह चाहे तो प्रसंविदा के अनुसार माल को स्वीकार करके बाकी को विक्रेता के यहाँ वापस कर सकता है या नहीं तो वह चाहे तो सभी माल की सुपुर्दगी लेने से इनकार कर सकता है। यदि क्रेता सम्पूर्ण माल को स्वीकार करता है तो वह सबका मूल्य प्रसंविदा में दिये गये मूल्य पर ही चुकायेगा।

३. विक्रेता क्रेता के यहाँ जिस किस्म या विवरण का माल भेजने की प्रसंविदा करता है उससे भिन्न माल भेजने पर क्रेता को यह अधिकार है कि वह चाहे तो प्रसंविदा के अनुसार जो माल है, केवल उसी को स्वीकार करे अथवा सभी माल को लेने से इनकार कर दे।

४. ऊपर कही गयी बातों को आपस में समझौता करके या वहाँ की रीति (usage) या रिवाज (custom) के द्वारा परिवर्तन कर सकते हैं। [धारा ३७]

### क्रेता का माल को जाँचने का अधिकार (Buyer's Right of Examining the Goods)

जब माल क्रेता को सुपुर्द किया जाता है जिमकी कि उसने जाँच नहीं की है, तब माल उसके द्वारा स्वीकार किया हुआ नहीं समझा जायगा जब तक कि उसे यह जाँचने का यथोचित समय नहीं मिल जाता कि माल प्रसंविदा के अनुसार है या नहीं। विक्रेता का यह कर्तव्य है कि वह क्रेता को ऐसा समय दे। अगर ऐसा समय देने के बाद भी क्रेता माल की जाँच नहीं करता है, तब माल क्रेता द्वारा स्वीकृत समझा जाता है। [धारा ४१]

## माल की स्वीकृति (Acceptance)

निम्नलिखित दशाओं में यह समझा जाता है कि क्रेता ने माल को स्वीकार कर लिया है—

(i) जब वह विक्रेता को यह खबर देता है कि उसने माल को स्वीकार कर लिया है, अथवा

(ii) जब माल उसे सुपुर्द किया जा चुका है और वह उसके सम्बन्ध में कोई ऐसा काम करता है जो कि विक्रेता का स्वामित्व होने के प्रतिकूल है, अथवा

(iii) जब मुनासिब समय समाप्त हो जाने पर भी वह माल को रखता है और विक्रेता को यह सूचना नहीं देता कि उसने माल को अस्वीकार कर दिया है। [धारा ४२]

अस्वीकृत माल को वापस करने के लिए क्रेता बाध्य नहीं है (Buyer is not bound to return rejected goods)—जब तक कि इसके खिलाफ यह न निश्चित किया गया हो, जब माल क्रेता को सुपुर्द किया जाता है और वह अस्वीकार करने का अधिकार रखते हुए उसको अस्वीकार कर देता है तब वह उसे विक्रेता को वापस करने के लिए बाध्य नहीं है, इतना ही बहुत होगा कि वह विक्रेता को यह सूचना दे देता है कि उसने माल को अस्वीकार कर दिया है। [धारा ४३]

सुपुर्दगी लेने में उपेक्षा अथवा इनकार करने पर क्रेता का दायित्व (Liability of Buyer for neglecting or refusing delivery of goods)—जब विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के लिए तैयार तथा इच्छुक है और सुपुर्दगी नहीं लेने के लिए क्रेता से प्रार्थना करता है और क्रेता ऐसी प्रार्थना के बाद यथोचित समय में माल की सुपुर्दगी नहीं लेता, तो वह सुपुर्दगी में उपेक्षा अथवा इनकार करने की वजह से होने वाले नुकसान के लिए विक्रेता के प्रति दायी होगा। [धारा ४४]

## सुपुर्दगी का व्यय (Cost of Delivery)

१. स्थानीय मूल्य (Local price)—स्थानीय मूल्य की शर्त होने पर विक्रेता के गोदाम में क्रेता की दूकान तक पहुँचने में जो व्यय होगा उसे विक्रेता ही देगा।

२. जहाज लदाई माफ मूल्य (Free on Board or F. O. B. Price)—ऐसी कीमत की शर्त होने पर माल को जहाज पर लादे जाने तक जो व्यय होगा उन्हें विक्रेता सहन करेगा।

३. खर्च बीमा और भाड़ा माफ मूल्य (Cost Insurance and Freight or C. I. F. Price)—ऐसी कीमत की शर्त रहने पर समुद्री बीमा का प्रीमियम चुकाये जाने तक जितने व्यय होंगे उन्हें विक्रेता सहन करेगा।

४. 'जहाज तक मूल्य' (Ex-ship)—ऐसी कीमत की शर्त के अनुसार विक्रेता को माल के जहाज के उद्घाटित बन्दरगाह (port of destination) तक पहुँचाने में जितना व्यय होगा, सहन करना पड़ेगा।

५. सब खर्च माफ (Franco)—इसके अनुसार विक्रेता को गोदाम में माल पहुँचाने तक का खर्च विक्रेता को देना पड़ेगा।

विक्रेता के कर्तव्य (Duties of a seller in a C. I. F. Contract)—सी० आई० एफ० प्रसविदा में विक्रेता के लिए निम्नलिखित दायित्वों का निभाना आवश्यक होता है—

(i) बेचे गये माल का मूल्य स्पष्ट विवरण देते हुए मालों का सामान्य



सन्नियम से बीजक बनाना ।

(ii) प्रसंविदा की शर्तों के अनुसार निश्चित अथवा उचित समय के अन्दर मालों को जहाज पर लादना ।

(iii) लादे गये मालों की जहाजी बिल्टी (bill of lading) प्राप्त करना, जिससे कि क्रेता गंतव्य स्थान पर मालों का परिदान प्राप्त कर सके ।

(iv) व्यापार में प्रचलित शर्तों के अनुसार क्रेता के हित के लिए प्राप्त मालों के बीमे की व्यवस्था करना ।

(v) क्रेता को यथाशीघ्र उसके व्यावसायिक स्थान पर या किये गये प्रसंविदा के स्थान पर माल लादने के सम्बन्ध में सभी स्वत्व प्रपत्रों का देना, जिससे कि क्रेता को वस्तुओं के वास्तविक परिदान से पहले ही यह जानकारी प्राप्त हो जाय कि उसे वस्तुओं का परिदान प्राप्त करने के लिए कितना भाड़ा देना होगा अथवा अगर वस्तुएँ रास्ते में ही बरबाद हो जायँ तो क्षतिपूर्ति के लिए बीमा कम्पनी से माँग कर सकता है ।

**क्रेता के कर्तव्य (Duties of a buyer)**—(i) क्रेता सभी सम्पूर्ण एवं नियमानुकूल जहाजी प्रपत्रों को स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है ।

(ii) क्रेता को सभी अवस्थाओं में चाहे माल का उसे वास्तविक अधिकार प्राप्त हुआ हो अथवा नहीं, माल के पूरे मूल्य का भुगतान करना होता है । माल नष्ट हो जाने पर हुई क्षतिपूर्ति के लिए वह बीमा कम्पनी से माँग कर सकता है ।

---

## माल पर भुगतान न किये गये विक्रेता के अधिकार (Rights of an Unpaid Seller)

धाराएँ ४५-५४

**परिभाषा**—भारतीय माल-विक्रय अधिनियम की धारा ४५ के अनुसार 'भुगतान न किये गये विक्रेता' की परिभाषा निम्नलिखित है—

१. जब कि सम्पूर्ण मूल्य न चुकाया गया हो या प्रस्तुत न किया गया हो।
२. जब कि विनियम-पत्र (हुण्डी) या अन्य विनियम योग्य साधन-लेख (negotiable instruments) प्रतिबन्ध भुगतान के रूप में प्राप्त हुए हों, और प्रतिबन्ध जिस पर यह प्राप्त किया था, उस साधन-लेख (instrument) के स्वीकार न हो जाने के कारण या अन्य रूप से पूरा न किये जाने पर विक्रेता को 'भुगतान न किया गया विक्रेता' कहते हैं। मूल्य नहीं पाया हुआ कोई भी विक्रेता हो सकता है जो विक्रेता की हानत में हो। अतः ऐसा व्यक्ति जिसे विक्रेता ने जहाजी बिल्टी (bill of lading) दी हो या जिस व्यक्ति ने विक्रेता के लिए माल की कीमत चुकाई हो या कीमत के लिए स्वयं उत्तरदायी हो, वह व्यक्ति विक्रेता ही समझा जायगा।

### भुगतान न किये गये विक्रेता के अधिकार (Rights of an Unpaid Seller)

जब विक्रेता ने पूर्ण या आंशिक रूप में मूल्य का भुगतान किया हो तो विक्रेता को जिनने माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित कर दिया है, माल के विरुद्ध (Rights against the goods) निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है—

- (i) माल पर उस समय तक अपना पूर्वाधिकार (lien) रखता है जब तक कि उनपर उसका आधिपत्य (कब्जा) है।
- (ii) माल को मार्ग में रोकने (stoppage in transit) का अधिकार यदि माल का अधिकार उसके पास से चली गया हो।
- (iii) पुनः विक्रय का अधिकार (right of resale)।

किन्तु जहाँ माल का स्वामित्व क्रेता के पास नहीं गया हो तो अन्य उपचारों के अलावा भुगतान न किये गये विक्रेता को एक और सुपुर्दगी रोक लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जो स्वामित्व क्रेता के पास चले जाने की दशा में उसके पूर्वाधिकार (lien) एवं मार्गस्थ रोध (stoppage in transit) अधिकार पर समान एवं सह-विस्तारित होता है। [धारा ४६]

### क्रेता के विरुद्ध अधिकार (Right against the Buyer)

जब तक कि कोई और समझौता न हो गया हो, माल का विक्रेता माल की

सुपुर्दगी देने के समय ही मूल्य पाने का अधिकारी है। अगर माल खरीदने वाला कीमत नहीं चुकाता है तब बेचने वाले को कीमत के लिए मुकदमा करने का अधिकार है। अगर क्रेता विक्रेता हुए माल की सुपुर्दगी लेने से इनकार करता है तब विक्रेता को क्षतिपूर्ति कराने का भी अधिकार है। इसके अलावा उसे विक्रेता हुए माल के कुल मूल्य पर उसकी देय तिथि से मुनासिब दर से व्याज भी पाने का अधिकार है। [धारा ३२, ५६ तथा ६१ के अनुसार]

### भुगतान न किये गये विक्रेता का पूर्वाधिकार (Lien)

ऐसे भुगतान न पाया हुआ विक्रेता, जिसके पास ऐसे माल का अधिकार है जो क्रेता की सम्पत्ति हो चुका है, निम्नलिखित दशाओं में भुगतान अथवा मूल्य-प्रदान करने तक माल का अधिकार अपने पास रोके रख सकता है—

- (i) जहाँ माल उधार के सम्बन्ध में किसी बंधन के बेचा जा चुका हो,
- (ii) जहाँ माल उधार बेचा गया हो, परन्तु उधार की अवधि समाप्त हो, और
- (iii) जहाँ क्रेता का ऋण-शोधन असमर्थ (insolvent) हो गया हो।

विक्रेता इस अधिकार को एजेंट या निक्षेप-गृहीता (bailee) की स्थिति में भी रह कर ग्रहण कर सकता है। [धारा ४७]

जब कि विक्रेता ने समस्त माल का कुछ हिस्सा क्रेता को हस्तांतरित किया है तो बाकी माल पर 'पूर्वाधिकार' रख सकता है [धारा ४८]। पूर्वाधिकार व्यक्तिगत अधिकार है अतः विक्रेता इस अधिकार को स्वयं या उसका एजेंट ही, जिसके पास माल हो, प्रयुक्त कर सकता है। उसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है और उसी कारण मूल्य नहीं पाया हुआ विक्रेता का कोई ऋणदाता (creditor) उसे ग्रहण नहीं कर सकता। यह अधिकार टुकड़ों में नहीं बाँटा जा सकता है। अतः क्रेता और विक्रेता से यह नहीं कह सकता कि मूल्य चुकाये गये हिस्से से माल पर हमारा अधिकार (possession) दे दो। यदि क्रेता कीमत के बदले में कोई विनिमय-पत्र (bill of exchange) स्वीकार कर लेता है और मूल्य चुका देने के बाद माल की सुपुर्दगी लेने का इरादा करता है तो पूर्वाधिकार को पुनः स्थापना तब हो जायगी जब कि क्रेता विनिमय-पत्र का अनादर (dishonour) कर देगा। यदि माल का विक्रय साख (credit) पर किया गया है तो क्रेता साख की अवधि के भीतर माल की सुपुर्दगी ले सकता है। यदि क्रेता माल की सुपुर्दगी उस साख की अवधि के भीतर नहीं लेता है तो विक्रेता का माल पर 'पूर्वाधिकार' हो जाता है। यदि साख की अवधि खत्म होने के पहले क्रेता दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता के पूर्वाधिकार की पुनः स्थापना हो जाती है।

ऊपर लिखी बातों से यह साफ जाहिर होता है कि पूर्वाधिकार के लिए चार मुख्य शर्तों का होना आवश्यक है—

- (i) माल का स्वत्व (ownership) क्रेता को मिल चुका हो।
- (ii) माल पर विक्रेता का अधिकार (possession) हो।
- (iii) प्रसंविदा द्वारा पूर्वाधिकार का खण्डन न किया गया हो और न इसपर प्रतिबन्ध ही हो।
- (iv) माल के सम्पूर्ण या आंशिक मूल्य का भुगतान नहीं हुआ हो।

उदाहरण—१. X ने Y से माल की विक्री करने की संविदा की और उसने माल को सुपुर्द करने की आज्ञा (delivery order) Y को दे दी। यहाँ X

को पूर्वाधिकार प्राप्त है ।\*

२. आस्ट्रेलिया के व्यापारी ग्राइस (Grice) ने रिचर्डसन (Richardson) के हाथ कुछ चाय की विक्री की। विक्री के समय चाय ग्राइस के गोदाम में थी और उसने रिचर्डसन को केवल सुपुर्द करने की आज्ञा (delivery order) दे दी। कुछ दिन व्यतीत होने के बाद रिचर्डसन से उस आज्ञापत्र (order note) को एक तीसरे व्यक्ति (W & Co) के हाथ बेचान कर दिया तथा ग्राइस के यहाँ से समस्त माल का कुछ हिस्सा डब्लू एण्ड को० के यहाँ भेजा गया। उसके बाद डब्लू एण्ड को० दिशालिया हो गया। अतः ग्राइस ने शेष माल की सुपुर्दगी बिना उसका मूल्य चुकाये, देने में इनकार कर दिया। जज ने यह फैसला कर दिया कि चाहे ग्राइस के यहाँ माल निक्षेप (bailment) के रूप में क्यों न पड़ा हो, उसे माल पर पूर्वाधिकार प्राप्त है।†

पूर्वाधिकार की समाप्ति (Termination of Lien)‡

निम्नलिखित स्थितियों में 'भुगतान न पाया हुआ विक्रेता' पूर्वाधिकार खो देता है—

(i) जब कि वह माल से निपटारे के अधिकार (right of disposal) को सुरक्षित रखे बिना क्रेता के संप्रेषण के प्रयोजन के लिए वाहक (carrier) या अन्य निक्षेप-गृहीता (bailee) को सुपुर्दगी देता है।

उदाहरण—X, Y के यहाँ माल पहुँचाने के विचार से माल को एक रेलवे कम्पनी को देता है तथा रेलवे विल्टी (railway receipt) Y के नाम लेकर Y के यहाँ भेज देता है। ऐसी हालत में X के माल को हस्तान्तरित करने का अधिकार समाप्त हो जाता है और यदि Y उस माल का मूल्य नहीं भी चुकाता है तो X माल को रोक नहीं सकता। यदि X ने रेलवे विल्टी अपने नाम ली हो तो वह रोक सकता था।

(ii) जब विक्रेता या उसका एजेंट वैध रूप से माल का आधिपत्य (possession) प्राप्त करता है।

उदाहरण—X, Y के हाथ २०० रु० में एक गाय खरीदता है। Y के द्वारा मूल्य का भुगतान होने के पहले ही विक्रेता Y के एजेंट Z को Y के यहाँ पहुँचाने के लिए गाय दे देता है। ऐसी दशा में Y गाय पर वैधानिक दृष्टि से अधिकार पा लेता है और X अपना पूर्वाधिकार खो बैठता है।

(iii) जब विक्रेता पूर्वाधिकार (lien) का परित्याग (waive) कर देता है।

उदाहरण—X, Y को अपनी गाय २०० रु० में विक्री करता है। गाय X के अधिकार में है तथा Y ने उसकी कीमत भी नहीं चुकायी है। फिर X, Y से कहता है कि मैं गाय की कीमत नहीं मिलने पर भी कीमत के लिए गाय को ले जाने से नहीं रोकूँगा। ऐसी हालत में Y बिना दाम चुकाये ले जा सकता है और X का उसपर पूर्वाधिकार नहीं रहेगा। [धारा ४९ (१)]

यदि विक्रेता को मूल्य नहीं मिला है और वह मूल्य के लिए मुकदमा कर

\* Le Geyt vs. Hervey (1884) 8 Bom. 501.

† Richardson vs. Grice. (1887) 3 A. C. 390. P. C.

‡ Sec. 49.

कचहरी से डिकी करा लेता है तो इससे उसका पूर्वाधिकार समाप्त नहीं हो जाता ।  
[धारा ४९ (२) ]

### मार्ग-गमन में रोकना (Stoppage in Transit)

‘भारतीय माल-विक्रय-अधिनियम’ की ५०वीं धारा के अनुसार यदि माल का अधिकार त्याग देने के बाद विक्रेता को क्रेता के दिवालिया होने की खबर मिलती है, तो वह माल को मार्ग में रोक सकता है और माल का अधिकार वापस लेकर अपने पास रख सकता है जब तक कि क्रेता भुगतान करे अथवा मूल्य प्रदान करे । भुगतान न पाये हुए विक्रेता के इस अधिकार को मार्ग-गमन में रोकने का अधिकार कहते हैं । इसमें हम देखते हैं कि माल को मार्ग में रोकने के लिए तीन मुख्य शर्तों का पूरा होना आवश्यक है—

(क) भुगतान न किये गये विक्रेता ने माल पर से अपना अधिकार (possession) त्याग दिया हो;

(ख) क्रेता दिवालिया हो चुका हो; तथा

(ग) माल मार्ग में ही हो ।

### मार्ग-गमन की अवधि (Duration of Transit)

माल तभी रोका जा सकता है जब तक कि वह मार्ग में ही हो । मार्ग-गमन की अवधि के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं—

(i) माल उस समय मार्ग में कहा जाता है जब कि वह किसी वाहक (carrier) या निक्षेप-गृहीता (bailee) को सौंप दिया जाता है और जब तक कि क्रेता अथवा उसका एजेंट उसकी सुपुर्दगी प्राप्त नहीं कर लेता । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वाहक (carrier) उसे एक वाहक की तरह अपने अधिकार में रखता है, क्रेता के एजेंट की तरह नहीं । अतः जब क्रेता या उसका एजेंट माल की सुपुर्दगी वाहक से लेता है तो कहा जायगा कि माल की प्रगति समाप्त हो गयी । यदि वाहक ही क्रेता के एजेंट का काम करे तो उसके अधिकार में माल आ जाने के दिन ही माल की प्रगति समाप्त हो जायगी ।

(ii) यदि क्रेता अथवा उसका एजेंट माल की सुपुर्दगी नियत स्थान पर पहुँचाने के पहले ही प्राप्त कर लेता है तो मार्गस्थ स्थिति का अन्त हो जाता है । एक मुकदमे में माल बन्दरगाह में पहुँचने पर क्रेता ने जहाज के कप्तान से माल मांगा, परन्तु कप्तान ने देने से इनकार कर दिया । ऐसी दशा में क्रेता को माल पर अधिकार नहीं मिला और इसलिए विक्रेता का माल पर से मार्गस्थ रोध समाप्त नहीं हुआ ।\*

**उदाहरण—** X ने Y से कुछ माल खरीदा परन्तु उसका दाम उस समय नहीं चुकाया गया । Y उस माल को रेलवे कम्पनी को X के यहाँ ले जाने के लिए सुपुर्द करता है । X ने स्टेशन पर जाकर रेल का महसूल जमा किया तथा माल की सुपुर्दगी ले ली । परन्तु माल स्टेशन के गोदाम में जाने के पहले ही रेलवे कम्पनी को विक्रेता के यहाँ से माल रोक लेने का तार मिला । ऐसी दशा में जब X ने माल की सुपुर्दगी ले ली है और यदि विक्रेता चाहे भी तो क्रेता को माल ले जाने से

\* Whitepeed vs. Anderson (1842) 9 M. and W. 534.

रोक नहीं सकता ।\*

(iii) यदि नियत स्थान पर पहुँच जाने के बाद वाहक या अन्य निक्षेप-गृहीता (bailee) क्रेता या उसके एजेंट को यह कबूल कर ले कि वह उसकी ओर से माल को रखना है और क्रेता या उसके एजेंट के लिए निक्षेप-गृहीता के रूप में उनपर उसका आधिपत्य चालू है, तो मार्ग-गमन समाप्त हो जायगा और यह अविचारणीय होगा कि माल के लिए आगे का ठिकाना क्रेता द्वारा निर्देशित किया गया है ।

अतः यदि क्रेता जहाजी बिल्टी का बेचान किसी दूसरे के हाथ कर दे तो वैसे ही हानन में विक्रेता का मार्ग-गमन समाप्त हो जाता है । इसके अनुसार माल की कृत्रिम या रचनात्मक (constructive) सुपुर्दगी क्रेता को मिलती है । 'रिचर्डसन बनाम गॉस' के मुकदमे में यह फैसला हुआ था कि—“यदि कोई माल माँगने वाला वाहक या घाटवाले की सहमति से उसके गोदाम में मँगाए हुए मालों को रखता हो और उसी को अपना भण्डार कायम करता हो तो जैसे ही माल उस गोदाम में पहुँच जायेगा, माल की प्रगति का खात्मा हो जाएगा ।”†

(iv) यदि माल क्रेता द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाय और वाहक या अन्य निक्षेप-गृहीता उसको अपने आधिपत्य में रखे रहे, तो मार्ग-गमन समाप्त नहीं माना जायेगा, भले ही विक्रेता उन्हें पुनः वापस लेने से इनकार करे ।

(v) जब माल क्रेता द्वारा भाड़े पर लिये हुए जहाज को सौंपा जाय तो यह प्रश्न प्रकरणविशेष की परिस्थितियों पर अवलम्बित है कि माल जहाज के कप्तान (master) के आधिपत्य में वाहक या क्रेता के एजेंट के रूप में है । एक मुकदमे‡ में विक्रेता ने जिस गाड़ी से माल भेजा था उसका स्वामी क्रेता ही था तथा विक्रेता के अनुरोध पर गाड़ी के अधिकारी (incharge) को माल सुपुर्द कर दिया था । अदालत के अनुसार ऐसी स्थिति में माल का कब्जा क्रेता को प्राप्त हो चुका था । वास्तव में जब माल क्रेता द्वारा भाड़े पर नियुक्त, जहाज को सुपुर्द किया जाता है तथा चार्टर पार्टी (charter party) की शर्तों से यह ज्ञात होता है कि क्रेता जहाज का अस्थायी स्वामी है तो जब तक विक्रेता ने व्यवस्थापन का अधिकार अपने हाथ में सुरक्षित नहीं रखा हो, जहाज के कप्तान को माल की सुपुर्दगी क्रेता को एजेंट की सुपुर्दगी मानी जाती है तथा माल को रोकने के अधिकार का अन्त हो जाता है । किन्तु यदि चार्टर पार्टी की शर्तों के अनुसार चार्टर (charter) अस्थायी स्वामी न हो तो वस्तुएँ मार्ग की प्रगति में ही समझी जाती हैं ।

(vi) जहाँ वाहक या अन्य निक्षेप-गृहीता, क्रेता या इस सम्बन्ध में उसके एजेंट को माल की सुपुर्दगी देने में नियम के विरुद्ध इनकार करता है, तो मार्ग-गमन समाप्त माना जायेगा ।

उदाहरण —X ने, जो न तो स्वयं विक्रेता है और न विक्रेता का एजेंट ही है, वाहक को माल रोकने की सूचना दी । Y जो क्रेता है दिवालिया हो गया है अतः सरकारी रिसेवर (official receiver) ने माल की सुपुर्दगी वाहक से माँगी । वाहक ने उसे देने से इनकार किया और उसे X को दिया । ऐसी दशा में माल को रोकना सही नहीं है और माल की प्रगति का उसी समय अन्त हो गया है जबकि क्रेता के बदले में सरकारी रिसेवर ने वाहक से सुपुर्दगी माँगी थी । अतः वाहक

\* G. I. P. Railway vs. Hanumandas.

† Richardson vs. Goss (1802) 3 B and P. 119.

‡ Chotmans vs. L. Y. R. Co L. R. 2 Ch. 332.

को क्रेता की क्षतिपूर्ति करनी होगी ।\*

(vii) यदि क्रेता या उसके एजेंट को समस्त माल की केवल आंशिक सुपुर्दगी की गयी हो तो विक्रेता शेष माल को मार्ग में रोक सकता है, यदि इस प्रकार की पहले से कोई प्रसविदा न हुई हो कि आंशिक सुपुर्दगी हो जाने पर समस्त माल की सुपुर्दगी समझ ली जायेगी । अतः नाधारणतया शेष माल की प्रगति का अन्त नहीं होगा । [धारा ५१]

ऊपर लिखी गयी बातों से यह साफ विदित है कि माल की प्रगति दो मुख्य हालतों में समाप्त हो जाती है—

(क) जब क्रेता या उसका एजेंट माल पर भौतिक (physical) या कृत्रिम (constructive) अधिकार प्राप्त कर लेता है, या

(ख) जब क्रेता की आज्ञा से निश्चित स्थान (destination) पर माल पहुँच जाने के बाद फिर दूसरे स्थान के लिए रवाना कर दिया जाता है ।

**मार्ग-गमन किस प्रकार कार्यान्वित किया जाता है (Stoppage in Transit how effected)**

धारा ५२ के अनुसार भुगतान न पानेवाला विक्रेता माल का वास्तविक अधिकार लेकर, अथवा उस वाहक या व्यक्ति को, जिसके अधिकार में वह माल है, अपने दावे की सूचना देकर मार्ग-गमन में रोकने के अधिकार (stoppage in transit) को कार्यान्वित कर सकता है । ऐसी सूचना या तो उस व्यक्ति को जिसका माल पर वास्तविक अधिकार है अथवा उसके प्रधान (principal) को दी जा सकती है । बाद वाली दशा में प्रभावशाली होने के लिए सूचना ऐसे समय एवं ऐसी परिस्थितियों में दी जानी चाहिये कि प्रधान यथोचित उद्योग करके उस सूचना को अपने कर्मचारी अथवा एजेंट के पास समय के अन्दर पहुँचा सके जिसने क्रेता को माल की सुपुर्दगी रुक जाय । जब खबर दे दी जाती है तो वाहक अथवा अन्य निक्षेप-नृत्तीता को माल फिर से विक्रेता को सुपुर्द कर देना चाहिए । वही ऐसी सुपुर्दगी का खर्च सहन करेगा ।

**क्रेता द्वारा उप-विक्रय अथवा बन्धक का प्रभाव (Effect of Sub-Sale or Pledge by the Buyer)**

धारा ५३ के अनुसार क्रेता द्वारा उप-विक्रय (sub-sale) अथवा बन्धक (pledge) भुगतान न पानेवाले विक्रेता के पूर्वाधिकार अथवा मार्ग-गमन में रोकने के अधिकार को निम्नलिखित रूप में प्रभावित करता है—

(i) जब तक कि विक्रेता अपनी सहमति न दे दे, बेची हुई चीज का मूल्य चुकाने से पहले क्रेता द्वारा उप-विक्रय अथवा बन्धक विक्रेता के पूर्वाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार को प्रभावित नहीं करते ।

(ii) परन्तु विक्रेता के पूर्वाधिकार एवं मार्ग-गमन में रोकने के अधिकार निष्फल हो जाते हैं, जब क्रेता माल के अधिकार-सम्बन्धी प्रलेख जारी होने अथवा बंध रूप से हस्तान्तरित कर देने के बाद अपने प्रलेख विधेय के रूप में किसी दूसरे को हस्तान्तरित कर देता तो इनको सत्श्रद्धा एवं प्रतिफल के बदले प्राप्त करता है ।

ऐसी हालत में यदि हस्तान्तरण बन्धक के रूप में किया है तो विक्रेता को पूर्वाधिकार एवं मार्ग में रोकने का अधिकार बन्धक-गृहीता के अधिकारी के अधीन ही प्रयोग में लाया जा सकता है। बन्धक किसी एडवांस (advance) को प्राप्त करने के लिए अथवा किसी पुराने ऋण को सुरक्षित करने के लिए हो सकता है।

(iii) धारा ५२ (२) भुगतान न पानेवाले विक्रेता द्वारा नियोजन के अधिकार के सम्बन्ध में है। जब क्रेता अधिकार-सम्बन्धी प्रलेख के रूप में रख कर माल को हस्तान्तरित कर देता है तो ऐसी हालत में भुगतान न हुआ विक्रेता बन्धक-गृहीता को इस बात के लिए बाध्य करने का अधिकारी है कि वह क्रेता के विरुद्ध अपनी माँग को सर्वप्रथम अपने हाथ में क्रेता को किसी दूसरे माल अथवा प्रतिभूति (securities) से सन्तुष्ट करे।

**उदाहरण—**१. बम्बई का व्यापारी X कलकत्ते के व्यापारी Y को २०० गाँठ कपास बेचता है तथा रवाना कर देता है और वह वहन-पत्र (B/L) भेज देता है। X को अभी भी मूल्य प्राप्त नहीं है और Y दिवालिया हो जाता है और जबकि माल अभी मार्ग में ही है। Y वहन-पत्र Z के नाम से अभिहस्तांकित कर देता है —X को सलाह दो।

वहन-पत्र माल का अधिकार-सम्बन्धी प्रलेख होता है। यदि इसका हस्तांतरण (transfer) प्रतिफल के बदले में है और यदि Z को उस समय Y के दिवालिया होने का ज्ञान नहीं था तो Z माल में अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है और X यद्यपि भुगतान न पाया हुआ विक्रेता है, माल को रास्ते में नहीं रोक सकता है।

२. X कुछ माल Y को बेचता है एवं प्रेषित (consign) कर देता है। X को अभी मूल्य प्राप्त नहीं हुआ कि Y दिवालिया हो जाता है और जबकि माल रास्ते में ही है कि Y वहन-पत्र को रुपये लेकर Z के लिए हस्तांतरण कर देता है जिसे यह ज्ञात है कि Y दिवालिया है। इस मामले में वहन-पत्र का हस्तांतरण सत्श्रद्धा के साथ नहीं किया गया है, इसलिए X माल को रास्ते में रोक सकता है।

३. X, २,००० रु० की कीमत का माल Y के हाथ बेचता है और प्रेषित कर देता है। Y इस माल के वहन-पत्र को Z के नाम द्वारा वहन-पत्र पर दिये गये १,००० रु० के निर्दिष्ट एडवांस की जमानत के रूप में हस्तांतरण कर देता है। Y दिवालिया हो जाता है और वह Z के १,५०० रु० के लिए, जिसमें उपर्युक्त, १,००० रु० की रकम भी सम्मिलित है, ऋणी है। Z को १,००० रु० प्रदान अथवा भुगतान किये बिना X माल को रास्ते में रोकने का अधिकारी नहीं है किन्तु वह शेष ५००, जो वहन-पत्र द्वारा रक्षित नहीं है, देने के लिए बाध्य नहीं है।

### पुनः विक्रय (Re-Sale)

धारा ५४ के अनुसार विक्रेता को तीन स्थितियों में माल का पुनः विक्रय करने का अधिकार प्राप्त है—

- (क) जब माल नष्ट होने वाला (perishable) हो;
- (ख) जब माल की पुनः विक्री का अधिकार अपने हाथ में सुरक्षित रखा गया, हो; तथा
- (ग) जब क्रेता को पुनः विक्रय की सूचना दे दी गयी हो।

पुनः विक्रय का अधिकार विक्रेता को इस सिद्धान्त पर प्राप्त है कि विक्रेता



द्वारा पूर्वाधिकार का प्रयोग करने से विक्री की प्रसंविदा समाप्त नहीं हो जाती,\* बल्कि वह इसके उपरान्त भी रहती है। पूर्वाधिकार और मार्ग में रोकने के अधिकार के द्वारा तो क्रेता को सिर्फ कीमत चुकाने के लिए मजबूर किया जा सकता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि विक्रेता हमेशा के लिए माल की कीमत पाने की प्रतीक्षा करता रहेगा। इसलिए यह ठीक है कि विक्रेता को माल पुनः विक्रय करने का अधिकार प्राप्त रहे। कुछ शर्तों के साथ विक्रेता को जो अधिकार दिया गया है वह निम्नलिखित है—

यदि माल बरबाद होने की सम्भावना है तो उसे अपने अधिकार में या मार्ग में रोक रखने से भुगतान न पाये गये विक्रेता (unpaid seller) को नफा नहीं हो सकता। इसलिए पुनः विक्रय के अधिकार को ही प्रयोग में लाना लाभप्रद होगा। पुनः विक्रय से यदि विक्रेता को लाभ होता है तो उसे वह अपने पास रख ले सकता है और यदि नुकसान होता है तो उसकी पूर्ति करने के लिए क्रेता दायी होगा। इसके अलावा, विक्रेता क्रेता पर प्रसंविदा-भंग का मुकदमा भी कर सकता है।

यदि माल बरबाद होने की सम्भावना नहीं है तो कीमत नहीं पाया हुआ विक्रेता माल का तभी पुनः विक्रय कर सकता है जब कि उसने इसकी सूचना क्रेता को दे दी है तथा इसके बाद पर्याप्त समय बीत चुकने पर भी क्रेता ने माल का मूल्य नहीं चुकाया है। इस प्रकार के पुनः विक्रेता को यदि नफा होता है तो उसे वह अपने पास रख ले सकता है और यदि नुकसान होता है तो उसकी पूर्ति क्रेता करेगा। फिर विक्रेता को यह भी अधिकार है कि प्रसंविदा को भंग करने पर क्रेता पर मुकदमा भी कर सकता है।

यदि माल के बरबाद होने की संभावना नहीं है और यदि भुगतान न पाये गये विक्रेता, क्रेता को बिना खबर दिये माल का पुनः विक्रय कर देता है तो विक्री से लाभ होने पर उसे वह लाभ क्रेता को दे देना पड़ेगा तथा नुकसान होने पर क्रेता उसकी पूर्ति करने के लिए उत्तरदायी नहीं रहेगा।

यदि प्रसंविदा के समय में ही विक्रेता साफ-साफ क्रेता को यह बतला देता है कि क्रेता द्वारा दाम नहीं चुकाये जाने पर उसे माल को पुनः विक्रय करने का अधिकार है तो वैसी हालत में वह माल पुनः विक्रय कर सकता है। इससे मूल प्रसंविदा समाप्त हो जाती है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विक्रेता का हर्जाना वसूल करने का अधिकार क्रेता पर ही रहता है।\*

**पूर्वाधिकार तथा मार्ग-गमन में रोकने के अधिकार के बीच अन्तर**  
(Distinction between Lien and Stoppage in Transit)

विक्रेता को पूर्वाधिकार तथा उसके मार्ग-गमन में रोकने के अधिकार के बीच निम्नलिखित अन्तर है—

१. विक्रेता का पूर्वाधिकार तथा मार्ग-गमन में रोकने का अधिकार ऐसे अधिकार हैं जो उसी समय उत्पन्न होते हैं जब माल का स्वामित्व (property in the goods) क्रेता के पास चला जाता है। मार्ग-गमन में रोकने का अधिकार विक्रेता का पुनः माल का कब्जा प्राप्त करने का अधिकार है जब तक कि माल मार्ग में है। यह तभी उत्पन्न होता है जबकि क्रेता दिवालिया हो जाता है; मूल्य के लिए

\* Sec 54 (1)

† Sec. 54 (2) (3) (4)

पूर्वाधिकार तभी प्रयोग में लाया जा सकता है जब मूल्य देय हो, चाहे क्रेता कर्ज चुकाने के लायक हो अथवा दिवालिया हो।

२. पूर्वाधिकार ऐसे विक्रेता का अधिकार है जिसके पास अभी भी माल का कब्जा है तथा मार्ग में रोकने के ऐसे विक्रेता का अधिकार है जो पहले ही माल का कब्जा दे चुका है। इस प्रकार, किसी ऐसे वाहक को माल की सुपुर्दगी, जिसकी नियुक्ति क्रेता ने अपने तक माल पहुँचाने के लिए एजेंट के रूप में की हो, विक्रेता को मूल्य के लिए उसके पूर्वाधिकार से वंचित कर देती है। परन्तु क्रेता की त्रुटि पर माल के पहुँचने के पहले उसको मार्ग में रोक देने के अधिकार से वंचित नहीं करती।

---

## अध्याय ५

### प्रसंविदा-भंग के लिए मुकदमा (Suits for Breach of Contract)

धाराएँ ५६-६०

#### विक्रेता के उपचार (Seller's Remedies)

क्रेता द्वारा किसी प्रसंविदा को भंग कर देने पर विक्रेता को निम्नलिखित उपचार प्राप्त हैं—

१. मूल्य के लिए मुकदमा करना (Suit for Price)—धारा ५५ के अनुसार जब विक्रेता की प्रसंविदा के अधीन माल का स्वामित्व क्रेता के पास चला गया हो और क्रेता दोषपूर्ण रीति से प्रसंविदा की शर्तों के अनुसार माल-मूल्य चुकाने में असावधानी करता हो या इनकार करता हो तो विक्रेता उस पर माल के मूल्य के लिए मुकदमा चला सकता है। फिर विक्रेता की प्रसंविदा के अधीन सुपुर्दगी का विचार किये बिना माल के मूल्य को चुकाने में असावधानी करता हो अथवा इनकार करता हो तो विक्रेता उस पर मूल्य के लिए मुकदमा चला सकता है, यदि माल का स्वामित्व अभी हस्तान्तरित नहीं हुआ हो तथा माल प्रसंविदा के लिए अलग नहीं किया गया हो। यह उपचार (remedy) विक्रेता को प्राप्त होता है।

२. हर्जाने के लिए वाद (Suit for Damages)—जहाँ क्रेता दोषपूर्ण रूप से माल स्वीकार करने अथवा उनकी कीमत चुकाने में आनाकानी करता है अथवा इनकार करता है तो विक्रेता उसपर अस्वीकृत होनेवाले हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। विक्रेता द्वारा क्रेता के विरुद्ध माल की अस्वीकृति से होनेवाले हर्जाने (प्रस्तुत वाद) के लिए मुकदमे में हर्जाना-मापक क्रेता के प्रसंविदा भंग करने से व्यापार के सिलसिले में प्रत्यक्ष एवं प्राकृतिक रूप में होनेवाली हानि होती है। [धारा ५६]

#### क्रेता के उपचार (Buyer's Remedies)

विक्रेता द्वारा विक्रय प्रसंविदा को भंग करने पर क्रेता को निम्नलिखित उपचार प्राप्त हैं—

१. हर्जाने के लिए मुकदमा (Suit for Damages)—जब विक्रेता दोषपूर्ण रूप से क्रेता को माल को सुपुर्दगी देने में आनाकानी करता है अथवा इनकार करता है तो क्रेता सुपुर्दगी न देने के लिए उसपर हर्जाना के लिए मुकदमा कर सकता है। क्रेता द्वारा विक्रेता के विरुद्ध माल की सुपुर्दगी न देने से होनेवाले हर्जाने के मुकदमा में हर्जाना का मापक प्रसंविदा-भंग होने से स्वाभाविक रूप में होनेवाली हानि होती है। [धारा ५७]

२. निर्दिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा (Suit for Specific Performance)—धारा ५८ के अनुसार यदि विक्रेता ने निश्चित (specific or ascertained) माल बा० वि० त०-१६

की सुपुर्दगी देने में प्रसंविदा-भंग की हो तो विक्रेता को उसपर मुकदमा चलाने का अधिकार है। इस तरह के मुकदमों में न्यायालय यदि उचित समझे तो वह अपनी डिक्ती द्वारा प्रसंविदा के निर्दिष्ट निष्पादन (specific performance) की आज्ञा दे सकता है। डिक्ती शर्त-रहित तथा शर्तवाली भी हो सकती है। सचमुच निर्दिष्ट निष्पादन की माँग केवल उस समय की जा सकती है जब—

- (क) माल निर्दिष्ट अथवा निश्चित हो,
- (ख) जब क्षति अपर्याप्त उपचार प्रतीत होती हो, तथा
- (ग) जब माल अनुपम (unique) तथा मूल्यवान हो।

३. आश्वासन भंग के लिए मुकदमा (Suit for Breach of Warranty)—  
जब विक्रेता कोई आश्वासन भंग करता है अथवा जब क्रेता विक्रेता द्वारा किये गये किसी प्रतिबन्ध को आश्वासन-भंग के रूप में स्वीकार कर लेता है, अथवा ऐसा मानने के लिए विवश किया जाता है तब क्रेता को माल अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है, परन्तु—

(क) विक्रेता के खिलाफ मूल्य को कम करने अथवा समाप्त करने के लिए आश्वासन-भंग की बात रख सकता है।

(ख) विक्रेता के विरुद्ध आश्वासन-भंग करने के लिए मुकदमा कर सकता है।

आश्वासन-भंग से होनेवाले हर्जाने का मापक भग से होनेवाली प्रत्यक्ष एवं स्वाभाविक हानि होती है जो स्पष्ट तथा सुपुर्द किये गये माल के मूल्य एवं उस मूल्य का अन्तर होती है जो कि उनकी होती, यदि माल आश्वासन के अनुसार होता।

### पूर्वज्ञात प्रतिज्ञा-भंग (Anticipatory Breach of Contract)

धारा ६० के मुताबिक 'जब विक्री की प्रसंविदा की कोई एक पार्टी सुपुर्दगी की तिथि के पहले ही प्रसंविदा भंग कर देती है, तो दूसरी पार्टी प्रसंविदा को जीवित (subsisting) मान कर सुपुर्दगी की तारीख तक प्रतीक्षा कर सकती है अथवा वह प्रसंविदा को खंडित (rescinded) मान कर प्रसंविदा भंग से होने वाली क्षति के लिए मुकदमा कर सकती है। जब दूसरा पक्ष भी प्रसंविदा को जीवित मानता है, तो प्रसंविदा दोनों पक्षों के लाभ के लिए जीवित मानी जाती है। ऐसी हालत में दूसरी पार्टी प्रसंविदा के अनुसार अपने कर्तव्य तथा दायित्व का पालन करती है तथा प्रसंविदा भंग करने वाली पार्टी को प्रसंविदा निष्पादित करने का अवसर प्रदान करती है और दूसरी पार्टी प्रसंविदा को जीवित मान कर सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा करती है और यदि इसी बीच माल की कीमत प्रसंविदा भंग करने वाले व्यक्ति के पक्ष में हो जाये तो वह इस अवसर से लाभ उठा सकता है। किन्तु जब दूसरा पक्ष प्रसंविदा खंडित मानना ही चुन लेता है और वह प्रसंविदा के अधीन सम्पूर्ण कर्तव्य एवं दायित्व से अलग हो जाता है और प्रसंविदा-भंग से उत्पन्न होने वाले अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

एक मुकदमे\* के फैसले के अनुसार क्षति का मापक प्रसंविदा में दिये गये मूल्य तथा जिस दिन प्रसंविदा निष्पादित होनी चाहिए, उस दिन के बाजार-मूल्य का अन्तर होती है।

## नीलाम-विक्रय (Auction Sale)

धारा ६४

नीलाम-विक्रय सार्वजनिक विक्रय को कहते हैं। धारा ६ के अनुसार नीलाम-विक्रय पर निम्नलिखित नियम लागू होते हैं—

१. जब माल अनेक हिस्सों (lots) में बेचा जाता है, तब प्रत्येक हिस्से का विक्रय एक पृथक् प्रसंविदा की विषय-वस्तु समझा जायगा।

२. विक्रय उस समय पूरा हो जाता है जब नीलाम-कर्त्ता (auctioneer) हथौड़े की चोट से, अथवा किसी अन्य प्रचलित रीति से उसका पूरा होना घोषित करे और जब तक ऐसी घोषणा नहीं कर दी जाती, प्रत्येक बोली लगाने वाला अपनी बोली वापस ले सकता है।

३. साधारण नियम है कि यदि कोई विक्रेता अथवा उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति नीलाम-विक्रय में बोली नहीं बोल सकता, जब तक कि ऐसा अधिकार स्पष्ट तरीके से सुरक्षित न कर लिया गया हो एवं विज्ञापित न कर दिया गया हो। जहाँ ऐसा अधिकार सुरक्षित एवं विज्ञापित नहीं किया गया हो और नीलाम-कर्त्ता जान-बूझ कर स्वामी की बोली स्वीकार कर लेता है तो यह व्यवहार कपटपूर्ण समझा जायगा।

४. कोई विक्रय किसी सुरक्षित (reserved) अथवा निर्धारित (upset) मूल्य के अन्तर्गत विज्ञापित किया जा सकता है। निर्धारित मूल्य (upset price) स्कोच भाषा के सुरक्षित मूल्य (reserved price) के समान है। बोली लगाने वालों के बीच आपस में प्रतियोगिता खत्म करने के मतलब से किया गया मेल अर्थात् एक-दूसरे के खिलाफ बोली न बोलना अवैध नहीं है। विक्रेता एक सुरक्षित बोली नियत करके अपनी रक्षा कर सकता है।

५. यदि विक्रेता मूल्य बढ़ाने के अभिप्राय से बनावटी बोली (pretended bid) का प्रयोग करता है, तो नीलाम क्रेता की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है।

### University Questions

1. What is a contract of sale ? Distinguish between a sale and an agreement to sell.

(विक्रय-अनुबन्ध क्या होता है ? विक्रय और विक्रय के अनुबन्ध में अन्तर बतलाइए।)

2. Explain the nature of a contract of sale of goods, bringing out clearly the distinction between a sale and an agreement to sell. To what extent may an agreement commonly known as a hire purchase agreement be regarded as a contract of sale of goods ?

(विक्रय एवं विक्रय-समझौता में अन्तर बतलाइए तथा वस्तु-विक्रय अनुबन्ध की प्रकृति का वर्णन कीजिए। 'हायर परचेज' या (क्रयावक्रय) के अनुबन्धों को किस सीमा तक वस्तु-विक्रय अनुबन्ध माना जा सकता है ?)

3. Define 'Goods'. Distinguish between specific and unascertained goods.

(‘वस्तुओं’ की परिभाषा दीजिए। विशिष्ट एवं अनिश्चित वस्तुओं का अन्तर बतलाइए।)

4. What is meant by ascertained and unascertained goods ? In a contract for the sale of goods, state when the property in goods sold and the risk passes from the seller to the buyer.

(निश्चित माल और अनिश्चित माल से क्या समझते हैं ? वस्तु-विक्रय के लिए अनुबन्ध में कब विक्रेता से क्रेता को जोखिम और बिके हुए माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण होता है, इसका वर्णन कीजिए।)

5. State the rules regarding ascertainment of price in a contract of sale.

(वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में मूल्य अभिनिश्चित करने के नियमों का वर्णन कीजिए।)

6. Distinguish between conditions and warranties in a contract for sale of goods. When can a buyer of goods treat the breach of a condition as a breach of warranty ?

(वस्तु-विक्रय के लिए प्रसविदा में शर्त और आश्वासन में अन्तर दिखलाइए। माल का क्रेता कब शर्त-भंग को आश्वासन-भंग मान सकता है ?)

7. Distinguish between a 'condition' and a 'warranty'. What conditions and warranties are implied in a contract of sale ?

(शर्त एवं आश्वासन में अन्तर बतलाइये। वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में कौन-सी शर्तें एवं आश्वासन विवक्षित समझे जाते हैं ?)

8. What is meant by 'sale by sample' ? What are the conditions implied in such a sale ?

(‘नमूने द्वारा विक्रय’ का क्या अर्थ होता है ? ऐसे विक्रय-अनुबन्ध में कौन-सी विवक्षित शर्तें होती हैं ?)

9. What is the rule of 'Caveat Emptor' and how far is it modified by implied condition ?

(‘क्रेता की सावधानी’ का नियम क्या है और गभित शर्तों द्वारा इसमें कैसे सुधार लाया गया है ?)

10. What do you understand by rule of 'Caveat Emptor' ? Are there exceptions to its application in a contract of sale of goods ?

(‘क्रेता की सावधानी के नियम’ से आप क्या समझते हैं ? वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में इस नियम के लागू होने का क्या कोई अपवाद है ?)

11. "In a contract for the sale of goods, there is no implied condition or warranty as to the quality of the goods or their fitness for any purpose." Comment.

(“वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में वस्तुओं की किसम अथवा किसी विशेष उद्देश्य के लिए उनकी उपयुक्तता की कोई विवक्षित शर्त अथवा आश्वासन नहीं होता है”— स्पष्ट कीजिए।)

12. If a person sells an article, be there by warrants that it is fit for some purpose, but he does not warrant that it is fit for any particular purpose. State the various qualifications subject to which this proposition should be received.

(जब किसी एक व्यक्ति द्वारा कोई वस्तु बेची जाती है तब वह यह आश्वासन देता है कि वह वस्तु किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त है, परन्तु वह यह आश्वासन नहीं देता है कि किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी उपयुक्त होगी— इस प्रस्ताव को जिन विशेष योग्यताओं के साथ मान्यता दी जा सकती है उनका वर्णन कीजिए।)

13. Worst cloth of quality equal to sample was sold to tailors who could not stitch it into coats owing to some defects in its texture. The buyers had examined the cloth before effecting the purchase. Are they entitled to damages?

(कुछ दर्जियों को नमूने के अनुसार ऊनी कपड़ा बेचा गया था, परन्तु कपड़े की बनावट में कुछ दोष होने के कारण वे उसका कोट नहीं सी सके। क्रेताओं ने कपड़ा खरीदने के पहले उस कपड़े की भली-भाँति जाँच कर ली थी। क्या क्रेताओं को क्षतिपूर्ति के लिए प्रतिकार या हर्जाना पाने का अधिकार है?)

14. In a contract for the sale of goods, state when (i) the property, (ii) the risk, in the goods sold passes from the seller to the buyer.

(वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में विक्री की गयी वस्तुओं की (i) सम्पत्ति एवं (ii) जोखिम विक्रेता से क्रेता को कब हस्तांतरित होती है?)

15. What are the rules for ascertaining the intention of the parties as to time when the property in the specific goods is to pass to the buyer?

(विनिर्दिष्ट वस्तुओं से सम्बद्ध सम्पत्ति-अधिकारों के हस्तांतरण का समय निर्धारित करने का आशय जानने के लिए किन नियमों का सहारा लिया जाता है?)

16. What are unascertained goods? When does the property pass in a contract for the sale of such goods?

(अनिश्चित वस्तुएँ किसको कहते हैं? ऐसी वस्तुओं के विक्रय में विक्रेता से क्रेता को सम्पत्ति-अधिकारों का हस्तांतरण किस समय किया जाता है?)

17. "No seller of goods can give the buyer of goods a better title to the goods than he himself has." Explain. Are there any exceptions to the above? If so, what are they?

(“कोई भी वस्तु-विक्रेता वस्तुओं के क्रेता को वस्तुओं पर अपने से श्रेष्ठ स्वत्व-अधिकार नहीं दे सकता है।” स्पष्ट कीजिए। इसके कुछ अपवाद हैं? अगर हैं तो बतलाइए।)

18. "No one can give what one has not." How does this maxim apply in case of sale of goods? Discuss.

(“कोई भी व्यक्ति उन अधिकारों का हस्तांतरण नहीं कर सकता है जो उसे प्राप्त नहीं हैं।” वस्तु-विक्रय सन्निधय में इस नियम के महत्व एवं प्रवर्तन-क्षेत्र का वर्णन कीजिए।)

19. Explain the term 'delivery' as used in a contract of sale and state the rules regarding valid delivery of goods.

(वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में 'डेलीभरी' शब्द का अर्थ बतलाइए। वस्तुओं के डेलीभरी या सुपुर्दगी से सम्बद्ध नियमों का वर्णन कीजिए।)

20. Explain the circumstances under which a buyer can get a better title to the goods than that of the seller.

(उन परिस्थितियों को समझाकर लिखिए जिनके अन्तर्गत क्रेता माल के सम्बन्ध में विक्रेता से अच्छा अधिकार प्राप्त कर सकता है।)

21. "Nemo dat Quod non habet." Explain this maxim and state the exceptions to the rule embodied in it.

(“कोई भी व्यक्ति उस चीज को नहीं दे सकता है जो उसके अधिकार में नहीं है।” इस कथन की व्याख्या कीजिए और इस नियम के अपवादों का वर्णन कीजिए।)

22. Who is an 'Unpaid seller'? What are the rights of an unpaid seller?

(‘अदत्त विक्रेता’ कौन है? उसके अधिकारों का वर्णन कीजिए।)

23. Who is an unpaid seller of goods and what are his rights against the goods? Has he any remedy against the buyer personally?

(माल का अदत्त विक्रेता कौन है और माल के विरुद्ध उसके क्या अधिकार हैं? क्या उसे क्रेता के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से कोई उपचार प्राप्त है?)

24. Briefly explain the rights of an unpaid seller of goods. Under what circumstances can he exercise a right of resale?

(संक्षेप में अदत्त विक्रेता के अधिकारों की व्याख्या कीजिए। किन परिस्थितियों में वह पुनः विक्रय के अधिकार का प्रयोग कर सकता है?)

25. What are the rights of unpaid seller with regard to goods in transit? When does a transit come to an end?

(माल के मार्ग में होने पर अदत्त विक्रेता के क्या अधिकार होते हैं? माल का मार्ग में होना कब समाप्त हो जाता है?)

26. Is an unpaid seller of goods who is in possession of them entitled to retain possession? If so, under what circumstances? When does he lose his lien over them?

(क्या एक माल का अदत्त विक्रेता, जिसके अधिकार में माल है, माल के अधिकार को रोककर रखने का अधिकारी है? यदि है, तो किन परिस्थितियों में? कब वह माल पर अपने ग्रहणाधिकार खो देता है?)

27. What remedies are open to a purchaser on breach of a condition and a warranty?

(शर्त और आश्वासन भंग होने पर क्रेता को कौन-कौन से उपचार प्राप्त होते हैं?)

28. State the rules regarding 'Auction sale'. Under what circumstances, the auctioneer can refuse to sell goods after having advertised to sell goods by auction or after having accepted the highest bid?

(‘नीलामी विक्रय’ से सम्बद्ध नियमों का वर्णन कीजिए। किन परिस्थितियों में नीलामकर्ता वस्तुओं को नीलाम द्वारा विक्रय करने के विज्ञापन किये जाने अथवा सबसे ऊँची बोली स्वीकार करने के पश्चात् भी माल को बेचने से इनकार कर सकता है?)



**29. Write short notes on the following—**

(i) Sale and Hire-purchase agreement, (ii) Ascertained goods, (iii) Unascertained goods, (iv) Conditions and warranties, (v) Rule of caveat emptor, (vi) Implied warranties, (vii) Market overt, (viii) Seller's right of lien, (ix) Right of stoppage in transit, (x) Right of resale, (xi) Auction and Auctioneer.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) विक्रय और भाड़े पर खरीद के समझौते, (ii) निश्चित माल, (iii) अनिश्चित माल, (iv) शर्तें और आश्वासन, (v) क्रेता की सावधानी का नियम, (vi) गभित आश्वासन, (vii) खुला बाजार, (viii) विक्रेता का ग्रहणाधिकार, (ix) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार, (x) पुनः विक्रय का अधिकार, (xi) नीलाम और नीलामकर्त्ता ।]

**30. Discuss the following Problems—**

(i) A, purchases a motorcar from B, which he uses for some month. It turns out that the car sold by B to A was a stolen one and has to be restored to the rightful owner. A brings an action against B for the return of the price. Will he succeed ?

[Ans. धारा १४—अ के अनुसार A, B पर मूल्य वापस करने के लिए दावा करता है । A का दावा सफल होगा, क्योंकि B द्वारा अधिकार-सम्बन्धी गभित शर्त पूरी नहीं की गयी है ।]

(ii) A, a farmer, simply exhibits oats in his farm. B buys the oats in the belief that they are old oats. In fact, they are not old oats. Is the contract enforceable ?

[Ans. इसमें 'क्रेता की सावधानी' का नियम लागू होता है । यहाँ पर A इसके लिए दायी नहीं है और अनुबन्ध प्रवर्तनीय है ।]

(iii) A sale was made of a second hand reaping machine which the buyer had never seen but the seller had stated it to be almost new and used very little, but the machine was found to be old and repaired. What is buyer's remedy ?

[Ans. धारा १५ के अनुसार खरीदार मशीन को अस्वीकार कर सकता है, क्योंकि विक्रेता ने एक गभित शर्त भंग की है ।]

(iv) A contracts to sell B foreign refined rape-oil warranted equal to sample. The oil when delivered agrees with the sample but is not 'foreign refined rape-oil'. Has B any remedy ?

Ans. धारा १५ के अनुसार B प्रसंविदा की गभित शर्त के पूरा नहीं होने की वजह से माल को अस्वीकार कर सकता है, क्योंकि माल हालाँकि नमूने से मेल खाता है लेकिन वर्णन के अनुसार नहीं है ।]

(v) A placed an order with B for the latter's smoke consuming furnace to fit up with the former's brewing machine. The furnace was patented but it proved useless for the purpose of brewery. Has the buyer any remedy against the seller ?

[Ans. धारा १६ (१) के अनुसार A यंत्र की उपयुक्तता के लिए B के प्रति दायी नहीं होगा ।]

(vi) Customer B, says "Can you sell me a material for blackout curtains ?" A sells one of his current lines made by manufacturer

C. The curtains turn out to be insufficiently opaque and B has to scrap them. Has B any right of action against A and or C ?

[Ans. धारा १६ (१) के अनुसार B को A के खिलाफ अधिकार है और कपड़ा उसे वापस कर सकता है ।]

(vii) A buys a tin of canned meat from a grocer's shop. He and his family eat the contents of the tin and in consequence suffer from ptomaine poisoning. Discuss the legal position of the parties.

[Ans. धारा १६ (२) के अनुसार A माल बेचनेवाले से कीमत वापस पाने का अधिकारी है । इसके अलावा, वह उसके निर्माता (manufacturer) पर हानि-पूर्ति के लिए मुकदमा कर सकता है ।]

(viii) A enters into a contract to supply 10 Tons of Turpentine oil to B as per sample supplied to the buyer. The oil supplied is found to be adulterated. Discuss the right of the buyer.

[Ans. धारा १७ के अनुसार क्रेता प्रसविदा को भंग कर सकता है । अगर उसने माल प्राप्त कर लिया है तब माल वापस कर सकता है, और अगर उसने मूल्य चुका दिया है तब मूल्य वापस ले सकता है ।]

(ix) There was a sale by sample of mixed worsted coatings to be in quality and weight equal to the sample; the goods owing to a latent defect would not stand ordinary wear when made up into coats and were therefore not merchantable. The same defect appeared in the sample but could not be detected on reasonable examination. Is the buyer entitled to recover damages ? Give reasons.

[Ans. धारा १७ के अनुसार क्रेता प्रसविदा को भंग कर देने का अधिकार रखता है और विक्रेता से हानि-पूर्ति पाने का भी अधिकार रखता है ।]

(x) A contracts to buy of B his cow for Rs. 500, the cow to be delivered to A on a stated day, and the price to be paid on another stated day. Before the price could be paid or delivery made, the cow dies. Who will bear the loss ?

[Ans. धारा २० के अनुसार इसमें B द्वारा स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय हो जाता है जब प्रसविदा की गयी है और साथ ही साथ जोखिम भी A की हो जाती है । गाय के मर जाने पर B, A से मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी है ।]

(xi) A sells to B 25 Tons of coal out of his stock of 50 Tons. The buyer is to arrange transport. The seller separated approximately half of his stock for the purpose of delivery to the buyer. The buyer removes in his truck only 15 Tons of which is weighed and delivered to him. At night a fire breaks out in the yard and the entire quantity of coal stock there is destroyed. On whom will the loss in respect of the undelivered 10 Tons of coal fall ?

[Ans. धारा २२ के अनुसार खरीदनेवाला व्यक्ति अपने ट्रक से सिर्फ १५ टन कोयला ले जाता है जो कि विक्रेता द्वारा तौल दिया जाता है और B को सुपुर्द कर दिया जाता है । बाकी १० टन कोयले के स्वामित्व एवं जोखिम का हस्तान्तरण B को उस समय तक न होगा जब तक कि वह भी न तौल दिया जाय और उसकी सूचना खरीदने वाले को न हो जाय । इसलिए आग लग जाने के कारण हुई हानि A को ही होगी, B को नहीं ।]

(xii) B agrees with A to buy of him 100 maunds of rice out of larger quantity in A's godown. It is agreed that B shall send sacks for the rice and that A shall put the rice into them. B does so and A puts 100 maunds of rice into the sacks and informs B of the same. But before B could take delivery of the goods they are burnt by fire. Can A recover the price from B ?

[Ans. धारा २३ के अनुसार A, B से चावल की कीमत पाने का अधिकारी है । आग लगने से चावल बरबाद हो जाने का दायित्व A का नहीं रहता ।]

(xiii) A in Calcutta writes to B at Patna to send to A, a packet of a patent medicine by parcel post. B accordingly sends the packet by parcel post duly addressed to A. The parcel is lost on the way. Can B recover its price from A ?

[Ans. धारा २३ के अनुसार B, A से मूल्य पाने का अधिकारी है ।]

(xiv) A delivered his horse to B on trial for 8 days with a condition that if found suitable for B's purpose it shall become his for Rs. 500. The horse dies within 8 days. Is B liable for the price ? Would it make any difference in your answer if the horse had died due to B's negligence ?

[Ans. धारा २४ के अनुसार यह जोखिम A की होगी । B कीमत के लिए दायी नहीं है । इसके विपरीत, अगर घोड़े की मृत्यु B की लापरवाही की वजह से हुई है तब हानि B की होगी और A को कीमत पाने का अधिकार रहेगा ।]

(xv) A delivers some jewellery to B on approval without specifying any time for its return in case of non-acceptance. B allows the jewellery to remain with himself without signifying its approval or acceptance. After a month a burglary takes place in B's house and the jewellery is stolen. Can A sue B for the price of the jewellery ?

[Ans. धारा २४ के अनुसार A गहने की कीमत के लिए B पर मुकदमा करने का अधिकार रखता है क्योंकि उचित समय बीत जाने के कारण माल का स्वामित्व B को हस्तान्तरित हो गया और स्वामित्व के हस्तान्तरण के साथ ही साथ जोखिम का हस्तान्तरण भी B को हो गया ।]

(xvi) X, a thief, sells to Ram goods stolen from Shyam. Does Ram acquire a good title to the goods ? Can Shyam claim the goods from Ram ?

[Ans. धारा २७ के अनुसार इस प्रश्न में X का अधिकार चोर के रूप में दूषित है, और इसलिए क्रतु के रूप में राम का अधिकार भी दूषित होगा और श्याम जो कि सचमुच में मालिक है, राम से वह माल वापस ले सकता है ।]

Or, Sale of a horse took place at a public auction. Unknown to the auctioneer and the buyer the horse had been stolen. Does the buyer obtain any title against the true owner ?

[Ans. इसका उत्तर ठीक ऊपर की तरह है ।]

(xvii) A sends some goods to B for 'sale or return'. B keeps the goods and afterwards pledges them to C. B fails to pay the price. Can A recover the goods from C ?

[Ans. धारा २७ के अनुसार A, C से माल वापस ले सकता है, क्योंकि सम्पत्ति का हस्तान्तरण B को हो चुका है, इसलिए माल पर उसका अधिकार दूषित नहीं है ।]

(xviii) A sells some piece of goods to B on three months credit and afterwards the R/R together with a Bill of Exchange payable after 3 months to B. B retains the R/R but returns the B/E without accepting it. B afterwards sells the goods to C. Discuss the rights of C and A.

[Ans. धारा २७ के अनुसार A, C से माल ले सकता है और C, B से उसका मूल्य प्राप्त करने का अधिकार रखता है।]

(xix) A consigned a quantity of cocoa to B by railway and sent the consignment notes to him. The price at the time had not been agreed. Before any agreement was arrived at as to the price, B sold the cocoa to C and handed to him the consignment notes. Can A dispute B's title to cocoa?

[Ans. धारा २७ के अनुसार A यह नहीं कह सकता कि B को माल बेचने का अधिकार नहीं था।]

(xx) B, falsely representing himself to be a wellknown business man of Bombay, persuades a jeweller, A to give him a diamond ring on approval, the price to be paid if the ring is approved. B sells the ring for a consideration to C who afterwards sell it at a profit to D. Discuss the right of D.

Or, A, by a misrepresentation, induces B to sell and deliver to him a horse. A sells the horse to C before B has rescinded the contract. Discuss the rights of the parties. Who has the title to the horse, A or C?

[Ans. धारा २७ के अपवाद के अनुसार, जिसका वर्णन धारा १९ में दिया गया है, A D के आभूषण नहीं ले सकता है। दूसरे भाग का भी उत्तर पहले के समान है।]

(xxi) A sells to B five specific casks of oil. The oil is in the warehouse of A. B sells the 5 casks to C. A receives warehouse rent for them from C. Is this a delivery of oil to C?

[Ans. यह सवाल 'सुपुर्दगी' से सम्बद्ध है। इसमें C को रचनात्मक सुपुर्दगी होना माना जायगा।]

(xxii) A of Agra orders certain specific goods from B of Bombay. B sends some goods, not ordered, along with them. What should A do?

[Ans. धारा ३७ के अनुसार A उस माल को स्वीकार कर सकता है जो कि प्रसविदा के अनुसार है तथा शेष को अस्वीकार कर सकता है, अथवा सम्पूर्ण माल को अस्वीकार कर सकता है।]

(xxiii) On 1-7-'55 A sells goods to B for Rs. 10,000 for which B pays Rs. 5,000 in cash and executes a promissory note for the balance. On 15-7-'55 while the goods are still in A's possession, B is declared insolvent. What are the rights of A in respect of the goods?

[Ans. धारा ४६ के अनुसार A का माल पर विशेषाधिकार है और वह माल को किसी निर्दिष्ट दशाओं के पूरा होने पर पुनः बेच सकता है।]

**भारतीय साझेदारी सन्धियम—1932**

**Indian Partnership Act**



## अध्याय १

### विषय-प्रवेश (Introduction)

साझेदारी से सम्बद्ध नियम भारतीय साझेदारी अधिनियम, १९३२ के अन्तर लिखे गये हैं। इस अधिनियम के बनाने के पहले साझेदारी से सम्बद्ध नियम भारतीय प्रसंविदा विधान, १८७२ की धारा २३९ से २६६ के अन्तर वर्णित थे। साझेदारी सन्निधिम इस मुख्य सिद्धान्त पर आधारित है कि जहाँ तक हो सके, साझेदारों को अपने मामले आपस में ही निबटाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। भारतीय साझेदारी अधिनियम का उद्देश्य साझेदारी से सम्बद्ध नियमों की व्यवस्था करना एवं उनमें संशोधन करना है; किन्तु यह परिपूर्ण (exhaustive) नहीं है। दूसरे अधिनियम अभी भी बदस्तूर (Mutatis Mutandis) लागू होते रहते हैं। [धारा ४७]

#### परिभाषा

धारा ४ के अनुसार—“साझेदारी उन व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को कहते हैं जिन्होंने एक ऐसे व्यापार से लाभ को आपस में बाँट लेना स्वीकार किया है, जो उन सभी अथवा उनमें से किसी भी व्यक्ति द्वारा सबके लिए किया जाता है।”

[“Partnership is the relation between persons who have agreed to share the profits of a business carried on by all or any of them acting for all.”]

वे सब व्यक्ति जिन्होंने एक-दूसरे के साथ साझेदारी करायी हो, व्यक्तिगत रूप से साझेदार एवं सामूहिक रूप से फर्म (Firm) कहलाते हैं और जिस नाम में वे कारबार करते हैं, ‘फर्म का नाम’ कहलाता है।

साझेदारी के आवश्यक लक्षण (Essential Characteristics of Partnership)— उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार साझेदारी में निम्नलिखित विशेष बातें पायी जाती हैं—

१. दो या अधिक व्यक्तियों के बीच लाभ के लिए कोई कारबार करने की एक प्रसंविदा होनी चाहिए (There must be an agreement between two or more persons to do a business for gain.) ।

(क) व्यक्ति— साझेदारी के लिए एक-से अधिक व्यक्तियों का होना अति-आवश्यक है।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति स्वयं अपने ही साथ प्रसंविदा नहीं कर सकता उसी प्रकार कोई व्यक्ति स्वयं अपने ही साथ साझेदार भी नहीं हो सकता।

इसलिए इन हालतों में जबकि किसी साझेदारी में साझेदारों की संख्या मरने पर अथवा दिवालिया घोषित कर दिये जाने पर घटकर एक हो जाती है तब फर्म अनिवार्य रूप से समाप्त हो जाता है (धारा ४१)। भारतीय साझेदारी अधिनियम

द्वारा ऐसे व्यक्तियों की अधिकतम संख्या जो कि साझेदारी बना सकते हैं, निर्धारित नहीं है; किन्तु भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा ४ के मुताबिक, यदि किसी बैंक के कारबार में साझेदारों की संख्या १० से अधिक है अथवा अन्य प्रकार के कारबार की दशा में उक्त संख्या २० से अधिक है, तो ऐसी साझेदारी को कम्पनी के रूप में रजिस्ट्री करानी चाहिए।

(ख) समझौता (Agreement)— सभी साझेदारों में व्यापार-सम्बन्धी कोई समझौता हो तथा सभी साझेदार व्यापार करने के लिए सहमत हों। दूसरे शब्दों में, साझेदारी किसी लिखित या गभित प्रसंविदा के फलस्वरूप ही हो सकती है। समस्त साझेदारों द्वारा एक ऐसी प्रसंविदा करना अनिवार्य होता है। व्यक्ति प्राकृतिक (natural) अथवा वैधानिक (legal) हो सकता है। सीमित दायित्व वाली कम्पनी अथवा किसी संयुक्त हिन्दू परिवार (Joint Hindu Family) के व्यक्ति भी साझेदार बन सकते हैं। इस तरह, साझेदारी की उत्पत्ति प्रसंविदा द्वारा होती है, न कि राज्य-नियम द्वारा। प्रत्येक साझेदारी-प्रसंविदा में प्रसंविदा के सभी आवश्यक गुण या लक्षण होने चाहिए।

२. संविदा किसी व्यापार के लाभ को बाँटने के लिए होनी चाहिए (The agreement must be to share the profit of business)— लाभ (profit) शब्द की परिभाषा इस अधिनियम में नहीं दी गयी है। किन्तु इसका मतलब खर्च के बाद शेष आधिव्यय अर्थात् शुद्ध-लाभ (net profit) से है। व्यापार शब्द में पेशे, व्यवसाय एवं कारबार सभी आते हैं।

सह-स्वामित्व— सह-स्वामियों के बीच साझेदारी कायम नहीं होती।

व्यापार जो कुछ भी हो उसे वैधानिक होना चाहिए। लाभ में भाग लेने की संविदा आवश्यक है, किन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि हानि में भाग लेने की संविदा आवश्यक नहीं है। साझेदार आपस में ऐसा अनुबन्ध कर सकते हैं कि उनमें से कोई एक या अधिक हानियों के लिए दायी नहीं होगा। जब हानि में भाग लेने के विषय में कुछ भी न दिया गया हो तो यह साझेदारी संविदा में गभित माना जाता है।

उदाहरण—(i) X और Y चावल का २०० बोरा खरीदते हैं जिनको वे अपने संयुक्त खाते में बेचने की प्रसंविदा करते हैं। X और Y इस व्यापार में साझे हैं।

(ii) X और Y एक मकान बनाने में इकट्ठा काम करने की संविदा करते हैं। किन्तु ऐसा तय करते हैं कि X समूचा लाभ ले लेगा और Y को मजदूरी देगा। X और Y साझेदार नहीं हैं।

(iii) X एक सुनार (Goldsmith) Y के साथ संविदा करता है, जिसके मुताबिक सोना खरीद कर Y को देता है, जिसे Y तैयार करेगा एवं बेचेगा और यह कि दोनों ही इस प्रकार होने वाले लाभ अथवा हानि में भागी होंगे। X और Y साझेदार कहलायेंगे।

(iv) X और Y चावल का ५०० बोरा खरीदते हैं और उन्हें आपस में बाँट लेते हैं। X और Y साझेदार नहीं हैं।

(v) X और Y एक मकान के सह-स्वामी हैं जो कि किराये पर लगाया हुआ है। X और Y शुद्ध लाभ आपस में बाँट लेते हैं। X और Y साझेदार नहीं हैं, चूँकि मकान किराये पर लगाना कारबार नहीं। किन्तु यदि X और Y मकान को होटल के समान इस्तेमाल में लायें जिसका संचालन स्वयं उनके द्वारा अथवा उनके



एजेंट द्वारा उनके लाभ के लिए हो तो होटल चलाने के व्यापार में वे साझेदार कहलायेंगे।

३. व्यापार का संचालन सभी व्यक्तियों द्वारा अथवा सबकी ओर से कार्य करते हुए किसी एक व्यक्ति द्वारा होना चाहिए (The business must be carried on by all or any of the persons acting for all)—साझेदारी का मूल सिद्धान्त यह है कि साझेदार फर्म का काम करते हुए एजेंट (agent) भी होने हैं अथवा उसके मालिक भी। कोई व्यक्ति साझेदार है अथवा नहीं, करीब-करीब सभी मामलों में इस बात पर निर्भर करता है कि उसे उन व्यक्तियों की ओर से, जो कि साझेदार हैं, कार्य करने का अधिकार प्राप्त है अथवा नहीं तथा उन साझेदारों को भी उसकी ओर से कार्य करने का अधिकार प्राप्त है या नहीं। इस प्रकार, अधिनियम के अनुसार प्रत्येक साझेदार साझेदारी का एजेंट होता है और वह परिणामस्वरूप दूसरे साझेदारों को अपने उन सभी कार्यों के लिए बद्ध कर सकता है जो साझेदारी के क्षेत्र तथा उद्देश्यों के भीतर हों।

उदाहरण—X, Y तथा Z साझेदारों के रूप में कारबार करते हैं। P एक अन्य व्यक्ति Z द्वारा फर्म में कुछ व्यवहार करता है। Z और P के बीच Z एक स्वामी के रूप में है। Z, X तथा Y का एजेंट भी है। इसलिए X, Y और Z सभी P पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं, या उन पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। दूसरे, चूँकि इस व्यवहार में Z, X तथा Y का एजेंट भी है, वह उनको हिसाब देने के लिए उत्तरदायी है।

साझेदारी की विद्यमानता का कैसे निर्णय किया जाता है? (How existence of Partnership is determined?)

कभी-कभी दो या दो से अधिक व्यक्तियों के द्वारा सामूहिक व्यवसाय होते देख कर यह मताना कठिन हो जाता है कि उनके बीच साझेदारी है या नहीं। यह निश्चित करने के लिए कि अमुक सामूहिक व्यवसाय फर्म है या नहीं, अमुक व्यक्ति साझेदार है या नहीं, सभी प्रासंगिक बातों (relevant facts) पर ध्यान देना होगा कि उनके बीच किस प्रकार का सम्बन्ध है। यदि कोई दो से अधिक व्यक्ति किसी सम्पत्ति पर सामूहिक अधिकार या हित रखें तथा उससे उपाजित लाभ का कुछ अंश प्राप्त करें तो इससे वे व्यापार के साझेदार नहीं बन जाते। अतः व्यापार का ऋणदाता, कर्मचारी एजेंट, मृतक साझेदार की विधवा स्त्री या लड़का इत्यादि किसी व्यापार में कुछ लाभ पायें तो इससे वे उसके साझेदार नहीं बनते। हालाँकि लाभ-विभाजन के अधिकार का होना एक सच्ची पहचान है कि साझेदारी है या नहीं, ता भी दान्तविक रूप से यह आपस के उद्देश्यों यथा प्रसंविदाओं (intentions of contract) से ही जाना जा सकता है।\*

उदाहरण—X, Y और Z मिलकर खाने के सामानों की एक दुकान गरीबों के हाथ लागत मूल्य (cost price) पर माल बेचने के लिए खोलते हैं, अतः ऐसे कारबार से लाभ नहीं मिलेगा। इसलिए यह व्यवसाय साझेदारी नहीं है।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, साझेदारी के लिए नफा पैदा करना तथा उसका आपस में विभाजन करना जरूरी है, उसी प्रकार यह भी जरूरी है कि प्रत्येक

साझेदार साझेदारी के हिस्से के लिए अपनी तरफ से पूँजी लगाये, फिर जो व्यापार में नुकसान हो उसे भी अपने हिस्से के अनुसार सहन करे। निम्नलिखित उदाहरण से यह साफ जाहिर होगा कि अमुक व्यापार साझेदारी है या नहीं—

**उदाहरण—१.** X ने साझेदारी फर्म के साथ एक प्रसंविदा की जिसके अनुसार कुछ रुपये एडवॉन्स करने के प्रतिफल में उसे साझेदारी कारबार के शुद्ध लाभ पर कुछ कमीशन दिया जाना निर्णय हुआ एवं उसकी रक्षा के लिए उसे व्यापार पर नियन्त्रण रखने के लिए काफी अधिकार दिये गये, किन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार के अधिकार नहीं दिये गये। यह फैसला था कि प्रसंविदा साझेदारी की नहीं थी, इसलिए ऋणदाता के बीच ऋण एवं जमानत का अधिकार न रहा।

२. X अपने नाम में किसी कम्पनी की ओर से ठेले (wagon) लादने का एवं खाली करने का (loading and unloading) का कारबार करता है। X, Y को व्यापार-संचालन करने के लिए बहाल करता है। उनमें ऐसा निर्णय होता है कि Y को शुद्ध लाभ में ले 5/8 भाग पुरस्कार के रूप में मिलेगा, X को 3/8 भाग मिलेगा; किन्तु वह हानि के लिए जिम्मेदार नहीं होगा। यह साझेदारी नहीं है। यह प्रधान एवं एजेंट का सम्बन्ध है।

### साझेदारी एवं फर्म में अन्तर (Distinction between Partnership and Firm)

साझेदारी ऐसे व्यक्तियों के बीच आपस का सम्बन्ध है जिन्होंने किसी व्यापार को लाभपूर्वक चलाने तथा उसके लाभ को ऐसी परिस्थितियों के बीच बाँट लेने की संविदा कर ली हो कि प्रत्येक साझेदार दूसरे का एजेंट जान पड़े। दूसरी तरफ 'फर्म' शब्द का मतलब किसी सम्बन्ध से नहीं है, बल्कि इसका मतलब उन व्यक्तियों से होता है, जो फर्म का व्यापार एक-दूसरे के एजेंट के रूप में चलाते हैं तथा उसके लाभ में भाग लेते हैं।

व्यापारिक दृष्टिकोण से फर्म अपने सदस्यों से पृथक् होती है। फर्म की सम्पत्ति पर अधिकार हो सकता है, किन्तु यह उनकी नहीं होती। इसके अलग बही-खाते होते हैं और यह उनका देनदार अथवा साझेदार भी हो सकता है। परन्तु सन्निधिम के मुताबिक फर्म की कोई वैधानिक सत्ता (legal entity) नहीं होती। फर्म तो केवल वैसे व्यक्तियों का एक सामूहिक नाम है जो साझेदारी की प्रसंविदा करते हैं।

### फर्म का नाम (Firm's Name)

साझेदारी में जो लोग शामिल होते हैं उन्हें साझेदार कहते हैं। उनके सामूहिक रूप को फर्म कहा जाता है। जिस नाम से साझेदारी का कारबार होता है वह फर्म का नाम (Firm's name) है। फर्म का नाम चुनने के पहले इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उस नाम का पहले से कोई और फर्म नहीं हो। इसके अलावा, फर्म में निम्नलिखित शब्द नहीं रहना चाहिए—

राजपद (crown), सम्राट (emperor), सम्राज्ञी (empress), साम्राज्य (empire), राजा (king), रानी (queen), राजन्य (imperial), राजस्व (royal) तथा अन्य कोई ऐसा शब्द जिसे राज्य की सरकार या केन्द्रीय सरकार ने घोषित किया हो।

## साझेदारी तथा सह-स्वामित्व में अन्तर (Distinction between Partnership and Co-ownership)

साझेदारी तथा सह-स्वामित्व दोनों में एक व्यापार के कई स्वामी होते हैं, परन्तु दोनों में कुछ भिन्नता है।

१. सविदा (Agreement)—साझेदारी कायम करने के लिए साझेदारों में किसी प्रकार की सविदा का होना जरूरी है तथा सह-स्वामित्व की स्थापना सदैव संविदा से नहीं होती। उदाहरणतः किसी पैतृक सम्पत्ति के कई उत्तराधिकारियों के बीच आपस में कुछ संविदा नहीं रहने पर भी वे उस सम्पत्ति के सह-स्वामी कहे जाते हैं।

२. लाभ (Profit)—साझेदारी का उद्देश्य सदैव लाभ प्राप्त करना तथा उसे साझेदारों में विभाजित करना है, परन्तु सह-स्वामित्व में लाभ का होना जरूरी नहीं है।

३. सदस्यों की संख्या (Number of members)—सह-स्वामित्व में सदस्यों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता है परन्तु साझेदारी में सदस्यों की संख्या बीस तक निश्चित कर दी गयी है।

४. हिस्से (Share)—साझेदारी के साझेदार अपने हिस्से (interest in business) दूसरे साझेदारों की अनुमति बिना न बेच सकता है, न अपने हिस्से को किसी दूसरे को हस्तान्तरित (transfer) ही कर सकता है पर सह-स्वामित्व में स्वामी को ऐसा करने का पूर्ण अधिकार रहता है।

५. एजेंट (Agent)—साझेदारी में एक साझेदार दूसरे साझेदारों का एजेंट होता है। किन्तु सह-स्वामित्व में एक सह-स्वामी दूसरे सह-स्वामियों का एजेंट नहीं होता।

६. पूर्वाधिकार (Lien)—एक साझेदार का दूसरे साझेदारों का एजेंट होने के नाते साझेदारी की समाप्ति पर पूर्वाधिकार (lien) होता है, किन्तु सह-स्वामी की सम्पत्ति पर व्यय अथवा सामान्य ऋण के लिए कोई पूर्वाधिकार नहीं होता।

## फर्म तथा कम्पनी में अन्तर (Distinction between Firm and Company)

१. स्थापना (Establishment)—कम्पनी की स्थापना भारतीय कम्पनी अधिनियम, राजपत्र तथा विशेष अधिनियम द्वारा होती है, किन्तु साझेदारी की स्थापना एक साधारण पारस्परिक सविदा द्वारा होती है।

२. न्यूनतम संख्या (Minimum number)—साझेदारी में साझेदारों की न्यूनतम संख्या दो या अधिक-से-अधिक २० होती है। यदि किसी बैंक का व्यापार रहता है तो साझेदारों की संख्या १० तक ही सीमित रहती है, किन्तु प्राइवेट कम्पनी में अंशधारियों (share-holders) की न्यूनतम संख्या २ और अधिक-से-अधिक ५० रहती है। सार्वजनिक कम्पनी (public company) में न्यूनतम संख्या ७ रहती है। इसमें अधिक से अधिक संख्या कम्पनी के अंशों की संख्या पर निर्भर रहती है।

३. दायित्व (Liability)—साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित रहता है। हानि अथवा ऋण होने पर प्रत्येक साझेदार केवल अपनी पूंजी तक ही नहीं, बल्कि अपनी निजी सम्पत्ति से हानि की पूर्ति के लिए व्यक्तिगत रूप से बाध्य रहता है। किन्तु, कम्पनी में सदस्यों का उत्तरदायित्व उनके अंशों के मूल्य तक ही सीमित रहता है।

४. **हित का हस्तान्तरण (Transfer of interest)**—साझेदारी में कोई साझेदार अपने हित को किसी सह-साझेदार अथवा किसी अन्य व्यक्ति के हाथ नहीं बेच सकता है, न किसी के नाम हस्तान्तरित ही कर सकता है। किन्तु, कम्पनी में प्राइवेट कम्पनी के अलावा सभी कम्पनी के सदस्य अपने अंशों को स्वतन्त्रतापूर्वक विक्री अथवा हस्तान्तरित कर सकते हैं।

५. **प्रबन्ध में हाथ बटाना (To take part in the management)**—साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का अधिकार तथा कर्त्तव्य है कि साझेदारी के प्रबन्ध में परिश्रम से हाथ बटाये। परन्तु कम्पनी में अशुधारियों को प्रबन्ध तथा संचालन में भाग लेने का अधिकार नहीं रहता है, क्योंकि उनकी संख्या अधिक रहती है।

६. **अस्तित्व की अनिश्चितता (Uncertainty of existence)**—साझेदारी का अस्तित्व बड़ा अनिश्चित रहता है। किसी साझेदार की मृत्यु होने पर, पागल या दिवालिया होने पर, या साझेदारी से अवकाश ग्रहण करने पर व्यापार टूट जाता है। किन्तु कम्पनी में ऐसा नहीं होता। कम्पनी में किसी भी अंशधारी की मृत्यु होने पर, पागल होने पर, दिवालिया होने अथवा कम्पनी से अवकाश ग्रहण कर लेने से उसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अर्थात् कम्पनी का समापन नहीं होता, क्योंकि वह अविच्छिन्न उत्तराधिकार वाला कृत्रिम व्यक्ति (artificial person with perpetual succession) है।

७. **व्यापार में परिवर्तन (Alteration in business)**—साझेदारी में समस्त साझेदारों की अनुमति से व्यापार की पूँजी तथा उद्देश्यों में बड़ी सरलता से कोई परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु कम्पनी में अशुधारियों की अनुमति से कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। परिवर्तन करने के पहले बहुत-से अधिनियमों का पालन करना पड़ता है जिसमें बड़ी कठिनाई होती है।

८. **वार्षिक अंकेक्षण (Annual Audit)**—प्राइवेट कम्पनी को छोड़कर अन्य सभी कम्पनियों का वार्षिक अंकेक्षण (audit) अनिवार्य है, किन्तु साझेदारी में यह आवश्यक नहीं है।

९. **कम्पनी के अस्तित्व की भिन्नता (Difference in existence)**—कम्पनी का अस्तित्व उसके सदस्यों से पूर्णतया भिन्न होता है, परन्तु साझेदारी में साझेदारों का अस्तित्व उससे भिन्न नहीं होता। साझेदार तथा साझेदारी एक समझी जाती हैं। साझेदार साझेदारी लाभ के लिए जो भी काम करता है उसे मान्य होता है, चाहे उस कार्य से उसकी हानि ही क्यों न हो।

१०. **अधिकार एवं कर्त्तव्य (Rights and duties)**—साझेदारों के अधिकार तथा कर्त्तव्य का उल्लेख संविदा में होता है। इसमें परिवर्तन किया जा सकता है किन्तु कम्पनी में सदस्यों तथा संचालकों का अधिकार तथा कर्त्तव्य कम्पनी के अधिनियम (Articles of association) द्वारा निर्धारित होते हैं।

११. **दिवालिया की हालत में (In case of insolvency)**—साझेदारी के दिवालिया होने पर महाजन उसकी सम्पत्ति के अलावा साझेदारों की निजी सम्पत्ति पर भी दावा कर सकते हैं, किन्तु कम्पनी में महाजन उसकी सम्पत्ति से अपना ऋण प्राप्त कर सकते हैं; सदस्यों की निजी सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं, कारण सदस्यों का उत्तरदायित्व सीमित रहता है।

**संयुक्त हिन्दू परिवार का व्यापार (Joint Hindu Family Business)**

संयुक्त हिन्दू परिवार केवल अपने लाभ के लिए ही पारिवारिक व्यापार

चला सकता है अथवा यह ऐसा व्यापार चला सकता है जिसमें एक या अधिक बाहर वाले व्यक्ति परिवार के साथ साझेदार के रूप में हों। पारिवारिक व्यापार करने वाले संयुक्त हिन्दू परिवार में एक फर्म के कुछ लक्षण हो सकते हैं, किन्तु यह एक फर्म नहीं कहलायेगा। संयुक्त हिन्दू पारिवारिक व्यापार में साझेदारी के नियम लागू नहीं होते। इसपर पूर्णतया हिन्दू लॉ लागू होता है।

**साझेदारी तथा संयुक्त हिन्दू पारिवारिक फर्म में अन्तर (Distinction between Partnership and Joint Hindu Family)**

१. **सन्ध्या का प्रचलन (Use of Law)**—संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय में हिन्दू लॉ (law) लागू होता है। उसी के अनुसार परिवार के स्वामियों के अधिकार, कर्तव्य आदि के निर्णय होते हैं; किन्तु साझेदारी के व्यापार में सन् १९३२ का भारतीय साझेदारी अधिनियम लागू होता है।

२. **अनुबन्ध (Agreement)**—साझेदारी व्यापार की भाँति सम्मिलित हिन्दू-परिवार में संविदा नहीं होती बल्कि जन्म लेते ही (by birth) उसके सदस्यों को अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

३. **आकस्मिक घटनाओं का प्रभाव (Effects of accidental incidents)**—साझेदारी के व्यापार में किसी साझेदार की मृत्यु होने पर व्यापार समाप्त कर दिया जाता है, किन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार में ऐसी बात नहीं होती है। परिवार के किसी स्वामी की मृत्यु होने पर व्यापार के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

४. **संचालन का अधिकार (Right of management)**—साझेदारी में प्रत्येक साझेदार को व्यापार के परिचालन तथा प्रबन्ध में हाथ बटाने का समान अधिकार (equal rights) प्राप्त होता है, किन्तु हिन्दू परिवार में यह अधिकार केवल प्रमुख कर्त्ता को ही प्राप्त रहता है।

५. **दायित्व (Liability)**—साझेदारी के व्यापार में साझेदारों का दायित्व असीमित (unlimited liability) होता है। व्यापार में अधिक हानि होने पर उन्हें उसकी पूर्ति के लिए व्यक्तिगत रूप में दायी होना पड़ता है, किन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार में पारिवारिक सम्पत्ति में स्वामियों का जो भाग होता है, उस हद तक वे दायी नहीं होते। केवल प्रमुख कर्त्ता अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति से ऋण चुकाने के लिए दायी होता है।

६. **ऋण का उत्तरदायित्व (Liability of Loan)**—साझेदारी में व्यापार के परिचालन तथा प्रबन्ध के लिए प्रत्येक साझेदार का अधिकार रहता है कि वह ऋण ले सकता है या अन्य आवश्यक कार्य व्यापार के हित के लिए कर सकता है और वह अन्य साझेदारों तथा साझेदारी को मान्य होता है। यदि हानि होती है तो साझेदारी दायी होती है। किन्तु, हिन्दू परिवार में वह अधिकार परिवार के समस्त स्वामियों को नहीं प्राप्त रहता है। यह अधिकार परिवार के मुख्य स्वामी अथवा कर्त्ता को ही रहता है।

७. **हिसाब की माँग करना (To demand Accounts)**—साझेदार सदैव हिसाब माँगने, बही-खातों और पुरानी पुस्तकों की स्वयं जाँच करने का अधिकारी है, किन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार का सदस्य जिसे सहभागी (co-partners) कहते हैं, कुछ विशेष दशाओं के अतिरिक्त परिवार के कारबार से अपना सम्बन्ध पृथक् करते

समय गत लाभ तथा हानि का हिसाब माँगने का अधिकारी नहीं है।

**साझेदारी एवं क्लबों में अन्तर (Difference between a Partnership and a Club)**

(i) उद्देश्य (Object)—क्लब का उद्देश्य किसी प्रकार के व्यापार से लाभ अर्जित करना नहीं होता है, बल्कि क्लब की स्थापना सदस्यों के सामान्य हित, जैसे कि मनोरंजन या समाज-सेवा वगैरह के लिए ही की जाती है। साझेदारी फर्म की स्थापना का मुख्य उद्देश्य व्यापार से धन एवं लाभ कमाना होता है।

(ii) दायित्व (Liability)—क्लब का कोई भी मेम्बर जब तक उसने किसी सौदे में स्वयं भाग न लिया हो, क्लब के दायित्वों के लिए उत्तरदायी नहीं होता है, किन्तु फर्म का प्रत्येक साझेदार फर्म के सभी दायित्वों के लिए व्यक्तिगत एवं सम्मिलित रूप से बड़ी-से-बड़ी धनराशि के लिए उत्तरदायी होता है।

(iii) परस्पर अभिकरण (Mutual agency)—क्लब का कोई भी मेम्बर अन्य मेम्बरों की ओर से कोई भी काम नहीं कर सकता है, जबकि साझेदारी के व्यापार में प्रत्येक साझेदार अन्य साझेदारों के एजेंट के रूप में काम करता है। फर्म के सामान्य व्यापार के संचालन के लिए किये गये अपने कार्यों से कोई भी साझेदार फर्म के अन्य मेम्बरों को आबद्ध कर सकता है।

(iv) सदस्य की मृत्यु (Death of a member)—किसी भी मेम्बर की मृत्यु हो जाने अथवा त्यागपत्र दे देने से क्लब के अस्तित्व को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती है। लेकिन साझेदारी की संविदा में विपरीत व्यवस्था न होने पर किसी भी साझेदार के त्यागपत्र दे देने अथवा उसकी मृत्यु हो जाने से साझेदारी फर्म की समाप्ति हो जाती है।

**साझेदारों के प्रकार (Class of Partners)**

१. सामान्य (General)—सामान्य साझेदार उस साझेदार को कहते हैं जिसका फर्म के प्रति उत्तरदायित्व असीमित (unlimited) होता है। साधारणतः सभी साझेदार फर्म के ऋण के लिए व्यक्तिगत या संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते हैं। अगर फर्म की सम्पत्ति ऋण का भुगतान करने के लिए पर्याप्त न हो तो साझेदारों को अपने-अपने हिस्से अपनी निजी (personal) सम्पत्ति से चुकाना पड़ता है।

२. सीमित (Limited)—सीमित साझे का दायित्व उसके द्वारा लगायी गयी पूँजी तक सीमित रहता है। यह अक्रियाशील (inactive) साझेदार होता है। इसका अधिकार भी असीमित साझेदार से कम होता है, क्योंकि उसे व्यापार में न तो भाग लेने का अधिकार है और न उस पर नियंत्रण (control) ही लगाया जा सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि वह फर्म में अपने हिस्से तक लाभ या हानि ले सकता है, किसी प्रश्न पर अपनी राय दे सकता है तथा फर्म के हिसाब-किताब की जाँच कर सकता है। उसकी पूँजी का लाभ-हानि विश्वास पर ही अवलम्बित रहता है।

३. सक्रिय (Active)—सक्रिय साझेदार उसे कहते हैं जो साझेदारी व्यवसाय में खुलेआम तथा सक्रिय रूप से हाथ बटाता है और व्यापार के लाभ-हानि में भाग लेता है, उसका उत्तरदायित्व असीमित होता है।

४. निष्क्रिय साझेदार (Sleeping, Dormant or Silent Partner)—वे वे

साझेदार है जो साझेदारी में पूँजी विनियोग करते हैं, लाभ-हानि के भागी होते हैं। उनका उत्तरदायित्व भी दूसरे साझेदारों की भाँति असीमित होता है। किन्तु वे व्यापार के प्रबन्ध, संचालन आदि में क्रियात्मक रूप से कोई भी कार्य नहीं करते। बहुत से लोग अन्य आवश्यक कार्यों में लगे होने के कारण अपना समय व्यापार के प्रबन्ध तथा संचालन में नहीं दे सकते, किन्तु वे पूँजी विनियोग करने योग्य हैं, लाभ-हानि में भाग लेते हैं और व्यापार में अधिक हानि होने पर उसकी पूर्ति के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। इन्हें ही निष्क्रिय या शान्त या सोता हुआ साझेदार कहते हैं।

५. नाममात्र का साझेदार (Nominal Partner)—यह वह साझेदार है जो व्यापार में न पूँजी विनियोग करता है, न साझेदारों के प्रबन्ध में हाथ बटाता है और न लाभ का ही अधिकारी होता है। यह केवल साझेदारी को अपना नाम अथवा ख्याति इस्तेमाल करने का अधिकार देता है। यदि उनके नाम अथवा ख्याति पर किसी तीसरे पक्ष ने साझेदारी को कोई कर्ज दिया है तो ऐसा व्यक्ति साझेदारी का साझेदार न होते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर साझेदारी के साझेदार के रूप में उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

६. नाबालिग साझेदार (Minor Partner)—नाबालिग साझेदार उम साझेदार को कहते हैं जो बालिग न हो। इसके विषय में हम भारतीय प्रसविदा-विधान में काफी अध्ययन कर चुके हैं, और यहाँ भी आगे वर्णन किया जायगा।

७. लाभ-भागी साझेदार (Partner in Profits only)—अन्य साझेदारों से प्रसविदा करते समय कोई एक साझेदार यह कहे कि वह सिर्फ फर्म के लाभ के लिए ही भागी होगा, हानि के लिए नहीं, तो उसे लाभ-भागी साझेदार कहते हैं।

८. प्रदर्शनकर्त्ता साझेदार (Holding-out Partner)—यदि कोई व्यक्ति लिखित, मौखिक अथवा अपने आचरण द्वारा जान-बूझ कर अपने को किसी साझेदारी का साझेदार होने देता है अथवा अपनी प्रसिद्धि करता है जिससे दूसरे को यह विश्वास हो जाय कि वह भी एक साझेदार है, परन्तु वास्तव में वह साझेदार नहीं है तो वह उन ऋणदाताओं के लिए जिन्होंने साझेदारी को इस प्रसिद्धि अथवा विश्वास पर कर्ज दिया है, एक साझेदार के रूप में उत्तरदायी होगा। ऐसे व्यक्ति न व्यापार में पूँजी विनियोग करते हैं, न व्यापार के संचालन तथा प्रबन्ध में कोई भाग लेते हैं और न वे व्यापार के लाभ और हानि से सम्बन्ध रखते हैं। वे केवल अपने नाम तथा ख्याति के लिए साझेदार होने की प्रसिद्धि के लिए, अपने आचरण द्वारा स्वयं कुछ ऐसा काम करते हैं अथवा साझेदारी द्वारा अपनी प्रसिद्धि करवाते हैं जिससे अन्य व्यक्ति इस विश्वास पर साझेदारी को कुछ कर्ज देता है कि झूठ-मूठ की प्रसिद्धि करनेवाला भी व्यापार का साझेदार है। यद्यपि वह वास्तव में साझेदार नहीं है, तो भी अन्य व्यक्तियों के लिए इस ऋण का उत्तरदायी अन्य साझेदारों की भाँति एक साझेदार के रूप में वह भी होगा। [धारा २८]

उदाहरण—(i) X जो Y और Z की साझेदारी का साझेदार नहीं है, अपने आचरण द्वारा व्यापार का साझेदार होने की प्रसिद्धि करता है अथवा साझेदारी के द्वारा अपनी प्रसिद्धि होने की आज्ञा देता है और एक दूसरा व्यक्ति P इस विश्वास पर साझेदारी को कुछ कर्ज देता है कि X साझेदारी का साझेदार है तो X, P का कर्ज चुकाने के लिए एक साझेदार के रूप में दायी होगा।

(ii) X और Y सर्वसाधारण से यह कहते हैं कि वे दोनों Z के साथ अमुक फर्म के साझेदार हैं। Z को इस बात की जानकारी है और वह इसे इनकार नहीं करता है। Z की साख पर P २,००० रु० का माल फर्म के नाम पर विक्री कर देता है। Z उसके लिए उत्तरदायी है।

९. प्रवेश करनेवाला साझेदार (In-coming Partner) — धारा ३० की बातों को ख्याल करते हुए सभी विद्यमान साझेदारों की अनुमति के बिना किसी नये व्यक्ति को साझेदार नहीं बनाया जा सकता। [३१ (१)] फिर, यदि किसी नये व्यक्ति को साझेदार बनाया जाय तो वह फर्म के पिछले कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होता। अतः जिस तारीख को उसने प्रवेश किया उसके पहले के कर्जों के ऋणदाता उसे बाध्य नहीं कर सकते क्योंकि न तो वह कर्ज उसके समय का है और न वह उस समय फर्म के एजेंट के रूप में ही था और न पिछले कार्यों के लिए उसके द्वारा पुष्टीकरण (ratification) ही किया गया था।

प्रवेश करनेवाले साझेदार के निम्नलिखित अधिकार तथा दायित्व होते हैं —

(i) एक नया साझेदार किसी फर्म का साझेदार बनने के पहले किये गये फर्म के कामों के लिए दायी नहीं होता। [धारा ३१ (२)] वह साझेदार बनने के बाद के किये गये सभी कामों के लिए दायी हो जाता है। [धारा २५]

(ii) जब कोई नाबालिग, जिसे साझेदारी के कामों में शामिल कर लिया गया हो, बालिग होने पर साझेदार बनना स्वीकार करता है तो उसका दायित्व उस तिथि से ही आरम्भ होता है जिस तिथि को वह साझेदारी के लाभों में शामिल किया गया था। [धारा ३०]

(iii) प्रवेश करनेवाले साझेदार को स्पष्ट संविदा द्वारा परिवर्तित (varied) शर्तों के अलावा साझेदारी की समस्त शर्तों का पालन करना होता है और वह स्पष्ट संविदा द्वारा परिवर्तित अधिकारों के अतिरिक्त उन सभी अधिकारों को प्राप्त करता है जो दूसरे साझेदारों को प्राप्त हैं।

१०. पृथक् होनेवाला साझेदार (Out-going Partner) — जब कोई साझेदार फर्म से अलग होता है और शेष साझेदार फर्म के व्यवसाय को चलाते हैं तो अलग होनेवाले साझेदार को 'पृथक् होनेवाला साझेदार' कहते हैं। साझेदार निम्नलिखित ढंग से अलग हो सकता है —

(क) जब वह स्वेच्छापूर्वक अवकाश लेता है (Retirement at Will)। [धारा ३२]

(ख) जब बहुमत द्वारा उसे निकाला जाता है (Expulsion of a Partner)। [धारा ३३]

(ग) जब वह दिवालिया होता है (Insolvency of a Partner)। [धारा ३४]

(घ) जब उसकी मृत्यु हो जाती है (Death of a Partner)। [धारा ३५]

(क) स्वेच्छापूर्वक अवकाश (Retirement at Will) — कोई भी साझेदार (i) दूसरे साझेदारों की सम्मति या राय से, (ii) सभी साझेदारों के बीच किये गये स्पष्ट समझौते के अनुसार, या (iii) यदि साझेदारी इच्छानुसार भंग की जा रही है, तो अन्य साझेदारों को पृथक् होने की अपनी इच्छा के सम्बन्ध में सूचना देकर फर्म से अलग हो सकता है। [धारा ३२-१]

यदि पृथक् होनेवाला साझेदार ऋणदाताओं या तीसरे पक्षों तथा पुनःनिर्मित (reconstituted) फर्म से यह समझौता करे कि उसके फर्म से अलग होने के पहले



के समस्त ऋणों या कार्यों के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगा, बल्कि निर्मित फर्म ही उत्तरदायी होगी जो निवृत्त होनेवाला साझेदार इस प्रकार के पुनः दायित्व से मुक्त होगा। [धारा ३२-२]

अलग होनेवाला साझेदार तथा दूसरे साझेदार भी तीसरे पक्षों के प्रति फर्म के कार्यों के लिए उस समय तक दायी हैं जब तक वह फर्म से अलग होने की सार्वजनिक सूचना नहीं दे देता है। लेकिन अगर कोई मनुष्य इस बात को न जानते हुए कि वह अलग होनेवाला साझेदार है, फर्म के साथ व्यवहार करता है तो अलग होनेवाला साझेदार उसके प्रति दायी नहीं होता। एक निष्क्रिय साझेदार (dormant partner) किसी फर्म से बिना सार्वजनिक सूचना दिये अलग हो सकता है। [धारा ३२-३४]

(ख) बहुमत द्वारा निकाला जाना (By Expulsion)—साझेदारों के बहुमत द्वारा भी कोई साझेदार फर्म से पृथक् नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि किसी प्रसंविदा द्वारा साझेदारों को यह अधिकार प्राप्त हो कि किसी अनुचित साझेदार को सद्विश्वास के साथ अपने अधिकार का इस्तेमाल करते हुए बहुमत से फर्म से अलग कर सकते हैं, तो वैसी हालत में उसे फर्म से अलग किया जा सकता है। इसका अधिकार और उत्तरदायित्व स्वेच्छापूर्वक जानेवाले साझेदार की तरह है। [धारा ३३]

(ग) दिवालिया होना (By Insolvency)—धारा ३४ के अनुसार जिस दिन से कोई साझेदार दिवालिया घोषित कर दिया जाता है उस दिन से वह फर्म का साझेदार नहीं रहता है, चाहे फर्म का अन्त (dissolution) किया जाय या नहीं। फिर, यदि साझेदारों के बीच प्रसंविदा के द्वारा किसी साझेदार के दिवालिया घोषित होने पर फर्म का खात्मा न किया जाय तो दिवालिया घोषित किये जाने के दिन से दिवालिया व्यक्ति फर्म द्वारा किये गये कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं है और न फर्म ही। दिवालिया घोषित करने की आज्ञा के बाद दिवालिया व्यक्ति के कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा।

(घ) मृत्यु होना (By Death)—यदि किसी साझेदार की मृत्यु हो जाती है तो वह स्वयं ही उस फर्म का साझेदार नहीं रह जाता और न उसके प्रतिनिधि (representative) ही साझेदार हो सकते हैं। धारा ३५ के मुताबिक जब साझेदारों के बीच किसी प्रसंविदा के अधीन किसी साझेदार की मृत्यु से फर्म समाप्त नहीं की जाती तो मृत साझेदार की भू-सम्पत्ति उसकी मृत्यु के बाद किये गये फर्म के कार्यों के लिए दायी नहीं होती।

### अधिकार एवं दायित्व (Rights and Liabilities)

१. अलग होनेवाले अथवा अलग किये गये साझेदार को उसके अलग होने तथा करने से पहले किये गये फर्म के कामों द्वारा स्थापित अन्य पार्टियों के प्रति दायित्व से ऐसी अन्य पार्टियाँ तथा पुनः निर्मित फर्म के साझेदारों के साथ किसी स्पष्ट अथवा गश्त संविदा द्वारा मुक्त किया जा सकता है। [धारा ३२ (२)]

२. अलग होनेवाला अथवा किया गया साझेदार अन्य पार्टियों के प्रति फर्म के कामों के लिए उस समय तक दायी है जब तक कि वह अलग होने अथवा किये जाने की सार्वजनिक सूचना नहीं दे देता, किन्तु यदि कोई व्यक्ति इस बात की जानकारी न होते हुए कि वह फर्म में साझेदार था, फर्म के साथ व्यवहार करता है तो अलग

होनेवाला अथवा किया गया साझेदार उसके प्रति दायी नहीं होगा। [धारा ३२ (३)]

३. अलग होनेवाले साझेदार को फर्म के कारोबार से प्रतिस्पर्धा रखने वाले व्यापार के चलाने तथा उसका विज्ञापन करने का अधिकार है, जब तक कि उसने फर्म के साथ निदिष्ट स्थानीय सीमाओं के अन्दर इस प्रकार का व्यापार न करने की प्रसविदा नहीं की हो। [धारा ३६]

४. अलग होनेवाले साझेदार को (i) फर्म के नाम को प्रयोग में लाने का, (ii) अपने को फर्म का कारोबार चलानेवाले के रूप में प्रदर्शित करने का, और (iii) फर्म के पुराने ग्राहक को अपना ग्राहक बनाने का अधिकार नहीं होता, जब तक कि दूसरे साझेदारों ने प्रसविदा द्वारा इस प्रकार का अधिकार न दे दिया हो। [धारा ३६]

५. जब फर्म का कोई मेम्बर मर जाय, या किसी दूसरी वजह से फर्म से अलग हो जाय तथा शेष साझेदार अपने अलग होनेवाले साझेदार के बीच हिमाव-किताब किये बिना फर्म की सम्पत्ति से फर्म का कारबार चलाते रहें तो किसी विपरीत प्रसविदा के अभाव में अलग होनेवाले साझेदार को या उसके हकदारों को फर्म के लाभों से अपना भाग (share) माँगने का या अपने इच्छानुसार प्रतिवर्ष की दर से ब्याज माँगने का अधिकार है। किन्तु अलग होनेवाले साझेदार का हित (interest) दूसरे साझेदारों द्वारा खरीदे जाने पर उसके इस अधिकार की समाप्ति हो जाती है। [धारा ३७]

### साझेदारी संलेख अथवा समझौता (Partnership Deed or Agreement)

साझेदारी के शुरू में साझेदारों में पूर्ण मैत्रीभाव रहता है, परन्तु सदैव ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध रहना आवश्यक नहीं। भविष्य में ऐसी परिस्थितियाँ भी आ सकती हैं जिनकी वजह से आपस में मतभेद होने की आशंका की जा सकती है। अतएव, साझेदारों के लिए उचित है कि साझेदारी-सम्बन्धी सभी शर्तों तथा व्यापार-सम्बन्धी अन्य बातों का एक लिखित संलेख तैयार कर लें ताकि भविष्य में होनेवाली किसी भी दुर्घटना को रोक सकें तथा जिनके आधार पर सभी मतभेदों या झगड़ों का निबटारा किया जा सके। इस प्रकार, साझेदारों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्यों को निश्चित करने के लिए उनके बीच की गयी लिखित संविदा (agreement) को साझेदारी संलेख (partnership deed) कहते हैं। समझौते में साधारणतः निम्नलिखित बातें रहती हैं—

१. फर्म का नाम तथा उसके व्यापार की प्रगति।

२. पूँजी की रकम तथा प्रत्येक साझेदार की पूँजी का वह भाग जो उसको व्यापार में लगाना होगा।

३. प्रत्येक साझेदार के आहरण (drawings) की मात्रा तथा इस निजी व्यय के लिए आहरण पर ब्याज और ब्याज की दर।

४. लाभ और हानि के विभाजन का अनुपात।

५. पूँजी पर ब्याज देने का निश्चय तथा उसकी दर।

६. साझेदारों के वेतन की मात्रा—यदि किसी साझेदार को व्याज में सक्रिय भाग लेने के लिए लाभांश के अतिरिक्त वेतन भी देने का निश्चय किया गया है।

७. साझेदारी की अवधि (Duration of Partnership)—यह उल्लेख करना आवश्यक है कि साझेदारी की अवधि एक निश्चित समय या एक निश्चित काम के लिए है अथवा इच्छानुसार (at will) किसी भी समय उसे समाप्त किया जा

सकता है ।

८. भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर नयी पूँजी लगाने का अनुपात (ratio) ।
९. साझेदारों के व्यापार-सम्बन्धी दायित्व का विभाजन ।
१०. साझेदारों द्वारा दिये गये ऋण तथा उसपर व्याज ।
११. हिसाब की बहियों को रखने तथा खाता तैयार करने की प्रणाली । समझौता में यह उल्लेख रहता है कि फर्म का हिसाब किस प्रणाली के अनुसार रखा जाये तथा अन्तिम खाता किस तरह और किस तिथि को तैयार किया जायेगा । खातों का अंकेक्षण (audit) कराया जायेगा या नहीं ।
१२. साझेदारी भंग होते समय या साझेदार की मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण करने पर, उसे अथवा उसके उत्तराधिकारी को पूँजी, लाभ आदि के अंश देने की विधि ।
१३. लोकप्रियता (good-will) के मूल्यांकन की विधि ।
१४. किसी साझेदार के दिवालिया होने पर उसकी पूँजी की कमी अन्य साझेदारों को पूरी करनी पड़ती है, अतएव इस पूँजी की कमी की पूर्ति अन्य साझेदारों की पूँजी के अनुपात में होगी या उनके लाभ-वितरण के अनुपात में ।
१५. पंचायत शर्त (Arbitration Clause)—जिसके आधार पर साझेदारों के मध्य उठनेवाले मतभेदों का निर्माण किया जा सके ।

## साझेदारों के अधिकार, कर्तव्य एवं दायित्व

### (Rights, Duties and Liabilities of Partners)

#### साझेदारों के एक-दूसरे के प्रति सम्बन्ध (Relation of Partners to One Another)

साझेदार इस बात के लिए बाध्य होते हैं कि वे अधिक से अधिक सम्मिलित लाभ के लिए फर्म के व्यापार को चलायें, एक-दूसरे के प्रति न्यायोचित और वफादारी का व्यवहार करें और फर्म से सम्बद्ध सब बातों को ठीक-ठीक लिखें और उनकी सूचना किसी साझेदार या उसके वैधानिक प्रतिनिधि (legal representative) को दें। प्रत्येक साझेदार फर्म के उस नुकसान को पूरा करेगा जो कि फर्म के व्यापार में उसके कटपूर्ण (fraudulent) व्यवहार से हुआ हो। [धारा ९, और १०]

ये स्वतन्त्र निबन्ध (absolute provisions) हैं और साझेदारों के बीच हुए अनुबन्ध के अधीन नहीं होते लेकिन साझेदारों के अन्य अधिकार और कर्तव्य चाहे साझेदारी संलेख की संविदा में उनका वर्णन हो या अधिनियम में उसकी परिभाषा दी गयी हो, साझेदारों की अनुमति से बदले जा सकते हैं और ऐसी अनुमति या तो लिखित रूप में दी जा सकती है या तत्सम्बन्धी व्यवहार से ध्वनित (implied) हो सकती है कि कोई साझेदार फर्म के व्यापार के अलावा कोई दूसरा व्यापार उस समय तक नहीं चलायेगा, जब तक कि वह उस फर्म में साझेदार है। [धारा ११]

#### साझेदारों के अधिकार (Rights of Partners)

१. फर्म के संचालन में भाग लेने का अधिकार [धारा १२ (क)] (Right to take part in the management of the Firm)—प्रत्येक साझेदार को फर्म के व्यापार के संचालन एवं व्यवस्थापन में भाग लेने का अधिकार होता है। यह कोई ज़रूरी नहीं है कि प्रत्येक साझेदार व्यापार के संचालन में अनिवार्य रूप से भाग ले, परन्तु भाग लेने का अधिकार प्रत्येक साझेदार को प्राप्त है।

२. राय प्रकट करने का अधिकार [धारा १२ (ग)] (Right to be consulted)—प्रत्येक साझेदार को यह अधिकार होता है कि साझेदारी व्यापार को प्रभावित करनेवाले सभी मामलों में अपनी राय प्रकट करे एवं वह अन्य साझेदारों के समक्ष अपना विचार जाहिर करे।

साझेदारी व्यापार का संचालन साझेदारों के बहुमत के अनुसार किया जाता है। सिर्फ़ उन बातों को छोड़कर जहाँ वैधानिक दृष्टिकोण से साझेदारों को सर्वसम्मति की ज़रूरत होती है, अन्य सभी सामान्य विषयों में अल्पमत साझेदारों को बहुमत साझेदारों की सलाह माननी पड़ती है। किसी भी बात पर प्रत्येक साझेदार को अपने मत व्यक्त करने का अधिकार होता है। मतभेद वाली सभी बातों का निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। नये साझेदार का प्रवेश, व्यापार की प्रकृति का परिवर्तन, किसी साझेदार द्वारा अपने हिस्से का

हस्तांतरण वगैरह प्रमुख बातों पर साझेदारों की सर्वसम्मति का होना अनिवार्य होता है।

३. **खाता-बही तक पहुँचने का अधिकार** [धारा १२ (क)] (Right to have access to books)—प्रत्येक साझेदार को प्रत्येक हिसाब-किताब की पुस्तक की जाँच-पड़ताल करने अथवा उसकी प्रतिलिपि उतारने के लिए माँगने का अधिकार रहता है। इस अधिकार-क्षेत्र के अन्दर व्यापार से सम्बद्ध सभी लेख एवं विवरण इत्यादि भी शामिल होते हैं। साझेदार इस अधिकार का प्रयोग खुद कर सकता है या अन्य साझेदारों द्वारा आपत्ति न उठाये जाने पर इसे अपने किसी एजेंट के जरिये लागू करवा सकता है।

कोई नावालिग साझेदार जो फर्म के सिर्फ लाभ का भागी है उसको फर्म के वही-खातों के निरीक्षण करने या नकल करने का कोई अधिकार नहीं होता है। वह इस अधिकार का प्रयोग सिर्फ फर्म के अंतिम खातों के लिए कर सकता है। उसको इस तरह का अधिकार देने से व्यापार को हानि पहुँचने की संभावना ज्यादा बढ़ जाती है।

४. **लाभांश पाने का अधिकार** [धारा १३] (Right to share profits)—साझेदारों को व्यापार के लाभों में से एक समान हिस्सा पाने का अधिकार होता है। उनको व्यापार की हानियों को भी समान अंश में ही पुष्ट करने का दायित्व होता है क्योंकि किसी तरह का समझौता न होने पर “समानता को ही साम्यता समझा जाता है क्योंकि असमानता किसी भी दृष्टि से अच्छी नहीं होती है।”

५. **पूँजी पर व्याज** [धारा १३ (ग)] (Interest on Capital)—साधारणतः साझेदारों को पूँजी पर व्याज नहीं दिया जाता है। किसी साझेदार को फर्म में लगायी गयी पूँजी पर व्याज उसी समय मिलेगा जबकि इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट तरीके से या व्यवसाय की प्रथा के अनुसार पूँजी पर व्याज दिया जाता हो। विपरीत संविदा न होने पर साझेदार को पूँजी पर व्याज सिर्फ व्यापार के लाभों में से ही दिया जा सकता है।

६. **कर्ज पर व्याज** [धारा १३ (क)] (Interest on advances)—जब कोई भी साझेदार अपनी पूँजी की निश्चित मात्रा के अलावा हन्या फर्म के व्यवसाय के लिए देता है तब उसे इस प्रकार दिये गये कर्ज पर छः प्रतिशत वार्षिक की दर से सूद लेने का अधिकार होता है।

७. **क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार** [धारा १३ (ड)] (Right to be indemnified)—प्रत्येक साझेदार को यह अधिकार होता है कि निम्नलिखित परिस्थितियों में किये गये भुगतानों तथा स्वीकार किये गये दायित्वों के लिए फर्म से क्षतिपूर्ति करा सकता है—(i) व्यापार के सामान्य एवं उचित संचालन के अन्दर और (ii) संकट की स्थिति में फर्म को घाटे से बचाने के लिए इस तरह का काम करता है जो एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति समान परिस्थितियों में अपने हित की रक्षा करने के लिए करता।

८. **साझेदारी सम्पत्तियों के प्रयोग का अधिकार** [धारा १४, १५] (Right to the use of Partnership Property)—प्रत्येक साझेदार का फर्म की सम्पत्ति पर समान अधिकार होता है, लेकिन यह समान अधिकार फर्म की सम्पत्तियों को सिर्फ व्यापार के ही काम के लिए इस्तेमाल करने के लिए होता है।

९. **संकटकाल में अधिकार** [धारा २१] (Powers in an emergency)—संकट की स्थिति में फर्म को घाटे से बचाने के लिए साझेदार को वे सभी काम करने

का अधिकार होता है जो एक साधारण दिमाग का आदमी सामान्य परिस्थिति में करता। इस तरह के सभी कामों के लिए फर्म उत्तरदायी होती है।

१०. नये साझेदार के प्रवेश पर प्रतिबन्ध [धारा ३१ (१)] (Restrictions on the admission of a new partner)— बगैर सभी वर्तमान साझेदारों का सहमति के फर्म में किसी भी नये साझेदार का प्रवेश नहीं करा सकता है।

११. प्रवेश से पहले के कार्यों के लिए कोई दायित्व नहीं होता [धारा ३१ (२)] (No liability before joining)— जब तक कि कोई अलग समझौता न हो, साझेदार के फर्म में प्रवेश पाने की तारीख से पहले फर्म द्वारा किये गये कामों के लिए वह उत्तरदायी नहीं होता है।

१२. अवकाश ग्रहण करने का अधिकार [धारा ३९] (Right to retire)— प्रत्येक साझेदार को, (i) सभी साझेदारों की राय से, या (ii) साझेदारों की स्पष्ट संविदा के अनुसार या (iii) ऐच्छिक साझेदारी होने पर अन्य सभी साझेदारों की अवकाश प्राप्त करने की इच्छा की अपनी लिखित सूचना देकर अवकाश ग्रहण करने का अधिकार होता है।

१३. निष्कासित न किये जाने का अधिकार [धारा ३३] (Right not to be expelled)— किसी भी साझेदार को पारस्परिक संविदा के अन्दर अन्य साझेदारों को प्राप्त निष्कासन-अधिकार के सद्विश्वास एवं सद्भावनापूर्ण प्रयोग के अलावा किसी भी बहुमत द्वारा निष्कासित नहीं किया जा सकता है।

१४. प्रतियोगी व्यापार करने का अधिकार [धारा ३७] (Right to carry on Competing business)— फर्म को छोड़कर जानेवाले साझेदार को फर्म की प्रतियोगिता में व्यापार करने का अधिकार होता है। इस तरह का साझेदार प्रतियोगी व्यापार के लिए विज्ञापन भी दे सकता है, लेकिन विपरीत संविदा न होने की दशा में वह न तो फर्म के नाम का प्रयोग कर सकता है और न फर्म के ग्राहकों को ही अपनी ओर खींचने का उसे अधिकार होता है। वह अपने-आपको किसी प्रकार भी फर्म के व्यापार के संचालक के रूप में प्रदर्शित भी नहीं कर सकता है।

१५. अवकाश ग्रहण करने के बाद फर्म द्वारा अर्जित लाभों में से हिस्सा पाने का अधिकार [धारा ३७] (Right to share subsequent profits after retirement)— मृत्यु होने या और किसी कारण से अगर कोई व्यक्ति फर्म की साझेदारी से अलग हो जाता है और बाकी साझेदार अपने और अलग होने वाले साझेदार के बीच हिसाब-किताब का पूर्ण निबटारा किये बिना फर्म की सम्पत्ति से व्यापार करता रहे तो विपरीत संविदा न होने पर अलग होने वाला साझेदार या उसके प्रतिनिधियों को 'उसके द्वारा साझेदारी से अवकाश प्राप्त करने के समय से फर्म द्वारा अर्जित लाभों में से अपना हिस्सा या फर्म की सम्पत्तियों में विनियोजित अपने हिस्से पर ६% वार्षिक दर से सुद लेने का अधिकार होता है।

### साझेदारों के कर्तव्य (Duties of Partners)

१. सद्भावनापूर्ण व्यवहार [धारा ९] (Observation of good faith)— साझेदारी समझौता, साझेदारों के बीच पयी जानेवाली सद्भावना पर ही आधारित होता है। इस आधार को कायम रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि साझेदार फर्म के व्यापार का कार्य-संचालन ज्यादातर सामान्य हित (common advantage) के लिए ही करें और आपस के सम्बन्धों में पूर्ण सद्विश्वास एवं सद्भावना

का प्रयोग करें। फर्म से सम्बद्ध सभी विषयों की सभी बातों की साझेदारों को पूरी सूचना दें। साझेदारों के उपर्युक्त कर्तव्यों को आत्यंतिक माना जाता है। कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों के साथ किसी प्रकार की संविदा करके भी इन कर्तव्यों से अपने-आपको अलग नहीं कर सकता है।

२. निर्धारित कर्तव्यों का पूर्ण लगन एवं परिश्रम से पालन करना [धारा १२ (ख) एवं १३ (क)] (To attend to his duties diligently)—प्रत्येक साझेदार को व्यापार से सम्बद्ध अपने कर्तव्यों का पूरी लगन से पालन करना चाहिए। उसे व्यापार के संचालन-कार्यों को करने के लिए किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक पाने का कोई अधिकार नहीं होता है। “इस तरह की संविदा के विद्यमान न होने पर भी कोई भी साझेदार फर्म के संचालन-कार्यों को करने के लिए जो भी परिश्रम करता है उसके बदले में वह अपने सह-साझेदारों से किसी प्रकार का वेतन, कमीशन या अन्य पारिश्रमिक नहीं ले सकता है।”

३. छल-कपट से होनेवाले नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति का दायित्व [धारा १०] (To indemnify for frauds)—प्रत्येक साझेदार फर्म के प्रति उसके छल-कपट के कारण होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होता है। यह एक तरह का आत्यंतिक दायित्व होता है और पारस्परिक समझौते के द्वारा भी साझेदार किसी भी अन्य साझेदार को इस दायित्व से मुक्त नहीं कर सकते हैं।

४. जानबूझकर की गयी लापरवाहियों के कारण होने वाली हानियों की क्षतिपूर्ति का दायित्व [धारा १३ (च)] (To indemnify for wilful neglect)—फर्म के व्यवसाय में जानबूझकर की गयी लापरवाहियों से हुए नुकसान के लिए प्रत्येक साझेदार उत्तरदायी होता है। साझेदार इस उत्तरदायित्व से अपने को संविदे के जरिये केवल छल-कपट की स्थिति को छोड़कर अन्य परिस्थितियों में अलग रख सकता है।

५. हानियों में हिस्सा बाँटना [धारा १३ (ख)] (To Share losses)—विपरीत संविदा न होने पर प्रत्येक साझेदार को फर्म में हुए नुकसान का समान योगदान करने का दायित्व होता है।

६. सम्पत्तियों को फर्म के लिए ही रखना एवं प्रयोग करना [धारा (१५)] (To hold and use property of the firm)—फर्म की सभी सम्पत्तियाँ सभी साझेदारों की होती हैं इसलिए प्रत्येक साझेदार को फर्म की सम्पत्तियों को फर्म के ही लिए प्रयोग में लाना चाहिए।

७. व्यक्तिगत गुप्त लाभों का हिसाब देना [धारा १९ (क)] (To account for private profits)—फर्म के धन, सम्पत्ति अथवा ख्याति के प्रयोग से अगर कोई साझेदार पैसा कमाता है तब इस अर्जित समस्त व्यक्तिगत एवं गुप्त लाभों का हिसाब फर्म को देना होगा तथा उनका भुगतान भी फर्म को करने के लिए प्रत्येक साझेदार फर्म के प्रति उत्तरदायी होगा।

उदाहरण—A और B एक फर्म में साझेदार थे। फर्म के लिए चीनी खरीदते-समय A ने B की सहमति के बिना अपनी ही चीनी फर्म को सप्लाई कर दी। इस सौदे में A को जो भी नफा हुआ उसकी सम्पूर्ण राशि एवं उसका हिसाब उसे फर्म को देना होगा।

८. प्रतियोगी व्यापार से अर्जित लाभ का हिसाब देना [धारा १६ (ख)] (To account for the profits of Competing business)—भारतीय प्रसंविदा

सन्निधम की धारा २७ के अन्तर्गत व्यापार करने की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध या रुकावट डाले जाने के सभी संविदे अमान्य होते हैं, लेकिन साझेदारी सन्निधम की धारा ११ (२) के अनुसार साझेदार अपने बीच इस प्रकार की संविदा कर सकते हैं और किसी भी साझेदार पर इस तरह का प्रतिबन्ध लगा सकते हैं कि जब तक वह साझेदार रहेगा तब तक और कोई दूसरा व्यापार नहीं कर सकेगा। व्यवहार में इस तरह की बातें प्रायः प्रत्येक ममझौते में होती हैं। इसलिए किसी भी साझेदार को फर्म की प्रतियोगिता में व्यापार करने से रोका जा सकता है या साझेदार को इस तरह के व्यापार से अर्जित सभी लाभों को फर्म को दे देने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

९. अधिकार-क्षेत्र की सीमा के अन्दर काम करना (To act within authority)—प्रत्येक साझेदार को अपने अधिकार-क्षेत्र के अन्दर ही काम करना चाहिए। अगर वह अपने अधिकार-क्षेत्र की सीमा के बाहर कोई काम करता है और दूसरे साझेदार उसके अनधिकृत कार्यों की पुष्टि नहीं करते हैं तो ऐसे कार्यों से अन्य साझेदारों को होनेवाली हानियों की पूर्ति के लिए उसको उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

१०. अपने अधिकारों को समनुदेशित नहीं कर सकता [धारा २९] (Not to assign his rights)—बगैर अन्य साझेदारों की राय के कोई भी साझेदार व्यापार में अपने हितों और अधिकारों को किसी अन्य व्यक्ति को समनुदेशित (assign) करके फर्म का साझेदार नहीं बना सकता है। अगर किसी साझेदार ने अपने हित को हस्तान्तरित कर ही दिया हो तो इस हित को पाने वाले व्यक्ति को फर्म में हस्तक्षेप करने एवं फर्म के बहीखातों को देखने आदि का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है जब तक कि सभी साझेदार इस हस्तान्तर को स्वीकार न करें।

११. संयुक्त एवं पृथक् दायित्व [धारा २५] (To be liable jointly and Severally)—अपनी साझेदारी की अवधि में प्रत्येक फर्म के सभी कार्यों के लिए अन्य सभी साझेदारों के साथ संयुक्त एवं पृथक् दोनों ही प्रकार से उत्तरदायी होता है। अवकाश ग्रहण (retire) करने वाला साझेदार भी जब तक अपने अवकाश ग्रहण की लोक-सूचना नहीं दे देता है, फर्म के सभी व्यवहारों के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है।

फर्म के कार्यों के लिए साझेदार का दायित्व (Liability of a partner for an act of the firm)—साझेदारी के अन्दर किसी भी साझेदार की उन सभी ग्वत्तियों के लिए फर्म को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जिनके कारण अन्य पक्षों को किसी भी प्रकार की आर्थिक एवं शारीरिक हानि पहुँची हो। इस तरह के दायित्व निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक है कि साझेदार द्वारा किया गया कार्य या तो अन्य साझेदारों की राय से किया गया हो या फर्म के सामान्य कारबार के अन्दर किया गया हो।

अगर फर्म के कार्यों की परिभाषा में किसी प्रकार का मिथ्या प्रदर्शन आता हो, तो सभी निर्दोष साझेदारों को भी किसी एक साझेदार द्वारा किये गये मिथ्या प्रदर्शन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। किसी भी एक साझेदार द्वारा फर्म के धन या सम्पत्ति के दुरुपयोग या एक साझेदार की लापरवाही के अन्य पक्षों को हुई हानियों की पूर्ति के लिए दिये जानेवाले प्रतिकर के लिए फर्म के सभी साझेदारों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।



साझेदार द्वारा प्राप्त की गयी सूचनाओं के लिए फर्म का दायित्व [धारा २४] (Liability of the firm for the information obtained by a partner)—किमी भी सक्रिय साझेदार (active partner) को साझेदारी व्यापार से सम्बद्ध दी गयी सूचनाएँ, फर्म को दी गयी सूचनाएँ मानी जाती हैं, जब तक कि सूचना देने वाला अन्य पक्षकार उस साझेदार के साथ मिलकर अन्य साझेदारों के प्रति कोई छल-कपट न कर रहा हो।

किसी साझेदार के गलत कार्यों के लिए फर्म का उत्तरदायित्व [धारा २६] (Liability of the firm for the wrong work or omission by a partner)—जब फर्म के कारोबार में अथवा अपने साझेदारों की अनुमति से काम करते हुए किसी साझेदार के दोषपूर्ण कार्य अथवा उपेक्षा या चूक (omission) से किसी तीसरे व्यक्ति को कोई नुकसान या क्षति पहुँचती है अथवा जुर्माना या दण्ड देना पड़ता है तो उसके लिए फर्म उसी सीमा तक उत्तरदायी होती है जिस सीमा तक साझेदार उत्तरदायी होता है।

साझेदारों के बीच व्यापार में रुकावट डालनेवाली संविदा (Agreement between Partners in Restraint of Trade)

भारतीय प्रसंविदा-अधिनियम की धारा २७ के अनुसार व्यापार में रुकावट डालनेवाली संविदा व्यर्थ (void) होती है। साधारण नियम यह है कि प्रत्येक अनुबन्ध जिससे किसी व्यक्ति को कोई विधिपूर्ण (lawful) व्यवसाय, व्यापार या किसी प्रकार का धन्धा करने से रोका जाय, उस हद तक व्यर्थ (void) है। लेकिन साझेदारी के इस साधारण नियम के चार अपवाद (exceptions) हैं। वे ये हैं—

१. साझेदार के बीच हुआ कोई अनुबन्ध यह विधान कर सकता है कि कोई साझेदार फर्म के व्यापार के अलावा कोई दूसरा व्यापार नहीं करेगा, जब तक कि वह फर्म में एक साझेदार है। [धारा ११ (२)]

२. साझेदार यह समझौता कर सकते हैं कि यदि उनमें से कोई साझेदार फर्म से अलग हो जाता है, तो वह एक विशेष क्षेत्र के अन्दर एक विशेष समय की अवधि तक फर्म के अनुरूप (similar) कोई व्यापार नहीं करेगा। व्यापार के प्रतिरोध के विषय में किया गया ऐसा समझौता व्यर्थ नहीं होगा, यदि वह प्रतिरोध जो उसपर लगाया गया है, युक्तिसंगत (reasonable) हो। [धारा ३६ (२)]

३. साझेदार फर्म के विलयन के बाद या इससे पहले यह समझौता कर सकते हैं कि उनमें से कुछ या सब किन्हीं विशेष स्थानीय सीमाओं में या किसी विशेष समय की अवधि के लिए फर्म के समरूप कोई व्यापार नहीं चलायेंगे। ऐसा समझौता, यदि लगाये हुए प्रतिरोध युक्तिसंगत हों तो व्यर्थ नहीं होगा। [धारा ५४]

४. कोई साझेदार फर्म की रूपाति बेचने पर खरीदार से समझौता करता है कि किसी विशेष स्थानीय सीमा में और किसी विशेष समय तक वह फर्म के समरूप कोई व्यापार नहीं करेगा। यदि लगाये हुए प्रतिरोध युक्तिसंगत हों तो ऐसा समझौता व्यर्थ नहीं होगा। [धारा ५५ (३)]

तीसरे पक्षकारों के साथ साझेदारों के सम्बन्ध (Relation of Partners to Third Parties)

साझेदार के अधिकार (Authority of Partner)—साझेदारी सन्धियम का यह एक लक्षणिक रूप (characteristic feature) है कि साझेदार प्रधान और

एजेण्ट दोनों ही होता है। एक प्रधान की हैसियत से वह फर्म की ओर से किये गये कार्यों के लिए स्वयं बाध्य होता है और एजेण्ट की हैसियत से वे ही कार्य उसके सहभागियों को भी बाध्य करते हैं। किसी साझेदार का फर्म को बाध्य करने का अधिकार उसका ध्वनित अधिकार (implied authority) कहा जाता है। साझेदार आपस में चाहें जो कुछ निजी सम्बन्ध रखते हों, उनसे व्यवहार करने वाले मनुष्य को यह समझने का अधिकार होता है कि साझेदारी के क्षेत्र में आने वाले मामलों में साझेदार के सब कार्य फर्म को बाध्य करते हैं और साझेदार को कोई भी ऐसा कार्य करने का अधिकार होता है। इसलिए व्यापारिक साझेदारी में प्रत्येक साझेदार फर्म के पदार्थों को बेचकर, फर्म के लिए पदार्थों को खरीद कर, फर्म की ओर आनेवाले कर्जों को प्राप्त कर, साझेदारी के व्यापार के लिए कर्मचारी नियुक्त करके, बिल (bills) लेकर, फर्म की साख पर रुपया उधार लेकर और फर्म की सम्पत्ति को बन्धक (pledge) करके साझेदार को बाध्य कर सकता है। दूसरी ओर, देश के व्यापारिक रीति-रिवाजों की अनुपस्थिति में कोई भी साझेदार अपने ध्वनित अधिकार (implied authority) से निम्नलिखित कार्य नहीं कर सकता\*—

१. फर्म के व्यापार-सम्बन्धी झगड़े पंच को सौपना।
२. फर्म की ओर से अपने नाम में किसी अधिकोष का लेखा या हिसाब (banking account) खोलना।
३. किसी मुकदमे पर सुलह करना (to compromise); फर्म के किसी स्वत्व (claim) या उस स्वत्व के किसी हिस्से को छोड़ना।
४. फर्म की ओर से किसी लगाये गये अभियोग (suit) या उसकी कार्यवाही (proceedings) को वापस लेना।
५. फर्म के विरुद्ध चलाये गये किसी अभियोग या कार्यवाही में कोई दायित्व स्वीकार करना।
६. फर्म की ओर से कोई अचल सम्पत्ति (immovable property) प्राप्त करना।
७. फर्म की किसी अचल सम्पत्ति को हस्तान्तरित (transfer) करना।
८. फर्म की ओर से किसी साझेदारी में प्रवेश करना।

फर्म के साझेदार, आपस में किये गये अनुबन्ध के द्वारा किसी साझेदार के ध्वनित अधिकार को बढ़ा सकते हैं या उसपर कुछ रोक लगा सकते हैं। लेकिन ऐसी किसी रोक पर ध्यान न देते हुए फर्म की ओर से किसी साझेदार द्वारा किया हुआ कोई कार्य, जो उसके ध्वनित अधिकार के अन्दर है, फर्म को बाध्य करता हो जब कि वह व्यक्ति जिसके हाथ वह साझेदार व्यवहार कर रहा है, उस रोक के विषय में न जानता हो या उस साझेदार को वह व्यक्ति फर्म का एक साझेदार न समझता हो या ऐसा उसका विश्वास हो कि फर्म का साझेदार नहीं है।

साझेदार को यह अधिकार होता है कि वह संकटकाल में फर्म को हानि से बचाने के लिए कोई ऐसा काम कर सकता है जिसे कोई सामान्य विवेक (ordinary prudence) वाला व्यक्ति ऐसी अवस्था में अपने लिए करता। ऐसे कार्य फर्म को बाध्य करते हैं।

किसी फर्म को बाध्य करने के लिए किसी साझेदार या अन्य व्यक्ति के द्वारा

फर्म की ओर से किया हुआ काम फर्म के नाम से ही किया जायगा या किसी दूसरे तरीके से भी किया जा सकता है जो फर्म को बाध्य करने का कोई लिखित या मौखिक इरादा रखता हो। फर्म के कार्यों के सम्बन्ध में किसी साझेदार द्वारा कोई स्वीकृति या प्रतिनिधित्व यदि वह सामान्य व्यापारिक व्यवहार में आता है तो यह फर्म के विरुद्ध एक सफाई बन जाता है। प्रत्येक साझेदार फर्म के कार्यों के लिए, जब कि वह एक साझेदार है, दूसरे सब साझेदारों के साथ और अलग भी दायी होता है।

जहाँ फर्म के सामान्य व्यापारिक व्यवहार में किसी साझेदार के गलत कार्य या भूल से किसी अन्य पक्ष को कोई हानि या चोट पहुँची हो या कोई दण्ड मिला हो तो फर्म इसके लिए उतना ही दायी है जितना कि वह भागी यदि किसी अन्य व्यक्ति का धन या सम्पत्ति जो फर्म के वन्धक में है, और कोई इसका दुरुपयोग या गलत प्रयोग करता है, तो फर्म इसके लिए दायी होगी। [धारा १८-२७]

### किसी साझेदार के हित का हस्तान्तरण (Transfer of a Partner's Interest)

किसी साझेदार के द्वारा फर्म के अपने हित (interest) का हस्तान्तरण यों तो स्वतन्त्र रूप से हो सकता है या रेहन (mortgage) के द्वारा या ऐसे हित पर कोई प्रभार (charge) रखने से। साझेदारी सन्धिसूत्र का मूल सिद्धान्त है कि कोई अजनबी आदमी साझेदारों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई भार नहीं डाल सकता। फलस्वरूप, कोई साझेदार फर्म में अपने हित को हस्तान्तरित करता है, तब न तो हस्तान्तरकारी (transferer) साझेदार के अधिकार से वंचित होता है, न हस्तान्तरण-प्रापक (transferee) को साझेदार के अधिकार ही प्राप्त होते हैं। साझेदारी की अवधि में हस्तान्तरणप्रापक का जिसे किसी साझेदार के हित का हस्तान्तरण किया गया है यह अधिकार नहीं होता है कि वह व्यापार के संचालन में कोई हस्तक्षेप करे, या कोई हिसाब ले, या फर्म की पुस्तकों का निरीक्षण करे। यह केवल हस्तान्तरण करनेवाले साझेदार के लाभान्श को प्राप्त करने का अधिकारी होता है और उसे साझेदारों के द्वारा दिये हुए हिसाब को स्वीकार करना पड़ता है।

लेकिन यदि फर्म का विलयन हो जाता है या हस्तान्तरण करने वाला साझेदार साझेदार नहीं रहता, तो हस्तान्तरणप्रापक को हस्तान्तरण करनेवाले साझेदार के उस अंश को प्राप्त करने का अधिकार होता है जो हस्तान्तरक ने फर्म की सम्पत्ति में लगाया है और इस प्रयोजन के लिए उसे फर्म के विलयन होने की तारीख से हिसाब लेने का अधिकार होता है।

### नाबालिग साझेदार के रूप में (Minor as a Partner)

चूँकि साझेदारी के निर्माण के अनुबन्ध में क्षमता आवश्यक होती है, इसलिए कोई नाबालिग स्वयं साझेदार नहीं बन सकता क्योंकि यदि वह साझेदार बनता है तो उसे इस दशा में साझेदार के अधिकार मिलेंगे और उसे एक साझेदार के दायित्व भी सहन करने पड़ेंगे, तभी वह साझेदारी के लाभों में शामिल हो सकता है। इस दशा में उसके संरक्षक को उनकी ओर से दूसरे साझेदारों के साथ समझौता करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में नियम इस प्रकार है

१. कोई नाबालिग किसी फर्म में साझेदार नहीं हो सकता, लेकिन उसे साझेदारी

के लाभो में शामिल किया जा सकता है। फर्म से उसको यह स्थिति साझेदारी के लिखित अनुपात से ही दी जा सकती है; उसे उसके ऊपर थोपा नहीं जा सकता। [धारा ३०-१]

२. नाबालिग को फर्म की ऐसी सम्पत्ति और लाभों में हिस्सा बँटाने का अधिकार होता है जिस पर सभी साझेदारों में समझौता हो जाता है। वह फर्म के लेखों को देख सकता है और फर्म के किसी भी लेखे की प्रतिलिपि भी कर सकता है। यह केवल लेखों को ही देख सकता है, अन्य पुस्तकों को नहीं, क्योंकि नाबालिग को फर्म की सब पुस्तकों को देख लेने देना खतरनाक है। कुछ पुस्तकों में गुप्त रहस्य हो सकते हैं जिन्हें साझेदारों को छिपाना पड़ता है। सिवाय उस अवस्था के जब कि फर्म से वह सम्बन्ध तोड़ देता है, वह अपनी सम्पत्ति या लाभ के अंश के लिए साझेदार पर मुकदमा नहीं चला सकता। केवल फर्म में लगायी हुई उसकी सम्पत्ति और लाभ का अंश ही फर्म के लिए दायी होता है। लेकिन जब तक वह नाबालिग है, वह स्वयं व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होता। [धारा ३०-२, ३ और ४]

३. उसके बालिग हो जाने पर या उसे यह मालूम हो जाने पर कि उसे एक साझेदार की सुविधा में और लाभ मिल गये हैं। एक आम सूचना (Public Notice) देनी पड़ती है कि वह उस फर्म का साझेदार बनना चाहता है या उससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहता है। यदि कोई ऐसी जन-सूचना नहीं देता तो वह छ महीना गुजरने के बाद फर्म का साझेदार बन जाता है। [धारा ३०-५]

४. जब कोई नाबालिग साझेदार बन जाता है तब उसके नाबालिग के अधिकार उस दिन तक चलते हैं जब तक कि वह साझेदार बन जाता है। परन्तु वह अन्य पक्षों के प्रति व्यक्तिगत रूप से फर्म के उन सब कामों के लिए भी दायी होता है जो कि उसके साझेदारी में प्रवेश करने के समय किये गये हों; और फर्म की सम्पत्ति और लाभो में उसका वही अंश होगा जिसका कि वह नाबालिग अवस्था में अधिकारी था। [धारा ३०-७]

५. जब कोई नाबालिग साझेदार न बनने की आम सूचना (Public Notice) दे देता है, तो उसके नाबालिग की हैसियत वाले अधिकार और दायित्व उसी दिन तक रहेंगे जब कि यह ऐसी आम सूचना देता हो कि वह सूचना देने के दिन से किसी भी कार्य के लिये दायी नहीं होता और उसे अपनी सम्पत्ति और लाभ के अंशों को प्राप्त करने के लिए दूसरे साझेदारों पर मुकदमा चलाने का अधिकार होता है। [धारा ३०-८]

## फर्म की समाप्ति (Dissolution of a Firm)

फर्म के व्यवसाय से साझेदारों के सम्बन्ध-विच्छेद को फर्म की समाप्ति कहते हैं।\* सन्निधम के अनुसार फर्म की समाप्ति तथा साझेदारी की समाप्ति में अन्तर है, जिसे संक्षेप में निम्नांकित प्रकार रखा जा सकता है—

फर्म की समाप्ति उस समय मानी जाती है जब कि समाप्ति के परिणामस्वरूप फर्म का कारबार खत्म कर दिया जाता है। किन्तु साझेदारी की समाप्ति का अर्थ अनिवार्य रूप से यह नहीं होता कि फर्म का कारबार भी बन्द हो जाय। इस प्रकार, यदि साझेदार इस बात के लिए सहमत हो कि किसी साझेदार की मृत्यु अथवा निवृत्ति के होते हुए भी फर्म का कारबार चालू रहेगा तो ऐसी दशा में साझेदारी की समाप्ति हो जाती है। किन्तु फर्म समाप्त नहीं होती, चूँकि फर्म का कारबार चालू रहता है। यह खास तरीके से ध्यान देने योग्य बात है कि यद्यपि किसी साझेदार की मृत्यु अथवा निवृत्ति की ओर गौर न करते हुए फर्म अपना व्यवसाय पुराने नाम से तो चालू ही रखती है या कानून की नजर में यह एक नयी फर्म मानी जाती है अथवा इसे पुनः निमित्त फर्म कहा जायगा।

- निम्नलिखित पाँच तरीके हैं जिनके अनुसार किसी फर्म को समाप्त किया जा सकता है—

१. समझौते के अनुसार समाप्ति (Dissolution by Agreement)—सब साझेदारों की अनुमति से अथवा साझेदारों के परस्पर अनुबन्ध से साझेदारी को समाप्त किया जा सकता है। [धारा ४०]

२. अनिवार्य समाप्ति (Compulsory Dissolution)—सब साझेदारों के दिवालिया होने पर अथवा एक साझेदार के अतिरिक्त अन्य सब साझेदारों के दिवालिया होने पर अथवा फर्म का व्यापार किसी भी कारण अवैधानिक होने पर फर्म की समाप्ति अनिवार्य होती है। [धारा ४१]

३. संभाव्य समाप्ति (Contingent Dissolution)—किसी प्रकार का अन्य समझौता न हो तो फर्म की समाप्ति निम्नांकित अवस्था में होती है—

(i) यदि फर्म निश्चित अवधि के लिए निर्माण की हुई हो तो उस अवधि की समाप्ति होने पर,

(ii) यदि किसी निश्चित हेतु अथवा व्यापार की पूर्ति के लिए फर्म का निर्माण हुआ तो इस हेतु अथवा व्यापार की पूर्ति होने पर,

(iii) किसी भी साझेदार की मृत्यु होने पर, तथा

(iv) किसी भी साझेदार के वैधानिक दिवालिया घोषित होने जाने पर फर्म की समाप्ति हो जाती है। [धारा ४२]

४ सूचना द्वारा समाप्ति (Dissolution by Notice)—यदि इच्छित साझेदारी

हो तो साझेदारों के इच्छानुसार किसी भी समय उसकी समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार की समाप्ति के लिए अगर कोई साझेदार शेष सब साझेदारों को फर्म की समाप्ति-सम्बन्धी लिखित सूचना देता है तो उस सूचना देने की तिथि से अथवा समाप्ति की यदि निश्चित तिथि सूचना में दी हो तो उस दिन से फर्म की समाप्ति हो जाती है। [धारा ४३]

५. न्यायालय द्वारा समाप्ति (Dissolution by Court) [धारा ४४]—किसी साझेदार के आवेदन करने पर न्यायालय निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है—

(i) किसी एक साझेदार के दिमाग खराब हो जाने पर अथवा पागल हो जाने पर (lunacy of a partner);

(ii) अभियोग चलानेवाले साझेदार के अतिरिक्त अन्य कोई एक साझेदार (partner) की हैसियत से काम करने के लिए स्थायीरूपेण अयोग्य हो गया हो (permanent incapacity of a partner);

(iii) अभियोग चलानेवाले साझेदार के अलावा अन्य कोई एक साझेदार किसी ऐसा कोई दुराचरण करता है जो व्यापार को हानिकार हो (mis-conduct of a partner);

(iv) अभियोग चलानेवाले साझेदार के अलावा अन्य कोई एक साझेदार जान-बूझकर अथवा बारम्बार फर्म के व्यवस्थापन-सम्बन्धी संलेख के विरुद्ध कार्य करता है अथवा व्यापार-सम्बन्धी अपने व्यवहार इस प्रकार करता है जिससे अन्य साझेदारों का उसके साथ फर्म में व्यापार करना असम्भव हो गया हो;

(v) अभियोग चलानेवाले साझेदार के अलावा अन्य किसी एक साझेदार ने फर्म में उसका जो हिस्सा अथवा लाभ है उसे किसी तीसरे व्यक्ति को पूर्णतः हस्तान्तरित कर दिया है अथवा उस पर प्रभाव रखा गया है अथवा उसे किन्हीं ऋणों के लिए बिक जाने दिया है (transfer, attachment or sales of a partner's share);

(vi) फर्म का व्यापार-संचालन बिना हानि के नहीं किया जा सकता (losing concern); तथा

(vii) अन्य कोई भी कारण जो समुचित एवं न्यायसंगत हो (dissolution just and equitable)। फर्म की समाप्ति के बाद भी जब तक समाप्ति की सूचना जनता को न दी जाय, साझेदार अन्य पक्षों के प्रति किये गये किन्हीं भी व्यवहारों के लिए उसी प्रकार दायी होते हैं जैसे कि फर्म की समाप्ति के पूर्व थे। इसलिए समाप्ति की सूचना देना साझेदारों के लिए अनिवार्य है। परन्तु कोई भी मृत साझेदार अथवा वह साझेदार जिसकी साझेदारी का ज्ञान व्यवहार करने वाले पक्षों को नहीं है वे समाप्ति की तिथि के बाद किये गये किन्हीं भी व्यवहारों के लिए तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी नहीं रहते। [धारा ४५]

**समाप्ति की विधि (Conduct or Product of Dissolution)**

धारा ४६ और ४७ के अनुसार समाप्ति के बाद भी समाप्ति के लिए जो आवश्यक बातें हैं उनसे सम्बद्ध साझेदारों का अधिकार एवं दायित्व वही रहता है जो कि समाप्ति के पहले था। इसी प्रकार समाप्ति के बाद प्रत्येक साझेदार अथवा उसके प्रतिनिधि को यह अधिकार होगा कि वह फर्म की समाप्ति का नियोजन फर्म

के ऋणों एवं दायित्वों के भुगतान में करे तथा जो राशि शेष बचे उसको साझेदारों में अथवा प्रतिनिधियों में उनके हिस्सों के अनुसार बाँट दे।

यदि फर्म की समाप्ति किसी साझेदार की मृत्यु से अथवा दिवालिया हो जाने से होती है तो शेष साझेदारों को, जो जीवित हैं अथवा दिवालिया नहीं हुए, उनको समाप्ति की विधि पूर्ण करने का अधिकार होगा। समाप्ति के समय यदि समाप्ति की पद्धति से साझेदार सहमत नहीं होते तो न्यायालय समाप्ति की विधि के लिए रीसीवर (Receiver) अथवा व्यवस्थापक बहाल करेगा अथवा यदि आवश्यकता हो तो न्यायालय किसी भी साझेदार को जो समाप्ति के कार्यों में बाधा देता हो, समाप्ति के कार्य में हस्तक्षेप करने पर रोक लगा देगा। साझेदारों द्वारा किसी संविदा के अधीन समाप्ति पर किसी फर्म का लेखा निम्नलिखित नियमों के अनुसार निबटाया जायगा—

**नुकसान को पूरा करना** (जिसमें पूँजी की कमी भी शामिल है)— सबसे पहले नुकसान को पूरा किया जायगा। इसके बाद पूँजी से और अन्त में यदि आवश्यक हो तो व्यक्तिगत रूप से साझेदारों द्वारा उन्हीं अनुपातों में जिनमें वे लाभ के हिस्से को बाँटते हैं।

### हिसाब-किताब का निबटारा (Settlement of Accounts)

साधारणतः साझेदारी संलेख अथवा समझौता (partnership deed) में यह लिखा रहता है कि फर्म के अन्तिम हिसाब-किताब का निबटारा किस तरह किया जायगा और उसी के अनुसार निबटारा होता भी है। जहाँ इस तरह की बातें साझेदारी संलेख (partnership deed) में नहीं लिखी रहती वहाँ साझेदारी सन्निधिम (Partnership Act) की धारा ४८ के अनुसार हिसाब-किताब का निबटारा होता है। इस धारा में हिसाब-किताब के निबटारे से सम्बद्ध एक प्रमुख मुकदमे **गार्नर बनाम मर्रे\*** (Garner vs. Murray) का वर्णन है और उसी के अनुसार फर्म की समाप्ति के बाद हिसाब-किताब का निबटारा होता है। इस मुकदमे की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं जो धारा ४८ से मिलती-जुलती हैं—

(क) (i) जहाँ फर्म को नुकसान हुआ है या फर्म की पूँजी कम हो गयी है (capital has dwindled) वहाँ या वैसे किसी भी हालत में यदि कोई अविभाजित (undistributed) नफा हो तो वह सबसे पहले ऐसी हानियों के भुगतान में और पूँजी की न्यूनता (deficiency of capital) को पूरा करने में खर्च किया जायगा।

(ii) यदि नफा ज्यादा न हो (profits prove insufficient) तो नुकसान के भुगतान के लिए पूँजी का उपयोग होगा। इस पर भी अगर नुकसान की पूर्ति न हो तो साझेदारों को अपनी पृथक् सम्पत्ति में से यथानुपात (pro-rata) अर्थात् उस अनुपात में जिसमें लाभ-प्राप्ति की दशा में उसका हिस्सा पाने का उन्हें अधिकार होता, अंशदान करना होगा।

(ख) दूसरा नियम जो कि फर्म की सम्पत्ति के बँटवारे से सम्बद्ध है, इस प्रकार है—

(i) फर्म की सम्पत्तियाँ, जिनमें साधियों के शुरू के अंशदान और पूँजी की

\* Garner vs. Murray (1904) 73 L. J. Ch. 66.

न्यूनता को पूरा करने के लिए बाद में दिये गये अंशदान शामिल हैं, सबसे पहले फर्म के पहले उन कर्जों को चुकाने में प्रयुक्त करनी होगी जो तीसरे पक्ष को देय हैं।

(ii) अगर तीसरे पक्ष के बकाये को देने के बाद कुछ धन बच जाता है तो यह बचा धन प्रत्येक साझेदार को उस अग्रिम (advance) की अदायगी में दिया जायगा जो प्रत्येक के द्वारा अंशदत्त पूँजी से ऊपर लिया गया हो।

(iii) अगर वह राशि अग्रिमों के पूरे भुगतान के लिए काफी न हो तो अग्रिमों का भुगतान यथानुपात करना चाहिए।

(iv) अगर इन अग्रिमों के भुगतान के बाद कुछ धन बचे तो वह पूँजी के खाते में साझियों को देय है।

(v) इसके बाद भी अगर कुछ और धन बच जाता है तो वह यथानुपात अर्थात् उस अनुपात से जिससे उन्हें लाभ में हिस्सा पाने का अधिकार था, साझेदारों में बाँट दिया जायगा।

(vi) अगर फर्म की सम्पत्ति काफी नहीं है और साझेदारों ने लाभ और हानि बराबर-बराबर बाँटने का समझौता किया है, पर फर्म की पूँजी में असमान (unequal) राशियाँ लगायी हैं, तो प्रतिकूल समझौता के अभाव में पूँजी की न्यूनता (deficiency) को नुकसान समझा जायगा जिसे साझेदारों द्वारा बराबर हिस्से देकर पूरा कर दिया जाना चाहिए। इसका नतीजा यह होगा कि साझेदारों द्वारा अन्तिम रूप से उठाये जानेवाले नुकसान बराबर हो जायेंगे। इन अंशदानों (contributions) का वास्तविक (actual) होना आवश्यक नहीं। वे नेशनल (national) हो सकते हैं, अर्थात् साझेदारों की पूँजी के विभाजन के रूप में दी गयी राशियों के समंजन (adjustment) द्वारा किये जा सकते हैं।

(vii) यदि कोई साझेदार दिवालिया हो और न्यूनता की पूर्ति के लिए उससे अंशदान के रूप में कुछ भी वसूल नहीं किया जा सकता तो दिवालिया साझेदार अंशदान करने के लिए दायी नहीं होंगे। न्यूनता का अपना-अपना अंश देने के बाद साझेदारों को उनकी पूँजी की वापसी के रूप में दी गयी राशि यथानुपात (rateably) अदा की जायगी।

फिर, धारा ४९ के अनुसार निजी तथा फर्म के कर्जों के भुगतान में कभी-कभी कठिनाई पैदा होती है जब फर्म की सम्पत्ति फर्म के कर्जों के भुगतान के लिए काफी नहीं (insufficient) होती, या जहाँ साझेदार खुद ही दिवालिया हो गये हों, या अन्य प्रकार के निजी या पृथक् महाजनों (private or individual creditors) के भुगतान करने में समर्थ नहीं हैं। ऐसी हालत में साझेदारी के महाजन (partnership creditors) और साझेदारों के महाजन (partners' private creditors) में खींचातानी (scramble) पैदा होने की सम्भावना है, और यह कठिन प्रश्न पैदा हो सकता है कि बचे धन (available funds) को उनमें किस तरह बाँटा जाय। यह धारा यह बतलाती है कि साझे के महाजन का पहले साझे की सम्पत्तियों से भुगतान किया जाय और इसी प्रकार निजी महाजन का साझेदारों की निजी सम्पत्ति से भुगतान किया जाय। दोनों हालतों में अगर कुछ बचा रहे तो दूसरे प्रकार के महाजनों को हिस्सा पाने का हक होगा। यह अवश्य ही ध्यान रहे कि यह नियम सिर्फ तब लागू होता है जब यह प्रश्न पैदा हो कि फर्म के कर्ज और निजी कर्ज साझेदारों की संयुक्त और पृथक् सम्पत्ति से किस क्रम (order) में चुकाये जायें। इससे किसी साझेदार को यह आग्रह करने का हक नहीं रह जाता कि फर्म के महाजनों को उस साझेदार के विरुद्ध कार्यवाही करने से पहले फर्म की



सम्पत्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिए। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, सभी साझेदार फर्म के सब कार्यों के लिए संयुक्त और पृथक् रूप से दायी होते हैं और इसलिए फर्म का महाजन फर्म के विरुद्ध, या उनमें से किसी एक या अधिक के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए स्वतन्त्र है।

### प्रीमियम वापस करने का अधिकार (Right to return of Premium)

यदि किसी साझेदारी में कोई नया साझेदार प्रवेश करता है तो वह अपने हिस्से के अनुसार पूँजी लगाने के अलावा कुछ रुपया अलग से अन्य साझेदारों को उनके व्यक्तिगत लाभ के लिए देता है, जिसके प्रतिफलस्वरूप दोनों को फर्म में किसी प्रकार का हित या अधिकार प्राप्त नहीं होता। ऐसा प्रीमियम (premium) चुकाने पर यदि निश्चितता के पहले किसी साझेदार की मृत्यु हुए बिना फर्म को तोड़ दिया जाता है तो प्रीमियम की वापसी तब कर दी जाती है, यदि—

- (i) फर्म उस साझेदार के अपने दुराचरण (misconduct) के कारण न टूटा हो, या
- (ii) फर्म के टूटने से पहले प्रीमियम को वापस करने का समझौता हुआ हो। (धारा ५१)

कपट अथवा मिथ्या वर्णन के कारण साझेदारी अनुबन्ध निरस्त होने पर अधिकार (Rights where Partnership Contract is rescinded for fraud or misrepresentation)

अगर साझेदारी स्थापित करने वाला कोई अनुबन्ध उससे सम्बद्ध किसी पक्षकार क कपट या मिथ्या वर्णन के आधार पर तोड़ दिया जाता है, तब तोड़ने के अधिकार रखनेवाले पक्षकार को, किसी दूसरे अधिकार को प्रभावित किये बिना, निम्नलिखित अधिकार होंगे—

- (i) किसी ऐसे धन के लिए जो उसने फर्म में हिस्सा खरीदने के लिए अथवा पूँजी के रूप में दिया हो, फर्म के कर्ज चुकाने के बाद फर्म की शेष सम्पत्ति पर विशेषाधिकार अथवा उसको रोक रखने का अधिकार;
- (ii) फर्म के कर्ज के भुगतान में जो धन उसने चुकाया हो, उसके विषय में फर्म के कर्जदाता के रूप में अपना पद कायम करने का अधिकार; तथा
- (iii) फर्म के सभी कर्जों के खिलाफ उस साझेदार अथवा उन साझेदारों से क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार जो कपट अथवा मिथ्या वर्णन के दोषी हों। (धारा ५२)

फर्म का नाम अथवा फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग करने से रोकने का अधिकार (Right to restrain from use of firm's name or firm's property)

जब किसी फर्म की समाप्ति हो जाती है तब जब तक फर्म के कामों का पूरी तरह से समापन न हो जाय तब तक साझेदारों के बीच किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, प्रत्येक साझेदार या उसका प्रतिनिधि किसी दूसरे साझेदार या उसके प्रतिनिधि को फर्म के नाम में उसी प्रकार का कारोबार चलाने अथवा अपने लाभ के लिए फर्म की किसी सम्पत्ति का प्रयोग करने से रोक सकता है।

लेकिन जब किसी साझेदार अथवा उसके प्रतिनिधि ने फर्म की साख खरीद ली है तब उसे फर्म का नाम प्रयोग करने का अधिकार हो जाता है। [धारा ५३]

व्यापार में रोक लगाने वाले अनुबन्ध (Agreements in restraint of Trade)

फर्म के समाप्त हो जाने पर अथवा समाप्ति की आशंका होने से, साझेदार एक ऐसा अनुबन्ध कर सकते हैं कि उनमें से कुछ अथवा सब एक निश्चित अवधि के लिए अथवा एक निश्चित सीमाओं के अन्दर फर्म के कारोबार की तरह का ही कोई कारोबार नहीं करेंगे। भारतीय प्रसंविदा सन्निधिम की धारा २७ की व्यवस्था का कोई ध्यान न देते हुए, ऐसा अनुबन्ध वैध होगा अगर लगाये हुए प्रतिबन्ध उचित है। [धारा ५४]

फर्म की समाप्ति पर साख (Goodwill on Dissolution)

फर्म की समाप्ति के बाद फर्म के लेखे का निबटारा करते समय फर्म की साख, साझेदारों के बीच अनुबन्ध के अधीन, फर्म की सम्पत्ति में शामिल की जायगी और उसे अलग से अथवा फर्म की और सम्पत्ति के साथ बेचा जा सकता है।

साख के क्रेता तथा विक्रेता के अधिकार (Rights of Buyer and Seller of Goodwill)

जब फर्म की समाप्ति के बाद फर्म की साख बेच दी जाती है, तब कोई साझेदार क्रेता से प्रतियोगिता करनेवाला कारोबार कर सकता है और वह ऐसे कारोबार का विज्ञापन भी कर सकता है। लेकिन, जब तक कि उसके और क्रेता के बीच कोई और समझौता न हो गया हो, वह निम्नलिखित काम नहीं कर सकता है—

- (i) वह फर्म के नाम का प्रयोग नहीं कर सकता,
- (ii) वह ऐसा प्रदर्शन नहीं कर सकता कि वह फर्म का कारोबार चला रहा है, अथवा
- (iii) वह उन व्यक्तियों को आमन्त्रित नहीं कर सकता जो फर्म की समाप्ति से पहले फर्म से व्यवहार कर रहे थे।

फर्म की साख बेचने के समय कोई भी साझेदार क्रेता के साथ यह समझौता कर सकता है कि वह एक निश्चित अवधि के लिए अथवा निश्चित स्थानीय सीमाओं के अन्दर फर्म के कारोबार की तरह का ही कोई कारोबार नहीं करेगा। भारतीय प्रसंविदा विधान की धारा २७ की व्यवस्था का कोई ध्यान न देते हुए, ऐसा अनुबन्ध सही होगा अगर लगाये गये प्रतिबन्ध उचित हैं। [धारा ५५]

समाप्ति के बाद साझेदारी के अधिकार तथा दायित्व (Rights and Obligations of Partners after Dissolution)

फर्म के समाप्त होने के बाद साझेदारों के अधिकार तथा दायित्व उन सभी बातों के सम्बन्ध में रहते हैं जो साझेदारों के कारोबार के समाप्त होने के सम्बन्ध में आवश्यक हों।

## फर्म की रजिस्ट्री (Registration of a Firm)

धाराएँ ५६-६६

सन् १९३२ के पहले फर्म के पंजीयन (registration) का कोई नियम ही न था; किसी फर्म का पंजीयन (registration) होता ही न था, किन्तु अब सन् १९३२ के साझेदारी अधिनियम के अनुसार फर्म का रजिस्ट्रेशन हो सकता है। फिर भी, फर्म का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य नहीं है। यह पूर्णतया साझेदारों की स्वेच्छा पर निर्भर है। चाहे तो वे फर्म की रजिस्ट्री करावें या नहीं। फिर भी, नियम इतना गम्भीर है कि यदि फर्म की रजिस्ट्री नहीं करायी जाय तो उस व्यापार में अनेक प्रकार की अवक्तताएँ (disabilities) आ सकती हैं। अतः एक प्रकार से देखा जाय तो फर्म की रजिस्ट्री कराना आवश्यक हो जाता है। रजिस्ट्री कराने के लिए सबसे पहला काम यह है कि सभी साझेदारों को मिलकर एक फार्म भरना पड़ता है जिसमें व्यापार का विवरण (statement) तैयार करना पड़ता है। इसके बाद उस दरखास्त पर सभी साझेदार हस्ताक्षर करके नियत फीस (fees)\* के साथ फर्मों के रजिस्ट्रार (registrar of firms) के पास दाखिल करते हैं। इस फार्म (form) में निम्नलिखित बातों का विवरण देना आवश्यक होता है—

(i) फर्म का नाम, जिसमें क्राउन (crown), सम्राट् (emperor), सम्राज्ञी (empress), साम्राज्य (empire), साम्राज्यिक (imperial), राजा (king), रानी (queen) और राज्याश्रय (royal patronage) का प्रयोग बिना केन्द्रीय सरकार की अनुमति के नहीं होना चाहिए;

(ii) फर्म के व्यापार का स्थान अथवा प्रमुख व्यापारिक स्थान;

(iii) अन्य स्थानों का नाम जहाँ फर्म व्यापार करती है;

(iv) प्रत्येक साझेदार के फर्म में शामिल होने की तिथि;

(v) साझेदार के पूरे नाम और उनके स्थायी पते; और

(vi) फर्म की अवधि।

जब रजिस्ट्रार को पूरी तरह सन्तोष हो जायगा कि धारा ५८ के सभी निबन्धों (provisions) का ठीक-ठीक पालन किया गया है, तब वह उस विवरण की सभी बातें अपने एक रजिस्टर (register) में, जिसे register of firms कहते हैं, लिख लेगा और उस विवरण को नत्थी कर लेगा। [धारा ५९]

आवश्यक सूचना और निश्चित शुल्क भेजकर फर्म की निम्नलिखित बातों का रजिस्ट्रेशन भी रजिस्ट्रार ऑफ फर्म्स (registrar of firms) से कराया जा सकता है—

(i) किसी रजिस्टर्ड फर्म (registered firm) के नाम या प्रमुख स्थान में परिवर्तन। [धारा ६०]

\* हरेक फर्म के लिए रजिस्ट्री फीस तीन रुपया है।

(ii) किसी स्थान पर व्यापार बन्द करना या किसी नये स्थान पर व्यापार आरम्भ करना । [धारा ६१]

(iii) रजिस्ट्री हुई फर्म के किसी साझेदार का नाम अथवा स्थायी पते में परिवर्तन । [धारा ६२]

(iv) किसी रजिस्टर्ड फर्म के संविधान (constitution) में किसी प्रकार का परिवर्तन । (धारा ६३ (१))

(v) रजिस्ट्री हुई फर्म में किसी नाबालिग के साझेदार बनने अथवा न बनने का निर्णय । [धारा ६३ (२)]

इस प्रकार, फर्म के रजिस्टर (register of firms) में जिस किसी विवरण, अथवा सूचना आदि का वर्णन होगा, वह किसी भी व्यक्ति के विषय में जिसने इसमें हस्ताक्षर किये हैं, उस तथ्य (fact) का पूर्ण प्रमाण (conclusive proof) माना जायगा जिसका उसमें वर्णन हो । [धारा ६८]

### रजिस्ट्री न कराने का प्रभाव (Effect of Non-Registration)

फर्म की रजिस्ट्री नहीं कराने में निम्नलिखित प्रभाव आ जाते हैं\*—

१. फर्म का कोई साझेदार साझेदारी की संविदा के नियमों के द्वारा प्राप्त अधिकारों के लिए किसी भी न्यायालय में फर्म या अन्य किसी साझेदार के खिलाफ मुकदमा नहीं चला सकता ।

२. वह फर्म खुद ही किसी न्यायालय में तीसरे पक्ष के विरुद्ध मुकदमा नहीं चला सकती ।

रजिस्ट्री न कराने से निम्नलिखित अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । [धारा ६९]—

१. अन्य पक्ष या फर्म या किसी साझेदार के खिलाफ मुकदमा चलाने का अधिकार ।

२. किसी साझेदार को फर्म के समाप्त (dissolve) करने के लिए अथवा समाप्त हो जाने पर अपना हिसाब माँगने के लिए तथा फर्म के नाम या सम्पत्ति का हिस्सा लेने के लिए मुकदमा चलाने का अधिकार ।

३. सरकारी रिसीवर (official receiver) का किसी दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति को उगाहने का अधिकार ।

४. उन फर्मों अथवा उनके साझेदारों के अधिकार, जिसके व्यापार का कोई स्थान भारतवर्ष में नहीं है ।

५. यदि किसी तीसरे पक्ष ने उस फर्म के नाम की नकल की हो या उसके व्यापारिक चिह्न (trade mark) या पेटेंट (patent) का उपयोग किया हो तो उस फर्म के द्वारा मुकदमा चलाने का अधिकार ।

६. १००) एक सौ रुपये तक के लिए मुकदमा करने का अधिकार ।

### रजिस्ट्री कराने से लाभ (Advantages of Registration)

फर्म की रजिस्ट्री कराना या न कराना साधारणतः फर्म अथवा सम्बद्ध साझेदारों की अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है । किन्तु रजिस्ट्री करा लेने से फर्म

को, उसके लेनदारों को तथा उसके साझेदारों को निम्नलिखित तरीके से कुछ लाभ प्राप्त होते हैं—

**फर्म (Firm)**— जिस फर्म की रजिस्ट्री नहीं हुई है वह अन्य पक्षों के खिलाफ अपने अधिकारों को लागू करने के लिए दीवानी मुकदमा या कोई भी साझेदार जिसकी रजिस्ट्री नहीं है वह अन्य पक्षकारों अथवा अपने साझेदारों के खिलाफ दावों के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकता।

**ऋणदाता (Creditor)**— जिस फर्म का रजिस्ट्रेशन हो गया है उसका कोई भी साझेदार जिसका नाम रजिस्टर में दर्ज हो गया है, यह नहीं कहेंगा या नहीं कह सकता है कि वह साझेदार नहीं है। इसमें फर्म के साथ व्यवहार करनेवाले महाजनो को साझेदार से झूठमूठ मना करने के अथवा किसी फर्म के साझेदारों द्वारा अपने दायित्व से पीछे हटने के विरुद्ध पर्याप्त संरक्षण प्राप्त होंगे।

### प्रवेश करनेवाला साझेदार (In-coming Partner)

किसी फर्म में प्रवेश करनेवाला साझेदार यदि अपना रजिस्ट्रेशन नहीं कराता है तो वह अपने साझेदारों से अपना भाग या हिस्सा माँगने में असमर्थ रहने का खतरा उठाता है और अपने साझेदारों पर पूर्णतया निर्भर रहना पड़ता है। यदि उन्होंने हिस्से दिये तो ठीक है और नहीं तो मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

### अलग होनेवाला साझेदार (Out-going Partner)

जब कोई साझेदार साझेदारी से अलग होता है तो उसको अपने तथा फर्म के हित में चाहिए कि वह रजिस्ट्रार को अपने जाने की सूचना दे दे। अगर वह सूचना नहीं देता है तो साझेदारी सन्निधम इस बात का नियोजन करता है कि उम समय तक वह निवृत्त या निष्कासित साझेदार फर्म के कार्यों के लिए दायी रहता है और फर्म भी उसके उन कार्यों के लिए दायी रहती है जो उसने फर्म की ओर से किये हों।

## University Questions

### 1. Write short notes on—

(i) Partnership Deed (साझेदारी सन्लेख), (ii) Sleeping Partner (सुप्त साझेदार) (iii) Holding Out Partner (प्रदर्शन द्वारा साझेदार), (iv) Minor as Partner (नाबालिग एक साझेदार के रूप में), (v) Implied Authority of Partner (एक साझेदार के गर्भित अधिकार), (vi) Nominal Partner (नाममात्र का साझेदार) (vii) Act of the firm (फर्म का कार्य) (viii) Propetry of the firm (फर्म की सम्पत्ति), (ix) Dormant Partner (निष्क्रिय साझेदार) (x) Limited Partnership at Will, (xi) Co-ownership (सह-स्वामित्व)।

2. Define 'Partnership'. What are the essential elements of Partnership ?

(साझेदारी की परिभाषा दीजिए। साझेदारी के आवश्यक लक्षण क्या हैं ?)

3. Define 'Partnership'. How would you determine, whether a group of persons does not constitute a partnership ?

(साझेदारी की परिभाषा दीजिए। आप कैसे निश्चित करेंगे कि व्यक्तियों का

एक समूह साझेदारी है अथवा नहीं ?)

4. What are the tests for determining the existence of a partnership ? If a partner transfers his share in the partnership by way of mortgage, what are the rights of the transferee ?

(साझेदारी की विद्यमानता के निर्णय की जाँच किस तरह होती है ? अगर कोई साझेदार रेहन के आधार पर साझेदारी का अपना हिस्सा हस्तान्तरित करता है तब हस्तान्तरित की क्या अधिकार है ?)

5. What tests would you apply in determining the existence of partnership ? Is profit-sharing a conclusive evidence of the existence of Partnership ?

(साझेदारी की विद्यमानता के निर्णय के लिए आप क्या जाँच करेंगे ? क्या किसी व्यापार के लाभ में भाग लेना ही साझेदारी की विद्यमानता का निश्चयात्मक प्रमाण है ?)

6. Explain the following with illustrations—

(a) There may be joint-ownership but no partnership.

(b) There may be profit-sharing but no partnership.

(c) Partnership at Will and Particular Partnership.

[निम्नलिखित की व्याख्या उदाहरण-सहित कीजिए—

(अ) सहस्वामित्व हो सकता है, किन्तु यह साझेदारी नहीं होगी।

(ब) लाभ में भाग लिया जा सकता है, किन्तु इससे साझेदारी की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

(स) ऐच्छिक साझेदारी और विशेष साझेदारी।]

7. "A minor binds others, but is never bound by others." Explain this statement. What is his position under the Indian Partnership Act ?

("एक नाबालिग दूसरों को बन्धन में डालता है, परन्तु दूसरों द्वारा बन्धन में नहीं डाला जा सकता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। भारतीय साझेदारी सन्निधय के अन्दर उसकी क्या स्थिति है ?)

8. Who can become a Partner ? Can a minor be admitted as a Partner in a firm and can he sue and be sued in the name of the firm ? What protection are afforded by law to him regarding his liabilities ?

(कौन साझेदार हो सकता है ? क्या एक नाबालिग किसी एक फर्म में साझेदार के रूप में शामिल किया जा सकता है तथा क्या वह फर्म के नाम पर मुकदमा दायर कर सकता है या उसके ऊपर मुकदमा किया जा सकता है ? उसके दायित्व के सम्बन्ध में कानून की तरफ से क्या सुरक्षा प्रदान की गयी है ?)

9. Can a minor be admitted to Partnership ? If so, what will be his rights and liabilities during his minority and after he has attained majority ?

(क्या एक नाबालिग साझेदारी के व्यवसाय में शामिल किया जा सकता है ? अगर हाँ, तो नाबालिग रहने भर में तथा बालिग होने पर उसके क्या अधिकार और दायित्व होंगे ?)

10. Describe the law in India regarding the registration of Partnership and the consequences of non-registration.

(साझेदारी के रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में भारत के कानून की व्याख्या कीजिए तथा बतलाइए कि रजिस्ट्रेशन न करने का क्या परिणाम होता है।)

11. What is the effect of non-registration of a partnership firm as regards the enforcement of the rights of—

(i) Partners inter se; (ii) a partner against the firm; (iii) the firm against a partner; (iv) the firm against third parties; and (v) third parties against the firm

[साझेदारी की रजिस्ट्री न कराने का, (i) साझेदारों के बीच, (ii) फर्म के विरुद्ध एक साझेदार का, (iii) एक साझेदार के विरुद्ध फर्म का, (iv) तीसरे पक्षकारों के विरुद्ध फर्म का तथा (v) फर्म के विरुद्ध तीसरे पक्षकारों के अधिकारों को लागू करने के सम्बन्ध में क्या प्रभाव पड़ते हैं?]

12. What is meant by 'Estoppel'? Define a holding-out partner. Discuss his liabilities to the public as well as to other members of the firm.

(‘अवरोध’ का क्या मतलब है? प्रदर्शन द्वारा साझेदार की परिभाषा दीजिए। जनता के प्रति तथा फर्म के दूसरे सदस्यों के प्रति उसके क्या दायित्व होते हैं?)

13. Explain the position of a Partner with regard to—

- (i) Liabilities existing prior to the time when he is a partner;
- (ii) Liabilities incurred by the firm when he has retired;
- (iii) At the time of his retiring.

[निम्नलिखित के सम्बन्ध में साझेदार की स्थिति का वर्णन करें—

- (i) साझेदार होने के पहले विद्यमान रहनेवाला दायित्व;
- (ii) निवृत्त हो जाने पर फर्म के द्वारा दायित्व उत्पन्न करने; तथा
- (iii) उसके निवृत्त हो जाने के समय से सम्बद्ध।]

14. Describe the mutual rights and liabilities of partners in a firm when there is no contract to the contrary between them in this connection.

(एक फर्म में साझेदारों के पारस्परिक अधिकारों तथा कर्तव्यों का वर्णन कीजिए जब उनके मध्य इस सम्बन्ध में कोई विपरीत समझौता नहीं है।)

15. What are the remedies of other partners, if

- (i) a partner has become a member of a rival firm doing business of the same nature;
- (ii) a partner has become permanently invalid;
- (iii) a partner carries on a business competing with that of the firm after his retirement.

[साझेदारों को क्या उपचार प्राप्त है, अगर

- (i) एक साझेदार प्रतियोगी फर्म का मेम्बर हो गया है, जो उसी प्रकार का व्यवसाय करता है;
- (ii) एक साझेदार व्यक्तिगत रूप से अयोग्य हो गया है;
- (iii) एक साझेदार अवकाश ग्रहण करने के बाद फर्म से प्रतियोगिता करनेवाला व्यापार करता है।]

16. What contracts although they are in restraint of trade or business are stated to be valid in the Partnership Act? Give examples.

(कौन-कौन से अनुबन्ध, यद्यपि वे व्यापार अथवा व्यवसाय में रोकटोक डालने

वाले हैं, साझेदारी सन्निधय में मान्य कहे गये हैं ? उदाहरण दीजिए ।)

17. What is meant by the 'implied authority' of a partner ? What acts are included or excluded from the same ?

(एक साझेदार के 'गर्भित अधिकार' का क्या मतलब है ? इसमें कौन-कौन से काम शामिल किये जाते हैं और कौन-कौन से नहीं ?)

18. How far is a firm liable to third parties for acts of an individual partner ? Can a firm be liable for the wrongful acts of a partner ?

(एक व्यक्तिगत साझेदार के कार्यों के लिए तीसरे पक्षकारों के प्रति फर्म कहाँ तक उत्तरदायी है ? क्या एक फर्म एक साझेदार के गलत कामों के लिए दायी हो सकती है ?)

19. "A partner is the agent of the firm for purposes of the business of the firm." Discuss the law regarding a partner's implied authority to bind the firm for his acts.

(“फर्म के व्यवसाय के उद्देश्यों के लिए एक साझेदार फर्म का एजेंट है।” इनकी व्याख्या कीजिये। एक साझेदार के अपने कामों के लिए फर्म को बाध्य करने के गर्भित अधिकार-सम्बन्धी कानून की व्याख्या कीजिए।)

20 Discuss the liability of the firm in case of (a) fraud; (b) breach of duty, and (c) misappropriation of cash by a partner.

[एक फर्म में साझेदारों के दायित्व (क) कपट, (ख) कर्तव्य-भंग, तथा (ग) एक साझेदार द्वारा नकद मुद्रा के दुरुपयोग के सम्बन्ध में क्या हैं ? वर्णन करें।]

Can a Partner—(a) file a suit to recover money from persons indebted to the firm; (b) withdraw a suit filed on behalf of the firm ?

(क्या एक साझेदार—(क) फर्म के ऋणी से मुद्रा वसूल करने के लिए मुकदमा कर सकता है; (ख) फर्म की तरफ से किये गये मुकदमे को वापस ले सकता है ?)

21. What is meant by dissolution of a firm ? State how and under what circumstances a firm may be dissolved. State the rules regulating the mode of settlement of accounts of a firm after dissolution.

(फर्म की समाप्ति का क्या मतलब है ? कैसे और किन परिस्थितियों में एक फर्म की समाप्ति हो सकती है ? साझेदारी की समाप्ति के बाद एक फर्म के हिसाब-किताब के निबटारे के नियम का वर्णन कीजिये।)

### • Practical Problems

22. निम्नलिखित का उत्तर दीजिए —

(i) A and B, who are partners, borrowed money from C. Eventually C sued them on the loan and obtained a degree which was not satisfied. Subsequently C discovered that D was a partner with A and B at the date of loan. Discuss the rights of the parties.

[यहाँ पर A और B द्वारा लिये गये कर्ज के लिए D उत्तरदायी है। किन्तु D दो शर्तों के पूरा होने पर ही उत्तरदायी हो सकता है— (i) जिस प्रकार का व्यवसाय फर्म करती है उसी प्रकार के व्यवसाय को चलाने के लिए कर्ज लिया गया है तथा (ii) साझेदारी सन्ध (Partnership Agreement) इस प्रकार के कर्ज लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता हो। इस प्रश्न में A और B के खिलाफ विक्री



कार्यान्वित नहीं हो सकी है। अतः D पर C मुकदमा कर कर्ज की रकम वसूल कर सकता है, किन्तु ऊपर की दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है।]

(ii) A, B and C are partners. C, retires from partnership and A and B take D into partnership continuing the old name of the firm. A customer deals with the firm as newly constituted without notice of the change. Can he make C along with A and B liable to him ?

[धारा ३२ (३) के अनुसार ग्राहक A को B के साथ उत्तरदायी ठहरा सकता है क्योंकि उसे परिवर्तन की कोई सूचना नहीं थी।]

(iii) A, B and C enter into partnership for a period of two years. Can B and C expel A from the partnership for A's misconduct in the affairs of the partnership business ?

[धारा ३३ (१) के अनुसार B और C साझेदारी व्यापार से A को बहुमत के आधार पर अनुबन्ध द्वारा दिये गये अधिकार को सद्भावना के साथ प्रयोग करने के अलावा निकाल नहीं सकते।]

(iv) A, B and C enter into a partnership agreement under which C is not liable for losses. D files suit against A, B and C. Examine the position of C. (I. A. S. 1953)

[धारा ४ के अनुसार साझेदारी के सभी आवश्यक लक्षण मौजूद हैं। केवल क्षति के लिए उत्तरदायी न होना C को साझेदार बनने से नहीं रोक सकता। अतः C दूसरे साझेदारों के साथ D के प्रति उत्तरदायी है।]

(v) A, B and C agree to divide the profits equally, but the loss if any, is to be borne by A alone. Is it a case of partnership ?

[धारा ४ के अनुसार साझेदारी के सभी आवश्यक लक्षण का होना अत्यन्त आवश्यक है। अगर साझेदारी के सभी आवश्यक लक्षण वर्तमान हैं, तब केवल A के द्वारा सभी क्षति को सहन करना फर्म को साझेदारी फर्म कहलाने में बाधक नहीं हो सकता।]

(vi) X and Y carry on a partnership business under the name and style of Lucknow Dairy Co. X retires from business and Z is admitted to the firm as a new partner. A creditor of the firm institutes a suit against X, Y and Z for the recovery of Rs. 5,000. Is X liable for the debts of the firm ? Give reasons for your answer.

[प्रश्न से यह मालूम होता है कि महाजन द्वारा कर्ज उस समय दिया गया था जब X भी साझेदार था। धारा २५ के अनुसार X, व्यक्तिगत रूप से तथा संयुक्त रूप से भी उत्तरदायी होगा। अगर कर्ज उस समय नहीं दिया गया हो जब X साझेदार था तब धारा ३२ (३) के अनुसार अगर X ने फर्म से अलग होने की सूचना नहीं दी है तब वह उत्तरदायी होगा।]

(vii) A and B carry on business in partnership as bankers. A receives a sum of money on behalf of the firm from C but does not tell B about it and appropriates it to his own use. Is the partnership firm liable to make good the money to C ?

[धारा २७ के अनुसार साझेदारी फर्म C की क्षति को पूरा करने के लिए बाध्य है।]

(viii) A and B are co-owners of a house let to a paying guest. A and B divide the net profits between them. Are A and B partners ?

[प्रश्न से ही यह साफ मालूम होता है कि A और B सह-स्वामी हैं, साझेदार नहीं हैं। धारा ६ की व्याख्या २ के अनुसार सिर्फ किसी कारबार के लाभ में भाग लेना ही साझेदारी की विद्यमानता का निश्चयात्मक प्रमाण नहीं है। इसलिए A और B साझेदार नहीं हैं।]

(ix) A and B occasionally buy gold from the market, make ornaments therefrom with the help of a goldsmith in their employment and sell the ornaments at a profit. The profits are shared between them. Subsequently A takes an advance from a customer on account of ornaments and runs away. Discuss B's Legal position.

[धारा ४ के अनुसार A और B साझेदार हैं, क्योंकि वे दोनों साझेदारी के सभी आवश्यक लक्षण को पूरा करते हैं। अतः B एक ग्राहक द्वारा दिये गये कर्ज के लिए धारा २५ के अनुसार व्यक्तिगत रूप से दायी हो सकता है।]

(x) A, a publisher, agrees to publish, at his own expense, a book written by B and to pay B half of the net profits. Does this create a relationship of partnership between A and B? Is B liable to a paper maker for paper supplied to A for the purpose of printing B's book?

(यह निश्चित करने के पहले कि व्यक्तियों का एक समूह फर्म है या नहीं है, इसके लिए धारा ६ की मदद लेनी होगी। केवल लाभ में हिस्सा लेना साझेदारी के विद्यमान होने का कोई निश्चयात्मक प्रमाण नहीं होता। यहाँ पर A और B साझेदार नहीं हैं, बल्कि प्रकाशक तथा लेखक हैं। अतः B, A को दिये गये कागज के लिए, कागज-निर्माता के प्रति उत्तरदायी नहीं है। इस सम्बन्ध में कौक्स बनाम हिक्मैन का मुकदमा भी देखा जा सकता है।)

(xi) Under what circumstances a firm may be dissolved voluntarily and compulsorily?

(किस परिस्थिति में एक फर्म ऐच्छिक रूप से तथा अनिवार्य रूप से समाप्त की जा सकती है?)

**भारतीय कम्पनी सन्नियम**  
**Indian Companies Act**



## अध्याय १

### विषय-प्रवेश

#### (Introduction)

भारतवर्ष का कम्पनी ऐक्ट सबसे पहले १८५० ई० में बना। इस ऐक्ट में कम्पनी की स्थापना तथा समाप्ति के नियम दिये गये थे। लेकिन इसमें कम्पनी के मेम्बरों के दायित्व (liability) से सम्बद्ध कोई भी सीमा नहीं बतलायी गयी थी। बाद में समय-समय पर इस ऐक्ट का क्रमशः १८५०, १८६० और १८६६ में संशोधन (amendment) किया गया। भारतीय कम्पनीज ऐक्ट, १८८२ (Indian Companies Act of 1882) के पास हो जाने पर पुराने नियम सब रद्द कर दिये गये। फिर सन् १९१३ ई० भारतीय कम्पनीज ऐक्ट पास हुआ जो बहुत समय तक कम्पनियों पर लागू होता रहा। इसी ऐक्ट में सन् १९३६ ई० में और फिर सन् १९५१ ई० में कुछ संशोधन लाये गये। सन् १९५१ ई० का संशोधन मात्र एक अन्तरिम (interim) युक्ति (measure) था। इसका प्रधान उद्देश्य मैनेजिंग एजेंसी के कारबार की बुराइयों को तथा शेयर के ऐबों को दूर करना था। अतः यह संशोधन व्यापक नहीं कहा जा सकता। फिर कुछ संशोधन १९५२ में हुए। सन् १९५३ ई० में कुछ खास उलट-फेर के लिए पार्लियामेंट में बिल पेश किया गया जो १९५६ में कम्पनी ऐक्ट ऑफ १९५६ के नाम से कानून बनाकर कम्पनियों में लागू किया जा रहा है। १९१३ ई० के सभी ऐक्ट रद्द कर दिये गये।

#### परिभाषा (Definition)

भारतीय कम्पनी ऐक्ट की धारा २ में दी गयी परिभाषाओं में से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(i) 'नियमों' का मतलब कम्पनी के उन संघ-नियमों से है जो शुरू में बनाये गये हों अथवा जो विशेष प्रस्ताव द्वारा लागू किये गये हों और जहाँ तक कम्पनी से सम्बन्ध रखते हों। उनमें ऐसे नियम भी सम्मिलित हैं जो भारतीय कम्पनी ऐक्ट, १८८२ के प्रथम परिशिष्ट की तालिका 'ए' अथवा इस ऐक्ट के प्रथम परिशिष्ट की तालिका 'बी' में दिये गये हों।

(ii) 'कम्पनी' का मतलब इस ऐक्ट के अधीन कायम तथा रजिस्ट्री की हुई कम्पनी अथवा विद्यमान कम्पनी से है।

(iii) 'डिबेंचर' (debenture) कम्पनी का ऋण है और इसमें डिबेंचर स्टॉक (debenture stock) भी सम्मिलित है।

(iv) 'डाइरेक्टर' (director) का मतलब कम्पनी के संचालकों से है। इसमें कोई भी व्यक्ति सम्मिलित हो सकता है, चाहे उसे जिस नाम से पुकारा जाय।

(v) 'मैनेजर' (manager) का मतलब ऐसे व्यक्तियों से है जो डाइरेक्टरों के कण्ट्रोल में उनके आदेशानुसार कम्पनी के सब कार्यों का प्रबन्ध करते हों। उनमें डाइरेक्टर या मैनेजर की स्थिति के अन्य व्यक्ति भी शामिल हैं, चाहे उन्हें जिस नाम से पुकारा जाता हो।

(vi) मैनेजिंग एजेंट (managing agent) का मतलब है ऐसे किसी भी व्यक्ति,

फर्म या कम्पनी से जो कम्पनी-विशेष के साथ की गयी संविदा के आधार पर संचालकों के कण्ट्रोल में उनके निर्देशानुसार उनके सभी कामों के प्रबन्ध का अधिकारी हो।

(vii) 'संघ-स्मारपत्र' (memorandum of association) का मतलब कम्पनी के शुरू में बने हुए अथवा इस ऐक्ट के आदेशानुसार परिवर्तित 'संघ-स्मारपत्र' से है।

(viii) 'प्राइवेट कम्पनी' (private company) का मतलब उस कम्पनी से है जो अन्तर्निर्णयों के द्वारा—

(क) अपने हिस्सों (shares) के स्वच्छन्द हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देती है;

(ख) कर्मचारियों के अलावा अपने सदस्यों की संख्या ५० तक ही सीमित कर देती है;

(ग) अपने हिस्सों तथा ऋणपत्रों को जनसाधारण के हाथ नहीं बेच सकती, अर्थात् जनता को अपने हिस्सों तथा ऋणपत्रों को खरीदने के लिए आमन्त्रित नहीं करती।

(ix) 'सार्वजनिक कम्पनी' (public company) का मतलब उस कम्पनी से है जो इस ऐक्ट के अधीन कायम हुई हो और जो प्राइवेट न हो या भारतीय कम्पनीज ऐक्ट, १८६६ तथा १८८३ के अन्तर्गत कायम हुई हो।

(x) 'प्रविवरण' (prospectus) से मतलब उस नोटिस, प्रविवरण, विज्ञापन अथवा दूसरे ऐसे निमन्त्रण-पत्र से है जिसके अनुसार कम्पनी के शेयरों या डिबेन्चरों के अभिदान (subscribe) या उसकी खरीद के लिए जनता से प्रस्ताव किया जाय।

संयुक्त पूँजीवाली कम्पनी के संस्थापन का प्रमाणपत्र (Incorporation of a Company)

कोई भी कम्पनी निम्नलिखित प्रकार से स्थापित की जा सकती है—

१. राजकीय सनद या पत्र द्वारा (By Royal Charter)—शासन द्वारा किसी कम्पनी को विशेष अधिकार देकर रॉयल चार्टर के सहारे कम्पनी की स्थापना की जा सकती है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना १६०० ई० में महारानी एलिजाबेथ की सनद द्वारा हुई थी।

२. संसद् के विधान द्वारा (Special Acts of Parliament)—राष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण व्यापार अथवा कार्य करने के लिए किसी कम्पनी की स्थापना उसे विशेष अधिकार देकर की जाती है। इस तरह की कम्पनियों का उद्देश्य दूसरी कम्पनियों का मुकाबला (competition) करना नहीं होता, बल्कि देश के व्यापार के लिए दूसरी कम्पनियों के साथी (friend), दार्शनिक (philosopher) तथा पथ-प्रदर्शक (guide) का काम करना होता है।

उदाहरण—भारतीय कम्पनी सन्निधम के द्वारा (under Indian Companies Act of 1956) अब भारत में प्रायः सभी कम्पनियाँ इसी सन्निधम के अनुसार स्थापित होती हैं।

कम्पनी और साझेदारी (Distinction between a Company and Partnership)

१. स्थापन-विधि (Mode of Creation)—कम्पनी की स्थापना भारतीय

कम्पनी सन्निधम, राजकीय पत्र अथवा संसद् के विशेष अधिनियम द्वारा होती है तथा इसकी स्थापना में बहुत से वैधानिक नियमों का पालन करना पड़ता है जिसमें काफी असुविधा होती है।

किन्तु साझेदारी की स्थापना साझेदारों के मौखिक या लिखित समझौते के द्वारा होती है, इसलिए साझेदारी का व्यापार बड़ी सुगमता और शीघ्रता से साझेदारों की अनुमति द्वारा शुरू किया जाता है।

**२. वैध स्थिति (Legal Status)**—कम्पनी का अस्तित्व अपने सदस्यों से पूर्णतः भिन्न तथा पृथक् होता है। विधानतः यह एक व्यक्ति है।

परन्तु साझेदारी का साझेदारों से अलग न तो कोई अस्तित्व है और न कोई व्यक्तित्व ही। फिर, साझेदारी का अस्तित्व बड़ा अनिश्चित होता है। साझेदारी फर्म में किसी साझेदार की मृत्यु या उसके पागल या दिवालिया होने से, या कभी-कभी साझेदार के अवकाश-ग्रहण करने पर साझेदारी भंग हो जाती है। परन्तु ऐसी घटना का कम्पनी के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि कम्पनी शाश्वत उत्तराधिकार वाला कृत्रिम व्यक्ति (Artificial person with perpetual succession) है।

**३. सदस्यों की संख्या (Number of Members)**—साझेदारों की कम-से-कम संख्या दो और अधिक-से-अधिक बीस होती है। यदि साझेदारी फर्म बैंकिंग व्यापार करती है तो साझेदारों की संख्या दस से अधिक नहीं हो सकती।

परन्तु प्राइवेट कम्पनी के सदस्यों की संख्या कम-से-कम दो तथा अधिक-से-अधिक पचास तक हो सकती है। सार्वजनिक कम्पनी में कम-से-कम संख्या सात रहती है। इसमें अधिक-से-अधिक संख्या कम्पनी के अंशों (shares) की संख्या के बराबर तक हो सकती है।

**४. सदस्यों का दायित्व (Liability of Members)**—कम्पनी के सदस्यों का दायित्व उनके अंशों के मूल्य तथा उनकी गारण्टी तक सीमित रहता है, परन्तु साझेदारी में केवल नाबालिग या सीमित दायित्व वाले साझेदार को छोड़ कर प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित रहता है अथवा ऋण होने पर प्रत्येक साधारण साझेदार केवल अपनी पूँजी तक ही नहीं, बल्कि अपनी निजी सम्पत्ति से हानि की पूर्ति के लिए व्यक्तिगत रूप से बाध्य रहता है।

**५. पूँजी में परिवर्तन (Alteration of Capital)**—साझेदारी में आसानी से सभी साझेदारों की राय से व्यापार की पूँजी तथा उद्देश्य में रद्दोबदल किया जा सकता है; परन्तु कम्पनी में मेम्बरों की राय से किसी तरह का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। कम्पनी की पूँजी में परिवर्तन करने के लिए कम्पनी-सन्निधम के बहुत से नियमों का पालन करना पड़ता है जिसमें काफी असुविधा होती है।

**६. सदस्यों के अधिकार तथा कर्तव्य (Rights and Duties of Members)**—साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का अधिकार तथा कर्तव्य है कि वह फर्म के प्रबन्ध में परिश्रम से हाथ बटाये। किन्तु कम्पनी में शेयर-होल्डरों को उसके प्रबन्ध तथा संचालन में भाग लेने का अधिकार नहीं रहता, क्योंकि उनकी संख्या अत्यधिक होती है। अतएव कुछ शेयर-होल्डरों को चुनकर एक कार्य-संचालन समिति बना देते हैं और इसी समिति को कम्पनी के प्रबन्ध तथा संचालन का भार सौंप दिया जाता है।

**७. अंशों का हस्तान्तरण (Transfer of Shares)**—साझेदारी में कोई

साझेदार अपने हित (interest in partnership) को किसी सह-साझेदार अथवा किसी अन्य व्यक्ति के हाथ न बेच सकता है, न किसी के नाम हस्तान्तरित ही कर सकता है; किन्तु कम्पनी में प्राइवेट कम्पनी के अतिरिक्त सभी कम्पनियों के मेम्बर अपने हिस्से या शेयर को स्वतन्त्रतापूर्वक बेच अथवा हस्तान्तरित कर सकते हैं।

८. खातों का अंकेक्षण (Audit of Accounts)—प्राइवेट कम्पनी को छोड़कर अन्य सभी कम्पनियों का वार्षिक अंकेक्षण अनिवार्य है, किन्तु साझेदारी में यह आवश्यक नहीं है।

९. सामान्य प्रशासन तथा नियंत्रण (General Administration and Control)—साझेदारी का संचालन 'साझेदारी-संलेख' (partnership deed) के अनुसार होता है। परन्तु सभी साझेदारों की अनुमति से साझेदारी-संलेख में कभी भी परिवर्तन लाकर साझेदारी के व्यापार को बदला जा सकता है।

इसके विपरीत कम्पनी के अधिकार, उद्देश्य तथा शक्तियों की सीमा का निर्धारण कम्पनी के स्मारपत्र (memorandum of association) के द्वारा होता है। इस प्रलेख द्वारा निर्धारित सीमा के बाहर काम करने का प्रथम तो कम्पनी को अधिकार नहीं है, दूसरे यदि कम्पनी इसके बाहर कोई कार्य करती है तो वह कानून की दृष्टि में अवैध या अनधिकार (ultra-vires) समझा जाता है।

१०. समाप्ति (Dissolution)—साझेदारी की स्थापना एक साधारण पारस्परिक संविदा द्वारा होती है। अतः यह कभी भी साझेदारों के आपसी समझौते द्वारा भंग हो सकती है। परन्तु कम्पनी का निर्माण हो जाने के बाद उसका विघटन (dissolution) सिर्फ कम्पनी के सन्तियम के अनुसार ही हो सकता है।

### कम्पनी के भेद (Kinds of Companies)

१. परिमित दायित्व कम्पनी (Limited Liability Company), और

२. अपरिमित दायित्व कम्पनी (Unlimited Liability Company)।

१. परिमित दायित्व कम्पनी—इस प्रकार की कम्पनी में सदस्यों (shareholders) का दायित्व उनके अंशों के मूल्य तक सीमित रहता है। इस कम्पनी के अन्त में 'लिमिटेड' (सीमित) शब्द का होना अनिवार्य है। ऐसा इसलिए कि जनता को ज्ञात हो जाय कि कम्पनी के सदस्यों का दायित्व सीमित है।

कम्पनी के दायित्व दो प्रकार से परिमित होते हैं—

(i) हिस्सों द्वारा परिमित कम्पनी (Company limited by shares)—ऐसी कम्पनी में हिस्सेदारों का दायित्व उनके द्वारा खरीदे गये हिस्सों के मूल्य तक ही सीमित रहता है। उदाहरण, X ने किसी कम्पनी के चार हिस्से १०० रु० प्रति हिस्से की दर से खरीदे। इस दशा में X का दायित्व ४०० रु० तक ही सीमित है। यदि X कम्पनी को २०० रु० दे देता है तो उसका दायित्व १०० रु० तक शेष रह जाता है।

नुकसान होने पर कम्पनी १०० रु० से अधिक किसी दशा में नहीं माँग सकती। इस प्रकार की कम्पनी बहुत ही लोकप्रिय है। यहाँ तक कि 'परिमित दायित्व कम्पनी' का अर्थ ही 'हिस्सों द्वारा परिमित कम्पनी' होता है।

(ii) प्रत्याभूति द्वारा सीमित (Company limited by guarantee)—इस प्रकार की कम्पनी के सदस्य इस बात की गारंटी देते हैं कि उनकी सदस्यता के समय में अथवा उनके कम्पनी से अलग हो जाने के १२ महीने के भीतर यदि हानि



होती है तो वे एक निश्चित राशि देकर उसकी पूर्ति करेंगे। इस कम्पनी में इसके सदस्य पूँजी वित्तियोग नहीं करते। वे केवल नुकसान होने पर एक निश्चित रकम देने का वचन देने हैं। ऐसी कम्पनियाँ व्यापार तथा उसमें लाभ-उपार्जन की दृष्टि में नहीं स्थापित की जाती। ये संस्थाएँ चिकित्सालय, पुस्तकालय आदि धार्मिक या सामाजिक संस्थाओं के संचालन के निमित्त ही स्थापित होती हैं। ऐसी कम्पनियों का प्रचलन हमारे देश में बहुत कम है।

२. **अपरिमित दायित्व कम्पनी (Unlimited Liability Company)**— ऐसी कम्पनियों में हिस्सेदारों का दायित्व असीमित होता है, अर्थात् साझेदारी की भाँति नुकसान होने पर वे उसकी पूर्ति के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी होते हैं। उन्हें अपनी निजी सम्पत्ति से हानि की पूर्ति करनी पड़ती है। ऐसी कम्पनियों का प्रचलन नहीं के बराबर है।

कम्पनियों के विभाजन का एक दृष्टिकोण और भी है जिसके अनुसार कम्पनियों के मुख्य दो भेद हैं—

(क) प्राइवेट कम्पनी (Private Company), और

(ख) सार्वजनिक कम्पनी (Public Company)।

(क) **प्राइवेट कम्पनी (Private Company)**— धारा ३ के मुताबिक प्राइवेट कम्पनी वह कम्पनी है जिसमें उसके अन्तर्नियमों द्वारा—

(i) कर्मचारियों के अलावा हिस्सेदारों की संख्या ५० तक ही सीमित रहती है।

(ii) हिस्सों के हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध रहता है अर्थात् कोई भी मेम्बर अपने हिस्से को किसी भी व्यक्ति के नाम अन्य सदस्यों की अनुमति के बिना हस्तान्तरित नहीं कर सकता।

(iii) यह कम्पनी हिस्सों तथा ऋण-पत्रों (debentures) को खरीदने के लिए जनता को आमन्त्रित नहीं करती।

(ख) **सार्वजनिक कम्पनी (Public Company)**—सार्वजनिक कम्पनी की भारतीय कम्पनी सन्निधम में कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गयी है, परन्तु धारा ३

(iv) में इतना अवश्य निर्देश किया गया है कि सार्वजनिक कम्पनी वह कम्पनी है जो प्राइवेट कम्पनी के प्रतिबन्धों से मुक्त हो। विस्तृत शब्दों में सार्वजनिक कम्पनी के निम्नलिखित मुख्य लक्षण कहे जा सकते हैं—

(i) इसमें हिस्सेदारों की संख्या कम-से-कम ७ होती है, किन्तु अधिक-से-अधिक संख्या की कोई सीमा प्राइवेट कम्पनी की भाँति नहीं होती। अधिक-से-अधिक संख्या हिस्सों की संख्या पर निर्भर रहती है, अर्थात् कम्पनी में जितने हिस्से होंगे, अधिक-से-अधिक उतने ही हिस्सेदार हो सकते हैं।

(ii) हिस्सों के हस्तान्तरण पर कोई रुकावट नहीं रहती, अर्थात् कोई भी मेम्बर अपने हिस्से को बेच सकता है और उसे हस्तान्तरित कर सकता है।

(iii) हिस्सों तथा ऋणपत्रों के क्रय के लिए जनता को आमन्त्रित किया जाता है।

इनके अलावा, कुछ कम्पनियाँ इस प्रकार की भी होती हैं—

(i) बैंकिंग कम्पनी, इन्श्योरेंस कम्पनी तथा कोऑपरेटिव सोसायटी—ये अपने-अपने कानूनों द्वारा स्थापित की जाती हैं।

(ii) ऐसी कम्पनी जिसकी स्थापना राजकीय सनद या पत्र द्वारा (Royal Charter), पार्लियामेंट के नियम द्वारा या गवर्नर जनरल के द्वारा होती है।

(iii) छोटी-मोटी या मददगार (Subsidiary Companies) ।

(iv) होल्डिंग कम्पनी (Holding Company) ।

प्राइवेट कम्पनी और सार्वजनिक कम्पनी में अन्तर (Distinction between Private and Public Companies)

१. स्थापना— प्राइवेट कम्पनी बड़ी आसानी तथा शीघ्रता से स्थापित की जा सकती है क्योंकि इसके लिए कम-से-कम दो मनुष्यों की ही आवश्यकता होती है, परन्तु सार्वजनिक कम्पनी के लिए कम-से-कम सात मनुष्यों का होना आवश्यक होता है । [धारा १२]

२. संचालक—प्राइवेट कम्पनी में कम-से-कम दो संचालकों (directors) को रहना चाहिए, परन्तु सार्वजनिक कम्पनी में कम-से-कम तीन संचालकों (directors) का रहना आवश्यक है [धारा २५२] । फिर १९५६ के नये सन्निधिम के मुताबिक किसी भी सार्वजनिक कम्पनी के संचालकों को नफे का ११ प्रतिशत से ज्यादा पारिश्रमिक के रूप में नहीं दिया जा सकता । पर यह नियम प्राइवेट कम्पनी में नहीं लागू होता । [धारा १९८]

३. सभाएँ—सार्वजनिक कम्पनी के लिए 'स्टैट्युटरी मीटिंग' (statutory meeting) बुलाना और 'स्टैट्युटरी रिपोर्ट' (statutory report) भेजना अनिवार्य है, परन्तु प्राइवेट कम्पनी के लिए यह आवश्यक नहीं है । [धारा १६५]

४. प्रविवरण—सार्वजनिक कम्पनी के लिए रजिस्ट्रार के पास प्रविवरण (prospectus) अथवा उसके बदले 'प्रविवरण प्रलेख' (statement in lieu of prospectus) भेजना आवश्यक है, परन्तु प्राइवेट कम्पनी को प्रविवरण की जगह पर प्रविवरण-प्रलेख नहीं भेजना पड़ता । [धारा ७०]

५. बँटवारा—सार्वजनिक कम्पनी तब तक हिस्सों का बँटवारा (allotment) नहीं कर सकती जब तक 'न्यूनतम अधिदान राशि' (minimum subscription) के लिए आवेदन-पत्र न आ जाय, परन्तु प्राइवेट कम्पनी के लिए इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।

६. व्यापार आरम्भ करने का प्रमाण-पत्र—प्राइवेट कम्पनी 'व्यापार आरम्भ करने का प्रमाणपत्र' (certificate to commence business) प्राप्त किये बिना ही व्यापार का काम शुरू कर सकती है, परन्तु सार्वजनिक कम्पनी को व्यापार करने के पहले 'व्यापार आरम्भ करने का प्रमाणपत्र' प्राप्त करना पड़ता है । [धारा १४९]

७. आर्थिक स्थिति-विवरण—सार्वजनिक कम्पनी के लिए रजिस्ट्रार के पास 'आर्थिक स्थिति-विवरण' (balance-sheet) भेजना अनिवार्य है । पर प्राइवेट कम्पनी को इसकी आवश्यकता नहीं होती ।\*

८. लेखा-परीक्षण—सार्वजनिक कम्पनी का लेखा-परीक्षक (auditor) एक रजिस्टर्ड एकाउण्टेंट ही हो सकता है तथा स्थिति-विवरण का अंकेक्षण सरकारी रजिस्टर्ड एकाउण्टेंट के द्वारा ही हो सकता है । परन्तु प्राइवेट कम्पनी के लेखा-परीक्षक (auditor) के लिए रजिस्टर्ड एकाउण्टेंट होना आवश्यक नहीं है और न इसके स्थिति-विवरण का अंकेक्षण सरकारी लेखा-परीक्षकों द्वारा ही होना आवश्यक है ।

## संघ-स्मारपत्र (Memorandum of Association)

स्मारपत्र कम्पनी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रलेख है। इसे कम्पनी का चार्टर भी कहते हैं। कम्पनी के समामेलन (incorporation) के पहले इसे तैयार करना अनिवार्य है। बिना इसे तैयार किये कम्पनी का वैधानिक अस्तित्व आरम्भ नहीं हो सकता है। इस प्रलेख को बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए, क्योंकि इसमें लिखित पूँजी, उद्देश्य आदि को बाद में बदलने में बड़ी कठिनाई होती है। चूँकि यह कम्पनी के अधिकार, उद्देश्य तथा उसकी शक्तियों की सीमा निर्धारित करता है। इसलिए इसको 'मांमद सीमा नियम' भी कहते हैं। कम्पनी इस सीमा नियम के खिलाफ कोई काम नहीं कर सकती। अगर वह ऐसा करेगी तब वह कार्य अनधिकार (ultra-vires) समझा जायगा। इसकी परिभाषा धारा १२ के अन्दर यह दी गयी है कि—

“यह कम्पनी का चार्टर है जिस पर कम-से-कम सात व्यक्तियों तथा प्राइवेट कम्पनी में कम-से-कम दो व्यक्तियों का हस्ताक्षर होना चाहिए।”\*

प्रत्येक व्यक्ति को अपने नाम के सामने खरीदे गये अंशों की संख्या भी लिखनी पड़ती है। धारा १३ के मुताबिक प्रलेख में निम्नलिखित बातों का उल्लेख रहना चाहिए—

१. कम्पनी का नाम (Name of Company) तथा उसके अन्तिम शब्द के साथ 'नीमित' शब्द का होना अनिवार्य है यदि कम्पनी असीमित न हो।

(i) कम्पनी का नाम किसी अन्य, उससे पूर्व स्थापित, रजिस्टर्ड कम्पनी के नाम के समान नहीं होना चाहिए और न किसी अन्य रजिस्टर्ड कम्पनी से कुछ भी मिलना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने से व्यापार में धोखा होने की आशंका रहती है। इनका अवश्य है कि यदि उस नाम की कम्पनी समाप्त हो चुकी है तथा रजिस्ट्रार उस नाम के लिए अनुमति देता है तो वह नाम रखा जा सकता है। (धारा २०)

इससे सम्बद्ध दो मुख्य मुकदमे हैं जो उल्लेखनीय हैं—

(क) ला सोसाइटी पैनहार्ड एट लेभासर बनाम पैनहार्ड लेभासर मोटर कम्पनी लिमिटेड (१९०१) †

मुद्दै ला सोसाइटी पैनहार्ड एट लेभासर पेरिस की मोटर बनानेवाली एक सुप्रसिद्ध फर्म थी। उसकी ख्याति इंग्लैंड के बाजार में भी वर्षों से चली आ रही थी। मुद्दालय (defendant) ने इंग्लैंड में पैनहार्ड लेभासर मोटर कम्पनी लिमिटेड के नाम से एक कम्पनी की रजिस्ट्री करायी। मुद्दै के मुकदमा करने पर फैसला इस प्रकार हुआ—

“इंग्लैंड के बाजार में व्यापार करने वाले विदेशी व्यापारी को भी किसी दूसरे व्यापारी द्वारा उसका नाम अकारण ग्रहण किये जाने के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त है।”  
(Even a foreign trader who had a market in England was protected from the benefit to his name being annexed by another

\* Memorandum of association is the charter of the Company and has to be drawn out and signed in the case of Public Companies by at least seven persons and in case of a Private Company by at least two.

† La Society Panhard et. Levassor vs. Panhard Levassor Motor Co. 40. (1901) 2 Ch. 513.

trader who assumed that name without any justification.”)

(ख) दूसरा मुकदमा—नार्थ चेशायर एण्ड मैनचेस्टर ब्रीवरी कम्पनी लिमिटेड बनाम मैनचेस्टर ब्रीवरी कम्पनी लिमिटेड १८९९ A. C. ८३\* है।

कई वर्षों से मैनचेस्टर ब्रीवरी कम्पनी इंग्लैंड में कारबार करती चली आ रही थी। अपीलान्ट (appellants) ने एक पुराना व्यापार जिसका नाम नार्थ चेशायर ब्रीवरी कम्पनी था, और फिर उसे किसी को धोखा देने के विचार के बिना 'दी नार्थ चेशायर एण्ड मैनचेस्टर ब्रीवरी कम्पनी' के नाम से रजिस्ट्री करायी। इस पर फैसला यह हुआ कि इस नाम को भविष्य में इस्तेमाल करवे पर रोक लगा दी जाय।

(ii) किसी भी कम्पनी के नाम के साथ राज्य (crown), सम्राट् (emperor), सम्राज्ञी (empress), राजकीय (imperial), राजा (king), रानी (queen), राही (royal), रियासत (state), रिजर्व बैंक वगैरह शब्दों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। इनके साथ ही ऐसे वाक्यों का भी उपयोग नाम के साथ नहीं होना चाहिए जिनमें राज्याश्रय, राज्य की स्वीकृति आदि का संकेत हो। भारत सरकार तथा राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत, अनुमति-प्राप्त तथा आश्रित शब्दों का व्यवहार भी नाम के साथ नहीं होना चाहिए। इन शब्दों का इस्तेमाल उसी हालत में होगा जब कि केन्द्रीय सरकार से लिखित स्वीकृति पहले प्राप्त कर ली गयी हो।

(iii) सहकारी समिति सन्निधम (Co-operative Societies Act) के अनुसार कोई भी कम्पनी जब तक उक्त सन्निधम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड नहीं हो जाती, अपने नाम के साथ 'सहकारी (co-operative)' शब्द नहीं लिख सकती। ऐसा करने के लिए पहले राज्य सरकार से अनुमति लेना आवश्यक है।

(iv) कोई भी कम्पनी अपने नाम के साथ नगरपालिका (Municipal), चार्टर्ड (Chartered) आदि शब्दों का इस्तेमाल नहीं कर सकती। इसके साथ ही ऐसे शब्दों का भी प्रयोग करना निषिद्ध है जिनका सम्बन्ध नगरपालिका या किसी अन्य राजकीय संस्था से हो।

सन्निधम की धारा २१ तथा २२ के अनुसार कम्पनी का नाम निम्नलिखित तरीकों से बदला जा सकता है—

(क) यदि कम्पनी का नाम गलती से किसी अन्य कम्पनी के नाम के समान ही रजिस्टर्ड हो गया है तो वह नाम रजिस्ट्रार की अनुमति से बदला जा सकता है;

(ख) यदि अन्य किसी वजह से नाम बदलने की आवश्यकता हो तो कम्पनी का नाम एक विशेष प्रस्ताव द्वारा बदल दिया जा सकता है; तथा

(ग) राज्य सरकार की लिखित अनुमति प्राप्त करके भी नाम-परिवर्तन हो सकता है।

कम्पनी जब नाम बदलेगी तब रजिस्ट्रार अपनी वही में पुराने नाम की जगह पर नया नाम लिखेगा और एक नयी कम्पनी का समांमेलन होगा। जिस दिन नयी कम्पनी का समांमेलन (incorporation) लिखा जायगा उसी दिन से कम्पनी का नाम लागू किया जायगा। [धारा २३]

१९५६ के कम्पनी सन्निधम के पहले सार्वजनिक कम्पनी तथा प्राइवेट कम्पनी

\* North Cheshire and Manchester Brewery Co. Ltd. vs. The Manchester Brewery Co. Ltd. 1899. A. C. 83.

को अपने नाम के अन्त में 'सीमित' शब्द लिखना पड़ता था। लेकिन अब नये सन्निधम के मुताबिक प्राइवेट कम्पनी को अपने नाम के अन्त में 'Private Limited' लिखना पड़ेगा। इसलिए मौजूदा कानून के लागू होने के समय अस्तित्व रखनेवाली किसी प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के मामले में रजिस्ट्रार अपना पूँजी समामेलन प्रमाणपत्र और स्मारपत्र कम्पनी के 'सीमित' शब्द के पहले 'प्राइवेट' शब्द जोड़ देगा। [Before the present Act of 1956, both Private Limited Company and Public Limited Company were required to have a name with the word 'Limited' only. Under the Present Act, the name of a Private Limited Company is required to contain the words 'Private Limited' as the last words of the name. Hence in a case of a Private Limited Company existing at the commencement of the present Act the Registrar shall enter the word 'Private' before the word 'Limited' in the name of the company upon the register, in the certificate of Incorporation and the Memorandum. Sec. 24]

२. रजिस्टर्ड कार्यालय (Registered Office)— धारा १४६ के अनुसार कोई भी कम्पनी अपने कार्यालय के विषय में या तो सूचना उसी दिन से देनी है जिन दिन से अपना कारबार शुरू करती है और यदि उसी दिन सूचना न दे सकी, तो कम्पनी की स्थापना के २८ दिन बाद उसे अपने रजिस्टर्ड होने की सूचना देनी होगी, जिससे कि सभी कागजात वहाँ भेजे जा सकें। यदि कोई कम्पनी अपना कारबार शुरू करने के बाद अपना कार्यालय किसी दूसरी जगह ले जाना चाहती है तो उसे कम्पनी-संस्थापन से २८ दिन के बाद तक रजिस्ट्रार को इस बात की सूचना भेजनी पड़ती है क्योंकि उसी सूचना के आधार पर रजिस्ट्रार भी अपने यहाँ कम्पनी के कार्यालय का पता लिख लेता है।

३. कम्पनी के उद्देश्य (Objects of the Company)— संघ अन्तर्नियम (articles of association) के अन्तर्गत उद्देश्य वाक्य (object clauses) का प्रमुख स्थान है, क्योंकि इससे केवल कम्पनी के कामों का विवरण ही प्राप्त नहीं होता, बल्कि इसके साथ ही यह कम्पनी के कार्यों की सीमा भी निर्धारित करना है। कम्पनी के उद्देश्य कम्पनी सन्निधम अथवा अन्य किसी राजकीय नियम के खिलाफ नहीं होने चाहिए। उद्देश्य अत्यन्त स्पष्ट तथा पूर्ण होना चाहिए जिससे यह साफ मालूम हो कि कम्पनी कौन-सा काम करने के लिए स्थापित की गयी है।

यदि कोई कम्पनी अपना रजिस्टर्ड कार्यालय बदलना चाहती है अथवा सीमा-नियम में कुछ परिवर्तन करना चाहती है तो उसे एक विशेष प्रस्ताव पाम करना चाहिए और उसकी पुष्टि न्यायालय द्वारा करनी चाहिए। इसके साथ ही वह उतना ही परिवर्तन कर सकती है जितना कि उसे—

(क) अपने कारबार को अधिक मितव्ययिता (more economically) तथा दक्षता (more efficiently) से चलाने के लिए, या

(ख) नवीन तथा उन्नत साधनों द्वारा अपना मुख्य आशय प्राप्त करने के लिए,\* या

(ग) अपने कार्य का स्थानीय क्षेत्र (local area of its operation) बढ़ाने

\* To attain its main purpose by new or improved means.

या परिवर्तन करने के लिए,\* या

(घ) संघ-स्मरणपत्र (memorandum) में निदिष्ट उद्देश्यों में से किसी का नियंत्रण अथवा परित्याग करने के लिए, या

(ङ) कम्पनी के व्यवसाय का समस्त या कोई भाग बेचने या अलग करने के लिए अथवा कुछ व्यक्तियों को हटाने के लिए आवश्यक हो। [धारा १७]

४. अंश-पूँजी (Share Capital)—संघ-स्मरणपत्र के अन्तर्गत कम्पनी के विभाजन, हिस्सों की सख्या और रजिस्ट्री के समय उपस्थित अंश-पूँजी का वर्णन साफ-साफ होना चाहिए। यह कोई जरूरी नहीं है कि स्मरणपत्र में हिस्सों के विभाजन का भी वर्णन हो, क्योंकि ये बातें अन्तनियमों (articles) में लिखी जाती हैं। फिर यदि किसी वजह से हिस्सों के विभाजन का विवरण स्मरणपत्र में नहीं लिखा गया तब इसका मतलब यह नहीं होता कि हिस्से बराबर हैं। अंश-पूँजी को बढ़ाने, घटाने, बदलने, उप-विभाजन करने तथा एकत्र करने का अधिकार प्रदान करने के लिए मूलभूत (original) या वृद्धिशील (increased) पूँजी से हिस्सों को जारी करने के लिए लाभ को बाँटने, पूँजी का पुनर्भुगतान (re-payment) करने या मतदान आदि के अधिकारों के लिए तथा अन्तनियम बनाकर संचालकों (directors) का हिस्सा जारी करने का विशेष अधिकार देने के लिए 'पूँजी वाक्य' (capital clause) शब्द का प्रयोग अत्यन्त ठीक तथा न्याय-संगत मालूम होता है। अपने अन्तनियमों (articles) द्वारा अधिकार प्राप्त करके कोई भी कम्पनी धारा ९४ के अनुसार निम्नलिखित कार्य कर सकती है—

- (i) वह अपनी अंश-पूँजी बढ़ा सकती है;
- (ii) वह अपनी सभी या कुछ अंश-पूँजी एकत्र कर सकती है तथा अपने वर्तमान हिस्सों की अपेक्षा अधिक धन के हिस्सों में विभाजन कर सकती है;
- (iii) अपने चुकाये हुए सम्पूर्ण या कुछ हिस्सों को स्टॉक (stock) में बदल सकती है और वह स्टॉक को किसी भी परिणाम के चुकाये हुए हिस्सों में पुनः बदल सकती है;
- (iv) अपने हिस्सों को या उनमें से किसी को भी स्मरणपत्र (memorandum) द्वारा नियत किये हुए धन से कम वाले हिस्सों में उप-विभाजन कर सकती है; तथा
- (v) ऐसे सभी हिस्सों को निरस्त (cancel) भी कर सकती है जो न तो किसी मनुष्य द्वारा लिये गये हों और न उनके लिए किसी ने प्रतिज्ञा ही की हो। साथ ही, अपनी अंश-पूँजी के परिमाण को भी निरस्त अंशों (cancelled share) के परिमाणानुसार कम कर सकती है। इस प्रकार, अपने अन्तनियमों के द्वारा अधिकार प्राप्त करके कोई भी कम्पनी धारा १०० के अनुसार एक विशेष प्रस्ताव द्वारा स्वीकृति प्राप्त करके तथा अदायत की पूर्ति से शेयर कैपिटल को निम्नलिखित तरीके से कम कर सकती है—

- (i) अप्रदत्त अंश-पूँजी (Share Capital not paid up) के सम्बन्ध में अपने शेयरों के दायित्व को मिटा करके या कम करके।
- (ii) नष्ट हुई पूँजी का विलोपन (write-off) करके।
- (iii) जब कम्पनी को आवश्यकता से अधिक पूँजी हो तो शेयर-होल्डरों की अधिक पूँजी लौटा कर।
- (iv) अथवा अन्य किसी प्रकार के साधनों का भी उपयोग कर सकती है।

\* To enlarge or change the local area of its operations.

यदि कोई कम्पनी अपने स्मारपत्र तथा अन्तर्नियम के अन्तर्गत शेयर-होल्डरों के अधिकारों में थोड़े से शेयर-होल्डरों की राय से कुछ रद्दोबदल कर देती है तो धारा १०३ के मुताबिक उस रद्दोबदल से सहमत न होनेवाले सभी शेयर-होल्डर उस परिवर्तन को निरस्त (cancel) कराने के लिए न्यायालय में आवेदन-पत्र भेज सकते हैं; फिर कम्पनी तथा उसके मेम्बर कोई प्रबन्ध-योजना बना सकते हैं; परन्तु वह योजना कम्पनी की अंश-पूँजी के पुनर्संगठन पर आधारित होनी चाहिए।

५. सीमित दायित्व (Limited Liability)—स्मारपत्र के अन्तर्गत मेम्बरों के दायित्व की सीमा निर्धारित रहती है। उसमें यह किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है कि एक सीमित कम्पनी के मेम्बरों का सीमित दायित्व असीमित (unlimited) कर दिया जाय; अगर संघ-स्मारपत्र में इस प्रकार उल्लेख नहीं हो तो एक विशेष प्रस्ताव द्वारा संचालकों के दायित्व को असीमित करने के लिए उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु यह भी तभी सम्भव है जब कि अन्तर्नियमों (articles) द्वारा इस प्रकार का अधिकार प्राप्त हो।

६. एसोसियेशन और उसके चन्दे (Association and Subscription)—सार्वजनिक कम्पनी में कम-से-कम सात व्यक्तियों का हस्ताक्षर स्मारपत्र में होना चाहिए और प्राइवेट कम्पनी में कम-से-कम दो व्यक्तियों का। उनमें यह भी वर्णित रहना चाहिए कि इन व्यक्तियों ने चन्दे के कितने रुपये दिये और जो निश्चित रकम रजिस्ट्रार द्वारा तय की गयी है वह इससे जमा हो जाती है या नहीं। सार्वजनिक कम्पनी में निश्चित रकम का जमा होना अनिवार्य है।

### कम्पनी के अन्तर्नियम (Articles of Association)

कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध एवं कार्यों को ठीक तरीके से संचालित करने के लिए जो नियम तथा उप-नियम बनाये जाते हैं उन्हें ही हम 'कम्पनी का अन्तर्नियम' कहते हैं। दूसरे शब्दों में, संघ-अन्तर्नियम-पत्र में निर्दिष्ट कार्यों की पूर्ति तथा कार्य-संचालन के लिए उप-नियमों तथा नियमों (bye-laws and regulations) का उल्लेख रहता है जिनके आधार पर कम्पनी की व्यवस्था की जाती है।\*

इनमें निम्नलिखित मुख्य बातें होती हैं—

१. कम्पनी की पूँजी का विभाजन, अंशों के निर्गमन (issue of shares), अंशों के हस्तान्तरण (transfer of shares) तथा अंशों की जब्ती (forfeiture of shares) के नियम।

२. पूँजी में वृद्धि तथा कमी करने के नियम (Increase of share capital and methods of reduction of capital), संचालकों की संख्या, उनकी योग्यता, अधिकार तथा कर्तव्य।

३. मैनेजिंग एजेंट (managing agents) (यदि नियुक्त किये गये हों), उनके कार्य एवं अधिकार आदि।

४. कम्पनी की सामान्य सभाएँ (general meetings) और उनकी कार्यवाही।

\* Articles of Association are the bye-laws of the company governing its management and embodying the powers of the directors, officers of the company as well as the powers of the share-holders as to voting etc.

५. शेयर-होल्डर्स (share-holders) के मत प्रदान करने की विधि तथा उनका मताधिकार (voting powers) ।

६. कम्पनी की पुस्तक तथा उनका अकेक्षण ।

७. लाभांश की घोषणा तथा उनकी वितरण-विधि ।

८. ऋण प्राप्त करने का ढंग ।

९. चुनाव (election) ।

अन्तर्नियम के लिए आवश्यक है कि वह मुद्रित हो और उस पर उन व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने चाहिए जिन्होंने कम्पनी के स्मारपत्र पर दस्तखत किये हैं। उनके दस्तखतों के लिए यहाँ भी उनके गवाहों द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है।

प्रत्येक कम्पनी अपनी आवश्यकता के अनुसार अपना अन्तर्नियम बनाती है। यदि कोई कम्पनी अपना अन्तर्नियम नहीं तैयार करती है तो उसे भारतीय कम्पनी सन्निधिम में दिये गये 'टेबुल ए' (Table A) के नियमों का पालन करना पड़ना है।

### 'टेबुल ए' की सीमा (Application of Table A)

'टेबुल ए' के अन्तर्गत सन्निधिम की प्रथम अनुसूची (First Schedule to the Act) में प्रकाशित ११६ नियमों का संकलन होता है। एक सार्वजनिक सीमित कम्पनी (public limited company) 'टेबुल ए' पूर्ण रूप से अपना सकती है। परन्तु यह भी देखा जाता है कि वह इस टेबुल को उसी हद तक अपनाती है जिस हद तक कि उसे नियमों को बनाने में तथा विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायता मिलती है। यदि किसी सार्वजनिक कम्पनी में रजिस्ट्री होने के समय अन्तर्नियम प्रस्तुत नहीं किये जाते तो स्मारपत्र (memorandum) के ऊपर 'बिना अन्तर्नियमों के रजिस्टर्ड' (registered without articles) लिखा रहना चाहिए। ऐसी दशा में भी 'टेबुल ए' के सभी नियम कम्पनी के प्रत्येक मेम्बर पर लागू होंगे।

### अन्तर्नियमों का प्रभाव (Effect of Articles)

धारा ३६ के मुताबिक कम्पनी तथा उसके सदस्यों (उसके उत्तराधिकारियों तथा वैधानिक प्रतिनिधियों) को ये अन्तर्नियम पूर्णतया आबद्ध करेंगे। इसकी वजह यह है कि अन्तर्नियम कम्पनी तथा उसके मेम्बरों के बीच एक अटूट सम्बन्ध स्थापित करता है और जहाँ तक - इसके नियम-पालन का सम्बन्ध है, ये नियम दोनों पर पूर्णरूपेण लागू होते हैं। कम्पनी कोई भी ऐसा काम अपने मेम्बर के खिलाफ नहीं कर सकती जिसका वर्णन इन अन्तर्नियमों में न हो। इसी प्रकार, मेम्बर भी कम्पनी के खिलाफ कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जिसका अधिकार उन्हें अन्तर्नियम के द्वारा न मिला हो। इसी नियम के अनुसार अंशों का भुगतान न करने पर कम्पनियाँ मेम्बरों के खिलाफ कार्यवाही कर सकती हैं। उसी तरह यदि अन्तर्नियमों के खिलाफ किसी प्रकार के अंशों को कम्पनी जप्त कर लेती है तो वह सदस्य भी कम्पनी के खिलाफ मुकदमा चला सकता है। इन नियमों द्वारा कम्पनी तथा मेम्बर दो हालातों में आबद्ध नहीं होते। एक तो कम्पनी इनसे उस समय मुक्त हो जाती है जिस समय वह अपना सम्बन्ध बाहरी लोगों से कायम करती है। ऐसे मेम्बर भी उस समय मुक्त हो जाते हैं जब वे कम्पनी से मेम्बर की हैसियत से अन्य किसी रूप में



कोई कार्यवाही करते हैं। इसकी वजह यह है कि कम्पनी के अन्तनियमों से बाहर लोगों का कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

### अन्तनियम परिवर्तन (Alteration of Articles)

धारा ३१ के अनुसार कोई भी कम्पनी, सन्निधिम के आदेशों का पालन करती हुई तथा अपनी सीमा का उल्लंघन न करती हुई, एक विशेष प्रस्ताव द्वारा अपने अन्तनियमों में परिवर्तन कर सकती है। अन्तनियम के परिवर्तन करने के लिए किसी कम्पनी के अधिकारों की निम्नलिखित सीमाएँ (limitations) होती हैं—

१. कम्पनी के अन्तनियमों में केवल विशेष प्रस्ताव द्वारा ही परिवर्तन किया जा सकता है। किसी साधारण या असाधारण (ordinary or extraordinary) प्रस्ताव द्वारा यह रद्दोबदल नहीं होता, चाहे कम्पनी के नियमों में इसका वर्णन ही क्यों न हो।

२. यह परिवर्तन भारतीय कम्पनी सन्निधिम (Indian Companies Act) के खिलाफ नहीं होना चाहिए। साथ ही, कम्पनी की संध-सीमा के नियमों के उल्लंघन भी नहीं होने चाहिए।

३. परिवर्तन इस प्रकार का न हो कि इसमें किसी मेम्बर पर यह दबाव पड़े कि वह और हिस्सों को खरीदे तथा कम्पनी में अधिक रुपया जमा करने के लिए अपना अधिक दायित्व बढ़ाये।

४. केन्द्रीय सरकार की पुष्टि के बगैर निम्नलिखित बातों में किया हुआ परिवर्तन पूर्णतया व्यर्थ ही माना जायगा।

(i) यदि कोई कम्पनी जिसमें कि मैनेजिंग एजेंट नहीं हैं, किसी ऐसे संचालक (director) की बहाली कर लेती है जिसने क्रम से अपनी अवधि पर पद को न छोड़ा हो, तथा उसका पारिश्रमिक भी बढ़ा देती है।

(ii) यदि कोई कम्पनी अपने संचालकों की संख्या बढ़ा देती है।

(iii) यदि कोई कम्पनी अपने मैनेजिंग एजेंट (managing agent) के कार्यालय से सम्बद्ध नियमों को विस्तीर्ण कर देती है।

(iv) यदि कोई कम्पनी मैनेजिंग एजेंट (managing agent) को बहाल कर लेती है तथा उसका पारिश्रमिक (remuneration) भी बढ़ा देती है।

५. न्यायालय की आज्ञा के बिना कोई भी कम्पनी अपने अन्तनियम में ऐसा किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकती जो उस आज्ञा से असम्बद्ध हो।

६. परिवर्तन सदैव निष्कपट रूप से कम्पनी के लिए लाभप्रद होना चाहिए।

७. कोई भी रद्दोबदल अल्पसंख्यकों (minority) के साथ छल या कपट (fraud) का व्यवहार करनेवाला नहीं होना चाहिए।

८. परिवर्तन इस प्रकार का न हो कि इससे कम्पनी को बाहरी लोगों के साथ अनुबन्ध-परिच्छेद (breach of contract) करना पड़े।

### संघ-स्मारपत्र तथा अन्तनियम में अन्तर (Distinction between Memorandum and Articles)

१. स्थापना—स्मारपत्र में कम्पनी के उन उद्देश्यों का उल्लेख होता है जिनके आधार पर उसकी स्थापना होती है। ये नियम साधारण तरीके से अपरिवर्त्य होते हैं, किन्तु अन्तनियम किसी कम्पनी की आन्तरिक व्यवस्था से सम्बद्ध नियम

होते हैं। इन नियमों पर सभी मेम्बरों का पूरा अधिकार रहता है और ये आसानी से बदलते भी रहते हैं।

२. **नियम के विरुद्ध काम न करना**—स्मारपत्र (memorandum) किसी भी कम्पनी को उल्लिखित नियमों के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार देने में हथेला असमर्थ रहते हैं। अन्तर्नियम (articles) सिर्फ कम्पनी सन्तनियम में ही सीमित नहीं रहते, बल्कि स्मारपत्र के भी सहायक होते हैं और उसमें दिये हुए अधिकारों के बाहर कोई भी काम नहीं करते।

३. **अनुबन्ध**—स्मारपत्र कम्पनी तथा अन्य व्यक्तियों के मध्य एक प्रकार का अनुबन्ध होता है, इसलिए कम्पनी से सम्बद्ध ऐसे अन्य लोगों को भी स्मारपत्र का ज्ञान होना आवश्यक है। परन्तु अन्तर्नियमों का बाहर के व्यक्तियों से कोई भी सम्बन्ध नहीं होता और वे बाहर के लोगों तथा कम्पनी से कोई भी सम्बन्ध स्थापित नहीं करते।

४. **उद्देश्य तथा अधिकार**—स्मारपत्र में कम्पनी के उद्देश्यों तथा अधिकारों का वर्णन रहता है, परन्तु अन्तर्नियम में उन उद्देश्यों तथा अधिकारों की पूर्ति के लिए किये जानेवाले कार्यों की पद्धति का विवेचन किया जाता है।

५. **परिवर्तन**—स्मारपत्र के नियम तथा विशिष्ट बातों को छोड़कर इनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन साधारण तरीके से नहीं किया जा सकता और यदि परिवर्तन आवश्यक भी हो तो वह कम्पनी कानून की धाराओं के अनुसार तथा केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति द्वारा ही होगा परन्तु अन्तर्नियम में किसी भी समय तक विशेष प्रस्ताव द्वारा सभी नियमों का परिवर्तन किया जा सकता है। ये नियम कम्पनी के आन्तरिक नियम की वजह से शेयरहोल्डरों के अधीन रहते हैं और वे स्मारपत्र से बिल्कुल भिन्न होते हैं।

### ‘शक्ति से परे’ का सिद्धान्त (Doctrine of Ultra-vires)

‘शक्ति से परे’ (ultra-vires) का सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका सम्बन्ध प्रत्येक संस्था या कम्पनी से रहता है। इसका मतलब यह है कि कोई भी कम्पनी अपने खास उद्देश्यों से परे किसी भी प्रकार का काम करने में पूर्ण असमर्थ होती है। यदि वह कम्पनी कोई भी ऐसा काम कर बैठती है जो उसके घोषित उद्देश्यों में शामिल नहीं है तो वह काम व्यर्थ माना जाता है तथा उसका कोई भी वैधानिक प्रभाव नहीं होता। फिर भी, सीमित कम्पनियों से सम्बद्ध इस सिद्धान्त के अनुसार तीन प्रकार के काम होते हैं—

१. वे काम जो स्मारपत्र (memorandum) की शक्ति से परे या अलग होते हैं; जैसे—किसी ऐसे काम में व्यस्त होना जिसका वर्णन स्मारपत्र के लिखित उद्देश्यों में नहीं है। ऐसे काम पूर्णरूपेण अवैधानिक माने जाते हैं।

२. वे काम जो कि अन्तर्नियमों की शक्ति से तो परे होते हैं पर स्मारपत्र के भीतर आ जाते हैं; जैसे—अन्तर्नियम में निश्चित दर से कही अधिक किसी याचना (calls) पर पेशगी व्याज दे देना।

३. वे काम जो संचालकों की शक्ति से परे होते हैं, परन्तु कम्पनी की शक्ति के अन्दर आ जाते हैं। किसी अनधिकृत (unauthorised) संचालक द्वारा कम्पनी के किसी कर्मचारी को उपहार (gratuity) प्रदान करना।

## प्रविवरण (Prospectus)

कम्पनी की रजिस्ट्री हो जाने पर व्यवसाय को संचालित करने के लिए रुपयों की आवश्यकता होती है जो जनता में विज्ञापन द्वारा अंशों या ऋणपत्रों को बेच कर ही प्राप्त किया जाता है। कम्पनी के संचालक (directors) अंशों (shares) तथा ऋणपत्रों (debentures) को खरीदने के लिए जनता को आमंत्रित करते हैं। इस आमंत्रण को ही 'प्रविवरण' (prospectus) कहते हैं।

धारा २ (३६) के अनुसार, "प्रविवरण से तात्पर्य है किसी प्रविवरण (prospectus), सूचना (notice), प्रविद्ध-पत्र (circular), विज्ञापन (advertisement) अथवा अन्य ऐसे आमंत्रण जिसके द्वारा किसी कम्पनी के अंशों या ऋणपत्रों को खरीदने तथा अंशदान (subscription) के लिए सर्वसाधारण से प्रस्तावित किया जाय। परन्तु इसमें ऐसा कोई व्यापारिक विज्ञापन सम्मिलित नहीं होता जिसके देखने से ही यह प्रकट होता हो कि कोई प्रविवरण नियमानुसार तैयार किया जा चुका है और प्रस्तुत (file) कर दिया गया है।" ["Prospectus" is defined by Sec. 2 Cl (36) of the Act as "any Prospectus, Notice, Circular, Advertisement or other invitation, offering to the public for subscription or purchase of any share or debentures of a Company but not including any trade or advertisement which shows on the face of it that a formal prospectus has been prepared and filed."]

धारा ५६ (३) के मुताबिक ऐसा कोई सरक्यूलर या प्रविद्ध-पत्र प्रविवरण नहीं कहला सकता जिसमें कि केवल कम्पनी के मेम्बरों अथवा लाभांशधारियों को अंशों या लाभांशों को खरीदने के लिए आमंत्रित किया गया हो, भले ही वह पत्र दूसरे मनुष्यों के अधिकार से युक्त ही क्यों न हो।

धारा ५६ के अनुसार प्रत्येक प्रविवरण में निम्नलिखित बातों का उल्लेख रहता है —

१. कम्पनी के स्मारपत्र (memorandum) में दिये गये नियमों का संक्षिप्त वर्णन।

२. संचालकों के नाम तथा पते (जिन्होंने स्मारपत्र पर दस्तखत किये हैं) तथा उनके द्वारा खरीदे गये अंशों की संख्या।

३. संचालकों (directors) को मिलने वाले पारिश्रमिक की रकम, वेतन अथवा पारितोषिक।

४. संचालकों और मैनेजिंग एजेंटों (managing agents) के नाम और पते।

५. कम्पनी की न्यूनतम अभिदान-राशि (minimum subscription) तथा प्रत्येक अंश के प्रार्थना-पत्र की राशि (application money)।

६. अण्डर-राइटिंग कमीशन (underwriting commission) की रकम।

७. प्रारम्भिक व्यय (preliminary expenses) ।
८. कम्पनी के लेखा-परीक्षक (auditor) का नाम तथा पता ।
९. अवमूल्य पर निर्गमित अंशों (shares issued at discount) तथा उपहार (gratuity) की रकम ।

१०. अंशधारियों को मत देने, लाभांश पाने तथा पूँजी वापस पाने के अधिकार ।
११. प्रविवरण (prospectus) को जारी करने के पूर्ववर्ती पाँच वर्षों में कम्पनी के लाभों, हानियों और सम्पत्तियों तथा दिये गये लाभांशों की दर को दर्शानेवाली सहायक कम्पनियों के सम्बन्ध में हिसाब-निरीक्षकों की रिपोर्ट ।
१२. विभिन्न प्रकार के अंशों की मात्रा ।

यदि कम्पनी प्रविवरण जारी करने के पहले ही व्यापार करती हो तो निम्नलिखित बातों का भी प्रविवरण में सम्मिलित करना जरूरी है—

(क) कम्पनी के अंकेक्षकों (auditors) द्वारा प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट जिसमें उसकी सहायक कम्पनियों के लाभ का विवरण हो । इसमें तीन या पाँच वर्ष पहले का लाभ दिया जाना चाहिए ।

(ख) कम्पनी द्वारा पिछले तीन वर्षों में भिन्न-भिन्न श्रेणियों के अंशों पर विभाजित किये गये लाभांश (dividend) ।

(ग) यदि अंशों या ऋणपत्रों के जारी करने की आय या उसका कोई भाग किसी उद्योग को खरीदने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लगाया जाने वाला हो तो रजिस्टर्ड एकाउण्टेण्ट (registered accountant) द्वारा प्रविवरण जारी करने में तीन वर्ष पहले तक के लाभों पर प्रस्तुत की हुई रिपोर्ट ।

प्रत्येक व्यक्ति, जो प्रविवरण जारी करते समय कम्पनी का डाइरेक्टर हो तथा वह व्यक्ति जिसने अपना नाम प्रविवरण में लिखने की स्वीकृति दी हो और उसे डाइरेक्टर के रूप में नामांकित किया गया हो, तथा प्रत्येक प्रवर्तक उन सब व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी होंगे, जिन्होंने प्रविवरण में दिये गये भ्रामक या असत्य वर्णन के कारण कोई हानि उठाई हो । [धारा ६२]

प्रविवरण के उस भ्रामक (misleading) या असत्य विवरण के सम्बन्ध में जिसका किसी विशेषज्ञ का कथन होना प्रकट होता हो या जिसको किसी विशेषज्ञ की रिपोर्ट या मूल्यांकन के उद्धरण की शुद्धि और अच्छी प्रतिलिपि है, कोई भी व्यक्ति क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा । लेकिन यह साबित हो जाने पर कि उसके पास इस बात का विश्वास करने के उचित कारण नहीं थे कि कथन, विवरण या मूल्यांकन करनेवाला मनुष्य उसे रोकने के लायक था, प्रविवरण को जारी करनेवाला प्रत्येक मनुष्य उत्तरदायी होगा । इसलिए प्रविवरण में भ्रामक विवरण नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसी के विश्वास पर जनता शेयर या डिबेंचर खरीदती है । यदि महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रविवरण में न दिया जाय तो शेयरहोल्डर प्रसंविदे को रद्द कर सकते हैं और क्षतिपूर्ति के लिए संचालकों के खिलाफ मुकदमा कर सकते हैं ।

लेकिन ऐसा करने के लिए यह साबित करना होगा कि विशेष विवरण के अभाव में ही शेयर खरीदे गये थे और उनके प्रविवरण में होने पर शेयर नहीं खरीदा जाता । जब कपट-पूर्ण वर्णन द्वारा प्रेरित होकर कोई शेयरहोल्डर अंशों को खरीदता है, किन्तु यदि उसे सत्य के लिए बहुत-से साधन मौजूद रहे हों और जब उनके लिए वह कोशिश न करे तो संचालक तथा प्रबन्धक उसके लिए दायी नहीं होंगे । शेयरहोल्डर को सत्य बात मालूम होने पर ठीक समय में सहायता मिलने के लिए कम्पनी को खबर

देनी चाहिए। केवल मूल अभिदाता (original subscriber) ही क्षतिपूर्ति का अधिकारी है। यदि मूल अभिदाता से किसी दूसरे व्यक्ति ने शेयर खरीद हो तो वह क्षतिपूर्ति कराने के लिए अधिकारी नहीं होगा।

### प्रविवरण के स्थान पर अन्य विवरण (Statement in lieu of Prospectus)

यदि कोई सार्वजनिक कम्पनी (public company) स्थापना के प्रविवरण तैयार नहीं करती, तो उसे एक निदिष्ट ढंग पर एक विवरण लिखकर रजिस्ट्रार के यहाँ प्रस्तुत कर देना चाहिए। इसके बाद ही उसे अपने अंशों तथा ऋणपत्रों के विभाजन में हाथ डालना चाहिए। इस नियम को बनाने का मतलब यह है कि उस कम्पनी से सम्बद्ध सभी बातों की जानकारी रजिस्ट्रार को भी हो जाती है और अन्य व्यक्तियों को भी वहाँ से सभी बातें ज्ञात हो सकती हैं। अगर कम्पनी प्राइवेट है तो इसके लिए निश्चित फार्म (prescribed form) जो बना है उस पर प्रत्येक विवरण को भर कर दे देना चाहिए। इसमें प्रायः उन्हीं बातों का संक्षिप्त वर्णन रहता है जो प्रविवरण में रहता है।

### अंश (Shares)

कम्पनी अपनी पूँजी को छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट देती है और प्रत्येक इकाई एक अंश कहलाती है। [A share in a company is one of the units into which the total capital of the company is divided.]

लेकिन कम्पनी सन्निधिम, १९५६ के अनुसार—‘शेयर’ का तात्पर्य किसी कम्पनी की पूँजी का शेयर और ‘स्टॉक’ का कोई भेद व्यक्त या अभिज्ञात नहीं कर दिया गया हो वहाँ इसमें ‘स्टॉक’ भी सम्मिलित रहता है। [Share means a share in the capital of a company and includes stock except where a distinction between share and stock is expressed or implied.]

फिर फारवेल जे० के मुताबिक—“अंश हिस्सेदारों का किसी कम्पनी में निहित हित है जिसका मूल्य एक रकम द्वारा निर्धारित होता है। यह हित पहले दायित्व के लिए और बाद में लाभांश के लिए होता है। इसमें बहुत सी आपसी शर्तें और मशविरे भी होते हैं जिन्हें हिस्सेदार मिलकर आपस में तय किये रहते हैं।” [According to Farwel J. : “Share is the interest of a shareholder in the company measured by a sum of money for the purpose of liability in the first place and of interest in the second but also consisting of mutual covenants entered into by all the shareholders’ interest.”]

एक व्यक्ति एक अंश से अधिक भी खरीद सकता है। यह उसकी विनियोग-शक्ति (investment) पर निर्भर है। कम्पनी प्रत्येक अंशधारी के नाम एक प्रमाण-पत्र (certificate) जारी करती है। इसमें अंशधारी द्वारा खरीदे गये अंशों की संख्या, उनका मूल्य तथा अंशधारी का नाम रहता है। अंशों के अब नये सन्निधिम की धारा २६ के अनुसार दो भेद हैं—

१. पूर्वाधिकार अंश (Preference shares), और

## २. साम्य अंश पूँजी (Equity share capital) ।

१. **पूर्वाधिकार अंश (Preference shares)**—ऐसे अंश के स्वामियों को एक निश्चित दर से लाभांश पाने का सर्वप्रथम अधिकार प्राप्त रहता है। कम्पनी के समापन पर भी ऐसे अंशधारियों को अपनी पूँजी पाने का सर्वप्रथम अधिकार रहता है। दूसरी तरह से और शेयरहोल्डरों के अलावा इन्हे अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त रहती हैं। इस शेयर के निम्नलिखित उपभेद होते हैं—

(i) **संचयी पूर्वाधिकार (Cumulative preference shares)**—इस तरह के अंशधारियों को एक निश्चित दर से लाभांश पाने का पूर्वाधिकार रहता है। किसी साल यदि नफा न हुआ अथवा नाममात्र का नफा हुआ अथवा नफा घोषित न किया गया तो उनका लाभ पाने का अधिकार समाप्त नहीं होता, बल्कि आगामी साल जब अधिक नफा होगा, उन्हें पिछले सालों का सारा बकाया नफा जोड़ कर मिलेगा। नफा पाने की सहूलियत दूसरे प्रकार के अंशधारियों को नहीं दी जाती।

(ii) **असंचयी पूर्वाधिकार (Non-cumulative preference shares)**—इसमें यदि किसी साल अधिक लाभ होता है, अर्थात् संचयी पूर्वाधिकार अंशधारियों (cumulative preference shareholders) को एक निश्चित दर से नफा देने के बाद कुछ शेष रहता है तो इन्हे लाभ मिलता है, अन्यथा नहीं, और इनका अधिकार खत्म हो जाता है। ये आगामी साल शेष लाभ पाने के अधिकारी नहीं होते।

(iii) **शोध्य पूर्वाधिकार अंश (Redeemable preference shares)**—सन् १९३६ के भारतीय कम्पनी सन्निधम के पश्चात् ही ऐसे अंशों का प्रचार हुआ। इसमें अंश खरीदनेवालों को उनकी पूँजी एक निश्चित समय के बाद वापस कर दी जाती है। प्रत्येक वर्ष के लाभ का एक हिस्सा एक कोष में जमा किया जाता है और उसी से उनकी पूँजी अन्त में वापस की जाती है। इसमें अपनी पूँजी पाने के अधिकारी वे ही लोग होते हैं जिन्होंने अंशों का पूरा मूल्य कम्पनी को चुका दिया हो।

(iv) **अशोध्य पूर्वाधिकार अंश (Irredeemable preference shares)**—इसमें अंशधारियों को अपनी पूँजी एक निश्चित समय के बाद पाने का अधिकार नहीं रहता। कम्पनी के समापन पर यदि पर्याप्त धन रहा हो, तो इन्हें अपनी पूँजी वापस मिल सकती है।

(v) **परिवर्तनशील पूर्वाधिकार अंश (Convertible preference shares)**—ऐसे अंशधारियों को यह अधिकार प्राप्त रहता है कि वे निश्चित समय के अन्दर यदि चाहें तो अपने अंशों को किसी भी श्रेणी के अंशों में परिवर्तित करा लें।

(vi) **सलाम पूर्वाधिकार अंश (Participating Preference Shares)**—इस तरह के अंशधारियों को शुरू में एक निश्चित दर से नफा दिया जाता था। इसके अलावा, अन्य प्रकार के अंशधारियों को नफा देने के बाद अन्त में शेष लाभ में भी उन्हें अंश पाने का अधिकार रहता था। ऐसे अंशों का रिवाज आजकल नहीं है। ये प्राचीन काल में प्रचलित थे।

२. **साम्य अंश-पूँजी (Equity Share Capital)**—धारा ८५ के अनुसार साम्य अंश-पूँजी (equity share capital) वह सब अंश-पूँजी है जो पूर्वाधिकार अंश-पूँजी (preference share capital) नहीं हो, अर्थात् पूर्वाधिकार अंश-पूँजी के अतिरिक्त बाकी सब अंश-पूँजी साम्य अंश-पूँजी (equity share capital) समझी जाती है।

कम्पनी अपने अंशों को निम्नलिखित तरीके से जारी कर सकती है—

(क) **अधिमूल्य पर (At Premium)**—यदि कोई कम्पनी अपने अंशों को उसके वास्तविक मूल्य से अधिक कीमत पर बेचे तो कहा जायगा कि कम्पनी के अंशों की विक्री अधिमूल्य पर हो रही है। [धारा ७८]

(ख) **कम मूल्य पर (At Discount)**—कम्पनी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने पर उसके अंश कम मूल्य पर बिकते हैं, अर्थात् उन अंशों की विक्री उनके अंकित दाम से कम पर होती है; जैसे—१००) २० का अंश ९५) में बिक सकता है।

(ग) **अंकित मूल्य पर (At par)**—यदि कम्पनी अपने अंशों की विक्री उनके अंकित मूल्य पर ही करती है, जैसे १००) २० के अंशों को १००) २० में, तो कहा जाता है कि अंश बराबर मूल्य पर बेचा गया है।

**कम्पनी की पूँजी और उसका वर्गीकरण (Share Capital and its classification)**

कम्पनी की पूँजी बहुत तरह की होती है जिसका वर्णन नीचे किया जाता है—

(i) **अधिकृत पूँजी (Authorised, nominal or registered capital)**—यह वह पूँजी है जिसका वर्णन कम्पनी के स्मारपत्र (memorandum) में रहता है तथा जिस पूँजी के साथ कम्पनी की रजिस्ट्री होती है। कम्पनी को इस रकम तक रुपया एकत्र करने का पुरा अधिकार रहता है। इसे रजिस्टर्ड पूँजी या नाममात्र पूँजी (registered or nominal capital) भी कहते हैं।

(ii) **निर्गमित पूँजी (Issued capital)**—कम्पनी साधारणतः अपनी सारी पूँजी की विक्री एक ही बार नहीं करती। जरूरत के मुताबिक वह अपनी पूँजी के कुछ अंशों को जनता में प्रचलित करती है। अतः अधिकृत पूँजी का वह भाग जिम्को क्रय करने के लिए कम्पनी जनता को आमन्त्रित करती है, जारी की हुई पूँजी (issued capital) कहलाती है।

(iii) **अनिर्गमित पूँजी (Unissued Capital)**—अधिकृत पूँजी का यह वह भाग है जिसके लिए जनता को आमन्त्रित नहीं किया जाता।

(iv) **अभिदत्त पूँजी (Subscribed Capital)**—यह कोई जरूरी नहीं है कि जितने अंशों के लिए कम्पनी जनता को आमन्त्रित करती है वह बिक ही जाय। यह पूँजी निर्गमित पूँजी का वह भाग है जिसके लिए कम्पनी के पास आवेदनपत्र भेजा जाता है।

(v) **याचित या माँगी हुई पूँजी (Called-up Capital)**—यह अभिदत्त (subscribed) पूँजी का वह भाग है जिसे कम्पनी जनता से माँगती है।

(vi) **अयाचित पूँजी (Uncalled Capital)**—बिकी हुई पूँजी का जो भाग अंशधारियों से नहीं माँगा जाता उसे कम्पनी की अयाचित पूँजी (uncalled capital) कहते हैं।

(vii) **परिदत्त या प्राप्त पूँजी (Paid-up Capital)**—माँगी हुई पूँजी का जो भाग अंशधारियों से प्राप्त हो जाता है उसे परिदत्त या प्राप्त पूँजी कहते हैं। इस प्रकार, माँगी हुई पूँजी का जो रुपया नहीं मिलता है उसे 'बाकी माँग' (calls-in-arrears) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, यह याचित पूँजी और परिदत्त पूँजी का

अन्तर है।

(viii) **संचित पूँजी (Reserve Capital)**—कुछ पूँजी कम्पनी आरम्भ में नहीं माँगी; वह कम्पनी के समापन पर जनता से माँगी जाती है। इस पूँजी को संचित पूँजी कहते हैं।

### ऋणपत्र (Debentures)

कभी-कभी कम्पनी जो भी पूँजी हिस्सेदारों से प्राप्त करती है वह व्यवसाय के लिए पर्याप्त नहीं होती, अतएव वह जनता में ऋणपत्र जारी करके एक बड़ी रकम ऋण के रूप में एकत्र करती है। इन ऋणपत्रों (debentures) में ऋण-सम्बन्धी सभी शर्तें दी रहती हैं; जैसे—ऋण की रकम, व्याज की दर, ऋण भुगतान करने की किस्तों की संख्या, उनकी अवधि, ऋण के लिए बन्धक (mortgage) या जमानत (security) आदि। इसकी परिभाषा कम्पनी सन्निधय की धारा २ (१२) में इस प्रकार दी गयी है— “ऋणपत्र में किसी कम्पनी का ऋण, स्टॉक, बॉण्ड और कोई भी दूसरी जमानत शामिल रहती है, चाहे इनमें से कोई एक कम्पनी सम्पत्ति के चार्ज के रूप में हो या न हो। (Debenture includes debenture stock, bonds and any other securities of a company, whether constituting a charge on the assets of the company or not) [Sec 2 (12)]

इसके निम्नलिखित भेद हैं—

(i) **रजिस्टर्ड ऋणपत्र (Registered Debentures)**—ऐसे ऋणपत्रों का व्योरा कम्पनी की बहियों में रहता है। उसके हस्तान्तरण के लिए कम्पनी की अनुमति लेनी पड़ती है। ऐसे ऋणपत्रों का प्रतिशोधन कम्पनी के ऋणपत्र के रजिस्टर में लिखित व्यक्तियों का होता है। इस प्रकार के ऋणपत्रों के हस्तान्तरण की सूचना कम्पनी को देनी पड़ती है, जिसमें कम्पनी अपने रजिस्टर में आवश्यक परिवर्तन कर सके।

(ii) **शोध्य ऋणपत्र (Redeemable Debentures)**—यह ऋणपत्र कर्ज लेते समय इस बात का आश्वासन देता है कि ऋणदानाओं के रुपये को एक निश्चित समय के भीतर अथवा सूचना देने पर वापस कर दिया जायगा। अक्सर कम्पनी ऐसे ऋण-पत्रधारियों को लाभ से अथवा पूर्ववर्षों के संचित कोष से या नवीन ऋणपत्र निर्गमन करके उनके ऋण का धन वापस करती है। कम्पनी प्रायः इसी तरह के ऋणपत्र विक्रय करती है।

(iii) **अशोध्य या स्थायी ऋणपत्र (Irredeemable or perpetual debentures)**—ऐसे ऋणपत्र हैं जो स्थायी होते हैं और जिनकी रकम कम्पनी के जीवनकाल में नहीं लौटायी जाती। अतः इस प्रकार के ऋणपत्रों का प्रतिशोधन (repayment) कम्पनी के जीवनकाल में नहीं होता, बल्कि कम्पनी के समाप्त होने पर या दिवालिया होने पर ही होता है। जिन कम्पनियों की साख (credit) मुद्राबाजार पर अत्यधिक रहती है, प्रायः वे इसी प्रकार के ऋणपत्रों को चालू करती हैं। इसी का दूसरा नाम पर्प्युअल ऋणपत्र (perpetual debentures) है।

(iv) **बन्धक-युक्त ऋणपत्र (Mortgaged Debentures)**—साधारणतः कम्पनी ऋणपत्रों के भुगतान के लिए अपनी कुछ सम्पत्तियों को जमानत के रूप में रख देती है। ऐसे ऋणपत्रों को बन्धक-युक्त ऋणपत्र कहते हैं।

(v) **परिवर्तित ऋणपत्र (Convertible Debentures)**—किसी-किसी समय



ऋणदाताओं को यह विकल्प (option) दिया जाता है कि वे अपने दिये हुए कर्ज को एक निश्चित समय के अन्दर स्टॉक या शेयर में बदल सकते हैं।

(vi) **वाहक ऋणपत्र (Bearer Debentures)**— ये ऋणपत्र केवल सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। हस्तान्तरण के समय कम्पनी को किसी पुस्तक में लेखा करने की आवश्यकता नहीं होती। जो इन्हें प्राप्त करते हैं, वे ही उसके अधिकारी हो जाते हैं।

(vii) **असाधारण या अनावृत ऋणपत्र (Simple or Naked Debentures)**— यदि कोई कम्पनी ऋणपत्र प्राप्त करने के लिए ऋणदाताओं को किसी तरह की जमानत नहीं देती है या कोई सम्पत्ति प्रतिभूति के रूप में रखती है तो ऐसे ऋणपत्र को साधारण या अनावृत ऋणपत्र कहते हैं। इसमें कम्पनी केवल ऋणपत्र करने की स्वीकृति देती है। इसमें ऊँची दर से व्याज दिया जाता है।

### स्टॉक (Stock)

अंश विभाज्य होते हैं, अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर वे कई भागों में विभाजित नहीं किये जा सकते। अतएव, यदि अंशों के मूल्य पूर्णतया चुका दिये जाते हैं और कम्पनी का पार्षद अन्तर्नियम उसे आज्ञा देता है तो अंशों के विनियम स्टॉक में किये जा सकते हैं। इससे अंशधारियों को बड़ी सुविधा मिलती है, क्योंकि एक अंश को कई भागों में विभाजित कर बेचा जा सकता है और वह हस्तान्तरित किया जा सकता है। प्रत्येक स्टॉक में उसका दाम लिखा रहता है, इसलिए स्टॉक एक प्रकार से पूर्णतया चुका दिये गये अंशों का एक सामोक्त नाम है। जब कम्पनी की अंशपूँजी स्टॉकों में बदल दी जाती है तो उसका विभाजन समान हिस्सों या अंशों में नहीं किया जाता, वरन् विभिन्न राशियों में किया जाता है। उदाहरणार्थ, मान लिया जाय कि किसी कम्पनी की अंश-पूँजी सौ-सौ रुपयों के हिस्सों या अंशों में विभाजित है। ऐसी हालत में कोई व्यक्ति अंशों की किसी भी संख्या को खरीद सकता है, किन्तु एक 'अंश' के किसी भाग को नहीं खरीद सकता है। इसका उलटा, मान लिया जाय, अंश पूर्णतया चुका दिये गये हैं और कम्पनी ने उन्हें स्टॉक में बदल लिया है। ऐसी हालत में कोई व्यक्ति किसी ५० पैसे की राशि के स्टॉक को खरीद सकता है; जैसे— ५५ रु० ५० पैसे का स्टॉक या ५ रुपये का स्टॉक इत्यादि।

अंश और स्टॉक में कुछ अन्तर भी हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. अंशों का पूर्णतया चुकती होना आवश्यक नहीं है। अंश साधारणतया किस्तों में चुकाये जाते हैं। लेकिन स्टॉक पूर्णतया चुकती (full paid-up) ही होते हैं।
२. अंश अपने समूचे रूप में ही हस्तान्तरणीय होते हैं जब कि स्टॉक का आंशिक भागों में विभाजन किया जा सकता है और कम्पनी के नियमों के मुताबिक अपने ढंग से हस्तान्तरण किया जा सकता है।
३. सम्पूर्ण अंशों को उनकी विशिष्ट संख्याओं से जाना जा सकता है, किन्तु स्टॉक इस तरह से नहीं जाना जा सकता।
४. कोई स्टॉकधारी अपने कज्जे के पूँजी-मूल्य के लिए मुकदमा नहीं चला सकता। उसका स्वार्थ कम्पनी में केवल लाभांश प्राप्त करने तक ही सीमित है। किन्तु, अंशधारी को कुछ अवस्थाओं में मुकदमा चलाने का भी अधिकार प्राप्त है।
५. अंश का एक अंकित मूल्य होता है जिसका भुगतान अंशधारी को करना पड़ता है और कम्पनी के समापन पर (winding-up) उसे कम्पनी के लाभों तथा

हानियों में भाग लेने का अधिकार रहता है। स्टॉकधारी को ऐसा कोई अधिकार नहीं रहता।

### प्रस्ताव और उनका वर्गीकरण (Resolutions and their classifications)

कम्पनी की बैठकों में विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में बहुत से प्रस्ताव लाये जाते हैं और उन प्रस्तावों का समर्थन किया जाता है। प्रस्तावों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा गया है—

१. साधारण प्रस्ताव (Ordinary resolution),
२. विशेष प्रस्ताव (Special resolution), और
३. ऐसे प्रस्ताव, जिसमें विशेष नोटिस की आवश्यकता पड़ती है। (Resolution requiring special notice; Sec. 225, 261, 281 and 284)

१. साधारण प्रस्ताव (Ordinary resolution)—ऐसा प्रस्ताव प्रबन्धक, प्रतिनिधियों, अंकेषकों, निस्तारकों (liquidators) इत्यादि की बहाली तथा पदच्युति के लिए कम्पनी को सम्पत्ति की विक्री के लिए अथवा लाभांश की घोषणा तथा स्थिति-विवरण अंकेषकों के लेखा का समर्थन करने के लिए होता है। ऐसा प्रस्ताव हिस्सेदारों तथा संचालकों के बहुमत द्वारा पास होता है। धारा १७१ के अनुसार इस प्रस्ताव को बैठक में उपस्थित करने के लिए कम-से-कम २१ दिन पहले मेम्बरों को इसकी सूचना मिलनी चाहिए।

२. विशेष प्रस्ताव (Special Resolution)—यह प्रस्ताव कम्पनी के किसी विशेष अथवा मुख्य कार्य के लिए होता है। इसमें भी धारा १९८ (२) के अनुसार तीन-चौथाई हिस्सेदारों के बहुमत की आवश्यकता अनिवार्य है। कम्पनी सन्निधिम, १९५६ के अनुसार विशेष प्रस्ताव (special resolution) निम्नलिखित बातों के लिए आवश्यक होते हैं—

(i) उसके आवश्यक रजिस्टर्ड दफ्तर की जगह बदलने के सम्बन्ध में, पार्षद नियम की बातों को बदलने, या कुछ मामलों में कम्पनी के उद्देश्यों को बदलने के लिए न्यायालय का समर्थन आवश्यक है।

(ii) कम्पनी के नाम बदलने में; इसके लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति आवश्यक है।

(iii) अन्तर्नियम के बदलने में To alter the articles of association)।

(iv) कम्पनी की पूँजी को कम करने में; इसके लिए कचहरी या अदालत का हुक्म लेना बहुत आवश्यक है (To reduce the share capital; the confirmation by the Court is also necessary.)।

(v) अपने मैनेजिंग एजेंट की लापरवाही या कार्य का प्रबन्ध ठीक से न करने पर हटा देना (To remove its managing agent for gross negligence or mismanagement)।

(vi) भारत के बाहर देशों के लिए इसके मैनेजिंग एजेंट या विक्रय एजेंट या क्रय-एजेंट की बहाली के लिए।\*

(vii) स्वेच्छा से कम्पनी का समापन कर देना।

\* To appoint its managing agent or his associate as selling agent or buying agent for places outside India.

३. प्रस्ताव, जिसमें विशेष नोटिस की आवश्यकता पड़ती है (Resolution requiring special notice)—धारा १९० के अनुसार इस तरह के प्रस्ताव को जिन सभा में पेश किया जाना हो उससे कम-से-कम चौदह दिन पहले ऐसे प्रस्ताव की सूचना अवश्य ही प्रसारित (circulated) की जानी चाहिए तथा कम्पनी ऐसे प्रस्ताव की सूचना अपने सदस्यों को ठीक उसी प्रकार देगी जैसे कि वह साधारण सभाओं के लिए या समाचारपत्रों में विज्ञापन के जरिये, कम-से-कम द्वादसी दिन पहले देती है। यहाँ यह याद रहे कि उक्त चौदह दिनों में सूचना देने के दिन और सभा के दिन को सम्मिलित नहीं किया जाता।

फिर धारा २२५, २६१, २८१ और २८४ के अनुसार निम्नलिखित बातों के लिए प्रस्ताव, जिसमें विशेष नोटिस की आवश्यकता पड़ती है, जरूरी होता है। वे इस तरह हैं—

(i) अवकाश-प्राप्त अंकेक्षक (retiring auditor) के अलावा किसी व्यक्ति को अंकेक्षक के रूप में बहाल करने के लिए, वार्षिक अधिवेशन में प्रस्ताव के लिए विशिष्ट नोटिस की आवश्यकता होगी।\*

(ii) जिस प्रस्ताव द्वारा यह घोषित किया जाता हो कि किसी डाइरेक्टर-विशेष पर ६५ वर्षों की आयु-सीमा लागू नहीं होगी, विशिष्ट नोटिस की आवश्यकता होगी।†

(iii) अवधि के पहले ही किसी डाइरेक्टर को पदच्युत (to remove) करने के प्रस्ताव के लिए भी विशिष्ट नोटिस की आवश्यकता होगी।

### सभाएँ और वर्गीकरण (Meetings and their classifications)

हिस्सेदारों की सेवाएँ निम्नांकित प्रकार की होती हैं—

(i) वैधानिक सभा (Statutory Meeting) — धारा १६५।

(ii) वार्षिक सामान्य सभा (Annual General Meeting) — धारा १६६।

(iii) असाधारण सामान्य सभा (Extra-ordinary General Meeting) — धारा १६९।

(i) वैधानिक सभा (Statutory Meeting) — धारा १६५ के अनुसार प्राइवेट कम्पनी के सामेलन प्रमाणपत्र पाने के डेढ़ साल के भीतर तथा सार्वजनिक कम्पनी के व्यवसाय शुरू करने का प्रमाणपत्र पाने के कम-से-कम एक महीने के बाद और अधिक-से-अधिक छः महीने के भीतर वैधानिक सभा बुलाना जरूरी है।

इस वैधानिक सभा का उद्देश्य मेम्बरों को नई कम्पनी के प्रबन्ध तथा अन्य मुख्य बातों को ज्ञात करवा देना है। यह वैधानिक सभा कम्पनी की जिन्दगी में एक ही बार होती है और यह भी इसकी स्थापना के तुरत बाद।

इस सभा में जिन नियमों या बातों पर विचार करना होता है, उनकी एक लिस्ट हिस्सेदारों तथा रजिस्ट्रार को कम-से-कम २५ दिन पहले भेज देना जरूरी होता है। आवश्यकता पड़ने पर अन्य विषयों पर भी विचार किया जा सकता है। जो लिस्टें

\* “Special notice shall be required for a resolution at an Annual general meeting ‘appointing an auditor’ a person other than a retiring Auditor.”

† “Special notice shall be required for a resolution declaring that ‘the age limit of sixty five’ shall not apply to any particular Director.”

हिस्सेदारों या रजिस्ट्रारों को भेजी जाती हैं उनमें निम्नलिखित बातें रहती हैं—

(क) सम्पूर्ण शेयरों का जो हिस्सा लगाया गया है उनके और विवरणों का वर्णन ।

(ख) ऊपर से सम्बद्ध जितने नकद रुपये प्राप्त हुए हैं ।

(ग) रिपोर्ट की तारीख से सात दिन के भीतर एक निश्चित तारीख तक की प्राप्तियाँ (receipts) और भुगतानों (payments) का निचोड़ (abstracts) ।

(घ) सचालकों (directors), लेखा-परीक्षकों (auditors), मैनेजिंग एजेंटों, सेक्रेटारियों तथा कोषाध्यक्षों (treasurers) के नाम, पता तथा पेशे का वर्णन ।

(ङ) जिस प्रसंविदे का सुधारा हुआ रूप सभा के सामने रखा जाना हो उसकी विस्तृत बातें ।\*

(च) अगर कोई अभिगोपित प्रसंविदा हो तो वह हद जिस तक अभिगोपित (underwriting) प्रसंविदा पास हो गयी हो ।†

(छ) अगर कोई बकाया हो तो डाइरेक्टरों, व्यवस्थापक, एजेंटों और व्यवस्थापकों की योजनाओं के बकाये ।‡

(ज) किसी देय कमीशन या दलाली की विस्तृत बातें ।\*\*

(ii) **वार्षिक सामान्य सभा (Annual general meeting)**— धारा १६६ के अनुसार वैधानिक सभा की तरह इस सभा का बुलाना भी अनिवार्य है । कम्पनी के सम्मेलन होने की तिथि से १८ महीने के अन्दर हिस्सेदारों की पहली सभा हो जानी चाहिए । यह सभा प्रतिवर्ष होती है । दो वार्षिक सभाओं में १५ महीनों से ज्यादा समय का अन्तर नहीं होना चाहिए । इस सभा में लाभ-हानि का खाता, स्थिति विवरण (balance-sheet), अंकेषकों की रिपोर्टें, संचालकों की वार्षिक रिपोर्टें इत्यादि हिस्सेदारों के सम्मुख उपस्थित की जाती हैं । इसी सभा में हिस्सेदारों को दिया जाने वाला लाभांश भी निश्चित किया जाता है ।

प्रत्येक सामान्य सभा किसी शहर या गाँव में हो या जहाँ रजिस्टर्ड ऑफिस स्थित हो, और यह सार्वजनिक छुट्टियों के दिन हो । यह ध्यान रखना चाहिए कि सामान्य सभा कम्पनी द्वारा प्रतिवर्ष बुलाई जाती है और अगर यह सभा किसी वजह से किसी साल न बुलायी गयी तब धारा १६७ के अनुसार केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह बुला सकती है ।

(iii) **असाधारण सामान्य सभा (Extra-ordinary general meeting)**— धारा १६९ के अनुसार इस सभा का बुलाना कोई जरूरी नहीं है । समय पड़ने पर या किसी खास वजह से ही यह सभा बुलाई जा सकती है । संचालकों को हिस्सेदारों के अनुरोध करने पर ही यह सभा बुलानी पड़ती है । संचालक अगर हिस्सेदारों द्वारा सभा बुलाने की माँग करने पर २१ दिनों के अन्दर सभा नहीं बुलाते तो हिस्सेदारों को माँग किये दिन से तीन महीने के अन्दर स्वयं सभा बुलाने का अधिकार रहता है ।

\* Particulars of any contract the modification of which is to be submitted to the meeting.

† The extent to which underwriting contracts, if any, have been carried out.

‡ Arrears, if any, due on calls from directors, managing agents and managers.

\*\* Particulars of any commission or brokerage paid or to be paid.

## संचालक (Director)

### परिभाषा

संचालकों की कोई भी परिभाषा कम्पनी के सन्वियम में नहीं है, किन्तु धारा २ (१३) के मुताबिक संचालक कोई भी व्यक्ति हो सकता है। जो कम्पनी की नीति एवं व्यवस्था का संचालन करता है। वह संचालक कहा जाता है। अतः संचालक कौन होता है अथवा हो सकता है, यह उसके कार्य से निश्चित होता है, न कि उसके पद से।

१. संचालकों की बहाली (Appointment of directors)— अधिकार, मत्ताओं आदि के लिए बहाली कम्पनी सन्वियम के साथ ही अन्तर्नियम के द्वारा होती है, परन्तु जहाँ कम्पनी का अन्तर्नियम नहीं रहता वहाँ टेबुल 'ए' के नियम कम्पनी पर अनिवार्य रूप से लागू होते हैं और ये तब तक पूर्णरूप से लागू रहेंगे जब तक कम्पनी अपने अन्तर्नियम का रजिस्ट्रेशन नहीं करा लेती।

२ संचालकों का निर्वाचन (Selection of directors)— चूँकि संचालक व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते हैं तथा उन्हीं के द्वारा कम्पनी की कार्य-नीति निश्चित की जाती है, इसलिए इस पद पर योग्य व्यक्तियों की बहाली की जाए जिससे कम्पनी की व्यवस्था अच्छी तरह चल सके। इसलिए कम्पनी में दो तरह के संचालक होते हैं—

(क) सक्रिय संचालक (Active directors), और

(ख) निष्क्रिय संचालक (Passive directors)।

सक्रिय संचालक कम्पनी की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार लेते हैं तथा कम्पनी की कार्य-नीति निर्धारित करते हैं और उसका नियन्त्रण भी करते हैं। इनको विशेषतः मैनेजिंग एजेण्ट मनोनीत (nominate) करता है और संचालक-सभा के स्थायी मेम्बर होते हैं।

निष्क्रिय संचालक केवल अपनी विशेष ख्याति द्वारा कम्पनी की साख बढ़ाने के अलावा व्यापार बढ़ाने के लिए संचालक-सभा में नियुक्त होते हैं। विशेषतः निष्क्रिय संचालकों की बहाली निम्नलिखित कार्यों के लिए की जाती है—

(i) संचालकों की कम-से-कम संख्या की पूर्ति के लिए;

(ii) उसके नाम के कारण जनता किसी नयी कम्पनी के अंश, ऋणपत्रादि का ऋय शीघ्र करे, अथवा

(iii) उसके संचालक होने की वजह से कम्पनी की साख बढ़ती है; अथवा

(iv) मैनेजिंग एजेण्ट अपना सम्बन्ध अन्य मैनेजिंग एजेण्टों से बनाये रखने के लिए भी एक या दो अन्य मैनेजिंग एजेण्टों—फार्म के व्यक्तियों को संचालक के पद पर नियुक्त करते हैं। इन दो प्रकार के संचालकों में सक्रिय संचालक ही विशेष महत्त्व के होते हैं, क्योंकि वे ही कम्पनी की व्यावहारिक नीति का निर्धारण एवं नियन्त्रण करते हैं।

३. **संचालकों के प्रकार (Kinds of Directors)**—संचालकगण अपनी नियुक्ति क अनुसार नाना प्रकार के होते हैं। जो संचालक मैनेजिंग एजेंट द्वारा बहाल किया जाता है, वह स्थानापन्न-संचालक (ex-officio director) कहलाता है। जो संचालक ऋण-पत्रधारियों के हितों की सुरक्षा के लिए बहाल किया जाता है, वह ऋणपत्र संचालक (debenture director) कहलाता है तथा जो दूसरे किसी प्रकार के हितों के लिए बहाल किये जाते हैं, वे विशेष संचालक (special directors) कहलाते हैं। इसके अलावा जो संचालक हिस्सेदारों द्वारा बहाल किये जाते हैं, वे साधारण संचालक (ordinary directors) कहलाते हैं। कुछ संचालक जो हिस्सेदारों के द्वारा भी बहाल किये जाते हैं, वे सदस्य-संचालक (member directors) कहलाते हैं।

४. **संचालकों की संख्या (Number of Directors)**—धारा २५२ के अनुसार किसी सार्वजनिक कम्पनी के लिए कम-से-कम तीन संचालकों का होना अनिवार्य है और किसी भी प्राइवेट कम्पनी के लिए दो संचालकों का होना जरूरी है। इसलिए कम्पनी के नये सन्निध १९५६ के अनुसार प्रत्येक कम्पनी की व्यवस्था के लिए संचालकों का होना जरूरी है। प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी की सहायता निजी कम्पनी के संचालकों की कुल संख्या के कम-से-कम दो-तिहाई संचालक (i) ऐसे व्यक्ति होंगे जिनके कार्यकाल का निश्चय आवर्त्तानानुसार (by rotation) संचालकों के पदत्याग से किया जायगा, और (ii) यदि कम्पनी ने अन्तर्नियम में साफ-साफ कोई विरोधी अभिप्राय न लिख दिया हो तो साधारण सभा में कम्पनी द्वारा उनका चुनाव होगा। ऐसी कम्पनी के बचे हुए संचालक और निजी कम्पनी के साधारणतया सभी संचालकों का चुनाव भी कम्पनी द्वारा साधारण सभा में ही किया जायगा। हाँ, ऐसा चुनाव कम्पनी के अन्तर्नियमों में उल्लिखित नियमों के अधीन और विरोध-रहित ही होना चाहिए। [धारा २५५]

फिर, धारा २५६ के अनुसार प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी या सार्वजनिक कम्पनी की सहायक निजी कम्पनी की उस साधारण सभा में जिसमें ऊपर की २५५वीं धारा के अनुसार प्रथम संचालकों को नियुक्त किया गया हो उसके पश्चात् होनेवाली प्रथम वार्षिक साधारण सभा में और तत्पश्चात् होनेवाली उत्तरवर्त्ती (subsequent) प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में एक-तिहाई संचालक आवर्त्तानानुसार (by rotation) पदत्याग करेंगे। यदि उनकी संख्या तीन न हो या जिसमें तीन का भाग न लग सकता हो तो एक-तिहाई के सबसे अधिक नजदीक संख्यावाले संचालक आवर्त्तान-नियम द्वारा पदत्याग करेंगे।

प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में आवर्त्तान-पद्धति (rotation) द्वारा पदत्याग करनेवाले संचालक ऐसे व्यक्ति होंगे जिनका कार्यकाल पिछली नियुक्ति के समय सबसे अधिक रहा हो। किन्तु यदि कोई संचालक ऐसे व्यक्ति हों जिनकी नियुक्ति एक ही दिन की गई हो तो आपस में किये गये किसी समझौते को ध्यान में रखते हुए, उनके पदत्याग का निश्चय लॉटरी से किया जायेगा।

उसकी वार्षिक साधारण सभा (annual general meeting) जिसमें ऊपर लिखे तरीके से किसी संचालक ने पदत्याग किया हो, कम्पनी अवकाश ग्रहण करनेवाले संचालक की नियुक्ति करके या किसी अन्य व्यक्ति को उस पद पर नियुक्त करके रिक्त स्थान की पूर्ति कर सकती है।

यदि अवकाश ग्रहण करनेवाले संचालक की पूर्ति इस प्रकार न की जाय और

सभा में खाली स्थान को भरने का कोई स्पष्ट प्रस्ताव पास न किया जाय तो आगामी सप्ताह में, उसी दिन, उसी समय और स्थान तक के लिए सभा को स्थगित समझा जायगा। यदि वह दिन सार्वजनिक छुट्टी (public holiday) का हो तो सार्वजनिक छुट्टी न रहनेवाले आगामी उत्तरवर्ती दिन (next succeeding day), समय और स्थान के लिए उस सभा को स्थगित समझा जायगा। किन्तु, यदि उस स्थगित सभा (adjourned meeting) में भी अवकाश ग्रहण करने वाले (retiring) संचालक के स्थान को न भरा जाय और खाली स्थान को भरने में माफ-साफ तरीकों से प्रस्ताव (meeting) में अवकाश ग्रहण करनेवाले (retiring) संचालक सभा (adjourned meeting) में अवकाश ग्रहण करनेवाले (retiring) संचालक को फिर से नियुक्त कर लिया गया है। किन्तु, निम्नलिखित हालातों में ऐसी पुनर्नियुक्तियाँ (re-appointments) सर्वमान्य नहीं होंगी—

(i) जब कि उस सभा में या किसी पूर्ववर्ती सभा (previous meeting) में उस संचालक को पुनर्नियुक्त (re-appoint) करने का प्रस्ताव सबके सामने रखा गया हो और अस्वीकृत हो गया हो;

(ii) जब कि अवकाश ग्रहण करनेवाले (retiring) संचालक ने कम्पनी के नाम या इसके बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स (board of directors) के नाम भेजी गई एक लिखित सूचना के जरिये इसी पुनर्नियुक्ति (re-appointment) पर अपनी अनिच्छा (unwillingness) व्यक्त की हो;

(iii) जब कि वह नियुक्ति के योग्य न हो या अयोग्य (disqualified) हो;

(iv) जब कि कम्पनी ने कानून के किसी नियम के कारण उसकी नियुक्ति (appointment) या पुनर्नियुक्ति के लिए आवश्यक, या विशेष या फिर साधारण प्रस्ताव स्थिर न कर लिया गया हो;

(v) जब कि एक ही प्रस्ताव से दो या अधिक संचालकों की नियुक्ति का प्रस्ताव किया गया हो। [धारा २६३ (२)]

(vi) जब कि अवकाश ग्रहण करनेवाला व्यक्ति ६५ वर्ष का हो चुका हो। [धारा २८० (३)]

धारा २५७ (Section 257)—कोई भी व्यक्ति जो अवकाश ग्रहण करनेवाला (retiring) संचालक नहीं है वह इस अधिनियम के उपलब्धों के अधीन (subject to the provisions of the act) किसी भी साधारण सभा में संचालक के पद पर नियुक्ति के योग्य माना जायगा। किन्तु, ऐसी नियुक्ति की हालत में उसे या उसका प्रस्ताव करनेवाले किसी सदस्य को, सभा के कम-से-कम चौदह दिन पहले, संचालक के पद के लिए उनकी उम्मीदवारी को प्रमाणित करनेवाली उसके अपने हस्ताक्षरों से लिखी हुई (writing under his hand) सूचना को या उस पद के लिए उम्मीदवार के रूप में उसका प्रस्ताव करनेवाले के उस सदस्य के अभिप्राय को सूचित करनेवाली सूचना को कम्पनी के कार्यालय में अवश्य पहुँच जाना चाहिए। यह नियम केवल सार्वजनिक कम्पनी या सार्वजनिक कम्पनी की सहायक निजी कम्पनी पर ही लागू होता है; निजी कम्पनी पर नहीं।

धारा २५८ (Section 258)—कम्पनी कानून की २५२, २५५ और २५९ धाराओं के अधीन, एक कम्पनी अपने अन्तर्नियमों द्वारा निश्चित सीमाओं के भीतर साधारण सभा में सामान्य प्रस्ताव द्वारा अपने संचालकों की संख्या में वृद्धि या कमी कर सकती है।

**धारा २५९ (Section 259)**—किसी भी सार्वजनिक कम्पनी या सार्वजनिक कम्पनी की किसी भी सहायक निजी कम्पनी द्वारा इसके संचालकों की संख्या में की गयी वृद्धि तब तक मान्य और प्रभावकारी नहीं होगी जब तक केन्द्रीय सरकार (Central Govt.) इस पर अपनी मंजूरी न दे दे। यदि केन्द्रीय सरकार इसे नामंजूर कर दे तो यह उसी सीमा तक शून्य होगी। लेकिन इसके दो अपवाद (exceptions) हैं—

(i) यदि कोई कम्पनी २१ जुलाई, १९५१ के दिन मौजूद हो तो उस दिन चालू उसके अन्तर्नियमों के अन्तर्गत अधिकतम सीमा के भीतर की गयी किसी वृद्धि पर केन्द्रीय सरकार की मंजूरी लेना आवश्यक नहीं है।

(ii) यदि कोई कम्पनी २१ जुलाई, १९५१ के बाद अस्तित्व (existence) में आयी हो तो उसके सर्वप्रथम रजिस्टर्ड अन्तर्नियमों के अन्तर्गत स्वीकृत अधिकतम सीमा के भीतर की गयी किसी वृद्धि पर केन्द्रीय सरकार की मंजूरी लेना आवश्यक नहीं है।

**धारा २६० (Section 260)**—यदि कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा बोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टर्स (board of directors) को अतिरिक्त संचालकों (additional directors) की नियुक्ति करने का अधिकार मिला हो, तो इस अधिकार पर उपर्युक्त २५५, २५८ या २५९ धाराओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

किन्तु ऐसे अतिरिक्त संचालक (additional directors) कम्पनी की केवल आगामी वार्षिक साधारण सभा (next annual general meeting) की तिथि तक ही पदारूढ़ रह सकेंगे, और

संचालकों तथा अतिरिक्त संचालकों (additional directors) की संख्या उस अधिकतम संख्या से अधिक कदापि नहीं हो सकती जो अन्तर्नियमों द्वारा बोर्ड के लिए निश्चित की गयी हो।

**धारा २६१ (Section 261)**—यदि किसी सार्वजनिक कम्पनी अथवा सार्वजनिक कम्पनी की किसी सहायक निजी कम्पनी में कोई मैनेजिंग एजेंट हो और ऐसे मैनेजिंग एजेंट को अन्तर्नियमों द्वारा या समझौता द्वारा बोर्ड के किसी संचालक को नियुक्त करने का अधिकार हो तो नीचे लिखे किसी भी व्यक्ति को, कम्पनी द्वारा पास किये गये विशेष प्रस्ताव के सिवा अन्य किसी भी प्रकार कम्पनी के ऐसे संचालक के रूप में बहाल नहीं किया जा सकता जिसका कार्यकाल आवर्तन (rotation) द्वारा संचालकों के पदत्याग से निश्चित किया जानेवाला हो—

(i) कोई भी व्यक्ति जो कम्पनी अथवा उसकी किसी सहायक कम्पनी का कोई ऑफिसर या कर्मचारी (employee) हो, अथवा कम्पनी या किसी सहायक कम्पनी के अन्दर लाभ के किसी पद या स्थान पर आरूढ़ हो;

किन्तु, धारा ३१४ के अनुसार संचालकों या लाभ के पद धारण करनेवालों पर यह नियम लागू नहीं होता।

(ii) ऊपर लिखे नियम के अनुसार किसी पद या स्थान को जब किसी फर्म ने ले रखा हो तो उस फर्म का कोई साझेदार या उसमें काम करनेवाला कोई कर्मचारी (employee);

(iii) जब लाभ के ऐसे किसी पद या स्थान पर कोई निजी कम्पनी प्रतिष्ठित हो तो ऐसी कम्पनी का कोई भी सदस्य, ऑफिसर अथवा कर्मचारी;

(iv) जब लाभ के ऐसे किसी पद या स्थान पर कोई कॉरपोरेशन प्रतिष्ठित



हो तो ऐसी संगठित समिति (corporate body) का कोई भी ऑफिसर या कर्मचारी;

(v) जब कोई भी व्यक्ति जो किसी समझौते के कारण, मैनेजिंग एजेंट को मिलनेवाले पारिश्रमिक के किसी हिस्से या उसकी राशि के प्राप्त करने का अधिकारी हो;

(vi) मैनेजिंग एजेंट या कोई एसोशियेट अथवा ऑफिसर अथवा कर्मचारी (employee); अथवा

(vii) कोई भी व्यक्ति जो मैनेजिंग एजेंट के प्रबन्ध के अन्दर किसी संगठित समिति अथवा इसकी किसी सहायक संस्था का कोई ऑफिसर या कर्मचारी हो अथवा लाभ के किसी स्थान पर प्रतिष्ठित हो।

किन्तु, धारा ३१ के अनुसार संचालकों या लाभ के पद पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर यह नियम लागू नहीं होता।

ऊपर लिखे व्यक्तियों को कम्पनी के संचालक के रूप में बहाल करने या बहाली पर स्वीकृति प्रदान करनेवाले किसी प्रस्ताव की विशेष सूचना दे देना आवश्यक है। कम्पनी को दी जानेवाली ऐसे किसी प्रस्ताव की सूचना में और इस सम्बन्ध में कम्पनी द्वारा उसके सदस्यों को दी जानेवाली सूचना में उन कारणों का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए—ऐसा प्रस्ताव आवश्यक हो जाता है।

इसके अलावा, यदि कोई संचालक इस अधिनियम के शुरू होने के तुरत पूर्व किसी पद पर प्रतिष्ठित हो तो वह कम्पनी की आगामी वार्षिक साधारण सभा (next annual general meeting) में उस तिथि तक उस पद पर प्रतिष्ठित रह सकता है। इस धारा से उसकी पद-प्रतिष्ठा पर कोई असर न पड़ेगा और न उसका विरोध ही हो सकेगा।

धारा २३२ (Section 262)—किसी सार्वजनिक कम्पनी या उसकी सहायक निजी कम्पनी में यदि साधारण सभा में कम्पनी द्वारा बहाल किया गया कोई संचालक उसके समय के समाप्त होने के पूर्व ही पदत्याग कर दे तो उसका समय स्वतः ही यथाविधि (normal course) समाप्त हो जायेगा, किन्तु इस तरह होनेवाली आकस्मिक खाली जगह की पूर्ति, बोर्ड की बैठक में बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स (board of directors) के द्वारा कम्पनी के अन्तर्नियम के अनुसार की जा सकती है। किन्तु, इस तरह से बहाल किया हुआ व्यक्ति पूर्ववर्ती व्यक्ति के अवकाश ग्रहण करने पर कार्यनिवृत्त (retire) हो जायगा और उस पूर्ववर्ती संचालक के कार्यकाल तक ही उसका कार्यकाल होगा।

धारा २६३ (Section 263)—सार्वजनिक कम्पनी अथवा सार्वजनिक कम्पनी की सहायक निजी कम्पनी साधारण सभा में केवल एक ही प्रस्ताव के द्वारा कम्पनी के संचालक के रूप में दो या अधिक व्यक्तियों की बहाली करने के लिए प्रस्ताव (motion) तब तक नहीं किया जा सकता जब तक सभा के द्वारा सर्वप्रथम ऐसा प्रस्ताव एक भी विरोधी मत के बिना स्वीकृत नहीं होता। यदि इस नियम के विरुद्ध कोई प्रस्ताव रखा जायेगा तो वह अमान्य होगा, फिर चाहे इसके प्रस्तावकाल में भले ही इसका विरोध क्यों न किया जाय। किन्तु, यदि इस प्रकार प्रस्तावित प्रस्ताव पास हो जाय तो किसी अन्य नियुक्त व्यक्ति को कार्यनिवृत्त (retire) कराकर पूर्वसंचालकों की पुनर्नियुक्ति पर कोई उपबन्ध लागू न होगा। इस धारा के अनुसार किसी व्यक्ति की बहाली पर स्वीकृति या किसी व्यक्ति को नामांकित करने

(nomination) पर स्वीकृति देने के लिए प्रस्ताव को 'उसकी नियुक्ति का प्रस्ताव' सभा में रखा जायेगा।

**धारा २६४ (Section 264)**—कोई भी व्यक्ति जो कार्यनिवृत्त होने वाला (retiring) संचालक नहीं है, वह कम्पनी का संचालक बनने के योग्य तब तक नहीं समझा जायेगा जब तक स्वयं अथवा लिखित रूप से उसके अधिकृत (authorised) एजेंट द्वारा संचालक के रूप में कार्य करने के लिए लिखित स्वीकृति पर हस्ताक्षर करके रजिस्ट्रार को न दे दे।

यह नियम केवल सार्वजनिक कम्पनियों या उनकी सहायक निजी कम्पनियों पर ही लागू होता है। निजी कम्पनियों पर नहीं।

**धारा २६५ (Section 265)**—इस अधिनियम में किसी अन्य बात का उल्लेख होने पर भी, कोई सार्वजनिक कम्पनी या उसकी सहायक निजी कम्पनी अपने अन्त-नियमों (articles of association) में कम-से-कम दो-तिहाई संचालकों की नियुक्ति या चुनाव अनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional representation) के सिद्धान्त के अनुसार करने का विधान कर सकती है। यह आनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional representation) एकमात्र हस्तान्तरणीय मतदान (single transferable vote) के द्वारा या संचयी मतदान (cumulative voting) की पद्धति के द्वारा या अन्य किसी प्रकार, हो सकता है। ऐसी हालत में चुनाव प्रत्येक तीन वर्ष पर एक बार होगा और अगर इस बीच किसी वजह से कोई स्थान खाली हुआ तो वह २६२वीं धारा के अनुसार आवश्यक परिवर्तनों के साथ (mutatis mutandis) भरा जा सकेगा।

कोई भी व्यक्ति अन्तर्नियमों द्वारा कम्पनी का संचालक तब तक नहीं समझा जायेगा और कम्पनी द्वारा या उसकी ओर से जारी की गयी विवरण-पत्रिका (prospectus) में कम्पनी के संचालक या प्रस्तावित संचालक के रूप में, अथवा किसी संभावित कम्पनी के सम्बन्ध में उसके स्थान पर जारी की गयी विवरण-पत्रिका (statement in lieu of prospectus) में संभावित संचालक के रूप में, अथवा कम्पनी द्वारा या उसकी ओर से रजिस्ट्रार के पास फाइल की गयी (filed) विवरण-पत्रिका-स्थानों में प्रस्तावित संचालक के रूप में नामांकित तब तक नहीं होगा, जब तक अन्तर्नियमों (articles), रजिस्ट्रेशन की विवरण-पत्रिका (prospectus) के प्रकाशन या विवरण-पत्रिका-स्थानों को फाइल (file) करने के पहले उसने स्वयं ही या फिर लिखित रूप से अधिकृत उसके एजेंट के जरिये ऐसे संचालक के रूप में कार्य के लिए अपनी लिखित सहमति पर हस्ताक्षर करके रजिस्ट्रार के पास फाइल (file) न कर दिया हो।

**धारा २७५-२७६ (Section 275 and 276)**—कोई भी व्यक्ति एक साथ बीस से ज्यादा कम्पनियों में संचालक के रूप में कार्य नहीं कर सकता और जो भी व्यक्ति इस नियम के लागू होने के पहले बीस से अधिक कम्पनियों में संचालक के रूप में कार्य करता हो, उसे इस नियम के लागू होने से दो महीने के अन्दर निम्नलिखित कार्य करने होंगे—

(i) उन कम्पनियों में से उन बीस कम्पनियों का चुनाव जिनमें वह संचालक पद पर कार्य करना चाहता है;

(ii) बाकी कम्पनियों की संचालकता से पदत्याग; और

(iii) इस नियम के लागू होने के पहले जिन कम्पनियों का वह संचालक था उनमें से उपयुक्त उपबन्ध के अन्दर उसके द्वारा किये गये चुनाव की, प्रत्येक कम्पनी

instructions of the principal)—धारा २११ के अनुसार एजेंट को प्रधान के आदेशानुसार एजेंसी का काम करना चाहिए, क्योंकि अगर वह उनके आदेशानुसार काम नहीं करता है और व्यापार में कोई हानि हो गयी तो उसका देनदार एजेंट होगा और यदि कोई लाभ हुआ तब उस लाभ का हकदार प्रधान ही होगा।

**उदाहरण**—X ने अपने एजेंट Y को १०,००० रुपये बिहार बैंक में जमा करने का आदेश दिया और एजेंट ने नाथ बैंक में जमा कर दिया। तो ऐसी स्थिति में अगर नाथ बैंक फेल हो जाय तब एजेंट को क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

२. आदेश की गैरहाजिरी में साधारण रिवाजों का अनुकरण करना (To follow Customs in the absence of instructions)—धारा २११ ने ही अपनी दूसरी लाइन में बताया है कि यदि प्रधान ने एजेंट को व्यापार से सम्बद्ध कोई आदेश न दिया हो तो वैसी दशा में एजेंट को वहाँ की प्रथा के अनुसार तथा व्यापार-सम्बन्धी रीति-रिवाजों के अनुसार काम करना चाहिए। यदि एजेंट ऐसा नहीं करता है और इससे प्रधान को नुकसान उठाना पड़ता है तो उस नुकसान के लिए वह उत्तरदायी होगा तथा उससे लाभ होने पर प्रधान को दे देना होगा।

**उदाहरण**—X, Y के लिए एजेंट का काम करता है। जो काम X कर रहा है वैसे काम में यहाँ रिवाज था कि एजेंट के पास जो भी रुपये रहेंगे उनको वह व्याज पर विनियुक्त (invest) कर देगा। X के पास कुछ रुपये रहते हैं और उनका वह विनियोग नहीं करता है। इस हालत में X को जितना व्याज मिला होगा या मिलता, देना पड़ेगा।

३. उचित विवेक, परिश्रम तथा कौशल से कार्य करना (To carry out the work with reasonable care, skill and diligence)—एजेंट को चाहिए कि अपने प्रधान के कार्य को पूरी कुशलता तथा तत्परता के साथ करे। उसको पूरा करने के लिए उसे पूरा परिश्रम करना चाहिए। Misconduct से किसी काम में गलती कर दे तो उसके लिए उत्तरदायी होना पड़ेगा तथा उसे क्षति की पूर्ति भी करनी पड़ेगी। [धारा २१२]

**उदाहरण**—(क) X ने अपने एजेंट Y को साख (credit) पर साल बेचने का अधिकार दिया। Y ने Z के हाथ में ५,००० रुपये का माल बिना उसकी आर्थिक दशा का पता लगाये ही बेच दिया। जब यह माल Z को बेचा जा रहा था तब Z दिवालिया हो गया था। इस हालत में Y का यह कर्तव्य था कि उसके हाथ माल न बेचे। अतः कर्तव्यच्युत होने के कारण अब Y को ५,००० रु० अपने प्रधान को देना पड़ेगा।

(ख) जौन ने स्मिथ नामक एक बीमा के दलाल (insurance broker) को एक जहाज का बीमा कराने लिए बहाल किया। किन्तु, स्मिथ यह देखने में गलती करता है कि बीमा-पत्र (policy) में स्वाभाविक पद (usual clauses) लिखे गये हैं या नहीं। बाद जहाज बरबाद हो जाता है। पदों (clauses) की त्रुटि की वजह से अण्डरराइटर्स (underwriters) से कुछ नहीं मिलता है। इसलिए यहाँ स्मिथ, जौन को क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है।

४. एजेंसी का ठीक ठीक हिसाब रखना तथा प्रधान को देना (To keep and to render account to the Principal)—धारा २१३ के अनुसार एजेंट को चाहिए कि जो भी लेनदेन (transaction) वह करे उसका हिसाब ठीक-ठीक रखे और जिस समय प्रधान हिसाब माँगे या देखना चाहे, वह हिसाब दे या दिखाने के लिए तैयार रहे। अतः कितना उन्होंने खर्च किया, कितना कमीशन हुआ, कितने

का माल बेचा गया वगैरह का हिसाब-किताब उसे पूरा और सही रखना चाहिए। उसे प्रधान के रूप्यों को अपने पास नहीं रखना चाहिए और न अपने रूप्यों के साथ मिलाना ही चाहिए। यह अधिकार सिर्फ बैंकर को मिला है कि वह ग्राहक के रुपये अपने रूप्यों में मिला सके।

५. आपत्तिकाल में प्रधान को सूचित करना (To communicate the Principal in emergency)—धारा २१४ के अनुसार एजेंट का कर्तव्य है कि अगर कार-धार करने के समय कोई अड़चन या कठिनाई आ पड़े तो वैसी दशा में प्रधान को खबर करे और उससे तत्सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने की कोशिश करे। किन्तु यदि प्रधान के सूचना देने का समय न रहा तो ऐसी दशा में यह साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति के समान सावधानी से काम करे। पर अगर उसकी उपेक्षा या दुराचरण के कारण नुकसान हो तो उसे उसका भुगतान करना पड़ेगा।

उदाहरण—X ने अपने एजेंट को दिल्ली में माल बेचने के लिए दिया। एजेंट ने सोचा कि दिल्ली में इस पर नफा न हो सकेगा, वह माल लेकर बम्बई में बेचने के लिए बिना प्रधान की स्वीकृति लिये चला गया। उसने वहाँ माल बेचा, परन्तु नफा होने के बदेन नुकसान हुआ। इस भुगतान के लिए एजेंट अपने प्रधान के प्रति उत्तरदायी होगा।

६. अपने प्रधान के नाम पर पाये रूप्यों का भुगतान करना (To make payment of the money received in name of Principal)—एजेंट को चाहिए कि एजेंसी से सम्बद्ध खर्च और कमीशन काटकर बाकी रकम जिसे उसने प्रधान के लिए क्रेताओं से पाया, प्रधान के हवाले कर दे (धारा २१८)। इसलिए अपने कमीशन और व्यय के सिवा और किसी प्रकार का लाभ होता है तो एजेंट का कर्तव्य है कि वह उस लाभ को अपने प्रधान के हवाले कर दे।\*

उदाहरण—X अपने मकानों को किराये पर देने तथा किरायेदारों से भाड़ा वसूल करने के लिए Y को १०० रु० प्रतिमाह के वेतन पर बहाल करता है। Y को नये किरायेदारों से किराये के अलावा ३०० रु० सलामी मिलती है। ऐसी दशा में वह सिर्फ १०० रु० का ही अधिकारी है, सलामी का नहीं, अतः सलामी X लेगा।

७. एजेंसी का सौदा अपने लिए खरीदना या बेचना (Not to deal on his own account)—एजेंट को अपने प्रधान की सहमति के बिना एवं महत्वपूर्ण परिस्थितियों की जानकारी प्रधान को कराये बिना, एजेंसी के व्यवहार का अपने निज के हिसाब में व्यवहार नहीं करना चाहिए। अगर वह ऐसा करता है तो इस प्रकार से होने वाले लाभ का दावा प्रधान कर सकता है। एजेंट सिर्फ उचित तथा कानूनी पारिश्रमिक के सिवा किसी प्रकार के लाभ का अधिकारी नहीं होता। (धारा २१५)

८. कुल अपवादों (exceptions) को छोड़कर एजेंट को एजेंसी का काम स्वयं करना चाहिए तथा किसी भी हालत में उसे अपने प्रतिनिधि बहाल करने का अधिकार नहीं है (Not to delegate authority)।

९. निम्नलिखित कार्य न करना (Not to do the following work)—

(i) प्रधान के माल पर उसके अधिकार का विरोध करना।

(ii) एजेंसी से अपने लिए नफा कमाना।

\* Morrison vs. Thompson (1874) L. R. I. B. 480.

## एजेंट के अधिकार (Rights of an Agent)

एजेंट के निम्नलिखित अधिकार हैं—

१. उचित व्यय तथा कमीशन प्राप्त करना (Right to receive remuneration and expenses incurred)—अगर एजेंट ने किसी प्रकार की, बिना पारितोषिक लिये काम करने की, प्रतिज्ञा न की हो तो उसे यह अधिकार है कि जितना उसकी एजेंसी के लिए उचित खर्च किया गया है या जितना उसे कमीशन मिलना चाहिए, वह अपने प्रधान को अग्रिम (advance) के रूप में रुपया दिया हो अथवा व्यापार करने में धन खर्च किया हो तो तब एजेंसी के व्यापार में प्राप्त धन में से उपर्युक्त रकम रोक कर रख सकता है। इसके अलावा, जो भी पारिश्रमिक उसे मिलना है अगर वह नहीं मिला हो तो उक्त धन में से वह भी रोक कर रख सकता है। धारा २१९ के अनुसार किसी खास प्रसंविदा के अभाव में कोई काम करने के फलस्वरूप एजेंट का भुगतान तब तक बाकी नहीं समझा जाता जब तक कि वह कार्य पूरा न हो जाय। फिर भी, एजेंट बिके हुए माल के लिए प्राप्त रकम को रोक कर रख सकता है चाहे सम्पूर्ण माल जो उसे भेजा गया, वह बिका न हो अथवा वास्तव में विक्रय पूरा नहीं हुआ हो। किन्तु जब एजेंट अपने आचरण से दोषी है तो जिस काम में दोषी है उसके लिए वह पारितोषिक पाने या मांगने का अधिकारी नहीं है (धारा २२०)। यदि एजेंट खुद काम करने के लिए तैयार है परन्तु प्रधान की गलती या आचरण से वह काम करने से रोक दिया जाता है तो भी एजेंट को अपना उचित कमीशन वसूल करने का अधिकार है। [धारा २२५]

उदाहरण—X, Y को ५०० रु० तक के कर्जदार Z से वसूल करने के लिए कहता है परन्तु Y की गलती के कारण वह रुपया वसूल न हो सका। ऐसी दशा में Y को पारितोषिक नहीं मिलेगा, साथ ही प्रधान की क्षति पहुँचने पर उसकी पूर्ति करनी पड़ेगी। [धारा २२०]

२. माल रोकने का अधिकार (Rights of Lien)—धारा २२१ के अनुसार एजेंट को किसी विपरीत प्रसंविदा के अभाव में प्रधान से माल, कागजात तथा दूसरी चल अथवा अचल सम्पत्तियों को उस समय तक रोक रखने का अधिकार है जब तक उसे इसके सम्बन्ध में किये गये खर्चों तथा कमीशन का भुगतान न कर दिया जाय। इस अधिकार को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि एजेंट के कब्जे में प्रधान की सम्पत्ति अवश्य हो। फैक्टर (Factor) को इस प्रकार का अधिकार होता है, क्योंकि उन्हें प्रधान के माल या दूसरी सम्पत्ति पर वास्तविक या कृत्रिम अधिकार रहता है।

३. माल को रास्ते में रोकना (Stoppage in Transit)—जब एजेंट को जिस व्यक्ति के नाम से उसने माल बेचा है उसके पास माल भेजने के बाद यह मालूम होता है कि खरीदनेवाला दिवालिया हो गया है तो रास्ते में जाते हुए माल को वाहक (carrier) से कहकर रोक ले सकता है या रुकवा सकता है, क्योंकि वैसी हालत में उसका अधिकार मूल्य न चुकाये हुए विक्रेता (unpaid-seller) के समान होता है। माल को मार्ग में रोकने का अधिकार एजेंट को दो हालतों में प्राप्त होता है—  
(i) यदि उसने प्रधान के लिए अपने रुपयों से ही माल खरीदा हो अथवा (ii) अपनी जमानत पर ही खरीदा हो। यदि वह एजेंट 'डेल क्रेडियर' (Del Credere) एजेंट है तब तो यह अधिकार पूर्ण रूप से उसे प्राप्त हो जाता है, क्योंकि माल की कीमत उसे स्वयं मालघनी को अवश्य चुकानी होगी।

४. क्षतिपूर्ति करना (Rights of Indemnification)—एजेण्ट एजेन्सी के काम के सिलसिले में उसके द्वारा किये गये समस्त वैध कार्यों के परिणामों के विरुद्ध नियोक्ता द्वारा हानि-रक्षा कराने का अधिकारी है। किन्तु यदि उमने कुछ धन स्वेच्छापूर्वक अथवा दोष-रीति से चुकाया हो तो उसे हानि-रक्षा कराने का कोई अधिकार नहीं है यद्यपि उसने प्रधान के लाभ के लिए ही ऐसा किया है। [धारा २२२]

उदाहरण—कलकत्ते के X के आदेशानुसार सिंगापुर का Y, Z के साथ उसको कुछ माल देने की प्रसविदा करता है। X, Y को उक्त माल नहीं भेजता है इसलिए Z ने प्रतिज्ञा भंग करने के कारण Y पर मुकदमा किया। इस बात की सूचना Y ने X को दी। इसपर X ने Y को मुकदमे की पैरवी करने का अधिकार दिया। इस कार्य के लिए Y को व्यय करना पड़ा तथा हर्जाना भी देना पड़ा। ऐसी दशा में व्यय और हर्जाना चुकाने के लिए X बाध्य है।

इसी तरह यदि एक व्यक्ति दूसरे को कोई काम करने के लिए बहाल करता है और वह एजेण्ट परम सद्विश्वास (utmost good faith) के साथ काम करता है और यदि ऐसी हालत में एजेण्ट को नुकसान हो तो प्रधान को इसकी पूर्ति करनी पड़ेगी, चाहे इसमें किसी तीसरे पक्ष का अधिकार नष्ट क्यों न होता हो। [धारा २२३]

उदाहरण—Y के आदेशानुसार X, Y के अधीन रहे माल को बेचता है। किन्तु यह नहीं जानता कि उस माल का असली मालिक Y नहीं है और विक्री के रुपये Y के सुपुर्द करता है। इसके बाद Z जो उस माल का असली मालिक है, X पर नालिश करता है तथा खर्च वसूल कर लेता है। ऐसी हालत में X को Y की क्षति तथा उसके द्वारा किये गये खर्चों की पूर्ति करनी पड़ेगी।

एजेण्ट को उसकी क्षतिपूर्ति प्रधान द्वारा तभी हो सकती है जबकि जिस काम के लिए उसकी बहाली हुई है उसी के सम्बन्ध में एजेण्ट ने खर्च किया है। इसके अलावा, यह आवश्यक है कि एजेण्ट जो कुछ खर्च करता है वह उचित तथा परम विश्वास के साथ करता है। यदि एजेण्ट छल-कपट या अपराधपूर्ण काम करता है तो पूर्ति करवाने का उसे अधिकार नहीं है। [धारा २२४]

उदाहरण—X, Y को बहाल करता है और वादा करता है कि यदि वह Z को पीटे तो उससे जो उसे क्षति होगी उसकी पूर्ति वह करेगा। Y, Z को पीटता है और फलस्वरूप उसे ३०० रु० हर्जाना देना पड़ता है। किन्तु Y, ३०० रु० का हर्जाना X से कानूनन नहीं ले सकता।

५. एजेण्ट को प्रधान से, प्रधान की उपेक्षा अथवा चतुराई के अभाव के कारण उसको पहुँची हुई क्षति की पूर्ति करने का अधिकार है। [धारा २२५]

उदाहरण—X एक घर बनाने में Y को ईंट रखनेवाले के रूप में नियुक्त करता है और स्वयं मचान (scaffolding) तैयार करता है। मचान चतुराई से नहीं बनाया जाता और फलस्वरूप Y को चोट लग जाती है; X, Y की क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी है।

अन्य व्यक्तियों के साथ की गयी प्रसविदों पर एजेन्सी का प्रभाव (धारा २२६ से २३४) (Effect of Agency on Contracts made with third persons)

एजेण्ट द्वारा अपने सेवाकाल में किये गये कामों का तीसरे पक्षों के साथ उत्पन्न

होनेवाले सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव का निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्दर अध्ययन किया जा सकता है—

१. जब एजेंट स्पष्ट रूप से, नामांकित प्रधान के एजेंट के रूप में प्रसंविदा करता है।

२. जब एजेंट स्पष्ट रूप से, अ-नामांकित (un-named) प्रधान के एजेंट के रूप में प्रसंविदा करता है।

३. जब एजेंट किसी अप्रकट प्रधान (undisclosed principal) की ओर से प्रसंविदा करता है।

१. जब एजेंट द्वारा नामांकित प्रधान की ओर से प्रसंविदा की गयी हो (Where an agent contracts on behalf of a named principal)—  
(क) एजेंट द्वारा प्राधिकार सीमा-क्षेत्र के अन्दर (within the authority) किये गये काम—एजेंट द्वारा प्राधिकार के सीमा क्षेत्र के अन्दर किये गये सभी कार्यों के निष्पादन के लिए प्रधान उत्तरदायी होता है। जब तीसरे पक्ष को एजेंट के स्पष्ट प्राधिकार की परिसीमा का ज्ञान नहीं हो, तब प्रधान को तीसरे पक्षों के प्रति, एजेंट के ऐसे कार्यों के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जो उसके वास्तविक प्राधिकार के बाहर हैं परन्तु प्रत्यक्षतः उसके प्राधिकार के अन्दर प्रतीत होते हैं।

उदाहरण—A नीलामकर्ता B के पास अपने घोड़े को इस आदेश के साथ छोड़ देता है कि घोड़े को ५०० रु० से कम में न बेचा जाय। B घोड़े को ४०० रु० में Z को बेच देता है जिसे A के विशेष आदेश की कोई जानकारी नहीं थी। A घोड़े के विक्रय-प्रसंविदा को निरस्त (rescind) नहीं कर सकता है।

(ख) एजेंट के द्वारा प्राधिकार सीमाक्षेत्र के बाहर (outside the scope of the authority) किये गये कार्य—जब कोई एजेंट अपने प्राधिकार से अधिक काम करना है और ऐसे कार्य को प्राधिकृत कामों से अलग किया जा सकता है तब प्रधान केवल उसी काम के निष्पादन के लिए उत्तरदायी होगा जो कि एजेंट के प्राधिकार के अन्दर था। अतिरिक्त कामों के निष्पादन के लिए उसको बाध्य नहीं किया जा सकता है। (धारा २२७)

उदाहरण—X एक जहाज एवं उस पर लदे माल का मालिक है। वह Y को जहाज का ३०,००० रु० का बीमा कराने का प्राधिकार देता है। Y जहाज के लिए ३०,००० रु० की बीमा-पॉलिसी लेता है और उतनी ही राशि की एक और पॉलिसी जहाज पर लदे माल के लिए भी ले लेता है। X को जहाज की पॉलिसी के प्रीमियम का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, लेकिन माल की बीमा-पॉलिसी के प्रीमियम का भुगतान करने के लिए उसको बाध्य नहीं किया जा सकता।

जब एजेंट द्वारा अपने प्राधिकार से बाहर कोई काम किया गया हो और इस तरह के काम को प्राधिकार के अन्दर किये गये कामों से अलग नहीं किया जा सकता हो, तब प्रधान इस तरह के सभी कामों को निरस्त (rescind) कर सकता है। इसे इन व्यवहारों को मान्यता देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। (धारा २२८)

उदाहरण—A, B को अपने लिए १०० गाय खरीदने का प्राधिकार देता है। B, ६००० रु० में १०० गाय एवं ७० बछड़ा खरीद लेता है। A सम्पूर्ण व्यवहार को अस्वीकार कर दे सकता है।

(ग) जब प्रधान द्वारा कोई ऐसा काम किया गया हो जिसकी वजह से अन्य

**व्यक्ति एजेंट के अनधिकृत (unauthorised) कार्यों को अधिकृत कार्य मान सकते हैं**—जब एजेंट ने प्राधिकार के बगैर प्रधान की ओर से कुछ काम किया हो या दायित्व लिया हो तो उन कार्यों या दायित्वों के लिए प्रधान को तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जब उसने अपने आचरण या शब्दों द्वारा अन्य पक्षों को यह विश्वास दिलाने का उपक्रम किया हो कि उस कार्य या दायित्व एजेंट के प्राधिकार के अन्दर था। (धारा २३७)

**उदाहरण**—A, B को कुछ माल बेचने के लिए प्रेषित करता है तथा उसे वह माल एक निश्चित कीमत से कम पर न बेचने का आदेश देता है। Z, जिसे A के आदेश की जानकारी नहीं थी, B से उस माल को आरक्षित मूल्य से कम दाम पर खरीदने की प्रसंविदा करता है। A इस प्रसंविदा के निष्पादन के लिए बाध्य होगा।

(घ) **एजेंट की सूचना (Notice to the agent)**—एजेंसी के सम्बन्ध में एजेंट को व्यापार के सिलसिले में दी गयी अथवा उसके द्वारा प्राप्त की गयी कोई भी सूचना वही परिणाम प्रस्तुत करती है जैसे कि यह सूचना प्रधान को दी गयी हो अथवा प्रधान द्वारा प्राप्त की गयी हो। (धारा २२९)

**उदाहरण**—B, A को K से कुछ माल खरीदने के लिए बहाल करता है जिसका प्रत्यक्ष मालिक K है। A आदेशानुसार माल खरीद लेता है। विक्रय के समझौता के मध्य A को पता चलता है कि वह सब माल वास्तव में Z का है परन्तु B को इन सब बातों का पता नहीं है। K को एक कर्ज का भुगतान B को करना है। B इन मालों के देय मूल्य को अपने कर्ज के भुगतान के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकता है।

(ङ) **एजेंट द्वारा मिथ्या-वर्णन या कपट (Misrepresentation or Fraud committed by an agent)**—एजेंट के उन सभी मिथ्या-वर्णन या कपट के लिए प्रधान उत्तरदायी होता है जो उसने एजेंसी व्यापार के सिलसिले में किया हो (धारा २३८)। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि वह मिथ्या-वर्णन या छल-कपट किसके लाभ के लिए किया गया था। परन्तु एजेंट के उन कपटों या मिथ्या-वर्णन के लिए प्रधान एकदम उत्तरदायी नहीं होगा जो उसने अपने प्राधिकार की परिमीमा-क्षेत्र के बाहर (beyond the authority) अतिरिक्त विषयों के सम्बन्ध में किया हो।

**उदाहरण**—(i) A, B का विक्रय एजेंट है। वह C को अपने ऐसे मिथ्या-वर्णन द्वारा कुछ माल खरीदने के लिए प्रलोभित कर लेता है, जिसका उसे B ने कोई प्राधिकार नहीं दिया था। B एवं C के बीच हुई प्रसंविदा C के विकल्प पर विवर्जनीय होगी।

(ii) M के जहाज के कप्तान N ने जहाजी बिल्टी (bill of lading) में वर्णित माल प्राप्त किये बिना, जहाज के लदान-पत्र पर दस्तखत कर दिया। झूठे प्रेषक (pretending consigner) और M के बीच लदान-पत्र अमान्य होगा।

(च) **एजेंट द्वारा दी गयी स्वीकृति (Admissions made by an agent)**—नियम के अनुसार प्रधान और एजेंट को एक ही व्यक्ति माना गया है, इसलिए एजेंट के रूप में काम करते हुए एजेंट द्वारा दी गयी प्रत्येक स्वीकृति प्रधान की ही स्वीकृति मानी जायेगी और वह उसके लिए बाध्य होगा।

**उदाहरण**—माल भूलने पर रेलवे के स्टेशन मास्टर द्वारा दी गयी स्वीकृति रेलवे कम्पनी को बाध्य करती है।



२. जब एजेंट बिना नाम के प्रधान की ओर से प्रसंविदा करता है (Where an agent contracts for unnamed principal)—जब एजेंट द्वारा यह बात साफ-साफ कह दी गयी हो कि वह सिर्फ एक एजेंट के रूप में काम कर रहा है और प्रधान का नाम नहीं बतलाया गया हो, तब अन्य पक्षों के प्रति उसका कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता है। अन्य पक्ष सिर्फ प्रधान के खिलाफ कारवाई कर सकते हैं, एजेंट के खिलाफ नहीं। लेकिन जब एजेंट पूछताछ करने के बाद भी तीसरे पक्षों के बारे में प्रधान को नहीं बतलाता है तब स्वयं उसको भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

३. जब एजेंट अप्रकट प्रधान की ओर से प्रसंविदा करता है (When the agent contracts for an undisclosed principal)—जब एजेंट किसी ऐसे आदमी के साथ प्रसंविदा करता है जिसे उसके एजेंट होने की न कोई जानकारी है और न कोई आशंका ही है तो ऐसी हालत में प्रधान, अप्रकट प्रधान कहलाता है। ऐसी हालत में तीसरे पक्ष, प्रधान एवं एजेंट के सम्बन्ध निम्नांकित प्रकार के होंगे—

(i) अगर तीसरे पक्ष को एजेंट के खिलाफ न्यायालय का निर्णय प्राप्त करने से पहले प्रधान के अस्तित्व का पता चल जाय, तब वह प्रधान या एजेंट या दोनों पर मुकदमा चला सकता है। अगर वह प्रधान के खिलाफ मुकदमा चलाना चाहता है तब उसे एजेंट से प्राप्त रकम का लाभ प्रधान को देना पड़ेगा। (धारा २३१)

उदाहरण — X, Y को रुई की सौ गाँठें १०,००० रु० में देने की प्रसंविदा करता है और उससे ४०० रु० पेशगी के रूप में ले लेता है। बाद में X को पता चलता है कि Y तो Z के एजेंट के रूप में काम कर रहा है। X, Z पर प्रसंविदा के निष्पादन के लिए मुकदमा चला सकता है, परन्तु उसे Z के एजेंट Y द्वारा दिये गये ४०० रु० का लाभ Z को देना पड़ेगा और इस प्रकार वह Z से केवल ९,६०० रु० का ही भुगतान प्राप्त कर सकता है।

(ii) ऐसी हालत में अगर प्रधान चाहे तो हस्तक्षेप करके तीसरे पक्ष के खिलाफ मुकदमा चला सकता है। ऐसी हालत में तीसरे पक्ष को प्रधान के खिलाफ वे सभी अधिकार प्राप्त होंगे जो कि उसे उस समय प्राप्त होते जब कि एजेंट ही प्रधान होता।

उदाहरण—A, जिसको B का ५०० रु० देना है, B के हाथ ११०० रु० का गेहूँ बेचता है। इस व्यापार में A, Z के एजेंट के रूप में काम कर रहा है, किन्तु B को इस स्थिति की कोई जानकारी नहीं है और न उसको इसकी कोई आशंका है। Z, B को A के कर्ज का भुगतान गेहूँ की कीमत में से काटे जाने की अनुमति दिये बिना गेहूँ लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है।

(iii) धारा २३१ के अनुच्छेद २ (Para 2 of Section 231) में यह कहा गया है कि अगर प्रसंविदा के पूरा होने के पहले प्रधान खुद को प्रकट कर दे और प्रसंविदा करनेवाला तीसरा पक्ष यह साबित कर सके कि अगर वह पहले से प्रधान के विषय में जानता या उसे यह मालूम रहता कि एजेंट प्रधान नहीं है, तब वह प्रसंविदा नहीं करता, तो वह तीसरा पक्ष प्रसंविदा के अन्दर उत्पन्न होने वाले दायित्वों को पूरा करने से मना कर सकता है।

यह बात याद रखना चाहिए कि तीसरे पक्ष को प्रसंविदा के परित्याग का अधिकार सिर्फ तभी प्राप्त होगा जबकि प्रधान ने स्वयं अपने-आपको प्रकट कर दिया हो। जब तीसरे पक्ष को प्रधान के विषय में और किसी व्यक्ति द्वारा सूचना दी गयी हो, या अन्य किसी साधन से उसको सूचना प्राप्त हुई हो, तो उसे प्रसंविदा का निष्पादन करने से मना करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

(iv) धारा २३४ के अनुसार जब एजेंट के साथ प्रसंविदा करनेवाला व्यक्ति एजेंट को इस विश्वास के साथ काम करने के लिए प्रेरित करता है कि सिर्फ प्रधान को ही प्रसंविदा के निष्पादन के लिए उत्तरदायी माना जायगा या प्रधान को इस विश्वास के साथ काम करने के लिए प्रेरित करे कि प्रसंविदा के निष्पादन के लिए एजेंट को ही उत्तरदायी ठहराया जायगा तो बाद में यह क्रमशः एजेंट या प्रधान को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है ।

**उदाहरण —** X ने सिन्हा एण्ड कम्पनी को अपने लिए Y से माल खरीदने के लिए कहा । बाद में वही माल खरीदने के लिए X ने खुद Y से बातचीत की । Y यह जानता था कि सिन्हा एण्ड कम्पनी, X के लिए माल खरीद रही थी, किन्तु उसने सिन्हा एण्ड कम्पनी को ही प्रधान समझना ज्यादा अच्छा समझा और माल उनके नाम ही लिखा । सिन्हा एण्ड कम्पनी माल की कीमत का भुगतान नहीं कर पायी और Y ने कीमत के लिए X पर मुकदमा किया । न्यायालय द्वारा यह फैसला दिया गया कि Y को X से रुपया वसूल करने का अधिकार नहीं है क्योंकि Y ने शुरू से ही यह स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था कि उसने माल सिन्हा एण्ड कम्पनी को उधार दिया है यद्यपि उसे वास्तविक प्रधान के अस्तित्व का भी ज्ञान था ।

**बनावटी एजेंट के दायित्व (Liability of a pretended Agent) —** धारा २२५ के अनुसार अगर कोई व्यक्ति स्वयं को झूठमूठ ही दूसरे व्यक्ति का एजेंट बतलाता है और इस तरह दूसरे व्यक्ति को अपने साथ एजेंट के रूप में व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है तब यदि उसका तथाकथित प्रधान उसके कार्यों की पुष्टि नहीं करता है, तो वह उसके इस प्रकार व्यवहार करने के कारण दूसरे व्यक्ति को होनेवाली हानियों के लिए क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

**उदाहरण —** A और B ने जो एक कम्पनी के संचालक हैं, कम्पनी की ओर से Z से कर्ज लिया । कम्पनी के पार्षद सीमा-नियम के अनुसार कम्पनी को धन उधार लेने का कोई अधिकार नहीं था । Z यद्यपि कम्पनी से कर्ज का रुपया वसूल नहीं कर सकता है, परन्तु अपने कर्ज के भुगतान के लिए वह कम्पनी के दोनों संचालकों, A और B को उत्तरदायी ठहरा सकता है ।

**तीसरे पक्षों के प्रति एजेंट का उत्तरदायित्व (Personal Liability of Agent to the Third Parties)**

हमलोग जान चुके हैं कि एजेंट अपने प्रधान की तरफ से प्रसंविदा करता है; पर एजेंट अपने प्रधान के लिए की गयी प्रसंविदा को सम्पन्न कराने के लिए न तो तीसरे पक्ष को खुद बाध्य कर सकता है और न तीसरा पक्ष उसे बाध्य कर सकता है (धारा २३०) । परन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनमें एजेंट को तीसरे पक्ष के साथ व्यवहार करने के कारण उत्तरदायी बनाया जाता है; वे निम्नलिखित हैं—

१. जब वह किसी विदेशी प्रधान के लिए खरीद-विक्री की प्रसंविदा करता है (When the agent acts for foreign principal; Sec. 230) — धारा २३० के अनुसार जब एजेंट किसी विदेशी प्रधान के लिए खरीद-विक्री करता है तो वह स्वयं उत्तरदायी होता है । यह नियम उस समय लागू किया गया था जबकि आवागमन के साधन आजकल की तरह विकसित नहीं थे । अतः मिलर गिब्स एण्ड कम्पनी बनाम टाइरर लिमिटेड\* के मुकदमे में यह फैसला दिया गया था कि यह

\* Miller Gibbs & Co, vs. Tyrer Ltd. (1617) 2 L. B. 141.

नियम वहीं पर लागू हो सकता है जहाँ अब भी यह पुराना रिवाज मौजूद हो। किन्तु यदि प्रसंविदा में यह स्पष्ट कर दिया गया हो कि विदेशी प्रधान ही उत्तरदायी होगा तो रिवाज के मौजूद होने के बावजूद विदेशी प्रधान ही दायी होगा।

२. जब वह किसी 'अप्रकट प्रधान' के लिए प्रसंविदा करता है (When he contracts for an undisclosed principal; Sec. 230)—यदि एजेंट अपने प्रधान के लिए प्रसंविदा करता है जिसका नाम उसने तीसरे पक्ष से नहीं बतलाया है और यह भी नहीं कहा है कि वह स्वयं प्रधान नहीं, बल्कि एजेंट है तो वैसी दशा में तीसरा पक्ष एजेंट को प्रसंविदा पूरा करने के लिए बाध्य कर सकता है।

३. जब वह अपने प्रधान का नाम बताये, किन्तु उस पर नालिश नहीं की जा सके (Where the principal, though disclosed, cannot be sued; Sec. 230)—यदि किसी एजेंट ने तीसरे पक्ष के सामने अपने प्रधान का नाम प्रकट किया हो लेकिन उसके विरुद्ध मुकदमा नहीं किया जा सकता हो तो ऐसी दशा में एजेंट स्वयं उत्तरदायी होगा।

उदाहरण—जब एजेंट किसी नावालिंग अथवा विदेशी राजदूत के लिए काम करता हो तो इसके लिए स्वयं दायी होता है।

४. जब वह अपने अधिकार के बाहर काम करता है और उसकी पुष्टि (ratification) प्रधान के द्वारा नहीं की जाती है (When he acts beyond authority; Sec. 227-228)।

५. जब कपट या मिथ्या कथन करता है (When he commits fraud or misrepresentation)—जब एजेंट अपने अधिकार के बाहर कार्य करते समय दूसरे पक्ष से कपट या मिथ्या-वर्णन द्वारा रुपया ले लेता है या और किसी तरह का कपट करना है तो वैसी दशा में प्रसंविदा तीसरे पक्ष की इच्छा पर विवर्जनीय (voidable) है तथा वह एजेंट से हर्जाना भी वसूल कर सकता है।

उदाहरण—X, Y को माल बेचने के लिए बहाल करता है। Y, Z को मिथ्या-वर्णन (misrepresentation) द्वारा, जैसा करने का उसे अधिकार न था, माल खरीदने को कहता है। यह प्रसंविदा Z की इच्छा पर विवर्जनीय है तथा एजेंट दोनों (प्रधान और तीसरे पक्ष) के प्रति उत्तरदायी होगा।

६. जब तीसरा पक्ष प्रसंविदा करते समय साफ-साफ यह कह देता है कि इसे पूरा करने के लिए एजेंट ही उत्तरदायी होगा (Personal liability of an agent by agreement; Sec. 233-234)—जब एजेंट समझौता द्वारा साफ-साफ यह कहता है कि वह प्रसंविदा की बातों का व्यक्तिगत रूप से दायित्व स्वीकार करता है।

७. जब वह अपने नाम से कोई बेचान-साध्य रुक्का लिखता है (When he signs a negotiable instrument in his own name)—यदि कोई एजेंट किसी तीसरे पक्ष के बेचान-साध्य रुक्का (negotiable instrument) पर अपना हस्ताक्षर कर दे और यह स्पष्ट तरीके से नहीं बतलाये कि वह अपने प्रधान के लिए हस्ताक्षर कर रहा है तो उसके लिए एजेंट स्वयं ही उत्तरदायी होगा।

८. जब वह एक 'कुटिल एजेंट' है (When he is a Pretended Agent)—जब एक व्यक्ति दूसरे से यह कहे कि वह अमुक व्यक्ति का एजेंट है और ऐसा कहकर उस पक्ष को प्रसंविदा करने के लिए राजी कर ले तो वैसी दशा में प्रधान द्वारा पुष्टिकरण (ratification) न होने पर उस कुटिल एजेंट को ही मजबूर

किया जा सकता है और दूसरे व्यक्ति को किसी प्रकार का नुकसान होने पर उसे 'कुटिल एजेंट' को पूरा करना होगा।

९. जब एजेंसी में उसका अपना हित सन्निहित हो (When agency is one 'coupled' with interest)—जब किसी एजेंसी में एजेंट का अपना हित (interest) या स्वार्थ हो तो हित की रकम के लिए एजेंट स्वयं बाध्य हो सकता है और वह दूसरों को बाध्य कर सकता है।

उदाहरण—X, Y से कहता है कि अगर तुम मेरा मकान बेच दोगे तो मैं तुम्हें २०० रु० दूंगा तथा तुम मकान की कीमत में से यह रकम काटकर शेष हमें देना। ऐसी दशा में Y २०० रु० तक के लिए प्रधान को या तीसरे पक्ष को बाध्य कर सकता है। लेकिन यदि किसी अन्य व्यक्ति ने Y से कर्ज लिया है तो वह दूसरा व्यक्ति मकान विक्री हो जाने पर भी २०० रु० तक के लिए एजेंट को बाध्य कर सकता है।

१०. जब एजेंट किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति पर हानि पहुँचाता है (Where the agent inflicts loss or damage over the property of others)—इस तरह के नुकसान के लिए एजेंट तथा प्रधान दोनों अलग-अलग तथा सम्मिलित रूप से बाध्य किये जा सकते हैं। यदि एजेंट का ऐसा काम उसके अधिकार के बाहर का हो तो उसके लिए एजेंट स्वयं बाध्य होगा।

११. ब्रोकर के उत्तरदायित्व (Liability of a Broker)—यह कहना बहुत कठिन है कि कोई ब्रोकर किसी प्रसंविदा पर दस्तखत करके अपने को स्वयं दायी बनाता है या अपने प्रधान को बनाता है, किन्तु यहाँ न्यायालय प्रसंविदा के शब्दों पर विचार करके अपना फैसला देता है। अतः कोई ब्रोकर व्यक्तिगत रूप से दायी है अथवा नहीं, यह बात प्रसंविदा की लिखावट पर निर्भर रहती है।

### प्रधान के अधिकार (Right of the Principal)

प्रधान को निम्नलिखित अधिकार एजेंट के विरुद्ध प्राप्त हैं—

१. जब एजेंट बिना प्रधान की स्वीकृति लिये या बिना इस बात की जानकारी कराये, एजेंसी का काम करते समय अपने नाम से व्यापार करता है या व्यापार करने की प्रसंविदा करता है तो प्रधान वैसे प्रसंविदा का खण्डन कर सकता है। किन्तु इसका खण्डन करने के पहले प्रधान को यह साबित करना पड़ेगा कि एजेंट ने किसी तत्त्व को कपटपूर्वक छिपा रखा था, एजेंट का काम प्रधान के लिए अहितकर था। [धारा २१५]

उदाहरण—X, Y से कहता है कि वह उसके मकान की विक्री कर दे। Y, Z के नाम से अपने लिए मकान खरीद लेता है। जब X को यह मालूम होता है कि Y ने अपने लिए मकान खरीदा है तो वह उस विक्री को रद्द कर दे सकता है, यदि वह इस बात को साबित कर दे कि Y ने उससे किसी तत्त्व की बात को छिपाया है या उस विक्री से हानि हुई है।

२. यदि एजेंट, बिना प्रधान को बताये, प्रधान के नाम व्यापार न करके अपने नाम से करता है तो प्रधान को यह अधिकार है कि इससे हुए लाभ को एजेंट से ले ले। [धारा २१६]

उदाहरण—X, Y से उसके लिए एक विशिष्ट मकान को खरीदने के लिए कहता है। Y, X से यह कहता है कि मकान को खरीदना असम्भव है और अपने लिए

खरीद लेता है। जब X को इस बात का पता लग जायगा तब Y को उस मकान को खरीदी गयी कीमत पर उसके हाथ बेचने को बाध्य कर सकता है।

### तीसरे पक्ष के विरुद्ध प्रधान के अधिकार (Principal's Rights against Third Parties)

१. एजेंट द्वारा की हुई प्रसंविदा को तीसरे पक्ष से सम्पन्न कराने का अधिकार।

२. माल की विक्री करने पर तीसरे पक्ष से उसकी कीमत वसूल करने का अधिकार।

३. तीसरे पक्ष द्वारा प्रतिज्ञा-भंग करने पर, उस पर मुकदमा करके हर्जाना वसूल करने का अधिकार।

४. यदि प्रधान की स्थिति 'मूल्य न चुकाया गया विक्रेता' (unpaid seller) की तरह हो तो उसे माल को अपने अधीन रोक रखने (lien) का तथा उसकी सुपुर्दगी न होने देने का अधिकार है।

### एजेंट के प्रति प्रधान के कर्तव्य (Duties of the Principal to the Agent)

वास्तव में एजेंट के प्रति प्रधान का वही कर्तव्य होता है जो एजेंट का प्रधान के विरुद्ध अधिकार है। एजेंट के प्रधान के विरुद्ध अधिकार के विषय में वर्णन किया जा चुका है, अतः संक्षेप में एजेंट के प्रति प्रधान के कर्तव्य निम्नलिखित हैं—

१. धारा २१७ के अनुसार एजेंट के द्वारा किये गये उचित व्यय और पारितोषिक का भुगतान करना।

२. धारा २२२ के अनुसार एजेंट को अधिकार के भीतर किये गये कामों से हुई क्षति की पूर्ति करना।

३. धारा २२३ के अनुसार सद्विश्वास के साथ कार्य पर एजेंट को होने वाली क्षति की पूर्ति करना।

४. धारा २२५ के अनुसार प्रधान की गलती से या विवेक की कमी से यदि एजेंट को घाटा हो तो उसकी पूर्ति प्रधान को करनी होगी।

**उदाहरण—**X, Y से छत की मरम्मत के लिए ईंट जोड़ने को कहता है और इस काम के लिए वह खुद बाँस का मचान बाँधता है। किन्तु मचान विवेकपूर्ण न था, इसलिए गिर पड़ा और Y को चोट लगी। इसके लिए X को Y की क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

### तीसरे पक्ष के लिए प्रधान के कर्तव्य (Duties of the Principal to Third Parties)

वास्तव में प्रधान अपने एजेंट के उन कार्यों के लिए तीसरे पक्ष के प्रति दायी होता है जो उसने अपने अधिकार के अधीन किया हो अथवा प्रधान की सहमति या राय में किया हो, अथवा जिसका प्रधान ने बाद में पुष्टिकरण कर दिया हो। इसका कारण यह है कि ऐसे सभी मामलों में प्रधान प्रसंविदा करने वाले के पक्ष में हो जाता है और एजेंट तो केवल प्रसंविदात्मक सम्बन्ध स्थापित करने वाला एक यंत्र-मात्र होता है। अतः तीसरे पक्ष के प्रति प्रधान के निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं—

१. एजेंट के अनुबन्धों का प्रवर्तन एवं परिणाम—एजेंट द्वारा किये गये

प्रमविदे तथा एजेण्ट के कार्यों से उत्पन्न दायित्व उसी प्रकार प्रवर्तित कराये जा सकते हैं और उनके वैसे ही वैध परिणाम होते हैं मानो वे प्रसविदे तथा कार्य प्रधान द्वारा स्वयं ही किये गये हों । [धारा २२६]

**उदाहरण—**(i) A, B से माल खरीदता है (यह जानते हुए कि वह विक्री के लिए एजेण्ट है किन्तु यह न जानते हुए कि प्रधान कौन है) । B का प्रधान A से माल का मूल्य माँगने के लिए अधिकारी व्यक्ति है और A प्रधान द्वारा प्रस्तुत बाद में उस माँग के प्रति B से प्राप्य अपने कर्ज का प्रतिसाद (set off) नहीं कर सकता ।

(ii) B का एजेण्ट A उसके लिए रुपया प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होने के कारण C से B के लिए प्राप्य रकम प्राप्त करता है; C उक्त धन B को भुगतान करने के दायित्व से मुक्त हो जाता है ।

**२. एजेण्ट द्वारा अनधिकृत काम करने पर प्रधान केवल अधिकृत अंश के लिए ही दायी है—**अगर एजेण्ट प्राप्त अधिकार से अधिक काम करता है और अगर उसके कार्य में से अधिकृत अण अनधिकृत अंश से अलग किया जा सकता है तब प्रधान सिर्फ अधिकृत अंश के लिए ही तीसरे पक्षकार के प्रति दायी होता है ।

**उदाहरण—**A एक जहाज तथा उस पर लदे हुए माल दोनों का मालिक है । वह B को ८,००० रुपये में जहाज के सामुद्रिक बीमा का अधिकार देता है । B ८,००० रुपये की एक पॉलिसी जहाज पर तथा दूसरी पॉलिसी ८,००० रुपये के माल पर भी ले लेता है । A सिर्फ जहाज के लिए ही पॉलिसी पर प्रीमियम देने के लिए बाध्य है, माल की पॉलिसी के लिए नहीं । [धारा २२७]

**३. एजेण्ट का अनधिकृत कार्य सम्पूर्ण कार्य से अलग न करने योग्य होने पर प्रधान दायी नहीं होता—**यदि एजेण्ट उसको दिये हुए अधिकार से परे काम करता है और यदि उसके कार्य में से अधिकृत अंश के लिए ही दायी है, किन्तु यदि यह अलग नहीं किया जा सकता तो प्रधान पूरे व्यवहार के लिए दायी नहीं है । [धारा २२८ तथा २३१]

**उदाहरण—**X, Y को २०० भेड़ें खरीदने का अधिकार देता है । Y चाहे तो इसका वडन कर सकता है । परन्तु पुष्टिकरण (ratification) द्वारा यदि प्रधान उसके ऐसे कार्यों को भी मान ले तो उनके लिए भी वह बाध्य होगा ।

**४. एजेण्ट को दी गयी नोटिस का परिणाम—**चूँकि एजेण्ट प्रधान का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए व्यापार के मिलसिले में एजेण्ट द्वारा प्राप्त किसी सूचना अथवा जानकारी के, प्रधान तथा तीसरे पक्षकारों के सम्बन्ध से ऐसे वैध परिणाम होते हैं मानो वे प्रधान द्वारा स्वयं ही प्राप्त की गयी हो और इस बात की ओर ध्यान न देते हुए कि एजेण्ट ने उसको सूचित करने में त्रुटि की है, प्रधान उपर्युक्त बातों के लिए दायी है । [धारा २२९]

**उदाहरण—**(i) A, B को C से ऐसी वस्तु खरीदने के लिए बहाल करता है जिसका C प्रत्यक्ष स्वामी है और तदनुसार A उसे खरीद लेता है । विक्रय के मिलमिले में A को यह ज्ञात होता है कि वास्तव में वस्तु D की है, किन्तु B इस तथ्य से अनभिज्ञ है । B वस्तु के मूल्य में से C के प्राप्य एक ऋण-प्रतिसाद (set off) करने का अधिकारी नहीं है ।

(ii) B, A को C से ऐसी वस्तु खरीदने के लिए बहाल करता है जिसका C प्रत्यक्ष स्वामी है । इस प्रकार नियुक्ति होने के पहले A, C के यहाँ नौकर था और तब उसे पता था कि वास्तव में माल का स्वामी C है, किन्तु B इस तथ्य से अनभिज्ञ है । अपने एजेण्ट की जानकारी के होते हुए भी B वस्तु के मूल्य में से C से प्राप्त

ऋण-प्रतिसाद कर सकता है।

५. एजेंट के अनधिकृत कार्य को अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाने पर प्रधान का उत्तरदायित्व—यदि प्रधान शब्दों अथवा आचरण द्वारा तीसरे व्यक्ति का यह विश्वास करता है कि यह अधिकार बिना एजेंट द्वारा किये गये कार्य उसके द्वारा अधिकृत हैं तो वह ऐसे कार्यों के लिए दूसरे व्यक्तियों के प्रति दायी है। इसे प्रदर्शन द्वारा (holding out) उत्पन्न दायित्व कहते हैं। [धारा २३७]

६. एजेंट के कपट तथा मिथ्या-वर्णन के लिए—प्रधान एजेंट के कपट तथा मिथ्या-वर्णन के लिए भी दायी है, जबकि वे एजेंसी के व्यापार के सिलसिले में (in the ordinary course of business) किये गये हों। [धारा २३८]

उदाहरण—A, जो वस्तु-विनिमय के लिए B का एजेंट है, C को ऐसे मिथ्या-वर्णन द्वारा उक्त वस्तु के लिए प्रेरित करता है जिसके लिए उसे B से कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। B और C के बीच यह प्रसंविदा C की इच्छा पर व्यर्थ होने योग्य (voidable) है।

बेट्स बनाम डीटी [Betts vs Ditre (1968) 3 Ch 429] के मुकदमे के फैसले के अनुसार यहाँ एजेंट ने अपने अधिकार के अन्दर कार्य करते समय किसी तीसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति पर हानि (tort) पहुँचायी हो तो उसके लिए प्रधान अलग से तथा एजेंट के साथ सम्मिलित रूप से भी उत्तरदायी होता है।

७. एजेंट द्वारा स्वीकृत तथ्य के लिए प्रधान बाध्य होता है (The Principal is bound by the admission made by the agent)—एक मुकदमे में किसी मुसाफिर का सामान स्टेशन का एक कुली लेकर भाग गया। स्टेशन ने इसकी खबर पुलिस को दी। अतः स्टेशन मास्टर के द्वारा स्वीकार किया गया तथ्य रेलवे कम्पनी को मानना पड़ा क्योंकि स्टेशन मास्टर रेलवे कम्पनी का एजेंट था। इस प्रकार इस मुकदमे में न्यायालय ने रेलवे कम्पनी को मुसाफिर का सामान देने के लिए बाध्य किया।

८. प्रधान अपने एजेंट के गलत कामों के लिए भी उत्तरदायी होता है—R vs. Huggins (1730) Str. 1882 के मुकदमे के अनुसार प्रधान अपने एजेंट के गलत कामों के लिए भी उत्तरदायी होता है, अगर वह काम प्रधान के यहाँ नौकरी करते समय किया गया है। प्रधान एजेंट की लापरवाही के लिए भी उत्तरदायी होता है, किन्तु वह लापरवाही एजेंट द्वारा प्रधान के यहाँ नौकरी के सिलसिले में ही होनी चाहिए। किसी नौकर द्वारा अपने मालिक या प्रधान के काम में मालिक की मोटर को किसी घोड़े से टकरा देने पर वह स्वयं इसके लिए उत्तरदायी होगा, उसका प्रधान नहीं होता है।

**प्रसंविदा जहाँ प्रधान अप्रकट हो (Contracts where Principal is undisclosed)**

अप्रकट प्रधान उसे कहते हैं जिसका नाम प्रसंविदा करते समय गुप्त रखा गया है। एक प्रधान उस समय भी अप्रकट प्रधान माना जायगा जब एजेंट एक ऐसे पक्ष से प्रसंविदा करता है जो न तो जानता हो और न सन्देह करने का उसके पास कोई कारण ही हो कि वह जिस व्यक्ति से व्यवहार कर रहा है, यह एजेंट है, प्रधान नहीं है। दूसरे शब्दों में, जहाँ कोई एजेंट, जिसे किसी दूसरे की ओर से प्रसंविदा करने का अधिकार प्राप्त है, इस तथ्य को छिपाकर कि वह केवल एक प्रतिनिधि है, प्रसंविदा

अपने नाम में करता है, तो अप्रकट प्रधान का सिद्धान्त लागू होता है। इस प्रकार, जहाँ एजेण्ट को यथार्थ में अधिकार प्राप्त है, किन्तु एजेन्सी के तथ्य को प्रकट नहीं करता [अर्थात् प्रधान का अस्तित्व तथा उसका परिचय (identity) प्रकट नहीं करता] तो ऐसी दशा में प्रधान अप्रकट प्रधान (undisclosed principal) कहलाता है। [धारा २३०]

अप्रकट प्रधान के निम्नलिखित दायित्व और अधिकार है—

१. अगर कोई एजेण्ट ऐसे व्यक्ति के साथ प्रसंविदा करता है जो उसको (एजेण्ट को) प्रधान समझकर ही व्यवहार करता है, तो उसका प्रधान प्रसंविदा के निष्पादन की माँग कर सकता है। साथ-ही-साथ प्रसंविदा करनेवाले अन्य पक्ष को ठीक वही अधिकार प्रधान के विरुद्ध प्राप्त है जो एजेण्ट के विरुद्ध उस समय प्राप्त होते जब एजेण्ट स्वयं प्रधान होता। दूसरे शब्दों में, अगर प्रधान अपना यह अधिकार समझता है कि वह दूसरे पक्ष से प्रसंविदा को पूरा कराये, तो इस पक्ष को भी प्रधान के विरुद्ध प्रसंविदा से उत्पन्न अधिकार प्राप्त है।

किन्तु, अगर प्रधान प्रसंविदा के पूरा होने से पहले ही अपने-आपको प्रकट कर देता है तब दूसरी प्रसंविदा को पूरा करने से इस शर्त पर मना कर सकता है कि प्रसंविदा में अगर उसे यह मालूम रहता है कि प्रधान कौन है अथवा उसे यह मालूम होता है कि प्रसंविदा करनेवाला व्यक्ति एजेण्ट है, प्रधान वही है, तो वह कदापि प्रसंविदा नहीं करता। [धारा २३१]

२. फिर, अगर कोई एजेण्ट किसी ऐसे व्यक्ति से प्रसंविदा करता है जो न तो यह जानता है और न उसके पास ऐसा करने के यथोचित कारण ही हैं कि वह जिससे व्यवहार कर रहा है, एजेण्ट है अथवा वह प्रधान नहीं और यदि ऐसा प्रधान प्रसंविदा के निष्पादन की माँग करता है, तो उसे एजेण्ट के विरुद्ध प्रसंविदा से उत्पन्न होनेवाले उस पक्ष के अधिकार तथा दायित्व को ध्यान में रखना होगा और तभी वह प्रसंविदा को पूरा कर सकता है।

**उदाहरण—**A जो B का (१,०००) रु० के लिए ऋणी है B, को (२,०००) रु० का चावल बेचता है। इस व्यवहार में A, C के एजेण्ट के रूप में कार्य कर रहा है। किन्तु B को न तो इसका ज्ञान ही है और न सन्देह करने का उचित आधार ही है कि स्थिति ऐसी है, तो C, B को A के ऋण के लिए प्रतिसाद किये बिना चावल लेने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। [धारा २३२]

३. किन्तु एजेण्ट का व्यक्तिगत दायित्व समाप्त हो जाता है अगर यह प्रमाणित हो जाय कि अन्य पक्ष प्रधान का नाम जानता है।

४. साधारण नियम यह है कि जब एक एजेण्ट अन्य पक्ष से व्यवहार करता है बिना इस बात को वतलाये हुए कि वह एजेण्ट है और अगर बाद में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह केवल एजेण्ट की हैसियत से काम कर रहा था, तो अन्य पक्ष की इच्छा पर निर्भर है कि चाहे वह एजेण्ट के विरुद्ध या प्रधान के विरुद्ध दावा करे।

एजेण्ट द्वारा अप्रकट प्रधान की ओर से की गयी किसी प्रसंविदा के परिणाम निम्नलिखित है—

१. प्रसंविदा एजेण्ट द्वारा अथवा उसके विरुद्ध प्रवर्तनीय होती है।

२. अप्रकट प्रधान दूसरे पक्ष से निष्पादन तभी माँग सकता है जबकि वह दूसरे पक्ष को अपने विरुद्ध उसी प्रकार के अधिकार दे जिस प्रकार कि दूसरे पक्ष को एजेण्ट के विरुद्ध प्राप्त थे। इस प्रकार, एक प्रतिसाद (set off) जो तीसरे पक्ष को एजेण्ट के विरुद्ध प्राप्त था, प्रधान के विरुद्ध भी प्रयोग में लाया जा सकता है।



## एजेंसी की समाप्ति (Termination of Agency)

भारतीय प्रसंविदा विधान के अनुसार निम्नलिखित तरीकों से एजेंसी की समाप्ति होती है—

१. प्रधान द्वारा एजेंट के अधिकारों का खण्डन (Revocation),
२. एजेंट द्वारा परित्याग (Renunciation),
३. प्रसंविदा का निष्पादन (Completion),
४. प्रधान या एजेंट का पागल हो जाना (Unsoundness),
५. प्रधान या एजेंट की मृत्यु (Death),
६. प्रधान का दिवालिया हो जाना (Insolvency),
७. एजेंसी की अवधि का अन्त हो जाना (If the period of agency has expired),
८. एजेंसी के कार्य को पूरा करना असम्भव हो जाना (If the work of agency has become impossible to perform),
९. दोनों पक्षों (प्रधान और एजेंट) का समझौता (Agreement between both the parties), और
१०. विषय-वस्तु का नाश हो जाना (Destruction of the subject matter)।

इसकी व्याख्या नीचे दी जाती है—

१. खंडन (Revocation)— धारा २०६ के अनुसार प्रधान यदि चाहे तो एजेंट के अधिकारों को किसी भी समय उसे काम शुरू करने के पहले वापस ले सकता है। अतः यदि किसी एक काम को करने का अधिकार दिया गया हो तो उसके शुरू होने के पहले तक प्रधान खंडन कर सकता है। यदि उसका कोई एक भाग भी हो चुका है तो जब तक वह पूरा नहीं हो जाता, प्रधान उसका खंडन नहीं कर सकता।\*

यदि एजेंट को सतत कार्य (continuous agency) मिला हो और यदि प्रधान उसका खंडन करना चाहे तो उस हालत में प्रधान को चाहिए कि आम जनता को तथा एजेंट को पहले इसकी खबर (notice) दे दे। [धारा २०३]

यदि प्रधान इसकी खबर नहीं देता है तो इससे एजेंट को जो नुकसान होगा, उसकी पूर्ति उसे करनी पड़ेगी तथा तीसरे पक्ष के प्रति भी, जिसने विश्वास के साथ कार्य किया है, बाध्य होना पड़ेगा। यदि एजेंसी किसी निश्चित समय के लिए हो और यदि प्रधान यह चाहे कि उसका खंडन समय बीतने के पहले ही कर दे तो उसे पहले इस बात की सूचना एजेंट को देनी पड़ेगी। यदि ऐसी दशा में खंडन बिना वजह के हुआ तो उसके लिए प्रधान को एजेंट क्षतिपूर्ति के लिए बाध्य कर सकता है।†

खंडन स्पष्ट और गंभीत दोनों प्रकार से होता है।

उदाहरण—X, Y से उसके मकान को किसी तीसरे के हाथ भाड़े पर देने के लिए कहता है। इसके बाद X खुद उस मकान में रहने लगता है। X ने Y के अधिकार को अपने आचरण द्वारा समाप्त कर दिया।

परन्तु प्रसंविदा-विधान में कुछ ऐसी भी स्थितियाँ दी गयी हैं जिनमें प्रधान

\* Sec. 204.

† Secs. 205 & 207.

अपने एजेंट के कार्य करने के अधिकार को वापस नहीं ले सकता है ।

(i) जब एजेंसी के विषय में एजेंट का हित भी सम्मिलित हो ।\*

धारा २०२ के अनुसार यदि एजेंसी की विषय-वस्तु में एजेंट का स्वयं कोई हित हो तो किसी स्पष्ट प्रसंविदा के अभाव में ऐसे हित को हानि पहुँचाने के लिए प्रधान के खंडन द्वारा एजेंसी समाप्त नहीं की जा सकती है । ऐसी परिस्थिति में प्रधान की मृत्यु तथा पागलपन भी एजेंसी को समाप्त नहीं कर सकते हैं ।

**उदाहरण**—(क) X, Y को अपनी जमीन बेचने का तथा प्राप्त रकम में से अपने ऋण के भुगतान का अधिकार देता है । X इस अधिकार का खंडन नहीं कर सकता है और न यह प्रधान की मृत्यु अथवा पागलपन से ही समाप्त हो सकता है ।

(ख) X, Y को १,००० गाँठ रुई भेजता है । Y ने रुई पर बयाना (advance) दिया है । X यह चाहता है कि Y रुई बेचकर अपना बयाना दिया हुआ रुपया प्राप्त मूल्य में से ले ले । X इस अधिकार का खंडन नहीं कर सकता है और न उसकी मृत्यु अथवा पागलपन से ही यह समाप्त हो सकता है ।

(ii) जब एजेंसी का अधिकार किसी विशिष्ट तथा एक ही काम करने के लिए मिला हो और यदि एजेंट उस सम्पूर्ण काम के कुछ भागों को कर चुका हो तो वैसी दशा में जब तक कि काम पूरा नहीं हो जाता, प्रधान उसका खंडन नहीं कर सकता । [धारा २०४]

(iii) जब एजेंट ने अपने दायित्व पर प्रधान के लिए कोई काम किया हो तब प्रधान उस एजेंसी की समाप्ति नहीं कर सकता जब तक एजेंट का दायित्व खत्म नहीं हो जाता ।

**२. एजेंट द्वारा परित्याग (By Renunciation)**—साधारण एजेंट प्रधान को उचित सूचना देकर एजेंसी को समाप्त कर सकता है । धारा २०५ के अनुसार यदि एजेंसी किसी निश्चित समय के लिए हो और यदि एजेंट इस समय के पूर्व ही बिना किसी पर्याप्त कारण के एजेंसी समाप्त करता हो तथा यदि इससे प्रधान को किसी प्रकार का नुकसान होता हो तो एजेंट को प्रधान के इस नुकसान को पूरा करना होगा ।

फिर धारा २०६ के अनुसार एजेंट को इस परित्याग के लिए प्रधान को उचित सूचना देनी चाहिए अन्यथा इस सूचना के न मिलने के कारण यदि प्रधान को किसी प्रकार की क्षति होती है तो एजेंट को उसे पूरा करना पड़ेगा ।

फिर धारा २०७ के अनुसार परित्याग स्पष्ट तथा गंभीर हो सकता है ।

**३. प्रसंविदा का निष्पादन (By Completion)**—जिस काम के लिए प्रधान ने एजेंट को बहाल किया हो उस काम के पूरा हो जाने पर एजेंसी की समाप्ति आप ही हो जाती है ।

**उदाहरण**—Z ने X को २०० मन चावल खरीदने को कहा । Z ने X के लिए २०० मन चावल खरीदा । ऐसी दशा में Z ने जैसे ही अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति की वैसे ही एजेंसी की समाप्ति हो गयी ।

**४. प्रधान या एजेंट का पागल हो जाना (Unsoundness)**—प्रधान या एजेंट के पागल होने पर भी एजेंसी समाप्त हो जाती है । यद्यपि एजेंट को नियुक्त करते समय किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी एजेंट के पागल होने पर कानून यह कहता है कि एजेंसी समाप्त कर दी जाय । इंग्लैंड तथा हिन्दुस्तान दोनों जगहों में

\* Where agent has an interest in the subject matter.

महाजनों (creditors) की सभा अति आवश्यक है, जिसकी सूचना का प्रकाशन एवं विज्ञापन देना अनिवार्य है। इस सभा में डाइरेक्टरों को महाजनों की सूचना एवं प्रत्येक महाजन की राशि का विवरण महाजनों को देना अनिवार्य है।

२. न्यायालय के संरक्षण में समापन (Winding up under the Supervision of the Court) — धारा ५२२ से ५२७ के अनुसार कम्पनी का समापन उसी तरह होता है जिस तरह स्वेच्छित समापन में। फर्क सिर्फ इतना ही है कि इसमें कम्पनी की समाप्ति का कार्य न्यायालय द्वारा होता है। यदि कम्पनी के अंशधारियों अथवा महाजनों को यह सदेह होता हो कि स्वेच्छित समापन ठीक तरीके से नहीं होगा, अर्थात् इसमें कुछ बेईमानी की आशंका है, तो वे न्यायालय से यह प्रार्थना करते हैं कि कम्पनी का समापन अपनी देखरेख में कराये। यदि न्यायालय अंशधारियों अथवा महाजनों की प्रार्थना से संतुष्ट हो जाता है तो कम्पनी का समापन अदालत के संरक्षण में होता है और इस प्रकार के समापन में अंशधारियों तथा महाजनों को संतोष हो जाता है कि कोई बेईमानी नहीं हुई।

३. न्यायालय के आदेशानुसार अनिवार्य समापन (Compulsory Winding up by the Court) — धारा ४३३ के अनुसार इस प्रकार की समाप्ति के लिए कम्पनी अपने प्रस्ताव द्वारा न्यायालय को आवेदन-पत्र देती है कि वह कम्पनी की समाप्ति के लिए आदेश दे। परन्तु इस आशय का आवेदन खासकर महाजनों द्वारा ही किया जाता है, जब उन्हें कम्पनी के ऋण-भुगतान की योग्यता के विषय में आशंका होती है। न्यायालय कम्पनी के आवेदन के अलावा अनिवार्य समापन का आदेश निम्नलिखित अवस्थाओं में दे सकता है—

(i) यदि रजिस्ट्रेशन की तारीख से एक साल के अन्दर कम्पनी अपना व्यवसाय आरम्भ नहीं करती अथवा रजिस्ट्रेशन के बाद कम्पनी के जीवन-काल में उसका व्यापार एक वर्ष के लिए स्थगित रहता है।

(ii) यदि हिस्सेदारों की संख्या सार्वजनिक कम्पनी में सात से कम और प्राइवेट कम्पनी में दो से कम होती है।

(iii) यदि कम्पनी ने न्यायालय के द्वारा कम्पनी का समापन (winding up) करने के लिए अपने एक विशेष प्रस्ताव के जरिये आज्ञा प्राप्त कर ली हो।

(iv) यदि कम्पनी की परिनियत सभा (statutory meeting) नहीं बुलाई गयी अथवा परिनियत वृत्तलेख (statutory report) रजिस्ट्रार के पाम नहीं भेजा गया है।

(v) यदि कम्पनी अधिक कर्ज होने पर उसका भुगतान करने में असमर्थ हो जाती है।

(vi) यदि न्यायालय के विचार में कम्पनी का समापन न्यायपूर्ण और उचित (just and equitable) हो।

न्यायालय बहुसंख्यक हिस्सेदारों अथवा महाजनों की इच्छा जानकर यदि संतुष्ट हो जाता है तो कम्पनी की समाप्ति अपने हाथ में ले लेता है। बाद में यह एक निस्तारक (Govt. Official or Liquidator) बहाल करता है, जिसे कम्पनी के समापन के सम्बन्ध में सभी अधिकार मिलते हैं।

राजकीय निस्तारक के अधिकार

धारा ४५७ के अनुसार राजकीय निस्तारक (Govt. Official or Liquidator) का वि० नं०-२२

को न्यायालय की स्वीकृति मिलने पर निम्नलिखित कार्यों को पूरा करने के अधिकार होते हैं—

१. कम्पनी के नाम और कम्पनी की ओर से किसी दीवानी मुकदमे या फौजदारी मुकदमे या किसी कानूनी कार्यवाही या गिरफ्तारी को प्रारम्भ करना या बचाव करना;
२. कम्पनी के लाभप्रद समापन के लिए जहाँ तक आवश्यक और उचित हो, कम्पनी के व्यापार को चलाना,
३. सार्वजनिक नीलामी के जरिये कम्पनी की सम्पत्ति बेचना या हस्तान्तरण करना;
४. कम्पनी के नाम पर या कम्पनी की ओर से समस्त दस्तावेजों, रसीदों या अन्य कागज-पत्रों का सम्पादन करना और अन्य सब कार्यों को करना;
५. किसी हिस्सेदार के दिवालियापन को साबित करना;
६. अपने कार्यों को अच्छे ढंग से पूरा करने के लिए किसी एडवोकेट, एटर्नी या वकील को बहाल करना।

### राजकीय निस्तारक के कर्त्तव्य

राजकीय निस्तारक (Govt. Official or Liquidator) के निम्नलिखित कर्त्तव्य होते हैं—

१. कम्पनी की सब पुस्तकों, कागजों और सम्पत्तियों को अपने कब्जे, संरक्षण और नियंत्रण में रखना;
२. साधारण सभा में लेनदारों और हिस्सेदारों के प्रस्ताव या निरीक्षण-समिति द्वारा दी गयी किसी सूचना का पालन करना;
३. लेनदारों या हिस्सेदारों की इच्छाओं का पता लगाने के लिए उसकी साधारण सभा का आयोजन करना;
४. समापन-सम्बन्धी विशेष मामले पर आदेश के लिए न्यायालय से आवेदन करना;
५. कार्यवाहियों और कार्यवाही-विवरणों को दर्ज करने के लिए पुस्तकों को रखना;
६. हिस्सेदारों की सूची तैयार करना और न्यायालय से उसे मान्य कराना;
७. लेनदारों में कम्पनी की सम्पत्तियों का वितरण करने के उद्देश्य से कम्पनी की सम्पत्तियों का संग्रह करना; और
८. यह पता लगाना कि क्या लेनदार समापन-विधि को सम्पन्न करने के लिए उसके सहायतार्थ निरीक्षण-समिति की स्थापना चाहते हैं।

राजकीय निस्तारक (Govt. Official or Liquidator) कम्पनी की सभी प्रकार की सम्पत्तियों तथा बही-खातों को अपने अधिकार में कर लेता है। वह सम्पत्ति को बेचकर रुपये एकत्र करता है और ऋणदाताओं के कर्ज उनके अधिकार के अनुसार चुका देता है। कर्ज चुकाने के बाद जो भी धन बच जाता है उसे हिस्सेदारों को उनके अधिकार के अनुसार विभाजित कर देता है। निस्तारक हिस्सेदारों की दो सूचियाँ तैयार करता है—सूची 'क' (list A) और सूची 'ख' (list B)। सूची 'क' में उन हिस्सेदारों के नाम होते हैं जो कम्पनी की समाप्ति के समय उनके हिस्सेदार हैं और सूची 'ख' (list B) में उन व्यक्तियों के नाम रहने हैं जिनकी सदस्यता समापन की तिथि से एक साल के अन्दर समाप्त हो चुकी होती है। यदि

सूची 'क' के हिस्सेदारों के प्राप्त धन कर्जों के भुगतान के लिए पर्याप्त नहीं होता तो सूची 'ख' के हिस्सेदारों से शेष पूँजी याचित की जाती है। लेकिन वे उन दायित्वों के लिए दायी नहीं होते जो उनकी सदस्यता समाप्त होने के बाद हुए हैं।

निस्तारक कम्पनी की सम्पत्ति बेचकर तथा हिस्सेदारों से जो भी धन प्राप्त करता है वह उसे निम्नलिखित तरीकों से इस्तेमाल में लाता है—

- (i) कम्पनी की समाप्ति के व्यय में;
  - (ii) कम्पनी द्वारा केन्द्रीय, किसी राज्य सरकार या किसी स्थायी शासन-संस्था को देय सभी कर, उप-कर और दरें;
  - (iii) कम्पनी में कार्य करनेवाले नौकरों को अधिक-से-अधिक चार महीने के काल का देय;
  - (iv) सुरक्षित महाजनों (secured creditors) को भुगतान करने में;
  - (v) पूर्वाधिकार ऋणदाताओं (preferential creditors) को भुगतान करने में;
  - (vi) अरक्षित ऋणदाताओं (unsecured creditors) को भुगतान करने में;
  - (vii) अशधारियों को उनके अधिकारानुसार वांटने में।
-



बेचान-साध्य रुक्को का सन्नियम—1881

**The Negotiable Instrument Act**





## विषय-प्रवेश (Introduction)

बेचान-साध्य रुककों का सन्नियम (Negotiable Instruments Act), १८८१ में सन्नित है। इसका उद्देश्य व्यापारिक क्षेत्र में आपस के लेनदेन का निबटारा भिन्न-भिन्न प्रकार के रुककों द्वारा करना है जो सन्नियम द्वारा शामित होते हैं। यह सन्नियम परिपूर्ण नहीं है; केवल प्रणपत्र, विनिमय-पत्र तथा चेकों (cheques) के निर्गमन (issue) और बेचान (negotiation) को नियमित करता है। किन्तु इसके सम्बन्ध में भी सन्नियम के चलन से प्रवाहित अधिकारों का विवेचन नहीं करता। यह सन्नियम हुण्डी पर लागू नहीं होता, इसलिए भारतीय प्रसविदा सन्नियम के समान नियम बेचान-साध्य रुककों पर भी जहाँ तक कि वे बेचान-साध्य रुकके सन्नियम द्वारा निरस्त (abrogated) नहीं कर दिये गये हों, लागू होते रहेंगे।

### बेचान-साध्य रुककों का अर्थ (Meaning of negotiable instruments)

बेचान-साध्य रुकके का अभिप्राय किसी प्रणपत्र (promissory note), विनिमय पत्र (bill of exchange) या चेक (cheque) से है जिसकी लिखित रकम आदेशित व्यक्ति (order) या धारक (bearer) को देय होती है।\* न्यायाधीश विलिस (Willis) ने बेचान-साध्य रुकके की परिभाषा इस प्रकार दी है—“A negotiable instrument is one the property in which is acquired by every person who takes it bonafide and for value, notwithstanding any defect of title in the person from whom he took it”

बेचान-साध्य रुकका उसे कहते हैं जिसका स्वामित्व प्रत्येक वैसे व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है जो सद्भावना के साथ तथा मूल्य के बदले में प्राप्त करता हो यद्यपि जिस व्यक्ति से वह प्राप्त करता है, उसके स्वत्व (title) में कोई दोष न हो। किन्तु उस पर यह सन्नियम लागू नहीं होता। उदाहरणार्थ, जहाजी बिल्टी (bill of lading), रेल की रसीद (railway receipt), डॉक वारण्ट (dock warrant), ह्वार्फिगर का प्रमाण-पत्र (wharfinger's certificate)। इन रुककों में बेचान-साध्य रुककों की कुछ विशेषताएँ होती हैं और वे पूरे बेचान-साध्य रुकके नहीं होते।

### विनिमय-साध्य रुकके के आवश्यक लक्षण (Essential characteristics of a negotiable instrument)

१. विनिमयता (Negotiability)—यह विनिमय-साध्य रुकके का सबसे महत्वपूर्ण

\* “A negotiable instrument means a Promissory Note, Bill of Exchange or Cheque payable either to order or to bearer.” [Sec. 13]

लक्षण है। इसके अनुसार रक्के के हस्तांतरण होने के साथ-साथ उसके स्वामित्व का भी हस्तांतरण हो जाता है। रक्के का धारक उसका स्वामी माना जाता है। इस लक्षण के कारण विनियम-साध्य रक्के को कर्जों के भुगतान के लिए सुगमतापूर्वक हस्तांतरित किया जा सकता है।

२. स्वत्व (Title)—विनियम-साध्य के यथानियम धारक (holder in due course) के स्वत्व पर रक्के के हस्तांतरक या किसी अन्य पूर्व स्वामी के स्वत्व में पाये जाने वाले दोष का कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है। प्रतिफल के बदले सद्विश्वास-पूर्वक विलेख का स्वामित्व स्वीकार करने वाले हस्तांतरित को बगैर किसी दोष के प्राप्त होंगे, चाहे हस्तांतरक का अधिकार दूषित ही क्यों न रहा हो।

३. बसूली (Recovery)—इस पत्र का यथाविधि धारक, इसमें लिखी रकम प्राप्त करने के लिए अपने नाम से मुकदमा कर सकता है। उस विलेख के भुगतान के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को विलेख के हस्तांतरण की सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

४. प्रतिफल (Consideration)—प्रत्येक विनियम-साध्य संलेख के लिए मूल्यवान प्रतिफल का होना मान लिया (presume) जाता है। इसलिए उसको विलेख में लिखने या साबित करने की आवश्यकता नहीं होती है। जो व्यक्ति प्रतिफल के आधार पर संलेख की वैधता को सही नहीं बतलाता है उसी पर प्रतिफल के न होने की बातों को साबित करने का दायित्व होता है।

५. समन्याय (Equities)—विलेख के यथाविधि धारक के अधिकारों पर पूर्व के धारकों के खिलाफ उपलब्ध प्रतिवादों का कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरणार्थ, कोई कपट, जिसमें यथाविधिधारी शामिल नहीं रहा हो।

इसलिए एक विनियम-साध्य विलेख का मतलब सिर्फ यही नहीं है कि उसे पृष्ठांकन या सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरित किया जा सकता है बल्कि यह भी है कि जिस धारक ने उसे सम्पूर्ण एवं नियमित (complete and regular) प्रतिफल के बदले, सद्विश्वासपूर्वक उसकी परिपक्वता (maturity) से पहले किसी पहले धारक के स्वत्व में स्थित दोष की सूचना के बगैर प्राप्त किया हो, तो उसका उस रक्के या विलेख पर श्रेष्ठ स्वत्व (good title) होगा।

अगर विलेख का मतलब साफ हो तो किसी विनियम-साध्य रक्के के लिखने में शब्दों की त्रुटियों या भाषा को स्पष्टतः समझने योग्य गलतियों के कारण अवैध घोषित नहीं किया जा सकता है।

विनियम-साध्य संलेख से सम्बद्ध उपधारणाएँ (Presumptions as to negotiable instruments) [धारा ११८, ११९]—विनियम-साध्य संलेख अन्यथा प्रमाणित न किये जायें तब प्रत्येक विनियम-साध्य संलेख के विषय में निम्नलिखित वैधानिक उपधारणाएँ होती हैं—

१. विनियम-साध्य संलेख प्रतिफल के लिए लिखा, स्वीकृत, पृष्ठांकित या हस्तांतरित किया गया है।

२. यह अंकित दिन को ही लिखा गया है।

३. लिखे जाने के बाद संलेख को उचित अवधि के भीतर एवं परिपक्वता (maturity) से पहले स्वीकार किया गया है।

४. संलेख का प्रत्येक हस्तांतरण उसके परिपक्व होने से पहले किया गया है।

५. संलेख पर अंकित पृष्ठांकन उसी क्रम से किये गये थे जिस क्रम से वे संलेख पर दिये हुए हैं।

६. खोये हुए संलेख पर यथोचित टिकट (stamps) लगे हुए थे ।

७. संलेख का धारक यथाविधि धारक है ।

८. जब तक यह साबित न हो जाय कि धारक ने संलेख को उसके वास्तविक स्वामी से उसकी स्वतंत्र सहमति के बगैर या प्रतिफल के बगैर प्राप्त किया है तब तक विनिमय-साध्य संलेख का प्रत्येक धारक उसका यथाविधि धारक होता है । कपट या अवैध प्रतिफल को प्रमाणित करने का दायित्व धारक के स्वत्व (title) को चुनौती (challenge) देने वाले पक्ष पर होता है ।

९. किसी अप्रतिष्ठित संलेख को प्रोटेस्ट कराने पर जब तक उसे असत्य साबित नहीं कर दिया जाता है, न्यायालय द्वारा यही समझा जायेगा कि संलेख को अप्रतिष्ठित किया गया है ।

### प्रणपत्र (Promissory note)

धारा ४ के मुताबिक “प्रणपत्र वह लिखित रुक्का है (बैंक नोट और करेंसी नोट नहीं) जिसमें उसका लिखनेवाला उसमें दिये हुए किसी धनी को अथवा उसके आदेशानुसार अथवा जिसके पास वह पुर्जा हो, बिना किसी शर्त के उसमें लिखी हुई एक निश्चित रकम देने का प्रण करता है ।” [“A promissory note is an instrument in writing (not being a bank note or a currency note) containing an unconditional undertaking, signed by the maker to pay a certain sum of money only to or the order of a certain person, or the bearer of the instrument.”]

उदाहरण—‘मैं B को अथवा आदेशित व्यक्ति को ५०० रु० देने का वचन देता हूँ ।’ यह प्रतिज्ञापत्र है ।

प्रणपत्र में सिर्फ दो ही धनी होते हैं—(१) लिखनेवाला और (२) पानेवाला । जो व्यक्ति भुगतान करने का वचन देता है लिखनेवाला कहलाता है तथा वह व्यक्ति जिसको भुगताता किया जाता है, पानेवाला कहलाता है ।

I. O. U. (I owe you—मैं आपका ऋणी हूँ) केवल किसी ऋण की प्राप्ति की स्वीकृति मात्र होता है । यह प्रणपत्र नहीं होता । किन्तु ऐसी प्राप्ति-स्वीकृति एक सविदे के रूप में वैध होती है और इसके आधार पर बाद प्रस्तुत किया जा सकता है ।

ऊपर की परिभाषा से यह साफ जाहिर होता है कि प्रणपत्र के निम्नलिखित मुख्य लक्षण हैं—

१. इसका लिखित होना आवश्यक है ।\* सिर्फ मौखिक प्रतिज्ञा प्रणपत्र नहीं होती । इसका लिखा होना जरूरी है चाहे यह पेन्सिल से लिखा हो या स्याही से या छपा हो या लिथोग्राफी (lithography) या और किसी तरह की चीज से लिखा हो जो साफ हो और आसानी से पढ़ा जा सके ।

२. प्रणपत्र में प्रतिज्ञा या उपक्रम (undertaking) का होना आवश्यक है ।† प्रणपत्र में रुपया वापस करने की साफ-साफ प्रतिज्ञा होनी चाहिए । सिर्फ कर्ज पाने

\* The Promissory Note must be in writing.

† The Promissory Note must contain an undertaking to pay.

की स्वीकृति प्रणपत्र नहीं होती।

**उदाहरण—**(i) “मिस्टर B मैं आपका ( I. O. U. ) २०० रु० के लिए ऋणी हूँ।” इस तरह के कागजात प्रणपत्र नहीं है।

३. रुपया वापस करने का वादा शर्त-रहित (unconditional) होना चाहिए\*— अगर रुपया वापस करने के समय कुछ शर्त लगा दी जाती है तब वह प्रणपत्र नहीं होगा। जैसे, अगर X निम्नलिखित शब्दों में कोई रुक्का लिखता है तब वह प्रणपत्र नहीं होगा—“मैं B को C की मृत्यु पर १०० रु० देने का वचन देता हूँ यदि C उक्त रकम के भुगतान के लिए पर्याप्त धन छोड़ता है।”

कुछ खास हालातों में यह जानना या तय करना मुश्किल हो जाता है कि प्रतिज्ञा शर्त-रहित या शर्तपूर्ण है। लेकिन इस धारा के मुताबिक प्रतिज्ञा शर्त-रहित समझी जाती है, अगर रुपया वापस करना किसी घटना पर निर्भर है और जिस घटना का घटित होना निश्चय है, हालाँकि उस घटना के घटित होने का समय अनिश्चित रहता है।

**उदाहरण—**“मैं Y को १,००० रु० Z की मृत्यु के सात दिन बाद देने का वादा करता हूँ।” यहाँ रुपया भुगतान करने की प्रतिज्ञा शर्तपूर्ण मालूम होती है, क्योंकि उदाहरण में यह दिया हुआ है कि रुपया Z की मृत्यु के एक हफ्ते के बाद मिलेगा, पर वास्तव में वादा शर्त-रहित है, क्योंकि Z की मृत्यु निश्चय है, यह अलबत्ता अनिश्चित है कि उनकी मृत्यु कब होगी। पर इतना अवश्य है कि उसकी मृत्यु होगी। लेकिन अगर वादा इस प्रकार रहता है कि “मैं X के साथ अपनी शादी हो जाने के ७ दिन बाद Y को १,००० रु० देने का वचन देता हूँ” तब यह प्रतिज्ञा शर्तपूर्ण रहती, क्योंकि यह हो सकता है कि “मैं X के साथ शादी कभी न करूँ।” किसी व्यक्ति की शादी ऐसी घटना है कि घट सकती है और नहीं भी घट सकती है। इसलिए इस तरह की दिक्कतों को दूर करने के लिए धारा ५ का दूसरा भाग (second para) यहाँ लिखा जा सकता है— “A promise to pay is not ‘conditional’ by reason of the time for payment of the amount or any instalment there of being expressed to be no the lapse of a certain period after the occurrence of a specified event which according to the ordinary expectation of mankind, is certain to happen, although the time of its happening may be uncertain.”

किसी स्पष्टतः उल्लिखित घटना में जो कि मनुष्य की साधारण कल्पना के अनुसार होना निश्चित है, यद्यपि उसके घटने का समय अनिश्चित रह सकता है, घट चुकने पर किसी धन-राशि या उसकी किसी किस्त को चुकाने के लिए व्यक्त किया गया प्रण, काल व्यतीती की निश्चितता के कारण शर्त-रहित नहीं होता।

४. प्रणपत्र पर निर्माता (maker) का हस्ताक्षर होना अनावश्यक है— जब तक प्रणपत्र का निर्माता (maker) हस्ताक्षर नहीं करता तब तक रुक्का अधूरा रहता है और उसपर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं हो सकती। अगर निर्माता हस्ताक्षर नहीं कर सकता तब वह किसी तरह के चिह्न या अंगूठे के निशान द्वारा हस्ताक्षर कर सकता है।

\* “The promise to pay should be unconditional.”

५. निर्माता (maker) निश्चित होना चाहिए—प्रणपत्र के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह साफ-साफ बतलाये कि किस व्यक्ति ने प्रसंविदा की है और कौन व्यक्ति रुपया वापस करने का जिम्मा लेता है। प्रणपत्र कोई एक व्यक्ति लिख सकता है या बहुत-से व्यक्तियों द्वारा मिल कर लिखा जाता है।

६. निश्चित रकम का भुगतान—प्रतिज्ञा एक निश्चित रकम का भुगतान करने की हो।

७. भुगतान प्राप्त करनेवाला (payee) निश्चित होना चाहिए—इसका भुगतान किसी विशेष व्यक्ति को या उसके आदेशित व्यक्ति को या धारक करने का उल्लेख हो, अतः भुगतान किसी निश्चित व्यक्ति को करना चाहिए।

८. भुगतान देश के वैधानिक सिक्के में होना चाहिए—भुगतान देश के वैधानिक सिक्के (legal money) में ही हो। अतः भारतवर्ष में भुगतान रुपयों में किया जाय; किसी वस्तु को भुगतान में देने की प्रतिज्ञा करने से वह प्रणपत्र नहीं कहा जा सकता।

९. भुगतान का स्थान, तिथि और समय प्रणपत्र के आवश्यक अंग नहीं है, चाहे उसमें दिये भी क्यों न गये हों।

१०. भारतीय मुद्रांकन सन्निधय (Indian Stamp Act) के अनुसार प्रणपत्र का मुद्रांकित (stamped) होना आवश्यक है।

प्रणपत्र इस प्रकार लिखा जाता है—

Stamp	Gaya 30th May, 1950
Rs. 500	Three months after date I promise to pay to Shyam or order the sum of Rupees Five Hundred only for value received.
	Madan Mohan
टिकट	गया ३० मई, १९५०
५००)	मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उपर्युक्त तिथि के तीन महीने बाद श्याम को या उसके आदेशित व्यक्ति को केवल पाँच सौ रुपये दे दूँगा। मदन मोहन

### विनिमय-पत्र (Bill of Exchange)

धारा ५ में विनिमय-पत्र की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

“यह एक ऐसा लिखित पत्र है जिस पर इसके लिखनेवाले के हस्ताक्षर रहते हैं और जो उसमें लिखित किसी व्यक्ति से उसमें लिखित किसी अन्य व्यक्ति को अथवा

उसके आदेशानुसार अथवा उसके वाहक को उसमें लिखित रकम बिना किसी शर्त के देने की आज्ञा देता है।” (“A Bill of Exchange is an instrument in writing containing an unconditional order, signed by the maker directing certain person to pay a certain sum of money to or to the order of, a certain person or to the bearer of the instrument.”)

उपयुक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि विनिमय-पत्र के मुख्य लक्षण निम्नलिखित होते हैं—

१. यह एक लिखित आज्ञा है।
२. यह शर्त रहित होता है।
३. इस पर निर्मायक का हस्ताक्षर होना आवश्यक है।
४. इसमें किसी विशेष व्यक्ति को दी हुई रकम चुकाने की आज्ञा रहती है।
५. निश्चित रकम का भुगतान निश्चित समय के अन्दर देश के सिक्के में होना आवश्यक है।
६. यह यथोचित रूप से मुद्रांकित (stamped) हो।

विनिमय-बिल (Bill of Exchange) का नमूना नीचे दिया जाता है—

Stamp	Gaya, June 15, 1950
Rs. 500	Three months after date pay to me or order the sum of Rupees Five Hundred only for value received.
To,	
Sri Ganesh Patna.	Shyam
टिकट	गया, १५ जून, १९५०
₹५००)	उपयुक्त तिथि के तीन महीने बाद हमें या हमारे आदेशानुसार केवल पाँच सौ रुपये का भुगतान कीजिये। मूल्य प्राप्त।
श्री गणेश पटना	श्याम

प्रणपत्र और विनिमय-पत्र में भिन्नता (Bill of Exchange and Promissory Note Compared)

१. प्रणपत्र में सिर्फ दो पक्ष होते हैं— निर्माता (maker) और दूसरा ऋणदाता (Creditor)। किन्तु विनिमय-पत्र में तीन पक्ष होते हैं—पहला निर्माता;

या अहर्त्ता (maker or drawer), दूसरा देनदार या स्वीकर्त्ता (Drawee or acceptor) और तीसरा लेनदार (payee)। प्रणपत्र में ऋणदाता लेनदार होता है और वह अपने अधिकार को दूसरे के नाम बेची (endorse) कर सकता है।

विनिमय-पत्र में निर्माणकर्त्ता दूसरे किसी व्यक्ति को भुगतान करने की आज्ञा दे सकता है; जैसे "Pay to Hari Narain" या अपने को भी लेनदार बना सकता है।

२. प्रणपत्र में निर्माता लेनदार (payee) नहीं बन सकता, परन्तु विनिमय-पत्र में निर्माता लेनदार हो सकता है।

३. प्रणपत्र में निर्माता का उत्तरदायित्व प्रधान और शर्त्तरहित होता है, परन्तु विनिमय-पत्र में उसका उत्तरदायित्व अप्रधान (secondary) तथा शर्त्त-सहित है, क्योंकि लिखी गयी रकम के लिए धारक का निर्माता तब उत्तरदायी होता है जब कि देनदार विनिमय-पत्र की अप्रतिष्ठा (dishonour) करता है।

४. प्रणपत्र में लिखनेवाले का सम्बन्ध सीधे स्वीकर्त्ता या देनदार से रहता है।

५. विनिमय-बिल की अप्रतिष्ठा (dishonour) होने पर धारक (holder) का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अहर्त्ता तथा पृष्ठाकर्त्ता (endorsers) को सूचना दे, किन्तु प्रणपत्र में इसकी जरूरत नहीं होती।

६. विनिमय-बिल के अप्रतिष्ठित होने पर इसका प्रोटेस्ट (protest) कराया जाता है, किन्तु प्रणपत्र में इसकी कोई जरूरत नहीं होती।

७. प्रणपत्र भुगतान करने की प्रतिज्ञा होता है, किन्तु विनिमय-बिल भुगतान करने की आज्ञा देता है।

८. प्रणपत्र में निर्माता एक निश्चित रकम का भुगतान करने का वादा करता है, अतः भुगतान के पहले इसे स्वीकृत करने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु विनिमय-पत्र में निर्माता दूसरे को भुगतान करने की आज्ञा देता है, अतः भुगतान के पहले देनदार द्वारा इसकी स्वीकृति (acceptance) होना जरूरी है। जब तक कि आज्ञापत्र की स्वीकृति नहीं हो जाती तब तक उसे ड्राफ्ट (draft) कहते हैं।

### वेचान-साध्य रुक्कों के पक्ष (Parties to Negotiable Instruments)

**विनिमय-पत्र (Bill of Exchange)\*** में यथासम्भव निम्नांकित प्रकार के पक्ष होते हैं—

१. निर्माता (Maker or drawer)— बिल को लिखनेवाला व्यक्ति निर्माता कहलाता है। बिल लिखकर दायीं ओर नीचे के कोने में वह अपना हस्ताक्षर कर देता है।

२. देनदार (Drawee)— जिसके नाम बिल लिखा जाय उसे देनदार (drawee) कहते हैं। बिल के बायें हाथवाले नीचे के कोने में उसका नाम और पता लिखा होता है। जब वह बिल को स्वीकार कर लेता है तो उसी देनदार को स्वीकर्त्ता (acceptor) कहते हैं।

\* चक्र में भी (१) निर्माता, (२) देनदार (drawee), (३) लेनदार (payee), (४) धारक (holder), (५) पृष्ठांकनकर्त्ता और (६) पृष्ठांकनो होता है।

३. लेनदार (Payee)— जिसे बिल का रुपया पाना है उसे प्रापक (payee) कहते हैं। प्रायः बिल का लिखनेवाला ही अदाता भी होता है।

४. धारक (Holder)— बिल का अधिकारी जिसे भुगतान लेने का अधिकार रहता है, धारक कहा जाता है।

५. पृष्ठांकनकर्त्ता (Endorser)— जब बिल का धारक उसकी बेची दूसरे व्यक्ति के नाम करता है तो उसे पृष्ठांकनकर्त्ता कहते हैं।

६. पृष्ठांकनी (Indorsee)— जिस व्यक्ति के नाम में बिल का पृष्ठांकन होता है उसे पृष्ठांकनी कहा जाता है।

प्रणपत्र (Promissory Note) में (१) निर्मायक, (२) लेनदार, (३) धारक, (४) पृष्ठांकनकर्त्ता और (५) पृष्ठांकनी होते हैं।

धारक (Holder)— विनियम-साध्य पुर्जों के विधान को आठवी धारा में चेक के प्रणपत्र के और विनियम-बिल के अधिकारी की जो परिभाषा दी हुई है, उसका मतलब यह है—

“यह वह व्यक्ति है जिसे उसे रखने का और जिनके ऊपर उसके भुगतान का दायित्व है, उनसे उसका भुगतान पाने और वसूल करने का अधिकार है। यदि कोई चेक, प्रणपत्र अथवा विनियम-बिल खो भी गया है अथवा नष्ट हो गया है तो भी उसका अधिकारी वही है जिसे उसके खोने अथवा नष्ट होने के पहले उपर्युक्त अधिकारी थे। साथ ही उसे उस चेक, प्रणपत्र तथा विनियम-बिल की नयी प्रतिलिपि भी उनके ऊपर वाले व्यक्ति से इस बात का वादा करके प्राप्त कर लेने का अधिकार है कि यदि उसके किसी निरपराध व्यक्ति के हाथ में पड़ जाने से उसकी यदि कोई हानि होगी तो वह उसे पूरा कर देगा। कोई साखपत्र डाक से भेजा जाता है और वह रास्ते में खो जाता है तो उसका दायित्व भेजने वाले के ऊपर रहता है। हाँ, यदि भेजने वाले ने पानेवाले के आदेशानुसार ऐसा किया था तो पाने वाला ही उसका जिम्मेदार होता है।\* ”

दथाविधिधारी (Holder in due Course)

इसकी भी परिभाषा विनियम-साध्य पुर्जों के सन्निधम की नवीं धारा में दी गयी है। इसका मतलब यह है कि ‘यदि कोई चेक, प्रणपत्र और विनियम-बिल वाहक को देय है, तो चलन के मुताबिक, उसका अधिकारी वही व्यक्ति है जिसने उसके प्रतिफल के विनियम में उसे प्राप्त किया है। साथ ही, चलन के अनुसार, अधिकारी के लिए यह भी आवश्यक है कि वह उसके परिपाक के पहले और उसके हस्तान्तरणकर्त्ता पर इस बात का सन्देह किये बगैर कि उस पर उसका अनुचित अधिकार है, उसे प्राप्त करे। अतः यह स्पष्ट है कि वाहक को देय पत्र में तो वह उसे दिया गया हो और आदेशानुसार देय पत्र में वह स्वयं उसका पानेवाला

\* “The ‘holder’ of a promissory note, bill of exchange or cheque means any person entitled in his own name to the possession thereof and to receive or recover the amount due thereon from the parties there to. Where the note, bill or cheque is lost or destroyed, its holder is the person so entitled at the time of such loss or destruction.” (Section 8.)



धनी हो या उसके नाम वह बेचान किया गया हो।\* साथ ही, इसके लिए निम्नांकित बातें भी जरूरी हैं—

(i) वह किसी प्रतिफल के विनिमय में प्राप्त किया गया हो (holder for valuable consideration)।

(ii) जब वह प्राप्त किया गया हो तब उसका परिपाक हुआ हो (before maturity)।

(iii) उसे इस बात का सन्देह होने की जरा भी आशंका न रही हो कि उसके हस्तान्तरणकर्ता का उस पर कोई अनुचित अधिकार था (in good faith)।

संक्षेप में यह 'अच्छी नीयत से मूल्य के विनिमय में किसी सन्देह बिना प्राप्त करनेवाला अधिकारी' (bonafide holder for value without notice) होना चाहिए।

**यथाविधिधारक के विशेष अधिकार (Special privileges of a holder in due course)**

१. Inchoate Stamped Instruments—जो व्यक्ति हस्ताक्षर करके स्टाम्प लगा हुआ, किन्तु अपरिपक्व विलेख किसी दूसरे को हस्तान्तरित कर देता है, वह अगर स्टाम्प विलेख की रकम के लिए पर्याप्त मात्रा में हो, तो यथाविधिधारक के विरुद्ध यह नहीं कह सकता है कि विलेख उसके द्वारा दिये गये अधिकारों के अनुसार पूर्ण नहीं किया गया है। [धारा २०]

२. Liability of Prior Parties to holder in due course—बेचान-साध्य विलेख (स्वके) का प्रत्येक पूर्वपक्ष यथाविधिधारक के प्रति तब तक दायी रहता है जब तक कि विलेख यथोचित रूप में सन्तुष्ट नहीं कर दिया जाता। [धारा ३६]

३. यदि कोई बिल किसी कल्पित नाम के द्वारा भुगतान करने को आदेशित किया गया हो तथा निर्मायक द्वारा पृष्ठांकित (indorsed) किया गया हो तो स्वीकर्ता 'यथाविधिधारक' से यह नहीं कह सकता कि वह बिल किसी कल्पित व्यक्ति को आदेशित किया गया था, इसलिए वह भुगतान नहीं करेगा।

४. जब कोई स्वका किसी यथाविधिधारक को बेचान किया गया हो तो उससे सम्बद्ध दूसरे पक्षकार दायित्व से इस आधार पर नहीं बच सकते कि विलेख की सुपुर्दगी सप्रतिबन्ध अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिए की गयी थी। [धारा ४६]

५. Holder deriving Title from holder in due course—जो व्यक्ति किसी बेचान-साध्य स्वके पर अपना स्वत्व (title) यथाविधिधारक से प्राप्त करता है, उसे वे अधिकार मिल जाते हैं जो यथाविधिधारक को थे। [धारा ५३]

६. यदि बेचान-साध्य स्वके पर दायी व्यक्ति यथाविधिधारक के खिलाफ यह नहीं कह सकता कि स्वका जिससे खो गया था अथवा उसे कपट द्वारा, अपराध द्वारा अथवा अवैध प्रतिफल के बदले प्राप्त किया गया था। [धारा ५८]

\* 'Holder in due course' means any person who for consideration became the possessor of a promissory note, bill of exchange or cheque, if payable to bearer, or the payee or endorsee thereof, if payable, to order before the amount mentioned in it became payable; and without having sufficient cause to believe that any defect existed in the title of the person from whom he derived his title.

७. बेचान-साध्य स्क्के का प्रत्येक धारक वैधानिक अनुमान (assumption) के अनुसार "यथाविधिधारक" है यद्यपि इस धारण का खण्डन किया जा सकता है। [धारा ११८ (g)]

८. यथाविधिधारक द्वारा भुगतान के लिए मुकदमा चलाने पर प्रणपत्र का प्रतिज्ञाकर्ता विनियम-पत्र या धनादेश का निर्माता तथा निर्माणक की प्रतिष्ठा के लिए स्क्के की प्रामाणिकता (validity) को अस्वीकार नहीं कर सकता।

९. प्रतिज्ञापत्र लिखनेवाले तथा आज्ञा पर देय विनियम-पत्र के स्वीकर्ता, यथाविधिधारी बाद प्रस्तुत करने पर प्रणपत्र अथवा विनियम-पत्र की तिथि पर उसको पृष्ठांकन करने की आदाता की क्षमता को अस्वीकार (dishonour) नहीं कर सकते। (धारा १२१)

### प्रतिफल जनिता धारक (Holder for value)

जिस स्क्के का मूल्य किसी ने कभी भी चुका दिया है उस स्क्के का अधिकारी मूल्य दिये हुए स्क्के का अधिकारी माना जाता है। मान लीजिये कि एक चेक B के पक्ष में है और C का B के ऊपर द्रव्य चाहिए जिससे B ने C के पक्ष में उसका बेचान कर दिया है। अब यदि C उसे D को दान में देता है तो D मूल्य दिये हुए स्क्के का अधिकारी है। इसने स्वयं तो इसका मूल्य नहीं दिया है, किन्तु इसका मूल्य C के द्वारा दिया जा चुका है।

### बेचान-साध्य स्क्के के लिए प्रतिफल (Consideration for a Negotiable Instrument)

अन्य प्रसंगों के समान इसमें भी प्रतिफल का होना अति आवश्यक है। धारा ४३ के मुताबिक बिना प्रतिफल के लिखा गया, हस्तान्तरित किया गया, स्वीकृत, पृष्ठांकित (अथवा ऐसे प्रतिफल के लिए जो बाद में निष्फल हो जाता है) एक बेचान-साध्य स्क्के के व्यवहार से सम्बद्ध पक्षकारों के बीच भुगतान के लिए कोई दायित्व नहीं पैदा करता। किन्तु अगर पक्षकार ने स्क्के को किसी निर्माणक (drawer) को हस्तान्तरित कर दिया है, तो ऐसा धारक तथा उससे अधिकार पानेवाले बाद के धारक; ऐसे स्क्के की धनराशि हस्तान्तरण करनेवाले से अथवा किसी पूर्वपक्ष से वसूल कर सकते हैं।

जब प्रतिफल का जिसके लिए किसी व्यक्ति ने किसी प्रणपत्र, विनियम-पत्र या चेक पर दस्तखत किया था, शुरू से ही कोई भाग अनुपस्थित था अथवा बाद में एक भाग निष्फल हो गया तो ऐसे हस्ताक्षर करनेवाले से निकट सम्बद्ध धारक को उससे प्राप्त होनेवाली रकम भी उसी अनुपात में घटा दी जायगी। विनियम-पत्र के निर्माणक का स्वीकर्ता के साथ निकट सम्बन्ध होता है। प्रणपत्र, विनियम-पत्र अथवा चेक के लिखने वाले का आदाता के साथ निकट सम्बन्ध होता है तथा पृष्ठांकन करनेवाले का पृष्ठांकित के साथ निकट सम्बन्ध होता है।

उदाहरण—X, Y पर X की आज्ञा पर देय ५०० रु० के लिए एक विनियम-पत्र आहरित करता है। Y विनियम-पत्र स्वीकार कर लेता है, किन्तु बाद में भुगतान न करके इसे अप्रतिष्ठित (dishonour) कर देता है। X, Y पर विनियम-पत्र के आधार पर मुकदमा कर सकता है। Y यह प्रमाणित कर देता है कि विनियम-पत्र ४०० रु० के लिए तथा शेष मुद्दै (plaintiff) को अनुगृहीत करने के लिए स्वीकार किया था। X केवल ४०० रु० वसूल कर सकता है।

### पारस्परिक सहायक बिल (Accommodation Bill)

खरीदार के पास प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब खरीदने के लिए नकद रुपया नहीं होता तो वह माल बेचनेवाले का लिखा विनिमय-पत्र स्वीकार कर लेता है तथा माल खरीद लेता है। कहने का मतलब यह है कि बिल तभी लिखा जायगा जब कि किसी से उधार माल मील लिया गया है या उधार रुपया लिया गया है। परन्तु कभी-कभी बिल बिना किसी प्रतिकूल (consideration) के ही लिखा जाता है जिसका मुख्य उद्देश्य व्यापारी के थोड़े समय के आर्थिक संकट को दूर करना रहता है। इस प्रकार, दो व्यक्ति जो एक-दूसरे की जान-पहचान के हैं, रुपयों की जरूरत पड़ने पर आपस के सहायतार्थ आपस में ही ऋणी-धनी बन जाते हैं तथा एक व्यक्ति का लिखा बिल दूसरा स्वीकार कर लेता है। इस बिल को बैंक से भुनाकर प्राप्त रकम ने रुपये की आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। इस प्रकार का बिल जो आपस में सहायतार्थ बनता है, 'पारस्परिक सहायक बिल' (accommodation bill) कहलाता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि पारस्परिक सहायक बिल की भाषा भी ठोक सादे या साधारण बिल की तरह होती है। इन बिलों को 'काइट' (kite) अथवा 'आर्थिक बिल' (Finance bill) कहते हैं।

---

## चेक (Cheque)

धारा ६ में चेक की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है — “चेक एक विनिमय-बिल है जो एक विशेष बैंक के ऊपर लिखा जाता है और जिसका भुगतान देने का आदेश माँग पर छोड़ कर अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकता। (“A cheque is a bill of exchange drawn on a specific banker and not expressed to be payable otherwise than on demand.”)।

अतः इसकी तीन विशेषताएँ हैं—

१. यह विनिमय-बिलों के समान है;
२. इसका ऊपर वाला धनी कोई बैंकर होना चाहिए; और
३. यह दर्शनी होना चाहिए अर्थात् इसका भुगतान माँगने पर फौरन होना चाहिए।

### चेक और बिल में अन्तर (Difference between a Cheque and a Bill)

१. विनिमय-पत्र किसी भी व्यक्ति पर लिखा जा सकता है, परन्तु चेक किसी बैंकर पर ही लिखा जाता है।

२. विनिमय-पत्र में स्वीकृति होना आवश्यक है, पर चेक में स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती।

३. चेक केवल दर्शनी होता है, किन्तु विनिमय-पत्र दर्शनी तथा अवधि-सापेक्ष दोनों होते हैं।

४. बिल का निर्माण माँग करने पर तथा एक निश्चित अवधि के बाद भुगतान करने के लिए हो सकता है, परन्तु चेक का निर्माण केवल माँग करने पर ही भुगतान करने के लिए होता है।

५. चेक प्रायः देशी होता है, किन्तु बिल देशी और विदेशी दोनों हो सकते हैं।

६. चेक देश के ही करेंसी में लिखा जाता है, किन्तु विदेशी बिल विदेशी करेंसी में भी लिखा जा सकता है।

७. चेक को रेखांकित (crossed) किया जा सकता है, परन्तु बिल को रेखांकित नहीं किया जा सकता।

८. अवधि-सापेक्ष विनिमय-पत्रों (time bill) के भुगतान के लिए, तीन दिनों की अनुग्रह अवधि (days of grace) दी जाती है, परन्तु चेक की अदायगी के लिए अनुग्रह अवधि नहीं मिलती।

९. चेक लिखनेवाले की मृत्यु हो जाने पर अथवा दिवालिया घोषित होने पर या पागल होने पर तथा चेक का भुगतान न करने की आज्ञा देने पर चेक का भुगतान

नहीं होता, किन्तु बिल में ऐसी बात नहीं होती।

१०. बिल के अप्रतिष्ठित (dishonour) होने पर इसकी सूचना सभी पक्षों को देनी पड़ती है, किन्तु चेक में सूचना की कोई जरूरत नहीं पड़ती।

### चेक के प्रकार (Kinds of Cheque)

साधारणतः चेक दो प्रकार के होते हैं—

(i) ऑर्डर चेक (Order cheque), और

(ii) बेयरर चेक (Bearer cheque)।

**ऑर्डर चेक (Order cheque)**— धारा १३ के अनुसार यदि किसी चेक का देय धनी के आदेशानुसार दिया जाय तब वह ऑर्डर चेक कहलाता है, जब यह स्पष्ट रूप से इस प्रकार देय हो अथवा जो किसी ऐसे व्यक्ति विशेष को देय हो और जिसमें हस्तांतर पर रोक लगाने के शब्द न हों।

**बेयरर चेक (Bearer cheque)**— धारा १३ के अनुसार बेयरर चेक वह है जिसका दाम उसके वाहक को ही दिया जाय। धारा ८५ (२) के मुताबिक जब कोई चेक शुरू में वाहक को ही लिखा गया हो तो वह वाहक को ही देय होता है और इस पर किये गये किसी पूर्ण अथवा रिक्त पृष्ठांकन की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

चेक एक तरह का और होता है, वह है—

**चिह्नित चेक (Marked Cheque)**— जब कोई चेक देनदार बैंक द्वारा इस मतलब से चिह्नित अथवा प्रमाणित कर दिया जाता है कि भुगतान के लिए प्रस्तुत करने की तिथि पर इसका भुगतान कर दिया जायगा तो उसे चिह्नित चेक कहते हैं।

**रेखित चेक (Crossed cheque)**— १२३-१३१ (अ) के अनुसार रेखित चेक वह है जिसके मुख पर कुछ शब्दों के साथ अथवा वैसी ही दा टेढ़ी समानान्तर रेखाएँ खींची जाती हैं। इनका यह प्रभाव होता है कि ऐसे चेकों का भुगतान वर्णित बैंक या किसी दूसरे बैंक के अतिरिक्त किसी भी धनी को नहीं दिया जाता।\* यदि कोई चेक रेखित न हो तो उसे खुला चेक (open cheque) कहते हैं और वह काउण्टर पर देय होता है। चेक पर साधारण (general) और विशेष (special) में से कोई एक रेखांकन किया जाता है। कहीं-कहीं पर आयंत्रक (restrictive) रेखांकन भी किया जाता है।

### साधारण रेखांकन (General Crossing)

जब किसी चेक के ऊपर कुछ शब्दों के साथ-साथ (किसी बैंक के नाम के साथ नहीं) दो टेढ़ी समानान्तर रेखाएँ खींची गयी हैं तो वह रेखांकन साधारण रेखांकन

\* “A Crossed Cheque is a cheque across the face of which two transverse parallel-lines are drawn with or without the words “& Co.” or any other words. The effect of which is that the drawee bank shall not pay it otherwise than to a banker.”

होता है। [धारा १२३] इसके नमूने निम्नांकित हैं—

1	2	3	4	5
	& Co.	Not Negotiable	& Co. Account Payee only	Under one hundred Rupees & Co.

इसका प्रभाव यह होता है कि इस तरह के चेक का भुगतान बैंक दूसरे किसी बैंक के अलावा अन्य किसी व्यक्ति को नहीं देता। यदि कोई रेखित चेक (crossed cheque) किसी ऐसे व्यक्ति के पास आ जाता है जिसका किसी बैंक में हिमाव नहीं होता तो वह उसको वसूल करने के लिए अपने किसी ऐसे दोगत के नाम उसका वचान कर देता है जिसका किसी बैंक में खाता होता है।

### विशेष रेखांकन (Special Crossing)

यदि किसी चेक के मुख पर रेखांकन के अन्दर किसी बैंक का नाम दिया रहता है तो वह विशेष रेखांकन कहलाता है। [धारा १२४]

इस तरह के रेखांकन का यह प्रभाव पड़ता है कि उसका भुगतान रेखांकन में दिये हुए बैंक को ही दिया जाता है। किसी चेक के रेखांकन के अन्दर केवल एक ही बैंक का नाम रहता है। हाँ, यदि बैंक उस चेक की वसूली स्वयं नहीं कर सकता तो अवश्य उस पर दूसरे वसूल करने वाले बैंक का नाम लिख दिया जाता है। विशेष रेखांकन के कुछ नमूने (specimen) नीचे दिये जाते हैं—

1	2	3
The Bank of Bihar Ltd.	The Bank of Bihar Not Negotiable	State Bank of India Not Negotiable

### अविनिमय-साध्य रेखांकन (Not Negotiable Crossing)

यदि किसी चेक के मुख पर समानान्तर रेखाओं के बीच यह लिखा रहे कि सिर्फ वाहक (bearer) को ही देय है (A/c Payee only), तो इसमें बैंक को यह हिदायत की रहती है कि वह चेक की रकम सिर्फ वाहक को ही चुकाये, अन्य किसी व्यक्ति को नहीं। इसमें चेकों का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता, अर्थात् उसकी विक्री नहीं की जा सकती। अगर किसी चेक पर 'Not Negotiable' लिखा रहे तो उसका मतलब यह नहीं होता कि चेक का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता, बल्कि उसका हस्तांतरण किया जा सकता है। धारा १३० में यह वर्णन किया गया है कि जिस चेक पर 'Not Negotiable' शब्द लिखा रहे, चाहे वह साधारण रेखांकन या विशेष रेखांकन के साथ ही क्यों न हो तो चेक जिससे पाया गया है उससे उसे शुद्धता स्वत्व (better title) चेक पर नहीं प्राप्त होता।

### आयंत्रक रेखांकन (Restrictive Crossing)

आयंत्रक रेखांकन से साधारण या विशेष रेखांकन के साथ-साथ कुछ ऐसे भी शब्द जोड़ दिये जाते हैं जिनमें लेनदार (payee) के नाम का बोध होता है। जैसे 'A/c Payee' या 'A/c Payee only'—इस तरह के रेखांकन होने पर बैंक को सावधानी से चेक पर लिखे गये व्यक्ति के नाम के खाते में रकम चढ़ा देनी पड़ती है। इसके नमूने नीचे दिये जाते हैं—

1	2	3	4
A/c Payee	A/c Payee only	State Bank of India A/c Payee only	State Bank of India A/c Hari Narayan only Not Negotiable

चेक पर कौन रेखांकन कर सकता है ? (Who can cross a Cheque ?)

निम्नलिखित व्यक्ति चेक पर रेखांकन कर सकते हैं—

१. चेक लिखने वाला (drawer) साधारण या विशेष प्रकार का रेखांकन कर सकता है।

२. यदि चेक का रेखांकन न किया गया हो तो उसका धारक उस पर साधारण या विशेष प्रकार का रेखांकन कर सकता है। [धारा १२५]

३. यदि चेक पर साधारण रेखांकन हो चुका है तो धारक उस पर विशेष रेखांकन कर सकता है। [धारा १२५]

४. यदि चेक पर साधारण या विशेष रेखांकन हो चुका है तो धारक उस पर 'अविनिमय-साध्य' (Not Negotiable) लिख दे सकता है। [धारा १२५]

५. यदि चेक पर विशेष रेखांकन हो चुका है तो जिस बैंक पर रेखांकन किया गया है वही बैंक चेक पर फिर से विशेष रेखांकन अपने एजेंट बैंक के नाम में संग्रहण (collection) के लिए कर सकता है। [धारा १२५]

६. यदि अरेखांकन चेक, या ऐसा चेक जिस पर साधारण रेखांकन हो चुका हो, किसी बैंकर को दिया गया है तो वह उस पर अपने से विशेष रेखांकन कर सकता है।

### चेक पर मोहर या चिह्न लगाना (Marking of Cheques)

कभी-कभी यह देखा जाता है कि चेक पर देनदार बैंक (drawee bank) अपनी मोहर (seal) या चिह्न लगा देता है। मोहर या चिह्न लगाने का मतलब यह होता है कि बैंक उस चेक की वैधता (validity) प्रमाणित (certify) करता है, अर्थात् मोहर लगाने से यह समझा जाता है कि निर्माणकर्ता का पर्याप्त फण्ड बैंक में है और उसको भुगतान-धारक द्वारा एक निश्चित तारीख के अन्दर बैंक में भेजने पर मिल जायगा। इसका असर चेक पर इस अर्थ में पड़ता है कि उस चेक की साख तथा वेचान (credit and negotiability) बढ़ जाती है। किसी बैंक द्वारा चेक पर तीन हालतों में मोहर लगायी जाती है—

१. निर्माणकर्ता (drawer) के कहने पर,

२. धारक (holder) के कहने पर, या

३. संग्रहकारी बैंकर (collecting banker) के कहने पर।

१. जब बैंकर निर्माणकर्ता (drawer) के कहने पर बैंक की मोहर लगाता है तो मोहर लगाने के पहले यह देख लेता है कि उसका पूरा रुपया या फण्ड बैंक में जमा है या नहीं। यदि पूरा फण्ड है तो जितनी रकम के लिए उसने चेक पर मोहर लगायी है उतनी रकम धारक को चुकाने के लिए अलग रख लेता है। मोहर लगाने के पहले चेक पर 'good' अर्थात् 'शुद्ध' शब्द लिखता है, फिर मोहर लगाकर नीचे अपना दस्तखत करता है।

२. वह बैंकर जिस पर चेक लिखा गया है, धारक (holder) के आग्रह करने पर चेक पर अपने बैंक का स्टाम्प लगा देता है जब धारक निर्माणकर्ता से चेक ले लेने के बाद यह जानना चाहता है कि उस चेक के भुगतान करने के लिए बैंक में पूरा रुपया है या नहीं। अतः मोहर दे देने का मतलब यह होता है कि उस समय चेक के भुगतान के लिए निर्माणकर्ता के खाते में पर्याप्त रुपया है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं होता कि कहीं बीच में ग्राहक या निर्माणक रुपये को निकाल (withdraw) लेता है तब भी बैंक उस चेक के भुगतान के लिए दायी ही है। इस तरह के मोहर लगाने का रिवाज भारतवर्ष तथा अमेरिका में बहुत प्रचलित है। इंग्लैंड में इसका रिवाज बहुत कम है।

३. कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बैंकर चेक की रकम का संग्रहण करने के लिए बहुत देर से प्राप्त करता है तथा ऐसी हालत में चेक को देनदार बैंकर के यहाँ संग्रहकर्ता बैंकर (collecting banker) हाजिर करने में यदि एक दिन की भी देर करता है तो ज्यादा सम्भव है कि ग्राहक (customer) को नुकसान उठाना पड़े। अतएव, ग्राहक की भलाई करने के लिए यह जरूरी है कि बैंक वैसे चेक को संग्रहकर्ता (collecting banker) देनदार बैंकर (drawee banker) के



यहाँ शीघ्र मोहर लगाने के लिए भेज दे। यदि देनदार बैंकर के यहाँ उस चेक के भुगतान करने के लिए पूरा धन निमग्नकर्त्ता का जमा है तो देनदार बैंकर उस धनादेश पर 'Good' अर्थात् 'शुद्ध' शब्द लिखकर मोहर लगायेगा तथा दस्तखत कर दिनांक दे देगा। इसका असर यह होता है कि दूसरे निकासी के दिन (next clearing day) देनदार बैंकर संग्रहकर्त्ता बैंकर के हाथ चेक का भुगतान कर देता है।

### बैंकर का उत्तरदायित्व (Liability of Banker)

बैंक और उसके ग्राहक के बीच ऋणी तथा ऋणदाता का सम्बन्ध होता है। धारा ३१ में लिखा गया है कि अगर ग्राहक का पर्याप्त धन बैंक में जमा है और बैंकर उसके लिखे गये चेक के भुगतान करने में कोई त्रुटि करता है तो इससे ग्राहक की क्षति की पूर्ति बैंकर को करनी होगी।

**किन-किन परिस्थितियों में चेक के भुगतान का तिरस्कार करना आवश्यक है ? (When a Banker must refuse payment ?)**

निम्नलिखित हालतों में बैंक चेक का भुगतान करने से इनकार कर सकता है—

१. ग्राहक के मना करने पर—जब ग्राहक खुद चेक को अप्रतिष्ठित (dishonour) करने का आदेश बैंक को दे देता है तो बैंक को चाहिए कि अपने ग्राहक के आदेश को पूरी तरह से माने।

२. अदालत की निषेध-आज्ञा प्राप्त होने पर—जब किसी अदालत की ओर से कोई ऐसा आदेश (garnishee order) प्राप्त हो गया है। मान लीजिये कि X के ऊपर Y का रुपया चाहिए और Y को डिग्री मिल गयी है और साथ ही उसे यह मालूम है कि X का अमुक बैंक में हिसाब है तो वह उस बैंक के ऊपर सुपुर्दगी का एक अदालती हुक्म (garnishee order) निकलवा सकता है। इस हुक्म का अर्थ है कि बैंक X को उस समय तक रुपया न दे जिस समय तक अदालत उस रुपये के सम्बन्ध में कोई आदेश न दे दे।

३. ग्राहक के दिवालिया होने पर—जब बैंक को यह खबर मिल जाती है कि उसका ग्राहक दिवालिया घोषित कर दिया गया है तब उसके जितने भी चेक बैंक में आयेंगे उन पर 'Drawer declared bankrupt' लिखकर भुगतान करने से इनकार कर देगा।

४. ग्राहक की मृत्यु हो जाने पर—जब बैंक को ग्राहक के मरने की खबर प्राप्त होती है तो उसके बाद उस ग्राहक द्वारा लिखे गये चेकों पर 'Drawer deceased' लिखकर तिरस्कृत कर देगा।

५. ग्राहक के पागल हो जाने पर—जब बैंक को यह खबर मिलती है कि मेरा अमुक ग्राहक पागल हो गया है तो बैंकर (banker) को चाहिए कि उसके द्वारा लिखे गये चेकों का भुगतान करने से इनकार कर दे और तब तक भुगतान न करे जब तक ग्राहक का दिमाग ठीक न हो जाय या किसी कचहरी द्वारा भुगतान करने की आज्ञा न मिले।

६. धारक का स्वत्व (Title) दूषित होने पर—जब बैंकर को यह बात मालूम हो जाती है कि अमुक व्यक्ति किसी चेक का असली धारक (genuine holder) नहीं है तो उसे चाहिए कि उस चेक का भुगतान उस व्यक्ति को न करे।

७. ग्राहक द्वारा खाता बन्द कर देने पर—जब ग्राहक अपने बैंकर को इस बात की खबर कर देता है कि आज से वह बैंक से हिसाब-किताब नहीं रखेगा तो बैंक को चाहिए कि उसके द्वारा बनाये गये चेकों का भुगतान न करे।

किन-किन परिस्थितियों में बैंकर चेक का भुगतान करने से इनकार कर सकता है ? (When Banker may refuse payment ?)

निम्नलिखित स्थितियों में बैंक अपने ग्राहक द्वारा लिखे चेकों का तिरस्कार कर सकता है—

१. जब चेक पर आगे की तारीख पड़ी (post-dated) हुई है। बान यह है कि कोई बैंकर किसी चेक के भुगतान की रकम अपने ग्राहक के हिसाब में तभी डाल सकता है जब उसपर तारीख आ जाय। अब यदि इसी बीच ग्राहक दिवालिया घोषित कर दिया जाता है, अथवा पागल हो जाता है, अथवा मर जाता है, और बैंकर ने चेक का भुगतान कर दिया है तो वह भुगतान उसके हिसाब में नहीं डाल सकता। आगे की तारीख में चेक का भुगतान करने पर यदि ग्राहक के हिसाब में कम द्रव्य बचता है और उससे अधिक का कोई नियमित चेक भुगतान के लिए आ जाता है तो उसका भुगतान अवश्य करना पड़ता है। फिर ग्राहक किसी चेक पर जो तारीख पड़ी हुई है उससे पहले उसका भुगतान करने की मनाही कर देता है और बैंकर ने उसका भुगतान पहले ही कर दिया है तो भी वह कठिनाई में पड़ जायगा।

२. जब चेक छः माह या उससे अधिक पुराना है (stale cheque)।

३. जब चेक पर लिखी रकम जमा की गयी रकम से अधिक हो तो बैंक चेक पर 'यथेष्ट फंड नहीं' (insufficient funds) लिख कर चेक लौटा देगा।

४. जब चेक टाइप से लिखा गया हो तो बैंक उस पर भुगतान करने से इनकार कर सकता है।

५. जब चेक लिखने वाले व्यक्ति का दस्तखत बैंकर के पास रखे नमूने से नहीं मिलता।

६. जब चेक की बेचान या उसका पृष्ठांकन (negotiation or endorsement) अपूर्ण, अनियमित या अस्पष्ट हो तो बैंक उसका तिरस्कार कर सकता है।

७. जब चेक की रकम के विषय में कोई सन्देह हो जाता है। शब्द और अंकों की रकमें एक-सी होनी चाहिए। यदि बैंकर चाहे तो वह शब्द की रकम अथवा न्यूनतम रकम का भुगतान कर सकता है, किन्तु प्रायः वह ऐसा चेक वापस कर देता है। चेक पर यदि कोई संशोधन किया गया है तो उसके साथ-साथ ग्राहक का दस्तखत होना चाहिए।

८. जब बैंक में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का खाता हो और अगर चेक पर सभी संयुक्त निर्माताओं (joint drawers) का हस्ताक्षर न हो तो बैंक उसका भुगतान नहीं कर सकता।

९. जब चेक पर रेखांकन है और वह किसी बैंक के मार्फत नहीं आता है।

१०. चेक का भुगतान करने के लिए अगर एक निश्चित समय रहता है। यदि उस समय के भीतर प्रस्तुत न किया गया हो तो बैंक उसका तिरस्कार कर सकता है।

११. चेक जब फटा हुआ रहता है तब भी बैंक भुगतान करने से इनकार कर सकता है।

## पक्षों की क्षमता (Capacity of Parties)

धारा २६ के मुताबिक प्रत्येक व्यक्ति जिसे अपने देश के नियम के अनुसार प्रबन्ध करने की क्षमता प्राप्त हो, प्रणपत्र, विनिमय-बिल या चेक लिख कर पृष्ठांकन, सुपुर्दगी तथा हस्तान्तरण करके अपने को दायी बना सकता है, किन्तु नाबालिग, पागल, शराबी, उन्मत्त तथा ऐसे व्यक्ति जो किसी देश के कानून के अनुसार अनुबन्ध करने के लायक नहीं हों, बेचान-साध्य स्वके का पक्ष बनकर दायी नहीं हो सकते; लेकिन असमर्थ व्यक्ति को बेचान-साध्य स्वके का पक्ष बन जाने में अनुबन्ध करने के योग्य पक्षों का उत्तरदायित्व खत्म नहीं होता। इनका विशेष विवरण नीचे दिया जाता है।

### नाबालिग (Minor)

भारतीय प्रसंविदा-विधान के अध्ययन के समय हमनोग जान चुके हैं कि उसकी धारा ११ के अनुसार कोई भी नाबालिग साधारण तरीके से किसी तरह की भी प्रसंविदा करने के लायक नहीं होता। परन्तु बेचान-साध्य-स्वके की धारा २६ के अनुसार नाबालिग स्वके का आहरण (draw), पृष्ठांकन, स्वीकृति (negotiation), या हस्तान्तरण कर सकता है। किन्तु वह इसलिए व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा। उसके अलावा, और सभी पक्ष दायी होंगे। अतः ऐसे प्रणपत्र, विनिमय-बिल या चेक के धारक जिनका कोई पक्ष नाबालिग भी है, नाबालिग के अलावा अन्य पक्षों से भुगतान लेने के अधिकारी है। कानून की नजर में कोई नाबालिग बिल स्वीकार नहीं करा सकता और न वह प्रणपत्र ही लिख सकता है। साधारणतः एक नाबालिग बेचान-साध्य-स्वके का पक्ष बनकर अधिकार प्राप्त कर सकता है। अतः कोई नाबालिग विन, प्रणपत्र या चेक का धारक या लेनदार बन सकता है। साथ ही, किसी नाबालिग के हित के लिए उसके नाम में स्वके का निर्माण, पृष्ठांकन, स्वीकृति इत्यादि अन्य पक्षों द्वारा किये जा सकते हैं, किन्तु नाबालिग अपने को बाध्य बनाने के लिए प्रणपत्र, विनिमय-बिल या चेक का निर्माण, पृष्ठांकन इत्यादि नहीं कर सकता। अगर नाबालिग को अपने जीवन-निर्वाह के लिए या जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए अपने को बाध्य बनाने के ख्याल में स्वके का निर्माण या उसकी स्वीकृति करता है तो वह गैर-कानूनी समझा जायगा। लेकिन जीवन निर्वाह की आवश्यक चीजों को देनेवाला, नाबालिग की सम्पत्ति से चीजों का मूल्य वसूल कर सकता है।

### विकृत दिमाग के व्यक्ति (Persons of Unsound Mind)

पागल (lunatics), मूढ़ (idiot) तथा शराबी (drunken person) भी नाबालिग की तरह प्रसंविदा करने के अयोग्य हैं, क्योंकि इनमें अपने हित या अहित

का ठीक तरीके से निर्णय करने की योग्यता नहीं रहती। इसी तरह कोई रोगी तथा बहुत बूढ़ा आदमी जो बेहोशी के कारण तथा बुढ़ापे की वजह से अपने हित या अहित का विवेकपूर्ण निर्णय नहीं कर सकता हो, कानून की नजर में प्रसविदा करने के अयोग्य समझा जाता है। अतः ये लोग भी नाबालिग की तरह स्वयं दायी नहीं होते। पागल द्वारा यदि किसी रुक्के का निर्माण या स्वीकृति दिमाग ठीक रहने के समय हुई तो उसके लिए वह बाध्य हो सकता है, अन्यथा नहीं। इंग्लिश सन्नियम के अनुसार यदि दूसरे पक्ष को इस बात की सूचना या जानकारी नहीं है कि स्वीकर्ता का दिमाग ठीक नहीं है और यदि विध्वान-सहित प्रसविदा करता है, तो वैसे व्यक्तियों द्वारा भी रुक्के की स्वीकृति इत्यादि होने पर उसे बाध्य किया जाता है।

### विदेशी शत्रु (Alien Enemy)

किसी शत्रु का देश के साथ प्रसविदा करना, देश के नियम तथा सार्वजनिक नीति के खिलाफ होता है। इसलिए एक व्यक्ति दूसरे देश के व्यक्ति पर जिसके साथ देश की लड़ाई चल रही है, प्रणमत्र, विनिमय-विल या चेक का न निर्माण कर सकता है, न हस्तान्तरित और न उन्हें स्वीकार कर सकता है।

### दिवालिया (Insolvent)

कानून की नजर से दिवालिया किसी रुक्के की स्वीकृति या उसका पृष्ठांकन नहीं कर सकता। जब कोई दिवालिया किसी बिल का लेनदार हो और यदि वह इस बिल को यथाविधिधारी के नाम पृष्ठांकन करे तो दिवालिये के अलावा इस बिल के दूसरे पक्ष यथाविधिधारी के प्रति दायी होंगे। जब कोई व्यक्ति दिवालिया हो जाता है तो किसी यह official receiver को प्राप्त हो जाता है; अतः दिवालिया किसी बिल के भुगतान के लिए दूसरे पक्ष पर मुकदमा नहीं चला सकता।

### कम्पनी (Corporation)

धारा २६ के अनुसार कोई कम्पनी, प्रसविदा करने के लायक होने पर भी किसी रुक्के का निर्माण, पृष्ठांकन, स्वीकृति या हस्तान्तरण तब तक नहीं कर सकती जब तक कि सन्नियम द्वारा उसे ऐसा करने का अधिकार न दिया गया हो। अतः कोई कम्पनी, जब तक कि स्मारपत्र (memorandum of association) तथा कम्पनी के दूसरे कागजातों द्वारा अधिकृत न हो, किसी रुक्के का पक्ष नहीं बन सकती। किन्तु श्यामनारायण जूट फैक्टरी बनाम रामनारायण, १४ Cl 1 = 9 के मुकदमे के निर्णय के अनुसार स्मारपत्र द्वारा विशेष रूप से अधिकृत न होने पर भी कोई कम्पनी किसी रुक्के का पक्ष बन सकती है, यदि इस प्रकार के रुक्के का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उस व्यापार के उद्देश्य से हो जिसे करने के लिए कम्पनी स्थापित हुई है।

### एजेंट (Agent)

धारा २६ के अनुसार अगर किसी व्यक्ति को रुक्के का पक्ष बन कर अपने को बाध्य करने की योग्यता है तो वह किसी एजेंट को बहाल करके तथा उसको अधिकार देकर भी उसके द्वारा स्वीकृत या पृष्ठांकित रुक्के के लिए अपने को बाध्य

कर सकता है। साधारण व्यापार में अगर प्रधान ने अपने एजेंट को विनिमय-पत्र स्वीकार करने का अधिकार दिया है तो वह उसका पृष्ठांकन नहीं कर सकता। [धारा २७]

किसी खक्के की स्वीकृति के समय एजेंट को चाहिए कि वह साफ-साफ जाहिर कर दे कि एजेंट की तरह स्वीकार कर रहा है, अगर वह ऐसा नहीं करता है तो खुद ही खक्के के लिए दायी होगा। [धारा २८]

अतः कोई एजेंट निम्नलिखित दो हालतों में किसी खक्के का निर्माण या स्वीकृति करके अपने प्रधान को दायी ठहरा सकता है—

१. खक्के पर दस्तखत करते समय उसने यह साफ-साफ जाहिर कर दिया है कि वह अपने प्रधान के लिए स्वीकार कर सकता है।

२. जब दूसरा पक्ष इस बात को एजेंट से जाहिर कर देता है कि उसके द्वारा स्वीकृत खक्के का सिर्फ उसका प्रधान ही दायी होगा।

### वैध-प्रतिनिधि (Legal Representative)

किसी मृत व्यक्ति का उत्तराधिकारी जो किसी खक्के पर अपना हस्ताक्षर करता है, व्यक्तिगत रूप से दायी होगा जब तक कि वह स्पष्ट (लिखित) रूप से अपने दायित्व को इस प्रकार प्राप्त की गयी सम्पत्ति तक सीमित नहीं कर देता। [धारा २९]

### संयुक्त हिन्दू परिवार के कर्ता (Karta of Joint Hindu Family)

संयुक्त हिन्दू परिवार के कर्ता को बाहरी जगत से पारिवारिक व्यवहार में परिवार के सभी सदस्यों के लिए प्रतिनिधित्व का काम करना पड़ता है। इसलिए वह पारिवारिक व्यापार के लिए प्रणपत्र, या चेक को स्वीकार कर कर्ज ले सकता है और ऐसे कर्ज के भुगतान के लिए परिवार के सभी सदस्य दायी होंगे। यहाँ तक कि नाबालिग भी इसका दायी होगा, यद्यपि उसका दायित्व उसके हिस्से तक ही सीमित होगा।

---

## बेचान (Negotiation)

धारा १४ के अनुसार बेचान का मतलब किसी व्यक्ति के प्रति एक प्रणपत्र, विपत्र अथवा चेक के हस्तान्तरण से है जिससे कि वह उसका धारक हो जाय। इसके के धारक से मतलब ऐसे व्यक्ति से है जो उसको अपने पास अपने ही नाम में रखने और उससे सम्बद्ध पक्षकारों में से उस पर देय प्राप्त करने अथवा वसूल करने का अधिकारी हो। इस प्रकार आज्ञा पर देय एक रक्का यदि पृष्ठांकन के बिना ही हस्तान्तर-प्रापक को सौंप दिया जाय तो यह बेचान किया हुआ नहीं माना जायगा, चूंकि हस्तान्तर-प्रापक इसको प्राप्त करके धारक नहीं बन जाता, न किसी वाहक को देय इसके की केवल देखभाल के लिए की गयी सुपुर्दगी को बेचान कहा जा सकता है। दोनों हालतों में हस्तान्तर-प्रापक इसके को अपने-आप नाम में रखने तथा उससे सम्बद्ध पक्षकारों से उस पर देय धन प्राप्त करने अथवा वसूल करने का अधिकारी नहीं है।

रक्कों की बेचान की दो प्रधान विधियाँ हैं—

१. सुपुर्दगी द्वारा बेचान (Negotiation by delivery), और
२. पृष्ठांकन द्वारा बेचान (Negotiation by endorsement)।

१ सुपुर्दगी द्वारा बेचान (Negotiation by delivery)—वाहक को देय एक रक्का केवल उसकी सुपुर्दगी द्वारा ही बेचान है (धारा ४७)। सुपुर्दगी वास्तविक अथवा रचनात्मक हो सकती है (धारा ४६)। किन्तु रक्का, जो इस शर्त पर सुपुर्द किया गया हो कि यह एक निश्चित घटना के घटने पर ही प्रभावशील हो सकेगा, तब तक बेचान किया हुआ नहीं माना जायगा, जब तक कि वह घटित न हो।

उदाहरण—(i) वाहक को देय एक बेचान रक्के का धारी X इसको Y के एजेंट को Y के लिए रखने के हेतु दे देता है तो रक्का बेचान किया हुआ माना जायगा।

(ii) वाहक को देय एक बेचान रक्के का धारी X, जो कि किसी बैंक के पास है और जो कि Y का भी बैंक है, बैंक को उक्त रक्का अपने यहाँ Y के खाते में जमा करने का हुक्म दे देता है। बैंक ऐसा ही करता है और तदनुसार अब रक्के को Y के एजेंट के रूप में अपने पास रखता है। रक्के की बेचान हो चुकी है और X इसका धारक बन चुका है।

२. पृष्ठांकन द्वारा बेचान (Negotiation by Endorsement) - कन्वर्ण या दोषपूर्ण रक्कों के अलावा और किसी रक्के के, जबकि किसी आदेशित व्यक्ति को देय है, धारक द्वारा पृष्ठांकन तथा सुपुर्दगी करके बेचान होती है। धारा ४८ के अनुसार जब रक्के की रकम किसी विशप व्यक्ति को देय है तो उसे आदेशित रक्का कहते हैं। ऐसा रक्का सिर्फ पृष्ठांकन द्वारा ही हस्तान्तरित किया जाता है।

बेचान एवं अभिहस्तान्कन में अन्तर (Difference between negotiation and assignment)

१. अधिकार (Rights)—विनिमय-साध्य रक्के का हस्तान्तरण करने वाला

व्यक्ति दूसरे पक्ष के खिलाफ अपने नाम से मुकदमा चला सकता है, लेकिन अभिहस्तांकित ऐसा नहीं कर सकता। वह हस्ताक्षरकर्ता की ओर से ही मुकदमा चला सकता है।

२. औपचारिकताएँ (Formalities)—बेचान एवं अभिहस्तांकन, दोनों में यद्यपि विनिमय-साध्य संलेख में निहित अधिकारों का हस्तांतरण होता है, फिर भी बेचान में अभिहस्तांकन की अपेक्षा बहुत कम औपचारिकताओं की आवश्यकता होती है। बेचान में विनिमय-साध्य संलेख की सुपुर्दगी या सुपुर्दगी एवं पृष्ठांकन दोनों तरह से किया जा सकता है, लेकिन अभिहस्तांकन में हस्ताक्षरकर्ता के हस्ताक्षर-सहित लिखे गये संलेख द्वारा किया जा सकता है।

३. स्वत्वाधिकार (Title)—बेचान में हस्तांतरी के यथाविधिधारक होने पर हस्तांतरकर्ता से भी अच्छे अधिकार प्राप्त होते हैं लेकिन विनिमय-साध्य संलेख के अभिहस्तांकन में अभिहस्तांकित को अभिहस्तांकनकर्ता के अच्छे अधिकार कभी नहीं मिल सकते हैं। उसको सिर्फ वही स्वत्व प्राप्त होता है जो कि अभिहस्तांकनकर्ता को प्राप्त था, चाहे वह श्रेष्ठ रहा हो या न रहा हो। इस तरह, अभिहस्तांकित को यथाविधिधारक के अधिकार कभी भी प्राप्त नहीं होते हैं।

४. हस्तांतरण की सूचना (Notice of transfer)—बेचान में हस्तांतरी द्वारा देनदार को हस्तांतरण की सूचना देना आवश्यक नहीं होता है, लेकिन अभिहस्तांकन की क्रिया को पूर्ण एवं प्रभावशाली बनाने के लिए हस्तांतरण की सूचना देना वैधानिक तरीके से अनिवार्य होता है।

५. प्रतिफल (Consideration)—विनिमय-साध्य संलेख के समझौते में प्रतिफल विद्यमान माना जाता है जब कि अभिहस्तांकन में ऐसा नहीं माना जाता है। अभिहस्तांकन की वैधता के लिए हस्तांतरी को प्रतिफल प्रमाणित करना होता है।

### पृष्ठांकन (Endorsement)

परिभाषा—बेचान-साध्य स्क्रॉके के सन्निधय की १५वीं धारा में यह दिया हुआ है कि “जब किसी विनिमय-साध्य पुर्जे का लिखने वाला धनी अथवा अधिकारी, उसे लिखने के लक्ष्य से नहीं, वरन् हस्तान्तरित करने के लक्ष्य से उसपर अथवा उसकी पीठ पर अथवा उसके साथ लगे पर्चे पर अथवा किसी भी स्टाम्प लगे हुए पुर्जे पर जिसे बाद में वह किसी विनिमय-साध्य पुर्जे के रूप में परिवर्तित कर लेना चाहता है, अपना हस्ताक्षर करता है तो वह उसकी बेचान करता है और उसे उसका बेचानकर्ता कहा जाता है।” \* यहाँ पर ‘हस्तान्तरित करने के लक्ष्य से’ बहुत ही महत्वपूर्ण है और इसके अन्तर्गत उस पुर्जे का हस्तान्तरकर्ता के द्वारा हस्तान्तरित को दे देना भी उपलक्षित है। विनिमय बिलों के अंगरेजी विधान में तो यह बात

\* Sec. 15 of the Indian Negotiable Instrument Act defines endorsement as follows—

“When the maker or holder of a negotiable instrument signs the same otherwise than as such maker for the purpose of negotiation on the back or face thereof or on a slip of paper annexed thereto or so signs for the same purpose a stamped paper intended to be completed as a negotiable instrument he is said to endorse it and is called the endorser.”

बहुन ही स्पष्ट रूप से दी हुई है कि बेचान के अर्थ हैं—‘सौंप करके बेचान पूरा करना’ (An endorsement means an endorsement completed by delivery)। आंशिक रकम की बेचान वैधानिक नहीं मानी जाती। यह समूची रकम के लिए होनी चाहिए। यदि बेचान अलग पुर्जे पर की गयी है और यह प्रायः वास्तविक पुर्जे की पीठ पर आगे बेचान करने के लिए स्थान नहीं रह जाता है, तो जो अलग से पुर्जे लगाये जाते हैं उन्हें अलाज (allonge) कहा जाता है। यह वास्तविक पुर्जे के साथ जोड़ दिया जाता है। प्रायः अलाज पर की पहली बेचान इस तरह से की जाती है कि उसका वास्तविक पुर्जे पर और आधा अलाज पर होता है।

### पृष्ठांकन के भेद (Kinds of endorsements)

पृष्ठांकन के निम्नलिखित भेद हैं—

१. रिक्त या व्यापक पृष्ठांकन (Blank endorsement)—जब पृष्ठांकनकर्ता रुक्के पर केवल अपना दस्तखत कर देता है तब इसे ‘रिक्त पृष्ठांकन’ कहते हैं।

२. विशेष या पूर्ण पृष्ठांकन (Special endorsement)—इसे शर्त-सहित और पूर्ण पृष्ठांकन भी कहते हैं। इसमें रुक्के पर हस्तान्तरकृत का नाम भी लिख दिया जाता है; जैसे—‘Pay to Sri Narain & order’ अर्थात् “श्री नारायण या उसके आदेशित व्यक्ति को भुगतान करो।”

३. आंशिक (Partial) पृष्ठांकन—इसमें चेक के कुछ ही अंश का पृष्ठांकन किया जाता है, किन्तु यह वैधानिक नहीं है। इसकी वजह यह है कि उसके पूर्व वाले पक्षों को असुविधा होती है तथा स्वतन्त्र संचालन (free circulation) रुक जाता है।

४. आयन्त्रणपूर्ण (Restrictive) पृष्ठांकन—(i) जिसमें विनिमय-साध्यता बाँध दी जाती है, किन्तु उसे हस्तान्तरित किया जा सकता है; उदाहरणार्थ, केवल श्याम को दीजिये (Pay to Shyam only)।

(ii) जिसमें हस्तान्तरकृत के ऊपर की रकम उसमें दिये हुए कामों में ही प्रयोग में लाने के लिए आयन्त्रण लगा दिया जाय, उदाहरणार्थ, “श्याम को मेरे काम के लिए दीजिये” (Pay to Shyam for my use)। इसमें बैंकर को यह देखना कोई जहरी नहीं होता कि वह रकम उसके काम में लायी जा रही है या नहीं।

५. कूट या जाली (Forge) पृष्ठांकन—जब कोई व्यक्ति किसी रुक्के को कपट या छलपूर्ण कार्यों द्वारा प्राप्त करता है तो उसे कूट पृष्ठांकन कहते हैं। इस तरह का पृष्ठांकन होने पर धारक उस पर श्रेष्ठ स्वत्व नहीं पाता, चाहे उसे वह प्रतिफल के बदले में विश्वास के साथ ही क्यों न लिया या पाया हो।

६. संप्रतिबन्ध (Conditional) पृष्ठांकन—ऐसा करते समय साफ-साफ शर्तों में कोई शर्त लिख दी जाती है जिसके पूरी होने पर ही उसके भुगतान के लिए वह व्यक्तिगत रूप से दायी होगा; उदाहरण—‘श्री नारायण को विमला के साथ विवाह करने पर भुगतान किया जायगा’। किन्तु इस शर्त को अगर चाहे तो वह भंग कर सकता है।

७. बिना दायित्व का (Sans recourse) पृष्ठांकन—यह वैसा पृष्ठांकन है जिसमें पृष्ठांकक यह स्पष्ट कर देता है कि पृष्ठांकित या बाद वाला कोई भी व्यक्ति रुक्के के अप्रतिष्ठित होने की स्थिति में उससे भुगतान पाने की आशा न रखे। जब कोई पृष्ठांकक इस प्रकार अपने दायित्व से अलग हो जाता है और बाद में रुक्के का धारक बन जाता है तो मध्यस्थ सभी पृष्ठांकक उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं [धारा ५०];



उदाहरण—‘बिना दायित्व के श्री नारायण’ (Sans recourse Sri Narain)।

८. ऐच्छिक (Facultative) पृष्ठांकन—जब किसी साखपत्र का ऊपर वाला धनी उसे तिरस्कृत कर देता है तब उसके अधिकारी (holder) का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह लिखने वाले धनी को और उन सब धनियों को जो उसके ऊपर दायी होते हैं उसकी सूचना दे दे। किन्तु ऐच्छिक पृष्ठांकन में बेचानकर्त्ता अपना यह सूचना पाने का अधिकार छोड़ देता है और वैसे ही उसका दायित्व स्वीकार कर लेता है। ऐसी अवस्था में हस्ताक्षरों के पहले कोई ऐसी बात लिख दी जाती है, जैसे—“तिरस्कृत होने की सूचना पाने का अधिकार छोड़ दिया” (The right of receiving notice of dishonour waived)।

९. व्यय-रहित (Sans frais) पृष्ठांकन—जब पृष्ठांकनकर्त्ता स्वके पर लिखकर यह साफ विदित कर देता है कि पृष्ठांकक (indorsee) या और दूसरा धारक उस स्वके पर किसी प्रकार व्यय पृष्ठांकनकर्त्ता के नाम नहीं करेगा। जैसे “Pay Mohan or order, Sans Frais.”।

पृष्ठांकन का प्रभाव (Effect of endorsement)

धारा ५० के अनुसार पृष्ठांकक से धारक को अपने पास रक्का रखने का अधिकार मिल जाता है कि वह उम स्वके की रकम का भुगतान स्वीकारक या निर्माणकर्त्ता से देय तिथि को करा सकता है। उसे दूसरे व्यक्तियों के नाम हस्तान्तरित करने का अधिकार है। लेकिन जब धारक बिना पृष्ठांकनकर्त्ता की सम्मति के किसी पूर्व पक्ष के अधिकार का खंडन कर देता है या उसमें बाधा डाल देता है तो इसका उत्तरदायित्व खत्म हो जाता है। [धारा ४०]

---

## स्वीकृति (Acceptance)

इंगलिश सन्नियम के अनुसार “लेखक (drawer) की आज्ञा पर देनदार (drawee) द्वारा अपनी सम्पत्ति सूचित करने को स्वीकृति कहते हैं।” यदि देनदार स्वके को स्वीकार करना चाहे तो उसे स्वके के ऊपर अपना दस्तखत करके तथा स्वके की सुपुर्दगी धारक को देकर अथवा इस प्रकार दस्तखत करने की सूचना धारक या उसके किसी आदमी को देकर स्वीकृति करनी पड़ेगी। देनदार को बिल स्वीकार करने के लिए ४८ घण्टे का समय दिया जाता है। प्रायः लाल स्याही से स्वीकृति लिखी जाती है। जब तक बिल की स्वीकृति नहीं हो जाती तब तक बिल को ड्राफ्ट (draft) कहते हैं।

स्वीकृति कौन दे सकता है (Who may accept)

निम्नलिखित व्यक्ति किसी बिल पर स्वीकृति दे सकते हैं—

१. देनदार (drawee) या जब एक से अधिक देनदार हों तो सभी अथवा कई देनदारों में से कुछ देनदार जिस पर बिल लिखा गया है।

२. धारा ३३ के मुताबिक प्रतिष्ठा हेतु स्वीकर्ता (an acceptor for honour)।

३. धारा ३३ के मुताबिक आवश्यकता की दशा में देनदार (a drawee in case of need)।

४. ऊपर लिखे गये व्यक्तियों के अधिकृत (authorised) एजेंट।

५. नियमानुसार मृत व्यक्ति का प्रतिनिधि।

६. दिवालिये व्यक्ति का सरकारी रिसीवर (official receiver)।

स्वीकृति के प्रकार (Kinds of Acceptance)

बिल की स्वीकृति दो प्रकार की होती है—

(i) साधारण स्वीकृति (General acceptance), और

(ii) शर्तयुक्त स्वीकृति (Qualified acceptance)।

(i) साधारण स्वीकृति— प्रायः देनदार ‘स्वीकृत’ (accepted) शब्द लिखकर अपना दस्तखत कर देता है। इस तरह की स्वीकृति को साधारण स्वीकृति कहते हैं।

(ii) शर्तयुक्त स्वीकृति—जब देनदार बिल की स्वीकृति करते समय उसमें कुछ शर्तें लगा देता है तो ऐसी स्वीकृति को शर्तयुक्त स्वीकृति कहते हैं। शर्तयुक्त स्वीकृति (qualified acceptance) निम्नांकित प्रकार की होती है—

(क) समय-सीमित स्वीकृति (Qualified as to time)—अगर किसी बिल का भुगतान दो महीने के बाद करने के लिए हो, लेकिन बिल की स्वीकृति करने

का समय 'चार महीने बाद' (Accepted payable after four months) के लिए लिख दिया जाय। बिल की अवधि चाहे जो भी हो, बिल का भुगतान चार महीने बाद होगा।

(ख) स्थान की शर्त (Qualified as to place)—'स्वीकृति; बिहार बैंक पटना से भुगतान होगा' (Payable; accepted at the Bihar Bank Ltd. Patna)। इसका अर्थ यह है कि देनदार बिल का भुगतान सिर्फ बिहार बैंक, पटना में करेगा।

(ग) रकम की शर्त—आंशिक या अधूरी रकम की स्वीकृति (Qualified as to amount); जैसे—'स्वीकृति सिर्फ चार सौ रुपया देने के लिए' (Accepted for rupees four hundred only) का अर्थ है कि देनदार सिर्फ चार सौ रुपया ही देगा, चाहे बिल में कितनी ही रकम क्यों न लिखी गयी हो।

(घ) शर्त वाली स्वीकृति (Conditional Acceptance)—'स्वीकृति; माल के मिल जाने पर रकम का भुगतान' (Accepted; payable on the sale of goods)।

(ङ) किस्तों का प्रतिबन्ध (Qualified as to instalments)—'स्वीकृति किस्तों द्वारा'; अगर ५०० रु० के बिल को स्वीकर्ता इस शर्त के साथ स्वीकार करे कि वह ५० रु० प्रतिमाह की दर से भुगतान करेगा तो इसे किस्तों का प्रतिबन्ध कहते हैं।

### प्रस्तुति (Presentment)

किसी बेचान-साध्य रुक्के की प्रस्तुति का अर्थ होता है देनदार को प्रदर्शित करना, जिससे कि वह उसको देख सके तथा यह निर्णय कर सके कि वह उसको स्वीकार करेगा या नहीं, भुगतान करेगा या नहीं।

प्रस्तुति दो तरह की होती है—

१. स्वीकृति के लिए प्रस्तुति (Presentment for acceptance), और

२. भुगतान के लिए प्रस्तुति (Presentment for payment)।

१. स्वीकृति के लिए प्रस्तुति (Presentment for acceptance)—स्वीकृति के लिए सिर्फ विनिमय-बिल ही पेश किया जाता है। बिल जो माँग पर या निश्चित दिन के बाद देय हो, वह अगर प्रस्तुत नहीं भी किया जाय तो कुछ हर्ज नहीं होता। लेकिन दर्शनी बिल (sight bill) को स्वीकार करना अनिवार्य-सा होता है, क्योंकि स्वीकार कर लेने से भुगतान के लिए दातव्य तिथि निर्धारित हो जाती है। स्वीकार करा लेना आवश्यक इसलिए हो जाता है कि स्वीकार करा लेने से देनदार की साख प्राप्त हो जाती है तथा स्वीकर्ता बिल के ऊपर प्रतिभू के रूप में दायी हो जाता है।

यदि किसी बिल में कोई समय या स्थान निर्धारित नहीं किया गया है तो देनदार के सामने स्वीकृति के लिए पेश करना चाहिए यदि वह उसके निर्मायक अथवा धारक द्वारा इसके आह्वित होने के बाद उचित समय के भीतर तथा किसी व्यापार के दिन तथा वह कारोबार के घंटों में उचित तलाश के बाद मिल जाता है। ऐसी प्रस्तुति करने में त्रुटि करने पर, ऐसी त्रुटि करनेवाले व्यक्ति के प्रति उससे सम्बद्ध पक्षकार दायी नहीं होगा। यदि देनदार बहुत तलाश करने पर भी नहीं मिलता है तो रुक्का अप्रतिष्ठित (dishonour) समझा जाता है।

ऐसे नियम-पत्र जिनको स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं (Bills which need not be presented for acceptance).

ऐसे बिल जिनका भुगतान माँग करने पर तुरत होनेवाला है अथवा जिनका भुगतान एक निश्चित अवधि के बाद देय हो अथवा जो एक नियत तिथि पर देय हो, स्वीकृति के लिए पेश करने की जरूरत नहीं होती। बिल की निम्नलिखित स्थितियों में भी स्वीकृति के लिए पेश करने की आवश्यकता नहीं होती जब कि—

- (i) देनदार एक कल्पित व्यक्ति हो, अथवा
- (ii) देनदार बहुत तलाश करने बाद भी नहीं मिल सकता हो, अथवा
- (iii) देनदार प्रसंविदा करने के अयोग्य हो, अथवा
- (iv) देनदार दिवालिया हो गया हो या मर गया हो।

२. भुगतान के लिए प्रस्तुति (Presentment for payment)—समस्त प्रणपत्र या विनिमय-पत्र तथा चेक भुगतान के लिए धारक द्वारा अथवा उसकी ओर से क्रमशः उनके लेखक, स्वीकर्ता अथवा देनदार के सामने पेश किया जाना चाहिए। ऐसी प्रस्तुति में त्रुटि करने पर रक्के के अन्य पक्षकार ऐसे धारक के प्रति दायी ही रहते हैं। [धारा ६४]

एक प्रणपत्र अथवा विनिमय-पत्र जो तिथि या दर्शन के एक निश्चित समय के बाद देय हो परिपक्व (maturity) होने पर भुगतान के लिए पेश किया जाना चाहिए। प्रस्तुति व्यापार के दिन या व्यापार के साधारण घंटों में करनी चाहिए। [धारा ६५ तथा ६६]

जब कोई रक्का एक निश्चित स्थान पर ही देय हो तथा अन्य स्थान पर नहीं, तो इससे सम्बद्ध किसी पक्ष को दायी ठहराने के लिए इससे उसी स्थान पर भुगतान के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। [धारा ६८]

निर्मायक तथा बैंक के सम्बन्ध में निर्मायक के हितों के खिलाफ परिवर्तन होने के पूर्व ही धारक को चेक उस बैंक के सामने जिस पर कि वह लिखा गया है, प्रस्तुत करना चाहिए। [धारा ७२]

जब कोई प्रणपत्र माँग पर देय हो तथा किसी निश्चित तारीख पर देय न हो तो उसके लेखक को दायी बनाने के लिए उसको भुगतान के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती। [धारा ६४]

किन-किन परिस्थितियों में प्रस्तुति अनावश्यक होती है ? (When Presentment is unnecessary ?)

— धारा ७६ के अनुसार निम्नलिखित दशाओं में भुगतान के लिए रक्कों का प्रस्तुत करना अनावश्यक समझा जाता है तथा प्रस्तुति की तिथि पर रक्कों को माना जाता है—

१. यदि निर्माता, देनदार तथा स्वीकर्ता स्वेच्छापूर्वक रक्के की प्रस्तुति को रोकने के लिए कोई कार्य करता है।

२. यदि रक्का लेखक, स्वीकर्ता अथवा देनदार के व्यापार के स्थान पर देय है और ऐसे स्थान को जान-बूझ कर बन्द कर देता है।

३. यदि रक्का किसी विशेष या निश्चित जगह पर देय है और लेखक, स्वीकर्ता या देनदार या उसका एजेण्ट उक्त जगह उपस्थित नहीं है।

४. यदि रक्का किसी निश्चित स्थान पर देय न हो तथा निर्माता, देनदार या

स्वीकर्त्ता यथोचित खोज के बाद भी न मिले।

५. यदि प्रस्तुति माँगने का अधिकारी पक्ष अपने अधिकार का परित्याग कर देता है।

६. यदि लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा देनदार यह जानते हुए कि रक्का देय तिथि पर भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया आंशिक भुगतान करता है अथवा पूर्ण या आंशिक रूप से भुगतान करने का वचन दे देता है अथवा किसी अन्य रीति से प्रस्तुति माँगने के अपने अधिकार का परित्याग देता है।

७. यदि अप्रस्तुति के फलस्वरूप निर्मायक को किसी प्रकार की क्षति होती हो।

८. यदि बिल की अस्वीकृति द्वारा अप्रतिष्ठा की गयी हो।

९. यदि प्रणपत्र माँग पर देय हो, परन्तु किसी निर्दिष्ट तिथि पर अदेय हो।

१०. जब देनदार कोई कल्पित व्यक्ति हो अथवा संविदा करने में असमर्थ हो।

११. जब देनदार और लेनदार एक ही व्यक्ति हो।

१२. जब युद्ध छिड़ने के कारण या किसी और वजह से प्रस्तुति असम्भव हो जाय।

### उत्तरदायित्व से मुक्ति (Discharge from Liability)

धारा ७८ के अनुसार उत्तरदायित्व से मुक्ति या तो रक्के की मुक्ति अथवा रक्के से एक या अधिक पक्षकारों की मुक्ति हो सकती है। रक्का उप्त समय मुक्त हुआ समझा जाता है जब उससे सम्बद्ध सब अधिकार समाप्त हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि यदि वह बाद में किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में पहुँच जाता है जो इसे सद्भावना से तथा मूल्य देकर प्राप्त करता है तो वह भी इसके अन्तर्गत कोई अधिकार प्राप्त नहीं करता।

किमी रक्के पर या अधिक पक्षों का दायित्व से मुक्त होना दूसरों के दायित्व को प्रभावित नहीं करता। उदाहरणार्थ—दातव्य तिथि (maturity date) पर किसी बिल की अप्रस्तुति स्वीकर्त्ता के अलावा सभी पक्षकारों को दायित्व से मुक्त कर देती है।

किसी रक्के का लेखक, स्वीकारक तथा पृष्ठांकक निम्नलिखित रूपों में दायित्व से अलग होते हैं—

१. **भुगतान द्वारा (By payment)**—धारा ८१ के अनुसार जब किसी रक्के का लेखक, स्वीकारक अथवा देनदार उसके धारक को भुगतान कर देता है, तब सब पक्ष दायित्व से अलग हो जाते हैं। 'वाहक को देय' रक्का होने की दशा में 'उत्तरे रखनेवाले की (जो धारक न भी हो) साधारण प्रगति में भुगतान करने से मुक्त हो जाता है। [धारा ८२ (c)]

२. **विलोपन द्वारा (By cancellation)**—धारा ८२ (a) के अनुसार जब धारक, स्वीकर्त्ता अथवा किसी पृष्ठांकक का नाम उसको मुक्त करने के उद्देश्य से काट देता है तो ऐसा पक्षकार धारक तथा ऐसे धारक के अधीन अधिकार पानेवाले सब पक्षकार के प्रति दायित्व से मुक्त हो जाता है। एक मुकदमे (Cox and Co. vs. Pestonjidi and Co. 50 Bom 656) में न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि यदि पक्ष का नाम अनिच्छापूर्वक या गलती से कट जाय तो उक्त पक्ष को उत्तरदायित्व से मुक्ति नहीं दिला सकता। इसी तरह सभी पक्षों की राय से अवधि

को बढ़ाना विलोपन (cancellation) नहीं समझा जाता ।

३. मुक्ति द्वारा (By release)—जब धारक विलोपन के अलावा अन्य रीति से लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा पृष्ठांकक को छुटकारा दे देता है, तब इस प्रकार मुक्त पक्ष धारक तथा उसके अधीन ऐसे छुटकारे की सूचना के अधिकार पानेवाले पक्षकारों के प्रति दायित्व से मुक्त हो जाता है । [धारा ८२ (सी)]

४. वैधानिक गति द्वारा (By operation of law)—ऋणी के दिवालिया हो जाने पर उपचार (remedy) प्रवर्त्तन करने की निश्चित अवधि के बीत जाने पर या डिग्री के बाद रुक्के का संविलयन (merger) हो जाने पर दायित्व से मुक्ति मिल सकती है । इसे वैधानिक गति द्वारा मुक्ति कहते हैं ।

५. देनदार (Drawee) को ४८ घंटे से ज्यादा समय दे देने पर—धारा ८३ के मुताबिक यदि किसी बिल का धारक देनदार (drawee) को बिल की स्वीकृति के लिए ४८ घण्टे से अधिक समय (सार्वजनिक छुट्टियों के अलावा) दे देता है तो सभी पूर्व (prior) पक्ष जो ऐसी छूट से सहमत नहीं होते, ऐसे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं ।\*

६. यदि धारक किसी विनिमय-पत्र को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत नहीं करता (जब कि ऐसी प्रस्तुति नियमानुसार आवश्यक है) तो उससे सम्बद्ध कोई भी पक्ष ऐसे धारक के प्रति दायी नहीं होता है । [धारा ६१]

७. यदि धारक बेचान-साध्य रुक्के को भुगतान के वास्ते पेश नहीं करता और ऐसी प्रस्तुति नियमानुसार माफ नहीं है, तो रुक्के के दूसरे पक्षकार उसपर ऐसा धारक के प्रति दायी नहीं होते । [धारा ६४]

८. यदि चेक के धारक, बैंक और निर्माणक के बीच के सम्बन्धों में निर्माणक के खिलाफ हित-परिवर्तन होने के पूर्व चेक को भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं करता और निर्माणक को उक्त अवलम्बन से कोई क्षति पहुँचती है तो निर्माणक ऐसे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है । [धारा ८६]

९. यदि किसी विपत्र का धारक मर्यादित स्वीकृति पर राजी हो जाता है तो समस्त पूर्व पक्षकार जो ऐसी स्वीकृति के लिए अपनी अनुमति न दें, ऐसे धारक तथा उसके अधीन अधिकार पाने वालों के खिलाफ अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं । [धारा ८६]

१०. अप्रतिष्ठा की सूचना न देने पर यदि रुक्के का धारी इसके अप्रतिष्ठित होने की खबर समस्त पूर्व पक्षकारों को नहीं देता, तो वे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं । [धारा ९३]

११. विपत्र स्वीकर्त्ता के हाथ में आने से (By bill being in acceptor's hands)—जब एक विपत्र परिपक्वता पर अथवा इसके पश्चात् धारक के पास उसके अधिकार में हो, तो उस पर के सभी कार्यवाही के अधिकार नष्ट हो जाते हैं । [धारा ९०]

१२. मूलभूत परिवर्तन द्वारा (By material alteration)—किसी भी बेचान-साध्य रुक्के में मूलभूत परिवर्तन से मतलब ऐसे परिवर्तन से है जिसमें एक रुक्के का परिवर्तन दो तरह से होता है—

१. साधारण परिवर्तन द्वारा, और

२. विशेष परिवर्तन द्वारा ।

\* By allowing drawee more than 48 hours.

निम्नलिखित साधारण परिवर्तन हैं—

- (i) अर्धलिखित पुर्जा (Inchoate Stamped Instrument) पूरा कर देना;
- (ii) जब कोई साधारण बेचान उसके ऊपर किसी का नाम लिखकर विशेष बेचान में परिवर्तित कर दी जाती है; और
- (iii) जब खुले हुए चेक पर साधारण अथवा विशेष रेखांकन कर दिया जाता है।

निम्नलिखित विशेष परिवर्तन हैं—

- (i) किसी पुर्जे या स्क्वे के अवधि बदलने के ह्याल से उसकी तारीख बदलना;
- (ii) उसका धन बदलना;
- (iii) उसकी अवधि बदलना;
- (iv) उस पर दायी धनी बदलना;
- (v) व्याज अथवा विनिमय-दर बदलना; और
- (vi) भुगतान का स्थान बदलना।

किन्तु धारा २०, ४९ तथा १२५ के अनुसार निम्नलिखित परिवर्तन महत्वपूर्ण या मूलभूत परिवर्तन नहीं समझे जाते—

- (i) स्क्वे के पूर्ण होने अथवा सुपुर्दगी के पहले किया हुआ परिवर्तन;
  - (ii) किसी महत्वपूर्ण गलती को सुधारने के लिए किया हुआ परिवर्तन;
  - (iii) पार्टियों की राय से किया गया परिवर्तन;
  - (iv) यथाविधिधारी द्वारा अपूर्ण विल्लेख को पूर्ण करना;
  - (v) रिक्त पृष्ठों को विशेष या पूर्ण (special or full) पृष्ठों में परिवर्तित करना; और
  - (vi) चेक को रेखित तथा पुनर्रेखित (re-crossing) करना।
-

## अप्रतिष्ठा (Dishonour)

कोई बिल दो तरह से अप्रतिष्ठित होता है—

१. अस्वीकृति द्वारा (By non-acceptance) और

२. भुगतान न होने पर (By non-payment) ।

विनिमय-पत्र निम्नलिखित अवस्थाओं में अस्वीकृति द्वारा अप्रतिष्ठित समझा जाता है—

(i) जब धारक द्वारा स्वीकृति के लिए देनदार (drawee) के पास रुक्का दिया गया और देनदार ने २४ घंटे के अन्दर उस पर अपनी स्वीकृति न दी हो ।

(ii) जब स्वीकृति के लिए बिल को प्रस्तुत करना आवश्यक हो और देनदार ने उसे स्वीकार न किया हो ।

(iii) जब देनदार कोई काल्पनिक व्यक्ति हो ।

(iv) जब देनदार प्रसंविदा करने के योग्य न हो ।

(v) जब बहुत खोज-खबर लेने पर भी देनदार का पता न लगे ।

(vi) जब देनदार संप्रतिबन्ध स्वीकृति दे ।

(vii) जब दो या दो से अधिक देनदार हों और सबों ने स्वीकृति न दी हो ।  
अपवाद—सिर्फ साझेदारी होती है ।

निम्नलिखित हालतों में भुगतान न होने पर बिल अप्रतिष्ठित समझा जाता है—

(i) जब भुगतान के लिए बिल को देनदार के सामने पेश करना आवश्यक हो और देनदार ने परिणाम पर भुगतान न किया हो । [धारा ७६]

(ii) जब प्रणपत्र की निर्माणक विनिमय-पत्र का स्वीकर्ता या चेक का देनदार भुगतान करने के लिए माँग करने पर उपेक्षा करते हैं तो यह रुक्का क्रमशः अप्रतिष्ठित समझा जाता है । [धारा ९२]

### अप्रतिष्ठा की सूचना (Notice of Dishonour)

जब कोई रुक्का अस्वीकृति द्वारा अथवा भुगतान न करके अप्रतिष्ठित कर दिया जाता है, तब धारक अथवा उसपर दायी अन्य व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह उन समस्त पक्षकारों को जिन्हें वह उत्तरदायी ठहराना चाहता है, अप्रतिष्ठा की सूचना दे दे । [धारा ९३]

सूचना पाने के बाद पूर्व पक्षकारों के खिलाफ अपने अधिकार को बनाये रखने के लिए प्रत्येक पक्ष को, सूचना प्राप्त करने के बाद उचित समय के भीतर उन्हें सूचित करना चाहिए । [धारा ९५]

अप्रतिष्ठा की सूचना उस व्यक्ति को जिसको यह दिया जाना चाहिए, या उसके



अधिकृत एजेंट को भी दी जा सकती है, यदि वह मर गया हो तो उसके उत्तराधिकारी को, अथवा यदि वह दिवालिया घोषित कर दिया गया हो तो उसकी जायदाद के प्रापक को देनी चाहिए। यह सूचना मौखिक अथवा लिखित हो सकती है। अप्रतिष्ठा की सूचना के लिए किसी विशेष रूप के होने की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु इसके द्वारा उसे पक्षकार को जिसे यह दी जा रही है, यह सूचित कर देना चाहिए कि स्वका अप्रतिष्ठित हो चुका है तथा किम प्रकार (अस्वीकृति द्वारा अथवा भुगतान न करके) तथा यह कि वह उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जायगा। यह सूचना अप्रतिष्ठा के बाद उचित समय के भीतर, अप्रतिष्ठा के स्थान पर अथवा जिम मनुष्य को यह दी जा रही है, उसके निवास-स्थान पर दी जानी चाहिए। [धारा ९४]

### अप्रतिष्ठा का प्रभाव (Effects of Dishonourment)

विनिमय-पत्र में दोनों तरह से चाहे जिस प्रकार से अप्रतिष्ठित हुआ हो इसका निर्माणक तथा अन्य पृष्ठांकनकर्त्ता (endorser) धारक के प्रति उत्तरदायी होते हैं, यदि उन्हें उचित समय में धारक से सूचना प्राप्त हुई हो। देनदार (drawee) को धारक केवल भुगतान न होने पर ही दायी बना सकता है।

### सूचना कब अनावश्यक होती है ? (When notice is unnecessary ?)

धारा ९८ के अनुसार निम्नलिखित हालतों में अप्रतिष्ठा की सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं होती—

१. जब सूचना पाने का अधिकारी पक्ष इसका परित्याग (waive) कर दे।

उदाहरण—यदि किसी पक्ष से कह दिया जाय कि विपत्र अप्रतिष्ठित कर दिया गया और वह इसका भुगतान करने का वचन दे देता है।

२. जब निर्माणक ने भुगतान के प्रतिकूल आज्ञा दे दी हो (countermanded payment), तब निर्माणक को अप्रतिष्ठा की सूचना देने की आवश्यकता नहीं।

३. जब सम्बद्ध पक्ष को सूचना के अभाव से कोई हानि न पहुँचती हो।

उदाहरण—यदि किसी चेक को निर्माणक के भुगतान के लिए प्रस्तुत करने के समय पर्याप्त शेष निधि न हो तब उसे कोई क्षति नहीं पहुँचती है और वह सूचना का भी अधिकारी नहीं होता।

४. जब सूचना का अधिकारी पक्ष उचित खोज करने पर भी न पाया जाय।

५. जब स्वीकर्त्ता स्वयं निर्माणक हो। उदाहरण—जब किसी विनिमयपत्र के निर्माणक तथा स्वीकर्त्ता विपत्र को आहूत करने के सम्बन्ध में साक्षीदार हो, तो अप्रतिष्ठा की सूचना देना आवश्यक नहीं होता।

६. जब प्रणपत्र बेचान-साध्य (negotiable) न हो।

७. जब अप्रतिष्ठा की सूचना का परित्याग कर दिया गया हो।

उदाहरण—जब निर्माणक द्वारा परिपक्वता के पश्चात् विपत्र के भुगतान करने का वचन प्राप्त हो तब यह सूचना के परित्याग करने का प्रमाण है।

८. जब सूचना देने का भागी पक्ष किसी ऐसी परिस्थिति में पड़ कर सूचना नहीं देता है जिनके प्रति उसका कोई निजी दोष नहीं है, जैसे अचानक किसी घटना होने पर।

## टिप्पण और विपत्रानादरण (Noting and Protesting)

**टिप्पण करना (Noting)**— धारा १९ के अनुसार जब कोई प्रणपत्र या बिल अस्वीकृति अथवा भुगतान न करने के कारण अप्रतिष्ठित हो जाय तो धारक को अन्य पक्षों को अप्रतिष्ठा की सूचना देने के बाद विपत्रालोकी (notary public) के यहाँ यह बात को नोट करा देना चाहिए जिससे भविष्य में उसे मुकदमा करने में सुविधा हो। ऐसा टिप्पण अप्रतिष्ठा के बाद यथोचित समय के भीतर ही हो जाना चाहिए और उसमें अप्रतिष्ठा की तिथि, ऐसी अप्रतिष्ठा का कारण (यदि कोई दिया गया हो) तथा विपत्रालोकी के परिव्यय (charges) साफ-साफ लिखे होने चाहिए। [धारा १९] विपत्रालोकी (notary public) राजकीय सरकार द्वारा विदेशी रुक्यों को प्रमाणित करने तथा विनिमय-पत्र और प्रणपत्रों पर टिप्पण और विपत्रानादरण करने के लिए अधिकृत एक अफसर होता है जो अधिकतर अनुप्राथी (solicitor) होता है।

**विपत्रानादरण (Protesting)**— धारा १०० के मुताबिक जब कोई प्रणपत्र या विनिमय-पत्र अस्वीकृति या भुगतान न करने के कारण अप्रतिष्ठित हो जाता है तो विपत्रालोकी के पास यह बात नोट करा कर उमने एक प्रमाणपत्र (certificate) ले सकता है। ऐसे प्रमाणपत्र को प्रोटेस्ट (protest) कहते हैं। प्रायः देशी रुक्यों का प्रोटेस्ट करना आवश्यक नहीं होता है किन्तु जिस देश में अप्रतिष्ठित रुकका लिखा गया हो यदि वहाँ के कानून के मुताबिक उसका प्रोटेस्ट करना आवश्यक हो तो विदेशी अप्रतिष्ठित रुकके का प्रोटेस्ट करना जरूरी होता है।

## श्रेष्ठ प्रतिभूति के लिए विपत्रानादरण (Protest for better Security)

धारा १०० का दूसरा भाग यह बतलाता है कि जब बिल की परिपक्वता के पहले ही बिल का स्वीकर्ता दिवालिया हो गया हो अथवा उसकी साख जनता में घोषित कर दी गयी हो (his credit has been publicly impeached) तो ऐसे बिल का धारक यथोचित समय के अन्दर विपत्रालोकी के द्वारा स्वीकर्ता से अच्छी प्रतिभूति (security) की माँग कर सकता है। यदि स्वीकर्ता अच्छी प्रतिभूति देने से इनकार करे तो धारक इस बात का प्रोटेस्ट विपत्रालोकी के यहाँ यथोचित समय में करा सकता है और इसके लिए प्रमाणपत्र माँग सकता है। ऐसे प्रमाणपत्र को “श्रेष्ठ प्रतिभूति के लिए विपत्रानादरण” कहते हैं।

## विपत्रानादरण की विषय-सूची (Contents of a Protest)

धारा १०१ के अनुसार प्रोटेस्ट में निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

(i) मूल रुकका (Instrument itself) या उसकी शाब्दिक प्रतिलिपि (literal transcript)।

(ii) जिस व्यक्ति के लिए तथा जिसके खिलाफ रुकके को प्रोटेस्ट किया गया है उसका नाम।

(iii) भुगतान या स्वीकृति या अच्छी प्रतिभूति विपत्रालोकी ने स्वीकर्ता या देनदार से माँगी तथा देनदार ने इस पर क्या उत्तर दिया तथा देनदार का पता चला या नहीं, इन सब बातों का विवरण।

(iv) अप्रतिष्ठा का स्थान तथा दिनांक।

(v) अप्रतिष्ठा होने पर अच्छी प्रतिभूति माँगी गयी तो उसका इनकार तथा

इनकार का समय और स्थान ।

(vi) विपत्रालोकी का हस्ताक्षर ।

(vii) विपत्रालोकी का पुरस्कार (subscription) ।

(viii) अन्य विवरण यदि स्वका प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृत किया गया हो (acceptance for honour) या प्रतिष्ठा के लिए भुगतान किया गया हो (payment for honour) ।

### प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति तथा भुगतान (Acceptance and Payment for Honour)

#### प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति (Acceptance for Honour)

जब किसी विषय की एक बार अस्वीकृति अथवा अच्छी प्रतिभूति के लिए टिप्पण अथवा विपत्रानादरण हो चुका हो, तब कोई भी ऐसा व्यक्ति जो उस पर दायी न हो, धारक की स्वीकृति से उससे सम्बद्ध किमी भी पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए स्वके को स्वीकार कर सकता है । ऐसी स्वीकृति 'प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति अथवा अनादर प्रमाण के लिए स्वीकृति' (Acceptance for honour or acceptance supra protest) कहलाती है यदि स्वीकृति में यह न बतलाया जाय कि वह किमी प्रतिष्ठा के लिए दी गयी है तो यह निर्माणक की प्रतिष्ठा के लिए की गयी मानी जायगी । [धारा ११६]

#### प्रतिष्ठा के लिए भुगतान (Payment for Honour)

जब कोई स्वीकार किया हुआ पुर्जा बाद में भुगतान न करने से अप्रतिष्ठित कर दिया जाता है और ऐसे भुगतान करने के लिए टिप्पण तथा विपत्रानादरण भी करा दिया जाता है, तो कोई भी पक्षकार (यह कोई जरूरी नहीं है कि वह अपरिचित ही हो) किसी भी पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए जो कि भुगतान करने के लिए दायी हो, उसका भुगतान कर सकता है । किन्तु यह जरूरी है कि इस प्रकार भुगतान करने-वाली पार्टी विपत्रालोकी के सामने यह बतला दे कि वह किसी पक्षकार की प्रतिष्ठा के लिए भुगतान कर रही है और ऐसा कथन विपत्रालोकी द्वारा अवश्य लिखा जाना चाहिए । [धारा ११२]

प्रतिष्ठा के लिए किसी स्वके का भुगतान करनेवाला मनुष्य उस मनुष्य का अधिकार पाता है, जिससे कि वह स्वका प्राप्त करता है तथा उस मनुष्य के सब अधिकार भी मिल जाते हैं । ऐसा मनुष्य वह रकम जो उसने भुगतान की हो, उस पर ब्याज तथा ऐसे भुगतान करने में उचित रूप में किये गये खर्चों को पाने का अधिकारी है । [धारा ११४]

#### क्षतिपूर्ति (Compensation)

धारा ११७ के मुताबिक अगर किसी प्रणपत्र, विनिमय-पत्र या चेक की अप्रतिष्ठा हो जाती है, तो उसके धारक को या पृष्ठांकित व्यक्ति (indorsee) को निम्नलिखित तरीके से क्षतिपूर्ति की जाती है—

(i) धारक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह देनदार से स्वके की मूल रकम के साथ-साथ जो खर्च उसने स्वके को प्रस्तुत करने में, टिप्पण (noting) में

तथा विपत्रानादरण (protesting) में किया है उसे भी वसूल कर ले। [धारा ११७ (ए)]

(ii) फिर, यदि देनदार उस जगह पर नहीं रहता है जहाँ कि रुक्का देय है, बल्कि वह कहीं दूसरे देश में रहता है तो उन दोनों जगहों के बीच जो विनिमय-दर प्रचलित हो (current rate of exchange), उसके अनुसार धारक को भुगतान करना पड़ेगा। [धारा ११७ (बी)]

(iii) ऐसा पृष्ठांकक जिसने रुक्के पर देय धन को भुगतान कर दिया हो, इस प्रकार भुगतान की गयी रकम को भुगतान करने की तिथि से लेकर उसके प्राप्त करने की तिथि तक के लिए ६% (प्रतिशत) प्रतिवर्ष की दर से व्याजसहित देनदार से वसूल कर सकता है। [धारा ११७ 'सी']

(iv) यदि देनदार तथा पृष्ठांकक दो भिन्न-भिन्न देशों में रहते हैं तो पृष्ठांकक देनदार से दोनों स्थानों के बीच प्रचलित विनिमय-दर के अनुसार भुगतान करा सकता है। [धारा ११७ (डी)]

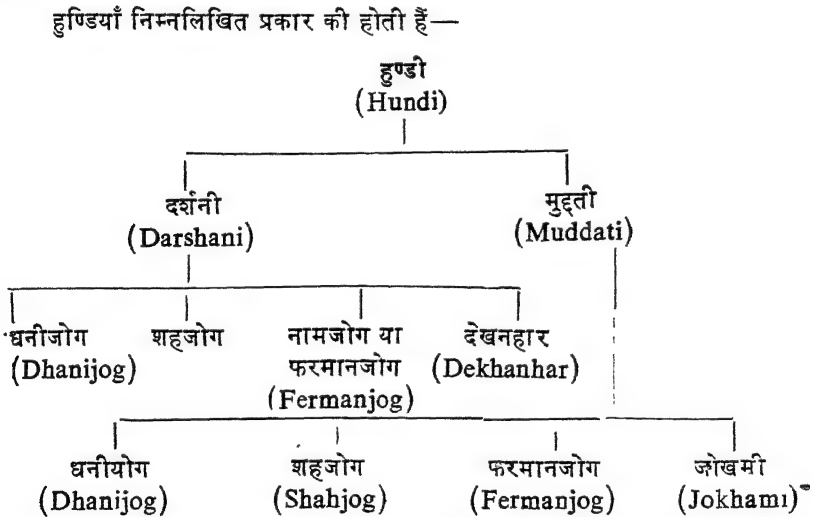
(v) क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी पक्ष भुगतान करनेवाले पक्ष पर उसके प्रति देय धन तथा उसके द्वारा उचित रूप में किये गये खर्चों के लिए एक दर्शान्तर अथवा माँग करने पर देय विपत्र आहरित कर सकता है। ऐसे रुक्के को पुनर्लेख (re-draft) कहते हैं। पुनर्लेख (re-draft) आहरित किया गया हो, उसे अप्रतिष्ठित कर देता है तो वह धारी को उसी प्रकार क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी है जैसे कि मूल विपत्र पर दायी है।

---

## हुण्डियाँ (Hundis)

हुण्डी भी बेचान-साध्य रुक्के के समान भारत में प्रचलित है, पर इसका शासन उससे नहीं होता बल्कि यह देश की रीति-रिवाज से शासित होती है। यह बहुत पुराने जमाने से पुरानी शैली तथा हिन्दी और महाजनी भाषा में लिखी जाती है। यह संस्कृत शब्द 'हुण्ड' से बना है जिसका मतलब कर्ज वसूल करना होता है। इसे विनिमय-पत्र की भाँति मुद्रांकित (stamped) किया जाता है, इसका बेचान होता है और इसकी स्वीकृति होती है। प्रायः इसका प्रयोग भुगतान करने, कर्ज देने तथा रुपयों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए किया जाता है।

### हुण्डियों के भेद (Kinds of Hundis)



(i) **दर्शनी हुण्डी**—दर्शनी हुण्डी वह कहलाती है जिसमें 'पहुँचा तुरत' अथवा इसी तरह के अन्य कोई शब्द लिखे जाते हैं जिनका अर्थ यह होता है कि हुण्डी में लिखी हुई मिति के बाद किसी दिन भी उसे दिखाने पर उसका भुगतान हो जायगा। यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजने के काम में लायी जाती है।

(ii) **मुद्दती हुण्डी**—मुद्दती हुण्डी वह कहलाती है जिसका भुगतान हुण्डी लिखने की तारीख या मिति के बाद हुण्डी में लिखी हुई अवधि पूरी होने पर किया जाता है। यह प्रतिज्ञा-पत्र के समान होती है और भारतीय व्यापारियों द्वारा अपने व्यापार के लिए धन-निधि प्राप्त करने के ध्येय से बहुधा प्रयोग में लायी जाती है। इस पर

मूल्यानुसार टिकट लगाना पड़ता है और यह भिन्न भिन्न जगहों में अलग-अलग नियम से लगता है। इसे 'मियादी' या 'मिति' हुण्डी भी कहते हैं।

(iii) **धनीजोग हुण्डी**—यह वह हुण्डी होती है जिसका भुगतान केवल पानेवाले धनी को ही होता है।

(iv) **शाहजोग हुण्डी**—यह वह हुण्डी है जिसका भुगतान केवल किसी शाह को ही हो सकता है। शाह उस व्यक्ति या फर्म या कम्पनी को कहते हैं जिसका नाम उस सूची में लिखा हो जो किसी स्थानीय बोर्ड के द्वारा समय-समय पर हुआ करता है। आधुनिक काल के बैंक या इनके अलावा जिसे हुण्डी भरनेवाला अपनी जानकारी या जाँच के मुताबिक शाह मान ले, उसे शाह कहते हैं।

(v) **नामजोग या फरमानजोग हुण्डी**—यह वह हुण्डी है जिसका भुगतान पानेवाले धनी के आदेशानुसार किया जाता है। इसमें बेचान की आवश्यकता पड़ती है।

(vi) **देखनहार हुण्डी**—यह वह हुण्डी है जिसका भुगतान उसे दिखानेवाले व्यक्ति को दिया जाता है। दर्शनी हुण्डी देखनहार हो सकती है।

(vii) **जोखमी हुण्डी**—यह आजकल तो व्यापार का ढंग बदल जाने के कारण नहीं चलती, किन्तु इसका पहले बड़ा प्रचार था। मान लीजिए कि बनारस के किसी व्यक्ति के पास कलकत्ते के किसी फर्म का आर्डर आता है। बनारस का व्यक्ति माल तैयार कराकर किसी ऐसे व्यक्ति को सुपुर्द कर देता है जो माल ले जाने का, उसका बीमा करने का और उसके सम्बन्धी की हुण्डी की मिति काटकर भुगतान करने के लिए (discounting) तैयार होता है। यह हुण्डी जोखमी होती है। इसका लिखनेवाला, माल बेचने, ऊपर वाला, माल खरीदने वाला और पाने वाला जिसे 'रक्खे' भी कहते हैं वह होता था जो मिति काटकर उसका भुगतान करता था। मिति काटने वाले न सिर्फ मिति का व्याज बल्कि माल बनारस से कलकत्ता ले जाने का किराया और उतने समय के जोखिम बीमे का प्रीमियम काट लेते थे। यदि माल सुरक्षित कलकत्ता पहुँच जाता था तो ऊपर वाला धनी माल लेकर उसे सकार देता था और यदि माल रास्ते में ही खो जाता था तो उसका भुगतान नहीं होता था और रक्खे वाले धनी को नुकसान होता था। इस तरह यह हुण्डी आजकल के विनिमय बिल, बिल्टी बीमा-पत्र और गिरबी-पत्र (letter of hypothecation) चारों का काम करती थी। चूँकि इसका भुगतान केवल उसी समय होता था जब माल ऊपर वाले धनी को सुरक्षित अवस्था में दिया जाता था, यह बिना शर्त का पुर्जा नहीं था। इसमें और विनिमय-बिल में यह सैद्धांतिक अन्तर है।

**जवाबी हुण्डी**—यह एक ऐसी हुण्डी है जिसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर किसी बैंक की सहायता से रुपया भेजा जाता है।

इसके अलावा, जिकरी चिट (jikri chit) और पुर्जा (purja) वगैरह भी भारतीय व्यापार में लिखे जाते हैं।

### University Questions

1. Explain the term Negotiable Instrument and state the chief kind thereof. Are Reserve Bank of India Currency notes and a Bill of Lading 'Negotiable' Instrument?

(‘वचान-साध्य रक्खे’ शब्द की व्याख्या कीजिये और उसके मुख्य भेद वतलाइये। क्या रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का नोट और जहाजी बिल्टी बेचान-साध्य रक्का है?)

2. Define a Promissory Note and distinguish it from a Bill of Exchange. Which of the following is a promissory note—

(i) I promise to pay B Rs. 500 and all other sums which shall be due to him;

(ii) I acknowledge myself to be indebted to B for the sum of Rs. 1000 to be paid on demand for value received ?

(प्रणपत्र की परिभाषा दीजिए तथा विनिमय-बिल से इसकी तुलना कीजिए। इनमें से कौन प्रणपत्र है—(i) मैं 500 रु० देने की प्रतिज्ञा करता हूँ तथा और जो रकम बकाया होगी;

(ii) मैं B की 1000 रु० की कर्जदारी स्वीकार करता हूँ और वादा करता हूँ कि यह रकम जब माँगी जायगी तब वापस कर दूँगा।)

3. Explain fully the characteristics of negotiable instrument. Under what circumstances is a party to a negotiable instrument discharged ?

(विनिमय-साध्य लेखपत्र के लक्षणों की पूर्ण व्याख्या कीजिए। किन परिस्थितियों में एक विनिमय-साध्य लेखपत्र का पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।)

4. (a) What is the significance of the words 'not negotiable' ? Do these words prevent negotiation ?

(b) Which of the following are negotiable instruments—

(i) Cheques, (ii) Bill of Lading, (iii) Bills of Exchange, (iv) Promissory Note, (v) I. O. U. and (vi) Railway Receipts ?

[(क) 'अविनिमय-साध्य' शब्द का क्या महत्त्व है ? क्या ये शब्द विनिमय में बाधा डालते हैं ?

(ख) निम्नलिखित में कौन-कौन-से बेचान-साध्य रुके हैं—

(i) चेक, (ii) जहाजी बिल्टी, (iii) विनिमय-बिल, (iv) प्रणपत्र (v) आई० ओ० यू० एवं (vi) रेलवे रसीद ?

5. What is a Crossed Cheque ? What is the effect of crossing a cheque ? Can a cheque crossed 'not negotiable' be endorsed and negotiated ?

(रेखांकित चेक क्या है ? एक चेक के रेखांकन का क्या प्रभाव होता है ? क्या एक चेक का, जिस पर 'अविनिमय रेखांकन' हुआ है, बेचान तथा परक्रमण हो सकता है ?)

6. When is a cheque said to be crossed (a) generally, and (b) specially ? Who may cross it ? What is the effect of writing 'Not Negotiable' across it ?

[कब एक चेक (अ) साधारणतः तथा (ब) विशेष रूप से रेखांकित कहलाता है ? कौन इसे रेखांकित कर सकता है ? इसके ऊपर 'अविनिमय-साध्य' लिखने का क्या असर होता है ?]

7. What is the effect of crossing a cheque ? Name the classes of crossing. Can a Bill of Exchange be crossed ?

(एक चेक को रेखांकित करने का क्या प्रभाव होता है ? कितनी तरह के रेखांकन होते हैं ? क्या एक विनिमय-पत्र रेखांकित किया जा सकता है ?)

8. What is the effect of —

(a) Crossing a cheque 'Not Negotiable';

- (b) Marking a cheque with words 'Account Payee';  
 (c) Striking out of a crossing and writing 'Pay Cash' ?

[निम्नलिखित का क्या प्रभाव होगा—

- (a) एक चेक को 'अविनिमय-साध्य' रेखांकन करने का;  
 (b) 'Account Payee' शब्दों के साथ रेखांकन करने का;  
 (c) रेखांकन को काटकर 'नकद भुगतान करो' लिखने का ?]

9. What is the effect of—

- (a) Endorsing a negotiable 'in Blank';  
 (b) Endorsing a negotiable instrument with 'Sans Recourse';  
 (c) Endorsing a negotiable instrument with the words 'Sans

Frais' ?

[निम्नलिखित का क्या प्रभाव है—

- (क) एक विनिमय-साध्य विपत्र के रिक्त पृष्ठांकन का;  
 (ख) 'दायित्व-रहित' शब्द के साथ एक विनिमय-साध्य विपत्र के पृष्ठांकन का;  
 (ग) 'व्यय-रहित' शब्द के साथ एक विनिमय-साध्य लेखपत्र के पृष्ठांकन करने का ?]

10. Discuss the liability of a banker who honours a cheque on which (i) the Drawer's signature is forged and (ii) on which the Payee's endorsement is forged.

[एक बैंकर के दायित्व की व्याख्या कीजिये जो ऐसे चेक का भुगतान करता है जिस पर (क) लेखक का हस्ताक्षर जाली बनाया गया है तथा (ख) भुगतान पाने वाले का हस्ताक्षर भी जाली बनाया गया है।]

11. Explain clearly what is meant by 'negotiation'. How is it effected and how does it differ from an ordinary assignment ?

['वेचान' के आशय की स्पष्ट व्याख्या कीजिए। इसे कैसे प्रभावशाली बनाया जाता है तथा यह एक साधारण अन्विहस्तांकन से भिन्न कैसे है ?]

12. When is Bill of Exchange said to be dishonoured ? Under what condition is notice of dishonour unnecessary ?

(कब एक विनिमय-बिल अप्रतिष्ठित माना जाता है ? किस दशा में अप्रतिष्ठा की सूचना अनावश्यक होती है ?)

13. What is meant by dishonour for non-acceptance and dishonour for non-payment ? State the circumstances in which notice of dishonour is not necessary.

(अस्वीकृति द्वारा अप्रतिष्ठा तथा भुगतान न करने से अप्रतिष्ठा के क्या आशय हैं ? उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिये जिनमें अप्रतिष्ठा की सूचना आवश्यक नहीं है।)

14. What are the rights exercised by a notary public in respect of a negotiable instrument ?

(एक विनिमय-साध्य लेखपत्र के सम्बन्ध में विपत्रालोकी द्वारा किन अधिकारों का प्रयोग किया जाता है ?)

15. What are the rules relating to the Presentment of cheques and Bills of exchange ? In what circumstances will failure or delay in presentment be excused ?

(चेक तथा विनिमय-बिल की प्रस्तुति के सम्बन्ध में क्या नियम हैं ? किन परिस्थितियों में प्रस्तुति न करना अथवा प्रस्तुति करने में देर करना क्षम्य होगा ?)



16. What do you mean by 'Material Alteration'? How far will an alteration in a Bill of Exchange affect the rights of (a) existing parties, and (b) subsequent endorsers? Will it make any difference if the alteration is not apparent by an ordinary inspection? State the effects of an alteration in (i) date, (ii) place of payment, and (iii) the figures in the margin.

['वस्तु-परिवर्तन' से क्या समझते हैं? कहाँ तक एक विनिमय बिल में परिवर्तन (क) मौजूदा पक्षकारों तथा (ख) बाद वाले पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करेगा? अगर साधारण निरीक्षण से परिवर्तन का पता न चले तो क्या इस कारण कुछ अन्तर पड़ेगा? (क) तारीख, (ख) भुगतान का स्थान तथा (ग) माजिन में दिये गये अंक में किये गये परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

17. Discuss the rights of a transferee of negotiable instrument made without consideration.

(बिना प्रतिफल के लिखे गये विनिमय-साध्य लेखपत्र के हस्तान्तरिती के अधिकारों की व्याख्या कीजिए।)

18. Distinguish between a 'Holder' and a 'Holder in due Course'. Explain fully the privileges granted to a holder in due course under the Negotiable Instruments Act.

(एक धारक और एक यथाविधिधारी के बीच अन्तर बतलाइये। विनिमय-साध्य लेखपत्रों के अधिनियम के अधीन यथाविधिधारी को प्रदान किये गये विशेष अधिकारों की व्याख्या कीजिए।)

19. Write short notes on the following—

(i) Accommodation Bill, (ii) Crossing of Cheque, (iii) Special Crossing, (iv) Not Negotiable crossing, (v) Cancellation of crossing, (vi) Drawee in case of need, (vii) Holder in due course, (viii) Endorsement, (ix) Restriction Endorsement, (x) Usances, (xi) Material Alteration.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) पारस्परिक सहायक बिल, (ii) चेक का रेखांकन, (iii) विशेष रेखांकन (iv) अपरक्राम्य रेखांकन, (v) रेखांकन को रद्द करना, (vi) आवश्यकता की दशा में देनदार, (vii) यथाविधिधारी, (viii) पृष्ठांकन, (ix) प्रतिबन्धित पृष्ठांकन, (x) मुद्दती बिल (xi) महत्वपूर्ण परिवर्तन।]

20. Define 'a holder in due course'. State the rules of law, evidence and estoppels by which his title, rights and privileges are protected against equities and other defences available against prior parties. [I. A. S. 1947]

21. What are the exceptions to the rule that the effect of a material alteration of a negotiable instrument is to discharge all the parties liable on it at the time of the alteration. [I. A. S. 1948]

22. (a) Who is a 'holder in due course' of a negotiable instrument? Can the defence that one of the endorsements is forged be raised against him by (i) the acceptor and (ii) an endorser? If a crossed cheque bears the word 'not negotiable' does the endorsee of it get any title? [I. A. S. 1948]

23. (a) Which are the instruments that should be presented for

payment and what are the circumstances that render presentment for payment unnecessary ?

(b) Explain Holder in due Course and qualified acceptance.

[I. A. S. 1952]

24. Explain 'material alteration' and state whether there is material alteration (i) when an endorsement purporting to be a receipt of the amount due under a promissory note is forged, (ii) where a creditor alters the rate of interest specified in a promissory note from 1 per cent to 1.1 per cent.

[I. A. S. 1953]

25. Distinguish between—

- (i) B/E and P/N, (ii) Holder for value, and Holder in due course,
- (iii) Ambiguous and inchoate instruments. (iv) Cheque and a B/E,
- (v) Conditional Endorsement and Restrictive Endorsement,
- (vi) 'Open Cheques' and 'Crossed Cheques', (vii) Blank endorsement and Full endorsement, (viii) Liabilities of a maker of a P/N and those of a drawer of a B/E.

26. Discuss the following Problems—

(i) A, the payee holder of a bill, endorsed it in blank and delivered it to B, B also endorsed it in blank and delivered it to C. C endorsed it to D, or order. D without endorsement delivered it to E. Examine the right of E against A, B, C and D.

[धारा 55 के अनुसार E धारक के रूप में A तथा B से भुगतान पाने का अधिकारी है, C तथा D से नहीं।]

(ii) A draws a bill of exchange on B favouring C who negotiates it to D. The latter endorses it in blank and gives it to E. The bill is stolen and X forges E's signature and negotiates it to F. Discuss F's rights.

[धारा 9 के अनुसार F यथाविधिधारी है, धारा 58 के अनुसार F को विनियम-बिल के ऊपर अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।]

(iii) A by means of false pretence or by a promise or condition which he does not fulfil, induces B to draw a cheque in favour of C. A then delivers the cheque to C who receives it bonafide and for value. Does C acquire a title and can he sue either B or A upon the cheque ?

[धारा 9 के अनुसार यहाँ C यथाविधिधारी है ! यहाँ यथाविधिधारी के लिए सभी शर्तों को C पूरा करता है। अतः C अच्छा अधिकार प्राप्त करता है तथा C, B अथवा A पर मुकदमा कर सकता है। यहाँ A अपने उत्तरदायित्व को अस्वीकार नहीं करता है।]

(iv) X is a holder in due course of a bill drawn and payable to the order of a fictitious person. X presents the bill to the acceptor on maturity. Is the latter bound to honour it ?

[धारा 42 के अनुसार स्वीकर्ता भुगतान करने के लिए बाध्य है।]

(v) X draws a cheque payable to self or order on the Bank of Northern India. After making out and signing the cheque he keeps it in his locker without endorsing it. The cheque is stolen, his endorsement is forged and it is negotiated to A. The bank pays the cheque. Discuss the legal rights of X and A.

धारा 58 के अनुसार जब कोई व्यक्ति विनिमय-साध्य लेखपत्र चुरा लेता है, तब उसे लेखपत्र पर अच्छा अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता है। धारा 85 के अनुसार X को बैंक के प्रति कोई अधिकार प्राप्त नहीं है क्योंकि इस धारा के अनुसार बैंक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। X उसपर मुकदमा कर सकता है जिसने चेक चुराया है।]

(vi) A is the acceptor of a B/E of which B is the payee. C, a holder in due course, sues A, who pleads that B had no authority to endorse the bill. How will you decide the case?

(vii) A puts a blank acceptance in his desk. His clerk steals and fills it up as a complete bill for Rs. 200 and gets it discounted. The bill is dishonoured and a holder in due course sues A, as acceptor. Will he succeed?

(viii) A draws a bill on B, payable to C or order, which is accepted. D gets possession of the bill and without authority from C endorses it in C's name to his own order. D then endorses the bill to E, who takes it bonafide, for value and without notice. What are the rights of the parties to the bill?

(ix) A draws a B/E on (a minor) who accepted it whilst a minor but dishonoured it on maturity. D an endorsee of the bill from C, the Payee, sues A on the bill. Can A set up the defence that B being a minor could not accept the bill?

(x) A draws a B/E in favour of B. Before its maturity it is burnt in B's house. Has B any remedy against A?

(xi) A thief gets hold of your cheque books, forges your signature on a cheque and obtains payment from your banker after presenting the forged cheque. Who would be liable to bear the loss, and why?

(xii) X draws a cheque for £10,000 on bank Y on 20th March, 1951. X has sufficient funds to his credit on that date. Bank Y fails on 20th April, 1951, before the cheque is presented. Advise the holder of the cheque as to his course of action.



## विषय-प्रवेश (Introduction)

भारतवर्ष में दिवाला-सम्बन्धी दो तरह के कानून लागू किये जाते हैं—

१. १९०९ के महा-प्रान्तीय नगर शोधाक्षमता सन्नियम (The Presidency Towns Insolvency Act of 1909), और

२. १९२० के प्रान्तीय शोधाक्षमता सन्नियम (Provincial Insolvency Act, 1920)।

पहला सन्नियम बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास के राज्यों (states) में लागू होता है और दूसरा भारतवर्ष के शेष राज्यों में लागू होता है। दोनों सन्नियम एक-दूसरे से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। अतः इन दोनों सन्नियमों का अध्ययन साथ-ही-साथ किया जा सकता है, परन्तु इनके बीच कुछ अन्तर भी हैं जिनका अध्ययन के समय उसी जगह पर वर्णन कर दिया जायगा।

### ‘दिवाला’ शब्द की परिभाषा (Definition)

**दिवालिया (Insolvent)**—भारतीय शोधाक्षमता सन्नियम में ‘दिवालिया’ शब्द की परिभाषा नहीं दी गयी है। परन्तु भारतीय माल-विक्रय सन्नियम (Indian Sale of Goods Act) के मुताबिक “दिवालिया उसे कह सकते हैं जो कर्ज के भुगतान में असमर्थ रहे।”

**दिवालियापन (Insolvency)**—श्री ब्लैक स्टोन साहब के शब्दों में, “दिवालिया एक ऐसी कार्यवाही है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति के कर्ज भुगतान करने में असमर्थ हो जाने पर सरकार उसकी सम्पत्ति को महाजनों के बीच यथोचित रूप से बँटवा देती है।”\* इस नियम के लिए हिन्दुस्तान में दो शब्दों का इस्तेमाल किया गया है जिनका मतलब प्रायः एक ही माना गया है। वे हैं बैकप्टसी (bankruptcy) तथा इनसालवेन्सी (insolvency)। परन्तु इंगलिश ऐक्ट के अनुसार बैकप्टसी उस कार्य को कहते हैं जिसमें दिवालियापन का कार्य (act of bankruptcy) किया गया हो तथा तत्सम्बन्धी व्यक्ति दिवालिया घोषित कर दिया गया हो (who has been adjudicated a bankrupt)। फिर इनसालवेन्ट (insolvent) वह व्यक्ति है जो अपने कर्ज का भुगतान करने में असमर्थ हो, अर्थात् जिसकी देन (liabilities) उसकी सम्पत्ति (assets) से ज्यादा हो।

\* According to Mr. Blackstone, “Bankruptcy is a proceeding by which, when a debtor cannot pay his debts or discharge his liabilities, cannot obtain satisfaction of their claims, the state in certain circumstances takes possession of his property by an officer appointed for the purpose and such property is released and distributed in equal proportions among the persons to whom the debtor owes money or has incurred pecuniary liabilities.”

## दिवालियापन के कार्य (Acts of Insolvency)--[धारा ६]

साधारण तरीके से कोई मनुष्य निम्नलिखित अवस्थाओं में दिवालिया घोषित किया जा सकता है—

१. जब वह कर्जदार हो;
२. जब वह कर्ज चुकाने में असमर्थ हो;
३. जब वह दिवाला-अदालत (Insolvency Court) के अधिकार-क्षेत्र के अन्दर अन्य व्यवहार करता हो तथा करता रहा हो;
४. जब वह कोई इस प्रकार का कार्य करता है जो उसके दिवालिया होने के लक्षण को सूचित करता हो तो उसे दिवालियापन का कार्य कहते हैं।

धारा ६ के मुताबिक किसी व्यक्ति के निम्नलिखित कार्यों को दिवालियापन का कार्य कहा जाता है—

१. साधारणतया जब वह अपनी सम्पूर्ण या वास्तविक वस्तुओं का हस्तांतरण भारत में या किसी दूसरी जगह किसी तीसरे पक्ष को महाजनों के लाभ (benefit) के लिए कर दे।

२. जब वह भारत में किसी दूसरी जगह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति या उसके कुछ हिस्से को महाजनों के हित का विनाश या विलम्ब करने के विचार से किसी तीसरे पक्ष को सुपुर्द कर दे।

३. जब वह भारत में अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का या उसके कुछ हिस्से का कहीं पर इस प्रकार हस्तान्तरण करे कि वह इस सन्निधिम के मुताबिक या उस समय लागू होनेवाले किसी सन्निधिम के अनुसार इस आधार पर विवर्जित घोषित किया जा सके कि यदि उस मनुष्य को दिवालिया घोषित किया जायगा तो ऐसा हस्तान्तरण 'कपटपूर्ण अधिमान' (fraudulent preference) होगा।

४. जब उसकी किसी भी सम्पत्ति की विक्री या कम-से-कम २१ दिन के लिए जब्ती-ऋण का भुगतान करने के विचार से किसी न्यायालय की डिक्री को कार्यान्वित करने के लिए की गयी हो। लेकिन प्रान्तीय इनसालवेन्सी सन्निधिम में यह २१ दिन का जिक्र नहीं है।

५. जब वह दिवालिया घोषित किये जाने के लिए कचहरी में दरखास्त दे।

६. जब महाजनों के हित का विनाश या विलम्ब करने के विचार से—

- (i) वह भारतवर्ष से चला जाता है या भारत के बाहर रहता हो;
- (ii) जब वह अपने निवासस्थान या व्यापार के सामान्य स्थान (usual place of business) से प्रस्थान कर जाता है या अनुपस्थित रहता है;
- (iii) जब वह ऐसी एकान्त जगह में चला जाता है जहाँ महाजन उसके साथ किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार नहीं कर सकता है या किसी प्रकार का सवाद नहीं भेज सकता है।

७. जब वह अपने महाजन को इस बात की सूचना देता है कि उसने अपने कर्ज का भुगतान करना बन्द कर दिया है अथवा बन्द करनेवाला ही है। इस प्रकार की खबर लिखित होनी चाहिए। एजेण्ट द्वारा इस प्रकार की सूचना देना कानून की नजर में सही नहीं होता।

८. जब कर्ज के प्रतिशोध के मुकदमे में जीत (decree) होने पर उसे कैद कर लिया गया हो।

### कपटपूर्ण अधिमान (Fraudulent Preference)

धारा ५६ (१) के मुताबिक सम्पत्ति का प्रत्येक हस्तान्तरण किया गया, प्रत्येक भुगतान, प्रत्येक उत्तरदायित्व तथा वैसे मनुष्यों द्वारा, जो अपने देय (due) कर्ज के भुगतान में असमर्थ हों प्रत्येक वैधानिक कार्यवाही (judicial proceeding) किसी ऋणदाता के पक्ष में अन्य ऋणदाताओं की अधिमाता का विचार न करके करे और हस्तान्तरण तथा भुगतान के तीन महीने के भीतर दिवालिया घोषित हो जाय तो उसे 'कपटपूर्ण अधिमान' कहा जायगा। ये काम सरकारी प्रतिपुरुष के खिलाफ कपटपूर्ण तथा अमान्य (fraudulent and void) समझे जाते हैं।

धारा ५६ (२) के मुताबिक अगर ऋणदाता के द्वारा कोई तीसरा पक्ष मद्भावना के साथ तथा मूल्यवान् प्रतिफल (valuable consideration) के बदले में सम्पत्ति पर स्वत्व (title) प्राप्त करे तो धारा ५६ (१) की बातें उसपर लागू नहीं होंगी।

किसी के कपटपूर्ण अधिमान के लिए निम्नलिखित आवश्यक बातों की पूर्ति होनी चाहिए—

१. भुगतान या हस्तान्तरण ऐसे व्यक्ति के द्वारा होना चाहिए जो दिवालिया हो तथा उस दिन उसके पास इतना धन नहीं हो जिससे वह अपने कर्जों का भुगतान कर सके।

२. भुगतान ऋणदाता या उसके किसी एजेंट को किया गया हो।

३. भुगतान में किसी प्रकार का दबाव (pressure) नहीं किया गया हो।

४. इस कार्य को करने का प्रधान उद्देश्य उस ऋणदाता को अन्य ऋणदाताओं के खिलाफ कुछ अधिक लाभ पहुँचाना हो।

५. ऐसे हस्तान्तरण या भुगतान के बाद तीन महीने के अन्दर ऋणी को दिवालिया घोषित करने की दरख्वास्त दी गयी हो।

प्रांतीय इनसाल्वेन्सी सन्निधय की धारा ५४ तथा ५४ 'ए' में भी कपटपूर्ण अधिमान के विषय में यही बातें वर्णित हैं। अतः दोनों नियमों में इसपर कोई भी फर्क नहीं है।

कौन दिवालिया घोषित किया जा सकता है ? (Who may be adjudged Insolvent ?)

प्रत्येक मनुष्य, जो संविदा करने के लायक है अर्थात् जो बालिग है तथा सही दिमाग का है, दिवालिया घोषित किया जा सकता है। परन्तु इसके अलावा, दिवालिया सन्निधय के अनुसार दो शर्तों का पूरा होना भी जरूरी है—

(i) उस व्यक्ति को कर्जदार होना चाहिए, तथा

(ii) उसे दिवालियापन का कोई कार्य करना चाहिए।

इसके सम्बन्ध में हम निम्नलिखित व्यक्तियों का अध्ययन करेंगे—

#### नाबालिग (Minor)

हमलोग भारतीय प्रसंविदा सन्निधय के अध्ययन के समय यह जान चुके हैं कि कोई भी नाबालिग व्यक्तिगत रूप से अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं रहता, इसलिए साधारण तरीके से वह दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता। परन्तु कुछ लेखकों की राय है कि वह अपनी आवश्यक चीजों के लिए दिवालिया घोषित किया जा सकता है, पर कुछ लेखक इस मत को नहीं भी मानते हैं।

### झक्की या पागल (Lunatic)

यदि कोई व्यक्ति झक्की या पागल है तो सही दिमाग के समय लिये गये कर्जों के लिए उसे दिवालिया घोषित किया जा सकता है, किन्तु दिमाग खराब होने के समय लिये गये कर्जों के लिए वह दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों को दिवालिया घोषित करने के पहले न्यायालय (Court of Lunacy) से राय ले लेनी पड़ती है।

### विवाहित स्त्री (Married Woman)

हर एक जाति की स्त्री को यह अधिकार है कि वह अपने स्त्री-धन के लिए कोई प्रसविदा कर सकती है और वह अपनी पृथक् जायदाद के ऊपर लिये गये कर्जों तक के लिए दिवालिया घोषित की जा सकती है।

### साझेदारी (Partnership)

किसी भी फर्म के साझेदार को अकेले या सामूहिक तरीके से दिवालिया घोषित करने के लिए दिवालिया-न्यायालय में दरखास्त देनी पड़ती है। किन्तु अगर फर्म का कोई साझेदार नाबालिग है तो वह नाबालिग साझेदार किसी भी हालत में दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है।

### संयुक्त हिन्दू-परिवार फर्म (Joint Hindu Family Firm)

जब किसी हिन्दू-परिवार के सदस्य किसी संयुक्त कर्ज के लिए संयुक्त रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हों तो ऋणदाता के द्वारा न्यायालय में आवेदन-पत्र पेश कर उन्हें दिवालिया घोषित किया जा सकता है। किन्तु जब पारिवारिक काम-काज की देखभाल किसी कर्त्ता मैनेजर द्वारा की जाती है तो ऐसी हालत में उसके अलावा अन्य कोई मेम्बर दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता। किन्तु हिन्दू-परिवार का नाबालिग सदस्य किसी भी हालत में दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता।

### विदेशी (Foreigner)

जब तक कोई व्यक्ति भारतीय दीवानी अदालत (Civil Court) के अधिकार-क्षेत्र (jurisdiction) के अन्दर नहीं आता तब तक उसपर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। अतः कोई विदेशी तभी न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित किया जा सकता है, जब वह (i) दिवालिया सन्निधिम के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार करता हो तथा (ii) वह भारत का अधिवासी (domiciled) हो।

धारा ११ 'बी' के अनुसार यदि वह व्यक्ति किसी प्रतिनिधि (agent) के द्वारा भी भारतवर्ष में व्यापार करता हो तो भी उसे दिवालिया घोषित किया जा सकता है। यहाँ के न्यायालयों का उसपर प्रभुत्व है, यदि वह दिवालियापन का कोई काम यहाँ पर रह कर करता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि उसे दिवालिया घोषित करने के लिए ऋणदाताओं ने जिस समय दरखास्त दिवाला न्यायालय में पेश की है उस समय वह व्यक्ति भारतवर्ष में रहे ही, क्योंकि तथ्य की बात उसके दिवालियापन का कार्य है, आवेदन-पत्र प्रस्तुत होने की नहीं।



### संयुक्त पूँजी कम्पनी (Joint Stock Company)

यह कम्पनी दिवालिया सन्निधम के मुताबिक दिवालिया घोषित नहीं की जा सकती। परन्तु इतना निश्चित है कि अगर वह कर्ज देने में असमर्थ है तब यह भारतीय कम्पनी सन्निधम, १९१३ के अनुसार विघटित (wound up) की जा सकती है।

### मृत व्यक्ति (Deceased Person)

किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसे दिवालिया घोषित करने के लिए न्यायालय में दरखास्त पेश करने पर उसे दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर उसके मरने के पहले दरखास्त दी गयी है तो दरखास्त देने पर न्यायालय उसे जीवित मानकर अपनी इच्छा के अनुसार उचित कार्रवाई कर सकता है। इसी तरह मृत व्यक्ति की सम्पत्ति पर दिवालिया अदालत (Insolvency Court) को अधिकार प्राप्त होता है। अतः न्यायालय उसकी संपत्ति अपने अधिकार में कर ले सकता है।

---

## दिवालिया घोषित किये जाने के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करना

(Presentation of a Petition for Adjudication)

धाराएँ ७-२६

आवेदन-पत्र कौन प्रस्तुत कर सकता है ? (Who may present a Petition ?)

दिवालिया घोषित करनेवाली कचहरी (Insolvency Court) में कर्जदार या महाजन दोनों में से कोई एक व्यक्ति कर्जदार को दिवालिया घोषित करने के लिए दरखास्त पेश कर सकता है। वास्तव में कोई भी व्यक्ति जो इस बात का मन्तव्य दे सके कि दिवालिया व्यक्ति को उसने कर्ज दिया है तथा उसे दिवालिये की संपत्ति से कर्ज पाने का अधिकार है तो वह न्यायालय में दरखास्त दे सकता है। अतः कोई भी फर्म, कम्पनी, नावालिग, झक्की, फैक्टर, विदेशी, सरकारी रिसीवर (official receiver) दरखास्त पेश कर सकते हैं। सुरक्षित ऋणदाता (secured creditor) दिवालिया सन्निध के मुताबिक ऋणदाता नहीं माना जाता है। उसकी स्थिति हमारे ऋणदाताओं से भिन्न है तथा उसे यह अधिकार है कि कर्ज की जमानत में दी गयी सम्पत्ति से वह कर्ज का भुगतान पा ले। यदि पूरे कर्ज का भुगतान उस विशिष्ट सम्पत्ति से न हो सका तो बाकी के लिए वह अलग दरखास्त दिवाला-कचहरी में पेश कर सकता है। यदि वह चाहे तो अपनेको अन्य ऋणदाताओं-जैसा निःसुरक्षित ऋणदाता के समान मान सकता है तथा दिवालिये की सम्पूर्ण सम्पत्ति में से अपना हिस्सा बँटवारे में माँग सकता है।

### महाजनों की योग्यताएँ (Creditor's Qualifications)

धारा १२ के मुताबिक महाजन या महाजनों के द्वारा आवेदन-पत्र देने पर निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए—

१. यदि ऋणदाता अकेला वा संयुक्त रूप से दूसरे ऋणदाताओं के साथ मिलकर आवेदन-पत्र देता हो तो उस ऋणदाता या ऋणदाताओं का सम्मिलित ऋण कम से कम ५००/-रुपया होना चाहिए।

२. कर्ज निस्तीर्ण राशि (liquidated sum) हो जो शीघ्र ही या भविष्य में देय हो।

३. दिवालियेपन का कार्य, जिसके आधार पर दरखास्त दी जाती हो, दरखास्त देने के तीन महीने पहले ही हुआ हो।

### ऋणी की योग्यताएँ (Debtor's Qualifications)

इसी प्रकार धारा १० के अनुसार यदि कोई ऋणी अपनेको दिवालिया घोषित

करने के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करना चाहे तो निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना पड़ेगा। सबसे पहले उसे कर्ज का भुगतान करने में असमर्थ होना चाहिए तथा निम्नलिखित में से किसी एक शर्त को पूरा करना पड़ेगा—

१. उसका कर्ज कम से कम ५००) रु० हो; या
२. कर्ज का भुगतान न करने की वजह से किसी अदालत की डिग्री को कार्यान्वित (execution of the degree) करने पर वह गिरफ्तार हो गया हो या कैद हो गया हो,
३. इस प्रकार की डिग्री को कार्यान्वित करने के लिए ऋणी की सम्पत्ति की जब्ती करने की आज्ञा हुई हो।

### आवेदन-पत्र का विवरण (Contents of Petition)

किसी भी कर्जदार द्वारा दाखिल किये गये प्रत्येक आवेदन-पत्र में निम्नलिखित विवरण होना चाहिए—

१. एक ऐसा वर्णन कि कर्जदार अपने कर्ज को चुकाने में असमर्थ है।
२. वह स्थान, जहाँ वह साधारणतः रहता है अथवा कारोबार करता है, अथवा लाभ के लिए खुद काम करता है, अथवा अगर वह गिरफ्तार या कैद कर लिया गया है, तो वह स्थान जहाँ पर वह कैद में है।
३. वह न्यायालय, जिसकी आज्ञा से वह गिरफ्तार या कैद किया गया है, अथवा वह न्यायालय जिसके द्वारा उसकी सम्पत्ति कुर्क करने की आज्ञा दी गयी है, उस डिग्री का वर्णन भी जिसके कारण ऐसी कोई आज्ञा दी गयी है।
४. उसके विरुद्ध धन-सम्बन्धी सभी दावों की रकम तथा विवरण एवं उसके लेनदारों के नाम तथा पते।

५. उसकी सम्पत्ति-सम्बन्धी निम्नलिखित विवरण—

- (i) रुपये को छोड़कर उसकी समस्त सम्पत्ति का मूल्यांकन;
- (ii) वह स्थान जहाँ पर ऐसी सम्पत्ति है; तथा
- (iii) ऐसी एक घोषणा कि वह अपनी समस्त सम्पत्ति न्यायालय के अधिकार में रखने के लिए इच्छुक है।

६. इस तरह का वर्णन कि पहले क्या किसी समय दिवालिया घोषित किये जाने के लिए आवेदन-पत्र दिया गया है और अगर आवेदन-पत्र दिया गया है तो—

- (i) अगर वह रद्द कर दिया गया है तो उसके कारण, अथवा
- (ii) अगर वह दिवालिया घोषित कर दिया गया है तो उसका संक्षिप्त विवरण।

किसी लेनदार अथवा लेनदारों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रत्येक आवेदन-पत्र में निम्नलिखित विवरण चाहिए—

(क) वह स्थान, जहाँ कर्जदार रहता है अथवा कारोबार करता है अथवा लाभ के लिए स्वयं काम करता है, अथवा अगर वह गिरफ्तार या कैद कर लिया गया है, तो वह स्थान जहाँ पर वह कैद में है। [धारा १३-१ 'ब']

(ख) ऐसे कर्जदार द्वारा किया गया दिवालियापन का काम तथा उसके किये जाने की तिथि।

(ग) ऐसे कर्जदार के विरुद्ध अपने धन-सम्बन्धी दावे या दावों की रकम तथा विवरण। [धारा १३]

## आवेदन-पत्रों की वापसी (Withdrawal of Petitions)

कोई भी दरखास्त, चाहे वह किसी कर्जदार अथवा महाजन द्वारा दी गयी हो, बिना न्यायालय की आज्ञा के वापस नहीं ली जा सकती और न्यायालय को दूसरे पक्षकारों को सूचना दिये बिना और जब तक कि वह इस बात से सन्तुष्ट न हो जाय कि उससे दूसरे पक्षकारों को कोई हानि नहीं होगी, ऐसी वापसी की आज्ञा नहीं देनी चाहिए। [धारा १४]

## आवेदन-पत्रों का एकीकरण (Consolidation of Petitions)

जब किसी एक ही कर्जदार के खिलाफ दो या दो से ज्यादा आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये जाते हैं, अथवा जब संयुक्त कर्जदारों के खिलाफ अलग-अलग दरखास्त दी जाती है, तब न्यायालय ऐसी शर्तों पर जो भी उसको उचित जान पड़े उनपर सम्मिलित रूप में विचार कर सकता है। [धारा १५]

## दिवालियापन की कार्यवाही पर कर्जदार की मृत्यु का प्रभाव (Effects of Debtor's Death on Insolvency Proceedings)

अगर किसी कर्जदार, जिसके द्वारा अथवा जिसके विरुद्ध आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया गया है, की मृत्यु हो जाती है, तब उस मामले की कार्यवाही, जब तक कि न्यायालय इसके विपरीत आज्ञा नहीं देता, चालू रहेगी, जहाँ तक कि ऋणी की सम्पत्ति को बेचने तथा उसको बाँटने के लिए आवश्यक हो। [धारा १७]

## आवेदन-पत्र की स्वीकृति के बाद की कार्यवाही (Procedure on Admission of Petition)

१. सुनवाई की तारीख निश्चित करना (Fixing the date of hearing)—जब दिवालिया-सम्बन्धी कोई दरखास्त स्वीकार कर ली जाती है तब न्यायालय दरखास्त की सुनवाई के लिए एक तारीख निश्चित करता है। इस तारीख की खबर सभी लेनदारों को दी जायगी और अगर दरखास्त कर्जदार की ओर से नहीं है तब उसको भी इस तारीख की सूचना दी जायगी। [धारा १९]

२. अन्तिम प्रापक की बहाली (Appointment of Interim Receiver)—दरखास्त की स्वीकृति के बाद न्यायालय कर्जदार की सम्पत्ति के लिए एक अन्तरिम प्रापक बहाल कर सकता है, और उसे कर्जदार की सम्पत्ति अथवा उसके किसी भाग को तुरत ही अपने अधिकार में ले लेने के लिए आदेश दे सकता है। अगर अन्तरिम प्रापक इस प्रकार बहाल नहीं किया जाता तो न्यायालय बाद की किसी समय दिवालिया घोषित करने की आज्ञा देने से पहले ऐसी बहाली कर सकता है। [धारा २०]

३. कर्जदार के खिलाफ अन्तरिम कार्यवाही (Interim proceedings against debtor)—दरखास्त देने की स्वीकृति की आज्ञा करते समय अथवा दिवालिया घोषित करने से पहले किसी भी समय न्यायालय या तो अपनी ही ओर से या किसी लेनदार की प्रार्थना पर निम्नलिखित आज्ञाओं में से कोई एक या अधिक आज्ञा कर सकता है—

(i) न्यायालय उस समय तक के लिए जब तक कि अन्तिम निर्णय न हो जाय, कर्जदार से उसकी उपस्थिति के लिए उचित जमानत देने की आज्ञा कर

सकता है और यह भी आदेश दे सकता है कि ऐसी जमानत न देने पर उसे दीवानी कारागार में कैद रखा जायगा।

(ii) न्यायालय कर्जदार की समस्त सम्पत्ति अथवा उसके किसी भाग की कुर्की की आज्ञा भी दे सकता है।

(iii) न्यायालय कर्जदार को कैद करने के लिए वॉरंट जारी करने की आज्ञा दे सकता है और यह आदेश दे सकता है कि या तो उसे आवेदन-पत्र के अन्तिम निर्णय तक दीवानी कारागार में कैद रखा जायगा, अथवा जमानत-सम्बन्धी ऐसी शर्तों पर छोड़ दिया जायगा जो कि उचित और आवश्यक हों।

यह याद रखने योग्य है कि बाद की दो आज्ञाएँ उस समय तक नहीं दी जा सकती जब तक कि न्यायालय को यह सन्तोष न हो जाय कि कर्जदार ने अपने महाजनों को पराजय या विलम्ब करने के लिए या न्यायालय की कार्यवाही से बचने के लिए कोई कार्य किया हो। [धारा २१]

४. सुनवाई की कार्यवाही (Procedure of Hearing)—दरखास्त की सुनवाई के लिए निश्चित की गयी तारीख पर न्यायालय निम्नलिखित बातों का प्रमाण माँगेगा—

(i) कि महाजन अथवा कर्जदार, जैसी भी दशा हो, दरखास्त करने का अधिकारी है;

(ii) कि कर्जदार को, अगर वह किसी महाजन द्वारा आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये जाने पर हाजिर नहीं होता, आवेदन-पत्र को स्वीकार करने की आज्ञा की सूचना दे दी गयी है; तथा

(iii) कि कर्जदार ने दिवालियापन का ऐसा काम किया है जो कि उसके विरुद्ध कहा गया है।

न्यायालय, अगर कर्जदार उपस्थित है, उपस्थित महाजनों के सामने उसके आचरण, व्यवहार एवं सम्पत्ति की जाँच करेगा, और ऐसी जाँच के समय महाजन कुछ भी सवाल कर सकते हैं। [धारा २४]

५. आवेदन-पत्र को खारिज करना (Dismissal of Petition)—किसी महाजन द्वारा आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये जाने पर, अगर न्यायालय महाजन के आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने के अधिकार के प्रमाण से अथवा कर्जदार को आवेदन-पत्र की स्वीकृति की आज्ञा की सूचना से अथवा दिवालियापन के काम से सन्तुष्ट नहीं है, अथवा इस बात से सन्तुष्ट है कि कर्जदार अपना भुगतान करने योग्य है, अथवा अन्य किसी कारण से दिवालिया घोषित करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए, तब न्यायालय आवेदन-पत्र को खारिज कर देगा।

किसी कर्जदार द्वारा आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये जाने पर, अगर न्यायालय उसके आवेदन-पत्र को प्रस्तुत करने के अधिकार से सन्तुष्ट नहीं है, तो वह आवेदन-पत्र को खारिज कर देगा। [धारा २५]

अगर पहली दशा में आवेदन-पत्र खारिज किया जाता है, तो न्यायालय कर्जदार के प्रार्थना-पत्र पर ऐसे लेनदार के खिलाफ क्षतिपूर्ति के रूप में उचित जुर्माना कर सकता है, जो कि १००० रु० से ज्यादा नहीं होना चाहिए। [धारा २६]

दिवालिया घोषित करने की आज्ञा (Order of Adjudication)—[धाराएँ २७-३०]

कर्जदार या महाजन के दरखास्त देने पर यदि न्यायालय इस बात को स्वीकार

कर लेता है तो दूसरे पक्षों को यह खबर दी जाती है कि निश्चित दिन और तारीख को इस दरखास्त की सुनवाई होगी तथा उस दिन दोनों पक्षों को न्यायालय में हाजिर होना पड़ेगा। अगर न्यायालय को आवेदन-पत्र पाने पर इस बात का विश्वास हो जाता है कि दरखास्त देनेवाला व्यक्ति दरखास्त देने के योग्य है तथा उसने दिवालियापन का कार्य किया है और वह कर्ज का भुगतान करने में असमर्थ है तो वह एक दिवालिया घोषित करने की आज्ञा (adjudication order) देता है जिसके अनुसार उस कर्जदार को दिवालिया घोषित कर दिया जाता है। इंग्लैंड में सबसे पहले न्यायालय रिसीविंग ऑर्डर (receiving order) पास करता है। इसके अनुसार सबसे पहले ऑफिसियल रिसीवर (official receiver) बहाल किया जाता है। इसके बाद महाजनों की सभा होती है और उसमें यह तय किया जाता है कि कर्जदार को दिवालिया घोषित किया जाय या नहीं। किन्तु भारतवर्ष में आवेदन-पत्र प्राप्त करने के बाद ही न्यायालय द्वारा उचित प्रतीत होने पर दिवालिया घोषित करने की आज्ञा दी जाती है। न्यायालय अगर चाहे तो दरखास्त को अस्वीकार भी कर सकता है। जब कर्जदार यह साबित कर देता है कि उसके पास कर्ज का भुगतान करने के लिए पूरी सम्पत्ति है या ऋणदाता ने उसे कर्ज दिया ही नहीं है तो अदालत दिवालिया घोषित करने की आज्ञा नहीं देती है।

धारा १३ के मुताबिक ऋणदाताओं के द्वारा आवेदन-पत्र प्रस्तुत हो जाने पर यह बिना न्यायालय की आज्ञा के वापस नहीं किया जा सकता है। धारा १६ के अनुसार न्यायालय दरखास्त पेण्डिंग (pending) होने पर या दिवालिया घोषित करने की आज्ञा पास होने के पहले अपनी इच्छा के अनुसार अन्तरिम रिसीवर (interim receiver) को ऋणी की सम्पत्ति की सुरक्षा हेतु बहाल कर सकता है। यह सरकारी रिसीवर से इस अर्थ में भिन्न है कि सभी कामों को संभालते हुए भी अन्तरिम रिसीवर सरकारी रिसीवर की तरह कर्जदार की सम्पत्ति पर अधिकार नहीं पा लेता तथा इसकी बहानी दिवालिया घोषित करने की आज्ञा देने के पहले ही होती है।

### दिवालिया घोषित करने की आज्ञा का प्रभाव (Effects of Adjudication Order)

जब किसी कर्जदार को दिवालिया-न्यायालय (Insolvency Court) दिवालिया घोषित करने की आज्ञा (adjudication order) के द्वारा दिवालिया घोषित कर देता है तो ऐसी आज्ञा का निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है—

१. दिवालिये की सम्पत्ति का न्यायालय में निहित होना (Vesting of the property of the insolvent in the court)—दिवालिया व्यक्ति की सभी चल (भारत में या विदेश में स्थित) एवं अचल (केवल भारत में स्थित) सम्पत्ति पर अधिकार 'सरकारी प्रतिपुरुष' (official assignee) को रहता है और ऋणी को अपनी सम्पत्ति के प्रति किसी प्रकार का कार्य करना अमान्य (void) होता है। अतः जब कोई व्यक्ति दिवालिये से उसकी सम्पत्ति खरीदे तो उसे सम्पत्ति पर अच्छा स्वत्व (good title) प्राप्त नहीं हो सकता है। इस प्रकार, जब कोई व्यक्ति दिवालिये के कर्ज का भुगतान करे तो उसे राजकीय प्रापक को फिर से इस कर्ज का भुगतान करना पड़ेगा। सम्पत्ति का मूल्य प्राप्त करने के बाद उसे लेनदारों में वितरित कर दिया जायगा।

दिवालिये को अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में अन्य पक्षकारों के साथ व्यापार अथवा लेनदेन करने का कोई अधिकार नहीं रहता है। अन्य किसी व्यक्ति से अपनी सम्पत्ति का कोई भाग पुनः प्राप्त करने के लिए दिवालिया अपने नाम से मुकदमा नहीं कर सकता है। वह दिवालिया घोषित करने की आज्ञा देने के पहले दाखिल किये गये मुकदमों की पैरवी भी नहीं कर सकता है। विदेश में स्थित दिवालिये की सम्पत्ति में से चल सम्पत्ति तो उसकी भारत में स्थित सम्पत्ति के ही समान न्यायालय में निहित हो जायगी, लेकिन विदेश में स्थित अचल सम्पत्ति सरकारी प्रतिपुरुष में निहित नहीं होगी, जब तक कि उस देश का सन्नियम जहाँ पर वह सन्निधि स्थित है, इस प्रकार की अनुमति नहीं देती है।

२. दिवालिये के खिलाफ नये मुकदमे वर्जित (No fresh suits against the insolvent)—ऐसी आज्ञा के बाद वगैर न्यायालय की राय के कोई ऋणदाता दिवालिया व्यक्ति पर उम समय तक कोई मुकदमा नहीं कर सकता जब तक कि कचहरी अपना फैसला न दे दे। लेकिन निम्नलिखित हालतों में दिवालिये व्यक्ति पर मुकदमा किया जा सकता है—

(क) जब ऋणदाता सुरक्षित ऋणदाता (secured creditor) है।

(ख) जब न्यायालय से मुकदमा चलाने की आज्ञा प्राप्त कर ली गयी हो। न्यायालय निम्नलिखित हालतों में मुकदमा की आज्ञा देता है—

(i) यदि दिवालिया घोषित किये जाने के समय अभियोग का अन्त हो रहा हो।

(ii) जब मुकदमा चलाने के अधिकार की अवधि समाप्त (time barred) होने के कारण कर्ज के नष्ट होने की संभावना हो।

(iii) जब मुकदमा नहीं चलाने से उसके प्रमाण के नष्ट होने की संभावना हो।

३. वैधानिक कार्यवाही पर रोक (Stay of proceedings)—धारा २१ के मुताबिक अगर दिवालिया घोषित करने के समय कोई मुकदमा या कार्यवाही (proceedings) किसी अदालत के विचाराधीन हो, तो दिवालिया घोषित करने वाली कचहरी (Insolvency Court) इन्हें कुछ समय तक रोक सकती है।

४. अयोग्यताएँ (Disqualifications)—जब तक दिवालिया व्यक्ति अदालत द्वारा मुक्त (discharge) नहीं कर दिया जाता है तब तक वह निम्नांकित पदों के लिए अयोग्य माना जाता है—

(i) मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्ति;

(ii) किसी स्थानीय प्राधिकरण (local authority) के पद पर निर्वाचन;

(iii) किसी स्थानीय प्राधिकरण के मेम्बर के रूप में निर्वाचित होना, सदन में बैठना अथवा मतदान करना; और

(iv) किसी कम्पनी का संचालक बनना।

ऊपर लिखी गयी अयोग्यताओं के होते हुए भी दिवालिया आम चुनावों में अपने सामान्य मताधिकार का प्रयोग कर सकता है।

५. सम्पत्ति का हस्तांतरण (Transfer of property)—जब किसी सम्पत्ति का हस्तांतरण दिवालिया घोषित करने के दो साल पहले बिना किसी उचित प्रतिफल के या विवाह के लिए किया गया हो तो इसके लिए राजकीय प्रापक या सरकारी प्रतिपुरुष बाध्य नहीं होता तथा इस प्रकार का हस्तांतरण रद्द कर दिया जाता है।

६. संरक्षण-आज्ञा (Protection order)—कभी-कभी न्यायालय द्वारा संरक्षण-

आज्ञा (protection order) दी जाती है जिसके अनुसार दिवालिया व्यक्ति को न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न बन्दी ही बनाया जा सकता है। यदि वह पहले से गिरफ्तार है, तो उसे छोड़ दिया जाता है। [धारा ३१]

इस आदेश का उद्देश्य ईमानदार दिवालिये ऋणी द्वारा सरकारी तौर पर स्वयं को ऋण को पूर्णतः चुकाने के अयोग्य घोषित करने के बाद उसे उसके लेनदारों द्वारा तंग किये जाने से बचाना होता है। अगर न्यायालय ऋणी के हित में आवश्यक समझे तो वह दिवालिये द्वारा अपनी परिसम्पत्ति एवं दायित्वों की अनुसूची (schedule of assets and liabilities) दाखिल करने के पहले भी जारी कर सकता है। आदेश देते समय न्यायालय अगर चाहे तो संरक्षण की अवधि भी निश्चित कर दे सकता है।

७. कपटपूर्वक लाभ (Fraudulent Preference)—जब दिवालिये व्यक्ति ने दिवालिया घोषित होने के तीन महीने पहले किसी एक ऋणदाता को अन्य ऋणदाताओं के ऊपर कपटपूर्वक लाभ (fraudulent preference) पहुँचाने के उद्देश्य से किसी सम्पत्ति का हस्तांतरण कर दिया हो तो वह रद्द हो जाता है।

८. प्रबन्धक की नियुक्ति (Appointment of a Manager)—न्यायालय को ऋणी के व्यापार तथा लेनदारों के सामान्य हितों के दृष्टिकोण से जब भी आवश्यक मालूम हो, उचित शर्तों पर सरकारी प्रतिपुरुष की सहायता के लिए विशेष प्रबन्धक नियुक्त करने का अधिकार होता है।

संरक्षण-आज्ञा (Protection Order, Sec. 31)

महाप्रांतीय नगर-शोधाक्षमता सन्नियम (The Presidency Towns Insolvency Court) की धारा २५ के मुताबिक 'संरक्षण-आज्ञा' दिवाला-न्यायालय (Insolvency Court) की वह आज्ञा है जिसके द्वारा दिवालिये को न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न बन्दी ही बनाया जा सकता है। यदि वह पहले से गिरफ्तार है या बन्दी है, तो उसे मुक्त कर दिया जाता है। अतः यह आज्ञा दिवालिये को ऋणों के प्रति सुरक्षा प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में, 'संरक्षण-आज्ञा' दिवालिया को गिरफ्तार करने अथवा कैद में रखने से बचानेवाली एक आज्ञा होती है।

सुरक्षा-आज्ञा देने का मुख्य उद्देश्य यह है कि इस आज्ञा के बाद ऋणदाता यदि चाहे भी तो अकारण दिवालिये को तंग (harass) नहीं कर सकता क्योंकि उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पर सरकारी प्राप्तिकर्ता की देखरेख रहती है। प्रायः संरक्षण-आज्ञा दिवालिये द्वारा दिवालिये की सूची (insolvent's schedule) को सरकारी प्रतिपुरुष के सम्मुख प्रस्तुत करके एक प्रमाण-पत्र लेकर न्यायालय के सामने पेश करने के बाद ही दी जाती है। किन्तु न्यायालय अपनी इच्छा के अनुसार दिवालिये की सूची प्रस्तुत करने के पहले भी संरक्षण दे सकता है।

विशेष प्रबन्धक (Special Manager)

कभी-कभी ऋणी की सम्पत्ति इस प्रकार की होती है कि ऋणदाताओं की भलाई के लिए सरकारी प्रतिपुरुष को मदद पहुँचाने के विचार से एक विशेष प्रबन्धक या मैनेजर को बहाल करना आवश्यक हो जाता है। धारा १९ के अनुसार अगर



न्यायालय विशेष प्रबन्धक की बहाली पर राजी हो जाता है तो वह किसी भी अवधि के लिए बहाल कर सकता है और उसका कार्य सरकारी आदातों के कार्यों में मदद पहुँचाना रहेगा। अदालत के निर्देशानुसार हिसाब-किताब रखने के लिए विशेष मैनेजर को जमानत (security) भी देनी पड़ती है, वहाँ विशेष प्रबन्धक का पारिश्रमिक न्यायालय ही तय करता है।

### संरक्षित व्यवहार (Protected Transaction; Sec. 57)

महाप्रान्तीय नगर-स्रोधा-क्षमता सन्नियम (The Presidency Towns Insolvency Act of 1909) की धारा ५७ के मुताबिक तथा इंगलिश दिवाला-नियम (English Bankruptcy Act of 1914) की धारा ४५ के अनुसार यदि निम्न-लिखित कोई व्यवहार (transactions) दिवालिया घोषित करने की आज्ञा (adjudication order)\* के पूर्व हुआ हो और जब ऐसा व्यवहार होने के समय उस मनुष्य को इसकी खबर न हो कि कर्जदार या किसी ऋणदाता ने कर्जदार को दिवालिया घोषित करने के लिए दिवालिया घोषित करनेवाले न्यायालय में दरखास्त दी है तो ऐसे व्यवहार वैध (legal) होंगे तथा ये सुरक्षित व्यवहार कहे जायेंगे—

- (i) किसी ऋणदाता को दिवालिये द्वारा किये गये कर्ज का भुगतान।
  - (ii) दिवालिये को किसी तरह के धन का भुगतान या किसी सम्पत्ति की सुपुर्दगी (delivery)।
  - (iii) दिवालिये द्वारा मूल्यवान प्रतिफल (valuable consideration) के लिए किसी वस्तु का हस्तान्तरण।
  - (iv) दिवालिये के साथ या उसके द्वारा किसी मूल्यवान प्रतिफल (valuable consideration) के लिए की गयी प्रसंविदा (contract) या व्यवहार।
- किन्तु ऊपर की सभी परिस्थितियों में भुगतान या सुपुर्दगी व्यापार के सिलसिले में सच्चे (bonafide) भाव से की जानी चाहिए।

---

\* In English Law it is Receiving Order.

## भूत-सम्बन्धी सिद्धान्त (Doctrine of Relation Back)

यह सिद्धान्त बतलाता है कि किसी कर्जदार के दिवालिया घोषित हो जाने पर दिवालिये की आज्ञा (adjudication order) किस समय से अथवा कितने दिन पूर्व से लागू होती है। वास्तव में जब तक न्यायालय किसी कर्जदार को दिवालिया घोषित नहीं करता है तब तक उसे दिवालिया नहीं कहा जा सकता तथा उसकी सम्पत्ति सरकारी आदाता (Govt. receiver) या सरकारी अधिन्यासी (official assignee) अपने अधिकार में उस आज्ञा के पहले नहीं ले सकता है। किन्तु दिवालिया घोषित करने की आज्ञा पास हो जाने पर दिवालिये की सम्पत्ति पर राजकीय प्रापक या सरकारी अधिन्यासी का अधिकार दिवालिया आरम्भ होने के दिन से ही हो जाता है, आज्ञा होने के दिन से नहीं। अतः यह कहा जाता है कि सरकारी आदाता या अधिन्यासी का अधिकार आज्ञा से पूर्व किसी पिछले दिन से सम्बद्ध (relate back to some anterior date) है।

अंगरेजी सन्निधयम के मुताबिक दिवालियापन (bankruptcy) शुरू होने तथा आज्ञा-पत्र पाने के बीच दिवालिये के साथ किये गये सभी व्यवहार (transactions) निम्नलिखित हालतों में सुरक्षित होते हैं—(१) यदि उस व्यक्ति को दिवालियेपन की कोई भी खबर प्राप्त न हो तथा यदि व्यवहार सद्भावना के साथ किया गया हो। (२) किन्तु वैसे व्यक्ति जिनको दिवालियेपन की सूचना हो दिवालिये के साथ किसी तरह का व्यवहार नहीं कर सकते हैं। भूत-सम्बन्धी सिद्धान्त यह बतलाता है कि उस मनुष्य के सम्बन्ध में जो दिवालिया घोषित किया जा चुका है, उसकी सभी सम्पत्ति दिवालियापन का पहला कार्य करने के दिन से ही ऐसा काम करने के तीन महीने के अन्दर दिवालियापन के धरोहरी (trustee in bankruptcy) में निहित (vest) हो जाती है। किन्तु भारतीय सन्निधयम के अनुसार दिवालिया होने के दिन से लेकर दिवालिया घोषित करने की आज्ञा पाने के दिन तक के सभी व्यवहार निम्नलिखित हालतों में सुरक्षित रहते हैं—

१. यदि व्यक्ति को दिवालियापन की दरखास्त की प्रस्तुति के विषय में किसी प्रकार की जानकारी न हो, तथा

२. वह सद्भावना के साथ कार्य करता हो।

अतः एक मुकदमे के फैसले\* के अनुसार दिवालियापन के कार्य की सूचना दिवालिये के साथ व्यवहार करनेवाले व्यक्ति को प्राप्त होनेवाली सुरक्षा से वंचित नहीं रखती है, किन्तु इंगलिश सन्निधयम में ऐसी बात नहीं है।

महाप्रांतीय नगर-शोधा-क्षमता सन्निधयम (The Presidency Towns

\* Bhagwandas & Co. vs. Chuttan Lal (1921) 43 All. 427. & Mercantile Bank of India Ltd. vs Official Assignee, Madras (1916), 39 Mad. 250.

Insolvency Act) के अनुसार दिवालिया घोषित करने की आज्ञा दिवालियापन के प्रथम कार्य से सम्बद्ध होता है तथा जिस दिन दिवालिया का कार्य हुआ उसी दिन से दिवाला (insolvency) प्रारम्भ होता है। किन्तु प्रान्तीय शोधा-क्षमता सन्निधय (Provincial Insolvency Act) की धारा २२ (७) के मुताबिक दिवालिया घोषित करने की आज्ञा (adjudication order) उस पिछले दिन से सम्बद्ध है तथा प्रभावित होगी जिस दिन दिवालिया घोषित करने के लिए दरखास्त प्रस्तुत की जाती है। अतः जिस दिन आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया जाता है उसी दिन से दिवाला शुरू होता है। इस प्रकार, कर्जदार की सम्पत्ति पर सरकारी अधिन्यासी का अधिकार दिवालिया घोषित करने के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये जाने से तीन महीने पूर्व तक दिवालियापन का प्रथम कार्य करने के दिन से आरम्भ होता है। लेकिन कर्जदार की सम्पत्ति पर राजकीय प्रापक (official receiver) का अधिकार दिवालिया घोषित करने की दरखास्त प्रस्तुत करने के दिन से होता है।

इस सिद्धान्त का यह प्रभाव होता है कि दिवाला प्रारम्भ होने के दिन से जब किसी प्रकार की प्रतिभूति दी जाती है या लेनदेन का व्यवहार होता है तो वह दिवाला शुरू होने के दिन से रद्द समझा जाता है तथा उसे सरकारी आदाता अथवा अधिन्यासी के खिलाफ वैध नहीं किया जा सकता।

### दिवालिया की सूची (Insolvent's Schedule; Sec. 24)

धारा २४ के मुताबिक कर्जदार (ऋणी) के आवेदन-पत्र देने पर दिवालिया घोषित करने की आज्ञा पास होने के तीस दिनों के अन्दर या ऋणदाताओं द्वारा आवेदन-पत्र देने पर ऐसी आज्ञा की सूचना कर्जदार को मिलने के ३० दिनों के अन्दर दिवालिया व्यक्ति की अपनी सम्पत्ति तथा कर्ज का पूर्ण विवरण न्यायालय में पेश कर देना चाहिए। सम्पत्ति तथा कर्ज का विवरण एक नियमित फॉर्म (prescribed form) में भरकर दे देना चाहिए। यदि निश्चित समय के अन्दर दिवालिया व्यक्ति इस प्रकार की सूची प्रस्तुत न कर सके तो सरकारी अधिन्यासी (official assignee) उसे स्वयं तैयार कर लेगा। दिवालिया व्यक्ति इस उपेक्षा (neglect) के लिए बन्दी भी बनाया जा सकता है। इसके प्रस्तुत करने के बाद ही साधारण नया न्यायालय रक्षण-आज्ञा (protection order) देता है।

### ऋणदाताओं की सूची (Schedule of Creditors)

प्रान्तीय दिवाला सन्निधय की धारा ३३ के मुताबिक महाजनों की सूची न्यायालय द्वारा ही तैयार की जाती है। किन्तु न्यायालय इसे तैयार करने के पहले महाजनों के अधिकारों को पूरी छानबीन कर लेता है।

### दिवालिया घोषित करने की आज्ञा रद्द करना (Annulment of Adjudication Order) [धारा ३५-३७]

निम्नलिखित हालतों में न्यायालय को दिवालिया घोषित करने की आज्ञा (adjudication order) रद्द करने का अधिकार है—

(1) यदि न्यायालय के विचार से कर्जदार को दिवालिया घोषित करना उचित प्रतीत न होता हो। अतः किसी नाबालिग अथवा मृतक (deceased) के विरुद्ध ऐसी आज्ञा देने पर उसे रद्द किया जा सकता है।

(ii) जब अदालत को इस बात का विश्वास हो जाय कि सम्पूर्ण कर्ज का भुगतान कर दिया गया है। अतः यदि ब्याज-सहित सभी रकम चुका दी गयी हो तो ऐसी आज्ञा रद्द की जा सकती है।

(iii) दिवालिया घोषित करने की आज्ञा कर्जदार के आवेदन-पत्र पर दी गयी हो।

(iv) जब दिवालिया घोषित करने के लिए अदालत से स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होने पर भी स्वीकृति प्राप्त न की गयी हो।

(v) न्यायालय कर्जदार द्वारा निबटारा (compromise) या व्यवस्था की योजना (scheme of arrangement) प्रस्तुत किये जाने पर इसे स्वीकार कर ले।

(vi) यदि दिवालिया व्यक्ति न्यायालय में निश्चित अवधि के अन्दर अपनी मुक्ति (discharge) के लिए आवेदन-पत्र नहीं देता हो अथवा आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने के बाद उसकी सुनवाई के दिन (date of hearing) अनुपस्थित रहता हो।

(vii) जबकि किसी दूसरी अदालत में समानवर्ती (concurrent) कार्यवाही (proceedings) पेण्डिंग (pending) हो तो एक कर्जदार दो या दो से अधिक न्यायालयों में दिवालिया घोषित किया जा सकता है। जैसे, वह जिस स्थान पर रहता है वहाँ तथा जहाँ उसका व्यापार होता है वहाँ वह दिवालिया घोषित किया जा सकता है। ऐसी हालत में जो न्यायालय अधिक उचित रीति से तथा विधिपूर्वक कार्य कर सकता है उसी के यहाँ ऋणी को दिवालिया घोषित करने का काम सुपुर्द कर दूसरी अदालत अपनी आज्ञा रद्द कर देती है।

### रद्द करने की सूचना तथा प्रभाव (Notice and Effect of Annulment)

जब कोई आज्ञा रद्द की जाती है तो उसकी सूचना सर्वसाधारण को किसी सरकारी गजट (gazette) या स्थानीय अखबारों द्वारा दे दी जाती है। इसकी सूचना देना आवश्यक है।

जब न्यायालय या राजकीय आदाता या सरकारी अधिन्यासी ने आज्ञा रद्द करने के पहले किसी प्रकार का हस्तान्तरण, वितरण, विक्रय या भुगतान किया हो, उसे वैध (legal) माना जाता है, किन्तु उसके बाद दिवालिये की सम्पत्ति पर उसी का अधिकार होता है जिसे इस काम के लिए न्यायालय नियुक्त करता है। यदि ऐसे व्यक्ति की बहाली नहीं हो तो सम्पत्ति पर कर्जदार का ही अधिकार रहेगा। यदि दिवालिया घोषित करने के बाद कर्जदार को कारावास से मुक्त किया गया हो तो इसके रद्द होने के साथ ही उसे फिर से कारावास दे दिया जाता है तथा मुक्त करने के पूर्व जो भी आदेश उसके विरुद्ध लागू थे, उन्हें फिर से लागू किया जायगा।

### व्यवस्था की योजना एवं रचना (Composition & Scheme of Arrangement) [धाराएँ ३८-४०]

दिवालिया घोषित करने की आज्ञा के बाद दिवालिया रचना की योजना (scheme of composition) का प्रस्ताव कर सकता है अथवा व्यवस्था की योजना (scheme of arrangement) के लिए प्रस्ताव कर सकता है। इस योजना में कर्जदार अपनी सम्पत्ति तथा कर्ज की सम्पूर्ण कार्यवाही का विवरण (statement of affairs) एक सूची (schedule) के रूप में देता है। इस योजना की एक प्रति

जितने भी ऋणदाता होते हैं उनके पास भेज दी जाती है और एक निश्चित तारीख को ऋणदाताओं की बैठक बुलायी जाती है तथा सरकारी आदाता या अधिन्यासी इस योजना को उनके सम्मुख प्रस्तुत करता है। यदि ऋणी योजना ऋणदाताओं के बहुमत (majority) से, जो सम्पूर्ण कर्ज का कम-से-कम तीन-चौथाई हिस्सों का ऋणदाता हो, स्वीकृत हो जाय तो योजना ऋणदाताओं द्वारा विधिवत् स्वीकृत समझी जाती है। ऐसी योजना की स्वीकृति या अस्वीकृति ऋणदाता राजकीय आदाता या सरकारी अधिन्यासी के पास पत्र द्वारा भी कर सकता है। इसका प्रभाव वही होता है जो सभा में उपस्थित होकर वोट देने पर हो सकता है। ऋणदाताओं द्वारा इसका संशोधन भी किया जा सकता है। इसके बाद सरकारी कार्यकर्ता या प्रतिपुरुष इस योजना को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करने की तिथि और समय की सूची प्रत्येक ऋणदाता को देगा तथा उस निश्चित तिथि को प्रस्तुत करेगा। सभा में योजना के पक्ष में वोट देने के बावजूद कोई ऋणदाता इस योजना का विरोध कर सकता है। न्यायालय पहले व्यवस्था की शर्तों तथा दिवालिये के आचरण के विषय में सरकारी प्रतिपुरुष की रिपोर्ट सुनेगा। इसके बाद यदि योजना अदालत को उचित प्रतीत होगी तो उसे स्वीकार कर लेगी। न्यायालय के सामने कोई भी ऋणदाता इस योजना के खिलाफ अपना विचार प्रकट कर सकता है, चाहे उसने अपनी स्वीकृति भी क्यों न दे दी हो। यदि न्यायालय यह देखता है कि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनमें योजना को अस्वीकार करना या उसमें कोई शर्त लगाना आवश्यक है तो असुरक्षित कर्ज (unsecured debt) पर जब तक कि रुपये में चार आने (पच्चीस पैसे) की प्रतिभूति प्राप्त नहीं हो जाय तब तक न्यायालय उसे स्वीकार नहीं कर सकता। यदि न्यायालय हर एक बात से सन्तुष्ट हो गया हो तो दिवालिया करने की आज्ञा वह रद्द कर देता है। इसके बाद योजनानुसार ही महाजनों के बीच कर्जदार की सम्पत्ति का बँटवारा होता है तथा वे सभी इसे मानने के लिए बाध्य किये जाते हैं।

### व्यवस्था की योजना एवं रचना रद्द करना (Annulment of Composition and Scheme of Arrangement)

निम्नलिखित हालतों के किसी पत्र के अन्दर रचना या व्यवस्था की योजना न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है—

(i) जब योजनानुसार किसी किस्त (instalment) का भुगतान नहीं किया गया हो।

(ii) जब न्यायालय के विचार में योजना बिना अन्याय या विलम्ब के कार्यान्वित न की जा सकती हो।

(iii) यदि न्यायालय को यह प्रतीत हो कि योजना की स्वीकृति कपट द्वारा (by fraud) प्राप्त की गयी है। [धारा ४०]

### योजना रद्द करने का प्रभाव (Effect of the Annulment of Composition of Scheme of Arrangement)

धारा ३१ के अनुसार व्यवस्था की योजना तथा रचना रद्द करने का प्रभाव यह होता है कि (१) कर्जदार पुनः दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तथा (२) उसकी सम्पत्ति एक बार फिर राजकीय आदाता या सरकारी अधिन्यासी में निहित

(vest) हो जाती है। (३) किन्तु इस योजना या रचना का पालन करते समय योजना के पहले की सम्पत्ति का हस्तान्तरण या किसी रकम का भुगतान करना जरूरतपूर्ण होता है। इसी प्रकार यदि योजना का पालन करते समय कोई पृथक् ऋणी आ जाय तो उसे साधारण शुमार कर लिया जाता है। (४) यदि कोई व्यक्ति योजनानुसार भुगतान के लिए प्रतिभू (security) बना हो तो पुनः दिवालिया घोषित करने (re-adjudication) के बाद मुक्त हो जाता है। किन्तु रचना की योजना (composition scheme) की स्वीकृति (approval) वैसे ऋणदाताओं पर लागू नहीं होती है जिनको 'ऑर्डर ऑफ डिचार्ज' (order of discharge) के द्वारा उन्मुक्त (discharged) नहीं किया जा सकता है।

### दिवालिया ऋणी के कर्तव्य (Duties of the Insolvent Debtor)

धारा २३ के अनुसार किसी भी दिवालिये के निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं—

(i) जब तक किसी बीसारी या किसी दूसरे पर्याप्त कारण की वजह से लाचार हो रहना न पड़े तो दिवालिये को महाजनों की उस सभा में अवश्य ही उपस्थित होना चाहिए जिसमें उसे हाजिर होने के लिए सरकारी अधिन्यासी ने कहा हो तथा उसे महाजनों द्वारा पूछे जाने पर प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना चाहिए।

(ii) दिवालिये को चाहिए कि वह कम्पनी के उपार्जन (realisation) तथा महाजनों के बीच बँटवारा करने में यथाशक्ति सहायता करे।

(iii) दिवालिये को निम्नलिखित कार्य अवश्य करना चाहिए—

(क) अपनी सम्पत्ति तथा महाजनों के सम्बन्ध में पूर्ण सूची की जानकारी करना कि उन्हें कितना देना है एवं कितना प्राप्त करना है।

(ख) अपनी सम्पत्ति तथा महाजनों के सम्बन्ध में जो पुछा जाय उसका ठीक-ठीक उत्तर देना।

(ग) सरकारी अधिन्यासी (official assignee) या विशेष (special) मैनेजर के समक्ष समयानुसार उपस्थित करना।

(घ) वकील को हस्तान्तरण तथा रक्का का अधिकार देना।

(ङ) अपनी सम्पत्ति तथा उसका बँटवारा महाजनों के बीच करने के सम्बन्ध में उन सभी कार्यों को करना जिन्हें सरकारी आदाता विशेष प्रबन्धक (special manager) या न्यायालय करना चाहे।

(iv) उपर्युक्त कर्तव्यों का जान-बूझकर पालन न करने पर या पालन करने में त्रुटि करने पर दिवालिया अदालत की अप्रतिष्ठा करने का अपराधी (guilty of contempt of court) समझा जाता है।

(v) यदि वह अपनी सम्पत्ति के किसी भाग पर, जिसका बँटवारा होना चाहिए, सरकारी आदाता का अधिकार नहीं होने देता है तो वह अदालत की अप्रतिष्ठा करने का अपराधी (guilty of contempt of court) होगा, यद्यपि उसे मुक्ति-आज्ञा (order of discharge) भी दे दी गयी हो।

प्रान्तीय शोधा-अमता सन्नियम (Provincial Insolvency Act) में दिवालिये के कर्तव्यों को दो मुख्य भागों में बाँटा गया है—

(i) दिवालिया घोषित (adjudication) करने के पूर्व, और

(ii) दिवालिया घोषित करने के पश्चात्।

(1) दिवालिया घोषित करने के पूर्व दिवालिये के कर्तव्य (Duties of an Insolvent prior to Adjudication Order; Sec. 22)

धारा २२ के अनुसार दिवालिये को दिवालिया घोषित होने के पहले, किन्तु दरखास्त देने के बाद, निम्नांकित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए—

१. दिवालिया घोषित करने के लिए दरखास्त देने के बाद शीघ्र ही ममस्न लेखा-पुस्तकें पेश करनी चाहिए।

२. अपनी सम्पत्ति तथा ऋणदाताओं के सम्बन्ध में पूर्ण सूची की जानकारी करना कि उन्हें कितना देना और कितना पाना है।

३. अपनी सम्पत्ति तथा महाजनों के विषय में न्यायालय द्वारा पूछे गये सभी प्रश्नों का यथोचित उत्तर देना।

४. न्यायालय तथा राजकीय आदाता के सम्मुख आवश्यकतानुसार उपस्थित रहना।

५. ऐसे स्वकों का निर्माण करना तथा सम्पत्ति के सम्बन्ध में वैसे प्रत्येक कार्य करना जिसे न्यायालय या प्राप्तिकर्त्ता करना उचित समझे।

ऊपर लिखे कर्तव्यों का पालन न करने पर दिवानिया अधिक-से-अधिक एक साल की सजा के लिए भागी होता है।

(ii) दिवालिया घोषित करने के पश्चात् दिवालिये के कर्तव्य (Duties of an Insolvent after Adjudication)

धारा २२ के अनुसार दिवालिया घोषित होने के बाद दिवालिये व्यक्ति के निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं—

(क) उनका सबसे प्रधान कार्य है राजकीय आदाता (official receiver) को कर्ज की सम्पत्ति की उगाही तथा बँटवारे में यथाशक्ति सहायता पहुँचाना।

(ख) उसे परीक्षा के लिए न्यायालय में उपस्थित होना पड़ेगा, चाहे वह वहाँ से २०० मील की दूरी पर ही क्यों न रहता हो।

(ग) सरकारी रिसीवर के आदेशानुसार तथा न्यायालय के आज्ञानुसार सम्पत्ति के सम्बन्ध में सभी कार्यों को करना।

(घ) सभी ज्ञात बातें सरकारी रिसीवर को बतलाना तथा सम्पत्ति और कर्ज के लेनदार और देनदार की पूर्ण सूची (list) प्रस्तुत करना।

(ङ) उपर्युक्त कर्तव्यों का पालन करने में अथवा अपनी सम्पत्ति का कोई हिस्सा जिसका बँटवारा करना है, बँटवारा करने में त्रुटि करने पर दिवालिया एक साल की सजा भुगतने का भागी हो सकता है।

कर्ज का सबूत (Proof of Debts)—[धाराएँ ४५-५०]

हमलोग यह जान चुके हैं कि जब कोई कर्जदार दिवालिया घोषित किया जाता है तो उसके खिलाफ कोई भी महाजन मुकदमा नहीं चला सकता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि महाजन के कर्ज का भुगतान नहीं किया जायगा। सभी महाजनों को कर्जदार के धन में से उचित हिस्सा (equitable share) दिया जाता है। इसलिए जो महाजन कर्जदार के धन में से कर्ज देने की हैसियत में अपना हिस्सा लेना चाहता है उन्हें सबसे पहले दिवालिये के खिलाफ कर्ज का सबूत (debt

provable in insolvency) देना पड़ता है। कर्ज स्थापित करने के तरीके को 'कर्ज का सबूत' कहते हैं।

प्रान्तीय शोध-क्षमता सन्निधम की ४९वीं धारा के अनुसार कर्ज का सबूत देने का निम्नलिखित तरीका है—

महाजन को सबसे पहले चाहिए कि एक रजिस्टर्ड चिट्ठी (registered letter), जिसमें यह लिखा हो कि कर्जदार के यहाँ कितना कर्ज है, अदालत में भेजे। उस चिट्ठी में कर्ज का पूरा विवरण रसीद-सहित (यदि कोई रसीद हो तो) भेजना चाहिए। अदालत में दोनों पक्षों की सुनवाई होगी। फिर सरकारी रिसीवर की रिपोर्ट पर विचार किया जायगा। इसके बाद न्यायालय अपना यह फैसला देगा कि उसने कर्ज को स्वीकार किया या नहीं। इसके बाद अदालत सभी महाजनों तथा उनके कर्ज की एक सूची (schedule) तैयार करती है। अगर सूची तैयार होने के पहले कोई महाजन अपने कर्ज का सबूत न दे सका तो वह दिवालिये की मुक्ति (discharge) के पहले तक दे सकता है। किन्तु मुक्ति के पहले तक यदि किसी ने अपने कर्ज का सबूत नहीं दिया तो उसे फिर सबूत देने का मौका नहीं दिया जाता और न उसे कर्ज का भुगतान कराने का अधिकार ही रहता है। ऐसा कर्ज, जिसके दिवाले का सबूत न्यायालय में देना आवश्यक नहीं (debts not provable in insolvency) है, दिवालिये की मुक्ति से प्रभावित नहीं होता।

महाप्रान्तीय नगर शोध-क्षमता सन्निधम (The Presidency Towns Insolvency Act) के मुताबिक कर्ज का सबूत उसी तरह से दिया जाता है जिस तरह प्रान्तीय शोध-क्षमता सन्निधम (Provincial Insolvency Act) में दिया जाता है। केवल फर्क इस बात का है कि इसमें सबूत सरकारी अधिन्यासी (official assignee) के पास दिया जाता है, न्यायालय में नहीं।

### सुरक्षित महाजनों द्वारा सबूत (Proof by Secured Creditors)

सुरक्षित (secured) महाजन की स्थिति दूसरे महाजनों से हमेशा भिन्न होती है। उसके लिए न्यायालय में कर्ज का सबूत देना कोई जरूरी नहीं होता। अगर वह दिवालिया कार्यवाही (insolvency proceedings) से लाभ उठाना चाहे तो उसके लिए निम्नलिखित तीन रास्ते खुले हुए हैं—

(i) जिस सम्पत्ति की जमानत पर उसने कर्ज दिया है उससे वह कर्ज की रकम वसूल कर सकता है। अगर उस सम्पत्ति से कुछ कर्ज का भुगतान नहीं होता हो तो कमी (deficiency) के लिए कर्ज का सबूत दे सकता है।

(ii) वह सभी महाजनों की भलाई के लिए जमानत में दी गयी सम्पत्ति का परित्याग कर सम्पूर्ण कर्ज के लिए दिवाला-न्यायालय (insolvency court) में कर्ज का सबूत दे सकता है।

(iii) वह जमानत की सम्पत्ति का मूल्य तथा कर्ज की जमानत के रूप में दी गयी 'जमानत' का पूरा विवरण कर्ज के सबूत में देकर जमानत की कीमत को घटाकर शेष रकम के लिए दिवाला-न्यायालय में दावा (claim) कर सकता है।

### ब्याज का सबूत (Proof for Interest)

साधारणतः ऋणी के दिवालिया घोषित हो जाने के दिन से कर्ज पर सूद नहीं दिया जाता है, अतः दिवालिया घोषित होने के बाद वाले ब्याज के लिए ऋणदाता



द्वारा दिये गये सवृत को अदालत अस्वीकार कर देती है। किन्तु जब कर्जदार की सम्पत्ति इतनी काफी होती है कि सभी कर्जों का भुगतान कर देने के बाद भी कुछ शेष बच जाता है तो वैसी हालत में दिवालिया घोषित हो जाने के बाद के समय के लिए भी सूद देय हो सकता है। यदि कर्ज की रकम माँग करने पर देय है तो माँगने के दिन से या किसी निश्चित तिथि (due date) पर देय है तो उस तिथि से लेकर दिवालिया घोषित करने के दिन तक व्याज का सवृत दिया जा सकता है। जब पहले से व्याज की दर तय नहीं रहती है तो न्यायालय साधारणतः ६% प्रतिवर्ष की दर तय करता है। यदि दर पहले से तय रहे तो अनुचित रहने पर अदालत को 'अनुचित व्याज वाले ऋण-सन्निधय' (Usurious Loans Act, 1818) के अनुसार उसे घटा देने का अधिकार है।

---

## दिवालिये की सम्पत्ति (Insolvent's Property)

### सम्पत्ति की परिभाषा

धारा २ (c) के मुताबिक सम्पत्ति में वैसा कोई भी धन शामिल किया जा सकता है जिसपर अथवा जिसके लाभ पर किसी व्यक्ति को उसके व्यवस्थापन (disposition) का अधिकार प्राप्त हो, जिसे वह अपनी भलाई के लिए इस्तेमाल कर सकता हो। यहाँ पर सम्पत्ति का मतलब वैसी सम्पत्ति से है जिसका वंटवारा महाजनों में किया जा सके। प्रत्येक मूल्यवान् वस्तु पर का अधिकार इस अर्थ में धन कहलाता है। इसमें प्रत्येक प्रकार की चल तथा अचल सम्पत्ति पर का अधिकार जिसका मूल्यांकन रूपों में लगाया जा सके, सम्पत्ति कहा जाता है। इस प्रकार नकद रूपया, सामग्री, मकान, जमीन, अभियोग के योग्य दावे (actionable claims), लाभ, व्याज, शेयर-सुविधा इत्यादि सम्पत्ति के साधन कहे जा सकते हैं। धारा ८५ के अनुसार जब दिवालिये की सम्पत्ति स्टॉक (stock), जहाज, शेयर या किसी दूसरी सम्पत्ति के रूप में हो तो सरकारी अधिन्यासी ऐसी सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। इसी तरह बैंकर, एजेंट, वकील या किसी दूसरे व्यक्ति के पास यदि दिवालिये मनुष्य की कोई सम्पत्ति या जमानत के रूप में कोई सम्पत्ति हो तो उन्हें उसे सरकारी अधिन्यासी के हवाले कर देना चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते तो न्यायालय की बातों की अप्रतिष्ठा करने की वजह से अपराधी ठहराये जा सकते हैं। सन्निधम ने न्यायालय को किसी मकान या कमरे को, जहाँ पर दिवालिये की सम्पत्ति के छिपाने का शक हो, ढूँढ़ने (search) के लिए वारंट जारी करने का भी अधिकार दिया है। फिर धारा ५९ तथा ६० के अनुसार यदि कर्जदार किसी सरकारी सेना (army) में भरती हो, सामुद्रिक जहाजों (navy) में या दीवानी (civil) कचहरी में कर्मचारी हो तो उसकी तनखाह भी जितना के लिए राजकीय आदाता का अधिकार होगा और जितना न्यायालय उचित समझेगा महाजनों में बाँट सकता है।

### महाजनों के वितरण-योग्य सम्पत्ति (Property divisible amongst Creditors)

निम्नलिखित सम्पत्तियाँ महाजनों के बीच बाँटी जा सकती हैं—

१. दिवालिया होने के आरम्भ में कर्जदार के पास जो सम्पत्ति हो।
२. कर्जदार के दिवालिया घोषित होने के बाद, लेकिन मुक्ति (discharge) पाने के पहले, जिस सम्पत्ति पर कर्जदार का अधिकार हो जाय। इसे दिवालिया होने के बाद की अर्जित सम्पत्ति (after acquired property) कहते हैं।
३. दिवालिया आरम्भ होने के बाद, किन्तु मुक्ति पाने के पहले कर्जदार का जिस सम्पत्ति पर व्यवस्थापन (disposal) का अधिकार प्राप्त हुआ हो तथा जिसे उसने अपने लाभ के लिए ग्रहण किया हो।

४. व्यापार की ऐसी वस्तु जिसपर कर्जदार का अधिकार (possession) हो तथा उसकी आज्ञा पर उसका व्यवस्थापन होता हो अर्थात् वह उस सम्पत्ति का ख्याति-प्राप्त स्वामी (reputed owner) हो।

वितरण नहीं करने योग्य सम्पत्ति (Property not Divisible)

धारा ५२ के अनुसार निम्नलिखित सम्पत्तियाँ महाजनों के बीच बाँटने योग्य नहीं हैं—

१. किसी अन्य व्यक्ति के हित के लिए किसी व्यक्ति की सम्पत्ति अपने अधिकार में धरोहर या अमानत (trust) के रूप में रखी रहे तो इसी में वह कर्जदार की सम्पत्ति नहीं हो जाती और न उसका बँटवारा ही महाजनों में किया जा सकता है। अतः यदि कर्जदार किसी सम्पत्ति को निक्षेपी (bailee), फैक्टर (factor), नीलाम-कर्त्ता इत्यादि के रूप में रखता हो तो उसका उस सम्पत्ति पर काल्पनिक अधिकार (fiduciary possession) होगा तथा उस कर्जदार के दिवालिया होने पर ऐसी सम्पत्ति सरकारी आदाता या अधिन्यासी में निहित नहीं होगी।

२. व्यापार के उपकरण या साधन (tools), पहनने-ओढ़ने के आवश्यक वस्त्र, बिस्तर, रसोई के बरतन और कर्जदार की, उसकी स्त्री की तथा उसके पुत्र की आवश्यक वस्तु इत्यादि को महाजनों के बीच नहीं बाँटा जा सकता है। किन्तु इन सबों की कीमत सम्मिलित रूप से तीन सौ रुपये से अधिक न हो। प्रांतीय शोधा-क्षमता सन्निधय (Provincial Insolvency Act) ने बतलाया है कि धन जो कोड ऑफ सिविल प्रोसेड्यूर (Code of Civil Procedure, 1908) की ६०वीं धारा के अनुसार विक्री करने से मुक्त (exempt) है, ये सम्पत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) पहनने के आवश्यक वस्त्र, रसोई के बरतन, कर्जदार, उसकी स्त्री तथा उसके बच्चों का बिछावन तथा ऐसे व्यक्तिगत गहने, जिनको धार्मिक दिवार में अलग नहीं किया जा सकता है।

(ii) शिल्पकार के उपकरण (tools) और यदि कर्जदार कृषक है, तो कृषि के यन्त्र।

(iii) कृषक का ऐसा मकान जिसे उसने कृषि-कार्य के लिए रखा है। इसके अलावा निम्नलिखित सम्पत्तियाँ दोनों कानून के मुताबिक महाजनों के बीच बाँटने योग्य नहीं हैं—पेंशन, प्रोविडेंट फण्ड, भेंट (gratuity), किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद धन पर अधिकार मिलने की सम्भावना, मानसिक कष्ट होने के कारण कष्ट पहुँचने वाले पर मुकदमा चलाने के अधिकार इत्यादि।

ख्याति-प्राप्त स्वामित्व (Reputed ownership)

‘ख्याति-प्राप्त स्वामित्व’ का सिद्धान्त केवल व्यापारियों के सम्बन्ध में इस्तेमाल किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति पर ऐसा कब्जा (possession) रखे कि प्रकट रूप से (ostensibly) वह उस सम्पत्ति का स्वामी विदित हो तथा यदि सम्पत्ति के व्यवस्थापन (disposition) और विक्री उसकी आज्ञा पर होती हों तो उसे ख्याति-प्राप्त अथवा प्रकटतः स्वामी (reputed or ostensible owner) कहते हैं। यदि ख्याति-प्राप्त व्यक्ति ऐसी सम्पत्ति की साख पर किसी ऋणदाता से कर्ज ले तो कर्जदार इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता कि वह सम्पत्ति उसकी नहीं है तथा उक्त सम्पत्ति सरकारी

आदाता या अधिन्यासी में निहित (vest) हो जाती है और अन्त में अन्य सम्पत्ति के समान वह भी महाजनों में वितरित हो जाती है। इस सिद्धान्त का प्रधान उद्देश्य है—किसी व्यापारी के सभी महाजनों के हितों की रक्षा करना जिन्होंने उस व्यापारी की झूठी साख (false credit) पर विश्वास करके कि अमुक सम्पत्ति उसके अधिकार, आज्ञा या व्यवस्थापन (disposition) में है तथा वही ऐसी सम्पत्ति का प्रत्यक्ष या वास्तविक स्वामी है, यद्यपि यह असत्य है, कर्ज दिया हो।

‘ख्याति-प्राप्त स्वामित्व’ के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं (Characteristics of the doctrine of reputed ownership)—(i) सम्पत्ति केवल चल सम्पत्ति (movable goods) होनी चाहिए।

(ii) सम्पत्ति दिवालिये के कब्जे, आज्ञा तथा व्यवस्थापन (possession, order and disposition) में हो।

(iii) दिवालिया वैसी सम्पत्ति को व्यापार या उद्योग के आशय से अपने अधिकार में रखे हुए हो।

(iv) दिवालिया के पास सम्पत्ति ऐसी परिस्थिति में होनी चाहिए कि प्रत्यक्ष रूप से वह वास्तविक मालिक मालूम पड़े।

(v) यथार्थतः दिवालिया उस सम्पत्ति का असली मालिक न हो, बल्कि सम्पत्ति किसी दूसरे व्यक्ति की हो।

यह सिद्धान्त दोनों सन्निधम द्वारा प्रयोग किया जाता है; किन्तु जहाँ तक इस सिद्धान्त के लागू होने के समय का सवाल है, दोनों सन्निधमों में भिन्नता पायी जाती है। महाप्रान्तीय शोधा-क्षमता सन्निधम (Presidency Towns Insolvency Act) के अनुसार दिवालियेपन की कार्यवाही शुरू होने के समय यदि ऐसी सम्पत्ति कर्जदार के अधिकार में हो तो उसे महाजनों में बाँट दिया जायगा। किन्तु प्रान्तीय शोधा-क्षमता सन्निधम (Provincial Insolvency Act) के अनुसार जिस समय दिवालिया घोषित करने के लिए आवेदन-पत्र दिया गया, उस समय की ऐसी सम्पत्ति महाजनों में वितरण के योग्य है।

### पश्चात् अर्जित सम्पत्ति (After-acquired Property)

कर्जदार के दिवालिया घोषित (adjudication) होने के बाद मुक्त (discharge) होने के पहले दिवालिये द्वारा प्राप्त किसी प्रकार की सम्पत्ति पर सरकारी अधिन्यासी का अधिकार हो जाता है। लेकिन नियम में यह कहा गया है कि जब तक सरकारी अधिन्यासी हस्तक्षेप (interference) नहीं करता उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए जब सरकारी अधिन्यासी हस्तक्षेप न करे और इसी बीच दिवालिया व्यक्ति अपनी सम्पत्ति किसी तीसरे पक्ष को हस्तान्तरित कर देता है जो उसे सद्विश्वास और मूल्य देकर प्राप्त करता है तो हस्तान्तरित (transferee) की उस सम्पत्ति पर शुद्ध स्वत्व प्राप्त हो जायगा। यदि कर्जदार को व्यापार करते समय (business proceedings) में उपहार (gift), व्यक्तिगत आय, वेतन या सम्बन्धी की मृत्यु से किसी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त हो तो यह पश्चात् अर्जित सम्पत्ति कही जायगी। इंग्लैंड में भी यही नियम लागू है।\* एक मुकदमे में न्यायालय ने बतलाया कि ऐसी मजदूरी या वेतन का कम-से-कम वह हिस्सा जो दिवालिया व्यक्ति दिवालिया घोषित होने के बाद अपने व्यक्तिगत परिश्रम से कमाता है या

\* Cohen vs. Mitchell (1890) 23 Q. B. D. 262.

समूचे वेतन का कम-से-कम वह हिस्सा जो उसके तथा उसके परिवार के पालन-पोषण के लिए आवश्यक है, सरकारी अधिन्यासी या ट्रस्टी के अधिकार में नहीं जाता। यही नियम भारतीय सन्निधम में भी है। \* प्रान्तीय शोधा-क्षमता सन्निधम (Provincial Insolvency Act) के अनुसार पश्चात् अर्जित सम्पत्ति को निश्चित करने के लिए सरकारी आदाता (official receiver) द्वारा हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं है।

### दुस्सह सम्पत्ति (Onerous Property)

ऐसी सम्पत्ति, जो बहुत तरह के बोझों से दबी हुई हो, दुस्सह (onerous) सम्पत्ति कहलाती है। बोझ का मतलब यहाँ पर उस परिस्थिति से है जिसमें सम्पत्ति को बेच कर उसकी मूल (original) कीमत भी नहीं पायी जाती है। जब किसी सम्पत्ति का उपार्जन (realisation) करने में जितनी रकम प्राप्त होगी उससे ज्यादा खर्च ही हो जाय तो उस सम्पत्ति को दुस्सह सम्पत्ति कहेंगे।

दुस्सह सम्पत्ति में कम्पनी के वैसे स्टॉक (stocks) तथा शेयर सम्मिलित किये जा सकते हैं जो बोझिल शर्त-सहित (with onerous consideration) या लाभदायक (unprofitable) हो। साथ ही, दुस्सह सम्पत्ति में वैसे सम्पत्ति भी सम्मिलित की जा सकती है जो बिकने के योग्य नहीं हो या जिसकी कठिनाई से विक्री हो।

धारा ६२ (१) के मुताबिक इस प्रकार की सम्पत्ति कर्जदार के पास होने पर सरकारी अधिन्यासी (official assignee) को अपने इच्छानुसार (option) कर्जदार के दिवालिया घोषित होने के बाद १२ महीने के अन्दर ऐसी सम्पत्ति को अस्वीकृत करने तथा लौटाने का अधिकार है। सरकारी अधिन्यासी सम्पत्ति को अस्वीकार करने के अधिकार का (१) सम्पत्ति बेचने की चेष्टा करने, (२) सम्पत्ति पर कब्जा जमाने, तथा (३) सम्पत्ति पर स्वामित्व ग्रहण करने के बावजूद, प्रयोग कर सकता है। लेकिन धारा ६४ के अनुसार अगर सम्पत्ति में हित (interest) रखनेवाला कोई व्यक्ति सरकारी अधिन्यासी के पास दरखास्त दे कि वह सम्पत्ति पर अपने अधिकार को त्यागने या न त्यागने का निश्चय कर ले तो उसे दरखास्त पाने के अट्ठाईस दिन के भीतर अथवा न्यायालय द्वारा निश्चित की गयी तारीख के अन्दर अधिकार त्याग करने की खबर दे देनी चाहिए। यदि वह इस बात की खबर नियमानुसार नहीं देता है तो २८ दिन के बाद या निश्चित तिथि बीत जाने पर यह मान लिया जाता है कि उसने उस सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले लिया और इसके बाद वह स्वत्वसमर्पण नहीं कर सकता। [धारा ६४] फिर, धारा ६७ के अनुसार यदि अधिकार त्याग के कारण किसी व्यक्ति को क्षति पहुँचे तो क्षति की सीमा तक, वह व्यक्ति ऋणदाता समझा जायगा और उसे ऋणदाताओं की सूची में सम्मिलित किया जायगा।

### सम्पत्ति का प्रापण (Realisation of Property)

महाप्रान्तीय नगर शोधा-क्षमता सन्निधम की ६८वीं धारा के मुताबिक कर्जदार की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए सरकारी अधिन्यासी (official assignee) को अग्रलिखित अधिकार और कर्तव्य प्राप्त हैं—

\* Chotte Lal vs. Kedar Nath (1924) 46 All. 565.

१. दिवालिये की सम्पूर्ण या आंशिक सम्पत्ति की विक्री करना ।
२. किसी प्रकार का धन पाने पर उसकी रसीद देना ।
३. दिवालिये की कार्यवाही लाभप्रद रूप से समाप्त करने के व्यापार का आवश्यकतानुसार संचालन करना ।
४. दिवालिये की सम्पत्ति के सम्बन्ध में मुकदमा करना, मुकदमे की पैरवी करना, उसे चालू रखना तथा दूसरी कोई कानूनी कार्यवाई करना ।
५. न्यायालय की आज्ञा पाने पर कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए वैधानिक सलाहकार (legal practitioner) या एजेंट की बहाली करना ।
६. अदालत जो उचित समझे, उसके अनुसार दिवालिये की सम्पत्ति की विक्री के प्रतिफल में धन या किसी पूर्णदत्त शेयर (fully paid shares) या ऋण-पत्र (debenture) या ऋणपत्र स्टॉक (debenture stock) स्वीकार करना ।
७. दिवालिये के कर्ज का भुगतान करने के लिए रेहन (mortgage) या बन्धक (pledge) रखकर धन प्राप्त करना ।
८. झगड़े के फैसले के लिए पंच को सुपुर्द करना तथा कर्ज, दावे (claims) और देनदार का निबटारा स्वीकृत शर्तों के आधार पर करना ।
९. यदि कोई सम्पत्ति आसानी से बेची न जा सके तो इसके अनुमानित मूल्य (estimated value) के आधार पर उसके वर्तमान रूप (existing form) में ही महाजनों के बीच बंटवारा करना ।
१०. सरकारी अधिन्यासी अदालत के निर्देशानुसार अदालत में हिसाब पेश कर सकता है तथा रुपया देगा और अदालत के आदेशानुसार प्रतिभूतियों (securities) के साथ व्यवहार करेगा ।

### सरकारी अधिन्यासी (Official Assignee)

सरकारी प्रतिपुरुष फोर्ट विलियम, मद्रास तथा बम्बई के प्रत्येक उच्च न्यायालय (High Court) के प्रधान जज (Chief Justice) द्वारा नियुक्त एक अफसर होता है । कोई भी व्यक्ति जिसका दिमाग ठीक है तथा जो बालिग है, सरकारी अधिन्यासी के पद पर बहाल किया जा सकता है । सरकारी अधिन्यासी के निम्नलिखित अधिकार तथा कर्तव्य पहले लिखे गये के अलावा हैं—

१. वह आवेदन-पत्र, सबूत तथा अन्य किसी कार्यवाई के लिए शपथ ले सकता है ।
२. वह दिवालिये के आचरण पर अपनी रिपोर्ट तथा उसकी मुक्ति (discharge) के लिए अपनी राय अदालत की दे सकता है ।
३. दिवालिये व्यक्ति की मुक्ति के लिए दरखास्त देने पर सरकारी अधिन्यासी को अदालत को बतला देना चाहिए कि दिवाला-सन्निध (Act) तथा इंडियन पेनेल कोड (Indian Penal Code) की ४२१ तथा ४२२ धाराओं के अनुसार दिवालिया अपराधी है कि नहीं, क्योंकि न्यायालय इसी रिपोर्ट के आधार पर दिवालिये की मुक्ति को स्वीकार अथवा अस्वीकार करता है ।
४. न्यायालय के आदेशानुसार कपटी दिवालिये पर अभियोग चलाने में उसे सहायता पहुँचानी चाहिए ।
५. दिवालिये व्यक्ति के बदले में सरकारी अधिन्यासी पर मुकदमा चलाया जा सकता है तथा वह भी दूसरे पक्षों पर मुकदमा चला सकता है ।

६. उसका दिवालिये की सम्पत्ति पर अधिकार हो जाता है और वह उसके हित के लिए या उसके उचित बँटवारे के लिए सभी आवश्यक कार्य कर सकता है।

७. उसे चाहिए कि वह महाजनों की एक सभा (meeting) बुलाये और दिवालिये के कर्ज के बँटवारे के सम्बन्ध में उनकी राय ले।

८. उसे कानून तथा अदालत के फैसले का ख्याल करते हुए महाजनों के प्रस्तावों (resolutions) की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

९. उसे निरीक्षण समिति (Inspection Committee) की राय लेनी चाहिए।

१०. उसे अपना कार्य सदिशवास-सहित करना चाहिए और यदि कहीं जान-बूझकर गलती हुई तो उसके लिए न्यायालय उसे दायी ठहरा सकता है।

११. कानून के मुताबिक तथा न्यायालय के अनुसार सरकारी अधिन्यासी को दिवालिये की कार्यवाही का पूरा-पूरा विवरण न्यायालय के सम्मुख समय पर प्रस्तुत करना चाहिए।

१२. यदि वह स्वयं ही दिवालिया हो जाय तो उसे इस पद से हट जाना चाहिए।

### निरीक्षण समिति (Committee of Inspection; Sec 88)

धारा ८८ के अनुसार यदि न्यायालय को उचित जान पड़े तो अपने दावे (claim) को साबित करनेवाले महाजनों में से दिवालिये की सम्पत्ति को सरकारी अधिन्यासी द्वारा प्रबन्ध के निरीक्षण (superintending) के लिए 'निरीक्षण समिति' (Committee of Inspection) बहाल करने का अधिकार दे सकता है। न्यायालय सरकारी अधिन्यासी के ऊपर समिति के नियन्त्रण (control) के अधिकार को भी नियत (prescribe) कर सकता है। बम्बई में यह नियम है कि निरीक्षण समिति में पाँच से अधिक और तीन से कम सदस्य नहीं होने चाहिए। इस समिति की बैठक आवश्यकतानुसार कभी भी हो सकती है, किन्तु प्रत्येक माह में कम-से-कम एक बार अवश्य ही होनी चाहिए। इस समिति के बहुमत की उपस्थिति में बहुमत से निर्णय किये गये विषय को कार्यान्वित किया जा सकता है। दिवालिये-सम्पत्ति के प्रापण (realisation) तथा बँटवारे के लिए समिति अपना आदेश दे सकती है जो महाजनों द्वारा किसी निर्णय की अनुपस्थिति में मान्य होगा।

### सम्पत्ति का वितरण (Distribution of Property)

सरकारी अधिन्यासी को उन महाजनों के बीच डिविडेण्ड (dividend) घोषित तथा वितरित करना पड़ता है जिन्होंने शीघ्रतापूर्वक अपने कर्ज का सबूत (proof) दे दिया है। इसलिए जब तक डिविडेण्ड को स्थगित (postponed) करने की कोई खाम वजह न हो तो सरकारी अधिन्यासी को दिवालिया घोषित करने के दिन से ६ महीने के भीतर पहला डिविडेण्ड घोषित तथा वितरित कर देना चाहिए। जब तक कोई खास वजह न हो, पहले डिविडेण्ड के बाद वाला डिविडेण्ड भी ६ महीने के मध्यान्तर (interval) पर घोषित हो जाना चाहिए। डिविडेण्ड घोषित करने की नोटिस (notice) नियमित रूप से अखबारों में प्रकाशित या विज्ञापित हो जानी चाहिए तथा दिवालिये की सूची (schedule) में दिये गये सभी महाजनों के पास

भेजी जानी चाहिए। नोटिस में ये बातें साफ-साफ लिखी रहनी चाहिए कि किसको कितना डिविडेण्ड मिलना है तथा किस प्रकार इसका भुगतान होगा। [धारा ६९, महाप्रांतीय नगर शोधा-क्षमता अधिनियम] लेकिन प्रांतीय शोधा-क्षमता सन्निधिम (Provincial Insolvency Act) के अनुसार डिविडेण्ड या सम्पत्ति के अंश के बँटवारे के लिए कोई निश्चित समय नहीं है और न इसके लिए किसी प्रकार की घोषणा तथा सूचना की आवश्यकता है। डिविडेण्ड का बँटवारा तथा गणना (calculation) करते वक्त सरकारी प्रतिपुष्टि को धारा ७१ के मुताबिक अपने हाथ में निम्नलिखित कर्जों का भुगतान करने के लिए काफी सम्पत्ति रख लेनी चाहिए—

१. साबित किये जाने योग्य तथा दिवालिये के विवरण (statement) में दिये गये कर्ज अथवा ऐसा कर्ज, जो किसी दूर रहनेवाले व्यक्ति द्वारा किया गया हो, जिसे अपने कर्ज का सबूत देने के लिए काफी समय नहीं मिला हो।
२. ऐसा कर्ज, जिसका सबूत हो, किन्तु उसके कारण का ज्ञान न हो।
३. विवादपूर्ण (disputed) सबूत या दावा।
४. दिवालिये की सम्पत्ति के प्रबन्ध के लिए आवश्यक व्यय।

धारा ७२ के अनुसार यदि ऐसा भी ऋणदाता हो जिसने डिविडेण्ड की घोषणा के पहले कर्ज का सबूत नहीं दिया है तो शेष धन पहले उस कर्ज के भुगतान में लगेगा और उसके बाद किन्हीं अन्य कार्यों में लगाया जायगा। धारा ७३ के अनुसार जब कभी सम्पत्तियों या वैसी सम्पत्तियों की उगाही (realization) हो जाती है, तो सरकारी अधिन्यासी न्यायालय के आज्ञानुसार अन्तिम (final) डिविडेण्ड घोषित करता है। फिर धारा ७६ के अनुसार सभी प्रकार के कर्जों तथा दावों का भुगतान हो जाने के बाद अगर कुछ बच जाता है तो वह दिवालिये का होता है। किन्तु दिवालिया कोई फर्म होती है तो साझेदारी की सम्पत्ति सबसे पहले साझेदारी के कर्ज के भुगतान में लगायी जायगी तथा साझेदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति उनके व्यक्तिगत कर्ज के भुगतान में लगायी जायगी। इसके बाद भी यदि सम्पत्ति बची रहती है तो उसे दोनों प्रकार के ऋण के भुगतान में लगाया जायगा।

### पहले के कार्यों पर दिवालियेपन का प्रभाव (Effects of Insolvency on previous or antecedent transactions)

जब कर्जदार ने दिवालिया होने के पहले सद्विश्वास के साथ व्यवहार (transactions) किया हो तो साधारणतया वैसे व्यवहार के लिए न्यायालय सुरक्षा प्रदान करता है। ऐसे व्यवहार निम्नलिखित हैं—

(i) किसी ऋणदाता को दिवालिये द्वारा भुगतान की गयी रकम जो कपटपूर्ण अधिमान (fraudulent preference) का विषय न हो।

(ii) दिवालिये के किसी प्रकार किये गये भुगतान या सुपुर्दगी जो विश्वास-सहित हो।

(iii) दिवालिये द्वारा या दिवालिये से किसी मूल्यवान प्रतिफल (valuable consideration) के लिए प्रसविदा (contract) या व्यापार, किन्तु यह व्यवहार—

(क) दिवालिया घोषित करने की आज्ञा (order of adjudication) के पास होने के पहले होना चाहिए; तथा

(ख) जिस मनुष्य के साथ ऐसा व्यवहार किया गया है उसे कर्जदार द्वारा या कर्जदार के खिलाफ दिवालिया घोषित करने के लिए दरखास्त देने की बात की



सूचना या खबर न हो। इसलिए ऊपर लिखी हुई शर्तों को मानते हुए यदि किसी सम्पत्ति का हस्तान्तरण विवाद के प्रतिफल में सविश्वास के साथ हुआ हो तो वह मही माना जायगा। दूसरे व्यवहारों को भी, यदि वे दिवालिया घोषित होने के दिन के दो वर्ष पहले किये गये हों, तो सुरक्षित किया जा सकता है। [धारा ५५ तथा ५७]

श्रेयस्कर ऋण (Preferential Debts; Sec. 49)

दिवालिये व्यक्ति के धन का बँटवारा करते समय निम्नलिखित कर्जों का भुगतान पहले किया जाता है। उसके बाद अगर धन बचता है तो अन्य कर्जों का भुगतान किया जाता है। अगर दिवालिये की सम्पत्ति ऐसे कर्जों का भुगतान करने के लिए पर्याप्त न हो तो इनका यथानुपात (rateable) भुगतान किया जाता है क्योंकि ये सभी आपस में समान अधिकार रखते हैं। इसलिए धारा ४९ के अनुसार सम्पत्ति अन्य प्रकार के कर्जों की तुलना में निम्नलिखित कर्जों के भुगतान में सर्वप्रथम लगायी जाती है—

१. सरकार या स्थानीय अधिकारी (local authority) को दे दिया गया कर्ज।

२. दिवालिया घोषित किये जाने के लिए दरखास्त देने के चार महीने पहले का किसी किरानी, नौकर या मजदूर का वेतन या मजदूरी।

लेकिन, प्रान्तीय शोधा-क्षमता सन्निधय (Provincial Insolvency Act) के मुताबिक किसी भी किरानी का वेतनमान ३०० रु० से ज्यादा नहीं हो सकता तथा महाप्रान्तीय नगर शोधा-क्षमता (Presidency Towns Insolvency Act) के मुताबिक किसी किरानी, नौकर या मजदूर की मजदूरी सब मिलाकर २० रु० से अधिक नहीं हो सकती।

३. महाप्रान्तीय नगर शोधा-क्षमता सन्निधय के अनुसार मकान-मालिक का एक महीने का किराया।

वसूली, छूट या मिनहा (Set off; Sec. 47)

धारा ४७ के अनुसार जब कर्ज देनेवाला तथा दिवालिया ऋणी के बीच (mutual) लेनदेन का व्यवहार (dealings) चलता हो तो ऐसे व्यवहार के सम्बन्ध में एक पक्ष का दूसरे पक्ष के पास जो बकाया हो, उसका भी हिसाब अवश्य हो जाना चाहिए। अतः एक पक्ष का जब दूसरे पक्ष पर देन के साथ-साथ कुछ बकाया भी हो तो इनका मिनहा हो जाना चाहिए तथा इस मिनहे (set off) के बाद जो कुछ बचे उसी का दावा (claim) करना चाहिए।

उदाहरण—अगर कर्जदार ने महाजन से २,०००) रुपया का कर्ज लिया हो और उसने महाजन को १,०००) रुपया दिये भी हो तो वह इस १,०००) रु० के मिनहे का दावा कर सकता है। यही १,०००) रु० वसूली, छूट या मिनहा कहा जायगा। इसलिए कर्जदार सिर्फ १,०००) रु० ही लौटाने के लिए बाध्य है। इसी तरह, महाजन की वसूली के लिए दिवालिये की सम्पत्ति के सम्बन्ध में दावा कर सकता है किन्तु उसे कर्ज देने के समय कर्जदार के दिवालिया होने की सूचना नहीं होनी चाहिए अन्यथा वह वसूली का दावा नहीं कर सकता।

दिवालिया को मुक्ति की आज्ञा (Discharge Order to Insolvent) [धाराएँ ४१-४४]

दिवालिया घोषित होने तथा कर्जदार की परीक्षा (public examination) वा० वि० तं०-२७

हो जाने के बाद दिवालिया व्यक्ति कभी भी अदालत में अपनी मुक्ति की सुनवाई के लिए कोई दिन नियत करने के लिए दरखास्त दे सकता है। फिर, एक निश्चित तिथि को दिवालिये की दरखास्त की सुनवाई कर्जदार तथा महाजनों की उपस्थिति में न्यायालय के सम्मुख होती है। सुनवाई के समय सरकारी प्रतिकर्ता द्वारा दिवालिये के आचरण के सम्बन्ध में दी गयी रिपोर्ट पर भी न्यायालय विचार करता है। इसके बाद धारा ४१ के अनुसार न्यायालय निम्नलिखित कार्यों में से कोई एक कार्य कर सकता है—

- (i) मुक्ति के लिए पूर्ण तथा शर्त-रहित (unconditional) आज्ञा देना।
- (ii) मुक्ति की आज्ञा देने से अस्वीकार (refuse) करना।
- (iii) मुक्ति की आज्ञा का कार्यान्वयन (operation) एक निश्चित समय के लिए स्थगित (postpone) रखना।
- (iv) शर्त-रहित मुक्ति की आज्ञा देना। इसके अनुसार दिवालिये के भविष्य की कमाई या पश्चात् सम्पत्ति (after acquired property) के सम्बन्ध में कोई शर्त लगायी जा सकती है; जैसे—कर्जदार के वकाये का भुगतान करना।

मुक्ति की आज्ञा देने से अस्वीकार करना (Refuse to give order of discharge)

निम्नलिखित हालतों में न्यायालय पूर्ण (absolute) तथा शर्त-रहित (unconditional) मुक्ति की आज्ञा (order of discharge) देने से अस्वीकार (refuse) कर सकता है—

१. न्यायालय उन सभी हालतों में मुक्ति की आज्ञा देने से अस्वीकार कर सकता है जब दिवालिया व्यक्ति ने शोधा-क्षमता सन्निधन (Insolvency Act) तथा भारतीय दण्ड-संहिता (Indian Penal Code) की ४२१ से ४२४ धाराओं के अनुसार कोई अपराध किया हो।

२. जब दिवालिये की सम्पत्ति असुरक्षित (unsecured) कर्ज की तुलना में महाप्रान्तीय नगर शोधा-क्षमता सन्निधन (The Presidency Towns Insolvency Act) के अनुसार रुपये में चार आने (पचीस पैसे) से कम हो तथा प्रान्तीय दिवाला-सन्निधन (Provincial Insolvency Act) के अनुसार रुपये में आठ आने (पचास पैसे) से कम हो। लेकिन कर्जदार यदि यह दिखाये कि सम्पत्ति की कमी उसके कारण नहीं हुई है तो उसे शर्त-रहित मुक्ति की आज्ञा दी जा सकती है।

३. यदि दिवालिये ने दिवालियापन का कार्य करने के तीन साल पहले तक का उचित तथ्या सामान्य लेखा (account) नहीं रखा हो। लेखा नहीं रखने के कारण ठीक-ठीक स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता।

४. जब कर्जदार ने अपने को दिवालिया समझने के बाद भी व्यापार करना जारी रखा हो।

५. जब उसने कर्ज लेने के समय कर्ज का भुगतान करने की कोई आशा न होने पर तथा अपने को कर्ज का भुगतान करने के योग्य न समझने पर भी कर्ज लिया हो।

६. यदि कर्जदार अपने अविवेकपूर्ण (rash) या आपदजनक (hazardous) सट्टेबाजी या फाटके (speculation) द्वारा फिजूलखर्चों, जुए या व्यापार की देबरेख में अपराधपूर्ण उपेक्षा (culpable negligence) द्वारा दिवालिया हुआ हो।

७. जब दिवालिये व्यक्ति ने उचित ढंग से अपने ऊपर चलाये हुए मुकदमों को तुच्छ या कष्टकर प्रतिवाद (defence) के द्वारा महाजन को अनावश्यक खर्चों में डाला हो।

८. जब दिवालिये ने आवेदन-पत्र देने से तीन महीने पहले किसी महाजन को अनुचित प्रधानता (undue preference) दी हो।

९. जब दिवालिया किसी सम्पत्ति की क्षति या कमी (deficiency) के सम्बन्ध में संतोषजनक हिसाब-किताब देने में असमर्थ हो।

१०. जब वह पहले कमी और दिवालिया घोषित किया गया हो।

११. जब उसने अपनी सम्पत्ति को कहीं हटा दिया हो या छिपा दिया हो अथवा वह स्वयं किसी कपट का दोषी हो। [धारा ४२-४३]

### मुक्ति की आज्ञा का प्रभाव (Effect of Order of Discharge)

न्यायालय द्वारा मुक्ति की आज्ञा हो जाने पर दिवालिया व्यक्ति कर्ज के लिए महाजनों के प्रति उत्तरदायी नहीं रहता, किन्तु इससे सुरक्षित ऋणदाता (secured creditor) की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं होता। मुक्ति पाने के बाद दिवालिया नवजीवन पुनः प्रारम्भ करने की स्वतन्त्रता पा जाता है। किसी कर्जदार को मुक्त कर देने से उसकी जमानत (surety's) मुक्त नहीं हो सकती है। जब किसी कर्जदार ने दण्डनीय अपराध (criminal offence) किया हो तो उससे वह मुक्ति नहीं पा सकता है। [धारा ४४]

कर्ज जो मुक्ति या व्यवस्था के बाद भी नहीं मिटते (Debts not wiped off by Discharge or Composition)

निम्नलिखित कर्ज दिवालिये की मुक्ति या व्यवस्था के बाद भी नहीं मिटते तथा इनका भुगतान होना आवश्यक है—

१. वैसे सभी कर्ज सरकार को देय है।

२. कपटपूर्ण रीति से प्राप्त कर्ज।

३. किसी प्रकार का कर्ज या जिसके लिए उसने कपट से क्षमा प्राप्त कर ली हो।

४. कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसेच्यूर (Code of Criminal Procedure, 1898) की धारा ४२२ के अनुसार अपनी पत्नी के भरण-पोषण (maintenance) से सम्बद्ध दायित्व।

### University Questions

1. Define the 'Insolvent'. State generally what persons are capable of being adjudged insolvent. Can (a) an infant, (b) a lunatic, (c) a resident alien, and (d) a married woman be adjudicated and insolvent? [Delhi Uni 1956]

['दिवालिया' शब्द की परिभाषा दीजिए। साधारणतः कौन-कौन व्यक्ति दिवालिया घोषित होने के योग्य हैं? क्या (क) एक अवयस्क, (ख) एक पागल,

(ग) भारत-निवासी शत्रु तथा (घ) एक विवाहित स्त्री दिवालिया घोषित किये जा सकते हैं ? ]

2. What are the acts of insolvency ? Who may present a petition for adjudging insolvent ? What are his qualifications ?

(दिवालियापन के क्या-क्या कार्य हैं ? दिवालिया घोषित करने के लिए कौन दख्खास्त दे सकता है ? उसकी योग्यताओं की व्याख्या करें ।)

3. In what circumstances and at whose instance, can a person be adjudged an insolvent ?

(किन परिस्थितियों में तथा किसके द्वारा एक व्यक्ति दिवालिया घोषित किया जा सकता है ?)

4. State the conditions on which an insolvency petition may be presented by a (a) creditor, and (b) debtor.

[उन दशाओं का वर्णन कीजिए जिनमें एक (क) ऋणदाता, तथा (ख) ऋणी द्वारा दिवालियापन का आवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है ।]

5 "A petition of insolvency can be made only when the debtor has committed an act of insolvency." Discuss.

(“दिवालियापन के लिए आवेदन तभी दिया जा सकता है जब कर्जदार ने दिवालियापन का कार्य किया है ।” इस कथन की व्याख्या कीजिए ।)

6. What is an Order of Adjudication ? What are the effects of such an order ?

(दिवालिया घोषित करने की आज्ञा क्या है ? दिवालिया घोषित करने की आज्ञा के प्रभाव बतायें ।)

7. What is a 'Protection Order' and in what cases is it granted to an insolvent ? Discuss the schedule of creditors.

(‘संरक्षण की आज्ञा’ क्या है और किन दशाओं में यह एक दिवालिया को प्रदान की जाती है ? ऋणदाताओं की सूची की व्याख्या करें ।)

8. When can insolvency court annul an order of adjudication ? State briefly the effect of an order of annulment of adjudication.

(दिवालिया घोषित करने की आज्ञा को कब दिवालिया-न्यायालय रद्द कर सकता है ? दिवालिया घोषित करने की आज्ञा को रद्द करने के प्रभाव को संक्षेप में बतलाइए ।)

9. Discuss the duties of an insolvent prior to and after the order of Adjudication.

(दिवालिया घोषित किये जाने के पहले एवं पश्चात् एक दिवालिया के कर्तव्यों की व्याख्या करें ।)

10. "The two main objects of insolvency legislation are to protect the debtor from harassment by his creditors and to secure an expeditious and equitable distribution of assets among the creditors." Discuss.

(दिवाली कानून के दो मुख्य उद्देश्य—ऋणी को ऋणदाता द्वारा तकलीफ दिये जाने से बचाना तथा ऋणदाताओं के बीच सम्पत्ति का शीघ्र और निष्पक्ष वितरण करना है ।” इस कथन की व्याख्या कीजिए ।)

11. State the provisions of law regarding compositions and

schemes of arrangement. At what stage of insolvency proceedings and in what circumstances can composition and scheme of arrangement be effected ?

(व्यवस्था की योजना तथा रचना की योजना के सम्बन्ध में कानूनी बातों को बतलाइए। दिवालिया कार्यवाही की किस अवस्था में तथा किन परिस्थितियों में व्यवस्था की योजना तथा रचना की योजना प्रभावित की जा सकती है ?)

12. What do you understand by doctrine of reputed ownership ? Give illustrations.

(‘ख्यातिप्राप्त स्वामित्व’ से आर क्या समझते हैं ? उदाहरण दीजिए।)

13. In what circumstances will the Court readjudicate a debtor an insolvent ?

(किन परिस्थितियों में न्यायालय एक ऋणी को पुनः दिवालिया घोषित करेगा ?)

14. What do you understand by ‘Proof of debts ?’ What claims are and what claims are not provable in insolvency ? Discuss.

(‘कर्ज के प्रमाण’ से आप क्या समझते हैं ? दिवालिया में कौन-कौन से दावे साबित करने के योग्य होते हैं तथा कौन-कौन से दावे साबित करने के योग्य नहीं होते, व्याख्या करें।)

15. What is a ‘Fraudulent Preference’ ? What is its effect on insolvency as against (i) the official assignee and (ii) third parties ?

[‘कपटपूर्ण अधिमान’ क्या है ? इसका दिवालियापन पर (i) सरकारी अधिन्यासी तथा (ii) तीसरे पक्षकारों के विरुद्ध क्या प्रभाव पड़ता है ?]

16. “The official assignee stepping into the shoes of the insolvent has, by operation of law, large and wide powers than the debtor himself has.” Discuss.

(“सरकारी अधिन्यासी जो दिवालिया की जगह पर विराजमान होता है, कानून के मामले में स्वयं ऋणी से ज्यादा तथा विस्तृत अधिकार रखता है।” इस कथन की व्याख्या कीजिए।)

17. “A bankrupt when in contemplation of his bankruptcy, cannot by his voluntary act favour one creditor.” Explain and illustrate.

(“एक दिवालिया अपने दिवालियापन में लगा, अपनी इच्छा से एक ऋणदाता के प्रति पक्षपात नहीं कर सकता है।” इस कथन की व्याख्या उदाहरण-सहित कीजिए।)

18. What is an order of discharge ? Mention the circumstances in which the court must refuse an absolute order of discharge. What is the effect of the order when obtained ?

(मुक्ति की आज्ञा क्या है ? उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनमें न्यायालय पूर्ण मुक्ति की आज्ञा देने से इनकार कर सकता है। प्राप्त किये जाने पर आज्ञा का क्या प्रभाव होता है ?)

19. Write short notes on—

(i) Act of insolvency, (ii) Adjudication order, (iii) Protected transaction, (iv) Protection orders, (v) Doctrine of Relation back, (vi) Insolvent’s schedule, (vii) Reputed ownership, (viii) After-acquired

property, (ix) Onerous property, (x) Proof of debt, (xi) Official receiver, (xii) Committee of inspection, (xiii) Fraudulent Preference, (xiv) Preferential debts (xv) Set-off.

[संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) दिवालियापन के कार्य, (ii) दिवालिया घोषित करने की आज्ञा, (iii) सुरक्षित या संरक्षित व्यवहार, (iv) संरक्षण-आज्ञा, (v) भूत-सम्बन्धी सिद्धान्त, (vi) दिवालिया की सूची, (vii) ख्याति-प्राप्त स्वामित्व, (viii) पश्चात् अर्जित सम्पत्ति, (ix) दुस्सह सम्पत्ति, (x) ऋण का प्रमाण, (xi) राजकीय प्रापक, (xii) निरीक्षण समिति, (xiii) कपटपूर्ण अधिमान, (xiv) श्रेयस्कर-कर्ज, (xv) मिनहा अथवा छूट ।]

20. (a) A has properties movable and immovable in Madras, Lahore and New York. Which of these would vest in the official assignee or in the receiver in case of A's insolvency ?

[उत्तर—इसमें सिर्फ मद्रास की चल अथवा अचल सम्पत्ति सरकारी प्रतिपुरुष के अधिकार में जायेगी। मुकद्मा—लक्ष्मीराम केवलराम भट्ट बनाम पूरनचन्द पिताम्बर ।]

(b) A, who is in a solvent condition, makes a gift of his house to his daughter. Thereafter he suffers heavy losses and fifteen months after the date of the gift he is adjudicated insolvent. Has the official receiver any right against the house ?

[उत्तर—इसमें राजकीय आदाता के विरुद्ध अधिकार प्राप्त है ।]

---

**भारतीय पंचायत सन्तियम—१९४०**  
**The Indian Arbitration Act**





## विषय-प्रवेश

### (Introduction)

आजकल जो पंचायत सन्निधम प्रचलित है तथा लोगों के आपस के दिन-प्रति-दिन के झगड़ों का निबटारा करता है वह कोड ऑफ सिविल प्रोसेड्यूर (Code of Civil Procedure, 1908; Schedule II) का ही एक अंग माना जाता है जिसका प्रारम्भ पहले-पहल १८९९ ई० के पंचायत सन्निधम में किया गया था। इसमें जो कमी रह गयी थी, उसकी पूर्ति भिन्न-भिन्न हाई कोर्टों के नियमों द्वारा की गयी। लेकिन इन सबों को एकीकृत (consolidate), व्यापक (comprehensive) तथा पूर्ण (complete) करने के ख्याल से १९४० ई० में पुनः भारतीय पंचायत सन्निधम (Indian Arbitration Act) पास हुआ और पुराने कानून को रद्द (repeal) कर दिया गया। यह सन्निधम जुलाई, १९४० से लागू किया गया और आज भी लागू है।

### परिभाषा (Definition)

“जब दो विवादी पक्ष किसी तीसरे पक्ष से अपने झगड़े का निबटारा करने के लिए अनुरोध करें और यदि तीसरा पक्ष निबटारा करने की सम्मति दे दे तो इसे पंचायत द्वारा निबटारा कहा जायेगा।”\* दूसरे शब्दों में, “जब दो व्यक्तियों के आपस के विवाद का फैसला साधारण (regular) अदालत द्वारा न होकर किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा किया जाता है तो उसे पंच-फैसला कहते हैं।”†

यह प्रथा भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ही प्रचलित है। फैसला करने के लिए जिन-जिन व्यक्तियों को बहाल किया जाता है उन्हें पंच (arbitrators) कहते हैं। इनके फैसले को निर्णय (award) कहा जाता है।

पंचायत के सामने पेश करना (Submission to arbitration), या पंचायत का समझौता (Arbitration Agreement)

पंचायत सन्निधम की धारा 2 (a) के अनुसार—पंचायत समझौता या प्रस्तुति (submission) वह लिखित समझौता है जिसके मुताबिक वर्त्तमान या भावी विवाद को किसी पंचायत के सामने (चाहे उसमें किसी पंच का नाम हो या न हो) निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाता है। (Arbitration, Agreement or

\* “It is the settlement of a dispute by two contending parties, by reference to the decision of an outsider, at their request.” Chombasappa vs. Bashimgappa, 1927. Bom. 565 (F. B.)

† “The settlement of any matter or matters in dispute between two parties, by the decision not of a regular and ordinary Court of Law but by one or more persons who are called arbitrators.”

**Submission** is a written agreement to submit present or future differences to Arbitration, whether an arbitrator is named therein or not.)

अतः इसके निम्नलिखित मुख्य लक्षण हैं—

(क) समझौता लिखित होना चाहिए ।

(ख) वर्तमान या भावी विवाद पंच के पास निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।

(ग) लिखित समझौते में पंच का नाम रहता कोई आवश्यक नहीं है और समझौते की रजिस्ट्री होनी भी जरूरी नहीं है ।

कभी-कभी बीमापत्रों में साझेदारी-संलेख (partnership deed) में तथा चार्टर पार्टीज (charter parties) में पंचायत पद (arbitration clause) या 'निर्देश' (reference) शब्द जोड़ा रहता है जिसका मतलब यह होता है कि किसी प्रकार का विवाद होने पर उसका निणय पंचायत द्वारा होगा ।

### मध्यस्थ (Umpire)

जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों को पंच के लिए बहाल किया जाता है और यदि वे आपस में किसी बात पर दो भिन्न मन प्रकट करते हों तो निर्णय के लिए एक तीसरा व्यक्ति बहाल किया जा सकता है जिसे मध्यस्थ (umpire) कहते हैं ।

### पंच-निर्णय (Award)

पंच या मध्यस्थ के लिखित फैसले को 'पंच-निर्णय' कहा जाता है ।

कौन निर्देश कर सकता है ? (Who may refer ?)

साधारणतः कोई भी आदमी जिसे प्रसविदा करने की क्षमता है निर्देश कर सकता है ।

१. नाबालिग (Minor) या पागल व्यक्ति (Lunatic)—नाबालिग या पागल निर्देश नहीं कर सकता है । किन्तु नाबालिग या पागल का संरक्षक (guardian) उस समय निर्देश कर सकता है जब वह सद्भावना के साथ पागल के लाभ की दृष्टि से ऐसा करे ।\*

२. एजेंट (Agent)—जिसे प्रधान (principal) ने अधिकार दिया है, निर्देश कर सकता है । कोई साझेदार (partner) बिना दूसरे साझेदारों की सम्मति के साझेदारी (partnership) का विवाद किसी पंच के पास निर्णय के लिए प्रस्तुत (submission) नहीं कर सकता ।

३. दिवालिया (Bankrupt)— दिवालिया व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को बाध्य करने के उद्देश्य से उस विवाद का निर्देश नहीं कर सकता जिसके पक्ष में वह है । यदि वह ऐसे विवाद का निर्देश करे तो इस प्रकार का निर्देश केवल उमी को व्यक्तिगत रूप से बाध्य कर सकता है । किन्तु, उसकी सम्पत्ति या उसका राजकीय अधिन्यासी (official assignee) ऐसे निर्देश के लिए बाध्य नहीं होगा ।

४. कोई भी वकील या मुस्तार (attorney and counsel) अपने मुवक्किल

(client) का विवाद उसकी प्रकट (express) सम्मति से निर्णय के लिए पंच के पास प्रस्तुत कर सकता है। किन्तु बगैर उनकी सम्मति के वह ऐसा नहीं कर सकता।

५. किसी संयुक्त हिन्दू परिवार (joint Hindu family) का कर्त्ता दिश्वाम-सहित परिवार की भलाई के लिए निर्देश कर सकता है। किसी हिन्दू घराने की विधवा स्त्री निष्कपट तथा विश्वस्त होकर निर्णय कर सकती है और पंच के निर्णय से उसकी सम्पत्ति के हकदार (heirs) बाध्य होंगे। न्यायालय की आज्ञा प्राप्त कर लेने के बाद राजकीय आदाता या अधिन्यासी (official receiver or assignee) किसी विवाद का निर्देश कर सकता है। वह संदिदे के अनुसार कर्ज, दावा (claims) इत्यादि का निबटारा भी कर सकता है।

६. भारतीय कम्पनी सन्निधम (Indian Companies Act, 1913) की धारा १५२ के मुताबिक कम्पनी भी निम्नलिखित नियमों के अनुसार निर्देश कर सकती है—

(क) कोई भी कम्पनी लिखित समझौते के द्वारा पंचायत सन्निधम के अनुसार इस कम्पनी तथा किसी अन्य पक्ष या कम्पनी के बीच विवाद का निर्णय कराने के लिये निर्देश कर सकती है।

(ख) जिन वादों का निबटारा कम्पनियों के द्वारा या उनके डाइरेक्टरों के द्वारा हो सकता है, उन्हें कम्पनियाँ अपने इच्छानुसार पंचों को निबटारे का अधिकार दे सकती हैं।

(ग) १९४० के पंचायत सन्निधम कम्पनियों तथा व्यक्तियों के बीच सभी पंचायतों पर लागू होने तथा निर्देश आरम्भ ही से इसी के मुताबिक होगा।

कौन-सा विवाद निर्देश किया जाता है (What may be referred or what matters can be submitted ?)

साधारणतः वे सभी बातें जो किसी प्रसविदा की विषय-वस्तु हो सकती हैं, पंचायत के लिए निर्देशित की जा सकती हैं। अतः अपराधपूर्ण तथा दण्डनीय विषय (criminal and punishable matters) का निर्देश नहीं किया जा सकता। इसका फैसला सिर्फ अदालत ही कर सकती है। किन्तु नागरिक अधिकार (civil rights) के लिए अगर कोई दण्डनीय अपराध भी हो तो दण्डनीय अपराध को छोड़कर केवल नागरिक अधिकारों के लिए निर्देश किया जा सकता है। तलाक देने का विवाद (divorce suit) पंचायत के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकता, किन्तु बँटवारी (partition) का या पृथक्करण (separation) का निर्देश किया जा सकता है। इसी तरह दाम्पत्य अधिकार (conjugal rights) के झगड़ों का निबटारा पंचों द्वारा नहीं कराया जा सकता।\* फिर नागरिक विवाद, व्यक्तिगत अधिकार (personal rights), घरेलू अधिकार, विवाह तथा भरण-पोषण (maintenance) से सम्बद्ध सभी मामलों को जिनका निबटारा दीवानी अदालत द्वारा कराया जा सकता है, पंचायत के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।† सार्वजनिक दान-धर्म (public charities) पर न्यासी का पद (trusteeship) ग्रहण करने के लिए

\* Malka vs. Sarder 1929 Lah. 394.

† Iseri Bai vs. Pavribai 1930 Sind 195.

यदि झगड़ा हो तो ऐसे मतभेद पंचों के पास निर्देशन नहीं किये जा सकते ।\* अतः दिवाला (insolvency), सार्वजनिक दान-धर्म, दण्डनीय मामले, पागलपन की अवस्था (lunacy), नृसु-पूर्विलेख (deed) और निर्दिष्ट-सम्बन्धी कार्यवाही पंचायत के लिए प्रस्तुत नहीं की जा सकती ।

### प्रस्तुति के तरीके (Modes of Submission)

किसी तरह के झगड़े को पंच के पास निम्नलिखित में से किसी भी तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. पक्षों के समझौते द्वारा जिसमें अदालत का कोई हस्तक्षेप (intervention) नहीं रहता हो ।

२. अदालत द्वारा हस्तक्षेप करने पर—

(क) जबकि पहले से कोई बात अदालत के विचाराधीन नहीं हो तथा

(ख) जबकि पहले से बात अदालत के विचाराधीन हो ।

३. किसी नियम द्वारा (By the operation of Statutes) ।

### अदालत के हस्तक्षेप किये बिना

जब झगड़े वाली दो पार्टियों ने किसी को पंच बहाल करके आपस के झगड़ों का निवटारा कराने का समझौता किया है तो अदालत का इसमें कोई हाथ नहीं रहेगा । ऐसा पंच अदालत के द्वारा बहाल नहीं किया जा सकता । किन्तु पंच के फैसले को अदालत के सामने प्रस्तुत करके उसी तरह सम्पन्न तथा कार्यान्वित (performance and enforcement) कराया जा सकता है जैसे न्यायालय की डिक्री (decree) ।

### पंचायत समझौते के गभित अनुबन्ध (Implied Provisions in Arbitration Agreement)

प्रत्येक पंचायत अनुबन्ध में किसी खास अनुबन्ध की गैरहाजिरी में धारा ३ के अनुसार निम्नलिखित निर्बन्ध, जिनका वर्णन पहली सूची (schedule) में किया गया है, गभित तथा मान्य होता है—

१. यदि इसके खिलाफ व्यक्त रूप से लिखा न गया हो तो निर्देश सिर्फ एक ही पंच के पास किया जाता है ।

२. यदि पंचों की संख्या जोड़ी (even number) हो तो उनका यह कर्तव्य होता है कि अपनी बहाली के दिन से एक महीने के भीतर किसी मध्यस्थ (umpire) को बहाल कर लें ।

३. पंचों को चाहिए कि पक्ष बनाने की लिखित सूचना प्राप्त करने के चार महीने के अन्दर अथवा न्यायालय द्वारा उक्त समय में वृद्धि कर देने पर बड़े समय के अन्दर अपना फैसला अवश्य दे दें ।

४. यदि पंचों ने निर्धारित समय के भीतर अपना फैसला नहीं दिया अथवा यदि उन्होंने पंचायत समझौता (arbitration agreement) के किसी पक्ष को या मध्यस्थ (umpire) को इस बात की लिखित सूचना दी है कि वे आपस में किसी एक निर्णय

पर अटल नहीं रहे तो पंच के बदले में एक मध्यस्थ निर्देश (reference of submission) पर विचार करेगा।

५. मध्यस्थ को चाहिए कि वह विवाद पर विचार करने के लिए प्रवेग होने के दिन से दो महीने के भीतर अदालत द्वारा उक्त समय से वृद्धि कर देने पर बड़े समय के अन्दर अपना फैसला अवश्य दे दे।

६. निर्देश (reference)-सम्बन्धी पक्षों का यह कर्त्तव्य है कि वे पंच या मध्यस्थ के समक्ष कसम खाकर उनके द्वारा पूछे गये सवालों का उत्तर दें तथा माँग करने पर अपने पास रखे हुए लेखों (accounts) तथा दस्तावेजों को प्रस्तुत करें।

७. पंच का फैसला अन्तिम फैसला समझा जायगा तथा यह निर्देश-सम्बन्धी प्रत्येक पक्ष पर लागू होगा।

८. निर्देश (reference) एवं निर्णय (award)-सम्बद्ध व्ययों के भुगतान के लिए पंच या मध्यस्थ अपने विकल्प (discretion) पर किसी भी पक्ष को आदेश (order) दे सकता है कि उसे इस प्रकार तथा अमुक रकम भुगतान करनी होगी।

---

## पंच

### (An Arbitrator)

पंच उस व्यक्ति को कहते हैं जिसे दो से अधिक पक्ष आपस के समझौते द्वारा अपने झगड़े तथा मतभेद का निर्णय करने के उद्देश्य से नियुक्त करते हैं। साधारण तरीके से कोई भी व्यक्ति जिसमें विवाद पर ध्यानपूर्वक विचार करने की क्षमता हो, वाद-सम्बन्धी विशेष बातों का ज्ञान (technical knowledge) हो या जिसे सभी पक्षों से मित्रता हो या सभी उस पर विश्वास करते हों, पंच हो सकता है। अतः पक्षों के इच्छानुसार नाबालिग तथा पागल (lunatic) व्यक्ति भी पंच बन सकता है।\* यदि दोनों पक्ष चाहें तो जज (judge) को भी पंच बना सकते हैं और ऐसी हालत में अपील (appeal) नहीं की सकती। पंचों का अधिकार उस समय से शुरू हो जाता है जिस समय वह निर्णय देने के लिए अपना कार्य प्रारम्भ करता है।

### पंचों की बहाली (Appointment of arbitrators)

धारा ४ के मुताबिक हालाँकि दो या दो से ज्यादा पंचों की बहाली पर कोई रोकट नहीं है, तो भी द्वाभ्दरिन् विचार से हमेशा यथासम्भव एक ही व्यक्ति को पंच के लिए बहाल करना अच्छा होता है। यदि एक से अधिक पंच की बहाली हुई हो तो पंचायत संविदे मे इम बात का होना आवश्यक है कि पंचो के बीच मतभेद होने पर एक मध्यस्थ (umpire) की बहाली होगी। ऐसे मध्यस्थ का नाम भी कभी-कभी पंचायत संविदा में दिया रहता है। कभी-कभी ऐसा भी समझौता रहता है कि पंचो में मतभेद होने पर वे एक मध्यस्थ की बहाली करेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि सभी पक्ष किसी एक व्यक्ति का नाम प्रस्तुति (submission) में दे दें कि वही व्यक्ति पंच की बहाली करेगा जैसे चैम्बर ऑफ कॉमर्स का प्रेसिडेण्ट (President of Chamber of Commerce)। धारा ५ के मुताबिक किसी विपरीत मविदा के अभाव में बहाल किये गये पंचों का मध्यस्थ का अधिकार अखण्डनीय (irrevocable) होता है। लेकिन अदालत की आज्ञा के अनुसार उसके अधिकार का वैसे किसी भी पक्ष की मृत्यु पर जिसके द्वारा उसकी बहाली हुई हो, खंडन नहीं किया जा सकता।

यदि पंचायत-समझौते में यह तय हो कि दोनों पक्ष एक-एक पंच बहाल करेंगे तो नियुक्त किये गये पंचों में से किसी एक की उपेक्षा करने पर, अस्वीकार करने पर, अमर्त्य होने पर अथवा मृत्यु हो जाने पर जिस पक्ष ने उसे बहाल किया था वह उसकी जगह पर किसी दूसरे पंच को बहाल कर सकता है। यदि दोनों पक्षों में से कोई एक पक्ष शुरू में हो या किसी नये पंच की बहाली के समय दूसरे पक्ष से इम बात की लिखित सूचना प्राप्त हो जाने पर भी १५ दिन के अन्दर अपना पंच बहाल

\* Ruthven Parish vs. Elgin Parish (1875) L. R. 2. H. L. 8 C. 535.

नहीं करता है तो दूसरा पक्ष अपने पंच को ही प्रधान पंच (sole arbitrator) मानकर विवाद का निर्णय करा लेगा जो दोनों पक्षों को मान्य होगा। अदालत यदि चाहे तो ऐसे प्रधान पंच को न मानकर दोषी पक्ष को फिर से समय देगी जिसके अन्दर उसे अपना पंच बहाल करना पड़ेगा।

धारा १० के अनुसार यदि पंचायत संविदा में तीन पंचों को बहाल करने के लिए लिखा हुआ हो और तीन पंचों में से दोनों पक्षों को एक-एक पंच बहाल करना हो तथा एक पंच दोनों द्वारा बहाल किया जाना हो तो पंचों द्वारा बहाल किया गया तीसरा पंच मध्यस्थ (umpire) कहलाता है। यदि समझौते से तीन पंचों द्वारा निदश करना हो और यदि उनकी बहाली ऊपर वाली रीति से न हो तो अधिक पंचों का निर्णय मान्य होगा। यदि चार या चार से ज्यादा पंच बहाल किये गये हों तो अधिक पंचों का निर्णय मान्य होगा और यदि मतभेद बराबर-बराबर पंचों में हो तो मध्यस्थ (umpire) द्वारा निर्णय कराया जायगा जो सभी को मान्य होगा।

### न्यायालय द्वारा पंचों की बहाली (Appointment of an Arbitrator by the Court)

धारा ८ के अनुसार जब किसी पंचायत का कोई पक्ष पंच की बहाली नहीं कर पाता है तो न्यायालय को निम्नलिखित हालतों में पंचों को संविदा द्वारा बहाल करने का अधिकार है—

१. जब पंचायत-संविदा में यह लिखा हुआ हो कि निर्देश एक या एक से ज्यादा पंचों के पास प्रस्तुत किया जायगा तथा उनकी नियुक्ति पक्षों की सम्पत्ति से होगी और यदि सभी पक्ष नियुक्ति के सम्बन्ध में सहमत नहीं हों, या

२. जब कोई भी बहाल किया हुआ पंच या मध्यस्थ काम की उपेक्षा करता हो, या काम करने से अस्वीकार करता हो अथवा पंचायत करने के लायक न हो या उसकी मृत्यु हो जाती हो और यदि पंचायत-संविदा में ऐसे पंच या मध्यस्थ के स्थान जो स्पष्ट या गर्भित रूप से खाली रखने के लिए मना न किया गया हो और फिर भी ऐसे पंच या मध्यस्थ के स्थान पर कोई दूसरा पंच या मध्यस्थ बहाल नहीं किया गया हो।

३. जब पक्षों का या पंचों को एक मध्यस्थ बहाल करना हो, किन्तु वे उसकी बहाली नहीं करते हों तो कोई भी पक्ष दूसरे पक्षों को या पंचों को इस बात की लिखित सूचना दे सकता है कि या तो वे बहाली के लिए सहमत दें या नहीं तो रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

यदि सूचना देने के दिन से १५ दिनों के अन्दर बहाली नहीं हुई तो खबर करने वाले व्यक्ति द्वारा दरखास्त देने पर उचित सुनवाई के बाद न्यायालय पंच या मध्यस्थ की बहाली का शून्य-पद की पूर्ति कर सकता है। ऐसे पंचों या मध्यस्थ को पंचायत-सम्बन्धी काम करने का उतना ही अधिकार होता है जितना पक्षों की सहमति से नियुक्त पंचों या मध्यस्थ का होता है।

### पंचों के अधिकार एवं कर्तव्य (Rights and Duties of Arbitrators)

अधिकार—धारा १३ के अनुसार पंचों के अधिकार निम्नलिखित हैं—

(i) पक्षों के गवाहों (witnesses) से शपथ लेना (administer oath)।

(ii) कानून या पंचनिर्णय-सम्बन्धी प्रश्नों को न्यायालय के सम्मुख सम्मति के लिए प्रस्तुत करना।

(iii) पंच-निर्णय को शर्तवाला (conditional) या वैकल्पिक (alternative) बनाना ।

(iv) किरानी की गलती या आकस्मिक त्रुटि या छूट (omission) या पंच-निर्णय में कुछ कमी रह गयी हो तो उसका सुधार करना ।

(v) पंचायत-सम्बन्धी आवश्यक प्रश्नों को किसी पक्ष से पूछना ।

(vi) निर्देश या निर्णय के लिए किये गये व्ययों का निर्णय देना ।

इन सब अधिकारों के अलावा धारा २७ के अनुसार—

(vii) पंचों को अन्तरिम पंच-निर्णय (interim award) भी देने का अधिकार है ।

(viii) पंचों को अपने लिए कानूनी सहाह लेने के लिए वकील भी बहाल करने का अधिकार है ।

(ix) ऋण को किश्तों में चुकाये जाने का निर्णय देना तथा किश्तों की मर्यादा, रकम, भुगतान का समय एवं तरीका तय करना ।

(x) विवादास्पद समझौते के विशिष्ट निष्पादन का आदेश देना ।

(xi) साझेदारी के अवसान का आदेश देना ।

(xii) पंच-निर्णय के समझौते के किसी मृत पक्ष के वैधानिक प्रतिनिधि एवं उत्तराधिकारी की मान्यता के प्रश्न पर निर्णय देना ।

### पंचों का कर्तव्य (Duties)

पंचों के निम्नलिखित मुख्य कर्तव्य हैं—

(i) न्यायपूर्ण कार्य करना (To act judicially)— जिस प्रकार अदालत में झगड़ों का फैसला होता है उसी प्रकार पंचों को भी निर्णय करना चाहिए । उन्हें विवाद की सुनवाई के लिए प्रत्येक पक्ष को स्थान तथा समय सम्बद्ध सूचना देनी चाहिए । सूचना की कमी होने से यह गैरकानूनी होता है ।

(ii) निष्पक्ष भाव से कार्य करना (To act impartially)— पंचों को दोनों पक्षों के प्रति निष्पक्षता से कार्य करना चाहिए । पंचों को दोनों पक्षों के बयानों को शुद्ध चित्त में सुनना चाहिए । उन्हें किसी एक पक्ष के हित की ओर झुकाव नहीं रखना चाहिए । उन्हें चाहिए कि एक पक्ष की ओर से मिली गवाही को दूसरे पक्ष को बता दे ताकि दूसरा पक्ष भी उसका ठीक-ठीक उत्तर दे सके ।

(iii) न्याय के प्रमुख सिद्धान्तों का पालन करना (To observe the first principle of justice)— पंचों के लिए यह कोई आवश्यक नहीं है कि वे लोग अदालत के नियमों का अध्ययन करें, फिर भी विवाद का निर्णय करते समय उन्हें न्याय के प्रमुख सिद्धान्तों तथा सन्निवृत्तियों का पालन करना चाहिए अन्यथा फैसला न्यायसंगत नहीं होता । अतः पक्षों को किसी एक पक्ष की गैरहाजिरी में दूसरे पक्ष से जानकारी प्राप्त करने, किसी पक्ष के गवाह से बयान लेने और दूसरे का अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है । अगर पंच इस प्रकार का दुराचरण (misconduct) करे तो उसका फैसला गैरकानूनी समझा जायगा ।

(iv) पक्षों की सुविधा का खयाल करना (To take care of the parties convenience)— पंचों को जहाँ तक सम्भव हो सके, विवाद की सुनवाई के लिए दोनों पक्षों में समय न्याय के सम्बन्ध में उनकी सुविधाजनक बातों को पूछ ले तथा उसके अनुसार ही अपना कार्य करे ।



(v) वकील बहाल करने का अवसर देना (To give opportunity to appoint a pleader)—पक्षों को पंचायत के लिए वकील रखने का अधिकार है। जब एक पक्ष अपने विवाद का प्रतिनिधित्व किसी वकील के द्वारा करता है तो पंच को चाहिए, और यह उसका कर्तव्य होता है कि वह दूसरे पक्ष को भी माँग करने पर वकील बहाल करने का मौका दे। ह्वैटली बनाम मोरलैंड\* के मुकदमे में न्यायालय ने इसलिए विरोध किया था कि एक पक्ष ने अपने लिए वकील बहाल किया था और दूसरे पक्ष ने पंच से अपने लिए वकील बहाल करने के लिए समय माँगा था, किन्तु पंच ने अस्वीकार कर दिया था। पंचों की इस कार्यवाही को गैरकानूनी बतलाया गया।

(vi) दोनों पक्षों की उपस्थिति में विवाद की सुनवाई की कार्यवाही करना†—पंच को चाहिए कि दोनों पक्षों की उपस्थिति में ही विवाद की सुनवाई की कार्यवाही करे। किन्तु सूचना देने पर भी दूसरा पक्ष अगर इसकी ओर ध्यान नहीं देता तो नियमानुसार वह एकतरफा फैसला (ex-party verdict) दे सकता है।

(vii) किसी पक्ष के लिए प्रतिनिधि की कार्यवाही करना‡—पंच को चाहिए कि किसी भी पक्ष के लिए चाहे उसी पक्ष ने उसे बहाल क्यों न किया हो, उसकी ओर से न बोले और न उसके प्रतिनिधि का काम ही करे।

(viii) सभी विवादास्पद विषयों का फैसला करना\*\*—पंचों को सभी विवादास्पद विषयों का एक समुक्त फैसला देना चाहिए। किन्तु, संविदा के अनुसार वे अलग-अलग भी फैसला दे सकते हैं।

(ix) स्वयं ही निर्णय का कार्य करना (To act himself or themselves)—हालाँकि पंचों को किन्ती विषय पर वकीलों या कुशल व्यक्तियों (experts) से सलाह लेने का अधिकार है, किन्तु निर्णय-सम्बन्धी कार्यों के लिए वह उन्हें नहीं रख सकता है। उन्हें स्वयं ही फैसला देना चाहिए।

(x) अधिकार (Authority) के बाहर कार्य करना—पंचों को अपने अधिकार से बाहर कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। निर्देश की शर्तों का उन्हें अक्षरशः पालन करना चाहिए।

(xi) पंच-फैसले पर दस्तखत (To sign the award)—पंचों को अपने फैसले पर दस्तखत भी करना चाहिए।

पंच को अपने पद से हटाना (Removal of an arbitrator)—निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा पंचनिर्णय के समझौते के किसी पक्ष के दरखास्त देने पर किसी भी पंच को अपने पद से हटाया जा सकता है—

(i) जब कि पंच ने विवाद को समझने एवं तत्सम्बन्धी कार्यवाही करने या निर्णय देने में यथोचित शीघ्रता से काम न किया हो। बगैर सभी पक्षों की राय के पंचों को निर्णय देने के लिए दिये गये समय में वृद्धि करने का न्यायालय को कोई अधिकार नहीं होता है [धारा २८]।

(ii) जब पंच को कोई गलत कार्य या कष्टपूर्ण कार्य करने के लिए बोला गया हो [धारा ११]।

\* Whately vs. Morland, 2 Dowl. 249.

† To see that all the proceedings go on the presence of the parties their legal representatives.

‡ Not to act as agent for any party.

\*\* To decide all the disputed matter.

इस तरह से अपने पद से हटाये गये पंच को पारिश्रमिक पाने का कोई अधिकार नहीं होता है।

### पंच का पारिश्रमिक (Remuneration of an arbitrator)

पंच का पारिश्रमिक पक्षों एवं पंच के बीच हुए समझौते के द्वारा निर्धारित होता है। अगर पक्षों ने पंचनिर्णय के समझौते द्वारा पंच का पारिश्रमिक निर्धारित न किया हो, तो पंच अपना पारिश्रमिक स्वयं निर्धारित कर सकता है। परन्तु, अगर किसी पंच द्वारा अनुचित या ज्यादा फीस माँगी जा रही हो तो न्यायालय खुद पंच को उचित फीस देने का आदेश दे सकता है। पंच की फीस का भुगतान करने के बाद अगर कुछ शेष जमा धन न्यायालय के पास बच जाता है तो यह धन जमा करने वाले व्यक्ति को लौटा दिया जायगा।

### पंचनिर्णय [The award—Sec 2 (b)]

‘पंचनिर्णय’ पंचों द्वारा दिये गये उस अन्तिम और लिखित निर्णय को कहते हैं जो उनके (पंचों के) पास पार्टियों द्वारा भेजे गये किसी भी प्रश्न या विषय पर लिया जाना है। (An award is the final judgment or decision in writing by an arbitrator or arbitrators or umpire on all matter referred to arbitration as between the parties and all those who claim through them.)

‘पंचनिर्णय’ पंचों का लिखित फैसला है। पंचायत की प्रत्येक बैठक में सभी पंचों को उपस्थित रहना चाहिए तथा अन्तिम बैठक में निर्णय लिखने के समय तो सभी पंचों का रहना अति आवश्यक है, यद्यपि यह कोई जरूरी नहीं है कि सभी लोग एक-दुसरे की उपस्थिति में ही दस्तखत करें। फिर भी, पंचों को चाहिए कि अन्तिम निर्णय की बात, उनके प्रति व्यय तथा बकाये (dues) की मूचना सभी पक्षों को दे दे।

### निर्णय के प्रति न्यायालय के अधिकार (Powers of the Court Regarding the Award)

जब किसी पंच का मध्यस्थ के निर्णय को न्यायालय के पास निर्णय के आधार पर डिक्री देने की दरखास्त दी जाती है तो इसके सम्बन्ध में न्यायालय को निम्न-लिखित अधिकार प्राप्त हैं—

१. धारा १५ के अनुसार निर्णय का रूपान्तर (modification) अथवा संशोधन (correction) करना।

२. धारा १६ के अनुसार फिर से निर्णय (reconsideration) करने के लिए निर्णय को वापस (remittance) करना।

३. धारा ३० के अनुसार निर्णय को रद्द करना (set aside)।

४. धारा १७ के अनुसार पंचनिर्णय के आधार पर फैसला देना (to pronounce judgment on the basis of the award)

इन सर्वों का विस्तारपूर्वक वर्णन नीचे दिया जाता है—

१. निर्णय का रूपान्तर अथवा संशोधन (Modification or correction of

award); Sec. 15—निम्नलिखित हालतों में न्यायालय निर्णय का रूपान्तर अथवा संशोधन कर सकता है—

(क) जब न्यायालय को यह ज्ञात हो जाय कि पंचनिर्णय में कुछ ऐसी बातों पर भी विचार किया गया है जिनके लिए निर्देश नहीं किया गया था (matter not referred to arbitration) और उन्हें आसानी से निर्णय को बिना प्रभावित किये अलग किया जा सकता है।

(ख) जब निर्णय अपूर्ण या अधूरा (imperfect) हो अथवा उसमें कोई गलती इस तरह की (any obvious error) हो जिसका सुधार निर्णय को प्रभावित किये बिना ही किया जा सकता है।

(ग) जब निर्णय में किरानी ने कोई गलती (clerical mistake) की हो या उसमें कोई आकस्मिक भूल या त्रुटि (accidental slip or omission) हो गयी हो।

२. फिर से विचार करने के लिए निर्णय को वापस भेजना (Remittance of award); Sec. 16—निम्नलिखित हालतों में न्यायालय फिर से विचार करने के लिए पंच या मध्यस्थ के पास निर्णय को वापस भेज सकता है—

(क) जब निर्णय में निर्देशित विषयों में से किसी एक के सम्बन्ध में निर्णय नहीं किया गया हो (undetermined any of the matters referred to arbitration) या निर्णय में अनिर्देशित विषय का निर्णय दिया गया हो और जब उसे निर्णय से अलग नहीं किया जा सकता हो।

उदाहरण—X, Y और Z संयुक्त परिवार (joint family) के मेम्बर हैं और वे व्यापार करते हैं। एक बार X ने Y और Z से पिछले वर्षों का हिसाब-किताब यह कहते हुए माँगा कि व्यापार साझेदारी का है, संयुक्त परिवार का नहीं। इसको तय करने के लिए कि व्यापार साझे का है, इन लोगों ने मामले को पंचायत में भेजा। पंचों ने यह फैसला दिया कि X को हिसाब-किताब देखने का अधिकार है। पर यह नहीं बतलाया कि व्यापार साझे का है या संयुक्त परिवार का। अतः न्यायालय फिर से फैसला देने के लिए मुकदमा पंचों के पास वापस कर सकता है।

(ख) जब निर्णय अनिश्चित (so indefinite) होने की वजह से कार्यान्वित (incapable of execution) नहीं किया जा सकता है।

उदाहरण—X और Y दो भाई अपने पिता की सम्पत्ति का बँटवारा करते समय झगड़ गये और उन्होंने इस बँटवारे के फैसले के लिए विवाद को पंचायत में भेजा। पंचों ने यह फैसला दिया कि गंगा नदी के उत्तर जितनी भी जमीन है वह X ले ले और दक्षिण की सारी जमीन Y को दी जाय। यहाँ पर फैसला अनिश्चित और अस्पष्ट है क्योंकि यह सम्पत्ति को निश्चित नहीं करता। इसलिए न्यायालय ऐसे फैसले को ज्यादा निश्चित और सही बनाने के लिए वापस कर सकता है।

(ग) जब उस निर्णय को देखने से यह साफ विदित हो कि वैधानिक दृष्टि से आपत्तिजनक (objectionable) है।

३. निर्णय को रद्द करना (To set aside an award); Sec. 30—निम्नलिखित हालतों में न्यायालय पंचनिर्णय को रद्द कर सकता है—

(क) यदि पंच या मध्यस्थ ने स्वयं या अपनी कार्यवाही (proceedings) द्वारा दुराचरण (misconduct) किया हो।

(ख) यदि पंच या मध्यस्थ ने अपना फैसला न्यायालय द्वारा पंचायती कार्यवाही

को गैरकानूनी घोषित कर देने के बाद, अथवा निर्णय की अवधि समाप्त हो जाने के बाद अथवा पंचायत को रद्द कर देने के बाद दिया हो।

(ग) यदि फैसला अनुचित रूप से प्राप्त किया गया हो (improperly procured) अथवा यह किसी दूसरे कारणों से गैरकानूनी हो (is otherwise invalid)।

**उदाहरण**— कोई भी पक्ष किसी ऐसे मामले के कपटपूर्ण संगोपन का दोषी रहा है, जो पंचों को बताया जाना चाहिए था या जो पक्ष को भ्रम में डालता (misleads) या धोखा देता है।

(व) यदि उसने कार्यवाही को अवतरित किया है (misconduct the proceedings) अर्थात् वह 'निधि अविचार' (legal misconduct) का दोषी है।

**उदाहरण**— यदि उसने दूसरे पक्ष की गैरहाजिरी में एक पक्ष को सुनकर, या एक पक्ष को जरा भी न सुनकर नैसर्गिक न्याय (natural justice) के नियमों के पालन में चूक की है।

**४. निर्णय के आधार पर फैसला (Judgment in terms of award);**  
Sec 17—धारा १७ के अनुसार जब न्यायालय किसी निर्णय या पंचायत को निर्देशित किसी बात को रद्द करने का या वापस (remit) करने का कारण नहीं पाता है तथा जब निर्णय रद्द करने के लिए दरखास्त देने का समय भी बीत गया हो या दरखास्त प्रस्तुत करने पर अस्वीकार कर दी गयी हो तो न्यायालय पंचनिर्णय के आधार पर अपना फैसला देगा। न्यायालय का फैसला निर्णय के अनुकूल होने पर अन्तिम होगा। इसके विरुद्ध अपील (appeal) नहीं की जा सकती। किन्तु यदि न्यायालय का फैसला (judgment) निर्णय (award) के अनुकूल नहीं हो (not otherwise in accordance with the award) या उसमें फैसले से अधिक विषयों का समावेश हो तो ऐसी हालत में अपील की जा सकती है।

**५. न्यायालय की आज्ञा (Order) के खिलाफ अपील (Appealable Orders);**  
Sec. 39—धारा ३९ के अनुसार अदालत की निम्नलिखित आज्ञा (orders) के खिलाफ अपील की जा सकती है—

१. पक्ष के फैसले का अवक्रमण (supersede) करने की आज्ञा।\*

२. किसी विशेष मामले का निर्णय करने के लिए दी हुई आज्ञा।†

३. निर्णय (award) को रूपान्तर (modifying) या संशोधन (correcting) करने की आज्ञा।

४. पंचायत समझौते (arbitration agreement) को पेश (file) करने या नहीं करने की आज्ञा।‡

५. जब पंचायत समझौता हो जाय तो कानूनी कार्यवाही (legal proceedings) को रोकने या नहीं रोकने की आज्ञा।\*\*

६. निर्णय को रद्द करने या नहीं करने की आज्ञा।†\*

\* Superseding an arbitration.

† An award started in the form of a special case.

‡ Filing or refusing to file an arbitration agreement.

\*\* Staying or refusing to stay legal proceedings where there is an arbitration agreement.

†\* Setting aside or refusing to set aside an award.

जिस आज्ञा की एक बार अपील हो चुकी है उसकी फिर से दुबारा अपील नहीं की जा सकती है। किन्तु दुबारा अपील सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) में की जा सकती है। धारा ३९ की बातें छोटी कचहरी (Small Causes Court) द्वारा पास की गयी आज्ञा पर लागू नहीं होतीं।

### प्रस्तुति या निर्देश का प्रभाव (Effect of Submission or Reference)

जब दो पार्टियाँ अपने वर्तमान या भविष्य के मतभेदों को निबटारा कराने के ख्याल से किसी पंच के समक्ष पेश करती हैं तो वे इन मतभेदों के किसी भी विषय के सम्बन्ध में न्यायालय में मुकदमा नहीं चला सकतीं। यदि ये ऐसा करती हैं तो सिद्धान्ततः पंचायत के मुख्य उद्देश्यों का खण्डन करती हैं। यदि पंचायत-समझौते का कोई पक्ष दूसरे पक्ष पर न्यायालय में कानूनी कार्रवाई करे तो दूसरा पक्ष न्यायालय में दरखास्त देकर कानूनी कार्रवाई को रोकने की आज्ञा प्राप्त कर सकता है। लेकिन न्यायालय इस तरह की आज्ञा (order) निम्नलिखित विषयों पर सन्तुष्ट होने पर ही पास करता है—

(क) जिस कार्रवाई को रोकने के लिए दरखास्त दी गयी है वह उसी विषय के सम्बन्ध में है जिसके लिए पंचायत समझौता (arbitration agreement) हुआ है। यदि उसका कुछ भाग पंचायत समझौते से सम्बद्ध हो तो वह न्यायालय की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है। लेकिन उस अंश पर गौर नहीं किया जा सकता।

(ख) दरखास्त देनेवाला व्यक्ति पंचायत की कार्यवाही के सम्बन्ध में अपने अधिकार-सम्बन्धी सभी कार्यों को करने के लिए तैयार है तथा दरखास्त देने के पहले भी तैयार था।

(ग) विवाद को पंचायत के सामने निबटारे के लिए प्रस्तुत न करने का कोई उचित कारण नहीं दिया गया था।

(घ) दरखास्त देनेवाले व्यक्ति से पंचायत समझौते के लिए कोई कपट न किया गया था।

(ङ) दरखास्त देनेवाले व्यक्ति ने इसके पहले कभी उसी अभियोग में दूसरे पक्ष के द्वारा रोकने का आवेदन करने पर उसकी रक्षा (defence) में कोई लिखित विवरण न दिया हो।

### न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किये जाने पर पंचायत (Arbitration through the intervention of the Court)

इसके दो रूप होते हैं—

(i) जब कि पहले से कोई वाद अदालत के विचाराधीन नहीं हो। [धारा २०] (Where there is no suit pending.)

(ii) जब कोई वाद पहले से अदालत के विचाराधीन हो [धारा २१ से २५ तक] (Where there is a suit pending)

(i) धारा २० के अनुसार यदि दो पार्टियाँ आपस में यह संविदा करती हों कि दोनों के बीच कोई विवाद हो जायगा तब उसका फैसला न्यायालय में दरखास्त करके किसी पंच के द्वारा कराया जायगा और यदि वैसा विवाद हो जाय तो वे दोनों पार्टियाँ या कोई एक पार्टी न्यायालय में दरखास्त दे सकती है। दरखास्त भी दूसरे कागजों की तरह लिखित हो, नम्बर दिया गया हो तथा रजिस्टर्ड हो और

उस पर पार्टियों का नाम लिखा गया हो। दरखास्त दे देने पर न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि उससे सम्बद्ध सभी पार्टियों को इस बात की खबर दे तथा आदेशित करके कि अमुक तारीख को हाजिर होकर न्यायालय के सामने यदि कुछ कहना चाहें तो कहें। यदि अन्य पक्षों को इसके खिलाफ कुछ कहना नहीं हो तो न्यायालय उस विवाद को पंच के द्वारा फैसला कराने की आज्ञा करेगा।

(ii) यदि पहले से कोई मुकदमा दो पार्टियों के बीच अदालत में चला आ रहा हो और यदि दोनों पक्ष आपस की राय से फैसला होने के पहले न्यायालय के सामने इस बात की दरखास्त करें कि न्यायालय विवाद को किसी पंच के पास पेश करे तो न्यायालय उस विवाद को पक्षों के समझौते के अनुकूल पंच के पास निर्देशित कर सकता है। निर्देश के बाद न्यायालय उस झगड़े के सम्बन्ध में कोई कार्य नहीं करता। किन्तु जो पक्ष उस दरखास्त में शामिल नहीं हुआ है या जिन विषयों का निर्देश नहीं किया गया है, न्यायालय के यहाँ अभियोग चालू रहेगा। न्यायालय निर्णय के लिए समय भी निश्चित कर सकता है। [धारा २१-२५]

### University Questions

1. What is an Arbitration Agreement ? What are the provisions implied in an arbitration agreement without the intervention of the Court ?

(पंचायत-समझौता क्या है ? बिना न्यायालय के हस्तक्षेप के पंचायत-समझौते में क्या-क्या गभित निर्बन्ध होते हैं ?)

2. What is meant by Submission to Arbitration ? Can a Joint Stock Company refer to arbitration any existing or future dispute between itself and another company ? [C. U. 1960; B. U. 1958]

(पंचायत के समक्ष प्रस्तुति का क्या मतलब है ? क्या संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी अपनी तथा दूसरी कम्पनी के बीच के वर्तमान अथवा भविष्य के झगड़े का पंचायत के लिए निर्देश कर सकती है ?)

3. Explain a 'submission to arbitration'. What matters may be so referred to arbitration ? State the different ways in which such a reference or submission to arbitration may take place.

(‘पंचायत के लिए प्रस्तुति’ की व्याख्या कीजिए ? कौन-सी बातें पंचायत के लिए निर्देशित की जा सकती हैं ? उन सभी विधियों की व्याख्या कीजिए जिनके द्वारा पंचायत के लिए इस प्रकार का निर्देश या प्रस्तुति हो सकती है।)

4. What is a submission to arbitration ? What are the different modes of submission ?

(पंचायत के समक्ष प्रस्तुति क्या है ? पंचायत के लिए प्रस्तुति के विभिन्न ढंग क्या हैं ?)

5. What is meant by 'submission to arbitration' ? What are the circumstances under which the Court can remove an arbitrator ?

(पंचायत के लिए प्रस्तुति का क्या मतलब है ? किन परिस्थितियों में न्यायालय एक पंच को हटा सकता है ?) [All. 1958; Lucknow 1962; M. U. 64]

6. What is submission ? When can an award be referred back by the Court for reconsideration ?

(प्रस्तुति क्या है ? कब एक पंचनिर्णय पुनर्विचार के लिए न्यायालय द्वारा वापस किया जा सकता है ?)

7. What is an 'arbitration agreement'? Under what circumstances a court can (a) modify or correct the award, (b) remit the award of an arbitrator for reconsideration, and (c) set aside an award ?

[एक पंचायत-समझौता क्या है ? किन परिस्थितियों में न्यायालय—(क) पंचनिर्णय का संशोधन या रूपान्तरण कर सकता है; (ख) पंचनिर्णय को पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है, और (ग) पंचनिर्णय को रद्द कर सकता है ?]

8. Who may refer and what may be referred to arbitration ? Can a person who has no interest of his own in the matter in dispute, refer such dispute to arbitration ? If so, in what cases ?

(कौन निर्देश कर सकता है तथा कौन-कौन-सी बातें निर्देशित की जा सकती हैं ? क्या एक व्यक्ति, त्रिमका विवाद की विषय-वस्तु में अपना कोई हित नहीं है, ऐसे विवाद को पंचायत के लिए निर्देश कर सकता है ? अगर कर सकता है, तो किन परिस्थितियों में ?)

9. What can be referred to arbitration ? What are the different modes of submission ?

(पंचायत के लिए क्या निर्देश किया जा सकता है ? प्रस्तुति के विभिन्न ढंग क्या हैं ?)

10. State briefly the manner in which the arbitration of dispute may be made without the intervention of the Court.

(उन रीतियों की संक्षेप में व्याख्या कीजिए जिनमें बिना न्यायालय के हस्तक्षेप के पंचायत के लिए विवाद का निर्देश किया जा सकता है ।)

11. (a) How is an arbitrator appointed ? What are his powers and duties under the Indian Law of Arbitration ?

(b) How can the court remove an arbitrator or umpire and what are the powers of court where arbitrator is removed or his authority revoked ?

[ (क) एक पंच की बहाली कैसे होती है ? भारतीय पंचायत कानून के अन्दर उनके क्या अधिकार और कर्तव्य हैं ?

(ख) न्यायालय किस प्रकार एक पंच अथवा मध्यस्थ को हटा सकता है तथा जहाँ पंच हटाया जाता है अथवा उसके अधिकार का खंडन कर दिया जाता है तो न्यायालय के क्या अधिकार होते हैं ? ]

12. What do you mean by award ? What are the powers of the court regarding the award ?

(पंचनिर्णय से आप क्या समझते हैं ? पंचनिर्णय के प्रति न्यायालय के क्या अधिकार होते हैं ?)

13. What is an award ? Set out the cases in which the court has power to modify or correct the award.

(पंचनिर्णय क्या है ? उन परिस्थितियों को बतलाइए जिनमें न्यायालय को पंचनिर्णय के संशोधन अथवा रूपान्तरण का अधिकार है ।)

14. (a) Examine the circumstances when the court may modify or set aside an award.

(b) When can an award be remitted for consideration to the same arbitrator ?

[(क) उन परिस्थितियों की जाँच कीजिए जब न्यायालय एक पंचनिर्णय को संशोधित अथवा रद्द कर सकता है।

(ख) कब एक पंचनिर्णय उस पंच को विचार करने के लिए वापस किया जा सकता है ?]

15. Does an appeal lie against the order of a Court ? What is the effect of submission to arbitration on an action ?

(क्या एक न्यायालय की आज्ञा के खिलाफ अपील की जा सकती है ? पंचायन के लिए प्रस्तुति का क्या प्रभाव होता है ?)

16. Write short notes on—

[(i) Arbitration Agreement (पंचायन समझौता), (ii) Submission to Arbitration (पंचायत के लिए प्रस्तुति), (iii) Arbitrator (पंच), (iv) Umpire (मध्यस्थ), (v) Award (पंचनिर्णय), (vi) Interim Award (अन्तरिम निर्णय), (vii) Appealable Orders (न्यायालय की आज्ञाओं के विरुद्ध अपील)]।

17. Discuss the following Problems—

(i) A and B want to settle their differences by arbitration. With this view they appoint a Judge as an arbitrator. When the arbitrator gives his award, A being dissatisfied files an appeal against the award. Is the appointment of the Judge as an arbitrator valid and is A justified in making an appeal against the award ?

[यहाँ निम्नलिखित मान्य (valid) है तथा A पंचनिर्णय के खिलाफ अपील नहीं कर सकता है।]

(ii) In an arbitration suit between A and B, A appointed a pleader to represent his case. On this B applied for time to appoint his own pleader. The arbitrator refused to give time to B to appoint his own pleader. Is the action of the arbitrator a legal one ?

[पंच की कार्यवाही वैध नहीं है।]

(iii) An arbitrator sends notice by registered post to parties, to appear before him on a certain date. One of the parties failed to appear. The arbitrator records the evidence of the other party in his absence and gives an award. What are the remedies open to the party when the award has been given in his absence ?

(iv) Where two arbitrators were appointed and one of them was absent at one only of many sittings, that sittings being an unimportant one, and where the award was given jointly and one of the parties objected to it, would it be liable to be set aside ? Give reasons for your reply.

(v) Point out carefully the rights of a submission (if any) against an arbitrator who—

- refuses to deliver up an award until an exorbitant fee is paid;
- is guilty of (i) want of care (ii) want of skill;
- declines to make any award at all;
- makes a corrupt award;
- gives an ex-party award.



# बीमा-सन्तियम Insurance Act



## विषय-प्रवेश (Introduction)

भारतवर्ष में बीमा के लिए किसी विशेष प्रकार के कानून नहीं बनाये गये हैं। जो कानून सन् १९३८ में बीमा-विधान (Insurance Act, 1938; Act IV) के नाम से पास हुआ है वह सिर्फ बीमा कम्पनियों के रजिस्ट्रेशन (registration) तथा शासन के लिए बनाये नियम से सम्बद्ध है। इसमें बीमा की प्रसंविदों (insurance contracts) से सम्बद्ध किसी कानून का वर्णन नहीं है। इस क्षेत्र के कानून के लिए भारत में इंग्लैण्ड के कानून का अनुकरण होता है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि बीमा-प्रसंविदों के लिए अँगरेजी विधान का अक्षरशः अनुकरण किया जाता है, बल्कि जहाँ हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के प्रसंविदा-विधान में अन्तर माना गया है वहाँ भारतीय प्रसंविदा-विधान को ही महत्त्व दिया जाता है और यही मान्य (valid) होता है।

### परिभाषा (Definition)

बीमा वह प्रणाली है जिसके द्वारा किसी जनसमूह के प्रत्येक सदस्य के विपत्ति-ग्रस्त होने से जो हानि होती है, उसे किसी व्यापारिक अथवा आर्थिक आधार पर उन जनसमूह में विभाजित कर दिया जाता है।\*

दूसरी परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं—

“बीमा दो पक्षों के बीच की गयी प्रसंविदा है जिसमें एक पक्ष दूसरे पक्ष को एक निश्चित रकम के बदले में भविष्य में होनेवाली घटना के लिए एक निश्चित राशि देने का अथवा किसी उल्लिखित कारण द्वारा हानि होने पर क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायित्व स्वीकार करता है।”†

### बीमा के भेद (Kinds of Insurance)

आजकल बीमा के निम्नलिखित भेद हैं—

१. सामुद्रिक बीमा (Marine Insurance),
२. अग्नि बीमा (Fire insurance),
३. जीवन बीमा (Life insurance),
४. वैयक्तिक दुर्घटना बीमा (Personal accident insurance)

\* “Insurance is simply a co-operative form of distributing a certain risk over a group of persons exposed to it.”

† “Insurance is a contract whereby one party agrees to indemnify the other party against a loss which may arise or to pay a certain sum of money of the happening or a certain event in return of a compensation called premium.”

५. दायित्व बीमा (Liability insurance), और

६. सामाजिक बीमा (Social insurance) ।

इसके अलावा, बीमा के और कई प्रकार हैं—जैसे प्रसूति का बीमा (maternity insurance), व्याधि अथवा रोगावस्था का बीमा (sickness insurance), वृत्तिहीनता का बीमा (unemployment insurance), वृद्धावस्था या पेंशन का बीमा (old age or pension insurance), सम्पत्ति का बीमा (property insurance), ऋण बीमा, चोरी बीमा, वायुयान-बीमा वगैरह । संक्षेप में हमलोग कह सकते हैं कि वर्तमान युग में प्रायः सभी क्षतियों के विरुद्ध बीमा की सुविधा देने का प्रवन्ध कर दिया गया है ।

### ग़र्योरेन्स तथा इन्स्योरेन्स शब्दों का भेद (Difference between Assurance and insurance)

बहुत पहले सोलहवीं शताब्दी तक लोग सिर्फ 'एश्योरेन्स' शब्द का ही इस्तेमाल करते थे, पर इसके बाद 'इन्स्योरेन्स' शब्द भी इस्तेमाल में लाया जाने लगा और लोगों ने दोनों शब्दों के बीच भेद निकाला । कुछ विद्वानों के मत के अनुसार 'एश्योरेन्स' शब्द जीवन-बीमा के लिए तथा 'इन्स्योरेन्स' शब्द बीमा के दूसरे प्रकारों के लिए व्यवहार में आने लगा । इन दोनों शब्दों की भिन्नताओं में से विशिष्ट निम्नलिखित है—

१. 'इन्स्योरेन्स' शब्द का प्रयोग वहाँ करना चाहिए जहाँ जोखिम पूर्णतया अनिश्चित हो अर्थात् जहाँ घटना घट भी सकती हो और नहीं भी । इस सिद्धान्त के अनुसार 'इन्स्योरेन्स' शब्द का प्रयोग क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में करना चाहिए । अग्नि तथा सामुद्रिक बीमा में जोखिम पूर्णतया अनिश्चित रहती है । निवास तथा उद्योग-गृहों में आग लग भी सकती है और नहीं भी, इस प्रकार, जहाज समुद्र में डूब भी सकता है और नहीं भी । इसलिए अग्नि तथा सामुद्रिक बीमा में 'इन्स्योरेन्स' शब्द का प्रयोग करना उचित होता है । इसके विपरीत, 'एश्योरेन्स' शब्द का प्रयोग वहाँ करना चाहिए जहाँ जोखिम अनिवार्य है । इसके अनुसार इसका प्रयोग जीवन-प्रसंविदा (life contracts) में करना चाहिए, क्योंकि इससे यह निश्चित रहता है कि एक निश्चित समय के भीतर मनुष्य की मृत्यु अवश्य होगी या वह जीवित रहेगा और बीमा प्रमण्डल को बीमाकृति धन अवश्य देना होगा ।

२. कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्य अपने जीवन या सम्पत्ति का बीमा (इन्स्योर) करता है और बीमा-कम्पनी बीमा करानेवाले को इन्स्योर करती है ।

३. इसके अलावा, कुछ विद्वानों का मत है कि इन्स्योर शब्द से व्यवहार (practice) तथा एश्योर से प्रीमियम (premium) का बोध होता है ।

ऊपर लिखित भिन्नताओं पर ध्यान देने से यह पता चलता है कि व्यवहार में दोनों शब्दों का एक ही अर्थ लगाया जाता है । अतः यह कहना बहुत ठीक है कि दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । आजकल शायद ही लोग दोनों शब्दों में कोई भिन्नता मानते हैं तथा दोनों को किसी भी प्रकार के बीमा के लिए व्यवहार किया जा सकता है ।

### बीमा-प्रसंविदा की आवश्यक शर्तें (Essentials of Insurance Contract)

हमलोग जान चुके हैं कि भारतीय प्रसंविदा विधान के अनुसार सभी संविदाएँ

प्रसंविदा होती है जो प्रसंविदा करने योग्य पक्षों के बीच उसकी स्वेच्छापूर्ण सम्मति द्वारा किसी वैधानिक प्रतिफल के निमित्त वैधानिक उद्देश्यों की दृष्टि से की गयी हो और जो स्पष्टतया अवैध घोषित न कर दी गयी हो। ऊपर लिखी गयी परिभाषा के अनुसार किसी भी प्रसंविदा के लिए निम्नलिखित शर्तें आवश्यक है—

१. प्रसंविदा में एक पक्ष प्रस्ताव करे और दूसरा उसका समर्थन करे।

२. पक्ष प्रसंविदा के योग्य हों (Competent parties)—वैधानिक दृष्टि से दोनों पक्षों को प्रसंविदा करने की योग्यता होनी चाहिए अर्थात् वे नाबालिग, उन्मत्त व्यक्ति, विदेशी शत्रु या दिवालिया न हों अन्यथा प्रसंविदा अवैध घोषित की जा सकती है।

३. स्वतन्त्र स्वीकृति (Free consent)—जिन पक्षों के बीच प्रसंविदा हो, उनकी अपनी स्वतन्त्र (स्वेच्छापूर्ण) स्वीकृति होनी चाहिए। यदि कोई पक्ष किसी दूसरे व्यक्ति के प्रभाव या प्रतिरोध द्वारा प्रसंविदा करता है तो यह अवैध घोषित की जा सकती है।

४. वैधानिक उद्देश्य (Lawful object)—दोनों पक्ष जिस कार्य के लिए प्रसंविदा करने हों वह पूर्णतया वैध हो अन्यथा प्रसंविदा रद्द की जा सकती है। यदि कोई प्रसंविदा किसी जुए के ढंग के कार्य के लिए या दूसरे किसी निषिद्ध कार्य के लिए तथा सार्वजनिक नीति के विरुद्ध होती हो तो वह अवैध समझी जाती है।

५. वैध प्रतिफल (Lawful consideration)—दोनों पक्षों के बीच जो प्रसंविदा हो, वह किसी वैध प्रतिफल के लिए होनी चाहिए।

६. प्रसंविदा ऐसी न हो जिसे सरकार ने अधिनियम द्वारा पहले ही अवैध घोषित कर दिया हो।

बीमा-प्रसंविदा के लिए उपर्युक्त शर्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातें भी अत्यन्त आवश्यक है—

१. बीमा-योग्य हित (Insurable interest), और

२. परम सद्विश्वास (Utmost good faith or uberrimae fidei)।

१. बीमा-योग्य हित (Insurable interest)—बीमा-योग्य हित का तात्पर्य ऐसे हित से होता है जिसकी विद्यमानता से बीमाकृत को बीमा की गयी वस्तु की सुरक्षा से आर्थिक लाभ या नष्ट होने से आर्थिक हानि हो। बीमा की प्रसंविदा को वैध होने के लिए इस हित की विद्यमानता अनिवार्य है। इसके अभाव में बीमा की प्रसंविदा जुए के समान होती है और अधिनियम की दृष्टि से अवैध समझी जाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति अथवा किसी के जीवन का बीमा करता है तो उसे बीमा के विषय में ऐसा सम्बन्ध होना चाहिए कि उसे सम्पत्ति के नष्ट होने तथा व्यक्ति की मृत्यु होने से आर्थिक हानि और सुरक्षित रहने या जीवित रहने से आर्थिक लाभ हो। यदि उसे ऐसा हित सम्पत्ति या जीवन से नहीं है तो वह कभी बीमा नहीं करा सकता। न्याय की दृष्टि से भी यह उचित है। यदि ऐसा प्रतिबन्ध नहीं होता तो कोई भी व्यक्ति किसी भी सम्पत्ति अथवा जीवन का बीमा करा लेता। बाद में उस सम्पत्ति को नष्ट करके कम्पनी को ठगने का प्रयत्न करता और यह कार्य पूर्णतया एक जुए-जैसा होता।

बीमा कराने वाले व्यक्ति के बीमा की विषयवस्तु में बीमा-योग्य हित के निर्धारण के लिए निम्नांकित बातों को देखना चाहिए—

(i) बीमा कराने वाले व्यक्ति की जिम्मेदारी पर या अधिकार में कोई ऐसी

सम्पत्ति, अधिकार, हित या अव्यक्त दायित्व है, जिसकी जोखिम उठायी जानी हो; ऐसा अधिकार या हित बीमा-समझौते की विषयवस्तु है।

(ii) बीमा कराने वाले व्यक्ति का बीमा-समझौते की विषयवस्तु में कोई वैधानिक या समन्यायिक (legal or equitable) हित हो, जिसकी वजह से सम्पत्ति पर अधिकार या हित की सुरक्षा या दायित्व से मुक्ति की हालत में उसे आर्थिक लाभ होगा तथा किसी भी नुकसान, या क्षति या दायित्व के कारण आर्थिक हानि उठानी होगी।

✓ **जीवन-बीमा के अनुबन्ध में बीमा-योग्य हित (Insurable Interest in Life Insurance Contracts)**—जीवन-बीमा में बीमा-योग्य हित की विद्यमानता प्रस्ताव करते समय होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का अपने जीवन में असीमित बीमा-योग्य हित होता है और इसीलिए कोई भी व्यक्ति अपने जीवन पर कितनी ही रकम का बीमा करवा सकता है। लेकिन व्यवहार में बीमा की रकम बीमा कराने वाले व्यक्ति की प्रीमियम चुकाने की क्षमता से सीमित होती है। एक व्यक्ति का उन सभी व्यक्तियों के जीवन में बीमा-योग्य हित होता है जो उसका भरण-पोषण करते हैं या जिनकी मृत्यु के कारण उसे आर्थिक हानि उठाने की सम्भावना हो। जीवन-बीमा-समझौते में पाये जानेवाले बीमा-योग्य हित के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

- (i) पति के जीवन में पत्नी का या पत्नी के जीवन में पति का;
- ✓ (ii) पिता के जीवन में पुत्र का जबकि पुत्र पिता की आमदनी पर अपने जीवन-निर्वाह के लिए आश्रित हो।
- ✓ (iii) लेनदार का अपने ऋणी के जीवन में कर्ज की रकम तक के लिए।
- ✓ (iv) मालिक का अपने कर्मचारी के जीवन में नौकरी-समझौता की अवधि तक।
- ✓ (v) आश्रित का अपने आश्रयदाता के जीवन में मिल रही सहायता की सीमा तक।
- (vi) प्रतिभू का मूल ऋणी के जीवन में अपने द्वारा दी गयी प्रत्याभूति की सीमा तक।
- ✓ (vii) साझेदारी व्यवसाय में किसी भी साझेदार का अन्य साझेदारों के जीवन पर।
- (viii) एक एजेंट का भी उसके स्वामी के माल में अपने कमीशन के लिए नहीं, बल्कि उस माल पर खर्च की गयी रकम के लिए बीमा-योग्य हित हो सकता है।

जब किसी व्यक्ति का किसी अन्य व्यक्ति के साथ विधि द्वारा कोई मान्य सम्बन्ध हो तो इस तरह का व्यक्ति सम्भाव्य आर्थिक हानि की सीमा तक उस सम्बन्धी के जीवन पर जीवन-बीमा पॉलिसी ले सकता है। ऐसी हालत में बीमा करानेवाले व्यक्ति द्वारा बीमा करनेवाले से जो रकम प्राप्त की जा सकती है वह बीमा करानेवाले व्यक्ति के जीवन में उसके हित से ज्यादा कभी नहीं हो सकती है।

जीवन-बीमा में समझौता करते समय अथवा पॉलिसी के होते समय बीमा करानेवाला व्यक्ति का बीमाकृत जीवन में बीमा की समाप्ति पर बीमा-योग्य हित होना चाहिए। बीमा करानेवाले के जीवन की समाप्ति पर बीमा-योग्य हित का होना आवश्यक नहीं होता है। बीमा-समझौता करने के बाद अगर बाद में बीमा-योग्य हित समाप्त हो जाय तो भी पॉलिसी चालू रहती है। इस तरह कोई कर्जदाता

अपने कर्जदार के जीवन का कर्ज-राशि के लिए बीमा करवा सकता है तथा अगर प्रीमियम चुकाये जाने के बाद कर्ज चुका भी दिया गया हो तो भी लेनदार प्रीमियम का भुगतान चालू रख सकता है और अन्ततः कर्जदात्र की मृत्यु या पॉलिसी की अवधि समाप्त होने पर, जो भी पहले घटित हो, बीमा करायी गयी रकम प्राप्त कर सकता है।

अगर कोई व्यक्ति किसी ऐसे अन्य व्यक्ति के जीवन का बीमा करा लेता है जिसमें उसका कोई बीमा-योग्य हित न हो तो उसे पॉलिसी समाप्त करके अपना प्रीमियम वापस प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं होता है जब तक कि वह इस बात का प्रमाण न दे कि उसे स्वयं बीमा करनेवाले ने यह विश्वास करने के लिए प्रेरित किया था कि वह एक वैध एवं सही पॉलिसी ले रहा है।

अग्नि-बीमा (Fire Insurance)—अग्नि-बीमा में यह हित दोनों समय अर्थात् बीमा कराते समय तथा क्षतिपूर्ति के लिए दावा करते समय भी होना चाहिए। अग्नि-बीमा के समझौते में बीमा करानेवाले व्यक्ति का बीमा की विषय-वस्तु के पूर्ण मूल्य में बीमा-योग्य हित विद्यमान होना चाहिए। सम्पत्ति के आंशिक स्वामी का अपने स्वामित्व-अंश के मूल्य की सीमा तक ही बीमा-योग्य हित होगा। उसके द्वारा सम्पूर्ण सम्पत्ति का बीमा कराये जाने पर भी हानि होने पर उसे सिर्फ अपने हित की सीमा तक ही क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा। किसी भी कर्जदाता का गिरवी रखी गयी सम्पत्ति में बीमा-योग्य हित सिर्फ कर्ज-राशि की मात्रा तक ही सीमित होगा। पति-पत्नी को एक दूसरे की सम्पत्ति में उसकी सम्पूर्ण कीमत तक के लिए बीमा-योग्य हित प्राप्त होता है, क्योंकि उन दोनों को ही सम्पत्ति के समान उपभोग का अधिकार (right of common enjoyment) प्राप्त होता है।

सामुद्रिक बीमा (Marine Insurance)—सामुद्रिक बीमा में बीमा करते समय तो नहीं, बल्कि क्षति होने पर क्षतिपूर्ति के लिए दावा (claim) करते समय बीमा-योग्य हित का विद्यमान रहना आवश्यक है। हानि के समय बीमा करानेवाले व्यक्ति का बीमा की विषय-वस्तु में बीमा-योग्य हित विद्यमान न होने की दशा में वह किसी भी प्रकार से हित ग्रहण नहीं कर सकता है, लेकिन खोया या न खोया (lost or not lost) पॉलिसी की दशा में बीमा करानेवाले व्यक्ति द्वारा बीमा की विषय-वस्तु में नुकसान होने तक हित प्राप्त न कर लिये जाने की परिस्थिति में बीमा-राशि का भुगतान प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन अगर बीमा-समझौता करते समय बीमा करानेवाले व्यक्ति को हानि की सूचना थी जबकि बीमा करनेवाले व्यक्ति को इसका पता नहीं था, तो बीमा करानेवाले व्यक्ति को क्षतिपूर्ति की माँग करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता है।

२. परम सद्विश्वास (Utmost good faith or uberrimae fidei)—बीमा-प्रसंविदा में इस बात की बड़ी आवश्यकता होती है कि दोनों पक्षों द्वारा परम सद्विश्वास का निर्वाह किया जाय। जब तक जोखिम के सम्बन्ध में दोनों पक्षों की सारी महत्वपूर्ण बातों का परिचय नहीं प्राप्त होता तब तक बीमा-प्रसंविदा की शर्तों को निश्चित कर सकना सम्भव नहीं होता। अतः दोनों पक्षों को चाहिए कि वे अपनी स्वेच्छा से और परम सद्विश्वासपूर्वक एक-दूसरे को उन सभी सूचनाओं की यथार्थता से अवगत करा दें जिनका बीमा-सम्बन्धी जोखिम, पारस्परिक अनुरदायित्व तथा अधिकार से सम्बन्ध हो और जिनका प्रसंविदा पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता हो। प्रस्तावक को इस नियम का अक्षरशः पालन करना चाहिए, क्योंकि जोखिम के सम्बन्ध में उसे पूरी बातों की जानकारी रहती है। यदि प्रस्तावक ने जोखिम के बारे में किसी

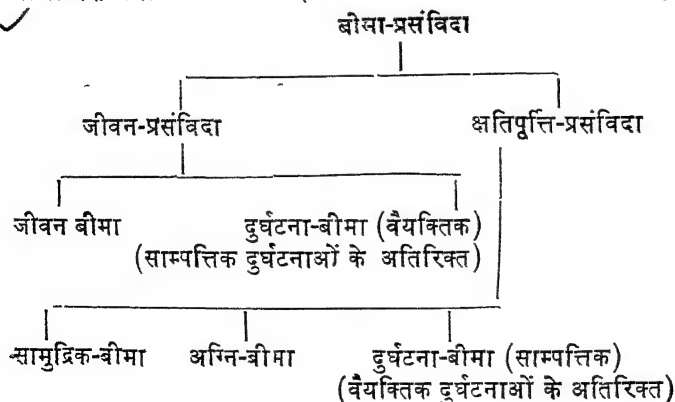
प्रकार मिथ्या प्रदर्शन किया अथवा छल-कपट से काम लिया या जान-बूझकर असत्य बात कही तो दूसरा पक्ष प्रसंविदा को रद्द कर सकता है और इस कारण उसे जो हानि हुई है उसके लिए उससे अभ्यर्थन कर सकता है। इसी प्रकार, बीमा के लिए भी आवश्यक है कि वह पूर्ण सद्भावना के नियम का पालन करे और जो सत्य बातें हों उसका बोध प्रस्तावक को करा दे। प्रीमियम लेने के लोभ में उसे ठगने का प्रयत्न न करे अन्यथा बीमाकृत को प्रसंविदा रद्द करने तथा दिये गये प्रीमियम को वापस पाने का अधिकार मिल जाता है। उदाहरणार्थ, सामुद्रिक बीमा में यदि बीमाकर्त्ता को इस बात की सूचना मिल चुकी है कि जिस जहाज अथवा माल पर प्रस्तावक बीमा करना चाहता है वह गंतव्य स्थान पर सुरक्षित पहुँच चुका है तो उसे यह बात प्रस्तावक को बता देनी चाहिए ताकि उसे व्यर्थ ही बीमा न कराना पड़े। फिर भी, वह प्रीमियम के लोभ से प्रस्तावक को इस सत्यता की सूचना नहीं देता है और प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है तथा प्रीमियम भी ले लेता है तो प्रस्तावक को यह अधिकार है कि वह प्रसंविदा को रद्द कर दे और दिये गये प्रीमियम को वापस पाने का अभ्यर्थन करे, क्योंकि वह इसका अधिकारी है।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि बीमा-प्रसंविदा में दोनों पक्षों द्वारा परम सद्बिश्वास का पालन करने की नैतान्तिक आवश्यकता होती है और सभी आवश्यक तथ्य एक-दूसरे को बता देना पड़ता है। इस दिशा में किसी प्रकार का मिथ्या भावण, चाहे वह जान-बूझकर किया गया हो, चाहे अनजान में हुआ हो, प्रसंविदा को रद्द कर देता है। इसलिए कहा गया है कि 'क्रयकर्त्ता सचेत रहो' (Caveat emptor) का सिद्धान्त, जो साधारणतः विक्रय-प्रसंविदाओं (contract of sale) में लागू रहता है, बीमा की प्रसंविदाओं के लिए नहीं है। यहाँ तो दोनों पक्षों का चरम कर्त्तव्य परम-सद्बिश्वास का पूर्ण पालन करना हो जाता है।

हाँ, कुछ सूचनीय बातें ऐसी भी होती हैं जिन्हें प्रस्तावक बीमाकर्त्ता से कहने के लिए बाध्य नहीं समझा जाता। ऐसी सूचनाओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. जो बीमाकर्त्ता को पहले से ही ज्ञात हों अथवा जिन्हें साधारणतया बीमाकर्त्ता को जानना चाहिए; जैसे—विधान-सम्बन्धी बातें आदि;
२. जो जोखिम को कम करती हों; अथवा
३. जिन्हें जानने की आवश्यकता स्वयं बीमाकर्त्ता नहीं समझता।

### बीमा-प्रसंविदाओं के प्रकार (Kinds of Insurance Contracts)





ऊपर दिये गये वर्गीकरण से यह साफ विदित होता है कि बीमा की प्रसंविदा मुख्यतः दो प्रकार की होती है—

१- क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा (Contract of indemnity) और

२. जीवन-प्रसंविदा (Life contract)।

### क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा (Contract of indemnity)

‘क्षतिपूर्ति’ (indemnity) का अर्थ होता है हानि से बचाना या उबारना। क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में यदि एक पक्ष इस बात की प्रतिज्ञा करे कि दूसरे को किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर अगर क्षति पहुँचेगी तो प्रतिज्ञाकर्ता उसकी क्षति की पूर्ति करेगा, तो वह क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा कही जाती है। बीमा-प्रसंविदा (insurance contract) भी क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा है। इस प्रसंविदा में बीमा कम्पनी प्रीमियम के बदले बीमाकृत को यह वचन देती है कि वह किसी निश्चित राशि (कीमत) तक किसी निश्चित समय के भीतर हानि होने पर उसकी पूर्ति करेगी। यदि किसी व्यक्ति ने अपने उद्योग-गृह का ५,००,००० रुपये का एक वर्ष के लिए बीमा कराया है तो बीमाकर्ता के प्रीमियम के प्रतिफल में इसे इस बात का आश्वासन मिलता है कि एक वर्ष के भीतर आग लगने की वजह से जो भी क्षति होगी उसकी पूर्ति वह बाजार-मूल्य के आधार पर कर देगा, किन्तु किसी भी हालत में वह बीमाकृत धन से अधिक नहीं दे सकता। यदि आग लगने पर सारी वस्तु नष्ट हो जाती है तो (आगोपित) बीमाकृत व्यक्ति अधिक-से-अधिक ५,००,००० रुपये के लिए दावा कर सकता है और यदि १,००,००० रुपये की हानि होती है तो वह १,००,००० रुपया से अधिक पाने का अधिकारी नहीं होता। इस तरह हम देखते हैं कि क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में केवल वास्तविक क्षति की पूर्ति की जाती है, उससे कम अथवा अधिक पाने का अधिकार नहीं मिलता। ऐसा न्यायसंगत भी है, क्योंकि वास्तविक क्षति से अधिक दिया जाय तो बहुत-से व्यक्ति स्वेच्छा से अपनी सम्पत्ति में आग लगाकर अथवा किसी दूसरे प्रकार से नष्ट करके हानि की पूर्ति के लिए दावा (claim) करेंगे और बीमा कम्पनी को धोखा देंगे। यदि केवल वास्तविक क्षति की ही पूर्ति होगी तो लोग जल्द अपनी सम्पत्ति को नष्ट करने का साहस नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें कोई लाभ नहीं होगा।

क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा ‘संभाव्य प्रसंविदा’ (contingent contract) भी कहलाती है, क्योंकि इसमें बीमा कम्पनी उल्लिखित जोखिम से भविष्य में होने वाली क्षति की पूर्ति करने की प्रतिज्ञा करती है। कम्पनी का उत्तरदायित्व भविष्य में किसी विशिष्ट घटना के घटने पर ही उपस्थित होता है जो अनिश्चित है। दूरे सकता है कि आग लगे या न लगे, जहाज डूबे या न डूबे। यदि घटना नहीं घटती तो बीमा कम्पनी कुछ भी देने के लिए दायी नहीं होती, क्योंकि जब क्षति ही नहीं हुई तो पूर्ति किसकी की जाय? यह भी सम्भव है कि घटना घटे, किन्तु हानि न हो। उम दशा में भी बीमा कराने वाला किसी धन के लिए दावा नहीं कर सकता और दिया गया प्रीमियम लौटाया नहीं जाता।

### जीवन-प्रसंविदा (Life Contract)

जीवन-प्रसंविदा क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा नहीं है (Life contract is not a contract of indemnity)। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, क्षतिपूर्ति की

प्रसंविदों में बीमाकृत व्यक्ति उल्लिखित जोखिम से हानिग्रस्त होने पर केवल वास्तविक क्षति की पूर्ति करा सकता है। किन्तु जीवन-प्रसंविदा में बीमा कम्पनी वचन देती है कि बीमा किये गये धन को एक निश्चित काल के पूर्व उसकी मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी को अथवा अवधि समाप्त होने तक जीवित रहने पर उसे स्वयं ही दे दिया जायगा। उदाहरणार्थ, अगर एक व्यक्ति ने ८,०००) रुपये का २० वर्ष के लिए अपने जीवन का बीमा कराया है। यदि बीमा कराने वाले की मृत्यु २० वर्ष के पहले हो जाती है तो बीमा की रकम उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त हो जायगी और यदि वह स्वयं उस अवधि के समाप्त होने पर जीवित रह जाता है तो वह रकम उसे ही मिलेगी।

हम लोग यह जान चुके हैं कि क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में केवल वास्तविक हानि की पूर्ति बाजार-मूल्य के आधार पर की जाती है। इससे अधिक या कम कुछ भी नहीं दिया जाता, किन्तु जीवन-प्रसंविदा में सम्पूर्ण बीमाकृत धन प्रत्येक दशा में देना होता है, चाहे घटना घटे या न घटे अर्थात् बीमा कराने वाले व्यक्ति की मृत्यु एक निश्चित अवधि के अन्दर हो या न हो। यदि मृत्यु हो जाती है तो उसके परिवार को वह धन मिल जाता है और अगर वह खुद जीवित रहता है तो वह धन उसे ही मिलता है। जीवन-प्रसंविदा में क्षतिपूर्ति का सवाल उठता ही नहीं, क्योंकि मृत्यु होने पर उसके परिवार, देश तथा राष्ट्र को कितनी आर्थिक हानि हुई इसका आगणन करना असम्भव है। अतएव, जब आर्थिक क्षति का आगणन सम्भव नहीं हो तो क्षतिपूर्ति क्यों कर की जाय? यदि बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाय, तो बीमा कम्पनी उसे जिन्दा कैसे कर सकती है? मृत्यु के बाद कोई भी बीमा कम्पनी उसके परिवार को सिर्फ आर्थिक सहायता ही प्रदान कर सकती है, क्षतिपूर्ति नहीं कर सकती। यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का बीमा एक से अधिक कम्पनी से कराता है तो उसे सभी कम्पनियों से सिर्फ वास्तविक क्षति की पूर्ति का ही दावा करने का अधिकार है। किन्तु जीवन-प्रसंविदा में यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन का या दूसरे के जीवन का एक से अधिक कम्पनियों से बीमा कराता है तो वह सम्पूर्ण बीमाकृत धन प्रत्येक कम्पनी से लेगा। इसलिए जीवन-प्रसंविदा को हमलोग क्षतिपूर्ति प्रसंविदा नहीं कह सकते।

### स्वत्व-समर्पण-सिद्धान्त (Doctrine of Subrogation)

स्वत्व-समर्पण का सिद्धान्त केवल क्षतिपूर्ति की प्रसंविदा में अर्थात् अग्नि, सामुद्रिक तथा दुर्घटना बीमा में लागू होता है, जीवन प्रसंविदा में नहीं। यह सिद्धान्त नहीं है, बल्कि क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त का केवल एक उपसिद्धान्त (corollary) है। इसका भी उद्देश्य यही है कि बीमाकृत व्यक्ति किसी भी दशा में अपनी वास्तविक क्षति से अधिक रकम कम्पनी से प्राप्त न कर पाये।

इस सिद्धान्त के अनुसार बीमा करनेवाला बीमा करानेवाले की क्षतिपूर्ति के पश्चात् उसके उन सभी अधिकारों तथा उपायों (rights and remedies) का अधिकारी हो जाता है जो बीमा करानेवाले को क्षति पहुँचानेवाले तीसरे पक्ष (third party) के विरुद्ध वैधानिक रूप में प्राप्त होता है।

उदाहरण—किसी व्यक्ति ने अपने जहाज का ५,००,०००) रुपये में बीमा कराया है। रास्ते में जहाज समुद्र में डूब जाता है या शत्रु द्वारा छीन लिया जाता है, तो बीमा कम्पनी उस व्यक्ति को ५,००,०००) रुपये देकर क्षतिपूर्ति कर देती है।

कुछ दिन के बाद अगर जहाज समुद्र से किसी तरह निकाला जाता है या शत्रु से वापस मिल जाता है तो उसपर बीमा कम्पनी का अधिकार होगा, क्योंकि उसने क्षतिपूर्ति रुपया देकर कर दी है। इसी प्रकार 'अग्नि' में यदि व्यवसाय या उद्योग-गृह में आग लग जाने की वजह से क्षति होती है और बीमा कम्पनी उसकी पूर्ति कर देती है तो फिर सम्पत्ति का स्वामी कम्पनी होगी। इस नियम के लागू होने के लिए निम्नांकित बातें आवश्यक हैं—

१. बीमा करनेवाले को इस नियम का आश्रय ग्रहण करने के पूर्व बीमा करानेवाले को क्षतिपूर्ति अवश्य कर देनी चाहिए।

२. बीमा करनेवाले को वही अधिकार प्राप्त हो सकते हैं जो दूसरे पक्ष के विरुद्ध बीमा करानेवाले को प्राप्त हैं।

३. बीमा करनेवाले को दूसरे पक्ष के विरुद्ध बीमा करानेवाले के नाम से ही न्यायालय में अभियोग चलाना चाहिए, अपने नाम से नहीं।

### दुहरा बीमा (Double Insurance)

यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक बीमा करानेवालों से अपने जीवन का या एक ही सम्पत्ति को एक ही जोखिम के लिए बीमा करता है, तो कहा जाता है कि उस व्यक्ति ने दुहरा बीमा कराया है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन पर ओरीयण्टल कम्पनी से ८,०००) रु० का तथा हिन्दुस्तान कम्पनी से ४,०००) रु० का, फिर एम्पायर इन्स्योरेन्स कम्पनी से २,०००) रु० का बीमा कराये तो उसे 'दुहरा बीमा' कहेंगे। इसी प्रकार अग्नि बीमा, सामुद्रिक बीमा वगैरह में भी 'दुहरा बीमा' होता है।

जीवन बीमा में अगर एक ही व्यक्ति से जीवन का एक से अधिक बीमा कम्पनियों से बीमा कराया जाता है तो उसकी मृत्यु होने पर या निश्चित अवधि तक जीवित रहने पर सम्पूर्ण बीमाकृत धन प्रत्येक बीमा कम्पनी से प्राप्त हो जाता है, किन्तु सामुद्रिक तथा अग्नि बीमा में ऐसा नहीं होता। यदि किसी व्यक्ति ने अपने मकान का एक से अधिक बीमा कम्पनी से बीमा कराया है तो घटना घटने तथा क्षति होने पर सभी बीमा कम्पनियाँ मिलकर केवल वास्तविक हानि की पूर्ति करेंगी। सम्पूर्ण धन प्रत्येक बीमा कम्पनी से किसी हालत में नहीं प्राप्त हो सकता। बीमा करनेवाला व्यक्ति स्वेच्छा से जिस कम्पनी से चाहे, हानि की पूर्ति करा सकता है, परन्तु बाद में कम्पनियाँ यथानुपात (in rateable proportions) हानि सहन करेंगी।

उदाहरण—अगर कोई व्यक्ति अपने व्यवसाय-गृह का २०,०००) रु० में मेट्रोपोलिटन तथा १०,०००) रु० में एम्पायर कम्पनी से बीमा कराता है और घटना घटने पर १८,०००) रु० की हानि होती है तो दोनों बीमा कम्पनियाँ बीमाकृत राशि, जो २०,०००) : १०,०००) रुपया = २ : १ है, उसी के अनुपात में सहन करेंगी।

### पुनर्बीमा (Re-insurance)

जब कोई बीमा कम्पनी अपने बीमापत्रों द्वारा संवृत्त जोखिमों के एक भाग का बीमा दूसरी बीमा कम्पनी से कराती है तब इस क्रिया को 'पुनर्बीमा' कहा जाता है। पुनर्बीमा की प्रसविदा दो कम्पनियों के बीच होती है। बहुत-सी कम्पनियाँ, खासकर जो नयी कायम होती हैं, वे बड़ी रकम का प्रस्ताव स्वीकार करने में असमर्थ होती हैं। समुद्र तथा अग्नि बीमा में प्रायः एक बड़ी रकम का प्रस्ताव हमेशा या

बराबर किया जाता है, क्योंकि किसी जहाज का मूल्य साधारणतः पचास-साठ लाख से कम नहीं होता। इसी प्रकार अग्नि बीमा में भी व्यवसाय तथा उद्योग-गृह में लाखों रुपये की चीज रखी रहती है। इसलिए अग्नि बीमा का भी प्रस्ताव एक बड़ी रकम के लिए होता है। यदि कम्पनी बड़ी रकम के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है तो उसके व्यवसाय में वृद्धि नहीं होती और यदि शक्ति नहीं होते हुए भी बीमा कर लेती है तो घटना घटने पर उसके लिए शीघ्र क्षति की पूर्ति न करने पर उसकी ख्याति पर धक्का पहुँच सकता है। पुनर्बीमा इस असुविधा को दूर कर देता है।

**उदाहरण**—अगर एक व्यक्ति अपनी फैक्टरी का ओरियण्टल कम्पनी से (१०,०००) रु० के लिए अग्नि-बीमा कराये तो उसे इसपर का कुल प्रीमियम कम्पनी को चुका देना पड़ेगा। चूँकि बीमा की रकम कुछ विशेष है, अतः यदि ओरियण्टल कम्पनी उसके लिए एम्पायर कम्पनी से (५०,०००) का पुनर्बीमा करा ले तो ओरियण्टल कम्पनी एम्पायर कम्पनी को आनुपातिक प्रीमियम देगी। अकस्मात् यदि आग लगने से पूरी फैक्टरी जल गयी तो वह व्यक्ति ओरियण्टल कम्पनी से पूरी रकम वसूल करेगा। फिर बाद में, ओरियण्टल कम्पनी (५०,०००) रु० एम्पायर कम्पनी से प्राप्त कर लेगी।

## पुनर्बीमा करने के तरीके

पुनर्बीमा करने के दो मुख्य तरीके हैं—

१. फैकल्टेटिव पद्धति (Facultative system) और

२. ट्रीटी पद्धति (Treaty system)।

**१. फैकल्टेटिव पद्धति (Facultative System)**—इसके अनुसार पुनर्बीमा करने की इच्छा कम्पनी को दूसरी कम्पनी के पास इससे सम्बद्ध अपना प्रस्ताव भेजना पड़ता है। अगर इसे इसका प्रस्ताव-पत्र स्वीकार हुआ तो पुनर्बीमा स्वीकृत हो जाता है और बीमा कम्पनी उचित विश्लेषण और जाँच-पड़ताल के बाद ही जोखिम उठाती है। यदि जाँच-पड़ताल में उसको उपयुक्त प्रतीत न हुआ तो वह प्रस्ताव को अस्वीकृत भी कर दे सकती है।

**२. ट्रीटी पद्धति (Treaty System)**—इसके अनुसार पुनर्बीमा ऐसी कम्पनियों से कराया जाता है जिनका उद्देश्य सिर्फ पुनर्बीमा करने का ही है और जो प्रत्यक्ष रूप से बीमा का कार्य नहीं करतीं। यह कम्पनी बिना कोई छानबीन किये पुनर्बीमा करती है। इस पद्धति में पुनर्बीमा दो ढंग से किया जाता है—

(क) कोटा पद्धति (Quota System) और

(ख) अतिरेक पद्धति (Surplus System)।

कोटा पद्धति के पुनर्बीमा में मौलिक बीमादाता को अपनी सम्पूर्ण जोखिम का एक निश्चित प्रतिशत पुनर्बीमादाता को सौंप देना पड़ता है। इसमें वही दर तथा शर्तें होती हैं जो मूल बीमापत्र में दी गयी होती हैं। सम्पूर्ण जोखिम का जितना भाग पुनर्बीमादाता को हस्तान्तरित किया जाता है उसके अनुपात से प्राप्त किया हुआ प्रीमियम भी, आवश्यक कमीशन एवं व्यय काटकर, पुनर्बीमादाता को सुपुर्द कर दिया जाता है।

अतिरेक पद्धति के अनुसार जब बीमा करानेवाला एक निश्चित रकम से अधिक का बीमा कराता है तो प्रसविदा के नियम के मुताबिक यह आवश्यक हो जाता है कि वह इस सीमा के ऊपर बढ़ने पर अतिरेक (surplus) के लिए पुनर्बीमा अवश्य कराये।

इस पद्धति को 'अतिरेक पद्धति' कहते हैं।

पुनर्वीमा एवं दोहरे बीमा में अन्तर (Distinction between Re-insurance and Double Insurance)

१. उपक्रम (Initiative)— पुनर्वीमा मूल बीमा करनेवाली कम्पनी द्वारा करवाया जाता है। बीमा करानेवाले व्यक्ति एवं पुनर्वीमा कम्पनी में कोई संविदात्मक सम्बन्ध नहीं होता है लेकिन दोहरे बीमे में वही बीमा करानेवाला व्यक्ति एक ही विषय-वस्तु का एक से अधिक कम्पनियों से या एक ही कम्पनी से दो या अधिक पॉलिसियों के अन्तर बीमा करवाता है।

२. दावा (Claim)— पुनर्वीमा में बीमा करानेवाला व्यक्ति अपनी क्षतिपूर्ति के लिए पुनर्वीमा कम्पनी से कोई माँग नहीं कर सकता है, लेकिन दोहरे बीमा में वह प्रत्येक बीमा करनेवाली कम्पनी से जितनी रकम का बीमा कराया हो, उतनी रकम तक क्षतिपूर्ति की माँग कर सकता है। यद्यपि किसी भी परिस्थिति में बीमा करनेवाली सभी कम्पनियों से प्राप्त होनेवाली क्षतिपूर्ति की कुल रकम वास्तविक हानि अथवा कुल बीमाकृत मूल्य से ज्यादा नहीं होगी।

३. अंशदान (Contribution)— पुनर्वीमा करनेवाली कम्पनी से जितनी जोखिम का पुनर्वीमा करवाया गया हो, उस सीमा तक क्षतिपूर्ति की माँग पुनर्वीमा करनेवाले से कर सकती है। लेकिन दोहरे बीमा में, बीमा करानेवाले व्यक्ति की हानि की पूर्ति का दायित्व सभी बीमाकर्ताओं को अपने-अपने दायित्व के पारस्परिक अनुपात में सहन करना होता है।

क्या बीमा की प्रसंविदा जुआ है ?

भारतीय प्रसंविदा विधान की धारा ३० के अनुसार जुए की प्रसंविदा कानूनी नहीं समझी जाती है। बीमा की प्रसंविदा किसी भी तरह जुए की प्रसंविदा नहीं होती। जुए की प्रसंविदा में कोई जोखिम पहले से नहीं रहती, बल्कि उसे उत्पन्न करके उससे धन-अर्जन करने का विचार होता है। इसमें अपनी भलाई के सिवा और कोई हित नहीं रहता। जुआड़ी केवल दाव लगाकर अपना भाग्य आजमाते हैं। बीमा की प्रसंविदा में जोखिम पहले से ही रहती है। बीमा की प्रसंविदा में बीमोचित अनुराग (insurable interest) की विद्यमानता अनिवार्य होती है अन्यथा प्रसंविदा अवैध समझी जाती है। यदि प्रस्तावक का प्रस्तावित सम्पत्ति में ऐसा हित रहता है कि इसके नष्ट होने से उसे आर्थिक हानि और सुरक्षित रहने से आर्थिक लाभ होता है, तो वह प्रसंविदा कदापि जुए की नहीं हो सकती। लेकिन यदि बीमा की प्रसंविदा में प्रस्तावक का प्रस्तावित विषय-में कोई हित नहीं रहता जिससे उसके नष्ट अथवा सुरक्षित रहने से उसे आर्थिक हानि या लाभ हो तो यह जुए की प्रसंविदा कहलायेगी और इसलिए यह रद्द की जा सकती है। बीमा में इस बात की प्रसंविदा नहीं होती कि बीमाकृत व्यक्ति को घटना घटने पर एक निश्चित रकम दी जायेगी, बल्कि घटना घटने के कारण वास्तविक क्षति हो तो उसकी पूर्ति करनी होती है। यदि घटना घटने के कारण कोई नुकसान नहीं हुआ तो बीमाकृत व्यक्ति कुछ भी पाने का अधिकारी नहीं होता है। यदि कहा जाय कि जीवन बीमा में एक निश्चित रकम घटना घटने पर ही दी जाती है तो इसका जवाब यह हो सकता है कि जीवन बीमा में जोखिम निश्चित ही रहती है। बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है, वह चाहे निश्चित अवधि के पहले मरे या निश्चित अवधि तक जीवित रहे। किन्तु

जुए की प्रसंविदा में यह तय नहीं रहता कि कौन पक्ष हारेगा और कौन जीतेगा। जुए की प्रसंविदा में रक्षा की भावना तनिक भी नहीं होती। इस सम्बन्ध में सर विलियम आनसन (Sir William Anson) ने कहा है, “यदि किसी अनिश्चित घटना के उपस्थित होने पर कोई धन अथवा मूल्य देने की प्रसंविदा होती है तो वह जुए की प्रसंविदा कही जाती है। बीमा की प्रसंविदा में ऐसा नहीं होता। इसमें बीमाकृत व्यक्ति का अपनी सम्पत्ति में हित रहता है और उसमें सुरक्षा प्राप्त करने के लिए वह प्रीमियम देता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का अग्नि बीमा कराना है तो उसका अपनी सम्पत्ति में हित होता है, इसलिए यह वास्तविक रूप में बीमा की प्रसंविदा होगी। किन्तु यदि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सम्पत्ति का बीमा कराता है, जिससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है अर्थात् जिसकी सुरक्षा से न उसे आर्थिक लाभ होता है और न उसके नष्ट होने से आर्थिक हानि होती है, तो यह जुए की प्रसंविदा समझी जायगी।”

### सामुद्रिक बीमा (Marine Insurance)

**परिभाषा**—सामुद्रिक बीमा की प्रसंविदा वह प्रसंविदा है जिसके अनुसार बीमा कम्पनी प्रतिफल के रूप में दिये गये प्रीमियम के लिए यह वादा करती है कि बीमा की गयी वस्तु की क्षति पर वह कहे गये या प्रसंविदा के मुताबिक क्षति का भुगतान करेगी।\*

ऐसे बीमा करनेवाले को साधारणतः बीमाकर्ता (underwriter) कहते हैं।

सामुद्रिक बीमा के लिए निम्नलिखित विशेषताओं का होना अनिवार्य है—  
(१) सामुद्रिक बीमे में दूसरे बीमे की तरह बीमा-सम्पत्ति पर बीमा-योग्य हित (insurable interest) का होना अनिवार्य है। (२) यह प्रसंविदा परम सद्विश्वास की प्रसंविदा (contract of uberrimae fidei) है। (३) सामुद्रिक बीमा अग्नि-बीमा की तरह क्षतिपूर्ति की एक प्रसंविदा (contract of indemnity) है। (४) इसमें स्वत्व-समर्पण का सिद्धान्त (doctrine of subrogation) लागू होता है। (५) इसमें अप्रत्यक्ष शर्तों (implied warranties) का होना आवश्यक है।

### सामुद्रिक बीमा की आवश्यक बातें (Essentials of Marine Insurance Policy)

सामुद्रिक बीमा की प्रसंविदा को जिम प्रलेख (document) में लिपिबद्ध किया जाता है उसे सामुद्रिक बीमापत्र कहते हैं। इसमें दी हुई शर्तों के अनुसार दोनों पक्षों के आपस के अधिकारों तथा दायित्वों का निर्धारण होता है। इंग्लिश मेरीन इन्स्योरेन्स ऐक्ट में यह साफ-साफ लिखा हुआ है कि जब तक सामुद्रिक बीमा की प्रसंविदा को बीमापत्र में उल्लिखित नहीं किया जायगा तब तक ऐसी प्रसंविदा का न्यायालयों की दृष्टि में कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। यही बात इण्डियन स्टाम्प ऐक्ट में भी लिखी हुई है। अतः बीमाकर्ता तथा बीमाकृत के बीच जो बातें तय हों

\* “The contract of Marine Insurance is a contract whereby the insurance undertakes to indemnify the insured, in manner and extent thereby agreed, against marine losses, in consideration of a premium paid by the insured.”

जानी हैं उसका साफ-साफ वर्णन बीमापत्र में हो जाना चाहिए। इसके अनुसार छः बातों का विवरण विशेष रूप से आवश्यक है—

१. बीमा करानेवाले का नाम अथवा किसी ऐसे व्यक्ति का नाम जो बीमा करानेवाले की ओर से बीमा करता हो।

२. जिन वस्तुओं पर तथा जिन आपत्तियों को सहन करने के लिए बीमा कराया गया हो, उनका उल्लेख।

३. यात्रा अथवा समय अथवा दोनों का उल्लेख जिनके लिए बीमा हुआ है।

४. कितनी रकम अथवा रकमों के लिए बीमा हुआ है।

५. बीमाकर्ता अथवा बीमाकर्ता के नाम।

६. बीमापत्र पर बीमाकर्ता या उनकी ओर से किसी व्यक्ति का हस्ताक्षर होना आवश्यक है तथा उसपर विधान के अनुसार सही टिकट मटा रहना चाहिए।

वस्तुतः इन नियमों का पालन करने हुए किसी भी रूप में बीमापत्र जारी किया जा सकता है।

### सामुद्रिक बीमा का विषय (Subject-matter of Marine Insurance)

मेरीन इन्स्योरेन्स ऐक्ट के अनुसार 'प्रत्येक वैध सामुद्रिक उपक्रम' (marine adventure) को सामुद्रिक बीमा का विषय कहा जा सकता है। खासकर सामुद्रिक उपक्रम (marine adventure) निम्नांकित अवस्थाओं में होता है—

(i) जहाँ कोई जहाज, माल अथवा अन्य चल (moveable) वस्तुएँ सामुद्रिक आपत्तियों के सम्मुख रहें।

(ii) जहाँ किराया पाने में या कोई आर्थिक लाभ पाने में बीमा-योग्य वस्तु के सामुद्रिक खतरों से नष्ट होने के कारण हानि उपस्थित होने की सम्भावना हो।

(iii) जहाँ बीमा-योग्य वस्तु पर सामुद्रिक खतरों के कारण उनके स्वामी पर दायित्व आने की सम्भावना हो। अतः प्रधानतः तीन विषयों पर सामुद्रिक बीमा कराया जा सकता है—(१) माल पर, (२) जहाज पर, (३) किराये पर।

१. **माल का बीमा (Cargo insurance)**—इससे सामुद्रिक रास्तों से जहाजों द्वारा विदेशों को भेजे जाने वाले माल को सामुद्रिक आपत्तियों से सुरक्षित रखने के लिए बीमा किया जाता है। जो माल जहाज द्वारा भेजा जाता है उसे 'कार्गो' कहते हैं। सामुद्रिक बीमा में 'कार्गो बीमा' सबसे महत्वपूर्ण है और कम समय के लिए कराया जाता है।

२. **जहाज का बीमा (Hull Insurance)**—मेरीन इन्स्योरेन्स ऐक्ट के अनुसार 'जहाज' शब्द से जहाज, उसकी सामग्रियाँ, जहाज-अधिकारियों के लिए रसद तथा स्टोर और मशीनरी, बॉयलर, कोयला, इंजन के स्टोर आदि सभी का बोध होता है और अगर जहाज किसी खान चीज के व्यापार में संलग्न हो तो तत्सम्बन्धी समस्त फिटिंग इसमें सम्मिलित रहते हैं।

समुद्र में जहाजों के लिए भी अनेक प्रकार की जोखिमें रहती हैं जिनके उपस्थित होने पर वे किसी भी समय नष्ट हो सकते हैं; जैसे दो जहाजों का आपस में अथवा किसी जलमग्न चट्टान से टकरा जाना, तूफान में घिर जाना, इत्यादि। ऐसे संकटों में जहाज के ग्रस्त हो जाने से उसके स्वामी की गहरी हानि होती है। इन जोखिमों से खुद सुरक्षित रखने के लिए वह उसका बीमा करा सकता है। इंग्लैण्ड में यह बीमा एक वर्ष से ज्यादा समय के लिए नहीं कराया जा सकता, पर अमेरिका में इस

सम्बन्ध में कोई रोक-टोक नहीं है।

३. **किराये का बीमा (Freight Insurance)**—जहाजी कॉन्ट्रेक्ट के अनुसार कोई व्यक्ति सम्पूर्ण जहाज अथवा उसका कुछ भाग किराये पर लेता है। इस प्रकार का कॉन्ट्रेक्ट होते समय सम्पूर्ण किराये का कुछ भाग जहाज के मालिक को पहले ही प्राप्त हो जाता है और बाकी किराया कॉन्ट्रेक्ट पूरा होने पर चुकाया जाता है। ऐसी हालत में जहाज का कप्तान (captain) किराये के उस अंश का बीमा करा सकता है जिसके जहाज नष्ट हो जाने के फलस्वरूप न मिलने का डर हो। इसी तरह जहाज का स्वामी पहले पाये गये किराये का बीमा इस जोखिम के विरुद्ध करा सकता है कि यदि जहाज बरबाद हो गया तो उसे पहले पाये हुए किराये को लौटाना पड़ेगा। बीमा करानेवाला भी अपने माल के मूल्य के साथ-साथ पहले दिये गये किराये का भी बीमा भी करा सकता है, अर्थात् माल के मूल्य में किराये को मिला कर बीमा करा सकता है क्योंकि यदि वह इस प्रकार बीमा नहीं कराता तो जहाज के नष्ट होने पर माल के मूल्य के साथ-साथ किराये की हानि भी उठानी पड़ेगी।

**शर्तें (Warranties)**

सामुद्रिक बीमा में शर्तें दो प्रकार की होती हैं—

(i) प्रत्यक्ष शर्तें (Express Warranties) और

(ii) अप्रत्यक्ष शर्तें (Implied Warranties)।

प्रत्यक्ष शर्तें वे हैं जिन्हें लागू करने के लिए बीमापत्र में स्पष्ट रूप से लिखा रहना अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु अप्रत्यक्ष शर्तों के लिए उनके स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं होती। ये मानी हुई साधारण शर्तें हैं। इन दोनों प्रकार की शर्तों को मानना अत्यन्त आवश्यक है और इनका पालन न किया गया तो क्षति होने पर बीमा कम्पनी उसकी पूर्ति करने को बाध्य नहीं होगी।\* सामुद्रिक बीमापत्र में जो पद (clauses) दिये रहते हैं वे प्रत्यक्ष शर्तें हैं; जैसे—F. C. S. (Free of Capture and Seizure)। इस पद के अनुसार एक मुकदमे में जज ने यह फैसला दिया था कि युद्ध छिड़ने पर जब ट्रांसवाल की सरकार ने जहाज पर लदे माल को जब्त कर लिया तो बीमा कम्पनी का दायित्व समाप्त हो जायगा।†

अप्रत्यक्ष शर्तें (Implied Warranties) तीन प्रकार की होती हैं—

(क) जहाज का समुद्र-यात्रा के योग्य होना (Sea-worthiness),

(ख) बीमा-प्रयोजन का वैधानिक होना (Legality of venture) और

(ग) जहाज का मार्ग-विवचलित न होना (Non-deviation)।

(क) **सागर-योग्यता (Sea-worthiness)**—सागर-योग्यता का मतलब यह है कि जहाज सामुद्रिक मार्ग की साधारण जोखिम को भी सहन करने योग्य है या नहीं; यात्रा आरम्भ करने के पूर्व उसकी मरम्मत की जा चुकी है, उसके कल-पुर्जों सभी अच्छी दशा में हैं, उस पर पर्याप्त मात्रा में कोयला तथा खाद्य-सामग्री रखी है, उस पर चतुर नाविक तथा दूसरे कर्मचारी संचालन के लिए उपस्थित हैं तथा सभी नियमों की पूर्ति की जा चुकी है, अर्थात् उसका लाइसेन्स (licence) तथा अन्य प्रमाणपत्र प्राप्त किये जा चुके हैं। कहने का मतलब यह है कि जहाज को अच्छी दशा में होना

\* Robinson Gold Mining Co, vs. Alliance Marine and Insurance Co. Ltd. (1910) 2 K. B. 919.

† “The warranty in a contract of insurance is a condition or contingency and unless that be performed there is no contract.”



चाहिए जिससे वह समुद्र की साधारण आपत्तियों से बरबाद न हो जाय। इसलिए यह आवश्यक है कि जहाज का व्यवस्थापक समुद्र की यात्रा आरम्भ करने के पहले अपने को इस बात से सन्तुष्ट कर ले कि उसका जहाज पूर्ण रूप से समुद्र की यात्रा करने योग्य है और उसमें किसी चीज की कमी नहीं है। बाद में यह नहीं कह सकता कि उसे समुद्र-यात्रा करने योग्य न होने का ज्ञान न था। यदि बीमा करनेवाला घटना के समय यह सिद्ध कर देता है कि जहाज समुद्र-यात्रा के योग्य न था तो प्रसविदा अवैध हो जाती है और वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

इस शर्त के अनुसार जहाज को वाहक (carrier) के रूप में भी समुद्र-यात्रा के योग्य होना चाहिए, अर्थात् उसपर जो वस्तुएँ लदी हों उनको सुरक्षित रखने का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। जैसे, यदि जहाज पर जमा हुआ दूध, मांस, पनीर या दूसरी क्षयशील वस्तुएँ रखी हुई हैं तो हो सकता है कि सैकड़ों मील की यात्रा के दौरान जलवायु में परिवर्तन होने या पहुँचने में अधिक समय लगने के कारण वे नष्ट हो जायँ। इसलिए उनकी सुरक्षा के लिए जहाज पर रेफ्रिजरेटर आदि का उचित प्रबन्ध होना चाहिए, जिसमें वे वस्तुएँ रखी जा सकें और लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने तक नष्ट न हो जायँ।

फिर, यह भी हो सकता है कि सम्पूर्ण यात्रा के लिए जहाज को विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़े, क्योंकि हर जगह परिस्थितियाँ एक-सी नहीं होतीं। इसलिए विभिन्न स्थानों में परिस्थितियों का सामना करने के लिए यह जरूरी है कि उनके पास उचित साधन मौजूद रहें तथा जरूरत पड़ने पर उनका प्रयोग किया जा सके और वस्तुओं को नाश होने से बचाया जा सके। उदाहरण के लिए, अगर एक जहाज जो ग्रीष्म ऋतु में यात्रा योग्य है वह जाड़े की ऋतु के लिए अयोग्य हो, या जो यन्त्रों के ले जाने योग्य हो वह मछली, दूध, पनीर या अन्य पदार्थों को ले जाने में असमर्थ हो या जो जहाज हिन्द महासागर में यात्रा करने योग्य हो, वह प्रशान्त महासागर में अयोग्य हो। इसलिए जहाज को यात्रा आरम्भ करने के समय से लेकर उसके अन्त तक बराबर समुद्रयात्रा योग्य होना चाहिए।\*

यदि रास्ते में जहाज कई बन्दरगाहों पर कुछ समय के लिए रुकता है तो उसे फिर से यात्रा शुरू करने के पहले उन वस्तुओं को ले जाने के लिए पूर्ण रूप से अच्छी दशा में होना चाहिए। चूँकि सागर-योग्यता का अर्थ बहुत विस्तृत है, इसलिए कुछ लेखक इस जगह 'fitness' शब्द का उपयोग करना उचित समझते हैं।

(ख) बीमा-प्रयोजन का वैधानिक होना (Legality of Venture)— इसके अनुसार दोनों पक्षों के लिए यह मान्य होता है कि यात्रा पूर्ण रूप में वैध होनी चाहिए। जिस समय से यात्रा शुरू होती है उस समय से जब तक यात्रा का अन्त न हो तथा जहाँ तक बीमाकृत का अधिकार रहे, उसे पूर्ण रूप से वैध होना चाहिए। यदि रास्ते में किसी वजह से यात्रा खण्डित की जाती है तो पुनः यात्रा आरम्भ होने पर भी वैध हो। यदि यात्रा शुरू कर चुकने के बाद कुछ काल तक यात्रा वैध रहती है और फिर अवैध हो जाती है, जैसे कुछ समय के बाद युद्ध छिड़ जाता है और वह दुश्मनों से व्यापार करने लगता है, तो प्रसविदा रद्द की जा सकती है और बीमाकर्त्ता का दायित्व खत्म हो जाता है। यदि यात्रा अवैध होती है तो बीमा करानेवाला क्षतिपूर्ति के लिए कदापि दावा नहीं कर सकता। युद्धकाल में बीमा करानेवाला यदि शत्रु देशों से व्यापार करता है, या दूसरे देशों से गुप्त रूप से निषिद्ध माल (contraband goods) निर्यात

(export) करता है या जकात कार्यालय (custom house) को धोखा देकर बिना कर दिये वस्तुएँ या माल भेजता है, तो इन हालतों में यात्रा अवैध समझी जाती है और बीमाकर्त्ता या बीमा कम्पनी अपने दायित्व से मुक्त हो जाती है। यदि बीमाकर्त्ता की बिना जानकारी के जहाज के कप्तान तथा अन्य कर्मचारी कोई अवैध कार्य करते हों तो इससे यात्रा अवैध नहीं समझी जाती तथा ऐसी हालत में क्षति होने पर बीमा कम्पनी का दायित्व समाप्त नहीं होता। बीमा करानेवाले को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि बीमा-प्रयोजन की वैधता अक्षुण्ण रहे तथा वह इसके लिए अपने वश की समस्त शक्ति का प्रयोग करे जिससे किसी भी दशा में यात्रा अवैध न होने पाये।

(ग) मार्ग से विचलित न होना, या पथानुकूलता, या पथच्युत न होना (non-deviation)—इस शर्त के अनुसार बीमा करानेवाला इस बात का वचन देता है कि जहाज बीमापत्र की अवधि के अन्तर्गत साधारण या प्रचलित मार्ग (customary route) का या बीमा-पत्र में उल्लिखित मार्ग का ही अनुसरण करेगा। सामुद्रिक बीमा ऐक्ट के अनुसार यदि कोई जहाज किसी अवैध कारण से अपने मार्ग से विचलित होता है तो इसे मार्ग-विचलन या व्यतिक्रमण (deviation) कहते हैं। ऐसी अवस्था में बीमा कम्पनी अपने दायित्व से मुक्त हो जाती है और नुकसान होने पर बीमा करानेवाला को हानि स्वयं सहन करनी पड़ती है। अतः ऐक्ट के मुताबिक विचलन निम्नांकित परिस्थितियों में होता है—

(i) जब बीमापत्र में यात्रा के मार्ग का उल्लेख किया गया हो और जहाज ने उस मार्ग का अनुसरण न किया हो।

(ii) जब बीमापत्र में यात्रा के लिए विशेष मार्ग का उल्लेख न किया गया हो, किन्तु जहाज ने साधारणतया प्रचलित मार्ग (customary route) को त्याग कर किसी दूसरे मार्ग का अनुसरण किया हो।

यदि बीमा करानेवाला व्यतिक्रमण (deviation) करने के लिए सिर्फ सोचता है तो प्रसंविदा पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। बीमा करानेवाला अपने दायित्व से उसी समय मुक्त हो सकता है जब वास्तव में व्यतिक्रमण क्षम्य समझा जाता है और उसके होने से भी बीमा करानेवाला का दायित्व बना रहता है। विशेषरूपेण, निम्नांकित दशाओं में व्यतिक्रमण का प्रसंविदा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता\*—

१. यदि बीमापत्र में किसी ऐसी शर्त का वर्णन है जिसके अनुसार व्यतिक्रमण करने का अधिकार मिल चुका है। इस प्रकार का अधिकार जब दिया जाता है तो उसका वर्णन बीमापत्र में साफ-साफ कर दिया जाता है। इसके लिए बहुधा व्यतिक्रमण-पद (deviation clause) अथवा 'यात्रा-परिवर्तन पद' (change of voyage clause) बीमापत्र में अंकित रहता है जिसके फलस्वरूप बीमा करानेवाला यात्रा के रास्ते में परिवर्तन ला सकता है। लेकिन इस बात की खबर बीमा कम्पनी को दे देनी चाहिए।

२. यदि व्यतिक्रमण (deviation) इस वजह से हुआ है जिस पर जहाज के स्वामी तथा कप्तान का कोई अधिकार नहीं है; जैसे—यदि जहाज भयंकर तूफान में पड़ जाने के कारण अपने पूर्व-निश्चित अथवा प्रचलित रास्ते से अलग हट गया तो ऐसा व्यतिक्रमण क्षम्य समझा जाता है।

३. यदि व्यतिक्रमण किसी व्यक्त या गर्भित शर्त को पालन करने के लिए किया गया हो; जैसे—यात्रा के समय जहाज की समुद्र-योग्यता के लिए व्यतिक्रमण

\* Deviation is excusable.

करना आवश्यक हो सकता है।

४. जहाँ जहाज अथवा उसपर बीमा कराया हुई वस्तुओं की सुरक्षा के लिए व्यतिक्रमण की उचित आवश्यकता दीख पड़े; जैसे—भीषण तूफान की वजह से टूटे हुए जहाज की मरम्मत के लिए निकटतम बन्दरगाह पर जाना, इत्यादि।

५. जब किसी मनुष्य का जीवन बचाने के विचार से या किसी ऐसे विपदग्रस्त जहाज को बचाने के ह्याल से जहाँ मनुष्य का जीवन संकट में हो, व्यतिक्रमण किया जाय तो वह क्षम्य होगा।

६. जब जहाज पर चढ़े किसी रोगग्रस्त व्यक्ति की दवा-दारू के निमित्त व्यतिक्रमण किया गया हो।

७. जब व्यतिक्रमण जहाज पर किसी कर्मचारी द्वारा छलपूर्ण व्यवहार के कारण हुआ हो।

### सामुद्रिक बीमापत्रों के भेद

सामुद्रिक बीमा के निम्नलिखित भेद हैं—

१. यात्रा का बीमापत्र (Voyage Policy) — इस प्रकार की पालिसी से एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक जो जोखिम होती हैं वे सम्मिलित रहती हैं और उनके खिलाफ बीमा किया जाता है। अगर किसी माल पर बम्बई से लन्दन तक के लिए बीमा किया गया हो तो वह यात्रा का बीमा कहलायगा। उसी प्रकार न्यूयार्क से लन्दन और टोकियो से मद्रास के लिए यात्रा का बीमा किया जा सकता है। इस पालिसी में माल पर बीमा होता है।

२. समय बीमापत्र (Time Policy) — इसमें किसी चीज पर बीमा, किसी निश्चित अवधि के लिए लिया जाता है; जैसे—२१ जुलाई, १९५१ से २१ जुलाई, १९५२ तक की अवधि के लिए। साधारणतः इसमें एक वर्ष की मियाद रहती है। यह पालिसी ज्यादातर उन जहाजों पर ली जाती है, जो सालभर में कई यात्राएँ करते हैं, यद्यपि यात्रा की पालिसियाँ भिन्न-भिन्न यात्राओं के लिए अलग-अलग भी ली जा सकती हैं।

३. मिश्रित बीमापत्र (Mixed Policy) — इसमें यात्रा और अवधि दोनों का स्पष्ट वर्णन रहता है। बम्बई से लन्दन के लिए २१ जुलाई, १९५१ से २१ जुलाई, १९५२ तक के लिए बीमापत्र जारी किया जायगा, वह मिश्रित बीमापत्र के नाम से जाना जायगा।

४. कन्स्ट्रक्शन बीमापत्र (Construction Policy) — यह 'Builder's Policy' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह उन जोखिमों को ढकती है जो जहाजों की बनावट से सम्बद्ध हैं। यह पालिसी जहाज की समुद्र-यात्रा की येम्यता की जाँच-पर्यन्त जोखिम ढकती है और जब जहाज मालिक को ठीक-ठीक सुपुर्द कर दिया जाता है तब बीमा कम्पनी की जिम्मेदारी खत्म हो जाती है। जहाजों के बनाने में कई साल लग जाते हैं, इस कारण इसकी गणना निश्चित अवधि के बीमापत्र से नहीं की जा सकती, किन्तु यात्रा की पालिसियों में इसकी गणना की जा सकती है।

५. पोर्ट-पालिसी (Port Policy) — यह पालिसी जहाज की उन जोखिमों को ढकती है जो सिर्फ पोर्ट पर सम्भव हैं और जहाँ जहाज साधारण रूप में रखे रहते हैं।

६. मूल्यांकित बीमापत्र (Valued Policy) — जिस बीमापत्र में बीमा के विषय के मूल्य का उल्लेख रहता है उसे मूल्यांकित बीमापत्र (valued policy)

कहते हैं; जैसे—‘रुई की गाँठों पर २०,०००) रु० का बीमा कराया गया हो तो क्षति होने पर २०,०००) रु० के आधार पर ही पूर्ति की जायगी।

७. **अमूल्यांकित बीमापत्र (Unvalued Policy)**— जिस बीमापत्र में बीमा कराया हुआ वस्तु के मूल्य का कोई उल्लेख नहीं रहता है उसे अमूल्यांकित बीमापत्र (unvalued policy) कहते हैं। इसमें नुकसान होने पर नुकसान का मूल्यांकन किया जाता है तथा इससे बीमा-योग्य मूल्य का ज्ञान होता है। ‘बीमा-योग्य मूल्य’ सामुद्रिक बीमा ऐक्ट की धारा १६ के अनुसार निर्धारित किया जाता है। कम्पनी नुकसान की पूर्ति बीमा-योग्य मूल्य के आधार पर बीमा की रकम की सीमा तक करती है।

८. **चल अथवा खुला बीमापत्र (Floating or Open Policy)**— इसी बीमापत्र के अनुसार एक साधारण बीमापत्र ले लिया जाता है जिसमें यह शर्त होती है कि बीमा करानेवाला समय-समय पर जहाज या जहाजों के नाम एवं उन पर लदे हुए माल की घोषणा किया करेगा जिसकी सूचना बीमा कम्पनी को दी जायगी। इस प्रकार का बीमापत्र उन व्यापारियों के लिए विशेष उपयोगी है जो निरन्तर विदेशों में माल भेजते रहते हैं। प्रत्येक बार माल भेजने की घोषणा उन्हें करनी पड़ती है और इसलिए इसे ‘घोषणा बीमापत्र’ (declaration policy) भी कहते हैं।

९. **जुए का बीमापत्र (Wager Policy)**— यों तो हरेक बीमा की चीज के अन्दर बीमोचित अनुराग का होना आवश्यक है, किन्तु यदि बीमा करने वाला चाहे तो ऐसी वस्तु पर भी पालिसी कर सकता है जिसमें बीमा करानेवाले का बीमोचित अनुराग न हो। यद्यपि ऐसे बीमे का रुपया दिलवाने में अदालत की सहायता नहीं प्राप्त हो सकती, फिर भी करनेवाले इसका भुगतान कर ही देते हैं। ऐसा बीमा वास्तव में बीमा नहीं है, वरन् एक प्रकार का जुआ है। इसे Policy Proof of Interest (P. P. I.) या Honour Policy भी कहते हैं।

१०. **ब्लॉक बीमापत्र (Block Policy)**— इस प्रकार की पालिसी के उत्पत्ति-स्थान अफ्रीका के सोने की खान हैं और इसकी तरक्की आजकल की दुनिया में बहुत देखी जा रही है। इसके अन्दर जहाँ से सोना निकाला जाता है, वहाँ से जहाज के अन्तिम बन्दरगाह पर्यन्त जितनी जोखिम होती है सभी इसके अन्तर्गत आ जाती है। आज कल अनाज पर खेत में से ही पालिसी ली जाने लगी है और विदेशों में भी इस तरह की पालिसी की तरक्की देखी जा रही है।

११. **करेंसी पालिसी (Currency Policy)**— मुद्रा-बीमापत्र ऐसे बीमापत्रों को कहते हैं जो विदेशी मुद्रा में चालू किये जाते हैं। इसमें बीमा की रकम का विदेशी मुद्रा में वर्णन रहता है।

**सामुद्रिक बीमापत्र की शर्तें (Conditions of Marine Insurance Policy)**

सामुद्रिक बीमा-व्यवसाय में लगी हुई प्रायः सभी बीमा कम्पनियाँ लायड्स (Lloyd's) बीमापत्रों का ही प्रयोग करती हैं। बीमापत्रों में सामुद्रिक बीमा ऐक्ट में दिये हुए बीमापत्र-सम्बन्धी सभी आवश्यक नियमों का वर्णन रहता है। बीमापत्र की प्रमुख शर्तें निम्नांकित होती हैं—

१. **“यह सर्वविदित किया गया है कि” (Be it known that)**— धारा ३३ के अनुसार सामुद्रिक बीमापत्र में बीमा करानेवाला अथवा उसकी ओर से बीमा कराने वाले व्यक्ति का नाम अवश्य होना चाहिए। अतः यह नाम “Be it known that” के बाद लिखा जाता है।

२. **स्वत्व-समर्पण पद (Assignment Clause)**—इस पद के अनुसार सामुद्रिक बीमापत्र का अभिहस्तांकन (assignment) किया जा सकता है। परन्तु यदि कोई शर्त न दी हो तो बीमा करानेवाले निर्विरोध स्वत्व-समर्पण कर सकता है, चाहे उसके लिए अनुमति स्पष्टतः बीमापत्र में दी गयी हो अथवा नहीं। स्वत्व-समर्पण हानि होने के पूर्व अथवा पश्चात् कभी भी किया जाता है, यदि बीमा करानेवाले का हित उस समय तक समाप्त न हो चुका हो।

३. **‘खोया या नहीं खोया’ पद (Lost or not lost)**—कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि जहाज का बीमा, बन्दरगाह से जहाज के छूटने के बाद होता है। ऐसी स्थिति में बीमा करनेवाले और बीमा करानेवाले दोनों अनभिज्ञ रहते हैं कि जहाज का क्या हाल है; जहाज डूब गया या सुरक्षित है, दोनों में से किसी को भी मालूम नहीं रहता। अगर बीमा करानेवाला यह जानता हो कि जहाज डूब गया है और तब बीमा कराना चाहता है तो उसका यह काम बीमा कम्पनी को ठगने के इरादे से समझा जायगा और ठीका गैरकानूनी हो जायगा, क्योंकि बीमा करानेवाले ने सही बात को छिपाकर ठगने की कोशिश की। लेकिन अगर उसे किसी बात की जानकारी नहीं है तो कॉन्ट्रैक्ट सब तरह से ठीक ही है। उसी प्रकार अगर बीमा कम्पनी जानती है कि जहाज अपने निश्चित बन्दरगाह पर पहुँच गया है और तब बीमा करानेवाले को प्रेरित करती है या बीमा कराना स्वीकार करती है तो कानूनन कॉन्ट्रैक्ट अवैधानिक होगा और कम्पनी को प्रीमियम लौटाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

उपर्युक्त हालतों का होना तभी सम्भव था जबकि समाचारों के यातायात की कोई सुविधा न थी। आजकल सिर्फ घटना होने में ही जो कुछ देरी लगती है, खबर तो कुछ ही घण्टों में संसार के एक कोने से दूसरे कोने में पहुँच जाती है। लेकिन कही हुई बातों से यह विदित होता है कि बीमाकृत और बीमा कम्पनी दोनों का कर्तव्य है कि वे एक-दूसरे पर विश्वास करके ठीकालें। इसके अलावा, खबर पहुँचने के साधन होने पर भी हो सकता है कि वास्तविक बात दोनों पार्टियों में से किसी एक को न मालूम हो, अतएव यह एक प्रमुख शर्त है।

४. **‘पर’ और ‘से’ पद (‘At’ and ‘From’ Clause)**—‘पर’ और ‘से’ पद का यात्रा के सम्बन्ध में पूरा विवरण दिया रहता है कि जहाज अपनी यात्रा कब तथा किस समय शुरू करेगा और उसका अन्त कब और किस समय होगा। यदि बीमापत्र में केवल ‘से’ पद लगा रहे तो बीमा कम्पनी का दायित्व जहाज को बन्दरगाह से छोड़ने के बाद शुरू होता है। किन्तु ‘पर’ और ‘से’ पद लगा रहने से बीमा कम्पनी का दायित्व उसी समय से शुरू होता है जिस समय से माल जहाज पर लाद दिया जाता है। इस पद का असर यह होता है कि माल को जहाज में लादने के बाद, किन्तु यात्रा शुरू करने के पहले, बीमा करायी घटना से क्षति होती है तो बीमाकर्ता उनकी पूर्ति करने के लिए बाध्य है।

५. **जहाज का नाम (Name of Ship or Vessel)**—इसमें उस जहाज का नाम लिखा रहता है जिसका अथवा जिसपर भेजे गये माल का बीमा करायी गया है।

६. **मास्टर का नाम (Name of Master)**—जहाज के कप्तान अथवा चालक का नाम रहता है। इसमें उसी का नाम रहना चाहिए जो जहाज का संचालन वास्तव में करे।

७. **जोखिम का आरम्भ और समाप्ति (Commencement and end of**

Risk) — इसके अनुसार बीमाकर्ता के दायित्व की अवधि का पता चलता है। इसमें जोखिम की शुरुआत तथा अन्त का विवरण दिया जाता है।

८. स्पर्श और टिकाव (Touch and Stay) — इस पद के अनुसार यात्रा के दौरान जहाज को किस क्रम से विभिन्न बन्दरगाहों से होकर जाना होगा और किन्-किन् बन्दरगाहों पर ठहराना होगा—ये सब बातें प्रमुख होती हैं। इसके अनुसार जहाज को सीमाबद्ध तथा क्रमबद्ध होकर यात्रा करनी पड़ती है। अतः इसके अनुसार अकारण यात्रा-परिवर्तन या अविचलन (deviation) बीमाकर्ता की जोखिम पर नहीं दिया जा सकता है। इस पद के अनुसार निम्नलिखित नियमों का पालन करना बहुत जरूरी है—

(i) जिन बन्दरगाहों को जहाज स्पर्श करता है या जिन स्थानों पर ठहरता है उन्हें यात्रा के साधारण क्रम के अनुसार होना चाहिए।

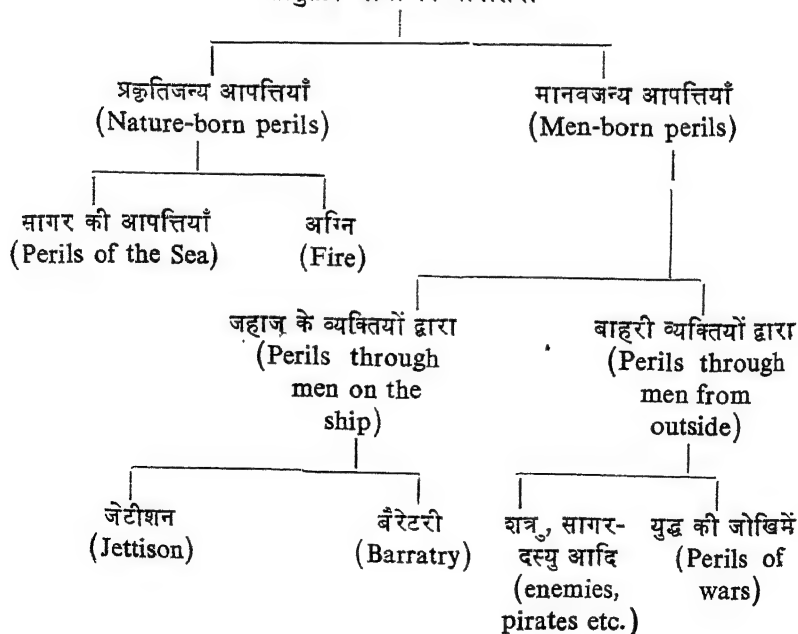
(ii) जिन बन्दरगाहों से जहाज गुजरता है वे बीमापत्र में दिये हुए क्रम के अनुसार या भौगोलिक क्रम के अनुसार हों।

(iii) जहाज को किसी बन्दरगाह पर उसी समय ठहराना चाहिए जब ऐसा करना उचित, युक्तिसंगत तथा कानूनी समझा जाय।

(iv) फिर ऐसे बन्दरगाहों पर ठहरने के बाद बिना अनुचित विलम्ब किये जहाज को पुनः अपनी यात्रा शुरू कर देनी चाहिए।

९. आपत्ति पद (Perils Clause) — इस पद में उन सभी आपत्तियों तथा जोखिमों का वर्णन दिया रहता है जिनके द्वारा क्षति होने पर बीमापत्र उम्मीदपूर्ति के लिए जिम्मेदार हो सकता है। बीमापत्र में आपत्तियों के विवरण में कोई क्रम नहीं रहता है। इन आपत्तियों को निम्नांकित भागों में बाँटा जा सकता है—

#### सामुद्रिक बीमा की आपत्तियाँ



**जोखिमें (Perils)**—इसमें उन जोखिमों का वर्णन रहता है जिनके यात्रा में उपस्थित होने पर क्षति की पूर्ति का उत्तरदायित्व, बीमा करनेवाले अपने ऊपर लेते हैं। इसके अन्दर समुद्र, अग्नि, युद्धरत-व्यक्ति, शत्रु, चोर, डाकू लुटेरे, जेट्टीशन, शत्रु-देश के कार्य, नाविकों द्वारा चोरी आदि के कारण होनेवाली जोखिमें आदि हैं। लायड्स पॉलिसी में इन आपत्तियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—“.....of the seas, men of war, fire, enemies, pirates, rovers, thieves, Jettison, Letters of mart and counter mart, surprisals, taking at sea, arrests, restrains and detainerments of all kings, princes and people, of what nation, condition, or quality so ever, barratry of the master and mariners and all other perils ... ..”

**समुद्री जोखिम (Perils of the Sea)**—इसमें वे सभी जोखिम सम्मिलित नहीं होती जो समुद्र-यात्रा के समय उपस्थित हो सकती हैं; केवल वे ही निहित समझी जाती हैं जो समुद्र के कारण उपस्थित होती हैं और साथ ही जो आकस्मिक तथा मानवीय नियन्त्रण के परे होती हैं; यथा—समुद्र के जल, तूफान, जल में अदृश्य चट्टान, अथवा भूभाग से टकराने, भूमि पर लग जाने, सागर की प्रवल लहरों इत्यादि से होनेवाली हानियों की जोखिमें। किन्तु इसमें वायु तथा लहरों के स्वाभाविक कार्यों से उत्पन्न हानि सम्मिलित नहीं होती।

**अग्नि (Fire)**—जहाज चलाने के लिए कोयला या तेल या बिजली का प्रयोग होता है। अतः इन सभी से अग्नि उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। इसी तरह आकस्मिक विस्फोट विद्युत्पात अथवा जहाज को कर्मचारियों की असावधानी से भी आग लगने का भय रहता है। ऐसे अज्ञात एवं आकस्मिक कारणों से अग्नि द्वारा क्षति होने पर लायड्स बीमापत्रों की शर्तों के अनुसार बीमाकर्ता क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी होता है। किन्तु कुछ स्थितियाँ ऐसी भी हैं जिनमें आग लगने से भी बीमाकर्ता क्षतिपूर्ति के लिए बाध्य नहीं होता है। अतः जब बीमा करानेवाला स्वेच्छा से या धोखा देने के स्थाल से आग लगा दे तो बीमाकर्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा। फिर, कुछ वस्तुओं में स्वाभाविक दुर्गुण (inherent vice) होते हैं जिनमें आप-से-आप आग लग जाती है। अतः यदि इन वस्तुओं को अनुचित ढग से ले जाया जाय और यदि आग लग जाय तो ऐसी क्षति के लिए बीमा कम्पनी दायी होती है।

**जेट्टीशन (Jettison)**—आवश्यकता पड़ने पर जहाज को हलका करने अथवा किसी संकट से बचाने के लिए माल, सामग्री, सज्जा आदि को समुद्र में फेंक देना अथवा मस्तूल आदि को काट देना, ‘जेट्टीशन’ कहलाता है। पॉलिसी में इसकी जोखिमें सम्मिलित रहती हैं। किन्तु यदि माल अपने स्वभावगत दोष के कारण ही (जैसे सड़कर दुर्गन्ध फैलने के कारण) फेंक दिया जाता है तो वह जेट्टीशन के अन्तर्गत नहीं समझा जाता।

**नाविकों द्वारा चोरी की जोखिम (Barratry)**—इसके अन्दर कप्तान और मल्लाह जहाज को या माल को जान-बूझकर बरबाद करते हैं। उनका इस प्रकार का काम ‘Barratry’ कहलाता है। प्राचीन काल में जब आने-जाने में महीनों लगते थे और समुद्र के बीच उनका कुछ पता नहीं चलता था तो जहाज के कैप्टन जहाज को अपने काम में लाते थे। लेकिन आजकल ऐसा काम सम्भव नहीं। इस प्रकार के गैरकानूनी काम से, जिसका बीमा किया गया है, अगर कोई

क्षति हुई तो कम्पनी देनदार होगी। कोई भी गैरकानूनी काम बैरेट्री के अन्तर्गत आ जायगा। प्रतिबन्ध को तोड़ना, दुश्मन के देश से व्यापार करना आदि भी उसी के अन्दर आ जाता है।

**चोर (Thieves)**—यह साधारण चोरी से सम्बद्ध नहीं है, बल्कि जबरदस्त, उत्पाती, लूटमार मचानेवाले चोर से सम्बद्ध है। साधारण चोरी को 'pilferage' कहते हैं जो कि सावधानी से रोकी जा सकती है। चोर जहाज के आदमी नहीं होते। इन लोगों द्वारा क्षति होने पर बीमा कम्पनी जिम्मेदार होती है।

### उपद्रव करनेवाले (Pirates and Rovers)

दोनों शब्द उस प्रकार के मनुष्यों के ग्रुप को बतलाते हैं जो बलवा और उपद्रव मचाकर जहाज पर चढ़ाई कर बैठते हैं, मास्टरों और नाविकों को मार देते हैं और कभी-कभी मास्टर को कम दाम पर कोई माल बेचने के लिए डराते-धमकाते हैं। 'Pirates' अपना स्वार्थ देखता है और किनारे से आकर आक्रमण करता है। इस प्रकार वह सिर्फ मनुष्य जाति का ही दुश्मन नहीं है, बल्कि वह किसी खास देश का दुश्मन होता है। अगर इनके खिलाफ बीमा किया गया हो तो बीमा कम्पनी उनके द्वारा क्षति होने पर जिम्मेदार होगी।

**लड़ाई के शस्त्रास्त्र (Men of War)**—यह लड़ाई करनेवाली सरकार के समुद्र में उन आक्रमणकारी कामों को बतलाता है जो लड़ाई के औजारों के जरिये होते हैं। आजकल इस शब्द का प्रयोग विस्तृत क्षेत्र में देखा गया है। सबमेरिन, एअरोप्लेन, डेस्ट्रॉयर, टारपेडो, बम आदि भी उपर्युक्त शब्द में सम्मिलित हैं जिनकी सहायता से समुद्र की चीजें बरबाद की जाती हैं। 'Men of War', एक प्रकार के जहाज हैं जो कुछ देशों द्वारा अपने दुश्मनों पर आक्रमण करने के लिए तथा आक्रमण से बचने के लिए बहाल किये जाते हैं। इनके खिलाफ अगर पॉलिसी ली गयी हो तो कम्पनी जोखिम के लिए जिम्मेदार होगी।

### आक्रमण करने और रोकने की चिट्ठी (Letters of Mart and Counter Mart)

इस प्रकार की चिट्ठियाँ लड़ाके देशों द्वारा अपनी प्रजा को बदला लेने के लिए, जो कभी दूसरे देशों के लोगों से सताये गये थे, जारी की जाती हैं। 'Letters of Mart' एक प्रकार का कमीशन है जो लड़नेवाला देश अपनी प्रजा को देता है और 'Letters of Counter Mart' वह कमीशन है जो दुश्मन से बदला लेने के लिए प्रजा को दिया जाता है। आजकल इस तरह की चिट्ठियों को जारी करना बहुत बुरा समझा जाता है। Surprisals and Taking at Sea ये दोनों शब्द capture का बोध कराते हैं। उसी प्रकार Arrests, Restraints, Detainments, Princes and People etc... .....Conditions or quality so ever, ये सभी शब्द पर्यायवाची हैं।

### समीपवर्ती कारण (Doctrine of Cause Proxima)

बीमा कम्पनी को उत्तरदायी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि नुकसान किसी जोखिम के जरिये हो, जिसके खिलाफ बीमा पॉलिसी ली गयी हो। लेकिन इसके अलावा, नुकसान के लिए जोखिम का समीपवर्ती होना भी बहुत जरूरी है। नुकसान,



बीमा कराने वाला की गलती एवं बुरे व्यवहार (misconduct) से नहीं होना चाहिए। *Pink vs. Fleming* के मुकदमे में यह तय हुआ कि अगर कोई नुकसान दो जोखिमों से हुआ हो तो जो सबसे नजदीकी होगा वही नुकसान का कारण माना जायगा, यद्यपि इसकी सम्भावना दूरवर्ती के कारण के बिना नहीं हो सकती थी। बीमा कम्पनी को समीपवर्ती कारण से नुकसान होने पर जिम्मेदार होना पड़ता है। एक बार नारंगी के माल पर बीमा कराया गया जो आंशिक क्षति के लिए 'वरैटेड' थे (अर्थात् आंशिक क्षति होने पर बीमा कराने वाला ही जिम्मेदार होगा, कम्पनी नहीं), टक्कर होने पर कम्पनी की जिम्मेदारी ठहरायी की गयी। जहाज कही टकरा गया और उसे मरम्मत के लिए किसी बन्दरगाह पर रखा गया और मरम्मत करने के लिए यह जरूरी हो गया कि उस जहाज पर के माल को दूसरे जहाज पर, जिसे 'लाइटर' कहते हैं, लादा जाय तथा मरम्मत होने पर पुनः उसी पर लादा जाय। इस प्रकार, जब जहाज मरम्मत होकर अपनी निश्चित जगह पर पहुँच गया तो पता चला कि नारंगी बहुत बरबाद हो गयी है, कुछ तो माल के इस जगह से उस जगह लादने और कुछ स्वाभाविक बरबादी के कारण। अब सवाल उठता है कि नुकसान टक्कर लगने की वजह से हुआ है या नहीं। यहाँ गौर करने पर पता लगेगा कि माल की बरबादी का समीपवर्ती कारण माल उतारना और लादना है और दूरवर्ती कारण जहाज का टकराना है। अतः यहाँ कम्पनी नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं होगी, क्योंकि नुकसान टक्कर लगने की वजह से अथवा अन्य जोखिमों की वजह से नहीं हुआ है तथा जिसपर बीमा नहीं किया गया था।

कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि माल किसी ऐसे कारण से खराब हो गया है जिसके विरुद्ध बीमा हुआ है, किन्तु वह कारण स्वयं किसी ऐसे कारण से सम्बद्ध है जिसके विरुद्ध बीमा नहीं किया गया है। ऐसी हालत में कम्पनी यह नहीं कह सकती कि जिस कारण से क्षति हुई है वह कारण स्वयं दूसरे कारण से सम्बद्ध है (जिसपर बीमा नहीं हुआ है)। अतः, उसके ऊपर क्षति को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व नहीं रहता। समुद्री यात्रा-जोखिमों में यह माना गया है कि यदि क्षति होने की सबसे समीपवर्ती जोखिम के विरुद्ध बीमा किया गया है, चाहे अन्य जोखिमों के विरुद्ध बीमा किया हो अथवा नहीं, बीमा करनेवाला क्षति के लिए उत्तरदायी है। मान लीजिए कि किसी जहाज में समुद्री पानी के प्रवेश हो जाने से उसपर का माल खराब हो गया है और इस जोखिम के विरुद्ध बीमा कराया गया है, लेकिन पानी जहाज के पेंदे में चूहों के काटने के कारण घुसा है और इस जोखिम के विरुद्ध बीमा नहीं कराया गया है। ऐसी अवस्था में बीमा करनेवाली कम्पनी क्षति को पूर्ण करेगी, क्योंकि क्षति होने का जो सबसे समीपवर्ती कारण है यानी पानी का प्रवेश, उसके लिए बीमा था।

इसी प्रकार एक जहाज पर टक्कर के विरुद्ध बीमा लिया गया, लेकिन अन्य समुद्री जोखिमों के खिलाफ नहीं। जहाज चलते-चलते किसी चीज से टकरा गया, इस कारण इंजन रूम को काफी धक्का पहुँचा और कण्डेन्सर (condenser) का ढक्कन टूट गया। परिणामस्वरूप, पानी भीतर आने लगा, जिसे थोड़ी देर के लिए कोई उपाय लगाकर बन्द कर दिया गया, लेकिन जहाज को मरम्मत के लिए रस्सी से खींचा जाने लगा। ऐसा करने से पानी और तेजी से भरना शुरू हो गया, बन्द न हो सका और अन्त में जहाज डूब गया। इस पूर्ण क्षति के लिए मुकदमा किया गया, जिसका आधार टक्कर रखा गया; लेकिन वास्तविक रूप से क्षति का कारण जहाज की मरम्मत के लिए रस्सी से खींचना है—जो समीपवर्ती कारण जहाज

का टकराना ही है क्योंकि टकराने की वजह से ही कण्डेन्सर में पानी का घुसना शुरू हो गया था जो अभी पूरी तरह से बन्द नहीं हुआ था, यद्यपि थोड़ा रुक गया था। अतः कम्पनी को घाटा देने की जिम्मेदार होना पड़ा।

१०. **मूल्य-निर्धारण (Valuation)**— इसमें जो रिक्त स्थान छोड़ा हुआ रहता है, उसे सीमा के विषय-सम्बन्धी विवरण, 'मूल्यांकित' बीमापत्र में उसके मूल्य का उल्लेख करने में प्रयोग किया जाता है।

११. **अभियोग तथा परिश्रम पद (Sue and Labour Clause)**— बीमा करनेवाले और उसके एजेंट का यह कर्तव्य होता है कि वह यात्रा में बीमाकृत वस्तु पर किसी प्रकार का संकट आने पर उसको टालने तथा वस्तु की रक्षा अथवा सम्भावित हानि को न्यूनतम करने का भरसक प्रयत्न करे। यह कार्य उसी कोटि का होता चाहिए जैसा कि माल के बीमाकृत होने की दशा में होता है। इसमें जो व्यय बीमा कराने वाले को करना पड़ता है उसे बीमा करनेवाले चुकाने के लिए बाध्य होते हैं। किन्तु इन व्ययों को न्यायसंगत और विवेकपूर्ण (reasonable) होना चाहिए। वर्तमान समय में यातायात में सुगम तथा गतिशील साधनों के द्वारा माल के स्वामी को उसके सम्बन्ध में सब प्रकार की सूचनाएँ मिलती रहती हैं। किसी अनिष्ट की सूचना मिलते ही वह अपने माल की रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है, किन्तु बीमा कम्पनी इतना शीघ्र उक्त कार्यवाही नहीं कर सकती। माल के स्वामी का जहाज पर साधारणतः उपस्थित रहना सम्भव नहीं होता। अतः इस सम्बन्ध में जहाज का कप्तान उसका प्रतिनिधि समझा जाता है और माल पर संकट आने पर वही आवश्यक कार्यवाही करता है। यह कार्यवाही पूर्ण ईमानदारी से होनी चाहिए तथा इसकी सूचना माल के मालिक को शीघ्रातिशीघ्र देनी चाहिए। इसके अलावा व्यय ऐसे अवसर पर होना चाहिए जब हानि अथवा विपत्ति आ चुकी हो। खतरे के होने के पूर्व किया गया व्यय इसमें शामिल नहीं किया जाता। एक बात यह भी है कि व्यय सामान्यतः सभी विषयों की सुरक्षा के हेतु नहीं किया जाना चाहिए; इसे किसी विशेष हित (particular interest) से ही सम्बद्ध होना चाहिए जैसे कि जहाज को बचाने के लिए अथवा किसी माल को बचाने के लिए। इस प्रकार का व्यय 'विशेष व्यय' (particular charges) कहलाता है।

१२. **स्वतन्त्र-त्याग पद (Waiver Clause)**— इस पद की शर्त के अनुसार बीमाकर्ता तथा बीमाकृत दोनों को ही यह अधिकार रहता है कि वे हानि को कम करने के लिए अपनी ओर से स्वतन्त्र कार्यवाही करें। ऐसा करने में किसी भी पक्ष के अधिकार तथा दायित्व पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः यह पद Sue and Labour पद का एक विस्तृत रूप है। सामुद्रिक यात्रा के समय कभी-कभी जहाज या माल इतना नष्ट हो जाता है कि उसकी मरम्मत इत्यादि करने में उसके वास्तविक मूल्य से ज्यादा खर्च करने की जरूरत हो जाती है। ऐसी स्थिति में बीमा कराने वाला पूर्ण हानि के लिए दावा करता है तथा इसके लिए वह **परित्याग सूचना (Notice of Abandonment)** बीमाकर्ता के पास भेजता है। ऐसी परिस्थिति में सम्भव है कि बीमाकर्ता परित्याग-सूचना स्वीकार न करे और उस माल अथवा जहाज की रक्षा के लिए न बीमा कराने वाला ही कोई चेष्टा करे क्योंकि उसने पूर्ण हानि का दावा कर ही दिया है और न बीमाकर्ता ही कुछ करे क्योंकि उसने परित्याग-सूचना अस्वीकृत कर दी है। इसी कारण बीमापत्रों में 'वेवर पद' लगे रहते हैं। इस पद के अनुसार जब पूर्ण हानि का दावा किया जा चुका हो, किन्तु इसके लिए दी गयी परित्याग-सूचना को बीमाकर्ता ने अस्वीकार कर दिया

हो तो भी इस वस्तु की सुरक्षा के लिए बीमा करनेवाले तथा बीमा करानेवाले दोनों को बिना विरोध के अपनी-अपनी ओर से उचित प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे प्रयत्न का कोई सम्बन्ध पूर्ण दावे से नहीं होता है तथा इसका बीमा करानेवाले या बीमा करनेवाले के अधिकार तथा दायित्व पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि बीमा करानेवाला यह कार्य करने के कारण परित्याग-सूचना वापस ले रहा है। इसी प्रकार, इस दिशा में बीमाकर्ता द्वारा की हुई कार्रवाई से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उसने परित्याग-सूचना अस्वीकार नहीं की। अतः जहाँ यह पद दोनों पक्षों को इस बात का समान अधिकार देता है कि वे हानिग्रस्त वस्तु को बचाने की यथाशक्ति चेष्टा करें, वही उन दोनों को इस बात का आश्वासन भी देता है कि ऐसा करने में दोनों के पारस्परिक कानूनी अधिकार तथा दायित्व पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा; किन्तु ऐसी कार्रवाई करते वक्त दूसरे पक्ष के हित को भी सुरक्षित रखना चाहिए।

१३. स्मारक पद (Memorandum Clause)—‘स्मारक पद’ के द्वारा वस्तु की क्षयशीलता (perishability) के आधार पर बीमा कम्पनी के दायित्व को सीमित कर दिया जाता है जो निम्नांकित प्रकार है—

(i) अनाज, नमक, मछली, बीज, फल, आटा इत्यादि अधिक क्षयशील वस्तुओं में यदि आंशिक हानि होती है तो इसके लिए बीमाकर्ता का उत्तरदायित्व नहीं रहता। किन्तु, अनाज में चावल तथा नमक में शोरा सम्मिलित नहीं रहता।

(ii) चीनी, तम्बाकू, महुआ, चमड़ा, सन तथा खाल पर पाँच प्रतिशत से न्यून आंशिक हानि पर बीमाकर्ता का दायित्व नहीं रहता।

(iii) शेष अन्य वस्तुओं पर जहाज एवं भाड़े पर तीन प्रतिशत से कम आंशिक हानि होने पर बीमाकर्ता का दायित्व नहीं रहता।

अपवाद

स्मारक पद (memorandum clause) निम्नलिखित स्थितियों में लागू नहीं होता—

(क) यदि आंशिक हानि, सामान्य आंशिक हानि (general average loss) है।

(ख) यदि जहाज बालू में या समुद्रतल में फँस जाता (stranded) है।

ऊपर लिखे पदों के अलावा दो और पद उल्लेखनीय हैं जो बीमापत्र में अलग से जोड़े जा सकते हैं—

(i) जैनसन पद (Janson clause), और

(ii) युद्ध-जनित आपत्तियों से मुक्त (Free of capture and seizure clause or F. C. S.)।

जैनसन पद (Janson Clause)

यूरोप में कुछ देशों में स्मारक पद की जगह पर ‘जैनसन पद’ या ‘फ्रेंचाइज रीति’ (Franchise System) का प्रयोग होता है। इस पद या रीति के अनुसार बीमा कराया गया वस्तुओं का ३ या ५ प्रतिशत के अलावा जितनी हानि होती है सिर्फ उसी की पूर्ति करता है। उदाहरणार्थ, जब किसी वस्तु का १०,००० रुपये का बीमा ५०% जैनसन पद के साथ कराया गया हो और यदि १,००० रुपये की आंशिक क्षति होती है तो बीमाकर्ता सिर्फ ५०० रुपये ही देगा। स्मारक पद होने पर बीमाकर्ता को कुल १,००० रुपये देना पड़ता है। अतः ‘जैनसन पद’ के द्वारा बीमाकर्ता की अधिक रक्षा की गयी है। इस प्रकार, इस पद का वास्तविक उद्देश्य यह है कि आंशिक हानि का कुछ अंश बीमा करानेवाला भी सहन करे।

युद्धजनित आपत्तियों से मुक्त पद (Free of Capture and Seizure Clause or F. C. S.)

लड़ाई के मौके पर धरभकड़ की जोखिम बढ़ जाती है और उससे जो हानि होती है उससे मुक्ति होने पर F. C. S. कहलाता है। लेकिन अधिक प्रीमियम देने पर इसके लिए भी कम्पनी जोखिम ले सकती है।

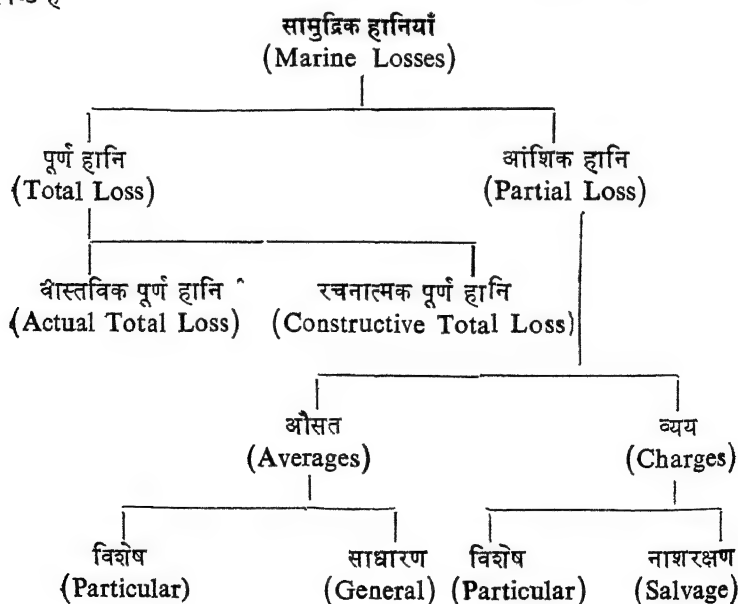
वर्जित आपत्ति पद (Excepted Perils Clause)

कुछ ऐसे भी खतरे होते हैं जिनका वर्णन वहन-पत्र (bill of lading) अथवा चार्टर पार्टी (charter party) में किया रहता है। यह एक प्रकार की शर्त है जो जहाजी कम्पनी (shipping company) और जहाज पर लदी हुई वस्तु के स्वामी के बीच पहले से तय रहती है जिसके अनुसार लिखित जोखिम की क्षति होने पर वाहक (carrier) अर्थात् जहाजी कम्पनी दायी नहीं रहती। इसे 'वर्जित आपत्ति पद' (excepted perils clause) कहते हैं जिनका वर्णन चार्टर पार्टी में निम्नांकित प्रकार से रहता है—“The Act of God, the King's enemies, restraint of Princes and rulers, fire and all and every other dangers and accidents of the seas, rivers and navigation, of what nature and kind so ever, throughout the voyage, being excepted”

अतः इस पद के अन्तर्गत जोखिम से क्षति होने पर वाहक दायी नहीं होता। किन्तु यदि इन जोखिमों के लिए किसी बीमा कम्पनी से बीमा कराया गया हो तो क्षति होने पर बीमा कम्पनी उसकी पूर्ति करती है अन्यथा वस्तु के स्वामी को ही क्षति सहन करनी पड़ती है।

सामुद्रिक हानियाँ (Marine Losses)

सामुद्रिक हानियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं जो निम्नलिखित तालिका (chart) से स्पष्ट है—



**पूर्ण हानि (Total Loss)**—जब बीमा की विषय-वस्तु पूर्णतया नष्ट हो जाती है और उसे पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता तो इसे पूर्ण हानि (total loss) कहते हैं।

**आंशिक हानि (Partial loss)**—यदि बीमा करायी गयी वस्तु का सिर्फ कोई एक अंश नष्ट हो तो उसे आंशिक हानि (partial loss) कहते हैं।

दोनों प्रकार की जोखिम से क्षति होने पर बीमा कम्पनी को तभी बाध्य किया जा सकता है जबकि दोनों के लिए अलग-अलग बीमा कराया गया हो। यदि सिर्फ एक ही के लिए बीमा कराया गया हो तो उसी के लिए बीमा कम्पनी बाध्य होगी, दूसरे के लिए नहीं।

**वास्तविक पूर्ण हानि (Actual Total Loss)**—अगर बीमाकृत वस्तु इस तरह बरबाद हो गयी कि उसे पहचाना नहीं जा सकता अथवा उसका कुछ मूल्य नहीं लगाया जा सकता तो उसे वास्तविक पूर्ण हानि (actual total loss) कहते हैं। जैसे, समुद्र के पानी से तम्बाकू तथा चमड़ा बिल्कुल खराब हो जाता है और उसका मूल्य नहीं मिलता। उसी तरह अगर कोई जहाज डूब गया या उसका कुछ पता नहीं लगा तो वे सभी वास्तविक पूर्ण क्षति के अन्दर आ जाते हैं। किन्तु यदि माल ऐसी अवस्था में है कि उसको प्राप्त करने में अथवा उसकी मरम्मत करवाने में उतना ही अथवा उससे भी अधिक खर्च होता है, जितनी कि उसकी कीमत है तो उस माल की पूर्ण क्षति तो नहीं हुई, पर ऐसी क्षति अवश्य हुई जो पूर्ण कही जा सकती है। इसे अँगरेजी में (constructive total loss) कहते हैं। [धारा ६० (१)] इसी प्रकार, अगर कोई जहाज किसी चट्टान से टकरा गया और उसे किनारे तक लाने में उतना ही अथवा उससे भी अधिक व्यय करना पड़ा जितना उस जहाज का मूल्य था तो वास्तव में यह क्षति पूर्ण तो नहीं है, पर पूर्ण क्षति कही जा सकती है अथवा कोई माल इतना बरबाद हो गया है कि उसकी मरम्मत में उस माल की कीमत के बराबर रुपया खर्च पड़ता है तो भी वह क्षति पूर्ण नहीं होने पर भी वास्तव में पूर्ण कही जा सकती है। मौस बनाम स्मिथ\* के मुकदमे में मौली (Maule) ने 'रचनात्मक पूर्ण हानि' का इस प्रकार वर्णन किया—  
“A man may be said to have lost a shilling when he has dropped it into deep water, although it might be possible, by some very expensive contrivance, to recover it. The shilling exists, and it could be recovered at a price, but what man would be foolish enough to spend, say two shillings, in order to recover ones.”—Mane, J.

वास्तविक पूर्ण हानि और रचनात्मक पूर्ण हानि में मुख्यतः स्थूल असम्भवता (physical impossibility) और व्यावसायिक असम्भवता (mercantile impossibility) के सम्बन्ध में अन्तर है।† तात्पर्य यह है कि वास्तविक पूर्ण हानि में बीमा करायी गयी वस्तु का रूपान्तर हो जाता है तथा उसे पूर्वस्थिति में पुनः लाना असम्भव हो जाता है; किन्तु, रचनात्मक पूर्ण हानि में बीमा करायी गयी वस्तु की क्षति होने पर तथा उसके असली रूप में रूपान्तर हो जाने पर भी उसे पूर्वस्थिति में लाना सम्भव रहता है, यद्यपि ऐसा करने में कोई लाभ नहीं होता।

\* Moss vs. Smith (1845) 2 C. B. 94 at P. 103.

† Henery Keate : *Guide to Marine Insurance*.

## परित्याग-सूचना (Notice of abandonment)

जब रचनात्मक पूर्ण हानि का दावा किया जाता है तब बीमा करानेवाले को अपने समस्त अधिकार तथा हित के परित्याग की नोटिस बीमाकर्ता के पास अवश्य भेजनी चाहिए। *Parwater vs. Todhunter* (1809) के मुकदमे में Lord Ellenborough ने बतलाया कि परित्याग की नोटिस (१) स्पष्ट भाषा में तथा शर्त-रहित (unconditional) होनी चाहिए, और (२) इसे बीमाकर्ता के पास उचित समय के भीतर भेजनी चाहिए।

इसके अलावा, बीमा करानेवाले को यह भी बतलाना चाहिए कि किन-किन कारणों से वह क्षति को रचनात्मक पूर्ण हानि समझता है तथा परित्याग की नोटिस भेजना क्यों आवश्यक है। परित्याग की नोटिस देना निम्नांकित वजहों में बहुत जरूरी है—

१. बीमा करानेवाले को वास्तविक क्षति की पूर्ति कराने के लिए ऐसी नोटिस भेजना बहुत जरूरी है क्योंकि वह एक तरफ बीमा कम्पनी पर तथा दूसरी तरफ माल या जहाज को निकालने का दावा नहीं कर सकता है। (२) बीमा कम्पनी को बीमा करानेवाले के दावे पर विचार करने के लिए नोटिस देना अत्यन्त जरूरी है। बिना नोटिस के कम्पनी दावे पर विचार नहीं कर सकती है और यदि विचार करे भी तो वह पूर्ण हानि को आंशिक ही मान सकती है। जब बीमाकर्ता परित्याग की नोटिस स्वीकार कर लेता है तो उसे रचनात्मक पूर्ण हानि के दावे का भुगतान करना पड़ता है। किन्तु जब बीमा कम्पनी नोटिस अस्वीकार कर देती है तो दावे का भुगतान कराने के लिए अदालत की शरण लेनी पड़ती है।

**औसत (Average)**—जब बीमा की विषय-वस्तु सामुद्रिक जोखिमों के कारण अंगतः नष्ट हो जाती है तो उसे आंशिक हानि (partial loss) कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है— (१) औसत और (२) व्यय। औसत हानि दो प्रकार की होती है—(क) विशेष औसत हानि और (ख) सामान्य औसत हानि।

**विशेष औसत हानि (Particular average loss)**—यह किमी बीमाकृत जोखिम के द्वारा बीमाकृत वस्तु की वह आंशिक हानि होती है जो साधारण आंशिक हानि नहीं होती। अतः कहा जा सकता है कि यह किसी बीमाकृत जोखिम द्वारा हुए किसी विशेष हित का आंशिक क्षय है। उदाहरणार्थ, यदि माल की, जहाज आदि के किसी भाग का बीमा किये हुए, जोखिम (चट्टान से टकराने, अग्नि इत्यादि) से समुद्र में क्षति हो जाय तो उसे विशेष आंशिक हानि कहेंगे।

**जहाज की विशेष आंशिक हानि (Particular average on ship)**—जहाज पर विशेष औसत हानि का आगणन (calculation) मरम्मत की लागत के अनुसार किया जाता है। धारा ६९ के अनुसार बीमाकर्ता को यह अधिकार है कि वह क्षतिपूर्ति करते समय प्रथानुसार कुछ रकम इसलिए काट ले कि मरम्मत में पुरानी चीजों के स्थान पर नयी चीजें लगायी गयी हैं। किन्तु अब प्रायः बीमापत्रों के पदों में यह वर्णन कर दिया जाता है कि बीमाकर्ता क्षतिपूर्ति के लिए एक समुचित रकम देने को बाध्य रहेगा तथा पुरानी चीजों के बदले नयी चीजें लगाने के लिए कोई रकम नहीं काटी जायगी। किन्तु मरम्मत करने में जो खर्च किया जाता है वह रकम पूर्णतः देने के लिए प्रत्येक दशा में बीमाकर्ता तैयार नहीं रहता है। इसी तरह, साधारण घिसाव (wear and tear) के लिए की गयी मरम्मत की लागत के प्रति बीमाकर्ता का कोई दायित्व नहीं रहता है। फिर भी,

बीमाकर्ता केवल मरम्मत के खर्च के लिए ही नहीं, बल्कि मरम्मत के सिलसिले में किये गये सभी खर्चों के लिए दायी समझा जाता है। अतः इस सम्बन्ध में समस्त समुचित खर्चों को ध्यान में रखकर मरम्मत की उचित लागत का निर्धारण किया जाता है। किन्तु इसमें बीमा-मूल्य (insured value), तथा जहाज के वास्तविक मूल्य के अन्तर पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

**किराये की विशेष आंशिक हानि (Particular Average on Freight)**—भाड़ा-बीमा से विशेष औसत हानि से सम्बद्ध दावा तब होता है जब बीमा कराया हुई किमी जोखिम द्वारा ऐसा माल, जिसका भाड़ा निश्चित स्थान तक ठीक से पहुँचने पर प्राप्त होता, अंशतः नष्ट हो जाता है और फलस्वरूप भाड़े पर आंशिक हानि पहुँचती है। ऐसी हालत में यदि उसके लिए भाड़ा-बीमा कराया गया हो तो बीमा करानेवाले के ऊपर विशेष औसत हानि के लिए दावा किया जा सकता है। किन्तु, आजकल प्रायः भाड़ा पेशगी ही दे दिया जाता है, अतः ऐसी दशा में भाड़ा पानेवाले को बीमा की आवश्यकता नहीं होती है।

**माल पर विशेष आंशिक हानि (Particular average on cargo)**—जब कुछ माल बीमा की हुई जोखिम से बरबाद होकर बन्दरगाह पर पहुँचता है तब उसका मूल्य-निर्धारण होता है। मूल्य-निर्धारण के लिए दलाल होते हैं। वे बरबादी के बारे में सर्टिफिकेट देते हैं और बताते हैं कि जब माल बन्दरगाह पर सुरक्षित पहुँच जाता तो उसका अमुक मूल्य होता और बरबादी की अवस्था में उसका अमुक मूल्य होता। बरबादी के कारण जो घाटा (depreciation) है वह प्रतिशत के रूप में निकाला जा सकता है तथा पूर्ण सुरक्षित माल की कीमत और पूर्ण विक्री माल की कीमत में जो अन्तर होता है, वही घाटे की रकम कहलाता है और वह घाटा वचें हुए माल के प्रतिशत रूप में जाहिर किया जाता है। जहाज के बरबाद होने पर जहाज की रकम का कोई महत्त्व नहीं रहता, किन्तु माल के बरबाद होने पर बीमे की रकम ही घाटा का हिसाब निकालने का आधार बनती है।

दोनों हालतों में जबकि निश्चित बन्दरगाह पर माल की कीमत (१) घट रही हो तथा माल की कीमत (२) बढ़ रही हो तो दावे का हिसाब निम्नांकित प्रकार होगा—

मान लिया जाय कि १०,००० रु० की पॉलिसी किसी माल पर ली गयी। अगर वह माल घटती बाजार (losing market) में सुरक्षित, निश्चित बन्दरगाह पर पहुँचता तो उसका मूल्य ७,००० रु० लगता और तेज बाजार (gaining market) में पहुँचता तो उसी माल का मूल्य १७,००० रु० लगता। यह मान लिया जाय कि मूल्य-ह्रास (depreciation) दोनों हालतों में ५० प्रतिशत का है, जो पहली अवस्था में ३,५०० रुपये की क्षति और ३,५०० रुपये की वसूली (realization) और दूसरी अवस्था में ८,५०० रुपये की क्षति और ८,५०० रुपये की वसूली हुई। चूँकि उपर्युक्त दोनों हालतों में सुरक्षित मूल्य का (sound value) ह्रास है, इसलिए बीमा कम्पनी को बीमे की रकम का आधा यानी ५,००० रुपये देना पड़ेगा।

उपर्युक्त माल की तुलना असल सुरक्षित मूल्य (net sound value) से की जा सकती है।

**घटती बाजार में (In Losing Market)—**

कुल सुरक्षित मूल्य (gross sound value)

घटाव—फ्रेट और अन्य खर्च

असल सुरक्षित मूल्य (net sound value)

७,००० रु०

२,००० रु०

५,००० रु०

बरबाद माल का कुल मूल्य (gross proceeds of damaged goods)	३,५०० रु०
घटाव—फ्रेट और अन्य खर्च	२,००० रु०
असल बरबाद माल से वसूली	१,५०० रु०
मूल्य-ह्रास (depreciation)	३,५०० रु०

अर्थात्, असल सुरक्षित मूल्य का ७० प्रतिशत क्षति है।

तेज बाजार में (In Gaining Market)—

कुल सुरक्षित मूल्य (gross sound value)	१७,००० रु०
घटाव—फ्रेट और अन्य खर्च	२,००० रु०
असल सुरक्षित मूल्य	१५,००० रु०
बरबाद माल का कुल खर्च	५,५०० रु०
घटाव—फ्रेट और अन्य खर्च	२,००० रु०
असल बरबाद माल का मूल्य	६,५०० रु०
मूल्य-ह्रास (depreciation)	५,५०० रु०

अथवा असल सुरक्षित मूल्य का ५६ $\frac{१}{३}$  प्रतिशत हुआ।

माल पर १०,००० रु० की पॉलिसी ली गयी है, इस कारण बीमा कम्पनी घटती बाजार की हालत में उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार ७० प्रतिशत यानी ७,००० रु० और तेज बाजार की हालत में ५६ $\frac{१}{३}$  प्रतिशत यानी ५,६६६ रु० ६७ पैसे का दावा बीमा करानेवाले का स्वीकार करेगी। इस प्रकार, हम देखते हैं कि मूल्य-ह्रास पहली अवस्था में जबकि कम्पनी को ५,००० रु० का दावा स्वीकार करना पड़ता है और इन उपर्युक्त दोनों हालतों में घाटा दिये जाते हैं। अतएव भिन्न-भिन्न परिणाम निकलते हैं।

माल पर विशेष आंशिक क्षति के सम्बन्ध में कुछ और उदाहरण आवश्यक हैं। जब कुल मूल्य बीमे के मूल्य के बराबर या ज्यादा होगा तो बीमा कराने वाला उसी के अनुपात में जिम्मेदार होगा। अगर कोई माल, जिसका ठिकाने पर पहुँच जाने पर मूल्य १०,००० रुपये है, ५,००० रुपये तक बरबाद हो जाता है तो घाटा ५०% हुआ और बीमा कम्पनी ५,००० रुपये के लिए जिम्मेदार होगी बशर्त कि माल पर १०,००० रुपये की या ज्यादा की पॉलिसी ली गयी हो। लेकिन अगर ५,००० रुपये के माल पर बीमा करवाया गया था तो बीमा करने वाला ४,००० रुपये तक का ही जिम्मेदार होगा यद्यपि वास्तविक बरबादी ५,००० रुपये तक हुई है। यहाँ ५० प्रतिशत का घाटा कुल मूल्य जो १०,००० रुपये का है, उससे सम्बद्ध है। कुल मूल्य के अन्दर असल कीमत तथा सर्वे (survey), गाड़ी-भाड़ा (cartage), कमीशन आदि खर्च सम्मिलित है।

सामान्य औसत हानि (General Average Loss)—कानून द्वारा जहाज के कप्तान को यह अधिकार होता है कि यात्रा में किसी भयानक जोखिम के उदय होने पर सार्वजनिक हितों (common interest) तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए उचित कार्य करे और इसके लिए विचारपूर्वक व्यय तथा त्याग करने में भी पीछे न हटे। इस प्रकार, स्वेच्छापूर्वक जो असाधारण व्यय अथवा हानि उठायी जाती है, उसे ही साधारण या सामान्य औसत हानि कहते हैं। जेटीसन द्वारा हानि इसका पुराना और सर्वविदित उदाहरण है।



*Justice Lawrence* ने एक मुकदमे में\* इस प्रकार वर्णन किया है— “All loss which arises in consequence of extraordinary sacrifice made or expenses incurred for the preservation of the ship and cargo comes within general average, and must be borne proportionately by all who are interested.”

### साधारण आंशिक हानि की व्यवस्था (Adjustment of General Average)

साधारण आंशिक हानि होने पर ‘सार्वजनिक सहायकों’ को कितनी मात्रा में सहायता देनी चाहिए, इसका हिसाब लगाना तनिक जटिल कार्य होता है, क्योंकि उसमें कानून तथा प्रथाओं से सम्बद्ध कतिपय उलझनें आती हैं। अतः यह कार्य ‘हानि-व्यवस्थापकों’ (average adjustors) के द्वारा कराया जाता है जो इसके विशेषज्ञ होते हैं। हानि-व्यवस्थापक के द्वारा ‘साधारण-आंशिक हानि का व्यवस्था-पत्र’ तैयार कराने का उत्तरदायित्व जहाज के स्वामी पर होता है। यह आवश्यक नहीं होता कि हानि-व्यवस्थापक उसी बन्दरगाह का व्यक्ति हो जहाँ यात्रा समाप्त होती है।

उदाहरण— मान लीजिए, किसी जहाज का मूल्य २५,०००) रुपये है। वह १६,०००) रुपये का माल लाद कर किसी निश्चित बन्दरगाह की ओर प्रस्थान करता है जहाँ निरापद पहुँचने पर उसके स्वामी को ३,०००) रुपये किराये में मिलेंगे। किन्तु मार्ग में किसी कारणवश छिद्र हो जाने के फलस्वरूप उसमें जल भर जाता है। इसपर सार्वजनिक रक्षा के उद्देश्य से उसका कप्तान माल का चतुर्थांश समुद्र में फेंकवा देता है और कुछ भाग एक अन्य जहाज में स्थानान्तरित करा देता है जिसमें ४०० रुपये व्यय होते हैं। इस विषय में यदि हम सहायता के मूल्य अथवा आधार उपर्युक्त अकों को ही मानकर साधारण आंशिक हानि का व्यवस्था-पत्र बनायें तो वह निम्नलिखित प्रकार होगा—

#### साधारण आंशिक हानि का व्यवस्था-पत्र

सार्वजनिक सहायता (Contributing Interest)	सहायता का मूल्य या आधार (Contributing Values)	सहायता का अनुपात (Proportion of Contribution)	सहायता (Contri- bution)
	रु०	रु०	रु०
जहाज	२५,०००	२५,०००	२,५००
		४४,०००	
माल	१६,०००	१६,०००	१,६००
		४४,०००	
किराया	३,०००	३,०००	३००
		४४,०००	
कुल	४४,०००	.....	४,४००

\* Birkley vs. Presgrave (1801)

दी गयी तालिका से यह स्पष्ट है कि ४,४०० रु० (फेंके गये माल का मूल्य ४,००० रु० + व्यय ४०० रु०) उक्त हानि को सार्वजनिक सहायता के मध्य उनके हितों के अनुपात में विभक्त कर दिया गया है।

**यार्क-एण्टवर्प के नियम (York-Antwerp Rules)**

साधारण आंगिक हानि-सम्बन्धी वे नियम हैं जो संसार के सभी देशों में प्रचलित तथा मान्य हैं। इन्हीं के आधार पर साधारण आंशिक हानि का विवरण बनाया जाता है। इसके निर्माण के पूर्व विदेशों को जानेवाले जहाजों को किसी प्रकार की साधारण आंशिक हानि होने पर बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था, क्योंकि नियमानुसार जहाँ पर यह घटित होती थी, वहाँ के नियमानुसार उसका विवरण प्रस्तुत करना पड़ता था। कारण यह था कि यही कानून था और है भी। फिर, चूँकि साधारण आंशिक हानि की पूर्ति का सिद्धान्त स्वाभाविक न्याय पर आधारित है, अतः इससे सम्बद्ध नियमों का प्रत्येक देश में पाया जाता स्वयंसिद्ध था। साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि वे एकदम सदृश नहीं हो सकते थे; उसमें वैभिन्न्य होना स्वाभाविक था। इसलिए उक्त कठिनाई से त्राण पाने के लिए सर्वप्रथम न्यूयार्क में तत्पश्चात् एण्टवर्प और लिबरपूल में विशेषज्ञों की अन्तरराष्ट्रीय समारोहों की गयीं और पारस्परिक समझौते से कुछ ऐसे नियमों का निर्माण कर लिया गया, जो सभी देशों को मान्य थे और अब इन्हीं का प्रयोग होता है। ये ही 'यार्क-एण्टवर्प नियमों' के नाम से सर्वविदित हैं।

**विशेष व्यय (Particular Charges)**—कानून के अनुसार 'विशेष व्यय' वे होते हैं जो बीमाकृत माल की रक्षा या उसे विनाश से बचाने के लिए बीमा करानेवाले अथवा उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा किये जाते हैं और जो साधारण आंशिक हानि तथा संरक्षण-पुरस्कार से भिन्न होते हैं। इस परिभाषा में यह स्पष्ट होता है कि ये—

१. किसी बीमाकृत वस्तु-विशेष की रक्षा के लिए होते हैं,
२. लक्षित बन्दरगाह पर पहुँचने के पूर्व किये जाते हैं, और
३. बीमाकृत जोखिम अथवा जोखिमों से बीमाकृत वस्तु की रक्षा होती हुई हानि को रोकने अथवा उसको न्यूनतम करने के निमित्त ही किये जाते हैं।

**रक्षा-पुरस्कार (Salvage Charges)**—यह पुरस्कार उस व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जो समुद्र में जहाज, माल आदि की रक्षा करता है या उसमें सहयोग करता है। इसे प्राप्त करने के लिए वह रक्षणीय वस्तु को अधिकृत कर सकता है। यदि वह उसके हाथ से किसी प्रकार निकल जाती है तो वह समुद्री न्यायालय में मुकदमा चला सकता है। किन्तु इस विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि रक्षक पुरस्कार तभी प्राप्त कर सकता है जब वह अपने उद्योग में कृतकार्य हो जाता है। साथ ही, रक्षकार्य किसी अन्य पक्ष (third party) के द्वारा होना चाहिए। इस पुरस्कार का भार उन व्यक्तियों पर पड़ता है, जिनकी सम्पत्ति की रक्षा की गयी है अथवा जिनकी वजह से संकट उत्पन्न हुआ था। यदि इनकी जोखिम के विरुद्ध बीमा है अथवा साधारण आंशिक हानि में इसे सम्मिलित कर लिया जाता है तो बीमा कम्पनी से इसे वसूल किया जा सकता है।

**बॉटमरी तथा रेस्पॉन्डेन्सिया बाण्ड (Bottomry and Respondentia Bond)**

इसका उल्लेख मालवाहक सन्निधिम (Carriage of Goods Act) के अन्दर ही

क्रिया जायगा ।

### स्थानापन्न व्यय (Substituted Expenses)

यदि कोई जहाज किसी प्रकार के खतरे से क्षतिग्रस्त होने के कारण खराब हो जाय तो उसे मरम्मत के लिए किसी नजदीकी बन्दरगाह पर ले जाना पड़ता है और उसपर लदे हुए माल को बन्दरगाह के निकट किसी गोदाम में रखना पड़ता है । ऐसे कार्य में कभी-कभी बहुत खर्च होता है, अतः इस खर्च को कम करने के विचार से ऐसे जहाज की मरम्मत कराने के बदले मालमहित किसी दूसरे जहाज से बाँधकर गंतव्य बन्दरगाह तक खींचकर ले जाया जाता है । इस क्रिया को *towing* कहते हैं । ऐसी क्रिया में पहले की अपेक्षा कम खर्च पड़ता है, अतः यही क्रिया लोग अपनाते हैं । इस तरह के कम व्यय वाले उपाय को अपनाने में जो खर्च करने पड़ते हैं उन्हें 'स्थापन्न व्यय' (*substituted expenses*) कहते हैं ।

### जीवन-बीमा (Life Insurance)

**जीवन-बीमा के भेद**—लाभ-वितरण के आधार पर जीवन-बीमा के निम्नांकित भेद किये गये हैं —

- (i) लाभ-राश्रित बीमापत्र (*With profit policy*) और
- (ii) लाभ-रहित बीमापत्र (*Without profit policy*) ।

सलाभ बीमापत्र वे हैं जिन्हें कम्पनी के लाभ में हिस्सा लेने का अधिकार प्राप्त होता है । लाभ-रहित बीमापत्र में यह योजना नहीं होती । आजकल कम्पनियाँ अपने सलाभ का लगभग ९० प्रतिशत बीमा करानेवाले में बाँट देती हैं, अतः सलाभ बीमापत्र की लोकप्रियता दिन-दिन बढ़ती जा रही है ।

बीमापत्र को निम्नलिखित तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है —

१. आजीवन बीमापत्र (*Whole Life Policy*)
२. स्वयंप्राप्ति या मियादी बीमापत्र (*Endowment Policy*) और
३. अवधि बीमापत्र (*Term Policy*) ।

**१. आजीवन बीमापत्र (Whole Life Policy)**— इस प्रकार के बीमापत्र में बीमा करानेवाले को जीवनपर्यन्त प्रीमियम अदा करना पड़ता है । बीमाकृत रकम (*insured amount*) बीमा करानेवाले के जीवनकाल में नहीं प्राप्त हो सकती । यह रकम उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को मिल जाती है । इस प्रकार के बीमा का सबसे बड़ा अवगुण यह है कि बीमा करानेवाले को जीवनभर प्रीमियम देना पड़ता है । परन्तु इस तरह के बीमा में प्रीमियम की दर अन्य प्रकार के बीमों से कम होती है । चूँकि बीमापत्र को अवकाश ग्रहण (*retirement*) करने के बाद भी, जबकि उसकी रुपया कमाने की सामर्थ्य नष्ट हो जाती है, वही प्रीमियम अदा करना पड़ता है तो पॉलिसी के भ्रंश (*lapse*) होने की अधिक सम्भावना रहती है । अतएव यह बीमापत्र बहुत लोकप्रिय नहीं हो सका है ।

**२. स्वयंप्राप्ति या मियादी बीमापत्र (Endowment Policy)**— इस तरह की पॉलिसी में बीमा करानेवाले को एक निश्चित काल तक ही प्रीमियम देना पड़ता है । बीमा की रकम पॉलिसी की अवधि पूरी होने पर अथवा बीमा करानेवाले की मृत्यु पर, जो दोनों में पहले हो, देव होती है । इस प्रकार, इस बीमापत्र में बीमाकृत व्यक्ति अपने जीवनकाल में भी बीमा की रकम पाने का अधिकारी हो सकता है । इसमें प्रीमियम की

दर आजीवन-बीमा की प्रीमियम-दर से अधिक होती है।

३. अवधि बीमापत्र (Term Policy)— इस तरह के बीमापत्र का प्रचार एक निश्चित काल के बीमा करने में होता है। विदेशों में इसकी अवधि १ से ३ वर्षों तक तथा भारतवर्ष में १० वर्षों तक है। इस बीमापत्र की शर्तों के अनुसार यदि बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु बीमापत्र की निश्चित अवधि में हो जाती है तभी बीमा कम्पनी पर बीमाकृत रकम देने का उत्तरदायित्व आता है। यदि बीमा करानेवाला उक्त काल तक जीवित रहा तो उसे कुछ नहीं मिलता। स्पष्ट है कि बीमापत्र विशुद्ध स्वयंप्राप्ति बीमापत्र (pure endowment policy) का ठीक उलटा है। इस बीमा के प्रीमियम की दर कम होती है। यद्यपि यह बीमापत्र वृद्धावस्था तथा परिवार-आयोजन के लिए उत्तम नहीं है, तथापि इसकी उपयोगिता निम्नलिखित कामों के लिए है—

१. ऋण-जमानत,
२. सामुद्रिक यात्रा के समय सुरक्षा, और
३. उत्तराधिकारी की संरक्षा।

एक-जीवन (Single Life) तथा संयुक्त जीवन (Joint Life) बीमापत्र

जब कोई व्यक्ति केवल अपने ही जीवन पर बीमापत्र लेता है तो उसे 'एक-जीवन बीमापत्र' कहते हैं। जब दो या दो से अधिक जीवनों पर एक ही बीमापत्र निर्गमित किया जाता है तो उसे 'संयुक्त जीवन बीमापत्र' कहते हैं। 'संयुक्त जीवन बीमापत्र' में उल्लिखित बीमा करानेवाला में से किसी एक की भी मृत्यु होने पर बीमाकृत रकम जीवित बीमाकृत व्यक्ति को चुका दी जाती है। इस प्रकार का बीमापत्र पति-पत्नी के तथा किसी फर्म के साझेदारों के जीवनों पर लेना प्रचलित है।

बीमा-पॉलिसियों का 'प्रदान' तथा 'नाम-लेखन' (Assignments and Nomination of Policy)

बीमाकृत व्यक्ति को अपनी बीमा-पॉलिसी अपने परिवार के सदस्य, किसी सम्बन्धी आदि के नाम में वात्सल्य इत्यादि के आधार पर प्रदान करने अथवा लिख देने का अधिकार होता है। इसी प्रकार, किसी लाभ के बदले अन्य किसी व्यक्ति के नाम कर देने का भी उसे अधिकार होता है। प्रदान अथवा लेखन की कार्यवाही बीमा-पॉलिसी की पीठ अथवा एक पृथक् कागज पर टिकट लगाकर की जा सकती है। इस कार्यवाही को कानूनी रूप देने के लिए बीमाकृत तथा एक साक्षी के हस्ताक्षर भी आवश्यक होते हैं। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक होता है कि प्रदान अथवा नाम-लेखन की सूचना बीमा कम्पनी के पास रजिस्ट्री कराने के लिए भेजनी चाहिए। जब तक कम्पनी को उक्त सूचना प्राप्त नहीं हो जाती, वह प्रदान अथवा नाम-लेखन को क्रियात्मक रूप देने के लिए बाध्य नहीं होती। ऐसा करना बीमा-अधिकारों का क्रम निश्चित करने के लिए आवश्यक होता है।

यदि पॉलिसी में ही नाम-लेखन सम्मिलित नहीं है तो उसकी पीठ पर लिखने (endorsement) में भी हो सकता है। इसको वैधानिक रूप देने के लिए भी कम्पनी को सूचना भेजकर उसकी रजिस्ट्री करा लेना आवश्यक होता है। बीमाकृत धन प्राप्त करने के पूर्व किसी नाम-लेखन को नवीन नाम-लेखन अथवा वसीयतनामे (will) के द्वारा परिवर्तित अथवा रद्द किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के परिवर्तन

अथवा रद्द करने की सूचना भी कम्पनी को देनी होती है, क्योंकि ऐसा न करने पर यदि वह सीमित धन का भुगतान उस व्यक्ति को दे देती है जिसका नाम उसके रजिस्टर में चढ़ा हुआ है अथवा जिसका नाम-लेखन पहले हुआ है, तो इस कार्य के लिए उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इसके लिए बीमाकृत व्यक्ति स्वयं ही उत्तरदायी समझा जायगा। यदि किसी के नाम में पहले बीमाकृत व्यक्ति पॉलिसी लिख दे और इसके कुछ समय के बाद किसी अन्य व्यक्ति के नाम में उसे प्रदान (assign) कर दे तो इसका परिणाम होगा कि पूर्व नाम-लेखन (nomination) समाप्त हो जायगा। इस प्रकार, नाम-लेखन की अपेक्षा प्रदान अधिक स्थायी और सुरक्षापूर्ण होता है तथा महाजनों के विरुद्ध बीमाकृत धन की रक्षा भी अधिक कर सकता है। तात्पर्य यह है कि प्रदान की हुई बीमा-पॉलिसी पर महाजनों को कोई अधिकार नहीं होता। प्रथम नाम-लेखन के बाद प्रत्येक नाम लेखन की रजिस्ट्री के लिए बीमा कम्पनी एक रुपया शुल्क वसूल करती है।

### प्रदान तथा नाम-लेखन में अन्तर (Difference between Assignment and Nomination)

१. प्रदान पॉलिसी की पीठ पर लिखकर अथवा अलग कागज पर लिखकर (document or deed) किया जाता है, पर नाम-लेखन बीमा कराते समय प्रस्ताव-पत्र में ही किसी व्यक्ति को नियोजित (nomination) करके किया जा सकता है और ऐसी दशा में नियोजित (nominee) व्यक्ति के नाम का वर्णन पॉलिसी के मूल लेख में ही रहता है। इसके अलावा, पॉलिसी की पीठ पर लिखकर भी नाम-लेखन हो सकता है।

२. प्रदान में बीमाकृत का अथवा उसके अधिकृत एजेंट का दस्तखत तथा एक साथी का दस्तखत आवश्यक होता है। नाम-लेखन में केवल बीमाकृत ही दस्तखत करता है, कोई अन्य व्यक्ति नहीं।

३. जिसके नाम पॉलिसी प्रदान की जाती है उसका पॉलिसी पर पूर्ण अधिकार रहता है, अतः यदि वह चाहे तो बीमाकृत व्यक्ति के जीवन-काल में ही बिना उसकी अनुमति प्राप्त किये पॉलिसी को समर्पित करके उसका तात्कालिक मूल्य (surrender value) प्राप्त कर सकता है, अथवा उसपर कर्ज ले सकता है। किन्तु, जिसके नाम पॉलिसी प्रदान हो चुकी है, उसकी अनुमति के बिना बीमाकृत व्यक्ति यह सब नहीं कर सकता। नियोजित व्यक्ति (nominee) का बीमाकृत व्यक्ति के जीवन-काल में पॉलिसी पर कोई अधिकार नहीं रहता।

४. पॉलिसी प्रदान करने के बाद बीमाकृत व्यक्ति का पॉलिसी पर कोई अधिकार नहीं रहता। जिसके नाम पॉलिसी प्रदान हो चुकी, उसकी अनुमति के बिना बीमाकृत व्यक्ति उस पॉलिसी को किसी अन्य व्यक्ति के नाम उस समय तक प्रदान नहीं कर सकता जब तक कि प्रदान की शर्तों के अनुसार पहले assignee का पॉलिसी में स्वार्थ रहे।

नामलेखन में बीमाकृत व्यक्ति को किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए पूर्ण अधिकार रहता है और वह स्वेच्छा से nominee की अनुमति के नामलेखन को रद्द कर सकता है अथवा किसी अन्य प्रकार का परिवर्तन कर सकता है।

५. पॉलिसी प्रदान करने पर भूतपूर्व समस्त नाम-लेखन स्वयं रद्द हो जाते हैं। पॉलिसी प्रदान होने के बाद उसका नाम-लेखन (nomination) किया जा सकता है।

## अनुग्रह-दिवस (Days of Grace)

बीमाकृत व्यक्ति को प्रीमियम या प्रीमियम की किस्त के भुगतान के लिए यह सुविधा प्राप्त होती है कि भुगतान की तिथि के बाद या कुछ समय के अन्दर प्रीमियम या प्रीमियम की किस्त भुगतान कर दे। इसी को 'अनुग्रह-दिवस' कहते हैं। वार्षिक, अर्द्ध-वार्षिक या त्रैमासिक प्रीमियम की किस्त के भुगतान के लिए ३० दिन या एक महीने में जो अधिक हो, वही अनुग्रह-दिवस होता है। मासिक किस्तों के लिए अनुग्रह-दिवस सिर्फ १५ दिनों के होते हैं।

## बीमापत्र का भ्रंश होना (Lapse of Policy)

प्रायः बीमा कम्पनी समय-समय पर बीमाकृत व्यक्ति के पास प्रीमियम के भुगतान की नोटिस भेजती है। किन्तु बीमा कम्पनी नोटिस भेजने के लिए बाध्य नहीं है। जब बीमाकृत व्यक्ति अपनी निश्चित तारीख तथा अनुग्रह-दिवस दोनों समाप्त हो जाने तक भी प्रीमियम नहीं जमा करता तो बीमा-प्रसविदा का अन्त हो जाता है तथा बीमा कम्पनी अपने दायित्व से मुक्त हो जाती है। किन्तु अनुग्रह-दिवस की समाप्ति पर भी बीमापत्र के कुछ समय तक भ्रंश (lapse) न होने देने के ख्याल से बहुत-सी कम्पनियों के बीमापत्र की शर्तों में 'स्वतः अहरण पद' (automatic non-forfeiture clause) लगा रहता है। इस पद के अनुसार कम्पनी बीमापत्र पर इकट्ठा हुए समर्पण-मूल्य (surrender value) में से बीमाकृत व्यक्ति द्वारा लिये हुए कर्ज तथा व्याज की रकम काटने के बाद जो रकम बच जाती है उसमें से प्रीमियम ले लेती है। इस प्रकार बीमापत्र समाप्त नहीं होने पाता है। स्वतः अहरण पद दो प्रकार का होता है—(१) सीमित तथा (२) असीमित। जब बीमापत्र को चालू रखने के लिए एक सीमित अवधि तक ही समर्पण-मूल्य का प्रयोग किया जाता है तो इसे सीमित पद कहते हैं। किन्तु जब बीमापत्र में किसी ऐसी सीमा का वर्णन नहीं होता है और समर्पण-मूल्य का प्रयोग हमेशा किया जा सके तो इसे असीमित पद कहते हैं।

इसके अलावा, बीमापत्र के समाप्त (lapse) हो जाने के बाद बीमा कम्पनी निम्नलिखित सुविधाएँ बीमाकृत व्यक्ति को देती है—

**१. समाप्त बीमों का पुनर्जीवन (Revival of lapsed policies)**—यदि रियायत की अवधि के अन्त तक भी बीमाकृत व्यक्ति प्रीमियम की किस्त अदा नहीं करता तो उसका बीमा समाप्त (lapse) हो जाता है किन्तु उसे पुनर्जीवित (revive) कराया जा सकता है। साधारणतः एक निश्चित समय के अन्दर अपने स्वस्थ होने का प्रमाण तथा व्याज अथवा जुर्माना (जैसा भी कम्पनी का नियम हो) सहित अवशेष किस्तों को देने से बीमा पुनः चालू हो जाता है। पिछली अवशेष किस्त के भुगतान की आखिरी तारीख से ६ माह के अन्दर बिना डाक्टर की परीक्षा कराये भी समाप्त बीमे का पुनर्जीवन हो सकता है। इससे विपरीत दशा में, अर्थात् ६ माह से अधिक समय व्यतीत हो जाने पर बीमाकृत व्यक्ति को स्वयं अपने ही व्यय से कम्पनी द्वारा नियुक्त किसी डाक्टर से अपनी स्वास्थ्य परीक्षा करानी पड़ती है। इस बात का भी उसे सन्तोषप्रद प्रमाण देना होता है कि उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक अथवा व्यावसायिक सम्बन्ध में कोई भयोत्पादक परिवर्तन नहीं हुआ है। कम्पनी यदि किसी बीमाकृत व्यक्ति की समाप्त पॉलिसी को पुनर्जीवित न करना चाहे, तो उसे ऐसा करने से कोई रोक नहीं सकता।

२. **बीमापत्र पर संचित समर्पण-मूल्य (Surrender Value) की प्राप्ति**—यदि बीमाकृत व्यक्ति की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह भविष्य में प्रीमियम दे सके या अन्य किसी वजह से पॉलिसी चालू रखना नहीं चाहता है तो वह पॉलिसी को समर्पण करके अध्यर्पण मूल्य (surrender value) के लिए आवेदन कर सकता है। चुकाये गये प्रीमियम के विनिमय में जो भी धन कम्पनी लौटाती है वही अध्यर्पण या संचित समर्पण-मूल्य (surrender value) कहा जाता है। यह मूल्य प्राप्त करने पर प्रसविदा रद्द हो जाती है और बीमाकृत व्यक्ति को आगे प्रीमियम नहीं चुकाना पड़ता। संचित समर्पण का मूल्य निर्धारित करने का अधिकार कम्पनी को ही होता है।

**चुक्ता-बीमापत्र (Paid-up Policy)**—समर्पण-मूल्य लेने में बीमाकृत व्यक्ति को निस्संदेह घाटा रहता है क्योंकि प्रीमियम का अधिकांश तो कम्पनी काट ही लेती है। अतः इसकी दूसरी विधि यह है कि बीमाकृत व्यक्ति उस बीमापत्र को चुक्ता-बीमापत्र में परिवर्तित करा ले। यदि बीमाकृत व्यक्ति दो वर्षों से अधिक समय तक बीमापत्र को चालू रख सकता है और कुछ काल पश्चात् वह प्रीमियम अदा करने में अपने को अशक्त पाता है तो कम्पनी के पास इस आशय का आवेदनपत्र भेज सकता है कि उसका बीमापत्र चुक्ता बीमापत्र कर दिया जाय। इससे यह होता है कि भविष्य में बीमाकृत व्यक्ति प्रीमियम अदा करने के दायित्व से मुक्त हो जाता है और जितने समय तक वह प्रीमियम दे सका है उसके आधार पर बीमा की रकम घटा दी जाती है।

**उदाहरण**—मान लिया कि कोई बीमाकृत व्यक्ति अपने जीवन पर बीस वर्षों के लिए २,००० रुपये का बीमा करा चुका है और उसने पाँच वर्षों तक प्रीमियम जमा किया है, किन्तु अब असमर्थतावश इसे चुक्ता बीमापत्र में परिवर्तित कराना चाहता है। ऐसी दशा में कम्पनी बीमापत्र की रकम अदा किये हुए प्रीमियमों के अनुपात में घटा देगी, अर्थात् चुक्ता-बीमापत्र की रकम  $\frac{5}{20}$  अर्थात् ५००) रुपये (२,०००  $\times \frac{5}{20}$ ) हो जायगी। यदि बीमापत्र लाभसहित हो तो इस रकम में इन पाँच वर्षों का बोनस भी जोड़ दिया जायगा। बीमापत्र के परिपक्व (mature) होने पर अर्थात् २० वर्षों की अवधि पूर्ण होने पर अथवा इसके पूर्व बीमाकृत की मृत्यु होने पर ही इस रकम के लिए दावा किया जा सकता है। इसमें समर्पण-मूल्य की भाँति का घाटा बीमाकृत व्यक्ति को नहीं उठाना पड़ता।

## महिलाओं का बीमा

साधारणतः बीमा कम्पनियाँ एकाकी जीवन व्यतीत करनेवाली, अथवा विधवाओं का, जो स्वयं ही अपनी जीविका का उपाजन तथा कुटुम्ब का भरण-पोषण करती हैं, बीमा करना पसन्द करती हैं। अधिकतर पर्दानशीन, अशिक्षित अथवा प्रीमियम की किस्ते चुका सकने में असमर्थ स्त्रियों का बीमा स्वीकार नहीं किया जाता। इस प्रकार, २५ वर्ष से न्यूनावस्था की युवतियों का बीमा भी प्रायः स्वीकार नहीं होता। विवाहित स्त्रियों का बीमा यद्यपि हो सकता है, किन्तु कुछ विशेष शर्तों पर ही; जैसे, यदि उनकी मृत्यु बीमा होने के एक वर्ष के भीतर ही गर्भ के कारण हो जाय तो सम्पूर्ण बीमाकृत धन प्राप्त नहीं हो सकता, बल्कि केवल चुकायी हुई किस्ते ही वापस मिल सकती हैं। गर्भवती स्त्रियों का बीमा बीमा-कम्पनियाँ कभी नहीं करतीं।

## आत्महत्या (Suicide)

भारतीय बीमा-सन्धियम के अनुसार यदि कोई बीमाकृत व्यक्ति बीमा कराने के एक वर्ष के अन्दर ही उन्मादवश अथवा उससे मुक्त होने पर आत्महत्या कर ले, अथवा कानून द्वारा उसे प्राणदण्ड दिया जाय तो कम्पनी को यह अधिकार होता है कि वह ऐसे व्यक्ति की बीमा पॉलिसी को रद्द कर दे। साथ ही, प्रीमियम के रूप में प्राप्त धन को भी वापस लौटाने की आवश्यकता कम्पनी को नहीं होती। किन्तु, यदि उक्त व्यक्ति ने पॉलिसी की जामिनी पर कर्ज लेकर उसे अपने महाजन के नाम में प्रदान कर दिया है, तो कम्पनी पॉलिसी को रद्द नहीं कर सकती। पर इसके लिए शर्त यह होती है कि आत्महत्या अथवा प्राणदण्ड की आज्ञा की तारीख से कम-से-कम एक मास पूर्व प्रदान (assignment) की रजिस्ट्री कम्पनी के कार्यालय में अवश्य हो जानी चाहिए। कम्पनी ऐसी दशा में महाजन के प्रति उतने ही धन के लिए उत्तरदायी होती है जितना वास्तव में अपराधी बीमाकृत को कर्ज के रूप में दिया था।

## खतरनाक पेशे (Hazardous Occupations)

दुनिया में कुछ ऐसे व्यवसाय या पेशे भी होते हैं जिनमें साधारण जोखिम से अधिक जोखिम रहती है। अतः जो ऐसे पेशे में रहता है उसे बीमा कराने के कुछ दिनों के बाद यदि बीमाकृत व्यक्ति आपत्तिजनक पेशा ग्रहण करे तो उसे इस बात की सूचना बीमा कम्पनी को देनी चाहिए, नहीं तो बीमा कम्पनी बीमा को रद्द कर दे सकती है।

निम्नलिखित व्यक्तियों के पेशे खतरनाक माने जाते हैं—

गोला-बारूद के कारखानों में काम करनेवाले, कोयले की खानों में सतह के नीचे काम करनेवाले, आग बुझानेवाले (fire-brigade men), बिजली-घरों में काम करनेवाले, शराब बनानेवाले, रेल के डाइवर, उड़के (aviators) इत्यादि। इस प्रकार के पेशे वालों को इस तरह के पेशे में रहने के दिन से कुछ ज्यादा प्रीमियम देना पड़ता है।

## नौसेना, वायुसेना तथा स्थलसेना (Naval, Air and Military Forces)

जो व्यक्ति सैनिक का काम करते हैं उनसे भी कम्पनी विशेष जोखिम के लिए साधारण की अपेक्षा कुछ ज्यादा प्रीमियम लेती है। यह ज्यादा प्रीमियम शान्तिकाल में युद्ध की सम्भावना न रहने पर भी उनसे तब तक लिया जाता है, जब तक कि वे इस प्रकार के पेशे में रहते हैं। कुछ कम्पनियाँ इन व्यक्तियों से शान्तिकाल में साधारण प्रीमियम और लड़ाई के समय ज्यादा प्रीमियम लेती हैं, किन्तु युद्धकार्य में जाने के बाद से एक माह के अन्दर बीमाकृत को इस बात की खबर बीमा कम्पनी के पास दे देनी पड़ती है तथा जो अतिरिक्त प्रीमियम कम्पनी तब करे उसे भी चुकाना पड़ता है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है और दुर्भाग्यवश बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो बीमा कम्पनी बीमाकृत रकम देने के लिए बाध्य नहीं होगी क्योंकि बड़ी हुई जोखिम के लिए तो बीमा-प्रसविदा नहीं हुई थी। बीमा कम्पनी ज्यादा से ज्यादा 'समर्पण-मूल्य' (surrender value) देने के लिए बाध्य हो सकती है।

## युद्ध-संलग्न देश में यात्रा

यदि कोई भी बीमाकृत व्यक्ति किसी युद्ध-संलग्न देश की यात्रा के लिए जाता है तो



उसे यात्रा शुरू करने के पहले ही इस बात की खबर बीमा कम्पनी के पास भेज देनी चाहिए और बीमा कम्पनी अगर अतिरिक्त प्रीमियम माँगे तो बीमाकृत व्यक्ति को उसे चुकाना पड़ेगा। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो बीमा कम्पनी का दायित्व समाप्त हो जाता है और उसके मरने पर सिर्फ समर्पण-मूल्य (surrender value) ही प्राप्त किया जा सकता है।

### वायुयान से यात्रा (Aviation)

अगर बीमाकृत व्यक्ति दूसरे देश में वायुयान से यात्रा करना चाहता है तो वह प्रामाणिक तथा लोकप्रिय वायुमार्ग से जानेवाले वायुयान से यात्रा कर सकता है। किन्तु उपर्युक्त यात्रा की हैसियत के अलावा और किसी देश में वायुयान के द्वारा यात्रा करने पर, जिसकी सूचना न दी गयी हो, यदि बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो बीमा कम्पनी केवल समर्पण-मूल्य देने के लिए बाध्य हो सकती है।

### विदेश निवास तथा यात्रा

वर्तमान नियम के अनुसार अगर कोई व्यक्ति स्वास्थ्यप्रद स्थान में निवास करने चला जाता है तो बीमा कम्पनी प्रीमियम-दर में कुछ छूट दे देती है। यदि बीमाकृत व्यक्ति भूमध्य रेखा से ३०° उत्तरी अक्षांश की ओर यात्रा करता है या निवास करता है तो उतने समय तक उसे प्रीमियम में ५% छूट मिलती है।

### जोखिम का आरम्भ (Commencement of Risk)

प्रायः बीमा कम्पनी बीमा के लिए प्रस्ताव करनेवाले व्यक्ति की जोखिम उस दिन से अपने ऊपर लेती है जिस दिन नीचे लिखी दो शर्तें पूरी हो जाती हैं—

(i) बीमा कम्पनी को पहला प्रीमियम प्राप्त हो चुका हो, और

(ii) प्रस्ताव-पत्र को बीमा कम्पनी ने स्वीकार कर लिया हो।

यदि स्वीकृति-पत्र में कुछ शर्तें लगा दी जाती हैं तो खतरे का आरम्भ ऐसी शर्तों के पूरा हो जाने के दिन से होगा।

### बीमापत्र की प्रतिभूति पर कर्ज

अगर बीमाकृत व्यक्ति कम्पनी से अपनी पॉलिसी पर कर्ज लेना चाहे तो संचित समर्पण-मूल्य (surrender value) का ८० से ८५% तक कर्ज ले सकता है।

### वार्षिक वृत्तियाँ (Annuities)

**परिभाषा**—वार्षिक वृत्ति वह प्रसंविदा है जिसके अनुसार बीमा कम्पनी में एक साथ अथवा किस्तों द्वारा जमा की हुई रकम के बदले में जमा करनेवाले व्यक्ति को निश्चित समयान्तर पर जो छोटी-छोटी किस्तें कम्पनी से मिलती रहती हैं, उन्हें वृत्तियाँ कहते हैं।

दूसरी प्रसंविदाओं की तरह ही जीवन-वृत्ति प्रसंविदा में भी सभी गुणों का प्रस्तुत रहना आवश्यक है।

### वार्षिक वृत्ति तथा जीवन-बीमा में तुलना

वार्षिक वृत्ति तथा जीवन-बीमा में निम्नांकित अन्तर हैं—

१. प्रायः जीवन-बीमा मृत्यु के बाद परिवार की रक्षा के लिए लिया जाता है,

किन्तु वार्षिकी लेने का मतलब जीवन-काल में आर्थिक व्यवस्था करना होता है और मरने के बाद परिवार के लिए कुछ भी बचाने का विचार नहीं रहता है। अतः वार्षिकी केवल वैसे लोग लेते हैं जिन्हें पारिवारिक झंझट या मोह नहीं होता है।

२. फिर जीवन-बीमा में प्रीमियम छोटी-छोटी रकम में दिया जाता है, किन्तु वार्षिकी के लिए एक मुश्त तथा काफी बड़ी रकम की जरूरत होती है।

३. जीवन-बीमा में कम्पनी बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु के बाद अथवा निश्चित अवधि की समाप्ति पर बीमाधन का भुगतान एक मुश्त रकम से कर देती है। किन्तु वार्षिकी में कम्पनी वार्षिकी-ग्राही (annuitant) के जीवित रहने पर ही वार्षिकी खरीदने के कुछ समय के बाद या तुरत प्रत्येक साल एक निश्चित रकम उसके जीवन-खर्च के लिए देती है।

४. जीवन-बीमा में बीमा-योग्य हित का रहना आवश्यक है, पर वार्षिकी में कोई आवश्यक नहीं है।

५. वार्षिकी का अभिहस्तांकन (assignment) नहीं किया जा सकता, किन्तु जीवन-बीमापत्र का अभिहस्तांकन आसानी से किया जा सकता है।

### अग्नि-बीमा (Fire-Insurance)

अग्नि पाँच तत्त्वों में एक है। मानव-समाज के लिए अग्नि कितना आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है, यह किसी से छिपा नहीं है। इसका महत्त्व हम केवल इसी से जान सकते हैं कि इसके बिना मनुष्य अपना भोजन भी नहीं तैयार कर सकता। जब यह कल्पना करते हैं तब हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि शुरू में जब संसार की सृष्टि हुई थी और अग्नि का आविष्कार नहीं हुआ था तब मनुष्य अग्नि के बिना कितनी अनुविधाओं का सामना करता रहा होगा। किसी विद्वान ने सत्य ही कहा है कि “अग्नि एक सुन्दर सेवक है, किन्तु साथ ही एक बुरा स्वामी भी है।” एक ओर देखते हैं कि अग्नि हमारे लिए कितना महत्त्वपूर्ण है तो दूसरी ओर यह भी देखते हैं कि इसका कितना कठोर तथा विकराल रूप है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया, मानव-समाज ने उससे बचने के लिए अनेक नवीन यन्त्रों का आविष्कार किया और इस पर नियन्त्रण प्राप्त करने का प्रयत्न किया और इतना सावधान होते हुए भी प्रतिवर्ष अरबों रुपयों की हानि अग्नि द्वारा होती है। कभी-कभी अग्नि इतना विकराल तथा भयंकर रूप धारण कर लेती है कि उसे नियन्त्रित करना असम्भव हो जाता है। सारा गाँव या नगर जलकर राख हो जाता है। करोड़ों मनुष्य तथा पशु जल कर राख हो जाते हैं। घरों में आग लगने पर समस्त वस्तुएँ जलकर भस्म हो जाती हैं और लाखों की क्षति होती है। उद्योग-गृह के स्वामी का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। इस तरह के नुकसान से बचने के लिए अग्नि-बीमा का आविष्कार हुआ।

“अग्नि-बीमा एक प्रसविदा है जिसमें बीमा करनेवाला बीमा के लिए कम्पनी को एक निश्चित प्रीमियम देता है और इसके बदले में कम्पनी इस बात का वचन देती है कि एक निश्चित अवधि के अन्दर आग लगने से बीमाकृत सम्पत्ति की हानि तथा क्षति होने पर एक निश्चित रकम तक वह उसकी पूर्ति करेगी।”

आग से क्षति होने पर दावा करते समय बीमा करनेवाले को इस बात का सबूत देना पड़ता है कि सचमुच आग लगी थी। लेकिन, किन-किन हालतों में हम आग लगना कहेंगे? यदि सिर्फ गर्मी पाकर कोई चीज झूलस जाय या सिर्फ धुआँ से किसी चीज की क्षति हो जाय तो हम इसे आग लगना नहीं कहेंगे और न उस क्षति को आग से हुई क्षति (loss by fire) कहेंगे। आग लगना तो तब कहेंगे जबकि दो प्रमुख

बातें उसमें मौजूद हों—(१) आग का लगना आकस्मिक (accidental or fortuitous) हो तथा, (२) जो चीजें जल रही हों उनमें लपटें (flames) साफ दिखायी दें।  
 ["Fire means the production of light and heat by combustion and unless there is actual ignition there is no fire within the meaning of the term in an ordinary policy."—Everet vs. London Gas Co. (1865) 34 L. J. C. P. 299]

अतएव आग लगने का प्रमाण देते समय दो बातों को प्रमाणित करना आवश्यक होता है। आग लगने की घटना आकस्मिक थी तथा इसके विषय में पहले से कोई जामकारी न थी और आग सचमुच लगी तथा उसमें काफी लपटें निकलीं—आग चाहे मकान में इस्तेमाल किये जानेवाले ब्वाएलर्स (boilers) जो घरेलू काम में आता है उसके फटने से हो, या चाहे ऐसी गैस के कारण हो जो घरों में प्रकाश देने या घरों को गर्म रखने के लिए हो या घर में लगी बिजली के जरिये हो या बिजली गिरने से हो। यदि इनसे आग की लपट और ज्वाला उठती है जिनके फलस्वरूप घर या सामान जल जाता है तो उसे आग लगना कहेंगे और इस तरह लगी आग के लिए बीमा करनेवाला कम्पनी से दावा कर सकता है। आग से जली चीज की क्षतिपूर्ति के लिए दावा करते समय उन क्षतियों को भी इसमें शामिल किया जाना है जिनका आसन्न कारण (proximate cause) आग ही हो। अतः दमकलों के पानी से घर में पड़े सामानों को आग से बचाने के ख्याल से घर के बाहर फेंकने से, या पड़ोसी के मकान के किसी हिस्से को उजाड़ फेंकने से जो क्षति होती है वह आग के कारण क्षति हुई मानी जाती है और इसके लिए भी कम्पनी को क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। इसी प्रकार आग लगने के कारण कई अप्रत्यक्ष हानियाँ (consequential losses) होती हैं; जैसे—

- (i) फैक्टरी का काम बन्द हो जाने के कारण नफा न मिलना,
- (ii) काम न होते हुए मकान का किराया, चुंगी या टैक्स, कर्ज का व्याज, स्थायी कर्मचारी का वेतन, तथा
- (iii) दूसरा कोई मकान लेकर कार्य-संचालन करने का व्यय इत्यादि भी आग लगने से हुई क्षति के दर्जे में आता है एवं इसके लिए भी बीमा कम्पनी को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

जोखिम जो अग्नि-बीमा नहीं ढकती (Risk usually not covered by Fire Insurance Policy)

साधारणतः किसी विशेष संविदा के अभाव में निम्नलिखित जोखिमों पर बीमा कम्पनी दायित्व ग्रहण नहीं करती—

- (i) संरक्षण (supervision) में रखने के लिए दिये गये माल पर;
- (ii) गहने, घड़ियाँ, हस्तलिपि, दस्तावेज, बॉण्ड, गणित तथा दर्शनशास्त्र के

\* "Any loss resulting from an apparently necessary and bonafide effort to put out a fire, whether it be by spoiling goods by water or by throwing articles of furniture out of the window, or even by destroying a neighbouring house by explosion for the purpose of arresting fire, in fact every loss directly or at least consequently resulting from the fire is within the policy." [Stanley vs. Western Insurance Co. (1868) 37. L. J. Ex. 73 at Page 75.]

ग्रन्थ, प्रतिभूति (securities), हुण्डी, बही-खाता, बारूद इत्यादि पर;

(iii) भूकम्प, बलवा, हलचल, दंगा, शत्रु या विस्फोट के कारण या माल के आप-से-आप जल जाने के कारण हुई क्षति पर।

परन्तु बहुत ज्यादा प्रीमियम देकर इन सभी जोखिमों के लिए दूसरे ढंग का बीमा लिया जा सकता है और ऐसी हालत में कम्पनी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगी।

### अग्नि-बीमा तथा जीवन-बीमा में अन्तर (Difference between Contracts of Life Insurance and Contracts of Fire Insurance)

१. बीमा का सम्बन्ध—अग्नि-बीमा में बीमा का सम्बन्ध सम्पत्ति को हानि से सुरक्षा प्रदान करने का होता है जबकि जीवन-बीमा का सम्बन्ध मनुष्य से होता है। जीवन-बीमा में सुरक्षा एवं विनियोग दोनों तत्त्व पाये जाते हैं।

२. क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध—अग्नि-बीमा एक क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध है, लेकिन जीवन-बीमा क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध न होकर एक सहयोगी अनुबन्ध होता है। अग्नि-बीमा में हानि का होना बिल्कुल अनिश्चित होता है। क्षतिपूर्ति का अधिकार उत्पन्न हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। लेकिन जीवन-बीमा में बीमा करायी गयी रकम का भुगतान करना निश्चित होता है। अनिश्चितता सिर्फ भुगतान के समय की ही हो सकती है। बीमाकर्ता को जीवन-बीमा पॉलिसी की रकम का बीमा कराये गये व्यक्ति की मृत्यु पर अथवा एक निश्चित अवधि की समाप्ति पर, जो भी पहले हो, अवश्य भुगतान करना पड़ेगा।

इसके अलावा, जीवन-बीमा के समझौते में भुगतान की जानेवाली रकम भी निश्चित होती है। अग्नि-बीमा में बीमा कराने वाला व्यक्ति केवल अपनी वास्तविक हानि के लिए ही बीमाकर्ता से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। बीमा करायी गयी रकम से ज्यादा क्षतिपूर्ति के लिए बीमाकर्ता का कोई भी उत्तरदायित्व नहीं होता है। बीमा कराये गये व्यक्ति को अपनी हानि से कभी किसी प्रकार का लाभ कमाने नहीं दिया जाता है। बीमा करायी गयी रकम से कम नुकसान होने पर बीमा करानेवाला व्यक्ति बीमाकर्ता से बीमा की पूरी रकम का भुगतान प्राप्त कर सकता है। हानि न होने की स्थिति में बीमा करानेवाला व्यक्ति बीमाकर्ता से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता है।

३. बीमा की अवधि—अग्नि-बीमा अधिक-से-अधिक एक साल की अवधि के लिए किया जा सकता है, लेकिन जीवन-बीमा सामान्यतः लम्बी अवधि के लिए किये जाते हैं।

४. बीमा-योग्य हित की विद्यमानता—जीवन-बीमा में बीमा कराये गये व्यक्ति का बीमाकृत जीवन में सिर्फ समझौता करने के समय ही बीमा-योग्य हित का होना आवश्यक होता है, लेकिन अग्नि-बीमा में बीमा करानेवाले व्यक्ति का बीमा का गरी विषय-वस्तु में बीमा-योग्य हित बीमा करवाने के समय तथा क्षति होने के समय, दोनों ही समय होना अनिवार्य होता है।

५. समर्पण-मूल्य (Surrender value)—जीवन-बीमा पॉलिसी की तरह अग्नि-बीमा पॉलिसी का समर्पण-मूल्य नहीं होता है। उसके परिदत्त (paid up) कराये जाने का सवाल ही नहीं उठता है।

### जोखिम का आरम्भ (Commencement of risk)

जोखिम उसी समय से शुरू हो जाती है जिस समय कम्पनी बीमा कराने के

प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है और इसकी सूचना प्रस्तावक को भेज देती है चाहे स्वीकार करने के कुछ समय बाद ही प्रीमियम क्यों न चुकाया जाय तथा उसके लिए बीमापत्र निर्गमित हो। किन्तु अगर बीमा-प्रसंविदा में यह पहले से ही तय हो कि प्रीमियम चुकाने पर ही जोखिम शुरू होगी तो प्रस्तावक की स्वीकृति हो जाने पर भी जब तक पहला प्रीमियम नहीं दिया जायगा तब तक जोखिम शुरू नहीं होगी तथा उसके पूर्व आग से क्षति होने पर बीमा कम्पनी नुकसान के लिए दायी नहीं रहेगी।

### अस्थायी पत्र (Cover Note)

प्रस्ताव-पत्र (proposal form) को स्वीकार कर लेने पर अथवा यदि बीमा कम्पनी इस शर्त पर प्रस्ताव स्वीकार करे कि बीमा कम्पनी खतरा तभी संवृत करेगी जब बीमा करानेवाला निर्धारित प्रीमियम चुका दे। ऐसा प्रीमियम चुका देने पर जब तक कि एक अग्नि-बीमापत्र बीमा कम्पनी तैयार करके भेज न दे, इस बीच की अवधि में जोखिम को संवृत रखने के लिए बीमा कम्पनी बीमा करानेवाले के पास एक लिखित पत्र भेज देती है जिसे अस्थायी पत्र (cover note) या अन्तर्कालीन सुरक्षा-पत्र (interim protection note) कहते हैं। अतः इस पत्र के द्वारा जब तक कि बीमा करानेवाले को पक्का बीमापत्र नहीं मिल जाता तब तक के लिए बीमा कम्पनी संवृत करने की स्वीकृति देती है कि यदि इस अवधि के बीच किसी प्रकार की क्षति आग के द्वारा होती है तो कम्पनी उसकी पूर्ति करेगी।

### अग्नि-बीमापत्र का नवीकरण (Renewal of Fire Insurance Policy)

साधारण अग्नि-बीमापत्र एक वर्ष के लिए जारी किया जाता है, किन्तु साल खत्म होने के कुछ दिन पूर्व ही कम्पनी बीमा करानेवाले के पास नवीकरण-सूचना (renewal notice) भेजती है जिसमें उस बीमापत्र को एक वर्ष के लिए पुनः चालू रखने की प्रार्थना रहती है। इसके लिए विधान का कोई सन्निधन नहीं है, बल्कि यह व्यवहार में अधिक प्रचलित है। चालू बीमापत्र की तिथि समाप्त होने पर पन्द्रह दिन का अनुग्रह-दिवस (days of grace) दिया जाता है जिस बीच बीमा करानेवाला नवीकरण करा ले। यदि इन पन्द्रह दिनों के अन्दर नवीकरण न किये जाने पर भी आग लगने से बीमा करायी हुई सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तब भी उसकी पूर्ति के लिए बीमाकर्ता का दायित्व रहता है। हाँ, यदि बीमाकर्ता इस सम्बन्ध में उचित एवं सन्तोषजनक प्रमाण उपस्थित कर सके कि बीमा करानेवाला नवीकरण नहीं कराना चाहता था तब उसका कोई भी दायित्व अनुग्रह-दिन में हुई क्षतियों के प्रति नहीं होगा।

### अग्नि-बीमापत्र का रद्द किया जाना (Cancellation of Fire Insurance Policy)

निम्नांकित कई कारणों से पॉलिसी रद्द हो सकती है—

(i) पॉलिसी की अवधि पूरी हो चुकी है किन्तु वह पुनः जारी नहीं करायी गयी है।

(ii) अगर कम्पनी खुद-ब-खुद पॉलिसी को पुनः जारी करने को तैयार नहीं होती। बीमा करानेवाले को पॉलिसी खत्म होने के कुछ दिन पहले कम्पनी सूचना देकर पॉलिसी रद्द कर सकती है। ऐसा न करने में बीमा करानेवाला दूसरी जगह

बीमा के लिए प्रयत्न करेगा। ऐसी अवस्था में बीमा करनेवाला अनुग्रह-दिवस प्राप्त नहीं कर सकता।

(iii) अगर बीमाकृत माल में कुछ परिवर्तन हुआ हो तो बीच में भी पॉलिसी रद्द कर दी जा सकती है।\* परन्तु अन्य हालतों में अवधि के बीच में पॉलिसी रद्द नहीं हो सकती।

(iv) कम्पनी को बिना सूचना दिये माल के मालिकत्व में परिवर्तन होने से पॉलिसी रद्द हो जाती है।

(v) जान-बूझकर माल को जलाने से पॉलिसी रद्द हो जाती है।

(vi) क्षति का पक्का प्रमाण न देने से पॉलिसी रद्द हो जाती है।

(vii) जोखिम के बारे में झूठे बयानों से भी पॉलिसी रद्द हो जाती है।

(viii) किसी जोखिम वाले माल को बीमाकृत माल में बिना कम्पनी की स्वीकृति के मिलाने से भी पॉलिसी रद्द हो जाती है।

### एक से अधिक अग्नि (More than one Fire)

कभी-कभी किसी पॉलिसी की चालू अवस्था में ही कई बार आग लगने से कई बार दावे उपस्थित होते हैं। जब पहली बार आग लगती है और उसका दावा चुका दिया जाता है तब पॉलिसी की रकम में से दावा चुकायी हुई रकम घटा दी जाती है। अगर दूसरी बार या तीसरी बार दावा उपस्थित होता है तो बची हुई रकम से ज्यादा वह नहीं पा सकता, परन्तु पहला दावा चुकाने पर बीमा करानेवाला पुनः प्रीमियम दे देता है तो वह पूरी पॉलिसी की रकम का हकदार हो जायगा। मान लीजिए, १०,०००) रुपया की पॉलिसी ली गयी है तथा प्रथम दावा में ३,०००) रु० दिया जा चुका है तो बीमाकर्ता सिर्फ ७,०००) रु० का ही दूसरे पूर्ण क्षति के दावे में हकदार होगा, ज्यादा के लिए नहीं; किन्तु, पुनः प्रीमियम दे देने पर १०,०००) रु० तक का वह अधिकार प्राप्त कर लेगा।

### अग्नि-बीमापत्र का स्वत्व-समर्पण (Assignment of Fire Policy)

अग्नि-बीमा का ठीका कम्पनी और बीमा करानेवाले के बीच की बात है। बीमा करानेवाला कम्पनी की राय लिये बिना स्वत्व-समर्पण नहीं कर सकता। बीमा करानेवाले को सिर्फ पॉलिसी लेते समय भी बीमोचित अनुराग रखना पर्याप्त नहीं, बल्कि आग लगने के समय भी बीमोचित अनुराग होना चाहिए। इसलिए अगर वह स्वत्व-समर्पण करता है तो आग लगने पर स्वत्वगृहीता को दावे के लिए कोई हक नहीं होता। कम्पनी की स्वीकृति के जरिये अथवा कानून से अगर पॉलिसी दूसरे को सुपुर्द की गयी है तो ठीक है। पॉलिसी का बदला पृष्ठांकन (endorsement) के जरिये होता है।

### औसत और सहायता (Contribution and Average)

कभी-कभी व्यापारी अपनी सम्पत्ति की अधिक सुरक्षा के विचार से 'दोहरा बीमा' करा लेते हैं। ऐसी अवस्था में उसके विनाश अथवा क्षतिग्रस्त होने पर बीमा कराने वाला अपने इच्छानुसार किसी भी बीमाकर्ता से अपनी क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। उसके बाद आपस के बीमाकर्ता उस क्षति को अपने-अपने दायित्व के अनुपात में परस्पर विभक्त कर लेते हैं; अर्थात् उसे वे 'दर-योग्य अनुपात' (rateable proportion) में वहन करते हैं, किसी एक को उसका पूरा भार नहीं उठाना पड़ता।

‘दर-योग्य अनुपात’ (rateable proportion) वह अनुपात है जो किसी सम्पत्ति पर एक व्यक्ति द्वारा ली गयी पॉलिसी के बीमाकृत धन का उसी सम्पत्ति पर उसी व्यक्ति द्वारा ली हुई सभी पॉलिसियों के बीमाकृत धनों के योग से होता है। प्रत्येक बीमाकर्ता का यथानुपात निम्नांकित प्रकार से होता है—

$$\text{यथानुपात} = \frac{\text{निर्गमित बीमाकृत रकम (Insured amount of issued Policy)}}{\text{सम्पूर्ण बीमाकृत रकम (Total Insured Amount)}} \times \text{हानि (Losses)}$$

मान लीजिए, किसी व्यक्ति ने अपने घर का अग्नि-बीमा ‘क’, ‘ख’ और ‘ग’ तीन कम्पनियों से क्रमशः २०,०००; १५,०००; १०,००० का कराया है। क्षति होने पर बीमा करानेवाले को १८,००० की हानि होती है तो क्षतिपूर्ति में क, ख और ग तीनों बीमा कम्पनियों से निम्नलिखित रकम उसे प्राप्त होगी—

$$(क) \frac{२०,०००}{४५,०००} \times १८,००० = ८,०००$$

$$(ख) \frac{१५,०००}{४५,०००} \times १८,००० = ६,०००$$

$$(ग) \frac{१०,०००}{४५,०००} \times १८,००० = ४,०००$$

$$\text{कुल क्षतिपूर्ति} = १८,०००$$

औसत में एक ही सम्पत्ति पर ली गयी दो अथवा अधिक पॉलिसियों के मध्य क्षतिपूर्ति के धन का विभाजन उनके पृथक्-पृथक् दायित्वों के अनुसार किया जाता है। इस विभाजन की आवश्यकता तभी पड़ती है जबकि उन दायित्वों के योग से हानि न्यून होती है।

### अग्नि-बीमापत्र के मुख्य भेद (Main Kinds of Fire Policies)

अग्नि-बीमापत्र के निम्नलिखित मुख्य भेद हैं—

१. मूल्यांकित बीमापत्र (Valued Policies)—इस प्रकार के बीमा में बीमाकृत विषय का मूल्य शुरु में ही, प्रस्ताव के समय, तय कर देता है और बीमापत्र में लिख दिया जाता है। घटना घटने तथा क्षति होने पर इस अंकित मूल्य के आधार पर क्षति की पूर्ति की जाती है। क्षति की पूर्ति विपणि-दर (market-rate) के अनुसार नहीं की जाती है, बल्कि घटना घटने पर कम्पनी वास्तविक क्षति, जो विपणि-दर के अनुसार निर्धारित की जाती है वह गोप लेख में अंकित धन से अधिक या कम हो सकती है।

२. औसत पॉलिसी (Average Policy)—जिस बीमापत्र में औसत पद (average clause) लगा रहता है उसे औसत पॉलिसी कहते हैं। इसके अनुसार अगर कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का उसके वास्तविक मूल्य से न्यून (under insurance) बीमा करता है तो कम्पनी सम्पूर्ण हानि की पूर्ति के लिए दायी नहीं

होगी। वे क्षति की पूर्ति यथानुपात (rateable proportion) करने के लिए ही बाध्य होती हैं। यथानुपात निम्नलिखित सूत्र (formulae) द्वारा निश्चित किया जाता है—

$$\frac{\text{दावा (Claim)}}{\text{बीमाकृत रकम (Insured amount)}} \times \text{हानि (Loss)}$$

क्षति के समय आगोपित विषय का वास्तविक मूल्य  
(Real value of the property at the time of loss)

३. विशिष्ट बीमापत्र (Specific Policy)—इसके अनुसार यदि किसी सम्पत्ति का उसके वास्तविक मूल्य से कम धन का बीमापत्र लिया जाता है तो घटना घटने तथा नुकसान होने पर बीमाकर्ता सम्पूर्ण क्षति की पूर्ति करने के लिए दायी होता है, किन्तु यह धन किसी भी हालत में बीमाकृत धन से ज्यादा नहीं हो सकता।

उदाहरण—किसी व्यापारी ने अपनी वस्तु, जिसका वास्तविक मूल्य ₹५०००) है, उसका, केवल ₹५,०००) का विशिष्ट बीमापत्र लिया है। आग लगने पर माल की ₹,०००) की क्षति होती है। यद्यपि बीमा करानेवाले ने सम्पूर्ण मूल्य का बीमा नहीं कराया है तथापि वह ₹,०००) सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति के रूप में पाने का अधिकारी है और उसे स्वयं हानि का कोई अंश सहन नहीं करना पड़ता।

४. चल बीमापत्र (Floating policy)—एक ही वस्तु कई वस्तुओं के विभिन्न स्थानों से विस्तृत रहने पर सामूहिक रूप से जो बीमापत्र लिया जाता है उसे 'चल बीमापत्र' कहते हैं। इसमें बीमा करानेवाले को एक ही बार में सभी माल पर बीमा कराने की सुविधा के अलावा बीमा का खर्च भी कम पड़ता है। प्रायः चल बीमापत्र में 'औसत-पद' लगा रहता है।

५. अतिरिक्त बीमापत्र (Excess Policy)—यह बीमापत्र विशेषकर उन व्यापारियों के लिए उपयोगी है जिनके माल की मात्रा में स्थिरता नहीं रहती। समय-समय पर वस्तु की मात्रा में कमी-बेशी होती रहती है। कभी वस्तु की मात्रा अत्यधिक हो जाती है और कभी अति न्यून हो जाती है। यदि वह अत्यधिक मात्रा के लिए बीमा कराता है तो उसे एक बड़ी राशि प्रीमियम के रूप में देनी पड़ती है और सम्भव है कि घटना के समय उनके पास वस्तु की मात्रा अति न्यून हो। इसी प्रकार, यदि वह अल्पराशि के लिए बीमापत्र लेता है, किन्तु घटना घटने के समय बड़ी मात्रा में वस्तु रहती है और वह जलकर नष्ट हो जाती है तो बीमा करानेवाले को बड़ी हानि होती है, इसलिए वह 'अतिरिक्त बीमापत्र' ले लेता है।

६. घोषित मूल्य पॉलिसी (Declaration Policy)—इसमें बीमा करानेवाले को यह घोषणा करनी पड़ती है कि उसका स्टॉक किसी भी समय अधिकाधिक कितने मूल्य का हो सकता है। उसी अधिकतम घोषित मूल्य की सीमा तक बीमा कम्पनी क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायित्व लेती है। उक्त मूल्य के ३/४ धन पर अस्थायी रूप में बीमा करानेवाले को प्रीमियम आरम्भ में चुकाना पड़ता है। वास्तविक प्रीमियम प्रतिमास स्टॉक के घोषित मूल्य के अनुसार वसूल किया जाता है, अर्थात् वह उनके औसत पर आधारित होता है। अधिकतम मूल्य का उससे कोई सम्बन्ध नहीं होता।

७. समायोजन पॉलिसी (Adjustment Policy)—जब बीमापत्र साधारण बीमापत्र की भाँति एक निश्चित रकम के लिए लिया जाता है। किन्तु, इस बीमापत्र में बीमा करानेवाले को यह सुविधा प्राप्त रहती है कि वह स्टॉक में घटती-बढ़ती



होते रहने की सूचना कम्पनी को उचित समय पर देकर बीमा की रकम में उचित परिवर्तन करा ले और इसी के अनुसार प्रीमियम का भी समायोजन (adjustment) करा ले।

**द. अपहार-सहित अधिकतम मूल्य बीमा (Maximum Value with Discount Policy)**—इस बीमा में बीमा कराने वाला प्रतिमाह या प्रत्येक बार वस्तु की मात्रा में परिवर्तन होने पर इसकी घोषणा करने तथा प्रीमियम-दर में समायोजन कराने की असुविधा से मुक्त हो जाता है। इसमें बीमा कराने वाला अधिकतम मूल्य का बीमा करा लेता है तथा सम्पूर्ण प्रीमियम भी चुका देता है। वर्ष के अन्त में बीमकर्ता चुकाये गये प्रीमियम की एक-तिहाई राशि बीमा करानेवाले को छुट के रूप में लौटा देता है। उपयुक्त बीमापत्रों की भाँति इसमें असुविधा नहीं होती। यह बीमा कुछ मुख्य प्रकार की वस्तुओं के लिए ही निर्गमित किया जाता है।

**९. व्यापक बीमा (Comprehensive Policy or All in All)**—व्यापक बीमा-पत्र के अन्तर्गत आग के अलावा दूसरी अनेक जोखिमों से होनेवाली क्षतियों की भी पूर्ति करने का दायित्व कम्पनी ग्रहण करती है। अतः इस बीमापत्र के अनुसार मकान में रखी हुई सम्पत्ति की अग्नि, विस्फोट, विद्युत्पात, भूकम्प, चोरी, डाका इत्यादि द्वारा क्षति होने पर कम्पनी क्षतिपूर्ति करती है।

**१०. पुनर्स्थापन पॉलिसी (Replacement or Re-insatement Policy)**—इसके अनुसार क्षतिपूर्ति में बीमा कम्पनी को नाश हुई सम्पत्ति के पुनर्निर्माण की लागत देनी पड़ती है, चाहे वह उसके वास्तविक मूल्य से अधिक हो अथवा कम। इस भाँति इसमें क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त लागू नहीं होता। उदाहरण के लिए, किसी सम्पत्ति के अग्नि द्वारा नष्ट हो जाने के कारण तत्कालीन बाजारी मूल्य के अनुसार तीन हजार रुपये की हानि होती है और उसके पुनर्निर्माण की लागत ६ हजार रुपये है, तो बीमा कम्पनी को ६ हजार रुपये देने होंगे।

**विविध प्रकार के बीमे (Miscellaneous Types of Insurance)**—जीवन-बीमा, समुद्री बीमा और अग्नि-बीमा के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के बीमों को सम्मिलित रूप से 'विविध बीमा' (miscellaneous insurance) कहा जाता है। आजकल के जमाने में बीमा-व्यवसाय इतना विकसित हो चुका है कि वास्तव में ऐसी कोई जोखिम शेष नहीं रही है जिसके लिए किसी-न-किसी प्रकार की बीमा-पॉलिसी लेकर सुरक्षा प्राप्त न की जा सकती हो। नीचे कुछ विविध बीमा की प्रमुख पॉलिसियों की विवेचना की जा रही है—

**१. वैयक्तिक दुर्घटना-बीमा-पॉलिसी (Personal Accident Insurance)**—वैयक्तिक दुर्घटना के बीमे में मनुष्य के समक्ष वैयक्तिक दुर्घटनाओं की जोखिम रहती ही है। कोई व्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त होकर अपाहिज हो सकता है, जीविकोपार्जन के लिए अशक्त हो सकता है या दुर्घटना में उसकी मृत्यु भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में उसे या उसके आश्रितों को आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है। वैयक्तिक दुर्घटना-बीमा इसी आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से कराया जाता है। इस बीमा-सविदा के अनुसार बीमा कम्पनी यह जिम्मेदारी लेती है कि दुर्घटनावश बीमाकृत के अशक्न होने या उसकी मृत्यु होने पर एक निश्चित रकम का भुगतान किया जायगा।

यह हमेशा याद रखना चाहिए कि वैयक्तिक दुर्घटना के फलस्वरूप मृत्यु या अशक्तता होने पर आर्थिक हानि का मूल्यांकन सम्भव नहीं है, अतः वैयक्तिक दुर्घटना

बीमा-क्षतिपूर्ति संविदा की कोटि में नहीं आ सकती। यही वजह है कि बीमा में दुर्घटना होने पर पूर्व-निर्धारित आधार पर निश्चित रकम का भुगतान होता है, क्षतिपूर्ति नहीं होती है। यह बीमा व्यक्ति-सम्बन्धी बीमा है, इसलिए इसमें क्षतिपूर्ति या प्रत्यासन का सिद्धान्त नहीं लागू होता है।

वैयक्तिक दुर्घटना-बीमापत्र के अन्दर सामान्यतः निम्नलिखित सुविधाएँ दी जाती हैं—

(i) दुर्घटनावश बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर, या अन्धा अथवा पंगु हो जाने पर पूरी बीमाकृत रकम का भुगतान होता है, तथा एक आँख फूट जाने पर या एक अंग भग हो जाने पर आधी बीमाकृत रकम दी जाती है।

(ii) अगर स्थायी रूप से पूर्ण अशक्तता होने पर बीमाकृत रकम का १०% प्रतिवर्ष दस वर्ष तक दिया जाता है तो बीमा करने वाला चाहे तो इसके बदले आधी बीमाकृत रकम एक मुश्त ले सकता है।

(iii) दुर्घटनाग्रस्त होने की वजह से चिकित्सा के लिए बीमाकृत रकम का २ प्रतिशत दिया जाता है।

(iv) अस्थायी रूप से पूर्ण अशक्त होने पर बीमाकृत रकम का १ प्रतिशत प्रति सप्ताह एक सौ चार सप्ताह तक दिया जाता है और आंशिक अशक्तता होने पर इसकी एक-तिहाई रकम मिल सकती है।

(v) इस बीमापत्र के अन्दर बीमा कम्पनी का दायित्व तभी उपस्थित होता है जब मृत्यु आघात या अशक्तता आदि बाह्य कारणों से हुई दुर्घटना के फलस्वरूप हुई हो।

इसके अलावा, बीमापत्र की शर्तों के अनुसार, निम्नलिखित कारणों से मृत्यु या अशक्तता होने पर बीमा कम्पनी का दायित्व नहीं रहता है—

(क) जान-बूझकर स्वयं को चोट पहुँचाने या आत्महत्या अथवा तत्सम्बन्धी प्रयत्नों के कारण, या उन्माद अथवा गुप्त-रोगों के कारण;

(ख) मादक द्रव्यों के नशे के कारण;

(ग) युद्ध, भूकम्प, बलवा, क्रान्ति हड़ताल आदि के कारण, और

(घ) शिकार या पोलो खेलने या मोटर-साइकिल चलाने के सिलसिले में अथवा पर्वतारोहण (mountaineering), उड़ड्यन (aviation) आदि के कारण।

इन्के अलावा, कम्पनियाँ अल्पकालिक वैयक्तिक दुर्घटना-बीमापत्र भी जारी करती हैं जिसके अन्दर कोई व्यक्ति छः महीने तक के लिए यात्रा करते समय दुर्घटना-बीमा कर सकता है। इसमें प्रीमियम-दर बहुत कम होती है।

२. **निष्ठा गारण्टी बीमा (Fidelity Guarantee Insurance)**—जब कोई व्यक्ति किसी उत्तरदायित्वपूर्ण जगह पर बहाल होता है; जैसे—मैनेजर, एकाउण्टेण्ट, कैशियर, स्टोरीकीपर आदि, तो नियोजक को उसकी निष्ठा के सम्बन्ध में उचित प्रमाण की जरूरत होती है। इसके लिए प्रायः नकद जमानत (cash security) ली जाती है अथवा किसी सम्पन्न व्यक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक हो जाता है जो ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में गारण्टी दे सके और उसके द्वारा गबन, धोखाबाजी, चोरी आदि होने पर नियोजक की क्षतिपूर्ति करने का दायित्व ग्रहण करे। यह प्रबन्ध करना आसान काम नहीं है और सभी कर्मचारी नकद जमानत दे भी नहीं सकते हैं। फिर, जमानत की रकम की तुलना में नकद, स्टोर या स्टॉक का मूल्य अनेक गुना ज्यादा हो सकता है और कर्मचारी को धोखेबाजी, गबन आदि का खतरा बना ही रहता है। इस जोखिम के प्रति भी अब बीमा की सुविधाएँ उपलब्ध हो

गयी हैं क्योंकि बीमा कम्पनियाँ ऐसी जोखिमों के लिए 'निष्ठा गारण्टी बीमापत्र' (fidelity guarantee policy) जारी करती हैं। इस बीमापत्र द्वारा नियोजक को यह सुविधा प्राप्त है कि वह अपने कर्मचारियों की बेईमानी, धोखा, गबन आदि से हानि होने पर बीमा कम्पनी से क्षतिपूर्ति करा सके। इसके तीन मुख्य प्रकार हैं— (क) व्यापारिक गारण्टी, (ख) सरकारी बाण्ड तथा (ग) अदालती बाण्ड।

३. चोरी आदि के लिए बीमा (Burglary Insurance)—चोरी, डकैती आदि के कारण भी आर्थिक हानि की जोखिम रहती है। इसलिए इस जोखिम का बीमा भी होता है। इस जोखिम के प्रति अनेक प्रकार के बीमापत्रों का चलन है जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

- (क) आवासगृहों के लिए बीमा (Private Dwellings Insurance),
- (ख) व्यापारिक गृहों के लिए बीमा (Business Premises Insurance),
- (ग) संक्रमित मुद्रा के लिए बीमा (Money-in-Transit Insurance) और
- (घ) यात्री के सामान के लिए बीमा (Baggage Insurance)।

इन पॉलिसियों में वस्तुओं का पूरा विवरण देना आवश्यक होता है। कम्पनी भी बीमा करानेवाले व्यक्ति से यह आशा रखती है कि वह भी चोरी आदि से बचने के लिए यथोचित सुरक्षा काम में लायेगा।

४. मोटर बीमा (Motor Insurance)—विविध बीमा व्यवसाय में मोटर बीमा का विशिष्ट स्थान है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि कतिपय जोखिमों के लिए मोटर का बीमा कराना सन्नियम द्वारा अनिवार्य कर दिया गया है। मोटर वेहिकल्स ऐक्ट (Motor Vehicles Act) के नियमानुसार प्रत्येक मोटर वाले को मोटर बीमा का प्रमाणपत्र रखना आवश्यक है। बगैर ऐसा प्रमाणपत्र रखे हुए मोटर चलाना दण्डनीय अपराध है। मोटर बीमा के दृष्टिकोण से मोटरगाड़ियों के तीन प्रमुख विभाजन किये गये हैं—(क) प्राइवेट कार, (ख) व्यापारिक गाड़ियाँ तथा (ग) मोटर साइकिल। दुर्घटना के कारण मोटरगाड़ी की स्वयं की हानि हो सकती है; किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक क्षति हो सकती है या अन्य पक्षकारों की मृत्यु या उनकी शारीरिक क्षति हो सकती है। इन सभी प्रकार की जोखिमों से सुरक्षा पाने के लिए मोटरगाड़ी का स्वामी व्यापक बीमा पॉलिसी (comprehensive policy) ले सकता है। मोटरगाड़ी के मालिक को अन्य पक्षकार जोखिम बीमा (Third Party Risks Insurance) अवश्य कराना होता है।

मोटर बीमा कराने के लिए कम्पनी के छपे हुए प्रस्ताव-पत्र को भरना होता है। प्राइवेट कार, व्यापारिक गाड़ी और मोटर-साइकिल के लिए अलग-अलग प्रस्ताव-पत्र होते हैं। जिस तरह की मोटरगाड़ी का बीमा कराना हो, उससे सम्बद्ध पत्र ही भरना चाहिए। प्रस्ताव-पत्र का पूर्ण अध्ययन करके कम्पनी जोखिम आँकती है और प्रीमियम निर्धारित करती है। मोटर-बीमा में भी अग्नि-बीमा की भाँति टैरिफ निर्धारित है और ये टैरिफ कम्पनियाँ टैरिफ की आधारभूत प्रीमियम-दरों के अनुसार ही प्रीमियम निश्चित करती हैं। मोटर-बीमापत्र एक वर्ष के लिए जारी किया जाता है।

५. श्रमिक क्षतिपूर्ति बीमा पॉलिसी (Workman's Compensation Insurance Policy)—काम करने के सिलसिले में अगर किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाय अथवा वह जीविकोपार्जन के लिए असमर्थ हो जाय तो ऐसी हालत में नियोजक (employer) के ऊपर दुर्घटनाग्रस्त कर्मचारी के प्रति हरजाना देने की

जिम्मेदारी आ जाती है। ऐसा हरजाना देने के लिए कानून भी बाध्य करता है।

श्रमिक क्षति से सम्बद्ध सबसे महत्वपूर्ण कानून 'श्रमिक क्षतिपूर्ण सन्निधयम, १९२३' (Workman's Compensation Act, 1923) है। इसके अनुसार कार्य-सम्बन्धी दुर्घटनाओं के कारण किसी कर्मचारी के मर जाने या रोगग्रस्त अथवा असमर्थ हो जाने पर नियोजक पूर्व-निश्चित दर से हरजाना देने का दायी होता है। बड़े-बड़े कारखानों में, जहाँ बहुत अधिक संख्या में मजदूर काम करते हैं और जहाँ दुर्घटनाओं की प्रबल सम्भावना रहती है, हरजाना देने का दायित्व निस्सन्देह बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। इस जोखिम को संवृत करने के लिए ही 'श्रमिक क्षतिपूर्ति बीमा' का आविष्कार हुआ। श्रमिक क्षतिपूर्ति बीमापत्र के अन्दर बीमा कम्पनी एक निश्चित प्रीमियम के प्रतिफल में नियोजक को यह वचन देती है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, सांघातिक दुर्घटना सन्निधयम (Fatal Accidents Acts) तथा सामान्य सन्निधयम के नियमानुसार उसके ऊपर श्रमिकों की क्षतिपूर्ति करने का जो वैधानिक दायित्व आयेगा उसके लिए कम्पनी नियोजक की क्षतिपूर्ति करेगी।

६. सर्वभ्यापी पॉलिसी (All-in-One Policy)—कभी-कभी बीमा कम्पनी से इस तरह की भी पॉलिसी ली जाती है जिनमें विभिन्न प्रकार की जोखिमों के लिए एक साथ ही सुरक्षा दी जाती है। इस तरह की एक ही पॉलिसी द्वारा आग, चोरी, दुर्घटना, अविश्वास वगैरह के लिए सुरक्षा की व्यवस्था की जाती है। इसमें सबों के लिए एक ही साथ प्रीमियम भी दे दिया जाता है।

### University Questions

1. Define insurance. What are essential features of a Contract of Insurance ?

(बीमा की परिभाषा दीजिए। बीमा-अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व क्या हैं ?)

2. What is an insurable interest ? What must it exist in life, fire and marine insurances ?

(बीमा-योग्य हित क्या है ? जीवन, अग्नि तथा सामुद्रिक बीमों में यह कब विद्यमान रहना चाहिए ?)

3. In an insurance upon life, what is considered as insurable interest ? Has the creditor an insurable interest in the life of his debtor, and father in that of his son ?

(जीवन-बीमा में बीमा-योग्य हित से क्या समझते हैं ? क्या ऋणदाता को ऋणी के जीवन में तथा पिता को पुत्र के जीवन में बीमा-योग्य हित है ?)

4. What do you understand by 'insurable interest' in connection with life, fire and marine insurances ? When must it subsist in the case of each type ? Enumerate the different kinds of insurable interests recognised by Law.

(जीवन, अग्नि एवं सामुद्रिक बीमों के सम्बन्ध में 'बीमा-योग्य हित' से आप क्या समझते हैं ? प्रत्येक में यह कब विद्यमान रहना चाहिए ? कानून द्वारा स्वीकृत विभिन्न प्रकार के बीमा-योग्य हित की व्याख्या करें।)

5. 'Contracts of Life Insurance are not Contracts of Indemnity.' Explain.

(‘जीवन-बीमा का अनुबन्ध क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध नहीं है।’ इस कथन की व्याख्या कीजिए।)

6. Explain the Contract of Fire Insurance as a Contract of ‘Uberrimac fidei’.

(क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध के रूप में अग्नि-बीमा की व्याख्या कीजिए।)

7. Fire Insurance, like Marine Insurance, is a Contract of Indemnity.

(सामुद्रिक बीमा की तरह अग्नि-बीमा क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध है।)

8. A man insured his life for the benefit of his wife and was subsequently convicted of having murdered her. Can the insurance money be recovered ?

(एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री के लाभ के लिए अपने जीवन का बीमा कराया तथा बाद में उसकी हत्या करने के अपराध में सजा पायी। क्या बीमाकृत रकम प्राप्त की जा सकती है ?)

9. Explain the meaning of ‘Re-insurance’ and ‘Double-insurance’. What difference is there in the effect and operation of Double Insurance in case of Life Insurance from that in case of Fire or Marine Insurance ?

(‘पुनर्बीमा’ एवं ‘दुहरा बीमा’ के आशय की व्याख्या कीजिए। जीवन-बीमा की तुलना में अग्नि अथवा सामुद्रिक बीमा पर दुहरे बीमा के प्रभाव तथा क्रियाशील होने में क्या अन्तर है ?)

10 Explain the following terms—

(a) Endowment Policy, (b) Joint life Policy.

Are Life Policies and Fire Insurance Policies assignable ? If so, how can such a policy or policies be assignable ? If so, how can such a policy or policies be assigned ?

[निम्नलिखित पदों की व्याख्या कीजिए—

(i) मियादी बीमा-पॉलिसी, (ii) संयुक्त जीवन-पॉलिसी।

क्या जीवन-बीमा-पॉलिसी तथा अग्नि-बीमा-पॉलिसी अभिहस्तांकन के योग्य हैं ? यदि हाँ, तो किस प्रकार ऐसे पत्र या पत्रों को अभिहस्तांकित किया जा सकता है ?]

11. What is an assignment ? How does it differ from a nomination ?

(अभिहस्तांकन का क्या अर्थ है ? यह ‘नॉमिनेशन’ से किस प्रकार भिन्न है ?)

12. Describe the liability of the insurer on a Life Insurance Policy in case of suicide of the insured.

(i) When the Policy is silent, and

(ii) When the Policy excludes in case of suicide.

[बीमाकृत के आत्महत्या करने पर निम्नलिखित दशाओं में बीमाकर्ता के दायित्व का वर्णन कीजिए—

(i) जब बीमापत्र में इसका कोई वर्णन न हो, तथा

(ii) जब बीमापत्र आत्महत्या को शामिल न करे।]

13. Explain what do you understand by annuity. Distinguish

it from Assurance. Is it true to say that annuity is just the reverse of insurance ?

(वार्षिकी से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या करें ! उसकी तुलना बीमा से कीजिए । क्या यह कहना सत्य है कि वार्षिकी बीमा का ठीक उलटा है ?)

14. What is meant by 'deviation' and 'change of voyage' ? When is deviation permissible or excusable ?

(‘विचलन’ तथा ‘यात्रा-परिवर्तन’ से क्या समझते हैं ? कब विचलन स्वीकृत अथवा क्षम्य होता है ?)

15. What are the 'Perils of the Sea' against which insurer guarantees in case of Marine Insurance ?

(‘सागर की आपत्तियाँ’ क्या हैं जिनके विरुद्ध बीमाकर्त्ता सामुद्रिक बीमा में गारण्टी प्रदान करता है ?)

16. Illustrate the rule of 'Causa Proxima' applicable to perils of the sea against which the insurer guarantees in case of Marine Insurance.

(निकटतम कारण के नियम का वर्णन कीजिए जो सागर की आपत्तियों पर लागू होता है तथा सामुद्रिक बीमा में जिसके विरुद्ध बीमाकर्त्ता गारण्टी प्रदान करता है ।)

17. What is the difference between a Time Policy and a Voyage Policy in Marine Insurance ? Is there any implied warranty in either Policy as to fitness of the vessel insured ? If so, what is the nature and the extent of the warranty ?

(सामुद्रिक बीमा में ‘समय-बीमा पॉलिसी’ तथा ‘यात्रा-बीमा पॉलिसी’ में क्या अन्तर है ? क्या इनमें से किसी भी पॉलिसी में बीमा कराये गये जहाज के योग्य होने का गम्भीर आश्वासन होता है ? यदि हाँ, तो आश्वासन की प्रकृति तथा अंश क्या है ?)

18. Distinguish 'Total Loss' from 'Partial Loss'. What are the liabilities of underwriters (i) where a ship is totally lost, (ii) Where it is only partially lost ? Explain what is meant by constructive total loss.

(‘पूर्ण हानि’ की ‘आंशिक हानि’ से तुलना कीजिए । निम्नलिखित परिस्थितियों में बीमाकर्त्ता का क्या दायित्व है— (i) जब एक जहाज पूर्णतः नष्ट हो जाये; (ii) जब वह केवल आंशिक नष्ट हो जाये ? रचनात्मक पूर्ण हानि का क्या अर्थ है ? इसकी व्याख्या कीजिए ।)

19. Explain the importance and the meaning of 'Notice of Abandonment' and state and explain the 'Waiver Clause' in a policy of Marine Insurance.

(‘परित्याग की नोटिस’ का क्या अर्थ है ? इसके महत्व की व्याख्या कीजिए; सामुद्रिक बीमा में ‘स्वत्व-त्याग’ पद की व्याख्या कीजिए ।)

20. What do you mean by the term 'Fire' ? "A fire must be fortuitous in nature and there must be ignition." Explain this statement.

(‘अग्नि’ शब्द से आप क्या समझते हैं ? ‘अग्नि अवश्य ही स्वभावतः आकस्मिक होनी चाहिए तथा उसमें लपट भी होनी चाहिए ।” इस कथन की व्याख्या कीजिए ।)

**21. Can a Fire Insurance Policy be transferred ? Illustrate the principle of contribution as applicable to an insurance policy.**

(क्या अग्नि-बीमा पॉलिसी हस्तान्तरित हो सकती है ? बीमा पॉलिसी पर लागू होनेवाले अंशदान के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।)

**22. What is the significance of the undermentioned clauses in a policy of fire insurance —(i) Average clause, (ii) Re-instatement clause, (iii) Contribution clause, and (iv) Salvage.**

[अग्नि-बीमा में निम्नांकित पदों का क्या महत्त्व है— (i) औसत-पद, (ii) पुनर्स्थापन पद, (iii) अंशदान पद तथा (iv) नाशरक्षण ?]

**23. (i) A took a Life Policy on the life of his wife B. A murders B. Can he obtain the insured sum from the Insurance Company ?**

[**Ans. Yes—**A बीमा कम्पनी से बीमाकृत रकम प्राप्त कर सकता है। बीमा-योग्य हित के सिद्धान्त के अनुसार जीवन-बीमा में बीमा-योग्य हित पॉलिसी लेते समय विद्यमान रहना चाहिए। यहाँ A के बीमा-पॉलिसी लेते समय B के जीवन में बीमा-योग्य हित विद्यमान था। Allahabad High Court के फैसले के अनुसार— “जीवन का मूल्य मुद्रा से बहुत अधिक है। अतः कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति मुद्रा के लिए अपनी स्त्री की हत्या नहीं कर सकता है।”]

(ii) X takes a policy on his wife's life and divorces her. She dies.. Can X recover the amount of the policy ?

[**Ans. Yes.** X बीमा की रकम प्राप्त कर सकता है। यहाँ भी X के अपनी स्त्री के जीवन पर बीमा पॉलिसी लेते समय बीमा-योग्य हित विद्यमान था।]

(iii) Has a father insurable interest in the life of his son, a husband in that of his wife and a creditor in the property of his debtor ?

[**Ans.** अगर पुत्र पिता पर आश्रित है तो पिता को पुत्र के जीवन में बीमा-योग्य हित है। पति को भी पत्नी के जीवन में बीमा-योग्य हित होता है। एक ऋणदाता को भी ऋण तथा ऋण के ब्याज की रकम तक ऋणी और ऋणी की सम्पत्ति में बीमा-योग्य हित होता है।]

(iv) The proposer for a life assurance makes a statement in the proposal that he did not suffer from any disease tending to shorten his life. He knows that he was suffering from a disease which did, in fact, shorten his life, but he did not know that it had such a tendency. What is the effect of such statement on the policy ?

[**Ans.** इस प्रश्न में प्रस्तावक परम सद्विश्वास के नियम को भंग करता है। अतः बीमाकर्त्ता बीमा-पॉलिसी रद्द कर सकता है।]

(v) A merchant on hearing that a vessel similar to his own was captured, effected an insurance without disclosing the information to the underwriter. Can the underwriter avoid liability ?

[**Ans.** इसमें भी व्यापारी परम सद्विश्वास के नियम का पालन नहीं करता है, क्योंकि उसका यह कर्त्तव्य है कि जिस बात की सूचना उसे है उससे वह बीमाकर्त्ता को अवगत कराये।]

(vi) If an assured commits suicide while sane, can the assignee of the policy or the heirs of the assured claim on the policy ?

[**Ans.** अगर बीमा-पॉलिसी एक साल से ज्यादा चालू रही है तब अभि-हस्तांकित तथा बीमाकर्ता के उत्तराधिकारी दावा कर सकते हैं ।]

(vii) Z insured against fire his house worth Rs. 40,000 for Rs. 20,000. The house is partially burnt and the damage done to it is Rs. 8,000, Z claims Rs. 8,000 from the insurers who offer to pay Rs. 4,000. How would you decide the dispute ?

[**Ans.** इसमें औसत बीमा पॉलिसी ली गयी है, अतः Z, ४,००० रुपये से कुछ भी अधिक नहीं प्राप्त कर सकता है ।]

---



**सामान की ढुलाई से सम्बद्ध सन्नियम**  
**Law Relating to Carriage of Goods**



## सामान की ढुलाई से सम्बद्ध सन्नियम (Law Relating to Carriage of Goods)

वस्तु प्रायः स्थल-मार्ग तथा आकाश-मार्ग से ढोयी जाती है। भारत में इन सबों से सम्बद्ध अलग-अलग नियम हैं। वाहक वह व्यक्ति या मनुष्य है जो माल-असबाब तथा यात्रियों को स्थल, आकाश या समुद्र के मार्ग से ढोता है। सामान की ढुलाई से सम्बद्ध सन्नियम को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१. स्थल परिवहन (Land Carriers)—(i) वाहक सन्नियम, १८६५ (The Carriers Act, 1865)।

(ii) रेलवे सन्नियम, १८९० (The Railway Act, 1890)।

२. सामुद्रिक परिवहन (Water Carriers)—(i) भारतीय वहन-पत्र सन्नियम, १८५६ (The Indian Bill of Lading Act, 1856)।

(ii) समुद्र द्वारा माल-परिवहन सन्नियम, १९२५ (The Carriage of Goods by Sea Act, 1925)।

३. वायु-परिवहन (Air Carriers)—वायु द्वारा परिवहन सन्नियम, १९३४ (The Carriage by Air Act, 1934)।

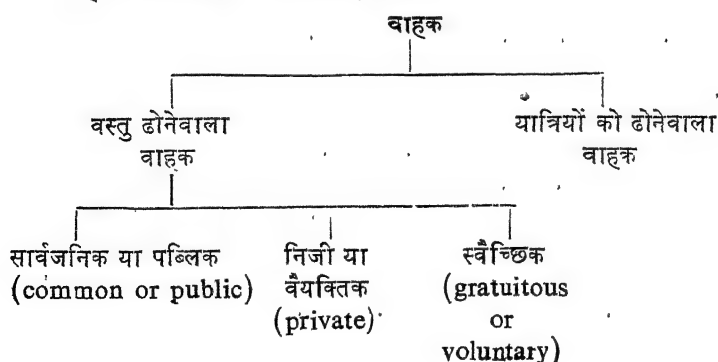
इन सन्नियमों का दायरा अधिक विस्तृत नहीं है, इसलिए आवश्यकता पड़ने पर भारतीय न्यायालय अँगरेजी सन्नियम में वर्णित समन्याय एवं विवेक (equity and good conscience) के सिद्धान्त को आधार मानकर चलते हैं।

परिवहन-समझौता (Contract of Carriage)—यह वह समझौता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी वस्तु या यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पारिश्रमिक अथवा भाड़े के बदले में ले जाने का अनुबन्ध करता है।

वाहक (Carrier)—जो व्यक्ति वस्तु या यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का समझौता करता है, उसे वाहक कहते हैं।

वाहक के भेद (Kinds of Carriers)

वाहक निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—



## सार्वजनिक वाहक (Public Carriers) Common

भारतीय वस्तुवाहक सन्निधय, १८६५ की धारा २ के अनुसार सार्वजनिक वाहक की परिभाषा इस प्रकार है— 'सार्वजनिक वाहक वह एकीकृत या अनेकीकृत, गैर-सरकारी व्यक्ति, संस्था या संघ है जो सभी तरह के लोगों के लिए बिना किसी भेदभाव के स्थलमार्ग या अन्तर्देशीय जलमार्ग द्वारा किराये पर एक जगह से दूसरी जगह सामान स्थानान्तरित करता है।' [A common carrier has been defined under Sec. 2 of the Indian Carriers Act, 1865 as a person including any association or body of person whether incorporated or not other than Govt. engaged in the business of transporting for hire property from place to place, by land or inland navigation, for all persons indiscriminately.]

ऊपर की परिभाषा से यह विदित होता है कि सार्वजनिक वाहक में निम्नलिखित विशेषताएँ (characteristics) होती हैं—

१. यह कोई एक व्यक्ति या साझेदारी, संयुक्त परिवार का व्यापार या एक कम्पनी हो सकती है। अगर यह साझेदारी का फर्म है तो जितने भी इसके साझेदार होते हैं वे सभी सम्मिलित रूप से इसकी प्रत्येक देनदारी के लिए जिम्मेदार होते हैं।

२. यह सिर्फ वस्तु या सम्पत्ति को एक जगह से दूसरी जगह भेजे।

३. यह माल भेजने के काम को व्यापार के रूप में करे, न कि आकस्मिक पेशे के रूप में।

४. यह असबाब ढोने का कार्य किराया लेकर करे, मुफ्त में (gratuitously) नहीं।

५. यह सभी व्यक्तियों के असबाबों को बगैर कोई भेदभाव के ढोये, यानी जो इसे पैसा दे उसका माल यह ढोये।

६. इसके माल ढोने का कार्य स्थलमार्ग पर हो। जो वाहक जलमार्ग से असबाब ढोता है उसे सार्वजनिक वाहक नहीं कहते हैं।

७. यह सरकार (Government) न हो।\*

## सार्वजनिक वाहक के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व (Duties and Liabilities of Common Carrier)

सार्वजनिक वाहक के कर्तव्य निम्नलिखित हैं—

१. निश्चित किराया पाने पर माल को ढोना (To carry after receiving the fixed charge) —जो व्यक्ति इसे वास्तविक किराया या निश्चित किराया दे, उसके मालों को इसे ढोना चाहिए। अगर वस्तु इस प्रकार की है जिसे वह ढोने का आदी नहीं है और अगर वह खतरनाक वस्तु है जिससे कि और वस्तुएँ बरबाद हो सकती हैं या माल ढोने के लिए जगह न हो, और सामान गाड़ी खुलने के समय लाया गया हो तो ऐसी हालत में वाहक सामान ढोने से इनकार करता है।

\* It must not be the Govt. (Alamgir Footwear & Co. vs. Secretary of State. 1933 All. 466.)

२. निर्दिष्ट स्थान पर निश्चित समय में पहुँचा देना (To deliver at destination within the fixed time)—वाहक जिस समय माल पहुँचाने का वादा करे उसे उस समय माल निर्दिष्ट स्थान (destination) पर अवश्य पहुँचा देना चाहिए। अगर कोई समय निश्चित न किया गया हो तो एक मुनासिब समय (reasonable time) के अन्दर पहुँचा देना चाहिए।

३. प्रचलित मार्ग से जाना (To follow the customary route)—वाहक को हमेशा प्रचलित मार्ग (customary route) का अनुसरण करना चाहिए। अविचलन का आश्वासन (warranty of non-deviation) स्थलमार्ग द्वारा ढोनेवाले सार्वजनिक वाहक के ऊपर भी लागू होता है।

४. सुपुर्दगी में अनुचित विलम्ब के लिए हरजाना देना (To pay damage for unreasonable delay)—एक निश्चित समय के अन्दर या मुनासिब समय के अन्दर माल की सुपुर्दगी देना और सुपुर्दगी के लिए जगह नियत कर देना भी वाहक के लिए जरूरी है। यदि सुपुर्दगी देने में अनुचित (unreasonable) विलम्ब हो तो वाहक को हरजाना देना पड़ेगा। किन्तु वाहक किसी विशेष समझौते के द्वारा सुपुर्दगी देने में होनेवाले विलम्ब के दायित्व से बरी हो सकता है।

५. माल स्वीकार करते ही दायित्व शुरू हो जाता है (The responsibility starts as soon as he accepts the goods)—सार्वजनिक वाहक के दायित्व उसी समय से शुरू हो जाते हैं जिस समय वह व्यक्ति रूप से अथवा उपलक्षण द्वारा (by implication) माल को ढुलाई के लिए स्वीकार कर लेता है। वह इन वस्तुओं को सुरक्षित रूप से ढोने के लिए बाध्य है। भारत में वाहक का उत्तरदायित्व करीब-करीब इंग्लैंड के ही वाहक के समान है। इंग्लैंड में वाहक का स्थान बीमा कम्पनी (insurer) के समान है और माल के बरामद होने पर माल के मालिक को नुकसान की पूर्ति करनी पड़ती है।

### सार्वजनिक वाहक के अधिकार (Rights of a Common Carrier)

१. माल ढोने से नामंजूर कर देना (To refuse the goods)—जब तक कि माल भेजनेवाला व्यक्ति किराये में निश्चित रकम या जो वाजिब किराया है वह नहीं देता तब तक वाहक को यह अधिकार है कि वह माल ढोने से इनकार कर दे।

२. माल ढोने से अस्वीकार कर देना (Right to refuse)—अगर गाड़ी में जगह न हो या माल इस प्रकार का हो जिसे वह ढोने का आदी न हो या वस्तु से किसी तरह के खतरे की संभावना हो तब भी वह माल ढोने से इनकार कर दे सकता है।

३. किराया में रियायत कर देने का अधिकार (Right to allow concession)—वाहक को यह अधिकार है कि वह सभी ग्राहकों के साथ समान बरताव न करे। वह अगर चाहे तो किसी ग्राहक को किराये में रियायत कर दे सकता है, अर्थात् किसी से कम ही किराया लेकर उसके माल को निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा दे सकता है।

४. माल बेच देने का अधिकार (Right to sell)—यदि नष्ट होने लायक (perishable) वस्तु रास्ते में खराब हो जाय और वाहक को यह विश्वास हो जाय कि वस्तुओं को अच्छी हालत में वह सुपुर्द नहीं कर सकेगा तो उसे ऐसी वस्तुओं को बेच देने का अधिकार है। इस तरह की बिक्री की आवश्यकतानुसार बिक्री (sale by necessity) कहते हैं। ऐसी हालत में अगर संभव हो तो वाहक को उस माल के मालिक से बेचने की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए।

५. माल रोक रखने का अधिकार (Right of lien)—जो वस्तु वह ढो रहा है यदि उसका किराया नहीं दिया गया है तो उसे विशेष स्वत्व-ग्रहण (particular lien) का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसी दशा में माल को वह तब तक रोककर रख सकता है जब तक कि पूरा किराया न चुका दिया जाय।

वाहक किन नुकसानों के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकते (Carriers will not be held responsible)

निम्नलिखित हालतों में वाहक माल के नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं होते—

१. अगर माल का नुकसान ईश्वरीय प्रकोप (act of God) से हुआ हो; जैसे आँधी, तूफान, बिजली आदि के कारण हुई हानियों को दैवी प्रकोप द्वारा हुई हानियाँ कह सकते हैं।

२. अगर नुकसान राजकीय दुश्मन (King's enemy) की वजह से हुआ हो; जैसे—माल को जब्त करवाना या माल नुकसान करवा देना।

३. अगर माल का नुकसान अपने-आप हो गया हो; जैसे—खराब पैकिंग की वजह से।

४. माल अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाने के बाद वाहक ने उसके मालिक को माल पहुँचने की खबर दे दी हो। अगर सूचना प्राप्त करने के बाद माल मँगाने-वाला व्यक्ति माल की सुपुर्दगी नहीं लेता है तो फिर वाहक का अधिकार निक्षेप-गृहीता (bailee) के समान हो जाता है।

सन् १८६५ और १९२१ के भारतीय वाहक सन्नियम

भारतीय वाहक सन्नियम सार्वजनिक वाहक के नष्ट होने लायक (perishable) तथा बहुमूल्य वस्तुओं के सम्बन्ध में असाधारण दायित्व को कम करने के ख्याल से पास किया गया। अतः इस सन्नियम की धारा ३ के अनुसार सार्वजनिक वाहक वैसे किसी माल के नुकसान के लिए दायी (liable) नहीं है जिसकी कीमत १००) २० से अधिक है तथा जो इस सन्नियम की सूची (schedule) में वर्णित हो, चाहे नुकसान वाहक की असावधानी या उपेक्षा से ही क्यों न हुआ हो। लेकिन यदि इन वस्तुओं की कीमत माल के प्रेषक द्वारा पहले ही घोषित कर दी गयी हो तो सार्वजनिक वाहक दायी ठहराया जा सकता है। कीमत घोषित कर दिये जाने पर वाहक धारा ४ के मुताबिक अतिरिक्त भाड़ा ले सकता है, किन्तु वह उसके नुकसान के लिए उत्तरदायी होगा। धारा ५ के मुताबिक जब सूची में दिये गये किसी वैसे माल का नुकसान हुआ हो जिसका मूल्य १००) २० से अधिक हो तो दावा करने वाला व्यक्ति वाहक से सम्पत्ति या मूल्य के साथ-साथ ढुलाई के लिए दिया गया भाड़ा भी वसूल कर सकता है।

सूची में वर्णित वस्तुओं का नुकसान (Loss of Scheduled Articles)

जिन वस्तुओं के नुकसान होने पर वाहक का दायित्व सीमित होता है, धारा ११ में उनकी सूची इस प्रकार दी गयी है—सोना, चाँदी, बहुमूल्य पत्थर, मोती (pearl), जवाहर, घड़ी (time pieces), हलका गहना या अँगूठी (trinkets), बिल, हुण्डी, सरकारी नोट, बैंक नोट, रुपये के भुगतान के लिए जमानत (security

for payment of money). स्टाम्प तथा स्टाम्पवाला कागज, कलात्मक कार्य या छपाई, लेख, दस्तावेज, सोने-चाँदी की दस्तकारी की गयी वस्तु, शीगा, सिल्क, शाल, फीता (lace), ऐसे कपड़े जिसपर बहुमूल्य धातु लगी हुई हो, हाथीदाँत, आबनूस या चन्दन की वस्तुएँ। केन्द्रीय सरकार इस सूची में दूसरी वस्तुओं को भी जोड़ सकती है।

वैसी वस्तुओं का नुकसान जिनका वर्णन सूची में न हो (Loss of Articles not contained in the Schedule)

धारा ६ के मुताबिक वाहक वैसे मालों के सम्बन्ध में भी अपनी जिम्मेदारी विशेष सविदा के द्वारा सीमित कर सकता है जो सूची में वर्णित न हों। किन्तु, वह सार्वजनिक सूचना द्वारा अपने दायित्व को सीमित नहीं कर सकता है।

नुकसान होने पर माल का मालिक, जिसने माल की घोषणा कर दी है तथा अतिरिक्त भाड़ा भी चुका दिया है, इस अतिरिक्त भुगतान तथा माल के नष्ट हो जाने के कारण होनेवाली क्षति को वसूल करने का अधिकारी है। किन्तु, जब माल के मालिक द्वारा माल की कीमत की घोषणा कर दी गयी हो तो उसका दावा (claim) घोषित की गयी कीमत से ज्यादा नहीं होना चाहिए। वाहक को कानून के मुताबिक नुकसान होने पर, मूल्यांकन (valuation) का विरोध करने तथा इसका उचित सबूत माँगने का अधिकार है। सन् १८६५ के कानून में धारा ८ में यह लिखा हुआ था कि असावधानी या उपेक्षा की हालत में वाहक किसी भी तरह या किसी भी वस्तु के नुकसान के लिए उत्तरदायी होगा। अतः धारा ८, धारा ३ में वर्णित नियम को बेकार या निष्फल कर देती थी। किन्तु सन् १९२१ के संशोधित नियम ने इस गड़बड़ी को दूर कर दिया। इस संशोधित नियम के अनुसार नुकसान असावधानी या उपेक्षा के कारण हो अथवा न हो, किन्तु जब तक माल की कीमत धारा ३ के अनुसार घोषित न कर दी गयी हो, तब तक वाहक किसी हालत में माल के नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

रेलवे सार्वजनिक वाहक के रूप में (Railway as a Common Carrier)

भारतीय रेलवे सन्नियम की धारा ७२ (३) के मुताबिक भारतीय वाहक सन्नियम तथा इंग्लैंड का कॉमन लॉ (Common Law) वाहक के रूप में रेलवे के ऊपर लागू नहीं होता है। सार्वजनिक वाहक के रूप में रेलवे का अधिकार तथा दायित्व भारतीय रेलवे सन्नियम (Indian Railway Act IX of 1890) की ७२ से ८२ तक की धाराओं में वर्णित है—

१. पशु अथवा दूसरी वस्तुओं के विनाश, क्षति या क्षय (deterioration) के लिए जो रेलवे कम्पनी को ढोने के लिए सुपुर्द की गयी हो, रेलवे कम्पनी का दायित्व भारतीय प्रसविदा सन्नियम—धाराएँ १५१, १५२ तथा १५३ के अनुसार निक्षेपगृहीता (bailee) की तरह होता है। [धारा ७२ (१)]

२. फिर, रेलवे कम्पनी माल की ढुलाई के सम्बन्ध में अपने दायित्व को विशेष लिखित माल भेजनेवाले (consignee) के द्वारा हस्ताक्षरित तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत फार्म (form) के रूप में सविदा द्वारा अपने दायित्व को सीमित कर सकती है। इसके लिए भारत में कम्पनी जोखिम-पत्र (risk-note) जारी करती है।

[धारा ७२ (२)]

३. जब तक रेलवे कम्पनी को माल सुपुर्द करते समय माल का उचित मूल्य घोषित न कर दे, तब तक रेलवे का दायित्व हुलाई के लिए दिये गये जानवरों की क्षति या हानि के सम्बन्ध में प्रत्येक हाथी के लिए १,५००) रु०, प्रत्येक घोड़े के लिए ७५०) रु०, ऊँट या सींग वाले (horned) हरेक जानवर के लिए २००) रु० तथा भेड़ों, बकरे, कुत्ते आदि जानवरों या पक्षियों के लिए ३०) रु० प्रति जानवर या पक्षी से अधिक नहीं दिया जाता । [धारा ७३ (१)]

४. अगर ऊपर लिखे गये जानवरों का दाम घोषित किया गया हो तो रेलवे कम्पनी ज्यादा जोखिम के लिए अतिरिक्त महसूल चार्ज कर सकती है ।

[धारा ७३ (२)]

५. रेलवे कम्पनी पर किसी तरह के दावे का मुकदमा मुकदमा दायर करनेवाले व्यक्ति को साबित करना पड़ता है । [धारा ७३ (३)]

६. रेलवे के कर्मचारी ने अगर किसी मुसाफिर के असबाब को बुक किया हो और अगर रसीद सही नहीं है तो रेलवे कम्पनी मुसाफिर के किसी : के लिए उत्तरदायी नहीं होगी । [धारा ७४]

७. अगर कोई व्यक्ति माल पार्सल या पैकेज द्वारा भेजता है जिसका वर्णन द्वितीय सूची (second schedule) में हो तो भेजनेवाले को चाहिए कि माल के बारे में कम्पनी को पहले ज्ञात करा दे । अगर वह १०० रुपया से ज्यादा कीमत का है तो रेलवे कम्पनी तब तक उस माल के लिए उत्तरदायी नहीं होगी जब तक कि माल भेजनेवाला व्यक्ति बड़ी हुई जोखिम के लिए अतिरिक्त किराया न दे ।

[धारा ७५ (१)]

८. अगर पार्सल या पैकेज, जिसका मूल्य उप-धारा १ के अनुसार घोषित किया गया हो और वह खो जाय या उसका क्षय हो जाय, तो इसके लिए मिलनेवाला मुआवजा (compensation) घोषित की हुई रकम से ज्यादा नहीं हो सकता । घोषित किये हुए को सही (true) मूल्य साबित करने का भार दावा करनेवाले व्यक्ति के ऊपर होता है । [धारा ७५ (२)]

९. रेल के द्वारा हुलाई के लिए सुपुर्द किये गये जानवरों या वस्तुओं की क्षति या हानि को पूरा करने के लिए रेलवे कम्पनी के खिलाफ मुकदमा करने पर मुद्दई (plaintiff) के लिए यह साबित करना कोई आवश्यक नहीं है कि नुकसान किस तरह हुआ था । [धारा ७६]

१०. दावा ६ महीने के अन्दर ही करना चाहिए— रेलवे कम्पनी के ऊपर किसी तरह का दावा नुकसान होने के छः महीने के अन्दर करना चाहिए ।

[धारा ७७]

११. रेलवे कम्पनी किसी वस्तु के नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं होगी जबकि—(क) किसी वस्तु का महत्वपूर्ण वर्णन धारा ५८ (१) के अनुसार गलत (false) ढंग से दिया गया हो ।

(ख) जब किसी तरह गलत वर्णन (false account) देने के कारण माल की क्षति या हानि हुई हो ।

(ग) जब गलत वर्णन के द्वारा किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य घोषित किये गये मूल्य से कम हो ।

निजी या सार्वजनिक वाहक (Private Carrier)

इसकी परिभाषा Ivory J. ने वेटकिंग बनाम कौटेल (Watking vs. Cottell)



के मुकदमे में इस प्रकार दी है—

“असार्वजनिक वाहक वह है जिसका व्यापार एक व्यक्ति या स्थान से दूसरे तक सामान ढोकर ले जाने का नहीं होता, बल्कि जो संयोग जुटने पर किसी दूसरे के सामानों को ढो देने की जिम्मेदारी लेता है तथा उसके बदले में पुरस्कार पाता है।”  
[“As one whose trade is not that of conveying goods from one person or place to another, but who undertakes upon occasion to convey the goods of another and receives reward for so doing.”]

सार्वजनिक वाहक एवं असार्वजनिक वाहक में अन्तर (Distinction between Common Carrier and Private Carrier)

असार्वजनिक वाहक, सार्वजनिक वाहक से दो बातों में भिन्न हैं—

(क) ये कभी-कभी किराया लेकर माल एक जगह से दूसरी जगह ढोते हैं अन्यथा अक्सर अपने ही कार्यों को करते हैं।

(ख) ये मालों को अपनी मर्जी से ढोते हैं। ये चाहें तो किसी के माल को मंजूर करें, या न करें, उनके अपने मन पर निर्भर रहता है।

स्वैच्छिक वाहक (Gratuitous Carrier)

जब कोई वाहक माल या व्यक्ति को बगैर कुछ पैसा लिये एक जगह से दूसरी जगह ढोता है तो उसे स्वैच्छिक (gratuitous) वाहक कहते हैं। अगर यह किसी के माल को ढोना नामंजूर कर दे तो उसको माल ढोने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता और न इस पर मुकदमा ही चलाया जा सकता है, लेकिन अगर यह माल ढोने के लिए स्वीकार कर ले तो फिर इसका भी उत्तरदायित्व निष्पगृहीता (bailee) के समान ही हो जाता है और अपनी गलती से हुए नुकसान के लिए जिम्मेदार हो जाता है।

हवाई रास्ते से वहन (Carriage by Air)

हवाई रास्ते से वहन का सन्निधम अभी बाल्यावस्था में है। यह नियम पहले-पहल सन् १९३४ ई० में भारतीय वायु-मार्ग सन्निधम (Indian Carriage by Air Act) के नाम से पास हुआ। यह सन्निधम सन् १९२० के वारसॉ कन्वेंशन (Warsaw Convention) के आधार पर बना था।

हवाई मार्ग से यात्रियों का वहन (Carriage of Passengers by Air)

धारा ३ के अनुसार जब वाहक यात्रियों के नाम टिकट जारी (issue) करने लगता है तब टिकट पर स्थान का नाम, जारी करने की तारीख, प्रस्थान करनेवाली जगह का नाम, निर्दिष्ट स्थान का नाम, विराम की जगह का नाम, वाहक का नाम और पता तथा इस बात का विवरण कि वहन-सूची सन्निहित नियम के अधीन है या नहीं, दिया रहता है।

फिर धारा ४ के अनुसार असबाब (luggage) के सम्बन्ध में भी टिकट जारी किया जाता है। इसमें जो बातें यात्रियों के टिकट में लिखी रहती हैं वे तो रहती ही हैं, उनके अलावा पैकेज का नम्बर तथा तौल और घोषित की गयी कीमत की रकम (amount) का जिक्र भी रहता है। असबाब के कूपन (luggage coupon)

की अनुपस्थिति, उसका अनियमित (irregular) होना तथा उसका खो जाना ढुलाई की प्रसविदा की वैधानिकता (validity) को प्रभावित नहीं कर सकता।

### हवाई मार्ग से माल की ढुलाई (Carriage of Goods by Air)

जहाँ तक माल भेजने का सम्बन्ध है, सबसे पहले माल भेजनेवाले से एयर कन्साइनमेंट नोट (Air Consignment Note) लिखवा लेना चाहिए। ("Air consignment note is the document accepted by the carrier in absence. Irregularity of this document does not affect the existence or the validity of the contract of carriage.") इस नोट के तीन भाग (three original parts) होते हैं और तीनों ही मूल होते हैं। पहला भाग 'वाहक के लिए' (for the carrier) होता है, जिसपर केवल माल भेजनेवाले के हस्ताक्षर रहते हैं; दूसरा भाग 'माल पाने वाले के लिए' (for the consignee) होता है, जिसपर भेजनेवाले और वस्तु-वाहक दोनों के हस्ताक्षर होते हैं और यह भाग माल पाने वाले को पहले ही भेज दिया जाता है तथा तीसरा भाग माल भेजनेवाले के लिए होता है जिसपर केवल वस्तु-वाहक के हस्ताक्षर होते हैं। यह भाग वस्तु-वाहक द्वारा माल पहुँचाने की जिम्मेदारी का प्रमाण-पत्र होता है। इस पर रसीदी टिकट लगाकर भी हस्ताक्षर लिये जाते हैं और बिना टिकट लगाये भी यह वैध होता है। जब एक से ज्यादा पैकेज हों तो प्रत्येक के लिए अलग-अलग नोट लिखा जाना चाहिए। इस तरह का नोट लिखते समय नोट लिखी जानेवाली जगह का नाम तथा तारीख, प्रस्थान करने की जगह का नाम, निर्दिष्ट स्थान का नाम, माल भेजनेवाले (consigner) तथा पानेवाले (consignee) का नाम तथा पता और माल की प्रकृति वगैरह लिखी रहती है। इसके अलावा पैकेज की संख्या, पैकिंग का ढंग, तौल, संख्या, मूल्य, वस्तुओं की हालत, महसूल तथा भुगतान करने की जगह और दायित्व से सम्बद्ध नियम भी नोट में लिखे रहने चाहिए। अगर वाहक वगैरह इस तरह के नोट (consignment note) को लिये स्वीकार कर ले तो वह सन्निध के उन नियमों से लाभ नहीं उठा सकता जो उसके दायित्व को सीमित करते हैं तथा कुछ दायित्वों से छुटकारा दिलाते हैं। फिर, माल भेजनेवाले को चाहिए कि माल से सम्बद्ध सभी बातों को साफ बतला दे। अगर यह माल के सम्बन्ध में कुछ गलत विवरण देता है या कुछ बातों को छिपा लेता है जिसकी वजह से वाहक को किसी प्रकार की क्षति या हानि होती है तो माल भेजनेवाले को इस तरह की क्षति की पूर्ति करनी पड़ेगी। इसी तरह वाहक रजिस्टर्ड वस्तु के नुकसान के लिए उत्तरदायी होता है।

### समुद्री रास्ते से माल की ढुलाई (Carriage of Goods by Sea)

यदि कोई व्यक्ति किसी बन्दरगाह को माल भोजना चाहता है, तो उसे जहाजी कम्पनी से इस काम के लिए प्रसविदा (contract) करनी पड़ती है। जहाज द्वारा माल ले जाने की ऐसी प्रसविदा को 'जहाजी किराये की प्रसविदा' (Contract of Affreightment) कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है—

१. चार्टर पार्टी (Charter party) का जहाजी पट्टा, और
२. जहाजी बिल्टी (Bill of Lading)।

जब माल ज्यादा तादाद में एक जगह से दूसरी जगह भोजना होता है, तब पूरे

जहाज को किराये पर ले लेना अच्छा और सस्ता होता है और ऐसी प्रसविदा को जिस प्रलेख में लिखते हैं उसे 'चार्टर पार्टी' (Charter Party) कहते हैं। यह निश्चित यात्रा या निश्चित समय के लिए भाड़े पर लिया जाता है। चार्टर पार्टी में तीन प्रमुख बातें रहती हैं—

१. वे बन्दरगाह जिनके बीच जहाज का आना-जाना होगा;
२. ढोये जानेवाले माल का विवरण; और
३. किराये की रकम।

इसके अलावा, उसमें और भी साधारण बातें रहती हैं; जैसे—ढंग आदि।

जब भेजे जानेवाले माल की मात्रा कम होती है तब माल भेजनेवाला या पौतिक (shipper) जहाज द्वारा माल भेजता है। ऐसी दशा में जहाजी किराये की प्रसविदा जहाजी बिल्टी का स्वरूप ले लेती है। ऐसी दशा में जो जहाजी बिल्टी दी जाती है वह जहाज पर लादे गये माल का स्वीकृत पत्र तो होती ही है, साथ ही उसमें वे सब शर्तें भी दी जाती हैं जिनपर माल जहाज द्वारा ले जाया जाता है। इसमें निम्न-लिखित बातों का उल्लेख होता है—

भेजनेवाले या पौतिक का नाम, माल लादने का स्थान और उसकी तिथि, उद्दिष्ट बन्दरगाह का नाम, जहाज और उसके कप्तान का नाम, माल का विवरण, किराये की रकम इत्यादि। जहाजी बिल्टी जहाजी किराये की प्रसविदा है जो दूसरे सामानों को ले जानेवाले सार्वजनिक (general) जहाज द्वारा माल भेजने के सम्बन्ध में प्रयुक्त होता है। अक्सर 'जहाजी बिल्टी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है, चार्टर किये हुए समस्त जहाज पर माल लादने के स्वीकृत-पत्र के अर्थ में नहीं।

ऊपर लिखी गयी बातों से यह स्पष्ट होता है कि चाहे जहाज चार्टर किया हुआ हो अथवा सार्वजनिक हो, जहाजी बिल्टी का इस्तेमाल हरेक दशा में होगा ही। लेकिन इसके दो भेद हैं—

१. चार्टर किये हुए जहाज पर जब माल लादा जाता है, तो उसकी अभिस्वीकृति (acknowledgment) जहाजी बिल्टी की शकल में दी जाती है।

२. जहाजी बिल्टी जहाजी किराया प्रसविदा की भाँति भी काम में लायी जाती है, और ऐसी दशा में उसमें माल की अभिस्वीकृति ही नहीं लिखी जाती है, बल्कि उसमें माल ले जाने की समस्त शर्तें भी दी होती हैं।

जहाजी बिल्टी माल का अधिकार-पत्र (document of title) होती है और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक उसका हस्तांतरण हो सकता है। जहाजी बिल्टी धनीजोग (bearer) और नामजोग (order) दोनों ही प्रकार की होती है। धनीजोग जहाजी बिल्टी वह होती है जिसको उद्दिष्ट बन्दरगाह पर उपस्थित करनेवाले किसी व्यक्ति को माल सुपुर्द कर दिया जाता है। नामजोग बिल्टी वह होती है जिसमें किसी खास व्यक्ति का नाम दिया जाता है और उस उद्दिष्ट बन्दरगाह पर इस बिल्टी के पेश करने पर माल की सुपुर्दगी उल्लिखित व्यक्ति को अथवा उसके द्वारा किसी आदेशित व्यक्ति को ही दी जाती है। धनीजोग (bearer) जहाजी बिल्टी का हस्तांतरण केवल सुपुर्दगी या डिलीवरी देकर ही किया जा सकता है, किन्तु नामजोग (order) जहाजी बिल्टी के हस्तांतरण के लिए बेचान-लेख (endorsement) और सुपुर्दगी दोनों ही जरूरी हैं। हस्तांतरण द्वारा पानेवाले व्यक्ति का माल पर उतना ही अधिकार (title) होता है जितना कि हस्तांतरक (transferer) का था।

क्या जहाजी बिल्टी बेचान-साध्य रुका होती है ?

जहाजी बिल्टी और बेचान-साध्य रुका दोनों बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं । बेचान-साध्य रुके की भाँति जहाजी बिल्टी (bill of lading) का हस्तांतरण बेचान-लेख और सुपुर्दगी द्वारा किया जाता है और हस्तांतरण द्वारा पानेवाला व्यक्ति अपने नाम से मुकदमा चला सकता है और दोषी व्यक्ति को मान्य छुट (valid discharge) भी दे सकता है । किन्तु, इन समानताओं के आधार पर यह नहीं सोचना चाहिए कि जहाजी बिल्टी (bill of lading) एक बेचान-साध्य रुका है, क्योंकि इन दोनों में एक महत्वपूर्ण अन्तर है । जहाजी बिल्टी के धारक (holder) का माल पर अधिकार हस्तांतरक के अधिकार से ज्यादा नहीं हो सकता, किन्तु बेचान-साध्य रुके (जैसे बिल ऑफ एक्सचेंज) का नियमानुसार धारक (holder in due course), अर्थात् वह मनुष्य जो उसे सद्विश्वास के साथ ठीक-ठीक स्वरूप में समय खत्म होने के पहले ही और किसी प्रतिफल (consideration) के बदले में प्राप्त करता है, हस्तांतरक के अधिकार में दोष होते हुए भी माल पर निर्दोष अधिकार प्राप्त कर लेता है । यह अन्तर बहुत प्रमुख है । जहाजी बिल्टी (bill of lading) बेचान-साध्य रुके से कुछ बातों में मिलती है और दूसरी बातों में नहीं । इसलिए इसे प्रायः अर्द्ध-बेचान-साध्य रुका (semi-negotiable instrument) कहा जाता है ।

माल वगैरह (Cargo etc.)

चार्टर पार्टी में जहाज के मालिक के लिए केवल कानूनी वस्तुओं को ही लादने के लिए एक पद (clause) रहता है । प्रायः जहाज पर लादे जानेवाले माल की प्रकृति का वर्णन दे दिया जाता है (Indian Mercantile Shipping Act) की धारा ३२ के मुताबिक अन्न, चावल, धान, दाल, बीज इत्यादि जब तक बोरे के अन्दर अच्छी तरह से पैक नहीं कर दिये जाते तब तक वे जहाज की पटरी पर रखे नहीं जा सकते हैं । किसी जहाज के मालिक अथवा एजेंट के द्वारा इस शर्त की उपेक्षा करना दण्डनीय समझा जाता है । वास्तव में जहाज का मालिक केवल उन्हीं मालों को ढोने के लिए बाध्य है जो चार्टर पार्टी में वर्णित हों । अतः जब चार्टर पार्टी में माल का वर्णन दिया होता है तो कोई भी ऐसा माल जिसका चार्टर पार्टी में वर्णन नहीं रहता, वह जहाज पर लादा नहीं जा सकता । चार्टर पार्टी में संख्या (quantity) का भी वर्णन रहता है जो जहाज का मालिक ढोने का जिम्मा (undertake) लेता है ।

वर्जित खतरे (Expected Perils)

इस तरह का पद (clause) चार्टर पार्टी तथा जहाजी बिल्टी दोनों में रहता है । यह पद जहाज के मालिक को कुछ ऐसी आपत्तियों के दायित्व से मुक्त कर देता है जो मनुष्य के अधिकार के बाहर हो तथा जिसकी वजह जहाज या माल असावधानी न हो । किन्तु Giby vs Price (1893) A. C. 56 के मुकदमे में न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि अगर जहाज यात्रा शुरू करने के समय सागर संतरण के योग्य न हो तो यह पद जहाज के मालिक को क्षति के दायित्व से नहीं बचा सकता है । वर्जित आपत्तियों (expected perils) में निम्नलिखित आपत्तियों का विशेष वर्णन है—

१. **देव दुर्विपाक (Act of God)**—यह वह घटना है जो प्राकृतिक शक्ति के फलस्वरूप होती है जिसे रोकना मनुष्य की शक्ति के बाहर होता है।

२. **राज्य के शत्रु, सरदार या राजकुमार द्वारा निरोध (King's enemies, restraints of Princes and Rulers)**—अगर माल का नुकसान राज्य के दुश्मनों की वजह से हुआ हो या किसी राजा या सरदार ने, जिनके राज्य से होकर जहाज गुजर रहा हो, किसी तरह की रुकावट डाल दी हो।

३. **सामुद्रिक खतरे (Perils of the Sea)**—सामुद्रिक खतरे यात्रा की उस साधारण दुर्घटना तथा खतरे को कहा जाता है जिसका कारण जहाज के कप्तान की उपेक्षा-वृत्ति या असावधानी न हो।

४. **नायकों तथा कर्मचारियों द्वारा कपटपूर्ण व्यवहार (Barratry of master and crew, pirates etc.)**—बैरेट्री कप्तान द्वारा जान-बूझकर किये गये उन सभी कपटों (fraud) को कहते हैं जो अपनी भलाई के लिए जहाज के मालिक के नुकसान का ख्याल न करते हुए करता है। ऐसी हालत में कप्तान जानबूझकर जहाज के मालिक के प्रति अपने कर्तव्य को भंग करता है या कपटपूर्ण व्यापार करता है। केवल एक बार की असावधानी बैरेट्री नहीं समझी जाती।

५. **सामुद्रिक डाकू और चोर (Pirates, robbers and thieves)**—सामुद्रिक डाकू, चोर और लुटेरे जहाज पर लदे हुए माल को कभी-कभी लूट लेते हैं।

६. **टक्कर लग जाना (Collision)**—जब एक जहाज को दूसरे जहाज से मुठभेड़ हो जाती है या वायु-वेग, तूफान आदि के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है तो इसको 'कोलीजन' कहते हैं। किन्तु, जब टक्कर उपेक्षा या असावधानी के कारण लगती है तो वह वर्जित आपत्ति नहीं समझी जाती।

७. **माल फेंकना (Jettison)**—जहाज में बोझ आ जाने की वजह से पोत-रक्षा की नीयत से कुछ माल अथवा मस्तूल काटकर सागर में फेंक देना अथवा कोयले की कमी पड़ने पर कुछ माल को कोयले के रूप में प्रयोग करना।

### डेमरेज (Demurrage)

जब कोई व्यापारी जहाज को अनुचित समय तक रोककर जहाज वापस करने में विलम्ब करता है जिससे जहाज के मालिक को क्षति होती है और जहाज का मालिक उठायी हुई क्षति का दावा (claim) करता है तो यह डेमरेज कहलाता है। यह दावा चार्टर पार्टी तथा जहाजी बिल्टी में दिये गये एक पद (clause) के आधार पर किया जाता है। Lord Teterdon के अनुसार—जब व्यक्त रूप से प्रसंविदा के अनुसार समय तय कर लिया जाता है तो यदि व्यापारी निश्चित समय के अन्दर अपना कार्य नहीं कर ले तो वह हरजाना देने के लिए मजबूर किया जा सकता है।

### अन्य विशेष शब्द

कभी-कभी बीमापत्रों में कुछ और विशेष शब्द भी शामिल कर लिये जाते हैं। इनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

**विशेष औसत मुक्त (Free of Particular Average or F. P. A.)**—यह शब्द बीमाकर्ता को विशेष औसत (particular average) से बरी कर देता है। यदि आंशिक क्षति विशेष औसत न हो तो बीमाकर्ता को क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

**विशेष औसत-सहित (With Particular Average or W. P. A.)**—इस

शब्द के मुताबिक बीमाकर्ता विशेष औसत के लिए उत्तरदायी होता है।

**विदेशी सामान्य औसत (Foreign General Average or F. G. A.)**—सामान्य औसत होने पर, एक सामान्य औसत का लेखा बनाना पड़ता है जिसमें प्रत्येक हित के हिस्से में आनेवाली क्षति का अनुपात और उसकी रकम दी होती है। यह लेखा उद्दिष्ट बन्दरगाह के नियम के अनुसार बनाया जाता है और यदि यात्रा किसी बीच के बन्दरगाह पर खंडित हो जाती है तो उस बीचवाले बन्दरगाह के नियम के अनुसार बनाया जाता है। इस शब्द के अनुसार विदेशी बन्दरगाह के अनुसार बनाया गया सामान्य औसत लेखा बीमा करने और करानेवाले के बीच में भुगतान का आधार होगा।

**समस्त संकटों से रक्षा (Against All Risks or A. A. R.)**—इसके मुताबिक सभी सामुद्रिक संकटों से रक्षा प्रदान की जाती है।

**समस्त औसत मुक्त (Free of All Averages or F. A. A.)**—इसके मुताबिक बीमाकर्ता सभी आंशिक क्षति से, चाहे वह विशेष औसत हो या सामान्य औसत, मुक्त होता है। यह केवल सम्पूर्ण क्षति के लिए ही उत्तरदायी होता है।

**बन्दी होने से मुक्त (Free of Capture and Seizure or F. C. S.)**—लडाई के जमाने में जहाज और माल के पकड़े जाने का डर बढ़ जाता है और इसके द्वारा यह बीमापत्र के परे कर दिया जाता है। यदि कुछ अधिक प्रीमियम दिया जाय, तो यह इस्तेमाल नहीं किया जायगा और इस संकट से भी रक्षा प्रदान की जायगी।

**टकराने की जोखिम (Running Down or R. D.)**—जब कोई जहाज किसी दूसरे जहाज से टकरा जाने का दोषी साबित होता है तो उसका स्वामी निर्दोष पक्ष के प्रति क्षतिपूर्ति के लिए दायी होता है। किन्तु यदि उस जोखिम का उसने बीमा कर लिया है तो बीमाकर्ता ही यह क्षतिपूर्ति करेगा। वह इस क्षति का प्रायः तीन-चौथाई भाग ही देता है और शेष बीमा करानेवाले को स्वयं देना पड़ता है। किन्तु आजकल 'टकराने की जोखिम' वाक्यांश के स्थान पर 'टकराने की जोखिम' वाक्यांश ( $\frac{1}{4}$  R. D. S.) जोड़ देने से बीमाकर्ता से टकराने से उत्पन्न समस्त हानि भी प्राप्त की जा सकती है। जहाजों के बीमों में अक्सर इसका प्रयोग होता है। लॉयड्स की प्रामाणिक पॉलिसी में इस जोखिम का वर्णन नहीं रहता, अतः इसे अलग रूप से पॉलिसी में शामिल करना पड़ता है।

**पालिसी चालू रहने का वाक्यांश (Continuation Clause)**

यदि किसी जहाज का बीमा किसी निश्चित अवधि के लिए कराया जाता है और यदि वह उसके व्यतीत हो जाने पर भी अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँचता है, तो वह पॉलिसी समाप्त हो जाती है। इस वाक्यांश के रहने पर अवधि की समाप्ति के पूर्व बीमाकर्ता को पॉलिसी चालू रहने देने का सन्देश भेज देने से पॉलिसी का अन्त नहीं होता और वह निश्चित स्थान तक चालू रहता है। इस समय वृद्धि के लिए बीमाकर्ता कुछ 'उचित अतिरिक्त प्रीमियम' बीमा करानेवाले से प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

**युगल पोत पद (Sister Ship Clause)**

कभी-कभी एक ही कम्पनी के दो जहाजों की आपस में समुद्री आपत्तियों द्वारा

मुठभेड़ हो जाती है। ऐसी हालत में यदि एक मुठभेड़ के लिए जिम्मेदार ठहराया जाये तो दावे का निबटारा आपस में ही कर लेते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि ऐसी हालत में पंचायत (arbitrations) द्वारा दावे का निबटारा होता है।

### रक्षा-पुरस्कार (Salvage Charges)

यह पुरस्कार उस व्यक्ति को दिया जाता है जो समुद्र में जहाज, माल आदि की रक्षा करता है या उसमें सहयोग देता है। इसे प्राप्त करने के लिए वह रक्षणीय वस्तु को अधिकृत कर सकता है। यदि वह उसके हाथ से किसी प्रकार निकल जाती है तो वह समुद्री अदालत में मुकदमा दायर कर सकता है। किन्तु यहाँ यह भी जान लेना जरूरी है कि यह पुरस्कार रक्षक को तभी प्राप्त हो सकता है जब वह अपने उद्योग में कृतकार्य हो जाता है। साथ ही, माल की रक्षा किसी अन्य पक्ष (third party) द्वारा ही होनी चाहिए। इस पुरस्कार का भार उन व्यक्तियों पर पड़ता है, जिनकी सम्पत्ति की रक्षा की गयी है अथवा जिनके कारण संकट उत्पन्न हुआ था। यदि इसकी जोखिम के विरुद्ध बीमा है अथवा साधारण आंशिक हानि में इसे मम्मिलित कर लिया जाता है तो बीमा कम्पनी से इसे वसूल किया जा सकता है।

### जहाज की जमानत पर ऋण (Bottomry)

जब कप्तान जहाज को गिरवी रखकर कर्ज लेता है तब उसे एक जमानत-पत्र लिखना पड़ता है, जिसे 'बन्धक का दस्तावेज' (bottomry bond) कहते हैं। कभी-कभी जहाज के साथ-साथ माल और प्राप्य किराये को भी जमानत के रूप में बन्धक कर दिया जाता है। किन्तु साधारणतः ऐसा नहीं होता। इसके लिए जहाज का कप्तान भी व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। जहाज को जमानत पर कर्ज प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है—

१. उसके बिना आगे यात्रा करना असम्भव हो;
२. उसके बिना अन्य किसी साधन से अपेक्षित धन प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ हो; और
३. उतना ही कर्ज लिया गया जितना यात्रा-पूर्ति के लिए आवश्यक हो।

उक्त प्रकार से प्राप्त किये हुए कर्ज का भुगतान जहाज के निश्चित बन्दरगाह पर पहुँचने पर ही होता है। यदि वह अपने निदिष्ट स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही रास्ते में डूब जाता है या किसी प्रकार से इसकी पूरी हानि हो जाती है तो कर्जदार के लिए उस कर्ज को चुकाना आवश्यक नहीं होता। कभी कभी ऐसा भी होता है कि कप्तान को जहाज के बन्धक पर ही एक से अधिक बार कर्ज लेना पड़ता है। उस अवस्था में भुगतान का क्रम यह होता है कि सर्वान्तिम कर्ज का भुगतान सबसे पहले कर्ज के भुगतान में होता है। इस नियम का आधार यह विचार है कि यदि अन्तिम महाजन कर्ज नहीं देना तो जहाज अपने निदिष्ट स्थान पर कभी नहीं पहुँच पाता और उस दशा में सर्वप्रथम महाजन को अपने कर्ज के भुगतान में कुछ भी नहीं प्राप्त हो सकता था।

### माल की जमानत पर कर्ज (Respondentia)

कभी-कभी सिर्फ माल को ही बन्धक रखकर कप्तान कर्ज प्राप्त कर लेता है।

इसके लिए उसे 'माल की जमानत का दस्तावेज' (respondentia bond) भरना पड़ता है। इसके भुगतान के लिए भी जहाज को निर्दिष्ट बन्दरगाह पर पहुँचाना आवश्यक होता है। माल की जमानत पर लिये जानेवाले कर्ज के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक होती हैं —

१. धन का केवल माल के हित के लिए ही आवश्यक होना;
  २. माल को बेच देने के अलावा दूसरा कोई उपाय धन-प्राप्ति का न होना;
- और
३. संभव होने पर माल के स्वामियों की अनुमति प्राप्त कर लेना।

### University Questions

1. What is meant by a common carrier ? Discuss his rights, obligations and liabilities in India.

(सार्वजनिक वाहक से आप क्या समझते हैं ? भारत में उनके अधिकारों, दायित्वों एवं उत्तरदायित्वों की व्याख्या कीजिए।)

2. Who are common carriers ? What are their liabilities ? To what extent can railways in India claim exemption from the liabilities of common carriers ?

(सार्वजनिक वाहक कौन हैं ? उनके उत्तरदायित्व क्या हैं ? भारत में रेलवे किस अंश तक सार्वजनिक वाहक के उत्तरदायित्व से छटकारा पाने का दावा कर सकती है ?)

3. Distinguish between common carriers and private carriers. How does the liability of the railway in India differ from that of other carriages ?

(सार्वजनिक वाहक एवं असार्वजनिक वाहक में अन्तर बतलाइये। भारत में रेलवे के उत्तरदायित्व दूसरे वाहको से किस प्रकार भिन्न हैं ?)

4. Who are common carriers ? What are their duties ? To what extent are railways in India governed by the law of common carriers ?

(सार्वजनिक वाहक कौन हैं ? उनके कर्तव्य क्या हैं ? भारत में रेलवे किस अंश तक सार्वजनिक वाहक कानून द्वारा शासित होती है ?)

5. Compare the liability of Indian Railways regarding carriage of goods and luggage with those of public carriers.

(माल एवं असबाब ढोने के सम्बन्ध में भारतीय रेलवे के दायित्वों की तुलना सार्वजनिक वाहक से कीजिए।)

6. What are the duties of a common carrier ? In what circumstances is a common carrier exempted from liabilities for loss of the goods carried ?

(सार्वजनिक वाहक के कर्तव्य क्या हैं ? किन परिस्थितियों में एक सार्वजनिक वाहक ढोये गये माल के नष्ट होने के उत्तरदायित्व से बरी हो सकता है ?)

7. What is an Air Consignment Note ? What are the liabilities of the carrier by air ?

(‘एयर कनसाइनमेण्ट नोट’ क्या है ? हवाई मार्ग से माल ढोने वाले वाहक के दायित्व क्या हैं ?)



8. Distinguish between a Bill of Lading and a Charter Party. What are their respective functions ? Is a Bill of Lading negotiable instrument ?

(जहाजी बिल्टी तथा चार्टर पार्टी में क्या अन्तर है ? उनके कार्य क्रमशः क्या हैं ? क्या एक जहाजी बिल्टी विनिमय-साध्य स्वरूप का है ?)

9. What is a Bottomry Bond ? When can the master of a ship sell damaged goods, tranship goods or raise money on cargo ?

(जहाजी बन्धक क्या है ? कब एक जहाज का मालिक क्षतिग्रस्त माल बेच सकता है, माल किसी दूसरे जहाज से भेज सकता है अथवा माल की जमानत पर मुद्रा एकत्र कर सकता है ?)

10. What is the position of the master of a ship ? What are his rights ? How far can he borrow money ?

(जहाज के मालिक की क्या स्थिति होती है ? उसके अधिकार क्या हैं ? किस अंश तक वह ऋण ले सकता है ?)

11. What are the various clauses in a contract of affreightment ? To what extent does the insertion of 'expected perils' and 'negligence' clauses in a contract of affreightment afford protection to the ship-owner as a Common Carrier ?

(एक जहाजी भाड़े के अनुबन्ध में कौन-कौन से पद होते हैं ? किस अंश तक 'वजित आपत्तियाँ' तथा 'उपेक्षा' पदों का जहाजी भाड़े के अनुबन्ध में जोड़ना सार्वजनिक वाहक के रूप में जहाज के स्वामी को सुरक्षा प्रदान करते हैं ?)

12. Write short notes on the following—

(i) Charter Party, (ii) Bill of Lading, (iii) Dead Freight, (iv) Excepted Perils, (v) Lay days, (vi) Jetison, (vii) Collision, (viii) Demurrage, (ix) Salvage, (x) Bottomry Bond, (xi) Respondentia, (xii) Liability as Bailee of Indian Railways as Carriers, (xiii) Distinction between Common Carriers and Private Carriers.

[निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(i) चार्टर पार्टी, (ii) जहाजी बिल्टी, (iii) नष्ट हुए भाड़े, (iv) वजित आपत्तियाँ, (v) काम करने का दिन, (vi) माल फेंकना, (vii) मुठभेड़, (viii) हरजाना, (ix) नाशरक्षण, (x) जहाजी बन्धक, (xi) माल-बन्धक, (xii) वाहक के रूप में भारतीय रेलवे का निश्पेक्षगृहीता के रूप में दायित्व, (xiii) सार्वजनिक वाहक एवं असार्वजनिक वाहक में तुलना कीजिए।)

### Practical Problems—

1. An elephant entrusted to the railway for carriage escapes during the journey and is killed. Is the railway liable to made good the loss ?

[उत्तर—Indian Contract Act की धारा १५१ के अनुसार रेलवे उत्तरदायी है क्योंकि रेलवे का उत्तरदायित्व निक्षेपगृहीता के रूप में है।]

2. A gave his ship to B on a monthly rent of Rs. 48. B entered into agreement with C to carry his goods at the rate of Rs. 9 per ton. Later on B became insolvent. A filed a suit on C for the recovery of his outstanding freight. Is A entitled to recover the entire outstanding freight from C ?

[उत्तर—A सिर्फ उतना ही C से पाने का अधिकारी है जितना C ने B को देने का वचन दिया था, उससे कुछ भी अधिक नहीं। इस सम्बन्ध में पॉल बनाम बर्च का मुकदमा देखा जा सकता है।]

3. A delivered some goods to a Common Carrier for carriage. The goods were damaged due to the negligence of the Common Carrier, but A did not declare the value of the goods to the Common Carrier. Is the Common Carrier liable for the loss ?

[उत्तर—सार्वजनिक वाहक क्षति के लिए उत्तरदायी नहीं है।]

---

**बिहार विक्री-कर सन्तियम, १९५९**  
**The Bihar Sales Tax Act, 1959**



## बिहार विक्री-कर सन्तियम, १९५९ (The Bihar Sales Tax Act, 1959)

### विषय-प्रवेश

अपनी आमदनी (revenue) बढ़ाने के विचार से बिहार सरकार ने यह तय किया कि राज्य में बेची जानेवाली वस्तुओं पर विक्री-कर (sales tax) लगाया जाय। इसी विचार को लेकर बिहार की संसद् ने सन् १९४७ ई० में बिहार विक्री-कर सन्तियम (Bihar Sales Tax Act, 1947) पास किया। १ जून, १९४७ को राज्यपाल (Governor) ने इस सन्तियम पर दस्तखत करके अपनी स्वीकृति दी और तबसे यह बिहार राज्य (Bihar State) भर में लागू किया गया है। इस सन्तियम के मुताबिक बिहार के राज्यपाल (Governor) ने 'बिहार विक्रय-कर सन्तियम' (Bihar Sales Tax Rules, 1949) बनाया जिसके अनुसार विक्री-कर सन्तियम (Sales Tax Act) की कार्यवाहियाँ होती हैं।

### परिभाषाएँ (Definitions)

इस सन्तियम की धारा २ में कुछ प्रमुख परिभाषाएँ दी गयी हैं जो निम्नलिखित हैं—(a) 'कमिश्नर' से मतलब विक्री-कर के कमिश्नर (Commissioner of Sales Tax) से है जो धारा ३ की उप-धारा १ के मुताबिक बहाल किया जाता है।\*

(b) 'ठीका' (contract) का मतलब इस सन्तियम में किसी निर्माण (construction) या फिटिंग (fitting out) या मकान, सड़क, पुल या अन्य किसी अचल सम्पत्ति (immovable property) के सुधार या मरम्मत से बोध होता है जो नकद हय्यों के भुगतान या विधि-विहित प्रतिफल के बदले में किया जाता है।†

(c) 'विक्रेता' (dealer) का मतलब वैसे व्यक्ति से है जो कमीशन पर, किसी प्रकार का पारिश्रमिक लेकर अथवा और किसी तरह से माल की विक्री या पूर्ति करता हो और इसमें फर्म (firm), संयुक्त हिन्दू परिवार (joint Hindu family), सरकार और कोई समिति, क्लब या संस्था जो मेम्बरों की वस्तुएँ विक्री करती हों, सम्मिलित हैं।

अगर किसी विक्रेता का मैनेजर या एजेंट बिहार के बाहर रहता हो और यहाँ के व्यापार के लिए माल बेचता हो तो उसे इस सन्तियम के अन्दर विक्रेता ही समझा जायगा।‡

\* 'Commissioner' means any Commissioner of Sales Tax appointed under Sub-section (1) of Section 3.

† 'Contract' means any agreement for carrying out for cash or deferred payment or other valuable consideration, the construction, fitting out, improvement or repair of any building, road, bridge or other immovable property. [Sec. 2b]

‡ 'Dealer' means any person who sells or supplies any goods (including goods sold or supplied in the execution of a contract)

(d) 'वस्तुएँ' (Goods)—वस्तु शब्द का मतलब प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है जिसमें सभी सामग्री, वस्तुएँ और सामान सम्मिलित रहते हैं; उसका इस्तेमाल चल सम्पत्ति के बनाने, फिटिंग करने, सुधार, उन्नति अथवा मरम्मत के लिए किया जाता हो या नहीं। इसमें वसूल करने योग्य दावा (actionable claims), स्टॉक, अंश या प्रतिभूतियाँ शामिल नहीं की जाती।\*

(e) 'स्वीकृति' (Prescribed)—स्वीकृति का मतलब इस सन्नियम के अन्दर स्वीकृति (prescribed) से है।

(f) 'रजिस्टर्ड विक्रेता' (Registered Dealer) का मतलब इस सन्नियम के अनुसार वैसे विक्रेता से है जो इस सन्नियम के अनुसार रजिस्टर्ड हुआ है।

(g) 'विक्री' (Sale)—विक्री का मतलब नकद रूपों या स्थगित भुगतान या और किसी तरह के उचित प्रतिफल के बदले में हस्तांतरित किये गये माल के स्वत्व से होता है। इसमें समझौते द्वारा माल के स्वत्व का हस्तांतरण भी शामिल रहता है और इसमें रेहन (mortgage), उपप्राधीयन (hypothecation), प्रभार (charge) या बन्धक (pledge) शामिल नहीं रहता।†

whether for commission, remuneration or otherwise and includes any firm or a Hindu joint family, the Government and any society, club or association which sells or supplies goods to its members.

**Explanation**—The manager or agent of a dealer who resides outside Bihar and who sells or supplies goods in Bihar shall, in respect of such business, be deemed to be a dealer for the purpose of this Act. [Sec. 2 c]

\* 'Goods' means all kinds of movable property other than actionable claims, stocks, shares or securities and includes all materials, articles and commodities, whether or not to be used in the construction, fitting out, improvement or repair of immovable property. [Sec. 2 d]

† 'Sale' means, with all its grammatical variations and cognate expressions, any transfer of property in goods for cash or deferred payment or other valuable consideration, including a transfer of property in goods involved in the execution of contract but does not include a mortgage, hypothecation, charge or pledge.

*Provided* that a transfer of goods on hire-purchase or other instalment system of payment shall, notwithstanding the fact that the seller retains a title to any goods as security for payment of price, be deemed to be a sale :

*Provided* further that the sale of goods in respect of a forward contract, whether goods under such contract are actually delivered or not, shall be deemed to have taken place on the date originally agreed upon for delivery.

**Explanation**—The sale of any goods actually delivered in Bihar as a direct result of such sale for the purpose of consumption in Bihar shall be deemed for the purpose of this Act to have taken place in Bihar, notwithstanding the fact that under the General Law relating to sale of goods, the property in the goods has by reason of such sale passed in another State.

लेकिन हायर परचेज (hire-purchase) या और किसी तरह की किस्त पर भुगतान करने की शर्त के साथ माल-हस्तांतरण, चाहे उसका स्वत्व दिया गया हो या नहीं, विक्री कहलाता है।

इस तरह भविष्य की विक्री (forward contract) उसी दिन समझी जायगी जिस दिन माल सुपुर्द करने की प्रसविदा हुई है, चाहे माल की सुपुर्दगी वास्तव में हुई है या नहीं।

बिहार में माल की विक्री तब कही जायगी जबकि माल बिहार में उपभोग के लिए हस्तांतरित किया जाय, चाहे किसी नियम के मुताबिक उस माल का स्वत्व किसी दूसरे राज्य में भी क्यों न हस्तान्तरित किया गया हो।

(h) 'विक्रय-मूल्य' (Sale-Price)\*—विक्रय-मूल्य का मतलब वैसी कीमत से होता है जो माल बेचनेवाले को उचित प्रतिफल के रूप में—

१. माल की विक्री या पूर्ति के लिए देय हो जिसमें से नकद छूट (cost discount), अगर दी गयी है, तो घटा ली गयी हो, लेकिन उसपर भाड़ा या सुपुर्दगी के लिए या मशीन बैठाने के अलावा और भी किसी तरह के माल के सम्बन्ध में बेचनेवाले के द्वारा किया गया खर्च जोड़ दिया गया हो;

२. किसी ठीका (contract) की पूर्ति के लिए देय हो जिसमें से श्रम या अन्य सेवाओं का खर्च घटा लिया गया हो।

**व्याख्या**—पारिश्रमिक या और किसी तरह की सेवाओं के लिए किये गये खर्च के सबूत का जम्मा विक्रेता के ही ऊपर है। यदि सबूत कमिश्नर के लिए सन्तोषजनक नहीं हुआ तो इस तरह का खर्च निश्चित रीति से तय किया जायगा।

(i) 'विक्रय-राशि' (Turn Over)†—(किसी निश्चित समय के अन्दर सभी विक्री का मूल्य जो बेचनेवाले के द्वारा माल की विक्री या पूर्ति या ठीका पूर्ण होने पर प्राप्त किया जाता हो अथवा प्राप्त हो, विक्रय-राशि कहलाता है। अर्थात्, जहाँ

\* 'Sale-Price' means the amount payable to a dealers as valuable consideration for—

1. The sale or supply of any goods, less any sum allowed as such discount according to ordinary trade practice, but including any sum charged for anything done by the dealer in respect of the goods at the time of or subsequent to the sale thereof, other than the cost of freight or delivery of the cost of installation when such cost is separately charged; or

2. The carrying out of any contract less the cost of labour and other services.

**Explanation**—The burden of proof as to the amount of the cost of labour and other services shall lie on the dealer and if he fails to discharge the burden to the satisfaction of the Commissioner such cost shall be determined in the prescribed manner. [Sec. 2 (b) ]

† 'Turnover' means the aggregate of the amounts of sales prices received and receivable by a dealer in respect of sale or supply of goods carrying out of any contract effected or made during a given period, or, where the amount of turnover is determined in the prescribed manner, the amount so determined. [Sec. 2 (b) ]

विक्रय-राशि किसी नियत तरीके के द्वारा तय की जाती है तो उस प्रकार तय की गयी रकम विक्रय-राशि कहलाती है।

(j) 'वर्ष' (Year)—वर्ष का मतलब वित्त-वर्ष (financial year) से होता है।

### कर-अधिकारी (Taxing Authorities)

राज्य सरकार (State Government) किसी भी व्यक्ति को कमिश्नर ऑफ सेल्स टैक्स (Commissioner of Sales Tax) बहाल कर सकती है अथवा और किसी को उसकी मदद के लिए, जैसा अच्छा समझे, बहाल कर सकती है।

बिहार विक्री-कर-नियम (Bihar Sales Tax Rules, 1959) की धारा ८ के मुताबिक निम्नलिखित व्यक्तियों को बिहार सरकार बहाल कर सकती है—

- (a) डिप्टी कमिश्नर (Deputy Commissioner of Sales Tax),
- (b) असिस्टेंट कमिश्नर (Assistant Commissioner of Sales Tax),
- (c) सुपरिण्टेण्डेंट (Superintendent of Sales Tax),
- (d) असिस्टेंट सुपरिण्टेण्डेंट (Assistant Superintendent of Sales Tax); और
- (e) इन्स्पेक्टर (Inspector of Sales Tax)।

### एजेंट (Agent)

बिहार विक्रय-कर-नियम (Bihar Sales Tax Rules, 1959) की धारा 2 (b) के अन्दर एजेंट की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

‘एजेंट’ शब्द से बोध विक्रेता द्वारा अधिकृत व्यक्ति से होता है जो उसके बदले में किसी विक्री-कर के अधिकारी के सम्मुख उपस्थित हो। इसमें निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—

- (i) माल बेचनेवाले का कोई सम्बन्धी (Relative of the dealer);
- (ii) माल बेचनेवाले का कोई कर्मचारी जो उसके काम में स्थायी तरीके से (regular) या पूर्ण समय के लिए (whole time) बहाल किया गया हो; या
- (iii) ऐसा व्यक्ति जो रजिस्टर्ड एकाउण्टेंट (Registered Accountant) हो या राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत (recognised) किसी लेखा-परीक्षा (accountancy examination) में सफलता प्राप्त कर चुका हो; या
- (iv) वैसा व्यक्ति जो वाणिज्य (commerce), विधि (law), अर्थशास्त्र (economics), बैकिंग और उच्च-अंकेक्षण (higher auditing) में किसी भारतीय विश्वविद्यालय या राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत विदेशी विश्वविद्यालय के द्वारा ग्रेजुएट की डिग्री प्राप्त कर चुका हो।

### करापात (Incidence of Taxation)

धारा ३ एवं ४—१. इस सन्निधम के मुताबिक १ अप्रैल, १९६६ से पिछले बारह महीनों का विक्री-कर उन सभी माल बेचनेवालों को देना पड़ेगा जिन्होंने बिहार राज्य के अन्दर या बाहर दोनों मिलाकर ₹५,००० रु० से ज्यादा का माल बेचा हो।

२. वैसे हर एक माल बेचनेवाले को जो बिहार राज्य के अन्दर या बाहर दोनों मिलाकर ₹५,००० रु० से ज्यादा माल प्रतिवर्ष बेचते हैं उन्हें विक्री-कर (sales



tax) चुकाना पड़ेगा।

३. अगर कोई विक्रेता विक्री-कर चुकाता आ रहा है और यदि किसी वर्ष उसका सफल-विक्रय (gross sales) बिहार राज्य के अन्दर और बाहर दोनों मिलाकर ₹५,०००) ₹० से कम हो गया तो लगातार तीन वर्षों तक उसे विक्री-कर चुकाना पड़ेगा तथा तीन वर्षों का समय खत्म हो जाने के बाद विक्री-कर देने का उसका दायित्व खत्म हो जाता है।

४. फिर वैसे प्रत्येक माल बेचनेवाले को, जो पहले नुकसान होने की वजह से अब कर नहीं देता है और उसकी विक्री बिहार राज्य के अन्दर और बाहर दोनों मिलाकर ₹५,०००) ₹० से पुनः बढ़ जाती है, उसे विक्री-कर देना पड़ेगा।

५. अगर कोई माल बेचनेवाला जो विक्री-कर देने के लिए बाध्य है, अपने पुराने व्यापार में किसी तरह का रहो-बदल करके कोई नया व्यापार, साझेदारी या व्यवसाय (अकेले या कुल साथियों को साथ लेकर) शुरू कर लेता है तो वह विक्री-कर उसी दिन से देने के लिए मजबूर होगा जिस दिन से वह नया व्यापार, साझेदारी या व्यवसाय शुरू करता है।

### कर की दर (Rate of Tax)

धारा ५—इस सन्निधय के मुताबिक हर एक माल बेचनेवाले को उसकी कर-देय विक्री (taxable turnover) का १ प्रतिशत से लेकर ४ प्रतिशत तक की दर से विक्री-कर लगाया जायगा।

यदि राज्य सरकार चाहे तो समय-समय पर सरकारी गजट में घोषणा करके १५ प्रतिशत तक का ऊँचा कर किसी भी तरह के माल पर लगा सकती है।

अगर कोई वस्तु जो जन-समुदाय के जीवन (life of the community) के लिए आवश्यक साबित की गयी हो, तो “आवश्यक वस्तु के क्रय-विक्रय पर कर लगाने से सम्बद्ध सन्निधय” (Essential Goods Declaration and Regulation of Tax on Sale or Purchase Act, 1952) के मुताबिक उसपर का विक्री-कर, बिहार विक्री-कर (संशोधन) सन्निधय, १९५३ (Bihar Sales Tax Amendment Act 1953) के पहले की दर से ज्यादा नहीं होगा।

लेकिन १ अक्टूबर, १९४८ से लेकर २१ मार्च, १९४९ तक के समय के लिए हर एक माल बेचनेवाले को अनुसूची (schedule) में दी गयी दर के मुताबिक ही कर देना पड़ेगा।

### व्याख्या (Explanation)

इस धारा में लिखी गयी करदेय विक्री (taxable turnover) का मतलब किसी माल बेचनेवाले के वैसे सकल विक्रय (gross turnover) से होता है जो बिहार में एक निश्चित समय के अन्दर बेचे गये माल से निम्नलिखित मद (items) घटाने पर शेष बचता हो—

(a) उस समय के निम्नलिखित प्रकार की विक्री—

(i) वैसे माल की विक्री जो समय-समय पर करमुक्त वस्तु (tax free goods) घोषित किया गया हो।

(ii) उस व्यक्ति या माल बेचनेवाले के हाथ माल की विक्री करना जो रजिस्टर्ड माल बेचनेवाला (registered dealer) हो और जो माल की खरीद फिर से माल

बेचने (resale) के विचार से कर रहा हो।

अगर किसी रजिस्टर्ड माल बेचनेवाले (registered dealer) के द्वारा फिर से माल बेचने के विचार से माल खरीदा गया हो, लेकिन उस माल का किसी दूसरे काम में इस्तेमाल किया जाता हो तो वैसी हालत में माल का क्रय-मूल्य विक्री करनेवाले विक्रेता (selling dealer) की सकल विक्री (gross turnover) में से घटा दिया जायगा। लेकिन, खरीद करनेवाले व्यक्ति (purchasing dealer) की करदेय विक्री (taxable turnover) में शामिल रहेगा।

(iii) और इस तरह की विक्री जिसको राज्य सरकार (State Government) साधारण या खान आज्ञा (general or special order) के द्वारा रोक दे तथा इनमें इस तरह के भी मालों की विक्री शामिल हो जो विक्री कर से मुक्त रहता है।

(b) उपर्युक्त पद 'ए' (clause 'a') के अन्दर घटती (deduction) देने के बाद शेष राशि (balance) पर २ प्रतिशत की दर से छूट (rebate)।

लेकिन, अगर राज्य सरकार जिन परिस्थितियों में अच्छा समझे इससे ऊँची छूट (rebate) भी घोषणा करके दे सकती है।

### करमुक्त माल (Tax Free Goods)

उस तरह के माल की विक्री पर कोई टैक्स नहीं लगाया जायगा जिसके लिए राज्य सरकार ने सरकारी गजट में इससे सम्बद्ध घोषणा की हो।

लेकिन, सन्निधम के अन्दर इस तरह की घोषणा नहीं की जायगी यदि इसके लिए राज्य सरकार ने अपने इस विचार की कोई पूर्वसूचना (previous notice) नहीं दी हो कि वह इस तरह की घोषणा करना चाहती है। कहने का मतलब यह है कि इस तरह की घोषणा देने के पहले राज्य सरकार को सूचना देनी पड़ेगी।

विक्रेता को कर से मुक्त करने का राज्य सरकार का अधिकार (Power of State Government to exempt dealers from tax)—कुछ प्रतिबन्धों और शर्तों (restrictions and conditions) को छोड़कर जिसमें रजिस्ट्रेशन (registration) तथा रजिस्ट्रेशन-शुल्क (registration fees) भी शामिल हैं, राज्य सरकार अगर चाहे तो किसी तरह के माल बेचनेवालों को पूरे या आंशिक कर के दायित्व से मुक्त कर सकती है।

किसी अवस्था में करयुक्त या करमुक्त माल घोषित करने का राज्य सरकार का अधिकार (Power of State Government to prescribe prices at which goods may be taxed or exempted)—अगर सन्निधम में न हो तो बाद के विक्रेताओं (successive dealers) द्वारा की गयी विक्री के कार्य (series of sales) में किसी अवस्था पर किसी माल, माल की श्रेणी या विवरण (any goods or classes or description of goods) पर राज्य सरकार सेल्स टैक्स लगा सकती है अथवा उन्हें इस टैक्स से बरी कर सकती है तथा ऐसा करते समय यह निश्चित कर सकती है कि रजिस्टर्ड माल बेचनेवालों (registered dealers) के अलावा किसी और व्यक्ति को की गयी विक्री करयुक्त होगी।

माल बेचनेवालों का रजिस्ट्रेशन (Registration of Dealers); धारा ९ — १. जो माल बेचनेवाला इस सन्निधम की धारा ३ के मुताबिक सेल्स टैक्स देने के लिए बाध्य है, वह तब तक अपना व्यापार नहीं कर सकता जब तक कि इस सन्निधम के अनुसार रजिस्ट्रेशन कराकर रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट (registration certificate) प्राप्त नहीं कर लेता।

२. जिस माल बेचनेवाले (व्यापार के मालिक, फर्म के साझेदार, अविभाजित हिन्दू परिवार, फर्म के कर्त्ता या कम्पनी का संचालक) को रजिस्ट्रेशन कराना हो, उसे निश्चित अधिकारी के पास कानून में बताये गये तरीके से दरखास्त देनी चाहिए।

३. दरखास्त प्राप्त करनेवाला व्यक्ति अगर इस बात से सन्तुष्ट हो जाय कि दरखास्त बताये गये तरीके के अनुसार दी गयी है तो वह माल बेचनेवाले के नाम में खास तरीके के माल की विक्री के लिए दरखास्त देनेवाले का नाम रजिस्टर्ड करके एक रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट (registration certificate) दे देगा।

४. इस धारा के अन्दर दी गयी खबर के अनुसार अथवा और किसी तरह से किसी प्रकार की सूचना मिलने पर, कमिशनर (commissioner) सोच-विचार करके रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट में रद्दी-बदल कर सकता है।

५. धारा ९ (१) की उपधारा २८ के अनुसार उल्लंघन करने पर अगर किसी माल को बेचनेवाले ने समाहित धन (composition money) चुकाया हो अथवा वह जेल गया हो अथवा उसपर टैक्स लगाया गया तो कमिशनर उसे रजिस्टर्ड करके उसके नाम में रजिस्टर्ड सर्टिफिकेट (registered certificate) निर्गमित कर सकता है तथा वह रजिस्ट्रेशन इस धारा की उपधारा ३ के मुताबिक माल बेचनेवाले के द्वारा दरखास्त दे देने पर रजिस्टर्ड किये जाने की तरह ही माना जायगा।

६. अगर—(a) किसी कारबार का मालिक अपने कारबार को छोड़ देता है (discontinues) अथवा यह कारबार किसी और व्यक्ति को हस्तांतरित कर देता है, अथवा

(b) उस कारबार का सकल-विक्रय (gross turnover) बिहार राज्य के अन्दर तथा बाहर दोनों मिलाकर लगातार तीन साल तक १५,०००) ६० से ज्यादा नहीं हुआ है,

तब तक एक निश्चित तारीख से कमिशनर रजिस्ट्रेशन को रद्द कर देगा।

**स्वेच्छित रजिस्ट्रेशन (Voluntary Registration)**—अगर किसी माल बेचनेवाले को बिहार राज्य के अन्दर तथा बाहर दोनों मिलाकर सकल विक्रय (gross turnover) किसी साल १५,००० ६० से ज्यादा हो तो वह अपनी मर्जी से चार महीने के अन्दर (before the commencement of the quarter immediately following period) निश्चित तरीके से निश्चित व्यक्ति के पास दरखास्त देकर रजिस्ट्रेशन करा सकता है। इसके लिए भी और सभी कानून लागू होंगे।

**रजिस्टर्ड माल बेचनेवालों की सूची प्रकाशित करना (Publication of the list of registered dealers); धारा ११**—इस सन्निधय के शुरू होने पर जहाँ तक जल्दी हो सकेगा, कमिशनर एक निश्चित तरीके से रजिस्टर्ड माल बेचनेवालों के नाम और पता, उनके द्वारा बेचे जानेवाले माल के विवरण के साथ एक सूची प्रकाशित करेगा तथा उसी तरीके से समय-समय पर उन व्यक्तियों की सूची भी प्रकाशित करेगा—

(a) जो उनके बाद रजिस्टर्ड किये गये हैं अथवा जिनके रजिस्ट्रेशन में सुधार (amendment) किया गया है अथवा रद्द किया गया है; तथा

(b) जो सुधार करने के बाद एकत्रित सूची (consolidated list) के रूप में तैयार हुआ है।

## विवरणी (Returns)

धारा १४—१. जिस माल बेचनेवाले को कमिश्नर ने विवरणी (returns) देने की नोटिस बी हो तथा, अन्य सभी रजिस्टर्ड विक्रेता (registered dealers) निश्चित तरीके से निश्चित तारीख पर निश्चित व्यक्ति के पास अपनी विवरणी (returns) दाखिल करेंगे।

२. अगर कोई माल बेचनेवाला अपनी विवरणी में गलती से गलत विवरण (statement) दे देता है तो वह कर-निर्धारण (assessment) के पहले एक अन्य विवरणी दाखिल कर सकता है।

अगर कमिश्नर इस बात से सन्तुष्ट हो जाय कि पहली विवरणी (first returns) मान बेचनेवाले ने जान-बूझकर गलत दाखिल की थी अथवा इसे राज्य सरकार को धोखा देकर उसे आमदनी (revenue) से वंचित रखने के विचार से दी थी तो कमिश्नर नयी विवरणी (revised returns) को अस्वीकार कर सकता है।

३. अगर कोई माल बेचनेवाला, बिना वजह के, निश्चित तारीख से एक महीने के अन्दर अपनी विवरणी दाखिल नहीं करता है तब कमिश्नर उसपर निश्चित तारीख से प्रत्येक दिन के लिए पाँच रुपये प्रतिदिन की दर से जुर्माना लगा सकता है।

४. ऊपर लिखे गये जुमाने को धारा ३८ (१) (b) के दण्ड (punishment) से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

## कर-निर्धारण (Assessment)

धारा १६—१. जब कमिश्नर माल बेचनेवाले के द्वारा दाखिल की गयी विवरणी (returns) से सन्तुष्ट हो जाता है और जब माल बेचनेवाले को खुद कचहरी में उपस्थित होना या कोई सबूत देना आवश्यक नहीं समझा जाता है, तब उसी विवरणी (returns) के आधार पर कमिश्नर माल बेचनेवाले के लिए कर निर्धारित कर देता है।

२. (a) अगर कमिश्नर माल बेचनेवाले के द्वारा दाखिल की गयी विवरणी (returns) से सन्तुष्ट नहीं होता और उसकी उपस्थिति या उसके द्वारा सबूत देना इसलिए जरूरी समझा जाता है कि वह दिखाये कि दाखिल की गयी विवरणी (returns) पूरी एवं ठीक है तो वैसी हालत में वह कमिश्नर माल बेचनेवाले को इस बात की नोटिस देता है कि वह एक निश्चित तारीख और स्थान पर खुद हाजिर हो या विवरणी (returns) के सही होने का सबूत पेश करे।

(b) इस तरह के मांगे गये सबूतों की सुनवाई निश्चित तारीख को कमिश्नर करेगा तथा उसके लिए सेल्स-टैक्स तय करेगा।

३. उपधारा २ के मुताबिक अगर नोटिस देने के बाद भी माल बेचनेवाला यथोचित कार्य नहीं कर सका तो कमिश्नर अपने विचार से विक्री-कर (sales-tax) निर्धारित कर देगा।

४. अगर निश्चित तारीख तक कोई रजिस्टर्ड माल बेचनेवाला अपनी विवरणी (returns) दाखिल नहीं करता है तो कमिश्नर उसकी बातों को सुनने का यथोचित समय देने के बाद अपने मन से उसपर विक्री-कर (sales-tax) निर्धारित कर देगा।

५. कमिश्नर को जो सूचना मिली है उससे यदि वह इस बात पर सन्तुष्ट हो जाय कि अमुक माल बेचनेवाले को विक्री-कर (sales-tax) देना चाहिए, लेकिन उसने जान-बूझकर (willfully) रजिस्ट्रेशन के लिए दख्खास्त नहीं दी है तो उसे सुनवाई के लिए एक यथोचित अवसर देने के बाद कमिश्नर अपने मन से उसपर उक्त अवधि तथा आगामी वर्षों के लिए विक्री-कर (sales-tax) निर्धारित कर सकता है तथा इसके अलावा उसपर विक्री-कर की राशि की अधिक-से-अधिक डेढ़गुनी (१½) रकम जुर्माना के रूप में लगा सकता है।

६ इस धारा के अन्दर निर्धारित विक्री-कर इस सन्नियम के अन्दर किये गये किसी मुकदमे को प्रभावित नहीं करेगा।

लेकिन, विक्री-कर निर्धारण-सम्बन्धी वैसे मुकदमे को प्रोत्साहन नहीं दिया जायगा जो चार साल का हो अथवा नया कर-निर्धारण किये जाने की अपील (appeal), रिवीजन (revision), समीक्षा (review) अथवा निर्देश (reference) से दो साल के बाद का हो।

### विक्री-कर का भुगतान एवं वसूली (Payment and Recovery of Tax)

धारा २०—प्रत्येक रजिस्टर्ड माल बेचनेवाले (registered dealer) को सरकारी खजाने (government treasury) में विक्री-कर-राशि जमा करनी पड़ती है। अगर कोई माल बेचनेवाला दूसरी विवरणी (revised returns) दाखिल करता है जिसमें कर-राशि ज्यादा हो तो उसके लिए उसको अतिरिक्त रकम (extra amount) चुका देनी चाहिए। अगर कोई माल बेचनेवाला निश्चित तारीख तक अपने टैक्स का भुगतान नहीं करता है तो कमिश्नर उसपर ज्यादा-से-ज्यादा पाँच रुपये प्रतिदिन की दर से जुर्माना लगा सकता है।

सेल्स टैक्स और जुर्माने की रकम निश्चित तारीख तक नहीं चुकाने से कमिश्नर उस व्यक्ति को ४५ दिनों से ज्यादा की नोटिस देगा। किसी खास माल बेचनेवाले के आग्रह पर कमिश्नर इस अवधि को बढ़ा सकता है, अथवा माल बेचनेवालों को किस्तों (instalments) में भुगतान करने की आज्ञा दी जा सकती है।

अगर माल बेचनेवाला अब भी सेल्स टैक्स या जुर्माना नहीं देता है तो कमिश्नर को यह अधिकार दिया गया है कि वह उस व्यक्ति पर सेल्स टैक्स की रकम अधिक-से-अधिक आधा राशि (half amount of the tax) और भी जुर्माना लगा सकता है।

अगर नोटिस में दी गयी तारीख तक माल बेचनेवाला अब भी सेल्स टैक्स या जुर्माना का भुगतान नहीं करता है तो वह भू-राजस्व (land revenue) की तरह वसूला जा सकता है। अगर माल बेचनेवाले ने इसके सम्बन्ध में अपील की हो तो जब तक वह अपील चल रही है, तब तक वह करदाता (assessee) अपील के अधिकारी (appellate authority) द्वारा निर्दोष बताया जा सकता है।

अन-रजिस्टर्ड माल बेचनेवाले टैक्स नहीं ले सकते : Unregistered Dealers not to Collect Tax)

इस तरह के कोई भी माल बेचनेवाले जो 'बिहार विक्री-कर सन्नियम' के अनुसार रजिस्टर्ड नहीं हुए हैं, अपने ग्राहकों से सेल्स टैक्स वसूल नहीं कर सकते। इसी तरह कोई भी रजिस्टर्ड माल बेचनेवाले इस सन्नियम के प्रतिबन्धों और शर्तों (restrictions and conditions) के खिलाफ टैक्स नहीं ले सकते।

अगर कोई माल बेचनेवाला ऊपर के नियम के अनुसार टैक्स वसूल कर लेता है तो उसे कमिश्नर या अन्य अधिकारी के आज्ञानुसार सरकारी खजाने में कुल रकम जमा करनी होगी, नहीं तो इसे भी भू-राजस्व (land revenue) की तरह वसूल किया जायगा। यह नियम किसी और तरह की कानूनी कार्रवाई या दण्ड को प्रभावित नहीं करेगा।

### वसूली के विशेष तरीके (Special Mode of Recovery)

अगर सेल्स टैक्स देनेवाले विक्रेता की कोई रकम किसी अन्य व्यक्ति के पास हो अथवा होनेवाला हो तो लिखित सूचना देकर विक्रेता का देय कर तथा जुर्माना उससे वसूल किया जा सकता है। इसकी वसूली भी भू-राजस्व (land revenue) की तरह की जा सकती है।

### वापस करना (Refund)

धारा २८ के अनुसार अगर कोई माल बेचनेवाला देय टैक्स या जुर्माना से ज्यादा रुपये का भुगतान कर देता है तो कमिश्नर के द्वारा वह ज्यादा रकम आगामी वर्ष के देय टैक्स में छूट (adjustment) दे दी जायगी अथवा नकद रूप में वापस दे दी जायगी। लेकिन, इस तरह के ज्यादा टैक्स के लिए माल बेचनेवाले को सूचना मिलने के तीन साल के अन्दर दावा (claim) कर देना चाहिए अन्यथा बाद में उसकी सुनवाई नहीं होगी।

### लेखा (Accounts)

जिन रजिस्टर्ड माल बेचनेवालों या और माल बेचनेवालों को विवरणी (returns) दाखिल करने की सूचना दी गयी हो वे अपने यहाँ सभी तरह के उत्पादित (produced), निर्मित (manufactured), खरीदे (bought) या बेचे गये (sold) माल का ठीक-ठीक लेखा रखेंगे।

फिर, रजिस्टर्ड माल बेचनेवालों के लिए कमिश्नर नकदी पुर्जा (cash memorandum) का फार्म निश्चित कर सकता है तथा उनके स्टॉक (stock) में रखे गये माल, क्रय-विक्रय इत्यादि के लिए बही-खाता रखने का तरीका भी बतला सकता है।

लेखों और दस्तावेजों को दाखिल करना तथा उनका परीक्षण एवं जाँच (Production and Inspection of Accounts and Documents and search of Premises)।

१. हर एक खरीद-विक्री के सम्बन्ध में जो प्रपत्र और लेखा (account or documents) हों उन सबों को दाखिल करने के लिए कमिश्नर माल बेचनेवालों से कह सकता है तथा माल के स्टॉक, खरीद-विक्री, सुपुर्दगी (deliveries) इत्यादि के सम्बन्ध में भी आवश्यक सूचनाएँ (informations) माँग सकता है।

२. माल के स्टॉक, खरीद-विक्री, सुपुर्दगी तथा व्यापार करने के स्थान की जाँच एवं परीक्षा करने का अधिकार कमिश्नर को है।

३. अगर कमिश्नर को इस बात का शक हो जाय कि अमुक माल बेचनेवाला सेल्स टैक्स देने से अपने को वंचित (evade) रखने की कोशिश कर रहा है और

अगर आवश्यक हो तो वह वैसे माल बेचनेवाले के लेखों (accounts), खाता अथवा प्रपत्रों (registers or documents) को जप्त कर सकता है और वह इन कागजों को तब तक अपने पास रख सकता है जब तक कि उसकी जाँच या मुकदमे के लिए आवश्यक समझे जायँ।

४. उपधारा (२) और (३) के मुताबिक कमिशनर माल बेचनेवाले के व्यापार के स्थान पर जा सकता है और खाता-बही की जाँच या परीक्षा कर सकता है।

### अधिकार सौंपना (Delegation of Power)

राज्य सरकार किसी घोषणा (notification) द्वारा किसी व्यापार के क्षेत्र में या किसी शर्त के साथ कमिशनर के अधिकार एवं कर्तव्यों को कमिशनर को मदद देने के विचार से बँहाल किये गये किसी अन्य अधिकारी को सौंप सकती है।

व्यापार में परिवर्तन करने की सूचना (Information to be furnished regarding changes in business)

अगर कोई माल बेचनेवाला जिसके लिए धारा ४ (१) के कानून लागू होते हैं—  
(a) अपने व्यापार का पूरा या आंशिक भाग बेच देता है अथवा उस व्यापार के स्वत्व (ownership) में कोई रद्दो-बदल करता है; अथवा

(b) अपने व्यापार को खत्म (discontinued) कर देता है या व्यापार के स्थान में बदली करता है या व्यापार के लिए एक नया स्थान खोजता है; अथवा

(c) अपने व्यापार का माल या व्यापार के कार्य में बदली करता है या जिसको वह बेचता है उसी में कुछ रद्दो-बदल करता है;

तो उसे अपने अधिकारी के पास निश्चित समय के अन्दर इसकी खबर कर देनी चाहिए और अगर माल बेचनेवाले व्यक्ति की मृत्यु हो गयी हो तो यह कार्य उसके वैधानिक प्रतिनिधि (legal representative) द्वारा किया जाना चाहिए।

व्यापार के हस्तांतरिती द्वारा टैक्स का भुगतान (Tax Payable by Transferee of Business)

अगर किसी व्यापार का पूर्ण स्वत्व (complete ownership) किसी दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित (transfer) कर दिया जाता है और हस्तान्तरण के पहले का कुछ टैक्स बाकी हो तो उसका भुगतान हस्तान्तरिती (transferee) को करना पड़ेगा चाहे दोनों में कोई रजिस्टर्ड हो या नहीं; और, हस्तांतरिती (transferee) इस तरह के हस्तान्तरण (transfer) के बाद सभी टैक्स के लिए दायी होगा एवं रजिस्ट्रेशन के लिए ३० दिनों के अन्दर दरखास्त देनी पड़ेगी।

कमिशनर को झगड़े का निबटारा करने का अधिकार (Power of Commissioner to determine disputes)

अगर कचहरी में मुकदमा होने के अलावा सन्निधय के अन्दर इस तरह का और कोई सवाल पैदा हो जाय—

(a) कि अमुक व्यक्ति, फर्म अथवा किसी फर्म की कोई शाखा या विभाग (department) माल बेचनेवाला है या नहीं; अथवा

(b) कोई व्यवहार (transaction) विक्री (sale) है या प्रसंविदा (contract);  
अथवा

(c) किसी रजिस्टर्ड माल बेचनेवाले द्वारा खरीद किया गया कोई माल उसके रजिस्ट्रेशन-पत्र (certificate of registration) के अन्दर आता है या नहीं; अथवा

(d) कोई टैक्स किसी विशेष विक्री अथवा प्रसंविदा के सम्बन्ध में देय (payable) है या नहीं; अथवा

(e) कोई वस्तु या वस्तुओं का वर्ग (class of goods) माल बेचनेवाले रजिस्ट्रेशन-पत्र में शामिल करना चाहिए या नहीं;

तो ऐसे प्रश्नों का निबटारा कमिश्नर द्वारा किया जायगा। लेकिन, इस निबटारा के पहले की गयी किसी विक्री अथवा प्रसंविदा के सम्बन्ध में माल बेचनेवाले का कोई दायित्व नहीं होगा।

शपथ देकर गवाही लेने का कमिश्नर का अधिकार (Power of Commissioner to take evidence on Oath)

कमिश्नर या धारा के अन्दर बहाल किये गये व्यक्ति को मुकदमे की सुनवाई करने के समय निम्नलिखित विषयों पर वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो अधिकार किसी न्यायालय को 'कोड ऑफ सिविल प्रोसेड्योर' (Code of Civil Procedure, 1908) के अनुसार प्राप्त हैं—

(a) किसी भी मनुष्य को हाजिर होने के लिए मजबूर करना तथा उनको कसम देकर बातों की जानकारी करना;

(b) दस्तावेजों (documents) को दाखिल करने के लिए बाध्य करना; तथा

(c) गवाहों की जाँच (examination) के लिए कमीशन (commissions) जारी करना;

और इस तरह की कार्यवाही (proceedings) भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की धाराएँ १९३, २२८ और १९६ के मुताबिक 'न्यायिक कार्यवाही' (Judicial Proceedings) समझी जायगी।

कुछ कार्यवाहियों के खिलाफ अड़चन (Bar to certain proceedings)

'बिहार विक्रय-कर सन्निध' के अन्दर दिये गये नियमों के अलावा और हालतों में कमिश्नर या अन्य अधिकारी द्वारा कर-निर्धारण (assessment) की आज्ञा या बनाये गये कानून के खिलाफ पुनर्निरीक्षण (revision) या समीक्षा (review) के लिए किसी न्यायालय में कोई अपील (appeal) या दरख्वास्त (application) की सुनवाई नहीं होगी।

अपील, पुनर्निरीक्षण तथा समीक्षा (Appeal, Revision and Review)

धारा ३०—१. कोई भी माल बेचनेवाला लगाये गये टैक्स के खिलाफ एक निश्चित तरीके से निश्चित व्यक्ति के पास अपील कर सकता है। लेकिन, उस अपील की सुनवाई तब तक नहीं होगी जब तक लगाये गये टैक्स का २० प्रतिशत अथवा अपील करनेवाला जो रकम देय होने की स्वीकृति दे, दोनों में जो अधिक हो, निश्चित व्यक्ति के पास जमा कर दी जाय।

२. अगर अपील करनी हो तो साधारणतः नोटिस मिलने के ४५ (पैंतालिस) दिन



के अन्दर अपील दाखिल कर देनी चाहिए। लेकिन, अगर अपील सुननेवाला व्यक्ति इस बात से सन्तुष्ट हो जाय कि समय पर क्यों नहीं अपील की गयी तो समय खत्म हो जाने के बाद भी अपील स्वीकार की जा सकती है।

३. अपील सुननेवाले व्यक्ति को अपील के सम्बन्ध में निम्नलिखित अधिकार हैं—

(a) लगाये गये टैक्स अथवा जुर्माना दोनों की पुष्टि (confirmation) कर सकता है। उसे घटा (reduce) सकता है, बढ़ा सकता है या रद्द (annul) कर सकता है।

(b) लगाये गये टैक्स अथवा जुर्माना, दोनों को रद्द (set aside) कर दे सकता है तथा टैक्स लगानेवाले व्यक्ति की जाँच कर लेने के बाद नया आदेश (fresh order) देने को कह सकता है।

(c) दिये गये आदेश के खिलाफ अपील करने पर जैसा उचित समझे, अपनी आज्ञा दे सकता है।

४. दरखास्त देने पर अथवा अपने मन से भी एक निश्चित व्यक्ति इस सन्तियम के अनुसार दिये गये किसी आदेश (order) का पुनर्निरीक्षण (revision) कर सकता है।

अगर अधिकारी द्वारा स्वेच्छा से पुनर्निरीक्षण (revision) किया जाता हो तो वैसे आदेश से चार साल की अवधि समाप्त होने के पहले होना चाहिए।

५. बहाल किये गये व्यक्ति के द्वारा जारी किये गये किसी ऑर्डर अथवा बनाये गये किसी नियम की समीक्षा (review) उसी व्यक्ति या उसकी जगह पर बहाल किये गये व्यक्ति के द्वारा की जा सकती है।

५ (ए). कमिश्नर या धारा के मुताबिक बहाल किया गया कोई व्यक्ति अथवा उपधारा (१) के द्वारा निश्चित किया गया कोई व्यक्ति जारी की गयी नोटिस की तारीख से एक साल के अन्दर कभी भी दरखास्त देने पर अथवा अपने मन से आदेश की प्रत्यक्ष अशुद्धियों या गलतियों (apparent mistakes) की शुद्धि (rectification) कर सकता है।

लेकिन, अगर शुद्धि (rectification) की वजह से टैक्स में बढ़ती होती है अथवा टैक्स-वापसी (refund) में घटती होती है तो ऐसी शुद्धि तब तक नहीं की जा सकती है जब तक कि उसे उक्त अधिकारी माल बेचनेवाले को नोटिस देकर उसकी बातों की सुनवाई का यथोचित अवसर (reasonable opportunity) न दे।

६. इस धारा के मुताबिक कोई भी ऐसा ऑर्डर (order), जो माल बेचनेवाले के खिलाफ हो, बगैर उसे सफाई के लिए मुनासिब समय दिये जारी नहीं किया जा सकता।

**जुर्माना करने का अधिकार (Power to impose Penalty)**

अगर कमिश्नर या धारा के मुताबिक बहाल किया गया कोई भी व्यक्ति इस बात से सन्तुष्ट हो जाय कि माल बेचनेवाले आदमी ने विक्री का विवरण (return of sales) छिपाया है अथवा जान-बूझकर लागत-विक्री का विवरण दिया है तथा विवरणी (returns) में वास्तविक विक्री की रकम से कम विक्री दिखलायी है तो वह उक्त माल बेचनेवाले पर उतनी रकम तक जुर्माना लगा सकता है जितनी कि सही हिसाब देने पर उसे टैक्स के रूप में देनी पड़ती है। लेकिन, इस तरह का

आदेश वह तभी दे सकता है जबकि इस सम्बन्ध में माल बेचनेवाले को सुनवाई के लिए मुतासिब समय दिया गया है।

हाईकोर्ट के पास मुकदमे का विवरण भेजना (Statement of case to High Court; Section 33)

१. धारा ३१ तथा ३२ के मुताबिक बोर्ड ऑफ रेवेन्यू (Board of Revenue) या माल बेचनेवाले के द्वारा टैक्स चुकाने के सम्बन्ध में किसी तरह का आदेश जारी होने से नब्बे दिनों के अन्दर वह माल बेचनेवाले या कमिश्नर लिखित दरखास्त (माल बेचनेवाले को १०० सौ रुपये शुल्क के साथ) बोर्ड के पास इस बात के लिए प्रस्तुत कर सकता है कि वह कानून से सम्बद्ध उठे प्रश्न को हाईकोर्ट के पास भेज (refer) दे।

२. अगर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू इसे भेजने से नामजूर कर देता है तो ९० दिनों के अन्दर दरखास्त देनेवाला—(a) अपनी दरखास्त को वापस माँग सकता है और माल बेचनेवाले के द्वारा जमा की गयी फीस (fees) का रुपया वापस कर दिया जायगा; अथवा

(b) वह इस इनकार (refusal) के खिलाफ हाईकोर्ट में दरखास्त दे सकता है।

३. अगर हाईकोर्ट ऊपर लिखे गये इनकार की कोई उचित वजह नहीं पाता है तो वह बोर्ड को मुकदमे का विवरण तैयार कर हाईकोर्ट में भेजने को कहेगा।

४. अगर हाईकोर्ट विवरण से सन्तुष्ट न हो तो मुकदमे को बोर्ड के पास लौटा देगा और उसमें कुछ बातें जोड़ने (additions) या रद्दीबदल (alterations) करने को कहेगा।

५. हाईकोर्ट कानून-सम्बन्धी बातों की सुनवाई करके अपना फैसला देगा कि वह किस आधार पर आधारित (founded) है। इसका भी वर्णन करेगा और बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के पास इसकी एक कॉपी कचहरी की मुहर देकर और रजिस्ट्रार का दस्तखत कराकर भेज देगा जिसके मुताबिक ही बोर्ड मुकदमे का फैसला करेगा।

६. जब हाईकोर्ट में मुकदमा भेजा गया हो तो उसका खर्च (costs) तथा उपधारा (१) में लिखी गयी फीस न्यायालय की इच्छा पर आधारित रहेगी।

७. अगर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के द्वारा टैक्स चुकाने का आर्डर दिया गया है जिसके लिए उपधारा (१) के मुताबिक दरखास्त दी गयी है तो उस दरखास्त की सुनवाई तक या हाईकोर्ट के पास भेजे जाने पर टैक्स का भुगतान रोका (stayed) नहीं जा सकता। अगर इसी तरह रकम निर्देश (reference) के फलस्वरूप घटा दी गयी हो तो अतिरिक्त टैक्स लौटाया जायगा।

८. समय खत्म हो जाने पर भी (after the expiry of the period of limitation) अगर दरखास्त देनेवाला मनुष्य इस बात को साबित कर दे कि निश्चित समय के अन्दर दरखास्त नहीं देने का यथोचित कारण था तो बोर्ड ऑफ रेवेन्यू या हाईकोर्ट दरखास्त को स्वीकार कर सकता है।

अपराध और जुर्माना (Offences and Penalties)

धारा ३८—(१) अगर कोई मनुष्य धारा ९ (१) के खिलाफ अपने फर्म को सेल्स टैक्स के लिए रजिस्टर्ड कराये बिना कोई व्यापार करता है; या

(b) बगैर कोई यथोचित कारण (without sufficient cause) की विवरणी (returns) दाखिल नहीं करता है अथवा गलत विवरणी (false returns) दाखिल करता है; या

(c) रजिस्टर्ड माल बेचनेवाला माल के किसी वर्ग के लिए गलत वर्णन करता है कि उक्त वर्ग (such class) उसके रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट में शामिल है; या

(d) अन्य माल बेचनेवालों से माल खरीदते समय वह गलत बोलता है कि वह एक रजिस्टर्ड माल बेचनेवाला (registered dealer) है, हालाँकि वह रजिस्टर्ड नहीं है; या

(e) नकदी रसीद (Cash Memo) नहीं देता है अथवा लेखों की खाता-बही (books of accounts) या दस्तावेजों को कमिश्नर द्वारा बताये गये तरीके के अनुसार नहीं रखता है; या

(f) दी गयी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता है; या

(g) जान-बूझकर गलत लेखा, बही अथवा दस्तावेजों (documents) को रोकता है या दाखिल करता है अथवा जान-बूझकर गलत सूचनाएँ (incorrect information) देता है; या

(h) किसी ऑफिसर (officer) की जाँच (inspection), खोज (search) अथवा जड़ती (seizure) में बाधा पहुँचती है, या

(i) आवश्यक सूचनाएँ देने में असावधानी करता है (neglects to furnish any information required); या

(j) रजिस्टर्ड माल बेचनेवाला (registered dealer) नहीं रहने पर भी अपने ग्राहकों से सेल्स टैक्स वसूल करता है; या

(k) किसी नियत ऑफिसर (empowered officer) द्वारा अपने बही-खातों तथा माल के स्टॉकवाले स्थान की जाँच होने के डर से बन्द रखता है—

तब उसे ज्यादा से ज्यादा छः महीने की कैद (imprisonment) या एक हजार रुपये का जुर्माना या दोनों ही सजाएँ दी जा सकती हैं और अगर उसका अपराध इसके बाद भी चलता रहता है (is a continuing one) तो जब तक वह अपराध करता रहेगा तब तक के लिए ज्यादा-से-ज्यादा पचास रुपये प्रतिदिन की दर से जुर्माना (fine) किया जा सकता है।

२. बगैर कमिश्नर से मंजूरी (sanction) लिये कोई भी न्यायालय इस सन्निधम के अन्दर किये गये अपराध को विचाराधीन (cognizance) नहीं रख सकता तथा इस तरह के अपराध की सुनवाई (trial) प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट (magistrate of the first class) से कम का न्यायालय नहीं कर सकता।

अगर कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसेड्यूर (Code of Criminal Procedure, 1898) के खिलाफ कुछ नहीं हो तो बिहार विक्रय-कर-सन्निधम के अन्दर दण्डनीय अपराध (punishable offence) विचाराणीय (cognizable) और जमानत पर छूटने योग्य (bailable) होगा।

### अपराधों का अनुसंधान (Investigation of Offences)

धारा ३९ के मुताबिक ऐसे व्यक्ति को, जो धारा ८ के अनुसार बहाल किया गया है, इस सन्निधम के अन्दर दण्डनीय अपराधों का अनुसंधान या छानबीन करने का अधिकार है और वह कमिश्नर की इस सिलसिले में मदद कर सकता है। इस तरह से अधिकृत व्यक्ति को ऑफ क्रिमिनल प्रोसेड्यूर के द्वारा दिये गये अपने

अधिकारों (powers) का उपयोग किसी थाने के थानेदार पर भी कर सकता है।

### अपराधों का संयोग (Compounding of Offences)

धारा ४० के अनुसार, मुकदमा होने के पहले या बाद के अपराध के लिए, अधिक-से-अधिक दो हजार रुपये का अथवा धारा ३८ (a) और (b) के अन्दर अपराध के लिए अधिक-से-अधिक देय टैक्स (tax payable) की दुगुनी रकम तक का मुआवजा (compensation), दोनों में जो ज्यादा हो, लेकर कमिशनर समझौता (composition) कर सकता है।

इस तरह के तय किये गये मुआवजे (compensation) का भुगतान कर देने के बाद अपराधी व्यक्ति (accused person) पर उस अपराध के सम्बन्ध में कोई कार्रवाई नहीं की जायेगी।

### क्षति की पूर्ति (Indemnity)

धारा ४४ के अनुसार कोई सरकारी कर्मचारी (government servant) इस सन्निधम के अनुसार सद्विश्वास-सहित इसके अन्दर बने किसी नियम के अनुसार कार्य करता है तो उसके खिलाफ कोई मुकदमा (suit), अभियोग (prosecution) या अन्य प्रकार की कोई वैधानिक कार्यवाही (other legal proceedings) नहीं की जा सकती।

### सरकारी कर्मचारी के द्वारा सूचनाएँ देना (Disclosure of information by a Public Servant)

धारा ४५ के अनुसार—१. किसी विवरण (statement), विवरणी, लेखों या या दस्तावेजों की बातें गुप्त (confidential) मानी जाती है तथा उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का भेद खोलने के लिए किसी सरकारी कर्मचारी को भी न्यायालय द्वारा मजबूर नहीं किया जा सकता। लेकिन, इसके कुछ अपवाद (exceptions) हैं जो उपधारा (३) में लिखे गये हैं।

२. अगर कोई सरकारी कर्मचारी ऊपर लिखी गयी उपधारा (१) के खिलाफ कोई भेद खोल देता है तो इस अपराध के लिए उसे ज्यादा-से-ज्यादा छः महीने का जेल या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

३. ऊपर लिखे गये नियम निम्नलिखित अपवादों (exceptions) में लागू नहीं होते—

(a) भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) के अन्दर किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए किसी विवरण (statement), विवरणी (returns), लेखा (accounts), दस्तावेजों (documents) या सबूत (evidence) या इन सबों के किसी एक भाग (or any part thereof) का भेद देना; या

(b) इस सन्निधम के अन्दर मुकदमा (prosecutions) चलाने के लिए; या

(c) किसी कमिशनर या और किसी ऑफिसर के आचार-व्यवहार (conduct or behaviour) के सम्बन्ध में 'पब्लिक-सर्वेंट्स इन्क्वायरीज ऐक्ट' (Public Servants Inquiries Act, 1850) के अनुसार जाँच-पड़ताल करने के लिए; या

(d) सिविल कोर्ट (Civil Court) में चलनेवाले वैसा मुकदमा जिसका बिहार राज्य (State of Bihar) एक पक्ष (party) हो और जो इस सन्निधम के अन्दर

किसी कार्यवाही (proceedings) से सम्बद्ध कोई बात हो; या

(e) किसी केन्द्रीय (Central) या राज्य सरकार (State Government) के ऑफिसर (officer) के द्वारा कोई टैक्स लगाने के लिए अथवा लगाये गये टैक्स को वसूल करने लिए; या

(f) इस सन्निधय के अनुसार राज्य सरकार के किसी ऑफिसर को अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए ।

नियम बनाने का अधिकार (Power to make Rules)

धारा ४६ के अनुसार—१. बिहार सरकार बिहार-विक्रय-कर-सन्निधय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बना सकती है ।

२. इसके पहले जितने अधिकारों का लेखा किया गया है वे अगर प्रभावित नहीं होते तो निम्नलिखित नियम भी बनाये जा सकते हैं—

(a) धारा २ (b) (ii) के अन्दर पारिश्रमिक (cost of labour) तथा अन्य सेवाओं का खर्च तय करने के लिए ।

(b) धारा २ (i) के अन्दर विक्री (turnover) का पता लगाने के लिए रीति निश्चित करना ।

(c) धारा ३ (१) के अन्दर कमिश्नर की सहायता के लिए अधिकारियों का पद (designation) तय करना ।

(d) धारा (४) में लिखे गये लगातार तीन साल बीतने के बाद समय या अवधि बढ़ाने के लिए ।

(e) टैक्स के सम्बन्ध में समझौते के लिए परिस्थितियों तथा शर्तों का निश्चय करना एवं उसके लिए शुल्क तय करना ।

(f) { Repealed by Section 14 (ii) of Bihar

(g) { Sales Tax (Amendment) Act, 1948.

(h) धारा ६ के अन्दर करमुक्त माल (tax-free goods) या उसकी श्रेणी तय करने के लिए शर्तों का निर्णय करना ।

(i) धारा ७ के अन्दर किसी माल बेचनेवाले को विक्री-कर से मुक्त (exemption) करने के लिए प्रतिबन्ध (restriction) और शर्त (condition) निर्णय करना ।

(j) धारा ८ के अन्दर वैसी हालत तय करना जबकि किसी माल या माल बेचनेवाले को टैक्स से बरी (exempted from taxation) किया जायगा ।

(k) धारा ९ और १० के अन्दर रजिस्ट्रेशन (registration) के लिए दरखास्त प्राप्त करनेवाला अधिकारी (authority) तय करना ।

(l) माल बेचनेवालों के रजिस्ट्रेशन, रजिस्ट्रेशन की दरखास्त, इसके लिए फार्म, रजिस्ट्रेशन रद्द करने की तारीख वगैरह के लिए कार्यक्रम (procedure) तय करना ।

(m) धारा ११ के अनुसार सूची (list) और विवरण (particulars) प्रकाशित करने के लिए तरीका तय करना ।

(n) धारा १२ के मुताबिक विवरणी (returns) दाखिल करने की तारीख तथा अधिकारी तय करना ।

(o) धारा १३ के अन्दर विवरणी की तारीख तथा टैक्स निश्चित करने के लिए अनुसरणीय कार्यवाहियाँ तय करना ।

- (p) सेल्स-टैक्स चुकाने का तरीका तथा अन्तरावधि (interval) तय करना ।  
 (pp) धारा (ए) के अन्तर्गत रजिस्टर्ड (registered dealer) के द्वारा टैक्स वसूल किये जाने के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध तथा शर्तें तय करना ।  
 (q) टैक्स-वापसी (tax-refund) के लिए तारीख निश्चित करना ।  
 (r) नकदी पुर्जा (cost memoranda), लेखों की बही (books of accounts) तथा उनके फार्म एवं रखने की रीति तय करना ।  
 (s) लेखों, दस्तावेजों तथा सूचनाओं को दाखिल करने की शर्तें तय करना ।  
 (t) सूचनाएँ दाखिल करने के लिए अधिकारी एवं तारीख तय करना ।  
 (u) टैक्स-निश्चित (assessment) या उसके लिए जुर्माना या दोनों के लिए असील करने की तारीख तय करना ।  
 (v) पुनर्निरीक्षण (revision) या समीक्षा (review) के लिए अपील या दरखास्त दाखिल करने की कार्यवाही तय करना ।  
 (w) इस सन्निधय के अन्दर दी जानेवाली सूचनाओं की कार्यवाहियाँ तय करना ।

३. राज्य सरकार (State Government) को यह अधिकार दिया गया है कि बनाये गये नियमों का उल्लंघन करनेवाले को ज्यादा-से-ज्यादा एक हजार रुपये जुर्माना किया जायगा और यदि उल्लंघन करना लगातार चलता रहा तो उसके लिए अधिक-से-अधिक २५ रु० रोज की दर से जुर्माना किया जायगा ।

### गिरसन एवं उनके अपवाद (Repeal and Saving)

धारा ४७—बिहार विक्रय-कर-सन्निधय, १९४४ (Bihar Sales Tax Act, 1944) का गिरसन (repeal) कर दिया गया । लेकिन, बिहार विक्रय-कर-सन्निधय, १९४७ के पास होने के पहले के टैक्स देनेवाले का दायित्व अथवा हाईकोर्ट, बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, कमिश्नर या और किसी अधिकारी के सामने दाखिल किये गये कार्यक्रम, अपील या पुनर्निरीक्षण पर इस गिरसन (repeal) का कोई असर नहीं पड़ेगा और उनके लिए यह समझा जायगा कि बिहार विक्रय-कर-सन्निधय, १९४७ पास ही नहीं हुआ है । इसके अलावा, पहले सन्निधय के अन्दर बनाये गये नियम, प्रकाशित की गयी सूचना, पेश की गयी दरखास्त, दिये गये अधिकार तथा और बातें अगर वर्तमान सन्निधय के खिलाफ न हों तो वे सभी इस सन्निधय के लिए भी बनाये गये (made), प्रकाशित किये गये (published), स्वीकार किये गये (granted), अधिकृत (conferred) अथवा सम्पन्न किये गये (done) मान लिये जायेंगे ।

### बिहार राज्य के बाहर माल की खरीद-विक्री (Sale and Purchase of Goods outside Bihar State)

१. अगर इस सन्निधय में लिखे गये नियमों के खिलाफ न हो तो (a) इस सन्निधय के अन्दर माल की खरीद-विक्री पर टैक्स नहीं लगाया जायगा—

- (i) जबकि उक्त खरीद-विक्री बिहार राज्य के बाहर की गयी है; या
- (ii) जबकि उक्त खरीद-विक्री भारत के किसी क्षेत्र (territory of India) में आयात (import) के लिए अथवा इसके बाहर निर्यात (export) करने के लिए की गयी हो ।

(b) ३१ मार्च, १९५१ के बाद अन्तराज्य व्यापार (inter-state trade) में

माल की जो खरीद-विक्री की गयी हो उसपर कोई टैक्स नहीं लगेगा। लेकिन, इस नियम में हेर-फेर या संशोधन करने का अधिकार संसद् (Parliament) को है।

नये पैसों में विक्रय-कर का पुनर्निर्धारण (Rates of Sales Tax Refixed in Terms of New Coinage)

बिहार सरकार ने सामान्य विक्रय-कर (general sales tax), मोटर स्पीट-विक्रय-कर (motor spirit sales tax), बिजली चुंगी (electricity duty) तथा यात्री और माल वहन-कर (passengers and goods transport tax) के सम्बन्ध में पैसों में (in terms of paisa) निम्नलिखित टैक्स तय किया है जो १ अप्रैल, १९५८ से लागू हुए—

(a) विक्रय-कर (Sales Tax)—(i) सामान्य विक्रय-कर (general sales tax) चार पैसे प्रति रुपया की दर से लगेगा।

(ii) केन्द्रीय विक्रय-कर (Central Sales Tax, 1956) की धारा १४ के मुताबिक उस तरह की वस्तु पर, जो अन्तर्राज्य व्यापार में खास महत्व की घोषित की गयी हो (Goods declared to be of special importance in inter-state trade commerce), सात प्रतिशत की दर से सेल्स टैक्स लगेगा।

(iii) जिन वस्तु पर पहले एक आना प्रति रुपया सेल्स टैक्स लगता था उसपर अब सात पैसे लगेगा और जिसपर १½ पाई लगता था उसपर अब १ प्रतिशत से ४ प्रतिशत लगेगा।

(iv) कुछ वस्तुएँ, जैसे—प्लास्टिक की बनी वस्तुएँ (plastic goods), पीरैम-बुलेटर (perambulators) वगैरह—जिनपर पहले सामान्य दर का सेल्स टैक्स लगता था उनपर अब एक विशेष दर का सेल्स टैक्स (special rate of sales tax) सात पैसे प्रति रुपया की दर से देना पड़ेगा।

(b) मोटर-स्पीट-विक्रय-कर (Motor Spirit Sales Tax)—पेट्रोल (petrol including power alcohol) और स्पीट (spirit) पर जो पहले सेल्स-टैक्स क्रमशः ६ आना और ३ आना प्रति गैलन लगता था वह अब क्रमशः ३८ पैसे और १९ पैसे तय किया गया है और धीरे-धीरे बढ़ता चला जा रहा है।

(c) बिजली-चुंगी (Electricity Duty)—मकान में मीटर (meter) पर प्रति यूनिट छह पैसे की दर से बिजली-चुंगी लगेगी।

(d) यात्री और माल-वहन-कर (Passengers and Goods Transport Tax)—इसपर पहले जो दो आना प्रति रुपया लगता था वह अब १२½% कर दिया गया है।

केन्द्रीय विक्री-कर (Central Sales Tax)

केन्द्रीय विक्री-कर-सन्निधिम (Central Sales Tax Act), १९५७ ई० की १ जुलाई से लागू किया गया है। इस सन्निधिम के मुताबिक हर एक रजिस्टर्ड व्यापारी (registered dealer) को अपने यहाँ के सेल्स टैक्स ऑफिस (Sales Tax Office) में रजिस्ट्रेशन (registration) करा लेना चाहिए।

इस सन्निधिम के मुताबिक ग्राहक को अपने हर एक ऑर्डर (order) केन्द्रीय कर-घोषणापत्र (Central Tax Declaration Form) अवश्य भरना चाहिए। ऐसी हालत में उनको प्रति सैकड़ा तीन रुपया केन्द्रीय कर (central tax) देना पड़ेगा।

अगर व्यापारी ऐसा नहीं करता तो जिस राज्य से माल मँगाया जायगा, उस राज्य में प्रचलित उस तरह के माल के लिए तय किये गये सेल-टैक्स की दर से ही माल बेचनेवाला माल मँगानेवाले से केन्द्रीय कर (central tax) वसूल करेगा।

### साधारण विक्री-कर की दर (General Rate of Tax)—Sec. 8(2)

साधारण विक्री-कर की दर संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है—

समय (Period)	कर की साधारण दर
1. 7. 57 to 30. 9. 58	Same rate of Tax as was applicable on the sale or purchase of the goods in the appropriate State.
1. 10. 58 to 31. 3. 63	(क) declared goods—at the State rate (ख) non-declared goods—at the rate of seven per cent.
1. 4. 63 onwards	(क) declared goods—at the State rate. (ख) non-declared goods—at the rate of ten per cent or the State rate whichever is higher.

### विक्रय-राशि निर्धारित करना (Determination of Turnover)

विक्रय-राशि पर विक्री-कर निम्नलिखित आधार निकाला जाता है—“In determining the turnover of a dealer for the purposes of this Act, the following deductions shall be made from the aggregate of the sale prices; namely—

- (a) The amount arrived at by applying the following formula—
- $$\frac{\text{rate of tax} \times \text{aggregate of sale prices}}{100 \text{ plus rate of tax}}$$

Provided that no deduction on the basis of the above formula shall be made if the amount by way of tax collected by a registered dealer, in accordance with the provisions of this Act, has been otherwise deducted from the aggregate of sale prices.

Where the turnover of a dealer is taxable at different rates, the aforesaid formula shall be applied separately in respect of each part of the turnover liable to a different rate of tax;

- (b) The sale price of all goods returned to the dealer by the purchasers of such goods—

(i) Within a period of three months from the date of delivery of the goods, in the case of goods returned before the 14th day of May, 1966.

(ii) Within a period of six months from the date of delivery of the goods, in the case of goods returned on or after the 14th day of May, 1966.



Provided that satisfactory evidence of such return of goods and of refund or adjustment in accounts of the sale price thereof is produced before the authority competent to assess or, as the case may be, re-assess the tax payable by the dealer under this Act; and

(c) Such other deductions as the Central Government may, having regard to the prevalent market conditions, facility of trade and interests of consumers prescribe.

**उदाहरण—मान लिया जाय—** A dealer has inter-sale sales of Rs. 2,50,000 to registered dealers and Rs. 30,000 non-declared goods to other than registered dealers. His turnover will be Rs 2,50,000 plus tax collected by him @ 3% i.e., Rs. 7,500, totalling to Rs. 2,57,500 and Rs. 30,000 plus tax collected by him @ 10%; i.e., Rs. 3,000 totalling to Rs. 33,000.

Applying the formula, he has to deduct—

(a) From sale price to registered dealers—

$$\frac{(\text{rate of tax}) 3 \times (\text{aggregate of sale-prices}) 2,57,500}{100 + (\text{rate of tax}) 3}$$

Or  $\frac{7,72,500}{103}$  or Rs 7,500;

(b) From sale-price to other than registered dealers—

$$\frac{(\text{rate of tax}) 10 \times (\text{aggregate of sale prices}) 33,000}{100 + (\text{rate of tax}) 10}$$

or  $\frac{3,30,000}{110}$  or 3,000.

Working out the figure of deduction to be identical with the amount of tax collection.

### University Questions

1. Set out clearly the salient features of the Bihar Sales Tax Act. [B. U. 1958 (Hons.)]
2. Discuss the various methods of Payment and Recovery of Tax. Under what circumstances refund of tax may be claimed ?
3. Can a dealer make changes in his business without informing the Sales Tax Authority ? What are the liabilities of the transfer of a business ?
4. When and what cases can be referred to a High Court ? In this regard discuss the powers of the Board of Revenue and of the High Court.

5. What penalties are generally given for different offences according to the Bihar Sales Tax Act ? Are these offences cognizable and bailable ?

6. Give in brief the power of the State Government to make different rules for carrying out the purposes of Bihar Sales Tax Act.

7. Discuss the power of the Commissioner to determine disputes and to take evidence on oath.

8. What do you understand by 'Incidence of Taxation' ? What amount is taxable under this head ? What rules are applicable when a dealer makes changes in his former business ?

9. How a dealer gets himself registered under the Bihar Sales Tax Act ? What happens when a dealer's Gross Turnover is above the prescribed limit does not apply for registration ?

10. Write short notes on—

(i) Taxing Authority, (ii) Tax-free Goods, (iii) Voluntary Registration, (iv) Returns, (v) Cash Memorandum, (vi) Investigation of Offices, (vii) Compounding of Offences, (viii) Indemnity to Public Servants, (ix) Central Sales Tax, (x) Multi-purpose Sales Tax.

---

CHAPTER III  
COMPANY LAW

1. Define a Private Company and, show how it differs from a Public Company. [C. U. 1945]

2 (a) How many persons are required to form a (i) Public Company and (ii) Private Company ? What is the effect if the number falls below the statutory number ?

(b) How can the name of a Company be altered ?

3. Describe different classes of Public Company. How would you distinguish between a private and a public incorporated Company ? How can a member of a Company limited by shares transfer his shares ? [C. U. 1949]

4. Do you notice any distinction between voluntary liquidation and compulsory liquidation ? What are the powers of the liquidator regarding payment of dividends to (a) Creditors, (b) Contributors?

[C. U. B. Com. 1947]

5. (a) Set out contents of the Memorandum of Association of a Company limited by shares.

(b) Can the name of a Limited Company be changed ? If so, indicate the procedure to follow. [B. U. 1954 S]

6. What do you mean by 'Articles of Association' and 'Memorandum of Association' ? Can they be altered ? If so, how ?

[C. U. 1949]

7. Can an infant be a share-holder of a Company ? If so, under what circumstances ? What is the extent of his liability ?

[C. U. 1947]

8. How far do the Articles of Association bind (a) the members to the Company, (b) the members *inter se*, (c) the Company to the members, and (d) the company to the outsiders ? [B. U. 1954 A]

9. State the points of difference between the Memorandum of Association and the Articles of Association of a Limited Company. How can you alter a Memorandum of Association ?

10. (a) In what ways may a member of a Joint Stock Company lose his membership ?

(b) What is the difference between (i) an ordinary, (ii) a special, and (iii) an extra-ordinary resolution of a Company ?

[P. U. B. Com. 1949 A]

11. What is a 'floating charge' ? What is the effect of a floating charge on the assets of a Company in winding up ?

12. What formalities have to be complied with before a Company

can be legally constituted and before it can commence its business ?

13. What restrictions are imposed by the Indian Companies Act upon the dealings of the directors of a Joint Stock Company ? Describe briefly the nature and purpose of (a) the statutory meeting, (b) the annual general meeting, and (c) an extra-ordinary general meeting of a Company ?

14. (a) State the procedure of effecting the transfer of a share.

(b) What are the circumstances under which the Court can order the compulsory winding up of a Company ?

[P. U. B. Com. 1950 A]

15. (a) How far do the Articles of Association of a Company constitute a contract between members *inter se* and between the company and members ?

(b) State the provision of the Indian Companies Act with regard to contracts entered into by a Company in which a director has some interest of his own.

[P. U. B. Com. 1950 A]

16. (a) "The position of a director of a Public Company is akin to that of the trustees." Comment, giving suitable examples.

(b) Ram lent a sum of rupees five lakhs to a company. The directors had no power to borrow under the Articles of Association, but they negotiated the loan and received payment. Subsequently, the share-holders refused to ratify the transaction. Advise Ram in the case.

[P. U. B. Com. 1950 S]

17. Sketch out the provision of the Indian Companies Act regarding (a) Minimum Subscription Limit, (b) Issue of Shares at a Discount, (c) Redeemable Preference Shares.

[B. H. U. 1944]

18. What restrictions, if any, have been imposed by law in the following cases (i) a director taking a loan from the company, (ii) a director taking up an appointment as a paid employee of the company ?

[A. U. 1949]

19. How can a company be wound up ? On what grounds can a share-holder file a petition for winding up ?

20. Explain the grounds which the Court would consider 'just and equitable' to wind up a company. Can the Court order the winding up of a company if the majority of the members oppress the minority, or if one of the members of the company by reason of his vote, has an all powerful hand in its management ?

21. Explain the object of a voluntary winding-up, and indicate the procedure of carrying out the scheme.

[P.U.B. Com. 1951 S]

22. Under what circumstances will a public incorporated company be wound up by the Court ? What are the functions of the official Liquidator ?

[C. U. B. Com. 1943]

23. What qualifications must the directors of a company possess ? Is it possible for a director to assign his office to (a) a fellow director

(b) a third person ? How can a director be removed from office ?

24. What restrictions are placed on the choice of a name of a Limited Company ? Can a limited company, subject to any, and if so under what, conditions (i) change its name, (ii) dispense with the use of the words "limited" as a part of the name ?

25. In what circumstances and by what authority may a limited company pay interest out of capital ? What statutory obligations in relation to their accounts are imposed on companies which have made such payment of interest ? [ I. A. S. 1947 ]

26. By whom may the first Auditors of the company be appointed, and how are subsequent appointments made ? What are the powers and duties of auditors and how far are they to be deemed officers of the company ? When, how and by whom may Inspectors be appointed to investigate the affair of a company ?

27. "It is a cardinal rule of law that a majority of the members of a company exercise all the powers of the company generally to control its operations." Discuss this rule with reference to companies registered under the Indian Companies Act. [ I. A. S. 1950; 53 ]

28. What happens when any part of the Articles of Association (i) conflicts with the Memorandum, (ii) deals with a point about which the Memorandum is silent ?

29. "It is an elementary principle of the law relating to Joint Stock Companies that the Courts will not interfere with their internal management acting within their powers and have in fact no jurisdiction to interfere." Discuss.

30. What is meant by 'Prospectus' ? Who is responsible for untrue statements in the prospectus of a company ? [ P. U. 1946 S ]

31. Discuss the legality or the validity of the following—

(a) 'A', a director of Banking Corporation, takes loan of Rs. 50,000/- from the Bank (i) without security, (ii) on furnishing security.

(b) The director of a company ordered payment of dividends from out of the capital. Such payment is in accordance with the rules contained in the Articles of the Company.

(c) 'A' buys some shares in 'X' company from the market. The prospectus issued by the company contains a number of misleading and untrue statements. Discuss the legal position of 'A'.

32. Write short notes on—

(i) Continuing Guarantee; (ii) a Company limited by guarantee; (iii) Cumulative Preference Share; (iv) Table A.; (v) Compulsory winding up; (vi) Annual general meeting; (vii) Special Resolution; (viii) Register of Members; (ix) Naked Debentures; (x) Bonus Shares; (xi) Share Warrants; (xii) Underwriting Commission; (xiii) Statutory Report; (xiv) Redeemable Preference Shares; (xv) Minimum Subscription; (xvi) Contributory; (xvii) Certificate of transfer; (xviii) Floating charges; (xix) Qualification Shares; (xx) Private Company; (xxi) Debenture Stock.



# THE INDIAN CONTRACT ACT

(IX OF 1872)

*Preamble* Whereas it is expedient to define and amend certain parts of law relating to contracts; it is hereby enacted as follows—

## Preliminary

1. This Act may be called “The Indian Contract Act, 1872”.  
*Short title.*

*Extent* It extends to the whole of India except the State of Jammu and Kashmir; and it shall come into force on the first day of September, 1872.

*Enactments repealed* Nothing herein contained shall affect the provisions of any Statute, Act, or Regulation not hereby expressly repealed, nor any usage or custom of trade, nor any incident of any contract not inconsistent with the provisions of this Act.

2. In this Act the following words and expressions are used  
*Interpretation clause* in the following senses unless contrary intention appears from the context—

(a) When one person signifies to another his willingness to do or to abstain from doing anything, with a view to obtaining the assent of the other to such act or abstinence, he is said to make a proposal.  
*Proposal*

(b) When the person to whom the proposal is made signifies his assent thereto, the proposal is said to be accepted.  
*Promise* A proposal, when accepted, becomes a promise.

(c) The person making the proposal is called the ‘promisor’ and the person accepting the proposal is called the ‘promisee’.  
*Promisor and Promisee*

(d) When at the desire of the promisor, the promisee or any other person has done or abstained from doing or does or abstains from doing, or promises to do or to abstain from doing something, such act or abstinence or promise is called a consideration for the promise.  
*Consideration*

(e) Every promise and every set of promises, forming the consideration for each other, is an agreement.  
*Agreement*

(f) Promises which form the consideration or part of the consideration for each other are called reciprocal promises.  
*Reciprocal promises*

(g) An agreement not enforceable by law is said to be void.  
*Void agreement*

(h) An agreement enforceable by law is a contract.

*Contract*

(i) An agreement which is enforceable by law at the option of one or more of the parties thereto, but not at the option of the other or others, is a voidable contract.

(j) A contract which ceases to be enforceable by law becomes void when it ceases to be enforceable.

## CHAPTER I

### Of the Communication, Acceptance and Revocation of

#### Proposals

3. The communication of proposal, the acceptance of proposal and the revocation of proposal, and acceptance, respectively, are deemed to be made by any act or omission of the party proposing, accepting or revoking by which he intends to communicate such proposal, acceptance or revocation, or which has the effect of communicating it.

4. The communication of a proposal is complete when it comes to the knowledge of the person to whom it is made.

The communication of an acceptance is complete :

as against the proposer, when it is put in a course of transmission to him so as to be out of the power of the acceptor;

as against the acceptor, when it comes to the knowledge of the proposer.

The communication of revocation is complete :

as against the person who makes it, when it is put into a course of transmission to the person to whom it is made, so as to be out of the power of the person who makes it;

as against the person to whom it is made, when it comes to his knowledge.

#### Illustrations

(a) 'A' proposes, by letter, to sell a house to 'B', at a certain price.

The communication of the proposal is complete when 'B' receives the letter.

(b) 'B' accepts A's proposal by a letter sent by post.

The communication of the acceptance is complete :

as against 'A', when the letter is posted;

as against 'B', when the letter is received by 'A'.

(c) 'A' revokes his proposal by telegram.

The revocation is complete as against 'A' when the telegram is despatched. It is complete as against 'B' when 'B' receives it.

'B' revokes his acceptance by telegram. The revocation is complete



as against 'B' when the telegram is despatched, and as against 'A' when it reaches him.

5. A proposal may be revoked at any time before the communication of its acceptance is complete as against the proposer, but not afterwards.  
*Revocation of proposal and acceptance* An acceptance may be revoked at any time before the communication of the acceptance is complete as against the acceptor, but not afterwards.

*Illustrations*

'A' proposes by a letter sent by post to sell his house to 'B'.

'B' accepts the proposal by a letter sent by post.

'A' may revoke his proposal at any time before or at the moment when 'B' posts his letter of acceptance, but not afterwards.

'B' may revoke his acceptance at any time before or at the moment when the letter communicating it reaches 'A', but not afterwards.

6. A proposal is revoked—

*Revocation how made.* (i) by the communication of notice of revocation by the proposer to the other party;

(ii) by the lapse of the time prescribed in such proposal for its acceptance, or if no time is so prescribed, by the lapse of a reasonable time, without communication of the acceptance;

(iii) by the failure of the acceptor to fulfil a condition precedent to acceptance; or

(iv) by the death or insanity of the proposer, if the fact of his death or insanity comes to the knowledge of the acceptor before acceptance.

7. In order to convert a proposal into a promise, the acceptance must—

*Acceptance must be absolute.* (i) be absolute and unqualified;

(ii) be expressed in some usual and reasonable manner unless the proposal prescribes the manner in which it is to be accepted. If the proposal prescribes a manner in which it is to be accepted, and the acceptance is not made in such manner, the proposer may, within a reasonable time after the acceptance is communicated to him, insist that his proposal shall be accepted in the prescribed manner, and not otherwise; but if he fails to do so, he accepts the acceptance.

8. Performance of the condition of a proposal, or the acceptance of *Acceptance by performing conditions, or receiving consideration.* any consideration for a reciprocal promise which may be offered with a proposal, is an acceptance of proposal.

9. In so far as the proposal or acceptance of any promise is made in words, the promise is said to be express. In so far as

*Promise, express and implied.* such proposal or acceptance is made otherwise than in words, the promise is said to be implied.

## CHAPTER II

### Of Contracts, Voidable Contracts and Void Agreements

**10.** All agreements are contracts if they are made by the free consent of parties competent to contract, for a lawful consideration and with a lawful object and are not hereby expressly declared to be void.

*What agreements are contracts*

Nothing herein contained shall affect any law in force in India and not hereby expressly repealed, by which any contract is required to be made in writing or in the presence of witnesses, or any law relating to the registration of documents.

**11.** Every person is competent to contract who is of the age of majority according to the law to which he is subject and who is of sound mind, and is not disqualified from contracting by any law to which he is subject.

*Who are competent to contract ?*

**12** A person is said to be of sound mind for the purposes of making a contract if, at the time when he makes it, he is capable of understanding it, and of forming a rational judgment as to its effect upon his interests.

*What is a sound mind for the purposes of contracting.*

A person who is usually of unsound mind, but occasionally of sound mind, may make a contract when he is of sound mind.

A person who is usually of sound mind, but occasionally of unsound mind, may not make a contract when he is of unsound mind.

#### *Illustrations*

(a) A patient in a lunatic asylum, who is at intervals of sound mind, may contract during those intervals.

(b) A sane man, who is delirious from fever, or who is so drunk that he cannot understand the terms of a contract or form rational judgment as to its effect on his interests, cannot make a contract whilst such delirium or drunkenness lasts.

**13.** Two or more persons are said to consent when they agree upon the same thing in the same sense.

*Consent defined.*

**14.** Consent is said to be free when it is not caused by—

- Free Consent*
- (i) coercion, as defined in Section 15, or
  - (ii) undue influence, as defined in Section 16, or
  - (iii) fraud, as defined in Section 17, or
  - (iv) misrepresentation, as defined in Section 18, or
  - (v) mistake, subject to the provisions of Sections 20, 21 and 22.

Consent is said to be so caused when it would not have been given but for the existence of such coercion, undue influence, fraud, misrepresentation or mistake.

15. 'Coercion' is the committing, or threatening to commit, any act forbidden by the Indian Penal Code or the unlawful detaining or threatening, to detain, any property, to the prejudice of any person whatever, with the intention of causing any person to enter into an agreement.

*Explanation* :—It is immaterial whether the Indian Penal Code is or is not in force in the place where the coercion is employed.

#### *Illustration*

'A' on board an English ship on the high seas, causes 'B' to enter into an agreement by an act amounting to criminal intimidation under the Indian Penal Code.

'A' afterwards sues 'B' for breach of contract at Calcutta.

'A' has employed coercion, although his act is not an offence by the law of England and although Section 506 of the Indian Penal Code was not in force at the time when or the place where the act was done.

16. (i) A contract is said to be induced by "undue influence" where the relations subsisting between the parties are such that one of the parties is in a position to dominate the will of the other, and uses that position to obtain an unfair advantage over the other.

(ii) In particular and without prejudice to the generality of the foregoing principle, a person is deemed to be in a position to dominate the will of another—

(a) where he holds a real or apparent authority over the other, or where he stands in a fiduciary relation to the other; or

(b) where he makes a contract with a person whose mental capacity is temporarily or permanently affected by reason of age, illness or mental or bodily distress.

(iii) Where a person who is in a position to dominate the will of another, enters into a contract with him, and the transaction appears, on the face of it or on the evidence adduced, to be unconscionable, the burden of proving that such contract was not induced by undue influence shall lie upon the person in a position to dominate the will of the other.

Nothing in this sub-section shall affect the provisions of Section III of the Indian Evidence Act, 1872.

#### *Illustrations*

(a) 'A' having advanced money to his son 'B' during his minority, upon B's coming of age, obtains by misuse of parental influence, a bond from 'B' for a greater amount than the sum due in respect of

the advance. 'A' employs undue influence.

(b) 'A', a man enfeebled by disease or age, is induced by B's influence over him as his medical attendant, to agree to pay 'B' an unreasonable sum for his professional service. 'B' employs undue influence.

(c) 'A' being in debt to 'B', the money-lender of the village, contracts a fresh loan on terms which appear to be unconscionable. It lies on 'B' to prove that the contract was not induced by undue influence.

(d) 'A' applies to a banker for a loan at a time when there is stringency in the money market. The banker declines to make the loan except at an unusually high rate of interest. 'A' accepts the loan on these terms. This is a transaction in the ordinary course of business and the contract is not induced by undue influence.

17. 'Fraud' means and includes any of the following acts committed by a party to a contract, or with his connivance, or by his agent with intent to deceive another party thereto or his agent to induce him to enter into the contract :—

(i) the suggestion, as a fact, of that which is not true, by one who does not believe it to be true;

(ii) the active concealment of a fact by one having knowledge or belief of the fact;

(iii) a promise made without any intention of performing it;

(iv) any other act fitted to deceive;

(v) any such act or omission as the law specially declares to be fraudulent.

*Explanation* —Mere silence as to facts likely to effect the willingness of a person to enter into a contract is not fraud, unless the circumstances of the case are such that, regard being had to them, it is the person keeping silence to speak, or unless his silence is, in itself, equivalent to speech.

#### *Illustrations*

(a) 'A' sells, by auction, to 'B' a horse which 'A' knows to be unsound. 'A' says nothing to 'B' about the horse's unsoundness. This is not fraud in 'A'.

(b) 'B' is A's daughter, and has just come of age. Here the relation between the parties would make it A's duty to tell 'B' if the horse is unsound.

(c) 'B' says to 'A'—"If you do not deny it I shall assume that the horse is sound." 'A' says nothing. Hence A's silence is equivalent to speech.

(d) 'A' and 'B' being traders enter upon a contract. 'A' has private information of a change in prices which would affect B's willingness to proceed with the contract. 'A' is not bound to inform 'B'.

18. 'Misrepresentation' means and includes

(i) the positive assertion in a manner not warranted by the information of the person making it, or that which is not true, though he believes it to be true;

(ii) any breach of duty which, without an intent to deceive, gains an advantage to the person committing it, or any one claiming under him, by misleading another to his prejudice or to the prejudice of any one claiming under him,

(iii) causing, however innocently, a party to an agreement to make a mistake as to the substance of the thing which is the subject of the agreement.

19. When consent to an agreement is caused by coercion, fraud, *Misrepresentation defined.* or misrepresentation, the agreement is a contract voidable at the option of the party whose consent was so caused.

A party to a contract, whose consent was caused by fraud or misrepresentation, may, if he thinks fit, insist that the contract shall be performed, and that he shall be put in the position in which he would have been if the representation made had been true.

*Exception*—If such consent was caused by misrepresentation by silence, fraudulent within the meaning of Section 17, the contract, nevertheless, is not voidable, if the party whose consent was so caused had the means of discovering the truth with ordinary diligence.

*Explanation*—A fraud or misrepresentation which did not cause the consent to a contract of the party on whom such fraud was practised, or to whom such misrepresentation was made, does not render a contract voidable.

#### Illustrations

(a) 'A', intending to deceive 'B', falsely represent that five hundred maunds of indigo are made annually at A's factory, and thereby induces 'B' to buy the factory. The contract is voidable at the option of 'B'.

(b) 'A', by misrepresentation, leads 'B' erroneously to believe that five hundred maunds of indigo are made annually at A's factory. 'B' examines the accounts of the factory, which show that only four hundred maunds of indigo have been made. After this 'B' buys that factory. The contract is not voidable on account of A's misrepresentation.

(c) 'A' fraudulently informs 'B' that A's estate is free from encumbrance. 'B' thereupon buys the estate. The estate is subject to a mortgage. 'B' may either avoid the contract, or may insist on its being carried out the mortgage debt redeemed.

(d) 'B' having discovered a vein of ore on the estate of 'A', adopts means to conceal, and does conceal the existence of the ore from 'A'. Through A's ignorance 'B' is enabled to buy the estate at an undervalue. The contract is voidable at the option of 'A'.

(e) 'A' is entitled to succeed to an estate at the death of 'B'.

'B' dies. 'C' having received intelligence of B's death, prevents the intelligence reaching 'A' and thus induces 'A' to sell him his interest in the estate. The sale is voidable at the option of 'A'.

19A. When consent to an agreement is caused by undue influence the agreement is a contract voidable at the option of the party whose consent was so caused.

Any such contract may be set either absolutely or, if the party who was entitled to avoid it has received any benefit thereunder, upon such terms and conditions as the Court may seem just.

#### Illustrations

(a) A's son has forged B's name to a promissory note. 'B', under threat of prosecuting A's son, obtains a bond from 'A' for the amount of the forged note. If 'B' sues on this bond the Court may set the bond aside.

(b) 'A', a money-lender advances Rs. 100 to 'B', an agriculturist, and by undue influence, induces 'B' to execute a bond for Rs. 200 with interest at 6 per cent per month. The Court may set the bond aside, ordering 'B' to repay Rs. 100 with such interest as may seem just.

20. When both the parties to an agreement are under a mistake as to a matter of fact essential to the agreement, the agreement is void. *Explanation*—An erroneous opinion as to the value of the thing which forms the subject-matter of the agreement is not to be deemed a mistake as to matter of fact.

#### Illustrations

(a) 'A' agrees to sell to 'B' a specific cargo of goods supposed to be on its way from England to Bombay. It turns out that before the day of the bargain, the ship conveying the cargo had been cast away and the goods lost. Neither party was aware of these facts. The agreement is void.

(b) 'A' agrees to buy from 'B' a certain horse. It turns out that the horse was dead at the time of the bargain, though neither party was aware of the fact. The agreement is void.

(c) 'A' being entitled to an estate for the life of 'B' agrees to sell it to 'C'. 'B' was dead at the time of the agreement, but both parties were ignorant of the fact. The agreement is void.

21. A contract is not voidable because it was caused by a mistake as to any law not in force in India; but a mistake as to a law not in force in India has the same effect as a mistake of fact.

#### Illustration

'A' and 'B' make a contract grounded on the erroneous belief that a particular debt is barred by the Indian Law of Limitation; the contract is not voidable.

22. A contract is not voidable merely because it was caused by one of the parties to it being under a mistake as to a matter of fact.

*Contract caused by mistake of one party as to matter of fact.*

23. The consideration of object of an agreement is lawful, unless—

*What consideration and objects are lawful, and what not.* It is forbidden by law; or is of such a nature that, if permitted, it would defeat the provisions of any law; or is fraudulent; or

involves or implies injury to the person or property of another; or the Court regards it as immoral, or opposed to public policy. In each of these cases, the consideration of object of an agreement is said to be unlawful. Every agreement of which the object of consideration is unlawful is void.

#### Illustrations

(a) 'A' agrees to sell his house to 'B' for 10,000 rupees. Here B's promise to pay the sum of 10,000 rupees is the consideration for A's promise to sell the house and A's promise to sell the house is the consideration for B's promise to pay 10,000 rupees. These are lawful considerations.

(b) 'A' promises to pay 'B' 1,000 rupees at the end of six months if 'C' who owes that sum to 'B' fails to pay it. 'B' promises to grant time to 'C' accordingly. Here the promise of each party is the consideration for the promise of the other party and they are the lawful considerations.

(c) 'A' promises for a certain sum paid to him by 'B' to make good to 'B' the value of his ship if it is wrecked on a certain voyage. Here A's promise is the consideration for B's payment and B's payment is the consideration for A's promise, and these are lawful considerations.

(d) 'A' promises to maintain B's child and 'B' promises to pay 'A' 1,000 rupees yearly for the purpose. Here the promise of each party is the consideration for the promise of the other party. They are lawful considerations.

(e) 'A', 'B' and 'C' enter into an agreement for the division among them of gains acquired, or to be acquired by them by fraud. The agreement is void as its object is unlawful.

(f) 'A' promises to obtain for 'B' an employment in the public service, and 'B' promises to pay 1,000 rupees to 'A'. The agreement is void, as the consideration for it is unlawful.

(g) 'A' being agent for a landed property, agrees for money without the knowledge of his principal, to obtain for 'B' a lease of land belonging to his principal. The agreement between 'A' and 'B' is void as it implies fraud by concealment by 'A' on his principal.

(h) 'A' promises 'B' to drop a prosecution which he has instituted against 'B' for robbery, and 'B' promises to restore the value of the things taken. The agreement is void as its object is unlawful.

(i) A's estate is sold for arrears of revenue under the provisions of an act of the Legislature, by which the defaulter is prohibited from purchasing the estate. 'B' upon an understanding with 'A' becomes the purchaser, and agrees to convey the estate to 'A' upon receiving from him the price which 'B' has paid. The agreement is void as it renders the transaction in effect, a purchase by the defaulter, and would so defeat the object of the law.

(j) 'A' who is B's mukhtar, promises to exercise his influence as such with 'B' in favour of 'C', and 'C' promises to pay 1,000 rupees to 'A'. The agreement is void, because it is immoral.

(k) 'A' agrees to let her daughter to hire to 'B' for concubinage. The agreement is void, because it is immoral, though the letting may not be punishable under the Indian Penal Code.

### Void Agreements

24. If any part of a single consideration for one or more objects, or any one or any part of any one of several considerations for a single object, is unlawful, the agreement is void.

*Agreement void if considerations and objects unlawful in part.*

#### Illustration

'A' promises to superintend on behalf of 'B' a legal manufacture of indigo and illegal traffic in other articles. 'B' promises to pay to 'A' a salary of 10,000 rupees a year. The agreement is void, the object of A's promise, and the consideration for B's promise being in part unlawful.

25. An agreement made without consideration is void, unless—

*Agreement without consideration is void unless—*

(i) it is expressed in writing, and registered under the law for the time being in force for the registration of documents, and is made on account of natural love and affection between parties standing in a near relation to each other; or unless—

*it is in writing and registered,*

(ii) it is a promise to compensate, wholly or in part, a person who has already voluntarily done something for the promisor, or something which the promisor was legally compellable to do; or unless—

*or, is a promise to compensate for something done,*

(iii) it is a promise, made in writing and signed by the person to be charged therewith, or by his agent generally or specially authorized in that behalf, to pay wholly or in part, a debt of which the creditor might have enforced

*or is a promise to pay a debt, barred by limitation law.*



payment but for the law for the limitation of suits.

In any of these cases, such an agreement is a contract.

*Explanation 1.* Nothing in this section shall affect the validity, as between the donor and donee, of any gift actually made.

*Explanation 2.* 'An agreement to which the consent of the promisor is freely given is not void merely because the consideration is inadequate; but the inadequacy of the consideration may be taken into account by the Court in determining the question whether the consent of the promisor was freely given.

#### *Illustrations*

(a) 'A' promises for no consideration to give to 'B' Rs. 1,000. This is a void agreement.

(b) 'A' for natural love and affection, promises to give his son 'B' Rs. 1,000. 'A' puts his promise to 'B' into writing and registers it. This is a contract.

(c) 'A' finds B's purse and gives it to him. 'B' promises to give 'A' Rs. 50. This is a contract.

(d) 'A' supports B's infant son. 'B' promises to pay A's expenses in so doing. This is a contract.

(e) 'A' owes 'B' Rs. 1,000 but the debt is barred by the Limitation Act. 'A' signs a written promise to pay 'B' Rs. 500 on account of debt. This is a contract.

(f) 'A' agrees to sell a horse worth Rs. 1,000 for Rs. 10. A's consent to the agreement was freely given. The agreement is a contract, notwithstanding the inadequacy of the consideration.

(g) 'A' agrees to sell a horse worth Rs. 1,000 for Rs. 10. 'A' denies that his consent to the agreement was freely given.

The inadequacy of the consideration is a fact which the Court should take into account in considering whether or not A's consent was freely given.

26. Every agreement in restraint of the marriage of any person, *Agreement in restraint of marriage void.* other than a minor, is void.

27. Every agreement by which anyone is restrained from exercising a lawful profession, trade or business, *Agreement in restraint of trade void.* of any kind, is to that extent void.

*Exception 1.* One who sells the goodwill of a business may agree with the buyer to refrain from carrying on a similar business, within specified local limits, so long as the buyer, or any persons deriving title to the goodwill from him, carries on a like business therein. Provided that such limits appear to the Court reasonable, regard being had to the nature of the business.

*Exception 2. [Repealed].*

*Exception 3. [Repealed].*

28. Every agreement, by which any party thereto is restricted absolutely from enforcing his rights under or in respect of any contract by the usual legal proceedings in the ordinary tribunals, or which limits the time within which he may thus enforce his rights, is void to that extent.

*Exception 1. The section shall not render illegal a contract by which two or more persons agree that any dispute which may arise between them in respect of any subject or class of subjects shall be referred to arbitration and that only the amount awarded in such be recoverable in respect of the dispute so referred.*

*Exception 2 : Nor shall this section render illegal any contract in writing, by which two or more persons agree to refer to arbitration any question between them which has already arisen, or affect any provision of any law, in force for the time being as to references to arbitration.*

29. Agreements, the meaning of which is not certain, or capable of being made certain, are void.

*Agreements void for uncertainty.*

#### *Illustrations*

(a) 'A' agrees to sell to 'B' a hundred tons of oil. There is nothing whatever to show what kind of oil was intended. The agreement is void for uncertainty.

(b) 'A' agrees to sell to 'B' one hundred tons of a specified description, known as an article of commerce. There is no uncertainty here to make the agreement void.

(c) 'A', who is a dealer in coconut-oil, agrees to sell to 'B' 'one hundred tons of oil.' The nature of A's trade affords an indication of the meaning of the words, and 'A' has entered into a contract for the sale of one hundred tons of coconut-oil.

(d) 'A' agrees to sell to 'B' all the grain in 'my granary at Ramnager.' There is no uncertainty here to make the agreement void.

(e) 'A' agrees to sell to 'B' one hundred maunds of rice at a price to be fixed by 'C'. As the price is capable of being made certain, there is no uncertainty here to make the agreement void.

(f) 'A' agrees to sell to 'B' 'my white horse' for rupees five hundred or rupees one thousand. There is nothing to show which of the two prices was to be given. The agreement is void.

30. Agreements by way of wager are void; and no suit shall be

*Agreement by way of wager void.* brought for recovering anything alleged to be won on any wager, or entrusted to any person to abide by the result of an game or other uncertain event on which any wager is made.

This section shall not be deemed to hold unlawful a subscription, or contribution or agreement to subscribe or contribute or made or entered into for or towards any plate, prize or sum of money of the value or amount of five hundred rupees or upwards, to be awarded to the winner or winners of any horse-race.

*Exception in favour of certain prices for horse-racing.* Nothing in this section shall be deemed to legalize any transaction connected with horse-racing to which the provisions of Section 294-A of the Indian Penal Code not affected. Penal Code apply.

### CHAPTER III

#### Of Contingent Contracts

31. A 'contingent contract' is a contract to do or not to do some-  
*'Contingent contract' defined.* thing, if some event, collateral to such contract, does or does not happen.

##### *Illustration*

'A' contracts to pay 'B' Rs. 10,000 if B's house burnt. That is a contingent contract.

32. Contingent contracts to do or not to do anything if an  
*Enforcement of contracts contingent on an event happening.* uncertain future event happens cannot be enforced by law unless and until that event has happened.

If the event becomes impossible, such contracts become void.

##### *Illustrations*

(a) 'A' makes a contract with 'B' to buy B's horse if 'A' survives 'C'. This contract cannot be enforced by law unless and until 'C' dies in A's life time.

(b) 'A' makes a contract with 'B' to sell a horse to 'B' at a specified price if 'C', to whom the horse has been offered, refuses to buy him. The contract cannot be enforced by law unless and until 'C' refuses to buy the horse.

(c) 'A' contracts to pay 'B' a sum of money when 'B' marries 'C'. 'C' dies without being married to 'B'. The contract becomes void.

33. Contingent contracts to do or not to do anything, if an  
*Enforcement of contract contingent on an event not happening.* uncertain future event does not happen can be enforced when the happening of that event becomes impossible, and not before.

*Illustration*

'A' agrees to pay 'B' a sum of money, if a certain ship does not return. The ship is sunk. The contract can be enforced when the ship sinks.

34. If the future event on which a contract is contingent is the way in which a person will act at an unspecified time, the event shall be considered to become impossible when such person does anything which renders it impossible that he should so act within any definite time, or otherwise than under further contingencies.

*When event on which contract is contingent to be deemed impossible, if it is the future conduct of a living person.*

*Illustration*

'A' agrees to pay 'B' a sum of money if 'B' marries 'C'. 'C' marries 'D'. The marriage of 'B' to 'C' must now be considered impossible; although it is possible that 'D' may die and that 'C' may afterwards marry 'B'.

35. Contingent contracts to do or not to do anything, if a specified uncertain event happens within a fixed time become void, if at the expiration of the time fixed, such event has not happened, or if before the time fixed such event becomes impossible.

*When contracts become void which are contingent on happening of specified event within fixed time.*

Contingent contracts to do or not to do anything, if a specified uncertain event does not happen within a fixed time may be enforced by law when the time fixed has expired and such event has not happened, or before the time fixed has expired, if it becomes certain that such event will not happen.

*When contracts may be enforced which are contingent on specified event not happening within fixed time.*

*Illustrations*

(a) 'A' promises to pay 'B' a sum of money if a certain ship returns within a year. The contract may be enforced if the ship returns within the year, and become void if the ship is burnt within the year.

(b) 'A' promises to pay 'B' a sum of money if a certain ship does not return within a year. The contract may be enforced if the ship does not return within the year, or is burnt within the year.

36. Contingent agreement to do or not to do anything, if an impossible event happens, are void, whether the impossibility of the event is known or not to the parties to the agreement at the time when it is made.

*Agreement contingent on impossible event void.*

*Illustrations*

(a) 'A' agrees to pay 'B' 1,000 rupees if two straight lines sho-

uld enclose a space. The agreement is void.

(b) 'A' agrees to pay 'B' 1,000 rupees, if 'B' will marry A's daughter 'C'. 'C' was dead at the time of the agreement. The agreement is void.

## CHAPTER IV

### Of the Performance of Contracts

37. The parties to a contract must either perform, or offer to perform their respective promises, unless such performance is *dis- Obligation of parties* used with or excused under the provisions of *to contracts.* this Act, or any other law.

Promises bind the representatives of the promisors in case of the death of such promisors before performance, unless a contrary intention appears from the contract.

#### *Illustrations*

(a) 'A' promises to deliver goods to 'B' on a certain day on payment of Rs. 1,000. 'A' dies before that day. A's representatives are bound to deliver the goods to 'B' and 'B' is bound to pay Rs. 1,000 to A's representatives.

(b) 'A' promises to paint a picture for 'B' by a certain day at a certain price. 'A' dies before the day. The contract cannot be enforced either by A's representative or by 'B'.

38. Where a promisor has made an offer of performance to the promisee, and the offer has not been accepted, the promisor is not *Effect of refusal to* responsible for non-performance, nor does he *accept offer of perform-* thereby lose his rights under the contract. *mance.*

Every such offer must fulfil the following conditions:—

(1) It must be unconditional;

(2) It must be made at a proper time and place, and under such circumstances that the person to whom it is made may have a reasonable opportunity of ascertaining that the person by whom it is made is able and willing there and then to do the whole of what he is bound by his promise to do;

(3) If the offer is an offer to deliver anything to the promisee the promisee must have a reasonable opportunity of seeing that the thing offered is the thing which the promisor is bound by his promise to deliver.

An offer to one of several joint promisees has the same legal consequences as an offer to all of them.

#### *Illustration*

'A' contracts to deliver to 'B' at his warehouse, on the 1st March 1783, 100 bales of cotton of a particular quality. In order to make an offer of a performance with the effect stated in this section, 'A' must bring the cotton to B's warehouse on the appointed day, under such circumstances that 'B' may have a reasonable opportunity of

satisfying himself that the thing offered is cotton of the quality contracted for, and that there are 100 bales.

39. When a party to a contract has refused to perform, or disabled himself from performing his promise in its entirety, the promisee may put an end to the contract, unless he has signified, by words or conduct, his acquiescence in its continuance.

*Effect of refusal of party to perform promise wholly.*

#### *Illustrations*

(a) 'A', a singer, enters into a contract with 'B', the manager of a theatre, to sing at his theatre two nights in every week during the next two months, and 'B' engages to pay her 100 rupees for each night's performance. On the sixth 'A' wilfully absents herself from the theatre. 'B' is at liberty to put an end to the contract.

(b) 'A', a singer, enters into a contract with 'B', the manager of a theatre, to sing at theatre two nights in every week during the next two months, and 'B' engages to pay her at the rate of 100 rupees for each night. On the sixth night 'A' wilfully absents herself. With the assent of 'B' 'A' sings on the seventh night. 'B' has signified his acquiescence in the continuance of the contract, and cannot now put an end to it, but is entitled to compensation for the damage sustained by him through A's failure to sing on the sixth night.

#### **By whom contract must be performed**

40. If it appears from the nature of the case that it was the intention of the parties to any contract that any promise contained in it should be performed by the promisor himself such promise must be performed by the promisor.

*Person by whom promise is to be performed.*

In other cases, the promisor or his representative may employ a competent person to perform it.

#### *Illustrations*

(a) 'A' promises to pay 'B' a sum of money. 'A' may perform this promise, either by personally paying the money to 'B' or by causing it to be paid to 'B' by another and if 'A' dies before the time appointed for payment, his representatives must perform the promise, or employ some proper person to do so.

(b) 'A' promises to print a picture for 'B', 'A' must perform this promise personally.

41. When promisee accepts performance of the promise from a third person he cannot afterwards enforce it against the promisor.

*Effect of accepting performance from third person.*

42. When two or more persons have made a joint promise then, unless a contrary intention appears by the contract, all such persons, during their joint lives, and after the death of them, his

*Devolution of joint liabilities.*

representatives jointly with the survivor, or survivors and, after the death of the last survivor, the representatives of all jointly must fulfil the promise.

**43.** When two or more persons make a joint promise, the promisee may, in the absence of express agreement to the contrary compel any one or more of such joint promisors to perform the whole of the promise.

*Each of two or more joint promisors may compel every other joint promisor to contribute equally with himself to the performance of the promise unless a contrary intention appears from the contract.*

If any one of two or more joint promisors makes default in such contribution, the remaining joint promisors must bear the loss arising from such default in equal shares.

*Explanation :* Nothing in this section shall prevent a surety from recovering from his principal, payments made by the surety on behalf of the principal, or entitle the principal to recover anything from the surety on account of payments made by the principal.

#### Illustrations

(a) 'A', 'B' and 'C' jointly promise to pay 'D' 3,000 rupees. 'D' may compel either 'A' or 'B' or 'C' to pay him 3,000 rupees.

(b) 'A', 'B' and 'C' jointly promise to pay 'D' the sum of 3,000 rupees. 'C' is compelled to pay the whole. 'A' is insolvent, but his assets are sufficient to pay one-half of his debts. 'C' is entitled to receive 500 rupees from A's estate, and 1,250 rupees from 'B'.

(c) 'A', 'B' and 'C' are under a joint promise to pay 'D' 3,000 rupees, 'C' is unable to pay anything, and 'A' is compelled to pay the whole. 'A' is entitled to receive 1,500 rupees from 'B'.

(d) 'A', 'B' and 'C' are under a joint promise to pay 'D' 3,000 rupees, 'A' and 'B' being only sureties for 'C'. If 'C' fails to pay 'A' and 'B' are compelled to pay the whole sum. They are entitled to recover it from 'C'.

**44.** Where two or more persons have made a joint promise, a release of one of such joint promisors by the promisee does not discharge the other joint promisor or joint promisors; neither does it free the joint promisor so released from responsibility to the other joint promisor or joint promisors.

**45.** When a person has made a promise to two or more persons jointly, then, unless a contrary intention appears from the contract, the rights to claim performance rests, as between him and them, with them during their joint lives, and,

after the death of any of them, with the representatives of such deceased person jointly with the survivors, and, after the death of the last survivor, with representatives of all jointly.

#### Illustration

'A' in consideration of 5,000 rupees lent to him by 'B' and 'C', promises 'B' and 'C' jointly to repay them that sum with interest on a day specified. 'B' dies. The right to claim performance rests with B's representative jointly with 'C' during C's life and after the death of 'C' with the representatives of 'B' and 'C' jointly.

### Time and place for performance

46. Where, by the contract, a promisor is to perform his promise without application by the promisee, and no time for performance is specified, the engagement must be performed within a reasonable time.

*Time for performance of promise where no application is to be made and no time is specified.*

*Explanation*—The question, "what is a reasonable time" is, in each particular case, a question of fact.

47. When a promise is to be performed on a certain day, and the promisor has undertaken to perform it without application by the promisee, the promisor may perform it at any time during the usual hours of business on such day, and at the place at which the promise ought to be performed.

#### Illustration

'A' promises to deliver goods at B's warehouse on the 1st January. On that day 'A' brings the goods to B's warehouse but after the usual hour for closing it and they are not received. 'A' has not performed his promise.

48. When a promise is to be performed on a certain day, and the promisor has not undertaken to perform it without application by the promisee, it is the duty of the promisee, to apply for performance at a proper place and within the usual hours of the business.

*Application for performance on certain day to be at proper time and place.*

*Explanation*—The question, "what is a proper time and place" is, in each particular case, a question of fact.

49. When a promise is to be performed without application by the promisee, and no place is fixed for the performance of it, it is the duty of the promisor to apply to the promisee to appoint a proper place for the performance of the promise, and to perform it at such place.

*Place for performance of promise where no application to be made and no place fixed for performance.*



*Illustration*

'A' undertakes to deliver a thousand maunds of jute to 'B' on a fixed day. 'A' must apply to 'B' to appoint a proper place for the purpose of receiving it, and must deliver it to him at such place.

50. The performance of any promise may be made in any manner, or at any time which the promisee prescribes or sanctions.  
*Performance in manner or at time prescribed or sanctioned by promisee.*

*Illustrations*

(a) 'B' owes 'A' 2,000 rupees. 'A' desires 'B' to pay the amount to A's account with 'C', a banker. 'B' who also banks with 'C' orders the amount to be transferred from his account to A's credit and this is done by 'C' afterwards, and before 'A' knows of the transfer 'C' fails. There has been a good payment by 'B'.

(b) 'A' and 'B' are mutually indebted. 'A' and 'B' settle an account by setting off one item against another, and 'B' pays 'A' the balance found to be due from him upon such settlement. This amounts to payment by 'A' and 'B' respectively, of the sums which they owed to each other.

(c) 'A' owes 'B' 2,000 rupees. 'B' accepts some of A's goods in deduction of the debt. The delivery of the goods operates as a part payment.

(d) 'A' desires 'B' who owes him Rs. 100, to send him a note for Rs. 100 by post. The debt is discharged as soon as 'B' puts into the post a letter containing the note duly addressed to 'A'.

**Performance of reciprocal promises**

51. When a contract consists of reciprocal promises to be simultaneously performed, no promisor need perform his promise unless the promisee is ready and willing to perform his reciprocal promise.  
*Promisor not bound to perform, unless reciprocal promisee ready and willing to perform.*

*Illustrations*

(a) 'A' and 'B' contract that 'A' shall deliver goods to 'B' to be paid for by 'B' on delivery.

'A' need not deliver the goods, unless 'B' is ready and willing to pay for the goods on delivery.

'B' need not pay for the goods, unless 'A' is ready and willing to deliver him on payment.

(b) 'A' and 'B' contract that 'A' shall deliver goods to 'B' at a price to be paid by instalments, the first instalment to be paid on delivery.

'A' need not deliver, unless 'B' is ready and willing to pay the first instalment on delivery.

'B' need not pay the first instalment, unless 'A' is ready and willing to deliver the goods on payment of the first instalment.

**52.** Where the order in which reciprocal promises are to be performed is expressly fixed by the contract they shall be performed in that order; and where the order is not expressly fixed by the contract, they shall be performed in that order which the nature of the transaction requires.

#### *Illustrations*

(a) 'A' and 'B' contract that 'A' shall build a house for 'B' at a fixed price. A's promise to build the house must be performed before B's promise to pay for it.

(b) 'A' and 'B' contract that 'A' shall make over his stock-in-trade to 'B' at a fixed price and 'B' promises to give security for the payment of the money. A's promise need not be performed until the security is given, for the nature of transaction requires that 'A' should have security before he delivers up his stock.

**53.** When a contract contains reciprocal promises and one party to the contract prevents the other from performing his promise, the contract becomes voidable at the option of the party so prevented; and he is entitled to compensation from the other party for any loss which he may sustain in consequence of the non-performance of the contract.

#### *Illustration*

'A' and 'B' contract that 'B' shall execute the work for a thousand rupees. 'B' is ready and willing to execute the work accordingly but 'A' prevents him from doing so. The contract is voidable at the option of 'B': and; if he elects to rescind it, he is entitled to recover from 'A' compensation for any loss which he has incurred by its non-performance.

**54.** When a contract consists of reciprocal promises such that one of them cannot be performed, or that its performance cannot be claimed, till the other has been performed, and the promisor of the promise last mentioned fails to perform it, such promisor cannot claim the performance of the reciprocal promise and must make compensation to the other party to the contract for any loss which such other party may sustain by the non-performance of the contract.

#### *Illustrations*

(a) 'A' hires B's ship to take in and convey, from Calcutta to Mauritius, a cargo to be provided by 'A', 'B' receiving a certain freight for its conveyance. 'A' does not provide any cargo for the

ship. 'A' cannot claim the performance of B's promise and must make compensation to 'B' for the loss which 'B' sustains by the non-performance of the contract.

(b) 'A' contracts with 'B' to execute certain builder's work for a fixed price, 'B' supplying the scaffolding and timber necessary for the work. 'B' refuses to furnish any scaffolding or timber, and the work cannot be executed. 'A' need not execute the work, and 'B' is bound to make compensation to 'A' for any loss caused to him by the non-performance of the contract.

(c) 'A' contracts with 'B' to deliver him, at a specified price, certain merchandise on board of a ship which cannot arrive for a month, and 'B' engages to pay for the merchandise within a week. A's promise to deliver need not be performed and 'B' must make compensation.

(d) 'A' promises 'B' to sell him one hundred bales of merchandise to be delivered next day, and 'B' promises 'A' to pay for them within a month. 'A' does not deliver according to his promise, B's promise to pay need not be performed and 'A' must make compensation.

55. When a party to a contract promises to do a certain thing at or before a specified time, or certain things at or before specified times and fails to do any such thing at or before specified time, the contract, or so much of it as has not been performed, becomes voidable at the option of the promisee, if the intention of the parties was that time should be of the essence of the contract.

If it was not the intention of the parties that time should be of the essence of the contract, the contract does not become voidable by the failure to do such thing at or before the specified time; but the promisee is entitled to compensation from the promisor for any loss occasioned to him by such failure.

If in case of a contract voidable on account of the promisor's failure to perform his promise at the time agreed, the promisee accepts performance of such promise at any time other than that agreed, the promisee cannot claim compensation for any loss occasioned by the non-performance of the promise at the time agreed, unless, at the time of such acceptance, he gives notice to the promisor of his intention to do so.

56. An agreement to do an act impossible in itself is void.

A contract to do an act which, after the contract is made becomes impossible, or by reason of some event which the promisor could not prevent, unlawful, becomes void when the act becomes impossible.

*impossible or unlawful.*

When one person has promised to do something which he knew, or with reasonable diligence, might have known, and which the promisee did not know to be impossible or unlawful, such promisor must make compensation to such promisee for any loss which such promisee sustains through the performance of the promise.

(a) 'A' agrees with 'B' to discover treasure by magic. The agreement is void.

(b) 'A' and 'B' contract to marry each other. Before the time fixed for the marriage, 'A' goes mad. The contract becomes void.

(c) 'A' contracts to marry 'B' being already married to 'C' and being forbidden by the law to which he is subject to practise polygamy. 'A' must make compensation to 'B' for the loss caused to her by the non-performance of this promise.

(d) 'A' contracts to take in cargo for 'B' at a foreign port. A's government afterwards declares war against the country in which the port is situated. The contract becomes void when war is declared.

(e) 'A' contracts to act at a theatre for six months in consideration of a sum paid in advance by 'B'. On several occasions 'A' is too ill to act. The contract to act on these occasions becomes void.

57. Where persons reciprocally promise, firstly, to do certain things which are legal, and secondly, under specified circumstances, to do certain other things which are illegal, the first set of promises is a contract, but the second is void agreement.

*Reciprocal promises to do things legal and also other things illegal.*

#### Illustration

'A' and 'B' agree that 'A' shall sell 'B' a house for 10,000 rupees but that, if 'B' uses it as a gambling house, he shall pay 'A' 50,000 rupees for it.

The first set of reciprocal promises, namely, to sell the house and to pay 10,000 rupees for it, is a contract.

The second set is for an unlawful object, namely, that 'B' may use the house as a gambling house, and is a void agreement.

58. In the case of an alternative promise, one branch of which is legal and the other illegal, the legal branch alone can be enforced.

*Alternative promise, one branch being illegal.*

#### Illustration

'A' and 'B' agreed that 'A' shall pay 'B' 1,000 rupees, for which 'B' shall afterwards deliver to 'A' either rice or smuggled opium.

This is a valid contract to deliver rice, and a void agreement as to the opium.

### Appropriation of payments

**59.** Where a debtor, owing several distinct debts to one person, makes a payment to him, either with express intimation, or under circumstances implying, that the payment is to be applied to the discharge of some particular debt, the payment, if accepted, must be applied accordingly.

*Application of payment where debt to be discharged is indicated.*

#### Illustrations

(a) 'A' owes 'B', among other debts, 1,000 rupees upon a promissory note, which falls due on the 1st June. He owes 'B' no other debt of that amount. On the 1st June 'A' pays to 'B' 1,000 rupees. The payment is to be applied to the discharge of the promissory note.

(b) 'A' owes to 'B', among other debts, the sum of 567 rupees. 'B' writes to 'A' and demands payment of this sum. 'A' sends to 'B' 567 rupees. The payment is to be applied to the discharge of the debt of which 'B' had demanded payment.

**60.** Where the debtor has omitted to intimate and there are no other circumstances indicating to which debt the payment is to be applied the creditor may apply it at his discretion to any lawful debt actually due and payable to him from the debtor, whether its recovery is or is not barred by the law in force for the time being as to the limitation of suits.

*Application of payment where debt to be discharged is not indicated.*

**61.** Where neither party makes any appropriation the payment shall be applied in discharge of the debts in order of time, whether they are or are not barred by the law in force for the time being as to the limitation of suits. If the debts are of equal standing, the payment shall be applied in discharge of each proportionately.

*Application of payment where neither party appropriates.*

### Contracts which need not be performed

**62.** If the parties to a contract agree to substitute a new contract for it, or to rescind or alter it, the original contract need not be performed.

*Effect of novation, rescission and alteration of contract.*

#### Illustrations

(a) 'A' owes money to 'B' under a contract. It is agreed between 'A', 'B' and 'C' that 'B' shall thenceforth accept 'C' as his debtor, instead of 'A'. The old debt of 'A' to 'B' is at an end, and a new debt from 'C' to 'B' has been contracted.

(b) 'A' owes 'B' 10,000 rupees. 'A' enters into an agreement with 'B', and gives 'A' a mortgage of his (A's) estate for 5,000 rupees in place of the debt of 10,000 rupees. This is a new contract and extinguishes the old.

(c) 'A' owes 'B' 1,000 rupees under a contract. 'B' owes 'C' 1,000 rupees. 'B' orders 'A' to credit 'C' with 1,000 rupees in his books, but 'C' does not assent to the arrangement. 'B' still owes 'C' 1,000 rupees, and no new contract has been entered into.

63. Every promisee may dispense with or remit wholly or in part, the performance of the promise made to him, or may extend the time, for such performance, or may accept, instead of it any satisfaction which he thinks fit.

*Promisee may dispense with or remit performance of promise.*

### Illustrations

(a) 'A' promises to paint a picture for 'B'. 'B' afterwards forbids him to do so. 'A' is no longer bound to perform the promise.

(b) 'A' owes 'B' 5,000 rupees. 'A' pays to 'B' and 'B' accepts, in satisfaction of the whole debt, 2,000 rupees paid at the time and place at which the sum of 5,000 rupees were payable. The whole debt is discharged.

(c) 'A' owes 'B' 5,000 rupees. 'C' pays to 'B' 1,000 rupees, and 'B' accepts them in satisfaction of his claim on 'A'. This payment is a discharge of the whole claim.

(d) 'A' owes 'B' under a contract a sum of money, the amount of which has not been ascertained. 'A' without ascertaining the amount to give to 'B', and 'B' in satisfaction thereof, accepts the sum of 2,000 rupees. This is a discharge of the whole debt, whatever may be its amount.

(e) 'A' owes 'B' 2,000 rupees, and is also indebted to other creditors. 'A' makes an arrangement with his creditors including 'B' to pay them eight annas in the rupee upon their respective demands. Payment to 'B' of 1,000 rupees is a discharge of B's demand.

64. When a person at whose option a contract is voidable rescinds it, the other party thereto need not perform any promise therein contained in which he is promisor. The party rescinding a voidable contract shall, if he has received any benefit thereunder from another party to such contract, restore such benefit, so far as may be, to the person from whom it was received.

*Consequence of rescission of voidable contract.*

65. When an agreement is discovered to be void, or when a contract becomes void, any person who has received any advantage under such

*Obligation of person.*

*who has received  
advantage under void  
agreement or contract  
that becomes void.*

agreement or contract is bound to restore it, or to make compensation for it, to the person from whom he received it.

### *Illustrations*

(a) 'A' pays 'B' 1,000 rupees, in consideration of B's promising to marry 'C', A's daughter. 'C' is dead at the time of the promise. The agreement is void, but, 'B' must repay 'A' 1,000 rupees.

(b) 'A' contracts with 'B' to deliver to him 250 maunds of rice before the first of May. 'A' delivers 130 maunds only before that day and none after. 'B' retains 130 maunds after the 1st of May. He is bound to pay 'A' for them.

(c) 'A', a singer, contracts with 'B', the manager of a theatre, to sing at his theatre for two nights in every week during the next two months, and 'B' engages to pay her hundred rupees for each night's performance. On the sixth night, 'A' wilfully absents herself from the theatre and 'B' in consequence, rescinds the contract. 'B' must pay 'A' for the five nights on which she had sung.

(d) 'A' contracts to sing for 'B' at a contract for 1,000 rupees, which is paid in advance, 'A' is too ill to sing. 'A' is not bound to make compensation to 'B' for the loss of the profits 'B' would have made if 'A' had been able to sing, but must refund to 'B' 1,000 rupees paid in advance.

66. The rescission of a voidable contract may be communicated or revoked in the same manner, and subject to the same rules, as apply to the communication or revocation of a proposal.

*Mode of communicating  
or revoking rescission  
of voidable contract.*

67. If any promisee neglects or refuses to afford the promisor reasonable facilities for the performance of his promise, the promisor is excused by such neglect or refusal as to any non-performance caused thereby.

*Effect of neglect of  
promises to afford  
promisor reasonable  
facilities for perfor-  
mance*

### *Illustration*

'A' contracts with 'B' to repair B's house.

'B' neglects or refuses to point out to 'A' the places in which his house requires repair.

'A' is excused for the non-performance of the contract if it is caused by such neglect or refusal.

## CHAPTER V

### Of Certain Relations Resembling Those Created by Contract

68. If a person, incapable of entering into a contract, or any one whom he is legally bound to support, is supplied by another

*Claim for necessities supplied to person incapable of contracting or on his account.*

person with necessities suited to the condition in life, the person who has furnished such supplies is entitled to be reimbursed from the property of such incapable person.

#### *Illustrations*

(a) 'A' supplies 'B', a lunatic, with necessities suitable to his condition in life. 'A' is entitled to be reimbursed from B's property.

(b) 'A' supplies the wife and children of 'B', a lunatic, with necessities suitable to their condition in life. 'A' is entitled to be reimbursed from B's property.

69. A person who is interested in the payment of money which another is bound by law to pay and who, therefore, pays it, is entitled to be reimbursed by the other.

*Reimbursement of person paying money due by another in payment of which he is interested.*

#### *Illustration*

'B' holds lands in W. Bengal on a lease granted by 'A', the zamindar. The revenue payable by 'A' to the Government being in arrear, his land is advertised for sale by the Government. Under the revenue law, the consequence of such sale will be the annulment of B's lease. 'B' to prevent the sale and the consequent annulment of his own lease, pays to the Government the sum due from 'A'. 'A' is bound to make good to 'B' the amount so paid.

70. Where a person lawfully does anything for another person, or delivers anything to him, not intending to do so gratuitously, and such other person enjoys the benefit thereof, the latter is bound to make compensation to the former in respect of, or to restore, the thing so done or delivered.

*Obligation of person enjoying benefit of non-gratuitous act.*

#### *Illustrations*

(a) 'A', a tradesman, leaves goods at B's house by mistake. 'B' treats the goods as his own. He is bound to pay 'A' for them.

(b) 'A' saves B's property from fire. 'A' is not entitled to compensation from 'B' if the circumstances show that he intended to act gratuitously.

71. A person who finds goods belonging to another and takes them into his custody, is subject to the same responsibility as a bailee.

*Responsibility of finder of goods.*

72. A person to whom money has been paid, or anything delivered by mistake or under coercion, must repay or return it.

*Liability of person to whom money is paid, or thing delivered by mistake or under coercion.*



*Illustrations*

(a) 'A' and 'B' jointly owe 100 rupees to 'C'. 'A' alone pays the amount to 'C' and 'B' not knowing this fact, pays 100 rupees over again to 'C'. 'C' is bound to repay the amount to 'B'.

(b) A railway company refuses to deliver up certain goods to the consignee except upon the payment of an illegal charge for carriage. The consignee pays the sum charged in order to obtain the goods. He is entitled to recover so much of the charge as was illegally excessive.

## CHAPTER VI

## Of the Consequence of Breach of Contract

73. When a contract has been broken, the party who suffers by such breach is entitled to receive from the party who has broken the contract compensation for any loss or damage caused to him thereby, which naturally arose in the usual course of things from such breach or which the parties knew, when making the contract, to be likely to result from the breach of it.

Such compensation is not to be given for any remote and indirect loss or damage sustained by reason of the breach.

When an obligation resembling those created by contract has been incurred and has not been discharged, any person injured by the failure to discharge it, is entitled to receive the same compensation from the party in default as if such person had contracted to discharge it and had broken.

*Explanation*—In estimating the loss or damage arising from a breach of contract, the means which existed of remedying the inconvenience caused by the non-performance of the contract must be taken into account.

*Illustrations*

(a) 'A' contracts to sell and deliver 50 maunds of saltpetre to 'B', at a certain price to be paid on delivery. 'A' breaks his promise. 'B' is entitled to receive from 'A', by way of compensation, the sum, if any, by which the contract price falls short of the price for which 'B' might have contained 50 maunds of saltpetre which ought to have been delivered.

(b) 'A' hires B's ship to go to Bombay, and there takes on board,

on the first of January, a cargo which 'A' is to provide and to bring it to Calcutta, the freight to be paid when earned. B's ship does not go to Bombay, but 'A' has opportunities of procuring suitable conveyance for the cargo upon terms as advantageous as those on which he had chartered the ship. 'A' avails himself of those opportunities, but is put to trouble and expense in doing so. 'A' is entitled to receive compensation from 'B' in respect of such trouble and expense.

(c) 'A' contracts to buy of 'B' at a stated price, 50 maunds of rice, no time being fixed for delivery. 'A' afterwards informs 'B' that he will not accept the rice if tendered to him. 'B' is entitled to receive from 'A' by way of compensation, the amount, if any, by which the contract price exceeds which 'B' can obtain for the price at the time when 'A' informs 'B' that he will not accept it.

(d) 'A' contracts to buy B's ship for 60,000 rupees, but breaks his promise. 'A' must pay to 'B' by way of compensation, the excess if any, of the contract price over the price which 'B' can obtain for the ship at the breach of promise.

(e) 'A' the owner of a boat, contracts with 'B' to take a cargo of jute to Mirzapur, for sale at that place, starting on a specified day. The boat, owing to some avoidable cause, does not start at the time appointed, whereby the arrival of the cargo at Mirzapur is delayed beyond the time when it would have arrived if the boat had sailed according to the contract. After that date, and before the arrival of the cargo, the price of jute falls. The measure of the compensation payable to 'B' by 'A' is the difference between the price which 'B' could have obtained for the cargo at Mirzapur at the time when it would have arrived if forwarded in due course and its market price at the time when it actually arrived.

(f) 'A' contracts to repair B's house in a certain manner and receives payment in advance. 'A' repairs the house, but not according to contract. 'B' is entitled to recover from 'A' the cost of making the repairs conform to the contract.

(g) 'A' contracts to let his ship to 'B' for a year, from the first of January, for a certain price. Freight rises, and, on the first of January, the hire obtainable for the ship is higher than the contract price. 'A' breaks his promise. He must pay to 'B' by way of compensation, a sum equal to the difference between the contract price and the price for which 'B' could hire a similar ship for a year on and from the first of January.

(h) 'A' contracts to supply 'B' with a certain quantity of iron at a fixed price, being a higher price than that for which 'A' could procure and deliver the iron. 'B' wrongfully refuses to receive the iron. 'B' must pay to 'A', by way of compensation, the difference between the contract price of the iron and the sum for which 'A' could have obtained and delivered it.

(i) 'A' delivers to 'B' a common carrier, a machine, to be conveyed, without delay to A's mill, informing 'B' that his mill is stopped for want of the machine. 'B' unreasonably delays the delivery of the

machine, and 'A' in consequence, loses a profitable contract with the Government. 'A' is entitled to receive from 'B' by way of compensation, the average amount of profits which would have been made by working of the mill during the time that delivery of it was delayed, but not the loss sustained through the loss of the Government contract.

(j) 'A' having contracted with 'B' to supply 'B' with 1,000 tons of iron at 100 rupees a ton, to be delivered at a stated time, contracts with 'C' for the purchase of 1,000 tons of iron at 80 rupees a ton, telling 'C' that he does so for the purpose of performing his contract with 'B'. 'C' fails to perform his contract with 'A' who cannot procure other iron and 'B' in consequence, rescinds the contract. 'C' must pay to 'A' 20,000 rupees being the profit which 'A' would have made by the performance of his contract with 'B'.

(k) 'A' contracts with 'B' to make and deliver to 'B' by a fixed day, for a specified price a certain piece of machinery. 'A' does not deliver the price of machinery at the time specified, and, in consequence of this, 'B' is obliged to procure another at a higher price than that which he was to have paid to 'A' and is prevented from performing a contract which 'B' had made with a third person at the time of his contract with 'A', but which had not been then communicated to 'A' and is compelled to make compensation for breach of that contract. 'A' must pay to 'B' by way of compensation, the difference between the contract price of the piece of machinery and the sum paid by 'B' for another but not the sum paid by 'B' to the third person by way of compensation.

(l) 'A', a builder, contracts to erect and finish a house by the first of January, in order that 'B' may give possession of it at that time to 'C' to whom 'B' has contracted to let it. 'A' is informed of the contract between 'B' and 'C'. 'A' builds the house so badly that, before the first of January, it falls down, and has to be rebuilt by 'B', who, in consequence, loses the rent which he was to have received from 'C'. 'A' is obliged to make compensation to 'B' for the cost of rebuilding the house, for the rent lost and for the compensation made to 'C'.

(m) 'A' sells certain merchandise to 'B' warranting it to be of a particular quality, and 'B' in reliance upon this warranty, sells it to 'C' with a similar warranty. The goods prove to be not according to the warranty, and 'B' becomes liable to pay 'C' a sum of money by way of compensation. 'B' is entitled to reimbursement of this sum by 'A'.

(n) 'A' contracts to pay a sum of money to 'B' on a day specified. 'A' does not pay the money on that day. 'B', in consequence of not receiving the money on that day, is unable to pay his debts, and is totally ruined. 'A' is not liable to make good to 'B' anything except the sum of money he contracted to pay, together with interest up to the day of payment.

(o) 'A' contracts to deliver 50 maunds of saltpetre to 'B' on the first of January, at a certain price. 'B' afterwards, before the

I. C. A.-3

first January, contracts to sell the saltpetre to 'C' at a price higher than the market price of the first January. 'A' breaks his promise. In estimating the compensation payable by 'A' to 'B' the market price of the first of January, and not the profit which would have arisen to 'B' from the sale to 'C', is to be taken into account.

(p) 'A' contracts to sell and deliver 500 bales of cotton cloth to 'B' on a fixed day. 'A' knows nothing of B's mode of conducting his business. 'A' breaks his promise, and 'B' having no cotton, is obliged to close his mill. 'A' is not responsible to 'B' for the loss caused to 'B' by the closing of the mill.

(q) 'A' contracts to sell and deliver to 'B' on the first of January, certain cloth which 'B' intends to manufacture into caps of a particular kind, for which there is no demand, except in that season. The cloth is not delivered till after the appointed time, and too late to be used that year in making caps. 'B' is entitled to receive from 'A', by way of compensation, the difference between the contract price of the cloth and its market price at the time of delivery, but not the profits which he expected to obtain by making caps, nor the expenses which he had been put to in making preparation for the manufacture.

(r) 'A', a ship owner, contracts with 'B' to convey him from Calcutta to Sydney in A's ship, sailing on the first of January, and 'B' pays to 'A' by way of deposit, one half of his passage-money. The ship does not sail on the first of January, and 'B' after being, in consequence, detained in Calcutta for some time and thereby put to some expense, proceeds to Sydney in another vessel and, in consequence, arriving too late in Sydney, loses a sum of money. 'A' is liable to 'B' his deposit, with interest and the expense to which he is put by his detention in Calcutta, and the excess, if any, of the passage-money paid for the second ship over that agreed upon for the first, but not the sum of money which 'B' lost by arriving in Sydney too late.

74. When a contract has been broken, if a sum is named in the contract as the amount to be paid in case of such breach, or if the contract contains any other stipulation by way of penalty, the party complaining of the breach is entitled, whether or not actual damage or loss is proved to have been caused thereby, to receive from the party who has broken the contract, reasonable compensation not exceeding the amount so named, or as the case may be, the penalty stipulated for.

*Explanation :* A stipulation for increased interest from the date of default may be a stipulation by way of penalty.

*Exception :* When any person enters into any bail-bond recognizance, or other instrument of the same nature, or under the provision of any law or under the orders of the Central Government

or of any Provincial Government, gives any bond for the performance of any public duty or act in which the public are interested, he shall be liable upon breach of the condition of any such instrument, to pay the whole sum mentioned therein.

*Explanation:* A person who enters into a contract with Government does not necessarily thereby undertake any public duty, or promise to do an act in which the public are interested.

#### *Illustrations*

(a) 'A' contracts with 'B' to pay Rs. 1,000 if he fails to pay 'B' Rs. 500 on a given day. 'A' fails to pay 'B' Rs. 500 on that day. 'B' is entitled to recover from 'A' such compensation not exceeding Rs. 1,000 as the Court considers reasonable.

(b) 'A' contracts with 'B' that, if 'A' practises as a surgeon within Calcutta, he will pay 'B' Rs. 5,000. 'A' practises as a surgeon in Calcutta. 'B' is entitled to such compensation not exceeding Rs. 5,000 as the Court considers reasonable.

(c) 'A' gives a recognizance binding him in a penalty of Rs. 5,000 to appear in Court on a certain day. He forfeits his recognizance. He is liable to pay the whole penalty.

(d) 'A' gives 'B' a bond for the repayment of Rs. 1,000 with interest at 12 per cent at the end of six months, with a stipulation that in case of default, interest shall be payable at the rate of 75 per cent from the date of default. This is stipulation by way of penalty, and 'B' is only entitled to recover from 'A' such compensation as the Court considers reasonable.

(e) 'A' who owes money to 'B', a money-lender, undertakes to repay him by delivering to him 10 maunds of grain on a certain date and stipulates that, in the event of his not delivering the stipulated amount by the stipulated date, he shall be liable to deliver 20 maunds. That is a stipulation by way of penalty, and 'B' is only entitled to reasonable compensation in case of breach.

(f) 'A' undertakes to repay 'B' a loan of Rs. 1,000 by five equal monthly instalments with a stipulation that, in default of payment of any instalment, the whole shall become due. This stipulation is not by way of penalty, and the contract may be enforced according to its terms.

(g) 'A' borrows Rs. 100 from 'B' and gives him a bond of Rs. 200 payable by five yearly instalments of Rs. 40 with a stipulation that, in default of payment of any instalment, the whole shall become due. This is a stipulation by way of penalty.

75. A person who rightfully rescinds a contract is entitled to compensation for any damage which he has sustained through the non-fulfilment of the contract.

*Party rightfully rescinding contract entitled to compensation.*

*Illustration*

'A', a singer, contracts with 'B', the manager of a theatre, to sing at his theatre for two nights in every week during the next two months, and 'B' engages to pay her 100 rupees for each night's performance. On the sixth night, 'A' wilfully absents herself from the theatre and 'B' in consequence rescinds the contract. 'B' is entitled to claim compensation for the damage which he has sustained through the non-performance of the contract.

## CHAPTER VII

## Sale of Goods

*This Chapter containing Sections 76 to 123 has been repealed by the Indian Sale of Goods Act, III of 1930.*

## CHAPTER VIII

## Indemnity and Guarantee

**124.** A contract by which one party promises to save the other from loss caused to him by the conduct of the promisor himself or by the conduct of any other person, is called a "Contract of Indemnity."

*Contract of indemnity defined.*

*Illustration*

'A' contracts to indemnify 'B' against the consequences of any proceedings which 'C' may take against 'B' in respect of a certain sum of 200 rupees. This is a Contract of Indemnity,

**125.** The promisee in a contract of indemnity, acting within the scope of his authority, is entitled to recover from the promisor—

*Rights of indemnity-holder when sued.*

(1) all damages which he may be compelled to pay in any suit in respect of any matter to which the promise to indemnify applies;

(2) all costs which he may be compelled to pay in any such suit if, in bringing or defending it, he did not contravene the orders of the promisor, and acted as it would have been prudent for him to act in the absence of any contract of indemnity, or if the promisor authorized him to bring or defend the suit.

(3) all sums which he may have paid under the terms of any compromise of any such suit, if the compromise was not contrary to the orders of the promisor, and was one which it would have been prudent for the promisee to make in the absence of any contract, or if the promisor authorized him to compromise the suit.

**126.** A "contract of guarantee" is a contract to perform the

promise, or discharge the liability of a third person in case of his default. The person who gives the guarantee is called the "surety", the person in respect of whose default the guarantee is given is called the "principal debtor"; and the person to whom the guarantee is given is called the "creditor". A guarantee may be either oral or written.

127. Anything done, or any promise made for the benefit of the principal debtor may be a sufficient consideration to the surety for giving the guarantee.

#### Illustrations

(a) 'B' requests 'A' to sell and deliver to him goods on credit. 'A' agrees to do so, provided 'C' will guarantee the payment of the price of the goods. 'C' promises to guarantee the payment in consideration of A's promise to deliver the goods. This is a sufficient consideration for C's promise.

(b) 'A' sells and delivers goods to 'B'. 'C' afterwards requests 'A' to forbear to sue 'B' for the debt for a year, and promises that if he does so, 'C' will pay for him in default of payment by 'B'. 'A' agrees to forbear as requested. This is a sufficient consideration for C's promise.

(c) 'A' sells and delivers goods to 'B'. 'C' afterwards without consideration agrees to pay for them in default of 'B'. The agreement is void.

128. The liability of the surety is co-extensive with that of the principal debtor, unless it is otherwise provided by the contract.

#### Illustration

'A' guarantees to 'B' the payment of a bill of exchange by 'C' the acceptor. The bill is dishonoured by 'C'. 'A' is liable not only for the amount of the bill but also for any interest and charge which may have become due on it.

129. A guarantee, which extends to a series of transactions, is called a "continuing guarantee".

#### Illustrations

(a) 'A' in consideration that 'B' will employ 'C' in collecting the rent of B's zamindari, promises 'B' to be responsible to the amount of 5,000 rupees for the due collection and payment by 'C' of those rents. This is a continuing guarantee.

(b) 'A' guarantees payment to 'B' a tea-dealer, to the amount of £ 100, for any tea he may, from time to time, supply to 'C'. 'B' supplies 'C' with tea to the above value of £ 100 and 'C' pays 'B' for it. Afterwards 'B' supplies 'C' with tea to the value of £ 200. 'C'

fails to pay. The guarantee given by 'A' was a continuing guarantee, and he is accordingly liable to 'B' to the extent of £ 100.

(c) 'A' guarantees payment to 'B' of the price of the sacks of flour to be delivered by 'B' to 'C' and to be paid for in a month. 'B' delivers five sacks to 'C'; 'C' pays for them. Afterwards 'B' delivers four sacks to 'C' which 'C' does not pay for. The guarantee given by 'A' was not a continuing guarantee, and accordingly he is not liable for the price of the four sacks.

**130.** A continuing guarantee may at any time be revoked by the surety as to future transactions, by notice to the creditor.

#### *Illustrations*

(a) 'A' in consideration of B's discounting at A's request, bills of exchange for 'C', guarantees to 'B' for twelve months the due payment of all such bills to the extent of 5,000 rupees. 'B' discounts bills for 'C' to the extent of 2,000 rupees. Afterwards, at the end of three months 'A' revokes the guarantee. This revocation discharges 'A' from all liabilities to 'B' for any subsequent discount. But 'A' is liable to 'B' for the 2,000 rupees on default of 'C'.

(b) 'A' guarantees to 'B' to the extent of 10,000 rupees that 'C' shall pay all the bills that 'B' shall draw upon him. 'B' draws upon 'C'. 'C' accepts the bill 'A' gives notice of revocation. 'C' dishonours the bill at maturity. 'A' is liable upon his guarantee.

**131.** The death of the surety operates in the absence of any contract to the contrary, as a revocation of a continuing guarantee, so far as regards future transaction.

**132.** Where two persons contract with a third person to undertake a certain liability, and also contract with each other that one of them shall be liable only on the default of the other, the third person not being a party to such contract the liability of each of such two persons to the third person under the first contract is not affected by the existence of the second contract, although such third person may have been aware of its existence.

#### *Illustration*

'A' and 'B' make a joint and several promissory notes to 'C'. 'A' makes it, in fact, as surety for 'B' and 'C' knows this at the time when the note is made. The fact that 'A', to the knowledge of 'C' made the note as surety for 'B' is no answer to a suit by 'C' against 'A' upon the note.

**133.** Any variance, made without the surety's consent in the terms of the contract between the principal "debtor" and the "creditor", discharges the surety as to transactions subsequent to the variance.



*Illustrations*

(a) 'A' becomes surety to 'C' for B's contract as a manager in C's bank. Afterwards 'B' and 'C' contract, without A's consent, that B's salary shall be raised, and that he shall become liable for one-fourth of the losses on overdrafts. 'B' allows a customer to overdraw and the bank loses a sum of money. 'A' is discharged from his suretyship by the variance made without his consent, and is not liable to make good this loss.

(b) 'A' guarantees 'C' against the misconduct of 'B' in an office in which 'B' is appointed by 'C' and of which the duties are defined by an Act of the Legislature. By a subsequent Act, the nature of the office is materially altered. Afterwards, 'B' misconducts himself. 'A' is discharged by the change from future liability under his guarantee, though the misconduct of 'B' is in respect of a duty and affected by the later Act.

(c) 'C' agrees to appoint 'B' as his clerk to sell goods at yearly salary, upon A's becoming surety to 'C' for B's duly accounting for moneys received by him as such clerk. Afterwards, without A's knowledge or consent, 'C' and 'B' agree that 'B' should be paid by a commission on the goods sold by him and not by a fixed salary. 'A' is not liable for subsequent misconduct of 'B'.

(d) 'A' gives to 'C' a continuing guarantee to the extent of 3,000 rupees for any oil supplied by 'C' to 'B' on credit. Afterwards 'B' becomes embarrassed, and without the knowledge of 'A', 'B' and 'C' contract that 'C' shall continue to supply 'B' with oil for ready money, and that the payment shall be applied to the then existing between 'B' and 'C'. 'A' is not liable on his guarantee for any goods supplied after this new arrangement.

(e) 'C' contracts to lend 'B' 5,000 rupees on the first March. 'A' guarantees repayment. 'C' pays 5,000 rupees to 'B' on the first of January. 'A' is discharged from his liability, as the contract has been varied in as much as 'C' might sue 'B' for the money before the first of March.

**134.** The surety is discharged by any contract between the creditor *Discharge of surety by* and the principal debtor by which principal *release or discharge of* debtor is released, or by any act or omission of *principal debtors.* the creditor, the legal consequence of which is the discharge of the principal debtor.

*Illustrations*

(a) 'A' gives a guarantee to 'C' for goods to be supplied by 'C' to 'B'. 'C' supplies goods to 'B' and afterwards 'B' becomes embarrassed and contracts with his creditors (including 'C') to assign to them his property in consideration of their releasing him from their demands. Here 'B' is released from his debt by the contract with 'C', and 'A' is discharged from his suretyship.

(b) 'A' contracts with 'B' to grow a crop of indigo on A's land, and to deliver it to 'B' at a fixed rate, and 'C' guarantees A's perfor-

mance of this contract. 'B' diverts a stream of water which is necessary for irrigation of A's land, and, thereby prevents him from raising the indigo 'C' is no longer liable on his guarantee.

(c) 'A' contracts with 'B' for a fixed price to build a house for 'B' within a stipulated time, 'B' supplying the necessary timber. 'C' guarantees A's performance of the contract. 'B' omits to supply the timber. 'C' is discharged from his suretyship.

**135.** A contract between the creditor and the principal debtor, by which the creditor makes a composition with, or promises to give time to, or not to sue, the principal debtor, discharges surety.

*Discharge of surety when creditor compounds with, gives time to, or agrees not to sue principal debtor.*

**136.** Where a contract to give time to the principal debtor is made by the creditor with a third person, and not with the principal debtor, the surety is not discharged.

*Surety not discharged when agreement made with third person to give time to the principal debtor.*

#### Illustration

'C' the holder of an overdue bill of exchange drawn by 'A' as surety for 'B' and accepted by 'B', contracts with 'M' to give time to 'B'. 'A' is not discharged.

**137.** Mere forbearance on the part of the creditor to sue the principal debtor, or to enforce any other remedy against him does not in the absence of any provision in the guarantee to the contrary, discharge the surety.

*Creditor's forbearance to sue does not discharge surety.*

#### Illustration

'B' owes to 'C' a debt guaranteed by 'A'. The debt becomes payable. 'C' does not sue 'B' for a year after the debt has become payable 'A' is not discharged from his suretyship.

**138.** Where there are co-sureties, a release by the creditor of one of them does not discharge the others; neither does it free the surety so released from his responsibility to the other sureties

*Release of the co-surety does not discharge others.*

**139.** If the creditor does any act which is inconsistent with the rights of the surety or omits to do any act which his duty to the surety requires him to do, and the eventual remedy of the surety himself against the principal debtor is thereby impaired, the surety is discharged.

*Discharge of surety by creditor's act or omission impairing surety's eventual.*

#### Illustrations

(a) 'B' contracts to build a ship for 'C' for a given sum to be paid by instalment as the work reaches certain stages. 'A' becomes surety

to 'C' for B's due performance of the contract. Without the knowledge of 'A', 'C' prepays to 'B' the last two instalments. 'A' is discharged by this prepayment.

(b) 'C' lends money to 'B' on the security of a joint and several promissory note made in C's favour by 'B' and by 'A', as surety for 'B', together with a bill of sale of B's furniture which gives power to 'C' to sell the furniture, and apply the proceeds in discharge of the note. Subsequently, 'C' sells the furniture but owing to his misconduct and wilful negligence, only a small price is realized. 'A' is discharged from liability on the note.

(c) 'A' puts 'M' as apprentice to 'B' and gives a guarantee to 'B' for M's fidelity. 'B' promises on his part that he will, at least once a month, see 'M' make up the cash. 'B' omits to see this done as promised, and 'M' embezzles. 'A' is not liable to 'B' on his guarantee.

**140.** Where a guaranteed debt has become due for default of the principal debtor to perform a guaranteed duty, the surety, upon payment or performance of all that is liable for, is invested with all the rights which the creditor had against the principal debtor.

*Rights of surety on payment or performance.*

**141.** A surety is entitled to the benefit of every security which the creditor has against the principal debtor at the time when the contract of suretyship is entered into, whether the surety knows of the existence of such security or not; and, if the creditor loses or, without the consent of surety parts with such security, the surety is discharged to the extent of the value of the security.

*Surety's right to benefit of creditor's securities.*

### *Illustrations*

(a) 'C' advances to 'B', his tenant, 2,000 rupees, on the guarantee of 'A'. 'C' has also a further security for the 2,000 rupees, by a mortgage of B's furniture. 'C' cancels the mortgage. 'B' becomes insolvent and 'C' sues 'A' on his guarantee. 'A' is discharged from liability to the amount of the value of the furniture.

(b) 'C', a creditor, whose advance to 'B' is secured by a decree, receives also a guarantee for that advance from 'A'. 'C' afterwards takes B's goods in execution under the decree, and then, without the knowledge of 'A', withdraws the execution. 'A' is discharged.

(c) 'A' as surety for 'B' makes a bond jointly with 'B' to 'C', to secure a loan from 'C' to 'B'. Afterwards, 'C' obtains from 'B' a further security for the same debt. Subsequently, 'C' gives up the further security. 'A' is not discharged.

**142.** Any guarantee which has been obtained by means of misrepresentation made by the creditor, or without his knowledge and assent, concerning a material part of the transaction, is invalid.

*Guarantee obtained by misrepresentation invalid*

143. Any guarantee which the creditor has obtained by keeping silence as to material circumstances is invalid.  
*Guarantee obtained by concealment invalid.*

#### *Illustrations*

(a) 'A' engages 'B' as clerk to collect money for him. 'B' fails to account for some of his receipts and 'A' in consequence, calls upon him to furnish security for his duty accounting. 'C' gives his guarantee for B's duty accounting. 'A' does not acquaint 'C' with B's previous conduct. 'B' afterwards makes default. The guarantee is invalid.

(b) 'A' guarantees to 'C' payment for iron to be supplied by him to 'B' to the amount of 2,000 tons. 'B' and 'C' have privately agreed that 'B' should pay five rupees per ton beyond the market price, such excess to be applied in liquidation of an old debt. This agreement is concealed from 'A'. 'A' is not liable as a surety.

144. Where a person gives a guarantee upon a contract that the creditor shall not act upon it until another person has joined in it as co-surety, the guarantee is not valid if that other person does not join.  
*Guarantee on contract that creditor shall not act on it until co-surety joins.*

145. In every contract of guarantee there is an implied promise by the principal debtor to indemnify the surety, and the surety is entitled to recover from the principal debtor whatever sum he has rightfully paid under the guarantee, but no sum which he has paid wrongfully.  
*Implied promise to indemnify surety.*

#### *Illustrations*

(a) 'B' is indebted to 'C' and 'A' is surety for the debt. 'C' demands payment from 'A' and on his refusal sues him for the amount. 'A' defends the suit, having reasonable grounds for doing so, but is compelled to pay the amount of the debt with costs. He can recover from 'B' the amount paid by him for costs, as well as the principal debt.

(b) 'C' lends 'B' a sum of money, and 'A', at the request of 'B', accepts a bill of exchange drawn by 'B' upon 'A', to secure the amount. 'C' the holder of the bill, demands payment of it from 'A', and on A's refusal to pay sues him upon the bill. 'A', not having reasonable grounds for so doing, defends the suit and has to pay the amount of the bill and costs. He can recover from 'B' the amount of bill but not the sum paid for costs as there was no real ground for defending the action.

(c) 'A' guarantees to 'C', to the extent of 2,000 rupees, as payment for rice to be supplied by 'C' to 'B'. 'C' supplies to 'B' rice to a lesser amount than 2,000 rupees, but obtains from 'A' payment of the sum

of 2,000 rupees in respect of the rice supplied. 'A' cannot recover from 'B' more than the price of the rice actually supplied.

**146.** Where two or more persons are co-sureties for the same whether under the same or different contracts, and whether with or without the knowledge of each other, the co-sureties in the absence of any contract to the contrary, are liable as between themselves, to pay each an equal share of the whole debt, or of that part of it which remains unpaid by the principal debtor

*Co-sureties liable to contribute equally.*

#### • Illustrations

(a) 'A', 'B' and 'C' are sureties to 'D' for the sum of 3,000 rupees lent to 'E'. 'E' makes default in payment. 'A', 'B' and 'C' are liable as between themselves, to pay 1,000 rupees each.

(b) 'A', 'B' and 'C' are sureties to 'D' for the sum of 1,000 rupees lent to 'E' and there is a contract between 'A', 'B' and 'C' that 'A' is to be responsible to the extent of one-quarter, 'B' to the extent of one-quarter, and 'C' to the extent of one-half. 'E' makes default in payment. As between the sureties 'A' is liable to pay 250 rupees, 'B' 250 rupee and 'C' 500 rupees.

**147.** Co-sureties, who are bound in different sums are liable to pay equally as far as the limits of their respective obligations permit.

*Liabilities of co-sureties bound in different sums.*

#### Illustrations

(a) 'A', 'B' and 'C' as sureties for 'D' enter into three several bonds each in a different penalty, namely, 'A' in the penalty of 10,000 rupees, 'B' in that of 20,000 rupees, 'C' in that of 40,000 rupees, conditioned for D's duly accounting to 'E'. 'D' makes default to the extent of 30,000 rupees. 'A', 'B' and 'C' are each liable to pay 10,000 rupees.

(b) 'A', 'B' and 'C' as sureties for 'D' enter into three several bonds, each in a different penalty, namely, 'A' in the penalty of 10,000 rupees, 'B' in that of 20,000 rupees, 'C' in that of 40,000 rupees conditioned for D's duly accounting to 'E'. 'D' makes default to the extent of 40,000 rupees 'A' is liable to pay 10,000 rupees, and 'B' and 'C' 15,000 rupees each.

(c) 'A', 'B' and 'C' as sureties for 'D' enter into three several bonds, each in a different penalty, namely, 'A' in the penalty of 10,000 rupees, 'B' in that of 20,000 rupees, 'C' in that of 10,000 rupees conditioned in D's duly accounting to 'E'. 'D' makes default to the extent of 70,000 rupees. 'A', 'B' and 'C' have to pay each the full penalty of his bond.

## CHAPTER IX

## Of Bailment

**148.** A 'bailment' is the delivery of goods by one person to another for some purpose, upon a contract 'Bailment', 'bailor' and that they shall, when the purpose is accomplished, be returned or otherwise disposed of according to the directions of the person delivering them. The person delivering the goods is called the "bailor". The person to whom they are delivered is called the "bailee."

*Explanation :* If a person, already in possession of the goods of another, contracts to hold them as a bailee, he thereby becomes the bailee and the owner becomes the bailor, of such goods, although they have not been delivered by way of bailment.

**149.** The delivery to the bailee may be made by doing anything which has the effect of putting the goods in the possession of the intended bailee or of any person authorized to hold them on his behalf.

*Delivery to bailee how made.*

**150.** The bailor is bound to disclose to the bailee faults in the goods bailed, of which the bailor is aware, and which materially interfere with the use of them or expose the bailee to extraordinary risks; and if he does not make such disclosure, he is responsible for damage arising to the bailee directly from such faults.

*Bailor's duty to disclose fault in goods bailed.*

If the goods are bailed for hire, the bailor is responsible for such damage, whether he was or was not aware of the existence of such faults in the goods bailed.

*Illustrations*

(a) 'A' lends a horse, which he knows to be vicious to 'B'. He does not disclose the fact that the horse is vicious. The horse runs away. 'B' is thrown and injured. 'A' is responsible to 'B' for damage sustained.

(b) 'A' hires a carriage of 'B'. The carriage is unsafe, though 'B' is not aware of it, and 'A' is injured. 'B' is responsible to 'A' for the injury.

**151.** In all cases of bailment the bailee is bound to take as much care of the goods bailed to him as a man of ordinary prudence would, under similar circumstances, take of his own goods of the same bulk, quality and value as the goods bailed.

*Care to be taken by bailee.*

**152.** The bailee, in the absence of any special contract, is not responsible for the loss, destruction or deterioration of thing bailed, if he has taken the amount of care as described in Section 151.

*Bailee when not liable for loss etc. of thing bailed.*

**153.** A contract of bailment is voidable at the option of the bailor, if the bailee does any act with regard to the goods bailed, inconsistent with the condition of the bailment.

*Termination of bailment if bailee's act inconsistent with conditions.*

#### Illustration

'A' lets to 'B' for hire a horse for his own riding. 'B' drives the horse in his carriage. This is, at the option of 'A', a termination of the bailment.

**154.** If the bailee makes any use of the goods bailed, which is not according to the conditions of the bailment, he is liable to make compensation to the bailor for any damage arising to the goods from or during such use of them.

*Liability of bailee making unauthorized use of goods bailed.*

#### Illustrations

(a) 'A' lends a horse to 'B' for his own riding only. 'B' allows 'C', a member of his family, to ride the horse. 'C' rides with care, but the horse accidentally falls, and is injured. 'B' is liable to make compensation to 'A' for the injury done to the horse.

(b) 'A' hires a horse in Calcutta from 'B' expressly to march to Banaras. 'A' rides with due care, but marches to Cuttack instead. The horse accidentally falls, and is injured. 'A' is liable to make compensation to 'B' for the injury to the horse.

**155.** If the bailee, with the consent of the bailor, mixes the goods of the bailor with his own goods, the bailor and the bailee shall have an interest, in proportion to their respective shares, in the mixture thus produced.

*Effect of mixture with bailor's consent of his goods with bailee's.*

**156.** If the bailee, without the consent of the bailor, mixes the goods of the bailor with his own goods, and the goods can be separated or divided, the property in the goods remains in the parties respectively; but the bailor is bound to bear the expenses of separation or division, and damage arising from the mixture.

*Effect of mixture with bailor's consent, when the goods can be separated.*

#### Illustration

'A' bails 100 bales of cotton marked with a particular mark to 'B'. 'B' without A's consent, mixes the 100 bales with

other bales of his own, bearing a different mark. 'A' is entitled to have his 100 bales returned, and 'B' is bound to bear all the expenses incurred in the separation of the bales, and any other incidental damage.

**157.** If the bailee, without the consent of the bailor, mixes the goods of the bailor with his own goods, in such manner that it is impossible to separate the goods bailed from the other goods and deliver them back, the bailor is entitled to be compensated by the bailee for the loss of goods.

*Effect of mixture, without bailor's consent, when the goods cannot be separated.*

### Illustration

'A' bails a barrel of cape flour, worth Rs. 45 to 'B'. 'B' without A's consent mixes the flour with country flour of his own, worth only Rs. 25 a barrel. 'B' must compensate 'A' for the loss of his flour.

**158.** Where, by the conditions of the bailment, the goods are to be kept or to be carried, or to have work done upon them by the bailee for the bailor and the bailee is to receive no remuneration, the bailor shall repay to the bailee the necessary expenses incurred by him for the purpose of the bailment.

*Repayment by bailor of necessary expenses.*

**159.** The lender of a thing for use may at any time require its return, if the loan was gratuitous, even though he lent it for a specified time or purpose. But if, on the faith of such loan made for a specified time or purpose, the borrower has acted in such a manner that the return of the thing lent before the time agreed upon would cause him loss exceeding the benefit actually derived by him from the loan, the lender must, if he compels the return, indemnify the borrower the amount in which the loss so occasioned exceeds the benefit so derived.

*Restoration of goods lent gratuitously.*

**160.** It is the duty of the bailee to return or deliver, according to the bailor's directions, the goods bailed, without demand, as soon as the time for which they were bailed has expired or the purpose for which they were bailed has been accomplished.

*Return of goods bailed on expiration of time or accomplishment of purpose.*

**161.** If, by the default of the bailee, the goods are not returned, delivered, or tendered at the proper time, he is responsible to the bailor for any loss, destruction or deterioration of the goods from that time.

*Bailee's responsibility when goods are not duly returned.*

**162.** A gratuitous bailment is terminated by the death either of the bailor or of the bailee.

*Termination of gratuitous bailment by death.*



**163.** In the absence of any contract to the contrary, the bailor is bound to deliver to the bailor, according to his directions, any increase of profit which may have accrued from the goods bailed.

*Bailor entitled to increase of profit from goods bailed.*

*Illustration,*

'A' leaves a cow in the custody of 'B' to be taken care of. The cow has a calf. 'B' is bound to deliver the calf as well as the cow to 'A'.

**164.** The bailor is responsible to the bailee for any loss which the bailor may sustain by reason that bailor was not entitled to make the bailment, or to receive back the goods or to give direction respecting them.

*Bailor's responsibility to bailee.*

**165.** If several joint owners of goods bail them, the bailee may deliver them back to, or according to the directions of, one joint owner without the consent of all, in the absence of any agreement to the contrary.

*Bailment by several joint owners.*

**166.** If the bailor has no title to the goods, and the bailee, in good faith, delivers them back to, or according to the directions of the bailor, the bailee is not responsible to the owner in respect of such delivery.

*Bailee not responsible for delivery to bailor without title.*

**167.** If a person, other than the bailor, claims goods bailed, he may apply to the Court to stop the delivery of the goods to the bailor and to decide the title to the goods.

*Right of third person claiming goods bailed.*

**168.** The finder of goods has no right to sue the owner for compensation for trouble and expense voluntarily incurred by him to preserve the goods and to find out the owner until he may retain the goods against the owner until he receives such compensation, and where the owner has offered a specific reward for the return of goods lost, the finder may sue for such reward, and may retain the goods until he receives it.

*Rights of finder of goods to sue for specific reward offered.*

**169.** When a thing, commonly the subject of sale is lost, if the owner cannot, with reasonable diligence be found, or if he refuses, upon demand, to pay the lawful charges of the finder the finder, may sell it :—

*When finder of thing commonly on sale may sell it.*

(1) when the thing is in danger of perishing or of losing the greater part of its value; or

(2) when the lawful charges of finder, in respect of the thing found, amount to two-third of its value.

**170.** Where a bailee has in accordance with the purpose of the bailment, rendered any service involving the exercise of labour or skill in respect of the goods bailed, he has, in the absence of a contract to the contrary a right to retain such goods until he receives due remuneration for the services he has rendered in respect of them.

*Bailee's particular lien.*

#### *Illustrations*

(a) 'A' delivers a rough diamond to 'B', a jeweller, to be cut and polished which is accordingly done. 'B' is entitled to retain the stone till he is paid for the services he has rendered.

(b) 'A' gives cloth to 'B' a tailor to make into a coat. 'B' promises 'A' to deliver the coat as soon as it is finished and to give a three month's credit for the price. 'B' is not entitled to retain the coat until he is paid.

**171.** Banker, factors, wharfingers, attorney of a High Court and policy-brokers may, in the absence of a contract to the contrary, retain, as a security for a general balance of account, any goods bailed to them, but no other persons have a right to retain, as a security for such balance, goods bailed to them, unless there is an express contract to that effect.

*General lien of banker, factors, wharfingers, attorneys and policy-brokers.*

#### **Bailments of Pledges**

**172.** The bailment of goods as security for payment of a debt or "Pledge," "pawnor" and performance of a promise is called "pledge". The bailee is called the "pawnee."

**173.** The pawnee may retain the goods pledged, not only for payment of the debt or the performance of the promise, but for the interest of the debt and all the necessary expenses incurred by him in respect of the possession or for the preservation of the goods pledged.

*Pawnee's right of retainer.*

**174.** The pawnee shall not, in the absence of a contract to that effect, retain the goods pledged for any debt or promise other than the debt or promise for which they are pledged; but such contract, in the absence of anything to the contrary shall be presumed in regard to subsequent advances made by the pawnee:

*Pawnee not to retain for debt or promise other than that for which goods pledged. Presumption in case of subsequent advances.*

**175.** The pawnee is entitled to receive from the pawnor extraordinary expenses incurred by him for the preservation of the goods pledged.

*Pawnee's right as to extraordinary expenses incurred.*

**176.** If the pawnor makes default in payment of the debt, or performance, at the stipulated time of the promise, in respect of which the goods were pledged, the paynee may bring a suit against the pawnor upon the debt or promise, and retain the goods pledged as a collateral security, or he may sell the thing pledged, on giving the pawnor reasonable notice of the sale.

*Pawnee's right where Pawnor makes default.*

If the proceeds of such sale are less than the amount due in respect of the debt or promise, the pawnor is liable to pay the balance. If the proceeds of the sale are greater than the amount so due, the pawnee shall pay over the surplus to the pawnor.

**177.** If a time is stipulated for the payment of the debt or performance of the promise for which the pledge is made, and the pawnor makes default in payment of the debt or performance of the promise at the stipulated time, he may redeem the goods pledged at any subsequent time before the actual sale of them, but he must, in that case, pay in addition, any expenses which have arisen from his default.

*Defaulting pawnor's right to redeem.*

**178.** When a mercantile agent is, with the consent of the owner, in possession of goods or the documents of title to goods, any pledge made by him, when acting in the ordinary course of business of a mercantile agent, shall be as valid as if he were expressly authorised by the owner of the goods to make the same, provided that the pawnee acts in good faith, and has not at the time of the pledge notice that the pawnor has no authority to pledge.

*Pledge by mercantile agent.*

*Explanation:* In this Section the expressions "mercantile agent" and "documents of title" shall have the meanings assigned to them in the Indian Sale of Goods Act, 1930.

**178A.** When the pawnor has obtained possession of the goods pledged by him under a contract voidable under Section 19 or Section 19A, but the contract has not been rescinded at the time of the pledge, the pawnor acquires a good title to the goods, provided he acts in good faith and without notice of the pawnor's defect of title.

*Pledge by person in possession under voidable contract.*

**179.** Where a person pledges goods in which he has only a limited interest, the pledge is valid to the extent of that interest.

*Pledge where pawnor has only a limited interest.*

### Suits by Bailors or Bailees against Wrong-doers

**180.** If a third person wrongfully deprives the bailee of the use of the goods bailed, or does them any injury, the bailee is entitled to use such remedies as the owner might have used in the like case if no bailment had been made; and either the bailor or the bailee may bring a suit against a third person for such deprivation or injury.

**181.** Whatever is obtained by way of relief or compensation in any such suit shall, as between the bailor and the bailee, be dealt with according to their respective interest.

## CHAPTER X

### Agency

#### *Appointment and Authority of Agents*

**182.** An "agent" is a person employed to do any act for another or to represent another in dealings with third persons. The person for whom such act is done, or who is so represented, is called the "principal."

**183.** Any person who is of the age of majority according to the law to which he is subject and who is of sound mind, may employ agent.

**184.** As between the principal and third persons any person may become agent, but no person who is not of the age of majority and of sound mind can become an agent, so as to be responsible to his principal according to the provisions in that behalf herein contained.

**185.** No consideration is necessary to create an agency.

**186.** The authority of agent may be expressed or implied.

**187.** An authority is said to be expressed when it is given by words spoken or written. An authority is said to be implied when it is to be inferred from the circumstances of the case, and things spoken or written, or the ordinary course of dealing, may be accounted as circumstances of the case.

#### *Illustration*

'A' owns a shop in Serampore living himself in Calcutta, and visiting the shop occasionally. The shop is managed by 'B' and he is in the habit of ordering goods from 'C' in the name of 'A' for the purposes of the shop and of paying for them out within A's knowledge. 'B' has an implied authority from

'A' to order goods from 'C' in the name of 'A' for the purpose of the shop.

**188.** An agent having an authority to do an act has authority  
*Extent of agent's authority.* to do every lawful thing which is necessary in order to do such act.

An agent having an authority to carry on a business has authority to do every lawful thing necessary for the purpose, or usually done in the course of conducting such business.

### Illustrations

(a) 'A' is employed by 'B', residing in London, to recover at Bombay a debt due to 'B'. 'A' may adopt any legal process necessary for the purpose of recovering the debt, and may give a valid discharge for the same.

(b) 'A' constitutes 'B', his agent, to carry on his business of a shipbuilder. 'B' may purchase timber and other materials, and hire workmen, for the purpose of carrying on the business.

**189.** An agent has authority, in an emergency, to do all such acts for the purpose of protecting his principal  
*Agent's authority in an emergency.* from loss as would be done by a person of ordinary prudence, in his own case, under similar circumstances.

### Illustrations

(a) An agent for sale may have goods repaired if it be necessary.

(b) 'A' consigns provisions to 'B' at Calcutta, with direction to send them immediately to 'C' at Cuttack. 'B' may sell the provisions at Calcutta, if they will not bear the journey to Cuttack without spoiling.

### Sub-agents

**190.** An agent cannot lawfully employ another to perform acts which he has expressly or impliedly  
*When agent cannot delegate.* undertaken to perform personally, unless by ordinary custom of trade, a sub-agent may, or from the nature of the agency, a sub-agent must be employed.

**191.** A "sub-agent" is a person employed by and acting under  
*"Sub-agent" defined.* the control of the original agent in the business of agency.

**192.** Where a sub-agent is properly appointed, the principal is,  
*Representation of principal by sub-agent properly appointed.* so far as regards the third person represented by the sub agent, is bound by and responsible for his acts, as if he were an agent originally appointed by the principal.

The agent is responsible to the principal for the acts of the  
*Agent's responsibility for sub-agent.* sub-agent.

The sub-agent is responsible for his acts to his agent, but not to the principal, except in case of fraud or wilful wrong.

193. Where an agent, without having authority to do so has appointed a person to act as a sub-agent, the agent stands towards such person in the relation of a principal to an agent and is responsible for his acts both to the principal and to third persons; the principal is not represented by or responsible for the acts of the person so employed, nor is that person responsible to the principal.

194. Where an agent holding an express or implied authority to name another person to act for the principal and the business of the agency, has named another person accordingly, such person is not a sub agent, but an agent of the principal for such part of the business of the agency as is entrusted to him.

#### Illustrations

(A) 'A' directs 'B', his solicitor, to sell his estate by auction and to employ an auctioneer for the purpose. 'B' names 'C', an auctioneer, to conduct the sale. 'C' is not a sub-agent but, is A's agent for the conduct of the sale

(b) 'A' authorizes 'B', a merchant in Calcutta, to recover the moneys due to 'A' from 'C & Co.' For the recovery of the money, 'B' is not a sub-agent, but a solicitor for 'A'.

195. In selecting such agent for his principal an agent is bound to exercise the same amount of discretion as a man of ordinary prudence would exercise in his own case, and if he does this he is not responsible to the principal for the acts or negligence of the agent so selected.

#### Illustrations

(a) 'A' instructs 'B', a merchant, to buy a ship for him. 'B' employs a ship-surveyor of good reputation to choose a ship for 'A'. The surveyor makes the choice negligently, and the ship turns out to be unseaworthy, and is lost. 'B' is not, but surveyor is, responsible to 'A'.

(b) 'A' consigns goods to 'B', a merchant, for sale. 'B' in due course, employs an auctioneer in good credit to sell the goods of 'A', and allows the auctioneer to receive the proceeds of the sale. The auctioneer afterwards becomes insolvent without having accounted for the proceeds. 'B' is not responsible to 'A' for the proceeds.

### Ratification

**196.** Where acts are done by one person on behalf of another, *Right of person as to acts done for him without his knowledge or authority.* but without his knowledge or authority, he may elect to ratify or to disown such acts. If he ratifies them, the same effects will follow as if they had been performed by his authority. *Effect of ratification.*

**197.** Ratification may be expressed or may be implied in the conduct of the person on whose behalf the acts are done. *Ratification may be expressed or implied.*

#### Illustrations

(a) 'A' without B's authority, buys goods for 'B'. Afterwards 'B' sells them to 'C' on his own account. B's conduct implies a ratification of the purchase made for him by 'A'.

(b) 'A' without B's authority, lends B's money to 'C'. Afterwards 'B' accepts interests on the money from 'C'. B's conduct implies a ratification of the loan.

**198.** No valid ratification can be made by a person whose knowledge requisite for valid ratification. knowledge of the facts of the case is materially defective.

**199.** A person ratifying any unauthorized act done on his behalf ratifies the whole of the transaction of which such act formed a part. *Effect of ratifying unauthorized act forming part of a transaction.*

**201.** An act done by one person on behalf of another, without such other person's authority, which, if done with authority would have the effect of subjecting a third person to damages, or of terminating any right or interest of a third person, cannot, by ratification, be made to have such effect. *Ratification of unauthorized act cannot injure third person.*

#### Illustrations

(a) 'A', not being authorized thereto by 'B', demands on behalf of 'B', the delivery of a chattel, the property of 'B', from 'C' who is in possession of it. The demand cannot be ratified by 'B', so as to make 'C' liable for his refusal to deliver.

(b) 'A' holds a lease from 'B', terminable on three months' notice. 'C', an unauthorized person, gives notice of termination to 'A'. The notice cannot be ratified by 'B' so as to be binding on 'A'.

### Revocation of Authority

**202.** An agency is terminated by the principal revoking his authority; or by the agent renouncing the business

*Termination of agency.* of the agency; or by the business of the agency being completed; or by either the principal or agent dying or becoming of unsound mind; or by the principal being adjudicated an insolvent under the provisions of any act for the time being in force for relief of insolvent debtors.

202. Where the agent has himself an interest in the property *Termination of agency, where agent has an interest in subject-matter.* which forms the subject-matter of the agency, the agency cannot, in the absence of an express contract, be terminated to the prejudice of such interest.

#### Illustrations

(a) 'A' gives authority to 'B' to sell A's land to pay himself, out of the proceeds, the debts due to him. 'A' cannot revoke this authority, nor can it be terminated by his insanity or death.

(b) 'A' consigns 1,000 bales of cotton to 'B', who has made advances to him on such cotton, and desires 'B' to sell the cotton, and to repay himself, out of the amount of his own advances. 'A' cannot revoke this authority, nor is it terminated by his insanity or death.

203. The principal may, save as is otherwise provided by the *When principal may revoke agent's authority.* last preceding section, revoke the authority given at any time before the authority has been exercised so as to bind the principal.

204. The principal cannot revoke the authority given to his *Revocation where authority has been partly exercised.* agent after the authority has been partly exercised so far as regards such acts and obligations as arise from the acts already done in the agency.

#### Illustrations

(a) 'A' authorizes 'B' to buy 1,000 bales of cotton on account of 'A', and to pay for it out of A's money remaining in B's hands. 'B' buys 1,000 bales of cotton in his own name, so as to make himself personally liable for the price. 'A' cannot revoke B's authority, so far as regards payment for the cotton.

(b) 'A' authorizes 'B' to buy 1,000 bales of cotton on account of 'A', and to pay for it out of A's money remaining in B's hands. 'B' buys 1,000 bales of cotton in A's name so as not to render himself personally liable for the price. 'A' can revoke B's authority to pay for the cotton.

205. When there is an express or implied contract that the *Compensation for revocation by principal, or renunciation by agent.* agency should be continued for any period of time, the principal must make compensation to the agent, or the agent to the principal as the case may be, for any previous renunciation of the agency without sufficient cause.



206.<sup>1</sup> Reasonable notice must be given of such revocation or renunciation; otherwise the damage thereby resulting to the principal or the agent, as the case may be, must be made good to the one by the other.

*Notice of revocation or renunciation.*

207. Revocation and renunciation may be expressed or may be implied in the conduct of the principal or agent respectively.

*Revocation and renunciation may be expressed or implied.*

### Illustration

'A' empowers 'B' to let A's house. Afterwards 'A' lets it himself. This is an implied revocation of B's authority.

208. The termination of the authority of an agent does not, so far as regards the agent, take effect before it becomes known to him, or so far as regards third persons before it becomes known to them.

*When termination of agent's authority takes effect as to agent, and as to third persons.*

### Illustrations

(a) 'A' directs 'B' to sell goods for him, and agrees to give 'B' five per cent commission on the price fetched by the goods. 'A' afterwards, by letter revokes B's authority. 'B', after the letter is sent, but before he receives it, sells the goods for 100 rupees. The sale is binding on 'A' and 'B' is entitled to five rupees as his commission.

(b) 'A', at Madras, by letter, directs 'B' to sell for him some cotton lying in a warehouse at Bombay. and afterwards, by letter, revokes his authority to sell and directs 'B' to send the cotton to Madras. 'B' after receiving the second letter, enters into a contract with 'C', who knows of the first letter, but not of the second, for the sale to him of the cotton. 'C' pays 'B' the money, with which 'B' absconds. C's payment is good as against 'A'.

(c) 'A' directs 'B', his agent, to pay certain money to 'C'. 'A' dies and 'D' takes out probate to his will. 'B', after A's death but before hearing of it, pays the money to 'C'. The payment is good as against 'D' the executor.

209. When an agency is terminated by the principal's dying or becoming of unsound mind the agent is bound to take, on behalf of the representatives of his late principal all reasonable steps for the protection and preservation of the interests entrusted to him.

*Agent's duty on termination of agency by principal's death or insanity.*

210. The termination of the authority of an agent causes the termination (subject to the rules, herein contained regarding the termination of an agent's authority) of the authority of all sub-agents appointed by him.

*Termination of sub-agents authority.*

## Agent's Duty to Principal

**211.** An agent is bound to conduct the business of his principal *Agent's duty in conducting principal's business.* according to the directions given by the principal, or in the absence of any such directions, according to the custom which prevails in doing business of the same kind at the place where the agent conducts such business. When the agent acts otherwise, if any loss be sustained he must make it good to his principal, and, if any profit accrues, he must account for it.

*Illustrations*

(a) 'A', an agent, engaged in carrying on for 'B', business in which it is the custom to invest from time to time at interest the moneys which may be in hand, omits to make such investment. 'A' must make good 'B' the interest usually obtained by such investment.

(b) 'B', a broker in whose business it is not the custom to sell on credit, sells goods of 'A' on credit to 'C', whose credit at the time was very high. 'C', before payment, becomes insolvent. 'B' must make good the loss to 'A'.

**212.** An agent is bound to conduct the business of the agency *Skill and diligence required from agent.* with as much skill as is generally possessed by persons engaged in similar business unless the principal has notice of his want of skill. The agent is always bound to act with reasonable diligence and to use such skill as he possesses, and to make compensation to his principal in respect of the direct consequences of his own neglect, want of skill or misconduct, but not in respect of loss or damage which are indirectly or remotely caused by such neglect, want of skill or misconduct.

*Illustrations*

(a) 'A', a merchant in Calcutta, has an agent 'B', in London to whom a sum of money is paid on A's account with order to remit. 'B' retains the money for a considerable time. 'A', in consequence of not receiving the money, becomes insolvent. 'B' is liable for the money and interest from the day on which it ought to have been paid, according to the usual rate and for any further direct loss *e. g.* by variation of rate of exchange but not further.

(b) 'A' an agent for the sale of goods, having authority to sell on credit, sells to 'B' on credit, without making the proper and usual enquiries as to solvency of 'B'. 'B' at the time of such sale, is insolvent. 'A' must make compensation to his principal in respect of any loss sustained.

(c) 'A', an insurance-broker, employed by 'B' to effect an insurance on a ship, omits to see that the usual clauses are inserted in the policy. The ship is afterwards lost. In consequence of the

omission of the clauses nothing can be recovered from the underwriters. 'A' is bound to make good the loss to 'B'.

(d) 'A', a merchant in England, directs 'B', his agent at Bombay, who accepts the agency, to send him 100 bales of cotton by a certain ship. 'B', having it in his power to send the cotton, omits to do so. The ship arrives safely in England. Soon after its arrival, the price of cotton rises. 'B' is bound to make good to 'A' the profit which he might have made by the 100 bales of cotton at the time the ship arrived, but not any profit he might have made by the subsequent rise.

**213.** An agent is bound to render proper account to his principal on demand.  
*Agent's accounts.*

**214.** It is the duty of an agent, in cases of difficulty, to use all reasonable diligence in communicating with his principal, and in seeking to obtain his instructions.  
*Agent's duty to communicate with his principal.*

**215.** If an agent deals on his own account in the business of the agency, without first obtaining the consent of his principal and acquainting him with all material circumstances which have come to his own knowledge on the subject, the principal may repudiate the transaction, if the case shows either that any material fact has been dishonestly concealed from him by the agent, or that the dealings of the agent have been disadvantageous to him.  
*Right of principal when agent deals on his own account in business of agency without principal's consent.*

### Illustrations

(a) 'A' directs 'B' to sell A's estate. 'B' buys the estate for himself in the name of 'C'. 'A', on discovering that 'B' has bought the estate for himself, may repudiate the sale, if he can show that 'B' has dishonestly concealed any material fact, or that the sale has been disadvantageous to him.

(b) 'A' directs 'B' to sell A's estate. 'B' on looking over the estate before selling it, finds a mine on the estate which is unknown to 'A'. 'B' informs 'A' that he wishes to buy the estate for himself, but conceals the discovery of the mine. 'A' allows 'B' to buy in ignorance of the existence of the mine. 'A' on discovering that 'B' knew of the mine at the time bought the estate, may either repudiate or adopt the sale at his option.

**216.** If an agent, without the knowledge of his principal, deals in the business of the agency on his own account instead of on account of his principal, the principal is entitled to claim from the agent any benefit which may have resulted to him from the transaction.  
*Principal's right to benefit gained by agent dealing on his own account in business of agency.*

### Illustration

'A' directs 'B', his agent, to buy a certain house for him. 'B'

tells 'A' that it cannot be bought and buys the house for himself. 'A' may, on discovering that 'B' has bought the house, compel him to sell it to 'A' at the price he gave for it.

217. An agent may retain, out of any sums received on *Agent's right of account* of the principal in the business of the *retainer of sums* agency, all money due to himself in respect of *received on principal's account.* advances made or expenses properly incurred by him in conducting such business, and also such remuneration as may be payable to him for acting as agent.

218. Subject to such deductions, the agent is bound to pay to *Agent's duty to pay* principal all sums received on his account. *sums received for principal.*

219. In the absence of any special contract, payment for the performance of any act is not due to the agent until the completion of such act; but agent may detain money received by him on account of goods sold, although *When agent's remuneration becomes due.* the whole of the goods consigned to him for sale may not have been sold or although the sale may not be actually complete.

220. An agent who is guilty of misconduct in the business of *Agent not entitled to remuneration for business misconducted.* the agency is not entitled to any remuneration in respect of that part of the business which he has misconducted.

### Illustrations

(a) 'A' employs 'B' to recover 1,00,000 rupees from 'C' and to lay it out on good security 'B' recovers the 1,00,000 rupees and lays out 90,000 rupees on good security, but lays out 10,000 rupees on security which he ought to have known to be bad, whereby 'A' loses 2,000 rupees. 'B' is entitled to remuneration for recovering 1,00,000 rupees and for investing the 90,000 rupees. He is not entitled to any remuneration for investing the 10,000 rupees and he must make good the 2,000 rupees to 'B'.

(b) 'A' employs 'B' to recover 1,000 rupees from 'C' but through B's misconduct the money is not recovered. 'B' is entitled to no remuneration for his services, and he must make good the loss.

221. In the absence of any contract to the contrary an agent is entitled to retain goods and other properties, *Agent's lien on principal's property.* whether movable or immovable, of the principal received by him, until the amount due to himself for commission, disbursements and services in respect of the same has been paid, or accounted for to him.

### Principal's Duty to Agent

222. The employer of an agent is bound to indemnify his

*Agent to be indemnified against consequences of lawful acts.* agent against the consequences of all lawful acts done by such agent in exercise of the authority conferred upon him.

*Illustrations*

(a) 'B' at Singapur, under instructions from 'A' of Calcutta, contracts with 'C' to deliver certain goods to him. 'A' does not send the goods to 'B' and 'C' sues for breach of contract. 'B' informs 'A' of the suit and 'A' authorises him to defend the suit. 'B' defends the suit, and is compelled to pay damages and costs, and expenses. 'A' is liable to 'B' for such damages, costs and expenses.

(b) 'B', a broker at Calcutta, by the orders of 'A', a merchant there, contracts with 'C' for the purchase of 10 casks of oil for 'A'. Afterwards 'A' refuses to receive the oil and 'C' sues 'B'. 'B' informs 'A' who repudiates the contract altogether. 'B' defends, but unsuccessfully, and has to pay damages and costs, and incurs expenses. 'A' is liable to 'B' for such damages, costs and expenses.

223. Where one person employs another to do an act, and the agent, does the act in good faith, the employer is liable to indemnify the agent against the consequences of that act, though it causes an injury to the rights of third persons.

*Illustrations*

(a) 'A', a decree holder and entitled to execution of B's goods requires the officer of the Court to seize certain goods representing them to be the goods of 'B'. The officer seizes the goods and is sued by 'C' the true owner of the goods. 'A' is liable to indemnify the officer for the sum which he is compelled to pay to 'C' in consequence of obeying A's directions.

(B) 'B', at the request of 'A', sells goods in the possession of 'A', but which 'A' had no right to dispose of. 'B' does not know this and hands over the proceeds of the sale to 'A'. Afterwards 'C', the true owner of the goods, sues 'B' and recovers the value of the goods and costs. 'A' is liable to indemnify 'B' for what he has been compelled to pay to 'C' and for B's own expenses.

224. Where one person employs another to an act which is criminal, the employer is not liable to the agent either upon an express or an implied promise, to indemnify him against the consequences, of that act.

*Illustrations*

(a) 'A' employs 'B' to beat 'C' and agrees to indemnify him

against all consequences of the act. 'B' thereupon beats 'C' and has to pay damages to 'C' for so doing. 'A' is not liable to indemnify 'B' for those damages.

(b) 'B', the proprietor of a newspaper, publishes, at A's request, a libel upon 'C' in the paper, and 'A' agrees to indemnify 'B' against the consequence of the publication, and all costs and damages of any action in respect thereof. 'B' is sued by 'C' and has to pay damages, and also incurs expenses. 'A' is not liable to 'B' upon the indemnity.

**225.** The principal must make compensation to his agent in respect of injury caused to such agent by the principal's neglect or want of skill.  
*Compensation of agent for injury caused by principal's neglect.*

#### Illustration

'A' employs 'B' as a bricklayer in building a house, and puts up the scaffolding himself. The scaffolding is unskilfully put up and 'B' is in consequence hurt. 'A' must make compensation to 'B'.

#### Effect of Agency on Contract with Third Persons

**226** Contracts entered into through an agent, and obligations arising from acts done by an agent, may be enforced in the same manner and will have the same legal consequences as if the contracts had been entered into, and the acts done by the principal in person.  
*Enforcement and consequences of agent's contracts.*

#### Illustrations

(a) 'A' buys goods from 'B' knowing that he is an agent for the sale, but not knowing who is the principal. B's principal is the person entitled to claim from 'A' the price of goods, and 'A' cannot in a suit by the principal deny against that claim a debt due to himself from 'B'.

(b) 'A' being B's agent with authority to receive money on his behalf, receives from 'C' a sum of money due to 'B'. 'C' is discharged of his obligation to pay the sum in question to 'B'.

**227.** When an agent does more than he is authorised to do and *Principal how far bound when agent exceeds authority.* when the part of what he does, which is within his authority can be separated from the part which is beyond his authority, so much only of what he does as within his authority, is binding as between him and his principal.

#### Illustration

'A' being owner of a ship and cargo, authorises 'B' to procure an insurance for 4,000 rupees on the ship. 'B' procures a policy for

4,000 rupees on the ship, and another for the like sum on the cargo. 'A' is bound to pay the premium for the policy on the ship but not the premium for the policy on the cargo.

**228.** When an agent does more than he is authorised to do, *Principal not bound* and what he does beyond the scope of his *when excess of agent's authority is not separable.* authority cannot be separated from what is within it, the principal is not bound to recognise the transaction.

### Illustration

'A' authorises 'B' to buy 5,000 sheep for him. 'B' buys 5,000 sheep, 2,000 lambs for a sum of 6,000 rupees. 'A' may repudiate the whole transaction.

**229.** Any notice given to, or information obtained by the agent; provided it be given or obtained in the *Consequences of notice given to agent.* course of the business transacted by him for the principal shall, as between the principal and third parties, have the same legal consequences as if it had been given to or obtained by the principal.

### Illustrations

(a) 'A' is employed by 'B' to buy from 'C' certain goods, of which 'C' is the apparent owner, and buys them accordingly. In the course of the transaction for the sale, 'A' learns that the goods really belonged to 'D', but 'B' is ignorant of that fact. 'B' is not entitled to set-off a debt owing to him from 'C' against the price of the goods.

(b) 'A' is employed by 'B' to buy from 'C' goods of which 'C' is the apparent owner. 'A' was, before he was so employed, a servant of 'C' and then learnt that the goods really belonged to 'D', but 'B' is ignorant of that fact. In spite of the knowledge of his agent, 'B' may set-off against the price of the goods a debt owing to him from 'C'.

**230.** In the absence of any contract to that effect, an agent *Agent cannot personally enforce nor be bound by contracts on behalf of principal.* cannot personally enforce contracts entered into by him on behalf of his principal, nor is he personally bound by them.

*Presumption of contract to contrary.* Such a contract shall be presumed to exist in the following cases :—

- (1) Where the contract is made by an agent for the sale or purchase of goods for a merchant abroad;
- (2) Where agent does not disclose the name of his principal;
- (3) Where the principal, though disclosed, cannot be sued.

**231.** If an agent makes a contract with a person who neither *Rights of parties to a contract made by* knows, nor has reason to suspect, that he is an agent, his principal may require the perfor-

*agent not disclosed.* mance of the contract; but the other contract- in party has, as against the principal, the same rights as he would have had as against the agent if the agent had been principal.

If the principal discloses himself before the contract is completed, the other contracting party may refuse to fulfil the contract, if he can show that, if he had known that the agent was not a principal, he would not have entered into the contract.

**232.** Where one man makes a contract with another, neither *Performance of con-* knowing nor having reasonable ground to *tract with agent* suspect that the other is an agent, the princi- *supposed to be prin-* pal if he requires the performance of the *cipal* contract, can only obtain such performance subject to the rights and obligations subsisting between the agent and the other party to the contract.

#### Illustration

'A', who owes 100 rupees to 'B', sells 1,000 rupees worth of rice to be 'B'. 'A' is acting as agent for 'C' in the transaction, but 'B' has no knowledge nor reasonable ground of suspicion that such is the case. 'C' cannot compel 'B' to take the rice without allowing him to set off A's debt.

**233.** In cases where the agent is personally liable, a person deal- *Right of person dea-* ing with him may hold either him or his prin- *ling with agent per-* cipal, or both of them liable. *sonally liable.*

#### Illustration

'A' enters into a contract with 'B' to sell him 100 bales of cotton, and afterwards discovers that 'B' was acting as agent for 'C'. 'A' may sue either 'B' or 'C' or both for the price of the cotton.

**234.** When a person who has made a contract with an agent *Consequence as induc-* induces the agent to act upon the belief that *ing agent or principal* the principal only will be held liable or indu- *to act on belief that* ces the principal to act upon the belief that *principal or agent will* the agent only will be held liable, he cannot *be held exclusively* afterwards hold liable the agent or principal *liable.* respectively.

**235.** A person untruly representing himself to be authorised *Liability of pretended* agent of another, and thereby inducing a *agent.* third person to deal with him as such agent is liable, if his alleged employer does not ratify his acts, to make com- pensation to the other in respect of any loss or damage which he has incurred by so dealing.

**236.** A person with whom a contract has been entered into in *Person falsely contract-* the character of agent is not entitled to *ing as agent not entitled* required performance of the contract when *to performance.* it is disclosed that he was in reality acting, not as agent, but on his own account.



**237.** When an agent has, without authority, done acts or incurred obligation to third person on behalf of his principal, the principal is bound by such acts or obligation if he has by his words or conduct induced such third persons to believe that such acts and obligations were within the scope of the agent's authority.

*Liability of principal including belief that agent's unauthorised acts were authorised.*

### Illustrations

(a) 'A' consigns goods to 'B' for sale and gives him instruction not to sell under a fixed price. 'C' being ignorant of 'B's instructions enters into a contract with 'B' to buy the goods at a price lower than the reserved price. 'A' is bound by the contract.

(b) 'A' entrusts 'B' with negotiable instruments endorsed in blank. 'B' sells them to 'C' in violation of private orders from 'A'. The sale is good.

**238.** Misrepresentation made, or frauds committed, by agents acting in the course of their business for their principals, have the same effect on agreements made by such agents as if such misrepresentations or frauds had been made or committed by the principals; but misrepresentation made or frauds committed, by agents, in matters which do not fall within their authority, do not affect their principals.

*Effect on agreement, of misrepresentation or fraud by agent.*

### Illustrations

(a) 'A' being B's agent for the sale of goods, induces 'C' to buy them by a misrepresentation, which he was not authorised by 'B' to make. The contract is voidable, as between 'B' and 'C', at the option of 'C'.

(b) 'A', the captain of B's ship signs bills of lading without having received on board the goods mentioned therein. The bills of lading are void as between 'B' and the pretended consignee.

## CHAPTER XI

### Of Partnership

[This chapter has been repealed by Indian Partnership Act IX of 1932.]

## SCHEDULE

### Enactments Repealed

[Repealed by Section 3 and Schedule II of the Repealing and Amending Act X of 1914.]

# THE INDIAN SALE OF GOODS ACT, 1930

An Act to define and amend the law relating to the sale of goods.

Whereas it is expedient to define and amend the law relating to the sale of goods; it is hereby enacted as follows :—

## CHAPTER I

### Preliminary

1. (1) This Act may be called the Indian Sale of Goods Act,  
*Short title, extent 1930.*  
*and commencement.*

(2) It extends to the whole of India, except the State of Jammu and Kashmir.

(3) It shall come into force on the first day of July, 1930.

2. In this Act, unless there is anything repugnant in the subject  
*Definitions.* to context :—

(1) “buyer” means a person who buys or agrees to buy goods;

(2) “delivery” means voluntary transfer of possession from one person to another;

(3) goods are said to be in a “deliverable state” when they are in such state that the buyer would under the contract be bound to take delivery of them;

(4) “document of title to goods,” includes a bill of lading, dock-warrant, warehouse keeper’s certificate, wharfinger’s certificate, railway-receipt, warrant or order for the delivery of goods and any other document used in the ordinary course of business as proof of the possession or control of goods, or authorising or purporting to authorise, either by endorsement or by delivery, the possessor of the document to transfer or receive goods thereby represented;

(5) “fault” means wrongful act or default;

(6) “future goods” means goods to be manufactured or produced or acquired by the seller after the making of the contract of sale;

(7) “goods” means every kind of movable property other than actionable claims and money, and includes stock and shares, growing crops, grass and things attached to or forming part of the land which are agreed to be served before sale or under the contract of sale;

- (8) a person is said to be "insolvent" who has ceased to pay his debts in the ordinary course of business, or cannot pay his debts as they become due, whether he has committed an act of insolvency or not;
  - (9) "mercantile" means a mercantile agent having in the customary course of business as such agent authority either to sell goods or to consign goods for the purposes of sale, or to buy goods, or to raise money on the security of goods;
  - (10) "price" means the money consideration for a sale of goods;
  - (11) "property" means the general property in goods, and not merely a special property;
  - (12) "quality of goods" includes their state or condition;
  - (13) "seller" means a person who sells or agrees to sell goods;
  - (14) "specific goods" means goods identified and agreed upon at the time a contract of sale is made; and
  - (15) all expression used but not defined in this Act and defined in the Indian Contract Act, 1872, have the meaning assigned to them in that Act.
3. The unrepealed provisions of the Indian Contract Act, 1872, save in so far as they are inconsistent with the express provisions of this Act, shall continue to apply to contracts for the sale of goods.
- Application of provision of Act IX of 1872.*

## CHAPTER II

### Formation of the Contract

#### *Contract of Sale*

4. A contract of sale of goods is a contract whereby the seller transfers or agrees to transfer the property in goods to the buyer for a price. There may be a contract of sale between one part-owner and another.
- Sale and agreement to sell*
- (2) A contract of sale may be absolute or conditional.
  - (3) Where under a contract of sale the property in the goods is transferred from the seller to the buyer, the contract is called a sale; but where the transfer of the property in the goods is to take place at a future time or subject to some condition thereafter to be fulfilled, the contract is called an agreement to sell.
  - (4) An agreement to sell becomes a sale when the time elapses or the conditions are fulfilled subject to which the property in the goods is to be transferred.

### Formalities of the Contract

5. (1) A contract of sale is made by an offer to buy or sale *Contract of sale how made* goods for a price and the acceptance of such offer. The contract may provide for the immediate delivery of the goods or immediate payment of the price or both, or for the delivery or payment by instalments or that the delivery or payment or both shall be postponed.

(2) Subject to the provisions of any law for the time being in force, a contract of sale may be in writing or by word of mouth, or partly in writing and partly by word of mouth or may be implied from the conduct of the parties.

### Subject matter of Contract

6. (1) The goods which form the subject of a contract of sale *Existing or future goods.* may be either existing goods, owned or possessed by the seller, or future goods.

(2) There may be a contract for the sale of goods the acquisition of which by the seller depends upon a contingency which may or may not happen.

(3) Where by a contract of sale the seller purports to effect a present sale of future goods, the contract operates as an agreement, to sell the goods.

7. Where there is a contract for the sell of specific goods the *Goods perishing before making of contract.* contract is void if the goods without the knowledge of the seller have, at the time when the contract was made, perished or become so damaged as no longer to answer to their description in the contract.

8. Where there is an agreement to sell specific goods, and *Goods perishing before sale but after agreement to sell.* subsequently the goods without any fault on the part of the seller or buyer perished or become so damaged as no longer to answer to their description in the agreement before the risk passes to the buyer, the agreement is thereby avoided.

9. (1) The price in a subject of sale may be fixed by the contract *Ascertainment of price.* or may be left to be fixed in manner thereby agreed or may be determined by the course of dealing between the parties.

(2) Where the price is not determined in accordance with the foregoing provisions, the buyer shall pay the seller a reasonable price. What is a reasonable price is, a question of fact dependent on the circumstances of each particular case.

10 (1) Where there is an agreement to sell goods on the term *Agreement to sell at valuation* that the price is to be fixed by the valuation of a third party and such third party cannot or does not make such valuation, the agreement is thereby avoided:

Provided that, if the goods or any part thereof have been delivered to, and appropriated by the buyer, he shall pay a reasonable price therefor.

(2) Where such party is prevented from making the valuation by the fault of the seller or buyer, the party not in fault may maintain a suit for damages against the party in fault.

### Conditions and Warranties

**11.** Unless a different intention appears from the terms of the contract, stipulations as to time of payment are not deemed to be of the essence of a contract of sale. *Stipulation as to time.* Whether any other stipulation as to time is of the essence of contract or not depends on the terms of the contract.

**12.** (1) A stipulation in a contract of sale with reference to goods which are the subject thereof may be a condition or a warranty. *Condition and warranty.*

(2) A condition is a stipulation essential to the main purpose of the contract, the breach of which gives rise to a right to treat the contract as repudiated.

(3) A warranty is a stipulation collateral to the main purpose of the contract, the breach of which gives to a claim for damages but not to a right to reject the goods and treat the contract as repudiated.

(4) Whether a stipulation in a contract of sale is a condition or a warranty depends in each case on the construction of the contract. A stipulation may be a condition, though called a warranty in the contract.

**13.** (1) Where a contract of sale is subject to any condition to be fulfilled by the seller, the buyer may waive the condition or elect to treat the breach of the condition as a breach of warranty and not as a ground for treating the contract as repudiated. *When condition to be treated as warranty.*

(2) Where a contract of sale is not severable and the buyer has accepted the goods or part thereof, or where the contract is for specific goods the property in which has passed to the buyer, the breach of any condition to be fulfilled by the seller can only be treated as a breach of warranty and as a ground for rejecting the goods and treating the contract as repudiated unless there is a term of the contract, express or implied, to that effect.

(3) Nothing in this Section shall affect the case of any condition or warranty fulfilment of which is excused by law by reason of impossibility or otherwise.

**14.** In a contract of sale, unless the circumstances of the contract are such as to show a different intention, *Implied undertaking as to title, etc.* there is

- (a) an implied condition on the part of the seller that, in the case of a sale, he has a right to sell the goods and that, in the case of an agreement to sell, he will have a right to sell the goods at the time when the property is to pass;
- (b) an implied warranty that the buyer shall have and enjoy quiet possession of the goods;
- (c) an implied warranty that the goods shall be free from any charge or encumbrances in favour of any third party not declared or known to the buyer before or at the time when the contract is made.

15. Where there is a contract for the sale of goods by description, there is an implied condition that the goods *Sale by description.* shall correspond with the description, and if the sale is by sample as well as by description, it is not sufficient that the bulk of the goods correspond with the sample if the goods do not also correspond with the description.

16. Subject to the provisions of this Act and of any other law *Implied conditions as to quality or fitness.* for the time being in force, there is no implied warranty or condition as to the quality or any particular purpose of goods supplied under a contract of sale, except as follows :—

- (1) Where the buyer, expressly or by implication, makes known to the seller the particular purpose for which goods are required, so as to show that the buyer relies on the seller's skill or judgment and the goods are of a description which it is in the course of the seller's business to supply (whether he is the manufacturer or producer or not), there is an implied condition that the goods shall be reasonably fit for such purpose:

Provided that, in the case of a contract for the sale of a specified article under its patent or other trade name, there is no implied condition as to its fitness for any particular purpose.

- (2) Where goods are bought by description from a seller who deals in goods of that description (whether he is the manufacturer or producer or not), there is an implied condition that the goods shall be of merchantable quality:

Provided that, if the buyer has examined the goods, there shall be no implied condition as regards defects which such examination ought to have revealed.

- (3) An implied warranty or condition as to quality or fitness for a particular purpose may be annexed by the usage of trade.
- (4) An implied warranty or condition does not negative a warranty or condition implied by this Act unless inconsistent therewith.

17. (1) A contract of sale is a contract for sale by sample where *Sale by sample.* there is a term in the contract, express or implied, to that effect,

(2) In the case of a contract for sale by sample there is an implied condition,

- (a) that the bulk shall correspond with the sample in quality;
- (b) that the buyer shall have a reasonable opportunity of comparing the bulk with the sample;
- (c) that the goods shall be free from any defect, rendering them unmerchantable, which would not be apparent on reasonable examination of the sample.

### CHAPTER III

#### Effects of the Contract

##### *Transfer of property as between Seller and Buyer*

18. Where there is a contract for the sale of unascertained goods, no property in the goods is transferred to the buyer unless and until the goods are ascertained.

19. (1) Where there is a contract for the sale of specific ascertained goods, the property in them is transferred to the buyers at such time as the parties to the contract intend it to be transferred.

(2) For the purpose of ascertaining the intention of the parties, regard shall be had to the terms of the contract, the conduct of the parties and the circumstances of the case.

(3) Unless a different intention appears, the rules contained in Sections 20 to 24 are rules for ascertaining the intention of the parties as to the time at which the property in goods is to pass to the buyer.

20. Where there is an unconditional contract for the sale of specific goods in a deliverable state, the property in the goods passes to the buyer when the contract is made and it is immaterial whether the time of payment of the price or the time of delivery of the goods, or both, is postponed

21. Where there is an unconditional contract for the sale of specific goods and the seller is bound to do something to the goods for the purpose of putting them into a deliverable state, the property does not pass until such thing is done and the buyer has notice thereof.

22. Where there is a contract for the sale of specific goods in a deliverable state, but the seller is bound to weigh, measure, test or do some other act or things with reference to the goods for the purpose of ascertaining the price, the property does not pass until such act or thing is done and the buyer has notice thereof.

23. (1) Where there is a contract for the sale of unascertained or future goods by description and goods of that description and in a deliverable state are *Sale of unascertained goods and appropriation.* unconditionally appropriated to contract, either by the seller with the assent of the buyer or with the assent of the seller, the property in the goods thereupon passes to the buyer; such assent may be express or implied and may be given either before or after the appropriation is made.

(2) Where, in pursuance of the contract, the seller delivers the goods to the buyer or to a carrier or other bailee *Delivery to carrier.* (whether named by the buyer or not) for the purpose of transmission to the buyer, and does not reserve the right to disposal, he is deemed to have unconditionally appropriated the goods to the contract.

24. When goods are delivered to the buyer on approval or "on *Goods sent on approval or sale or return.* sale or return" or other similar terms, the property therein passes to the buyer,

- (a) when he signifies his approval or acceptance to the seller or does any other act adopting the transaction;
- (b) if he does not signify his approval or acceptance to the seller but retains the goods without giving notice of rejection, then if a time has been fixed for the return of the goods, on the expiration of such time and if no time has been fixed on the expiration of a reasonable time.

25. (1) Where there is a contract for the sale of specific goods, or where goods are subsequently appropriated to the contract, the seller may by the terms of the contract or appropriation, reserve the right of disposal of the goods until certain conditions are fulfilled. In such case, notwithstanding the delivery of the goods to a buyer or to a carrier or other bailee for the purpose of transmission to the buyer, the property in the goods does not pass to the buyer until the conditions imposed by the seller are fulfilled. *Reservation of right of disposal.*

(2) Where goods are shipped and by the bill of lading the goods are deliverable to the order of the seller or his agent, the seller is *prima facie* deemed to reserve the right of disposal.

(3) Where the seller of goods draws on the buyer for the price and transmits the bill of exchange and bill of lading to the buyer together, to secure acceptance or payment of the bill of exchange, the buyer is bound to return the bill of lading if he does not honour the bill of exchange, and if he wrongfully retains the bill of lading the property in the goods does not pass to him.

26. Unless otherwise agreed, the goods remain at the seller's risk until the property therein is transferred to the buyer, but when the property therein is transferred to the buyer, the goods are at the buyer's risk whether delivery has been made or not : *Risk prima facie passes with property.*



Provided that, where delivery has been delayed through the fault of either buyer or seller, the goods are at the risk of the party in fault as regards any loss which might not have occurred but for such fault :

Provided also that nothing in this Section shall affect the duties or liabilities of either seller or buyer as a bailee of the goods of the other party.

### Transfer of Title

27. Subject to the provisions of this Act and of any other law for the time being in force, where goods are sold by a person who is not the owner thereof and who does not sell them under the authority or with the consent of the owner, the buyer acquires no better title to the goods than the seller had, unless the owner of the goods is by his conduct precluded from denying the seller's authority to sell :

*Sale by person not the owner.*

Provided that where a mercantile agent is, with the consent of the owners in possession of the goods or of a document of title to the goods, any sale made by him, when acting in the ordinary course of business of a mercantile agent, shall be as valid as if he were expressly authorised by the owners of the goods to make the same:

Provided that the buyer acts in the good faith and has not at the time of the contract of sale notice that the seller has no authority to sell.

28. If one of several joint owners of goods has the sole possession of them by permission of the co-owners, the property in the goods is transferred to any person who buys them of such joint owner in good faith and has not at the time of the contract of sale notice that the seller has no authority to sell.

*Sale by one of joint owners.*

29. When the seller of goods has obtained possession thereof under a contract voidable under Section 19 or Section 19-A of the Indian Contract Act, 1872, but the contract has not been rescinded at the time of sale, the buyer acquires a good title to the goods :

*Sale by person in possession under voidable contract.*

Provided he buys them in good faith and without notice of the seller's defect of title.

30. (1) Where a person, having sold goods continues or is in possession of the goods or of the documents of title to the goods, the delivery or transfer by that person or by a mercantile agent acting for him, of the goods or documents of title under any sale, pledge or other disposition thereof to any person receiving the same in good faith and without notice of the previous sale shall have the same effect as if the person making the delivery or transfer were expressly authorised by the owner of the goods to make the same.

*Seller or buyer in possession after sale.*

(2) Where a person, having bought or agreed to buy goods, obtains with the consent of the seller possession of the goods or the documents of title to the goods, the delivery or transfer by that person or by a mercantile agent acting for him, of the goods or documents of title under any sale, pledge or other disposition thereof to any person receiving the same in good faith and without notice any lien or other right of the original seller in respect of the goods shall have effect as if such lien or right did not exist.

## CHAPTER IV

### Performance of the Contract

31. It is the duty of the seller to deliver the goods and of the buyer to accept and pay for them, in accordance with the terms of the contract of sale.  
*Duties of seller and buyer.*

32. Unless otherwise agreed, delivery of the goods and payment of the price are concurrent conditions, that is to say, the seller shall be ready and willing to give possession of the goods to the buyer in exchange and the buyer shall be ready and willing to pay the price in exchange and possession of goods.  
*Payment and delivery are concurrent conditions.*

33. Delivery of goods sold may be made by doing anything which the parties agree shall be treated as delivery or which has the effect of putting the goods in the possession of the buyer or of any person authorised to hold them on his behalf.  
*Delivery.*

34. A delivery of part of goods in progress of the delivery of the whole, has the same effect, for the purpose of passing the property in such goods, as delivery of the whole; but a delivery of part of the goods, with an intention of severing it from the whole does not operate as a delivery of the remainder.  
*Effect of part delivery.*

35. Apart from any express contract, the seller of goods is not bound to deliver them until the buyer applies for delivery.  
*Buyer to apply for delivery.*

36. (1) Whether it is for the buyer to take possession of the goods or for the seller to send them to the buyer is a question depending in each case on the contract, express or implied between the parties. Apart from any such contract goods sold are to be delivered at the place at which they are at the time of the sale, and goods agreed to be sold are to be delivered at the place at which they are at the time of the agreement to sell, or if not, then in existence at the place at which they are manufactured or produced.  
*Rules as to delivery.*

(2) Where under the contract of sale the seller is bound to send the goods to the buyer but no time for sending them is fixed, the seller is bound to send them within a reasonable time.

(3) Where the goods at the time of sale are in the possession of a third person there is no delivery by seller to buyer unless and until such third person acknowledges to the buyer, that he holds the goods on his behalf :

Provided that nothing in this Section shall affect the operation of the issue or transfer of any document of title to goods.

(4) Demand or tender of delivery may be treated as ineffectual unless made at a reasonable hour. What is a reasonable hour is a question of fact.

(5) Unless otherwise agreed, the expenses of and incidental to putting the goods into a deliverable state shall be borne by the seller.

37. (1) Where the seller delivers to the buyer a quantity of goods less than he contracted to sell the buyer may reject them but if the buyer accepts the goods so delivered he shall pay for them at the contract rate.

(2) Where the seller delivers to the buyer a quantity of goods larger than what he contracted to sell, the buyer may accept the goods included in the contract and reject the rest or he may reject the whole. If the buyer accepts the whole of the goods so delivered, he shall pay for them at the contract rate

(3) Where the seller delivers to the buyer the goods he contracted to sell mixed with goods of a different description not included in the contract, the buyer may accept the goods which are in accordance with the contract and reject the rest or may reject the whole.

(4) The provisions of this Section are subject to any usage of trade, special agreement or course of dealing between the parties.

38. (1) Unless otherwise agreed the buyer of goods is not bound to accept delivery thereof by instalment.

(2) Where there is a contract for the sale of goods to be delivered by stated instalments which are to be separately paid for and the seller makes no delivery or makes defective delivery in respect of one or more instalments or the buyer neglects or refuses to take delivery of or pay for one or more instalments, it is a question in each case depending on the terms of the contract and the circumstances of the case whether the breach of contract is a repudiation of the whole contract, or whether it is a severable breach giving rise to a claim for compensation but not to a right to treat the whole contract as repudiated.

39. (1) Where, in pursuance of a contract of sale, the seller is authorised or required to send the goods to the buyer, delivery of the goods to a carrier, whether named by the buyer or not for the purpose of transmission to the buyer or delivery of the goods to a

wharfinger for safe custody is *prima facie* demand to be a delivery of the goods to the buyer.

(2) Unless otherwise authorised by the buyer, the seller shall make such contract with carrier or wharfinger on behalf of the buyer as may be reasonable having regard to the nature of the goods and the other circumstances of the case. If the seller omits to do so, and the goods are lost or damaged in course of transit or whilst in the custody of the wharfinger the buyer may decline to treat the delivery to the carrier or wharfinger as a delivery to himself, or may hold the seller responsible in damage.

(3) Unless otherwise agreed where goods are sent by the seller to the buyer by a route invoking sea transit in circumstances in which it is usual to insure he shall give such notice to the buyer as may enable to insure them during their sea transit and if the seller fails to do so the goods shall be deemed to be at his risk during such sea transit.

40. Where the seller of goods agrees to deliver them at his own risk at a place other than that where they are  
*Risk where goods are delivered at a distant place.* when sold the buyer shall nevertheless, unless otherwise agreed, take any risk of deterioration in the goods necessarily incident to the course of transit.

41. (1) Where goods are delivered to the buyer which he has not previously examined he is not deemed to have accepted them unless and until he has had a reasonable opportunity of examining them for the purpose of ascertaining whether they are in conformity with the contract.  
*Buyer's right of examining the goods.*

(2) Unless otherwise agreed, when the seller tenders delivery of goods to the buyer he is bound on request to afford the buyer a reasonable opportunity of examining the goods for the purpose of ascertaining whether they are in conformity with the contract.

42. The buyer is deemed to have accepted the goods when he intimates to the seller that he has accepted them, or when the goods have been delivered to him and he does any act in relation to them which is inconsistent with the ownership of the seller, or when after the lapse of a reasonable time, he retains the goods without intimating to the seller that he has rejected them.  
*Acceptance.*

43. Unless otherwise agreed where goods are delivered to the buyer and he refuses to accept them, having the right to do so, he is not bound to return them to the seller, but sufficient if he intimates to the seller that he refuses to accept them.  
*Buyer not bound to return rejected goods.*

44. When the seller is ready and willing to deliver the goods and requests the buyer to take delivery and the buyer does not within a reasonable time after such request take delivery of the goods,  
*Liability of buyer for neglecting or refusing to take delivery of goods.*

*sing delivery of goods* he is liable to the loss occasioned by his neglect or refusal to take delivery, and also for a reasonable charge for the care and custody of goods.

Provided that nothing in this Section shall affect the rights of the seller where the neglect or refusal of the buyer to take delivery amounts to a repudiation of the contract.

## CHAPTER V

### Rights of Unpaid Seller against the Goods

45. (1) The seller of goods is deemed to be an “unpaid seller” within the meaning of this Act  
*“Unpaid seller” defined.*

- (a) when the whole of the price has not been paid or tendered;
- (b) when a bill of exchange or other negotiable instrument has been received as conditional payment and the condition on which it was received had not been fulfilled by reason of the dishonour of the instrument or otherwise.

(2) In this Chapter, the term “seller” includes any person who is in the position of seller, as, for instance, an agent of the seller to whom the bill of lading has been endorsed, or a consignor or agent who has himself paid or is directly responsible for the price.

46. Subject to the provisions of this Act and of any law for the time being in force, notwithstanding that the property in the goods may have passed to the buyer, the unpaid seller of goods, as such, has by implication of law  
*Unpaid seller's rights.*

- (a) a lien on the goods for the price while he is in possession of them;
- (b) in case of the insolvency of the buyer a right of stopping the goods in transit after he has parted with the possession of them;
- (c) a right of resale as limited by this Act.

Where the property in goods has not passed to the buyer the unpaid seller has in addition to his other remedies, a right of withholding delivery similar to and co-extensive with his rights of lien and stoppage in transit where the property has passed to the buyer.

### • Unpaid Seller's Lien

47. (1) Subject to the provisions of this Act, the unpaid seller of goods who is in possession of them is entitled to retain possession of them until payment or tender of the price in the following cases, namely  
*Seller's lien.*

- (a) where the goods have been sold without any stipulation as to credit;

- (b) where the goods have been sold on credit, but the term of credit has expired;
- (c) where the buyer becomes insolvent.

(2) The seller may exercise his right of lien notwithstanding that he is in possession of the goods as agent or bailee for the buyer.

48. Where an unpaid seller has made part delivery of the goods, he may exercise his right of lien on the remainder, unless such part delivery has been made under such circumstances as to show an agreement to waive the lien.

49. (1) The unpaid seller of goods loses his lien, thereon  
*Termination of lien.*

- (a) when he delivers the goods to a carrier or other bailee for the purpose of transmission to the buyer without reserving the right of disposal of the goods;
- (b) when the buyer or his agent lawfully obtains possession of the goods;
- (c) by waiver thereof.

(2) The unpaid seller of goods, having a lien thereon, does not lose his lien by reason only that he has obtained a decree for the price of the goods

### Stoppage in Transit

50. Subject to the provisions of this Act, when the buyer of goods becomes insolvent, the unpaid seller who has parted with the possession of the goods has the right of stopping them in transit, that is to say, he may resume possession of the goods as long as they are in the course of transit, and may retain them until payment or tender of the price.

51. (1) Goods are deemed to be in course of transit from the time when they are delivered to a carrier or other bailee for the purpose of transmission to the buyer, until the buyer, or his agent on that behalf takes delivery of them from such carrier or other bailee.

(2) If the buyer or his agent on that behalf obtains delivery of the goods before their arrival at the appointed destination, the transit is at an end.

(3) If after the arrival of the goods at the appointed destination the carrier or other bailee acknowledges to the buyer or his agent that he holds the goods on his behalf and continues in possession of them as bailee for the buyer or his agent, transit is at end and it is immaterial that a further destination for the goods may have been indicated by the buyer.

(4) If the goods are rejected by the buyer and the carrier or

other bailee continues in possession of them, the transit is not deemed to be at an end, even if the seller has refused to receive them back.

(5) When goods are delivered to a ship chartered by the buyer it is a question depending on the circumstances of the particular case whether they are in the possession of the master as a carrier or as agent of the buyer.

(6) Where the carrier or other bailee wrongfully refuses to deliver the goods to the buyer or his agent on that behalf the transit is deemed to be at an end.

(7) Where part delivery of the goods has been made to the buyer or his agent on that behalf, the remainder of the goods may be stopped in transit unless such part delivery has been given in such circumstances as to show an agreement to give possession of the whole of the goods.

52. (1) The unpaid seller may exercise his right of stoppage in transit either by taking actual possession of the goods, or by giving notice of his claim to the carrier or other bailee in whose possession the goods are. *How stoppage in transit is effected.* Such notice may be given either to the person in actual possession of the goods, or to his principal. In the latter case the notice, to be effectual, shall be given at such time and in such circumstances that the principal, by the exercise of reasonable diligence, may communicate it to his servant or agent in time to prevent a delivery to the buyer.

(2) When notice of stoppage in transit is given by the seller to the carrier or other bailee in possession of the goods he shall redeliver the goods to, or according to the directions of, the seller. The expenses of such redelivery shall be borne by the seller.

### Transfer by Buyer and Seller

53. (1) Subject to the provisions of this Act, the unpaid seller's right of lien or stoppage in transit is not affected *Effect of sub-sale or pledge by buyer.* by any sale or other disposition of the goods which the buyer may have made unless the seller has assented thereto:

Provided that where a document of title to goods has been issued or lawfully transferred to any person as buyer or owner of the goods and that person transfers the document to a person who takes the document in good faith and for consideration, then, if such last-mentioned transfer was by way of sale, the unpaid seller's right of lien or stoppage in transit is defeated, and if such last-mentioned transfer was by way of pledge or other disposition for value, the unpaid seller's right of lien or stoppage in transit can only be exercised subject to the rights of the transferee.

(2) Where the transfer is by way of pledge the unpaid seller may require the pledgee to have the amount secured by the pledgee satisfied in the first instance, as far as possible, out of any other goods or securi-

ties of the buyer in the hands of pledgee and available against the buyer.

54. (1) Subject to the provisions of this Section, a contract of sale *not generally rescinded by lien or stoppage in transit.* is not rescinded by the mere exercise by an unpaid seller of his right of lien or stoppage in transit.

(2) Where the goods are of a perishable nature or where the unpaid seller who has exercised his right of lien or stoppage in transit gives notice to the buyer of his intention to resell, the unpaid seller may, if the buyer does not within a reasonable time pay or tender the price, resell the goods within a reasonable time and recover from the original buyer damages for any loss occasioned by his breach of contract, but the buyer shall not be entitled to any profit which may accrue on the resale. If such notice is not given, the unpaid seller shall not be entitled to recover such damages and the buyer shall be entitled to the profit, if any, on the resale.

(3) Where an unpaid seller who has exercised his right of lien or stoppage in transit resells the goods, the buyer acquires a good title thereto as against the original buyer, notwithstanding that no notice of the resale has been given to the original buyer.

(4) Where the seller expressly reserves a right of resale in case the buyer should make default, and, on the buyer making default, resells the goods, the original contract of sale is thereby rescinded, but without prejudice to any claim which the seller may have for damage.

## CHAPTER VI

### Suits for Breach of the Contract

55. (1) Where under a contract of sale the property in the goods has passed to the buyer and the buyer wrongfully neglects or refuses to pay for the goods according to the terms of the contract, the seller may sue him for the price of the goods.

(2) Where under a contract of sale the price is payable on a certain day irrespective of delivery and the buyer wrongfully neglects or refuses to pay such price the seller may sue him for the price although the property in the goods has not passed and the goods have not been appropriated to the contract.

56. Where the buyer wrongfully neglects or refuses to accept and pay for the goods, the seller may sue him for damages for non-acceptance.

57. Where the seller wrongfully neglects or refuses to deliver the goods to the buyer, the buyer may sue the seller for damages for non-delivery.



58. Subject to the provisions of Chapter II of the Specific Relief Act, 1877, in any suit for breach of contract to deliver specific or ascertained goods the Court may, if it thinks fit, on the application of the plaintiff, by its decree direct that the contract shall be performed specifically, without giving the defendant the option of retaining the goods on payment of damages. The decree may be unconditional, or upon such terms and conditions as to damages, payment of price or otherwise, as the Court may deem just, and the application on the plaintiff may be made at any time before the decree.

*Specific performance.*  
59. (1) Where there is a breach of warranty by the seller, or where the buyer elects or is compelled to treat any breach of condition on the part of the seller as a breach of warranty, the buyer is not by reason only of such breach of warranty entitled to reject the goods; but he may

- Remedy for breach of warranty.*
- (a) set up against the seller the breach of warranty in diminution or extinction of the price; or
  - (b) sue the seller for damages for breach of warranty.

(2) The fact that a buyer has set up a breach of warranty in diminution or extinction of the price does not prevent him from suing for the same breach of warranty if he has suffered further damage.

60. Where either party to a contract of sale repudiates the contract before the date of delivery, the other may either treat the contract as subsisting and wait till the date of delivery or he may treat the contract as rescinded and sue for damages for the breach.

*Repudiation of contract before due date.*  
61. (1) Nothing in this Act shall affect the right of the seller or the buyer to recover interest or special damages in any case where by law interest or special damages may be recoverable, or to recover the money paid where the consideration for the payment has failed.

*Interest by way of damages and special damages.*  
(2) In the absence of a contract to the contrary the Court may award interest at such rate as it thinks fit on the amount of the price

- (a) to the seller in a suit by him for the amount of the price—from the date of the tender of the goods or from the date on which the price was payable;
- (b) to the buyer in a suit by him for the refund of the price in a case of a breach of the contract on the part of the seller—from the date on which the payment was made.

## CHAPTER VII

### Miscellaneous

62. Where any right, duty or liability would arise under a con-

*Exclusion of implied terms and conditions.*

tract of sale by implication of law, it may be negatived or varied by express agreement or by the course of dealing between the parties, or by usage, if the usage is such as to bind both parties to the contract.

63. Where in this Act any reference is made to a reasonable time the question what is a reasonable time is a question of fact.

64. In the case of a sale by auction—  
*Auction sale.*

- (1) where goods are put up for sale in lots, each lot is *prima facie* deemed to be subject of a separate contract of sale;
- (2) the sale is complete when the auctioneer announces its completion by the fall of the hammer or in other customary manner; and until such announcement is made any bidder may retract his bid;
- (3) a right to bid may be reserved expressly by or on behalf of the seller and, where such right is expressly so reserved, but not otherwise, the seller or any one person on his behalf may, subject to the provisions hereinafter contained, bid at the auction;
- (4) where the sale is notified to be subject to a right to bid on behalf of the seller, it shall not be lawful for the seller to bid himself or to employ any person to bid at such sale, or for the auctioneer knowingly to take any bid from the seller or any such person, and any sale contravening this rule may be treated as fraudulent by the buyer;
- (5) where the sale is notified to be subject to reserved or upset price;
- (6) if the seller makes use of pretended bidding to raise the price, the sale is voidable at the option of the buyer.

64-A. In the event of any duty of customs or excise on any goods being imposed, increased, decreased or remitted after the making of any contract for the sale of such goods without stipulation as to the payment of duty where duty was not chargeable at the time of the contract, or for the sale of such goods dutypaid where duty was chargeable at the time

*In contract of sale amount of increased or decreased duty to be added or deducted.*

- (a) if such imposition or increase so takes effect that the duty or increased duty, as the case may be, or any part thereof is paid, the seller may add so much to the contract price as will be equivalent to the amount paid in respect of such duty or increase of duty, and he shall be entitled to be paid and sue for and recover such addition; and
- (b) if such decrease or remission so takes effect that the decreased duty only or no duty, as the case may be is paid, the

buyer may deduct so much from the contract price as will be equivalent to the decrease of duty or remitted duty, and he shall not be liable to pay, or be sued for, in respect of such deduction

65. [ *Repealed by repealing Act I of 1938* ]

### Repeal

66. (1) Nothing in this Act or in any repeal effected *Savings.* thereby shall affect or be deemed to affect—

- (a) any right, title, interest, obligation or liability already acquired, accrued or incurred before the commencement of this Act, or
  - (b) any legal proceedings or remedy in respect of any such right, title, interest, obligation or liability, or
  - (c) anything done or suffered before commencement of this Act, or
  - (d) any enactment relating to the sale of goods which is not expressly repealed by this Act, or
  - (e) any rule of law not inconsistent with this Act.
- (2) The rules of insolvency relating to contracts for the sale of goods shall continue to apply thereto, notwithstanding any contained in this Act.
- (5) The provisions of this Act relating to contract of sale do not apply to any transaction in the form of contract of sale which is intended to operate by way of mortgage, pledge, charge or other security.

## THE INDIAN PARTNERSHIP ACT

### IX OF 1932

An Act to define and amend the law relating  
to Partnership.

Whereas it is expedient to define and amend the law relating to partnership, it is hereby enacted as follows :—

### CHAPTER I

#### Preliminary

1. (1) This Act may be called the Indian Partnership Act, 1932.

*Short title, extent and commencement.* (2) It extends to the whole of India except the State of Jammu and Kashmir.

(3) It shall come into force on the 1st day of October, 1932, except Section 69 which shall come into force on the 1st day of October, 1933.

2. In this Act, unless there is anything repugnant in the subject or context—

- (a) an “act of a firm” means any act or commission by all the partners, or by any partner or agent of the firm which gives rise to a right enforceable by or against the firm;
- (b) “business” includes every trade, occupation and profession;
- (c) “prescribed” means prescribed by rules made under this Act;
- (d) “third party” used in relation to a firm or to a partner therein means any person who is not a partner in the firm; and
- (e) “expressions used but not defined in this Act and defined in the Indian Contract Act, 1872 shall have the meanings assigned to them in that Act.”

3. The unrepealed provisions of the Indian Contract Act in so far as they are consistent with the vision of Act XI of express provisions of this Act, shall continue.

## CHAPTER II

### The Nature of Partnership

4. “Partnership” is the relation between persons who have agreed to share the profits of a business carried on by all or any of them acting for all.

Persons who have entered into partnership with one another are called individually “partners” and collectively “a firm” and the name under which their business is carried is called the “firm name.”

5. The relation of partnership arises from contract and not from status;

and in particular, the members of a Hindu undivided family carrying on a family business as such, or a Burmese Buddhist husband and wife carrying on business as such are not partners in such business.

6. In determining whether a group of person is or is not a firm, or whether a person is or is not a partner in a firm, regard shall be had to the real relation between the parties, as shown by all relevant facts taken together.

*Explanation I*—The sharing of profits or of gross returns arising

from property by persons holding a joint or common interest in that property does not of itself make such persons partners.

*Explanation II*—The receipt by a person of a share of the profits of a business, or of a payment contingent upon the earning of profits or varying with the profits earned by a business does not of itself make him a partner with the persons carrying on the business;

and, in particular, the receipt of such share or payment—

(a) by a lender of money to persons engaged or about to engage in any business, . . .

(b) by a servant or agent as remuneration,

(c) by the widow or child of a deceased partner, as annuity, or

(d) by a previous owner or part-owner of the business as consideration for the sale of the goodwill or share thereof,

does not of itself make the receiver a partner with the persons carrying on the business.

7. Where no provision is made by contract between the partner for the duration of their partnership or for the determination of their partnership, the partnership is “partnership at will.”

8. A person may become a partner with another person in particular adventures or undertaking.

*Particular partnership.*

## CHAPTER III

### Relation of partners to one another

9. Partners are bound to carry on the business of the firm to the greatest common advantages, to be just and faithful to each other, and to render true accounts and full information of all things affecting the firm to any partner or his legal representative.

*General duties of partners.*

10. Every partner shall indemnify the firm for any loss caused to it by his fraud in the conduct of the business of the firm.

*Duty to indemnify for loss caused by fraud.*

11. (1) Subject to the provisions of this Act, the mutual rights and duties of the partners of a firm may be determined by contract between the partners, and such contract may be express or may be implied by a course of dealing.

*Determination of rights and duties of partners by contract between the partners.*

Such contract may be varied by consent of all the partners, and such consent may be express or may be implied by a course of dealing.

(2) Notwithstanding anything contained in Section 27 of the Indian Contract Act, 1872, such contracts may provide that a partner shall not carry on any

*Agreements in rest-*

*raint of trade.* business other than that of the firm while he is a partner.

**12. Subject to contract between the partners—**

*The conduct of the business.* (a) every partner has a right to take part in the conduct of the business;

(b) every partner is bound to attend diligently to his duties in the conduct of the business;

(c) any difference arising as to ordinary matters connected with the business may be decided by a majority of the partners and every partner shall have the right to express his opinion before the matter is decided, but no change may be made in the nature of the business without the consent of all the partners;

(d) every partner has a right to have access to and to inspect and copy any of the books of the firm.

**13. Subject to contract between the partners—**

*Mutual rights and liabilities.* (a) a partner is not entitled to receive remuneration for taking part in the conduct of the business;

(b) the partners are entitled to share equally in the profits earned, and shall contribute equally to the losses sustained by the firm;

(c) where a partner is entitled to interest on the capital subscribed by him, such interest shall be payable only out of profits;

(d) a partner making, for the purposes of the business, any payment or advance beyond the amount of capital he has agreed to subscribe, is entitled to interest thereon at the rate of six per cent per annum;

(e) the firm shall indemnify a partner in respect of payments made and liabilities incurred by him in

(i) the ordinary and proper conduct of the business; and

(ii) in doing such act, in an emergency, for the purpose of protecting the firm from loss, as would be done by a person of ordinary prudence, in his own case, under similar circumstances; and

(f) a partner shall indemnify the firm for any loss caused to it by his wilful neglect in the conduct of the business of the firm.

**14. Subject to contract between the partners, the property of the**

*The property of the firm.* firm includes all property and rights and interest in property originally brought into the stock of the firm, or acquired by purchase or otherwise, by or for the firm, or for the purpose and in the course of the business of the firm, and includes also the good-will of the business.

Unless the contrary intention appears, property and rights and interest in property acquired with money belonging to the firm are deemed to have been acquired for the firm.

**15.** Subject to contract between the partners, the property of the firm shall be held and used by the partners exclusively for the purpose of the business.

**16.** Subject to contract between the partners—  
*Personal profits earned by partner.* (a) if a partner derives any profit for himself from any transaction of the firm, or from the use of the property or business connection of the firm or the firm name, he shall account for that profit and pay it to the firm.

(b) if a partner carries on any business of the same nature as and competing with that of the firm, he shall account for and pay to the firm all profits made by him in that business.

**17.** Subject to contract between the parties—  
*Rights and duties of partners after a change in the firm.* (a) where a change occurs in the constitution of a firm, the mutual rights and duties of the partners in the reconstituted firm remain the same as they were immediately before the change, as far as may be;

(b) where a firm constituted for a fixed term continues to carry on business after the expiry of that term, the mutual rights and duties of the partners remain the same as they were before the expiry so far as they may be consistent with the incidents of partnership at will; and

(c) where a firm constituted to carry out one or more adventures or undertakings carries out other adventures or undertakings the mutual rights and duties of the partners in respect of the other adventures or undertakings are the same as those in respect of the original adventures or undertakings.

## CHAPTER IV

### Relations of Partners to Third Parties

**18.** Subject to the provisions of this Act, a partner is the agent of the firm for the purpose of the business of the firm.

**19.** (1) Subject to the provisions of Section 22, the act of a partner, which is done to carry on, in the usual way, business of the kind carried on by the firm, binds the firm.

The authority of a partner to bind the firm conferred by this Section is called his "implied authority".

(2) In the absence of any usage or custom of trade to the contrary, the implied authority of a partner does not empower him to —

- (a) submit dispute relating to the business of the firm to arbitration,
- (b) open a banking account on behalf of the firm in his own name,
- (c) compromise or relinquish any claim or portion of a claim by the firm,
- (d) withdraw a suit or proceeding filed on behalf of the firm,
- (e) admit any liability in a suit or proceeding against the firm,
- (f) acquire immovable property on behalf of the firm,
- (g) transfer immovable property belonging to the firm, or
- (h) enter into partnership on behalf of the firm.

20. The partners in a firm may by contract between the partners, extend or restrict the implied authority of any partner.

*Extension and restriction of partner's implied authority.*

Notwithstanding any such restriction, any act done by a partner on behalf of the firm which falls within his implied authority binds the firm, unless the person with whom he is dealing knows of the restriction or does not know or believe that partner to be a partner.

21. A partner has authority in an emergency, to do all such acts for the purpose of protecting the firm from loss as would be done by a person of ordinary prudence, in his own case, acting under similar circumstances, and such acts bind the firm.

*Partner's authority in an emergency.*

22. In order to bind a firm an act or instrument done or executed by a partner or other person on behalf of the firm shall be done or executed in the firm name, or in any other manner expressing or implying an intention to bind the firm.

*Mode of doing act to bind a firm.*

23. An admission or representation made by a partner concerning the affairs of the firm is evidence against the firm, if it is made in the ordinary course of business.

*Effect of admission by a partner.*

24. Notice to a partner who habitually acts in the business of the firm of any matter relating to the affairs of the firm operates as notice to the firm except in the case of a fraud on the firm committed by or with the consent of the partner.

*Effect of notice to acting partner.*

25. Every partner is liable, jointly with all the other partners and also severally for all acts of the firm done while he is a partner.

*Liability of a partner for act of the firm.*

26. Where, by the wrongful act or omission of a partner acting in the ordinary course of the business of a firm, or with the authority of his partners, loss or

*Liability of the firm*



*for wrongful acts of a partner.* injury is caused to any third party, or any penalty is incurred, the firm is liable therefor to the same extent as the partner.

27. Where—

*Liability of firm for misapplication by partners.*

(a) a partner acting within his apparent authority receives money or property from a third party and misapplies it, or

(b) a firm in the course of its business receives money or property from a third party, and the money or property is misapplied by any of the partners while it is in the custody of the firm, is liable to make good the loss.

28. (1) Any one who by word spoken or written or by conduct represents himself, or knowingly permits himself, to be represented, to be a partner in a firm, is liable as a partner in that firm to anyone who

*Holding out.* has on the faith of any such representation given credit to the firm whether the person representing himself or represented to be a partner does or does not know that the representation has reached the person so giving credit.

(2) Where after partner's death the business is continued in the old firm name, the continued use of that name or of the deceased partner's name as a part thereof shall not of itself make his legal representative or his estate liable for any act of the firm done after his death.

29. (1) A transfer by a partner of his interest in the firm, creation by him of a change on such interest, *Rights of transfer of a partner's interest.* does not entitle the transferee during the continuance of the firm to interfere in the conduct of the business, or to require accounts or to inspect the books of the firm, but entitles the transferee only to receive the share of profits of the transferring partner and the transferee shall accept the account of profits agreed to by the partners.

(2) If the firm is dissolved or if the transferring partner ceases to be a partner, the transferee is entitled as against the remaining partners, to receive the share of the assets of the firm to which the transferring partner is entitled, and for the purpose of ascertaining that share, to an account as from the date of the dissolution.

30. (1) A person who is a minor according to the law to which he is subject may not be a partner in a firm, but, with consent of all the partners for the time being, he may be admitted to the benefits of partnership. *Minors admitted to the benefits of partnership.*

(2) Such minor has a right to such share of the property and of the profits of the firm as may be agreed upon, and he may have access to and inspect and copy any of the accounts of the firm.

(3) Such minor's share is liable for the acts of the firm but the minor is not personally liable for any such act.

(4) Such minor may not sue the partners for an account or

payment of his share of the property or profits of the firm, save when severing his connection with the firm, and in such case the amount of his share shall be determined by a valuation made as far as possible in accordance with the rules contained in Section 48:

Provided that all the partners acting together or any partner entitled to dissolve the firm upon notice to other partners may elect in such suit to dissolve the firm and thereupon the Court shall proceed with the suit as one for dissolution and for settling accounts between the partners and the amount of the share of the minor shall be determined along with the share of the partners.

(5) At any time within six months of his attaining majority, or of his obtaining knowledge that he had been admitted to the benefits of partnership whichever date is later, such person may give public notice that he has elected to become or that he has elected not to become a partner in the firm and such notice shall determine his position as regards the firm :

Provided that, if he fails to give such notice he shall become a partner in the firm on the expiry of the said six months.

(6) Where any person has been admitted as a minor to the benefits of partnership in a firm the burden of proving the fact that such person had no knowledge of such admission until a particular date after the expiry of six months of his attaining majority shall lie on the person asserting that fact.

(7) Where such person becomes a partner—

(a) has rights and liabilities as a minor continue up to the date on which he becomes a partner, but he also becomes personally liable to third parties for all acts of the firm done since he was admitted to the benefits of partnership, and

(b) his share in the property and profits of the firm shall be the share to which he was entitled as minor.

(8) Where such person elects not to become a partner—

(a) his rights and liabilities shall continue to be those of a minor under the section up to the date on which he gives public notice,

(b) his share shall not be liable for acts of the firm done after the date of notice, and

(c) he shall be entitled to sue the partners for his share of the property and profits in accordance with Sub-section (4).

(6) Nothing in Sub-sections (7) and (8) shall affect the provisions of Section 28.

## CHAPTER V

### Incoming and Outgoing Partners

31. (1) Subject to contract between the partners and to the provisions of Section 30, no person shall be introduced

*Introduction of a partner.* as a partner into a firm without the consent of all the existing partners.

(2) Subject to the provisions of Section 30, a person who is introduced as a partner into a firm does not thereby become liable for any act of the firm done before he became a partner.

32. (1) A partner may retire—

*Retirement of a partner.* (a) with the consent of all the other partners,  
(b) in accordance with an express agreement by the partners, or  
(c) where the partnership is at will, by giving notice in writing to all the other partners of his intention to retire.

(2) A retiring partner may be discharged from any liability to any third party for acts of the firm done before his retirement by an agreement made by him with such third party and the partners of the reconstituted firm, and such agreement may be implied by a course of dealing between such third party and the reconstituted firm after he had knowledge of the retirement.

(3) Notwithstanding the retirement of a partner from a firm, he and other partners continue to be liable as partners to third parties for any act done by any of them which would have been an act of the firm if done before the retirement until public notice is given of the retirement.

Provided that retired partner is not liable to any third party who deals with the firm without knowing that he was a partner.

(4) Notices under Sub-section (3) may be given by the retired partner or by any partner of the reconstituted firm.

*Expulsion of a partner.* 33. (1) A partner may not be expelled from a firm by any majority of the partners, save in the exercise in good faith of powers conferred by contract between the partners.

(2) The provisions of Sub-sections (2), (3) and (4) of Section 32 shall apply to an expelled partner as if he were a retired partner.

*Insolvency of a partner.* 34. (1) Where a partner in a firm is adjudicated an insolvent he ceases to be a partner on the date on which the order of adjudication is made, whether or not the firm is thereby dissolved.

(2) Where under a contract between the partners the firm is not dissolved by the adjudication of a partner as an insolvent, the estate of a partner so adjudicated is not liable for any act of the insolvent, done after the date on which the order of adjudication is made.

*Liability of estate of deceased partner.* 35. Where under a contract between the partners the firm is not dissolved by the death of a partner the estate of a deceased partner is not liable for any act of the firm done after his death.

36. (1) An outgoing partner may carry on a business competing

*Right of outgoing partner to carry on competing business.*

with that of the firm and he may advertise such business but subject to contract to the contrary, he may not—

- (a) use firm name;
- (b) represent himself as carrying on the business of the firm; or
- (c) solicit the custom of persons who were dealing with the firm before he ceased to be a partner.

*Agreement in restraint of trade.*

(2) A partner may make an agreement with his partners that on ceasing to be a partner he will not carry on any business similar to that of the firm within a specified period or within specified local limits and notwithstanding anything contained in Section 27 of the Indian Contract Act, 1-72, such agreement shall be valid if the restrictions imposed are reasonable.

*Right of outgoing partner in certain case to share subsequent profits.*

37. Where any member of a firm has died or otherwise ceased to be a partner, and the surviving or continuing partners carry on the business of the firm with the property of the firm without any final settlement of accounts as between them and the outgoing partner or his estate then, in the absence of a contract to the contrary, the outgoing partner or his estate is entitled at the option of himself or his representatives to such share of the profits made since he ceased to be a partner as may be attributable to the use of his share of the property of the firm or to interest at the rate of six per cent per annum the amount of his share in the property of the firm:

Provided that where by contract between the partners an option is given to surviving or continuing partners to purchase the interest of a deceased or outgoing partner, and that option is duly exercised, the estate of the deceased partner, or the outgoing partner or his estate, as the case may be, is not entitled to any further or other share of profits; but if any partner, assuming to act in exercise of the option does not in all material respects comply with the terms thereof, he is liable to account under the foregoing provisions of this Section.

38. A continuing guarantee given to a firm, or to a third party in respect of the transactions of a firm, is in the absence of agreement to the contrary, revoked as to future transactions the date of any change in the continuation of the firm.

*Revocation of continuing guarantee by change in firm.*

## CHAPTER VI

### Dissolution of a Firm

39. The dissolution of a partnership between all the partners of a firm is called the "dissolution of the firm."

*Dissolution of a firm.*

40. A firm may be dissolved with the consent of all the partners or in accordance with a contract between the partners.

41. A firm is dissolved—

*Compulsory dissolution.* (a) by the adjudication of all the partners or of all the partners but one as insolvent; or

(b) by the happening of any event which makes it unlawful for the business of the firm to be carried on or for the partners to carry it on in partnership:

Provided that, where more than one separate adventure or undertaking is carried on by the firm, the illegality of one or more shall not of itself cause the dissolution of the firm in respect of its lawful adventures and undertaking.

42. Subject to contract between the partners a firm is dissolved—  
*Dissolution on the happening of certain contingencies.* (a) if constituted for a fixed term, by the expiry of that term;

(b) if constituted to carry out one or more adventures or undertaking, by the completion thereof;

(c) by the death of a partner;

(d) by the adjudication of a partner as an insolvent.

43. (1) Where the partnership is at will, the firm may be dissolved by any partner giving notice in writing to all the other partners of his intention to dissolve the firm.

(2) The firm is dissolved as from the date mentioned in the notice as the date of dissolution or, if no date is so mentioned, as from the date of the communication of the notice.

44. At the suit of a partner, the Court may dissolve a firm on any of the following grounds, namely :—  
*Dissolution by the Court.*

(a) that a partner has become of *unsound mind*, in which case the suit may be brought as well by next friend of the partner who has become of unsound mind as by any other partner;

(b) that a partner, other than the partner suing, has become in any way *permanently incapable* of performing his duties as partner;

(c) that a partner, other than the partner suing, is *guilty of conduct which is likely to affect prejudicially* the carrying on the business regard being had to the nature of the business;

(d) that a partner, other than the partner suing, wilfully or persistently *commits breach of agreements relating to the management* of the affairs of the firm or the conduct of its business; or otherwise so conducts himself in matters relating to the business that it is not reasonably practicable for the other partners to carry on the business in partnership with him;

- (e) that partner, other than the partner suing, has in any way transferred the whole of his interest in the firm to a third party or has allowed his share to be charged under the provisions of rule 49 of order XXI the First Schedule to the Code of Civil Procedure, 1908, or has allowed it to be sold in the recoverable as arrears of revenue due by the partner;
- (f) that the *business of the firm cannot be carried on save at a loss*; or
- (g) on any *other ground which renders it just and equitable* that the firm should be dissolved.

45. (1) Notwithstanding the dissolution of a firm, the partners continue to be liable as such to third parties for any act done by any of them which would have been an act of the firm if done before the dissolution, until public notice is given of the dissolution:

*Liability for act of partner done after dissolution.*

Provided that the estate of a partner who dies, or who is adjudicated an insolvent or of a partner who, not having been known to the person dealing with the firm to be partner, retires from the firm is not liable under this section for acts done after the date on which he ceases to be a partner.

(2) Notice under Sub-section (1) may be given by any partner.

46. On the dissolution of a firm every partner or his representative is entitled, as against all the other partners or their representatives, to have the property of the firm applied in payment of the debts and liabilities of the firm, and to have the surplus distributed among the partners, or their representatives according to the rights.

*Right of partner to have business wound up after dissolution.*

47. After the dissolution of a firm the authority of each partner to bind the firm, and the other mutual rights and obligations of the partners, continue notwithstanding the resolution, so far as may be necessary to wind up the affairs of the firm and to complete transactions begun but unfinished at the time of the dissolution, but not otherwise:

*Continuing authority of partners for purposes of winding up.*

Provided that the firm is in no case bound by the acts of a partner who has been adjudicated insolvent; but this provision does not affect the liability of any person who has after the adjudication represented himself or knowingly permitted himself to be represented as a partner of the insolvent.

48. In settling the amount of a firm after dissolution the following rules shall, subject to agreement by the partners, be observed :—

*Mode of settlement of accounts between partners.*

- (a) Losses including deficiencies of capital, shall be paid first out of profits, next out of capital, and lastly, if necessary

by the partners individually in the proportion in which they were entitled to share profits.

- (b) The assets of the firm, including any sums contributed by the partners to make up deficiencies of capital, shall be applied in the following manner and order:—
  - (i) in paying the debts of the firm to third parties;
  - (ii) in paying to each partner rateably what is due to him from the firm for advances as distinguished from capital;
  - (iii) in paying to each partner rateably what is due to him on account of capital; and
  - (iv) the residue, if any, shall be divided among the partners in the proportions in which they were entitled to share profits.

49. Where there are joint debts due from the firm, and also separate debts due from any partner, the property of the firm shall be applied in the first instance in payment of the debts of the firm, and, if there is any surplus, then the share of each partner shall be applied in payment of his separate debts or paid to him. The separate property of any partner shall be applied first in the payment of his separate debts, and the surplus (if any) in the payment of the debts of the firm.

50. Subject to contract between the partners, the provision of clause (a) of Section 16 shall apply to transaction by any surviving partner or by the representatives of deceased partner undertaken after the firm is dissolved on account of the death of a partner and before its affairs have been completely wound up;

Provided that where any partner or his representative has bought the goodwill of the firm, nothing in this section shall affect his right to use the firm-name.

51. Where a partner has paid a premium on entering into partnership for a fixed term, and the firm is dissolved before the expiration of that term otherwise than by the death of a partner, he shall be entitled to repayment of the premium or of such part thereof as may be reasonable, regard being had to the terms upon which he became a partner, and to the length of time during which he was a partner; unless—

- (a) the dissolution is mainly due to his own misconduct;
- (b) or the dissolution is in pursuance of an agreement containing no provision for the return of the premium or any part of it.

52. Where a contract creating partnership is rescinded on the ground of the fraud or misrepresentation of parties thereto; the party entitled to rescind is, without prejudice to any other right, entitled—

*Rights where partnership contract is rescinded for fraud or misrepresentation.*

- (a) to a lien on, or right of retention of, the surplus of the assets of the firm remaining after the debts of the firm have been paid, for any sum paid by him for the purchase of a share in the firm and for any capital contributed by him.
- (b) to rank as a creditor of the firm in respect of any payment made by him towards the debts of the firm; and
- (c) to be indemnified by the partner or partners guilty of the fraud or misrepresentation against all the debts of the firms.

35. After a firm is dissolved, every partner or his representative may in the absence of a contract between the partners to the contrary, restrain any other partner or his representative from carrying on a similar business in the firm-name or from using any of the property of the firm for his own benefit until the affairs of the firm have been completely wound up:

Provided that where any partner or his representative has bought the goodwill of the firm, nothing in this Section shall affect his right to use the firm-name.

54. Partners may, upon or in anticipation of the dissolution of the firm, make an agreement that some or all of them will not carry on a business similar to that of the firm within a specified period or within the specified local limits and notwithstanding anything contained in Section 27 of the Indian Contract Act, 1872, such agreement shall be valid if the restrictions imposed are reasonable.

55. (1) In settling the accounts of a firm after dissolution the goodwill shall, subject to contract between the partners, be included in the assets, and it may be sold either separately or along with other property of the firm.

(2) Where the goodwill of a firm is sold after dissolution, a partner may carry on a business competing with that of the buyer and he may advertise such business, but, subject to agreement between him and the buyer he may not—

- (a) use the firm-name,
  - (b) represent himself as carrying on the business of the firm, or
  - (c) solicit the custom of persons who were dealing with the firm before its dissolution.
- (d) Any partner may, upon the sale of the goodwill of a firm, make an agreement with the buyer that such partner will not carry on any business similar to that of the firm within a specified period or within specified local limits, and notwithstanding anything contained in Section 27 of the Indian Contract Act, 1872, such agreement shall be valid if the restrictions imposed are reasonable.



## CHAPTER VII

### Registration of Firms

*Power to exempt from application of this Chapter.* 56. The State Government of any State may, by notification in the Official Gazette, direct that the provisions of this Chapter shall not apply to that State or to any part thereof specified to the notification.

*Appointment of Registrar.* 57. (1) The State Government may appoint Registrars of Firms for the purposes of this Act, and may define the areas within which they shall exercise their powers and perform their duties.

(2) Every Registrar shall be deemed to be a public servant within the meaning of Section 21 of the Indian Penal Code.

*Application for Registration.* 58. The registration of a firm may be effected at any time by sending by post or delivering to the Registrar of the area in which any place of business of the firm is situated or proposed to be situated, a statement in the prescribed form and accompanied by the prescribed fee, stating—

- (a) the firm-name,
- (b) the place or principal place of business of the firm,
- (c) the names of any other places where the firm carries on business,
- (d) the date when each partner joined the firm,
- (e) the names in full and permanent addresses of the partners, and
- (f) the duration of the firm.

The statement shall be signed by all the partners, or by their agents specially authorised in this behalf.

(2) Each person signing the statement shall also verify it in the manner prescribed.

(3) A firm-name shall not contain any of the following words, namely—

“Crown”, “Emperor”, “Empire”, “Imperial”, “Empress”, “King”, “Queen”, “Royal”, or words expressing or implying the sanction, approval or patronage of Government except when the State Government signifies its consent to the use of such words as part of the firm-name by order in writing.

*Registration.* 59. When the Registrar is satisfied that the provisions of Section 58 have been duly complied with, he shall record on entry of the statement in a register called the Register of Firms, and shall file the statement.

60. (1) When an alteration is made in the firm-name or in the location of the principal place of business of a registered firm, a statement may be sent to the Registrar accompanied by the prescribed fee, specifying the alteration, and signed and verified in the manner required under Section 58.

*Recording of alteration in firm-name and principal place of business.*

(2) When the Registrar is satisfied that the provisions of Sub-section (1) have been duly complied with, he shall amend the entry relating to the firm in the Register of Firms in accordance with the statement, and shall file it along with the statement relating to the firm under Section 59.

61. When a registered firm discontinues business at any place or begins to carry on business at any place, such place not being its principal place of business any partner or agent of the firm may send intimation thereof to the Registrar, who shall make a note of such intimation in the entry relating to the firm in the Register of the Firms and shall file the intimation along with the statement relating to the firm filed under Section 59.

*Noting of closing and opening of branches.*

62. Where any partner in a registered firm alters his name or permanent address, an intimation of the alteration may be sent by any partner or agent of the firm to the Registrar, who shall deal with it in the manner provided in Section 61.

*Noting of changes in name and addresses of partners.*

63. (1) When a change occurs in the constitution of a registered firm, any incoming, continuing or outgoing partner, and when a registered firm is dissolved, any person who was a partner immediately before the dissolution, or the agent of any such partner or person specially authorised in this behalf, may give notice to the Registrar of such change or dissolution, specifying the date thereof; and the Registrar shall make a record of the notice in the entry relating to the firm in the Register of Firms, and shall file the notice along with the statement relating to the firm filed under Section 59.

*Recording of changes in and dissolution of a firm.*

(2) When a minor who has been admitted to the benefits of partnership in a firm attains majority and elects to become or not to become a partner, and the firm is then a registered firm he, or his agent specially authorised in this behalf, may give notice to the Registrar that he has or has not become a partner, and the Registrar shall deal with the notice in the manner provided in Sub-section (1).

*Recording of withdrawal of a minor.*

64. (1) The Registrar shall have power at all times to rectify any mistake in order to bring the

*Rectification of*

*mistakes.* entry in the Register of Firms relating to any firm into conformity with the documents relating to that firm filed under this Chapter.

(2) On application made by all the parties who have signed any documents relating to a firm filed under this Chapter, the Registrar may rectify any mistake in such document or in the record or note thereof made in the 'Register of Firms. •

65. A Court deciding any matter relating to a registered *Amendment of Re-* firm may direct that the Registrar shall *gister by order of* make any amendment in the entry in the *Court.* Register of Firms relating to such firm which is consequential upon its decision; and the Registrar shall amend the entry accordingly.

66. (1) The Registrar of Firms shall be opened to inspection *Inspection of Regis-* tion by any person on payment of such fee *ter and filed docu-* as may be prescribed. *ments.*

(2) All statements, notices and intimation filed under this Chapter shall be opened to inspection, subject to such condition and on payment of such fee as may be prescribed.

67. The Registrar shall on application furnish to any *Grant of copies.* person on payment of such fee as many be prescribed, a copy, certified under his hand, of any entry or portion thereof in the Register of firms.

68. (1) Any statement, intimation or notice recovered or *Rules of evidence.* noted in the Register of Firms, shall, as against any person by whom or on whose behalf such statement, intimation or notice was signed, be conclusive proof of any fact therein stated.

(2) A certified copy of an entry relating to a firm in the Register of Firms may be produced in proof in the fact of the registration of such firm, and of the contents of any statement, intimation or notice recorded or noted therein.

69. (1) No suit to enforce a right arising from a contract *Effect of non-* or conferred by this Act shall be instituted *registration.* in any Court by or on behalf of any person suing as a partner in a firm against the firm or any person alleged to be or to have been a partner\* in the firm unless the firm is registered and the person using is or has been shown in the Register of Firms as a partner in the firm.

(2) No suit to enforce a right arising from a contract shall be instituted in any Court by or on behalf of a firm against any third party unless the firm is registered and the persons suing are or have been shown in the Register of Firms as partners of the firm.

(3) The provisions of Sub-sections (1) and (2) shall apply also to a claim of set-off or other proceeding to enforce a right arising from a contract but shall not affect—

- (a) the enforcement of any right to sue for the dissolution of a firm or for accounts of a dissolved firm, or any right or power to realise the property of a dissolved firm; or
- (b) the power of an official assignee, receiver or Court under the Presidency Towns Insolvency Act, 1909, or the Provincial Insolvency Act, 1920, to realize the property of an insolvent partner.
- (4) This Section shall not apply—
  - (a) to firms or to partners in firm which have no place of business in the territories to which this Act extends, or whose places of business in such territories, Section 56, this Chapter does not apply; or
  - (b) to any suit or claim of set-off not exceeding one hundred rupees in value which, in the Presidency Towns, is not of a kind specified in Section 19 of the Presidency Small Cause Courts Act 1882, or outside the Presidency Towns, is not of kind specified in the Second Schedule to the Provincial Small Cause Courts Act, 1887, or to any proceeding in execution or other proceeding incidental to or arising from any such suit or claim.

70. Any person who signs any statement, amending statement, notice or intimation under this Chapter containing any particular which he knows to be false or does not believe to be true, or containing particulars which he knows to be incomplete or does not believe to be complete shall be punishable with imprisonment which may extend to three months; or with fine or both.

71. (1) The State Government may make rules prescribing the fees which shall accompany documents sent to the Registrar of Firms, or which shall be payable for the inspection of documents in the custody of the Registrar of Firms or for copies from the Registrar of Firms:

Provided that such fees shall not exceed the maximum fees specified in Schedule I.

(2) The State Government may also make rules—

- (a) prescribing the form of statement submitted under Section 58 and of the verification thereof;
- (b) requiring statements, intimations and notices under Sections 60, 61, 62 and 63, to be in prescribed form, and prescribing the form thereof;
- (c) prescribing the form of the Register of Firms, and the mode in which entries relating to firms are to be made therein, and the mode in which such entries are to be amended or notes made therein;
- (d) regulating the procedure of the Register when disputes arise;
- (e) regulating the filing of documents received by the Registrar;

- (f) prescribing conditions for the inspection of original documents;
  - (g) regulating the grant of copies;
  - (h) regulating the elimination of registers and documents
  - (i) providing for the maintenance and form of an Index to the Register of Firms; and
  - (j) generally to carry on the purposes of this Chapter.
- (3) All rules made under this Section shall be subject to the condition of previous publication.

## CHAPTER VIII

### Supplement

72. A public notice under this Act is given—

(a) where it relates to the retirement or expulsion of a partner from a registered firm, or to the dissolution of a registered firm or to the election to become or not to become a partner in a registered firm by a person attaining majority who was admitted as a minor to the benefit of the partnership, by notice to the Registrar of Firms under Section 63, and by publication in the Official Gazette and in at least one vernacular newspaper circulating in the district where the firm to which it relates has its place or principal place of business; and

(b) in any other case, publication in the Official Gazette and in at least one vernacular newspaper circulating in the district where the firm to which it relates has its place or principal place of business.

73. The enactments mentioned in Schedule II are hereby repealed to the extent specified in the fourth column thereof.

*Repeals*

[ Repealed by Act 1 of 1938 ]

74. Nothing in this Act or any repeal affected thereby shall affect or be deemed to affect—

(a) any right, title, interest, obligation or liability already acquired, accrued or incurred before the commencement of this Act; or

(b) any legal proceeding or remedy in respect of any such right, title, interest, obligation or liability or anything done or suffered before the commencement of this Act; or

(c) anything done or suffered before the commencement of this Act; or

(d) any enactment relating to partnership not expressly repealed by this Act; or

(e) any rule of insolvency relating to partnership; or

(f) any rule of law not inconsistent with this Act.

*Savings.*

**SCHEDULE I****MAXIMUM FEES**

[ See Subsection (I) of Section 71 ]

Document or Act in respect of which the fee is payable	Maximum fee.
Statement under Section 58..	Three rupees.
Statement under Section 60..	One rupee.
Intimation under Section 61..	One rupee.
Intimation under Section 62..	One rupee.
Notice under Section 63..	One rupee.
Application under Section 64..	One rupee.
Inspection of Register of Firm under Sub-section (1) of Section 66.	Eight annas for inspecting one volume of the Register.
Inspection of document relating to a firm under Sub- section (2) of Section 66.	Eight annas for the inspection of the documents relating to one firm.
Copies of the Register of Firms.	Four annas for each hundred words or part thereof.

**SCHEDULE II**

[ Repealed by Act I of 1938 ]

# THE NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT

(Act No. XXVI of 1881)

## An Act to define and amend the law relating to Promissory Notes, Bills of Exchange and Cheques

Whereas it is expedient to define and amend the law relating to  
*Preamble.* promissory notes, bills of exchange and cheques; it  
is hereby enacted as follows :

### CHAPTER I

#### Preliminary

*Short title.* 1. This Act may be called the Negotiable  
Instruments Act, 1881.

*Local extent, saving of usages relating to hundis, etc.* It extends to the whole of India but nothing herein contained affects the Indian Paper Currency Act, 1781, Section 21, or affects any local usage relating to any instrument in an Oriental language : provided that such usages may be excluded by any words in the body of the instrument which indicate an intention that the legal relation of the parties thereto shall be governed by this Act : and it shall come into force on the first day of March, 1882.

*Commencement.* 2. [Repeal of enactments] Rep. by the Amending Act 1891 (XII of 1891)

*Interpretation clause.* 3. In this Act—

*Banker.* “Banker” includes also persons or a corporation or company acting as bankers : and “notary public” includes also any person appointed by the Central Government to perform

the function of a notary public under this Act.

### CHAPTER II

#### On Notes, Bills and Cheques

4. A “promissory note” is an instrument in writing (not being a bank-note or a currency-note) containing an unconditional undertaking, signed by the maker, to pay a certain sum of money only to, or to the order of, a certain person, or to the bearer of the instrument.

*Illustrations*

'A' signs instruments in the following terms :

- (a) "I promise to pay B or order Rs. 500."
- (b) "I acknowledge myself to be indebted to B in Rs. 1,000, to be paid on demand, for value received."
- (c) "Mr. B, I O U Rs. 1,300."
- (d) "I promise to pay B Rs. 500, and all other sums which shall be due to him."
- (e) "I promise to pay B Rs. 500, first deducting thereout any money which he may owe me."
- (f) "I promise to pay B Rs. 500, seven days after my marriage with C."
- (g) "I promise to pay B Rs. 500, on D's death, provided D leaves me enough to pay that sum."
- (h) "I promise to pay B Rs. 500 and to deliver to him my black horse on 1st January next."

The instruments respectively marked (a) and (b) are promissory notes. The instruments respectively marked (c), (d), (e), (f), (g) and (h) are not promissory notes.

5. "A bill of exchange" is an instrument in writing containing an unconditional order signed by the maker, directing a certain person to pay a certain sum of money only to, or to the order of, a certain person or to the bearer of the instrument.

A promise or order to pay is not "conditional" within the meaning of this Section and Section 4 by reason of the time for payment of the amount or any instalment thereof being expressed to be on the lapse of a certain period after the occurrence of a specified event which, according to the ordinary expectation of mankind, is certain to happen, although the time of its happening may be uncertain.

The sum payable may be "certain" within the meaning of this Section and Section 4, although it includes future interest or is payable at an indicated rate of exchange or is according to the course of exchange, and although the instrument provides that, on default of payment of an instalment, the balance unpaid shall become due.

The person to whom it is clear that the direction is given or that payment is to be made may be a "certain person", within the meaning of this Section and Section 4, although he is misnamed or designated by description only.

6. A "Cheque" is a bill of exchange drawn on a specified banker and not expressed to be payable otherwise than on demand.

7. The maker of a bill of exchange or cheque is called the "drawer",



*Drawer, Drawee.* the person thereby directed to pay is called the "drawee".

When in the bill or in any indorsement thereon the name of any person is given in addition to the drawee to be resorted to in case of need, such person is called a "drawee in case of need."

After the drawee of a bill has signed his assent upon the bill, or, if there are more parts, thereof than one, upon one of such parts, and delivered the same, or given notice of such signing to the holder or to some person on his behalf, he is called the "acceptor".

When a bill of exchange has been noted or protested for non-acceptance or for better security, and any person accepts it *supra protest* for honour of the drawer, or of any one of the indorsers, such person is called an "acceptor for honour".

The person named in the instrument, to whom or to whose order the money is by the instrument directed to be paid, is called the "payee".

8. The "holder" of a promissory note, bill of exchange or cheque means any person entitled in his own name to the possession thereof, and to receive the amount due thereon from the parties thereto.

Where the note, bill or cheque is lost or destroyed, its holder is the person so entitled at the time of such loss or destruction.

9. "Holder in due course" means any person who for consideration becomes the possessor of a promissory note, bill of exchange or cheque if payable to bearer, or the payee or endorsee thereof, if payable to order, before the amount mentioned in it became payable, and without having sufficient cause to believe that any defect existed in the title of the person from whom he derived his title.

10. "Payment in due course" means payment in accordance with the apparent tenor of the instrument in good faith and without negligence to any person in possession thereof under circumstances which do not afford a reasonable ground for believing that he is not entitled to receive payment of the amount therein mentioned.

11. A promissory note, bill of exchange or cheque drawn or made in India and made payable in, or drawn upon any person resident in India, shall be deemed to be an inland instrument.

12. Any such instrument not so drawn, made or made payable shall be deemed to be foreign instrument.

**13. (I)** A "negotiable instrument" means a promissory note, bill of exchange or cheque payable either to order or to bearer.

*Negotiable instrument.*  
*Explanation (i)*—A promissory note, bill of exchange or cheque is payable to order which is expressed to be so payable or which is expressed to be payable to a particular person, and does not contain words prohibiting transfer or indicating an intention that it shall not be transferable.

*Explanation (ii)*—A promissory note, bill of exchange or cheque is payable to bearer which is expressed to be so payable or on which the only or last indorsement is an indorsement in blank.

*Explanation (iii)*—Where a promissory note, bill of exchange or cheque, either originally or by indorsement is expressed to be payable to the order of a specified person, and not to him or his order, it is nevertheless payable to him or his order at his option.

(2) A negotiable instrument may be made payable to two or more payees jointly or it may be made payable in the alternative to one of two, or one or some of several payees.

**14.** When a promissory note, bill of exchange or cheque is transferred to any person, so as to constitute that person the holder thereof, the instrument is said to be negotiated.

**15.** When the maker or holder of a negotiable instrument signs the same, otherwise than as such maker, for the purpose of negotiation, on the back or face thereof or on a slip of paper annexed thereto, or so signs for the same purpose a stamped paper intended to be completed as a negotiable instrument, he is said to indorse the same, and is called the "indorser".

**16. (i)** If the indorser signs his name only, the indorsement is said to be "in blank", and if he adds a direction to pay the amount mentioned in the instrument to, or to the order of, a specified person, the indorsement is said to be "in full", and the person so specified is called the "indorsee" of the instrument.

(2) The provisions of this Act relating to a payee shall apply with the necessary modifications to an indorsee.

**17.** Where an instrument may be construed either as a promissory note or bill of exchange, the holder may at his election treat it as either, and the instrument shall be thenceforward treated accordingly.

**18.** If the amount undertaken or ordered to be paid is stated differently in figures and in words, the amount stated in words shall be the amount undertaken or ordered to be paid.

*Ambiguous instruments.*  
*Where amount is stated differently in figures and words.*

19. A promissory note or bill of exchange, in which no time for payment is specified, and a cheque, are payable on demand.

20. Where one person signs and delivers to another a paper stamped in accordance with the law relating to negotiable instruments then in force in India and either wholly blank, or having written there an incomplete negotiable instrument he thereby gives *prima facie* authority to the holder thereof to make or complete, as the case may be, upon it a negotiable instrument, for any amount specified therein and not exceeding the amount covered by the same. The person so signing shall be liable upon such instrument, in the capacity in which he signed the same, to any holder in due course for such amount: Provided that no person other than a holder in due course shall recover from the person delivering the instrument anything in excess of amount intended by him to be paid thereunder.

21. In a promissory note or bill of exchange the expressions "at sight" and "on presentment" mean on demand. The expression "after sight" means, in a promissory note, after presentment for sight, and in a bill of exchange, after acceptance, or noting for non-acceptance, or protest for non-acceptance.

22. The maturity of a promissory note or bill of exchange is the date at which it falls due.

Every promissory note or bill of exchange which is not expressed to be payable on demand, at sight or on presentment is at maturity on the third day after the day on which it is expressed to be payable.

23. In calculating the date at which a promissory note or bill of exchange made payable a stated number of months after date or after sight, or after a certain event, is at maturity, the period stated shall be held to terminate on the day of the month which corresponds with the day on which the instrument is dated, or presented for acceptance, or sight, or noted for non-acceptance, or protested for non-acceptance, or the event happens, or where the instrument is a bill of exchange made payable a stated number of months after sight and has been accepted for honour, with the day on which it was so accepted. If the month in which the period would terminate has no corresponding day, the period shall be held to terminate on last day of such month.

### Illustrations

(a) A negotiable instrument, dated 29th January, 1878, is made

payable at one month after date. The instrument is at maturity on the third day after the 28th February, 1878.

(b) A negotiable instrument, dated 30th August, 1878, is made payable three months after date. The instrument is at maturity on the 3rd December, 1878.

(c) A promissory note or bill of exchange, dated 31st August, 1878, is made payable three months after date. The instrument is at maturity on the 3rd December, 1878.

24. In calculating the date at which a promissory note or bill of exchange made payable a certain number of days after date or after sight or after a certain event is at maturity, the day of the date, or of presentment for acceptance or sight, or of protest for non-acceptance, or on which the event happens, shall be excluded.

*Calculating maturity of bill or note payable so many days after date or sight.*

25. When the day on which a promissory note or bill of exchange is at maturity is a public holiday, the instrument shall be deemed to be due on the next preceding business day.

*When day of maturity is a holiday*

*Explanation*—The expression “public holiday” includes Sundays, New Years day, Christmas day if either of such days falls on a Sunday, the next following Monday; Good Friday; and other day declared by the Central Government, by notification in the Official Gazette, to be a public holiday.

### CHAPTER III

#### Parties to Notes, Bills and Cheques

26. Every person capable of contracting, according to the law to which he is subject, may bind himself and be bound by the making, drawing, acceptance, indorsement, delivery any negotiation of a promissory note, bill of exchange or cheque.

*Capacity to make promissory notes etc.*

A minor may draw, indorse, deliver and negotiate such instrument so as to bind all parties except himself.

*Minor.*

Nothing herein contained shall be deemed to empower a corporation to make, indorse or accept such instruments except in cases in which, under the law for the time being in force, they are so empowered.

27. Every person capable of binding himself or of being bound, as mentioned in Section 26, may so bind himself or be bound by a duly authorized agent acting in his name.

*Agency.*

A general authority to transact business and to receive and

discharge debts does not confer upon an agent the power of accepting or indorsing bill of exchange so as to bind his principal.

An authority to draw bills of exchange does not of itself impart an authority to indorse.

28. An agent who signs his name to a promissory note, bill of exchange or cheque without indicating thereon that he signs as agent, or that he does not intend thereby to incur personal responsibility, is liable personally on the instrument, except to those who induced him to sign upon the belief that the principal only would be held liable.

29. A legal representative of a deceased person who signs his name to a promissory note, bill of exchange, or cheque is liable personally thereon unless he expressly limits his liability to the extent of the assets received by him as such.

30. The drawer of a bill of exchange or cheque is bound, in case of dishonour by the drawee or acceptor thereof, to compensate the holder provided due notice of dishonour has been given to, or received by, the drawer as hereinafter provided.

31. The drawee of a cheque having sufficient funds of the drawer in his hands properly applicable to the payment of such cheque must pay the cheque when duly required so to do, and in default of such payment, must compensate the drawer for any loss or damage caused by such default.

32. In the absence of a contract to the contrary, the maker of a promissory note and the acceptor before maturity of a bill of exchange are bound to pay the amount thereof at maturity according to the apparent tenor of the note of acceptance respectively, and the acceptor of a bill of exchange at or after maturity is bound to pay the amount thereof to holder on demand.

In default of such payment as aforesaid, such maker or acceptor is bound to compensate any party to the note or bill for any loss or damage sustained by him and caused by such default.

33. No person except the drawee of a bill of exchange, or all or some of several drawees, or a person named therein as drawee in case of need, or a acceptor for honour, can bind himself by an acceptance.

34. Where there are several drawees of a bill of exchange who are not partners, each of them can accept it for himself, but none of them can accept it for another without his authority.

35. In the absence of a contract to the contrary, whoever

*Liability of indorser.* indorses and delivers a negotiable instrument before maturity, without in such indorsement expressly excluding or making conditional his own liability, is bound thereby to every subsequent holder in case of dishonour by the drawee, acceptor or maker to compensate such holder for any loss or damage caused to him by such dishonour, provided the notice of dishonour has been given to, or received by such indorser as hereinafter provided.

Every indorser after dishonour is liable as upon an instrument payable on demand.

36. The prior party to a negotiable instrument is liable thereon  
*Liability of prior parties to a holder in due course.* to a holder in due course until the instrument is duly satisfied.

37. The maker of a promissory note or cheque, the drawer of a bill of exchange until acceptance, and the acceptor are, in the absence of a contract to the contrary, respectively liable thereon as principal debtors, and the other parties thereto are liable thereon as sureties for the maker, drawer or acceptor as the case may be.

38. As between the parties so liable as sureties, each prior party is, in the absence of a contract to the contrary, also liable thereon as a principal debtor in respect of each subsequent party.  
*Prior party a principal in respect of each subsequent party.*

#### *Illustration*

A draws a bill payable to his own order on B who accepts. A afterwards indorses the bill to C, C to D, and D to E. As between E and B, B is the principal debtor, and A, C and D are his sureties. As between F and A, A is the principal debtor and C and D are his sureties. As between E and C, C is the principal debtor and D is his surety.

39. When the holder of an accepted bill of exchange enters into any contract with the acceptor which, under Section 134 or 135 of the Indian Contract Act, 1872, would discharge the other parties, the holder may expressly reserve his right to charge the other parties, and in such case they are not discharged.  
*Suretyship.*

40. When the holder of a negotiable instrument, without the consent of the indorser, destroys or impairs the indorser remedy against a prior party, the indorser is discharged from liability to the holder to the same extent as if the instrument had been paid at maturity.  
*Discharge of indorser's liability.*

#### *Illustration*

A is the holder of a bill of exchange made payable to the order of

B, which contains the following indorsement in blank—

First indorsement, "B."

Second indorsement, "Peter Williams.

Third indorsement, "Wright & Co."

Fourth indorsement, "John Rozario."

The bill A puts in suit against John Rozario and strikes out without John Rozario's consent the endorsements by Peter Williams and Wright & Co. A is not entitled to recover anything from John Rozario.

41. An acceptor of a bill of exchange already indorsed is not relieved from liability by reason that such indorsement is forged, if he knew or had reason to believe the indorsement to be forged when he accepted the bill.

42. An acceptor of a bill of exchange drawn in a fictitious name and payable to the drawer's order is not, by reason that such name is fictitious, relieved from liability to any holder claiming under an indorsement by the same hand as the drawer's signature, and purporting to be made by the drawer.

43. A negotiable instrument made, drawn, accepted, indorsed or transferred without consideration, or for a consideration which fails, creates no obligation of payment between the parties to the transaction. But if any such party has transferred the instrument with or without indorsement to a holder for consideration, such holder and every subsequent holder deriving title from him, may recover the amount due on such instrument from the transferer for consideration or any prior party thereto.

*Exception I*—No party for whose accommodation a negotiable instrument has been made, drawn, accepted or indorsed can, if he has paid the amount thereof, recover thereon such instrument for his accommodation.

*Exception II*—No party to the instrument who has induced any other party to make, draw, accept, indorse or transfer the same to him for a consideration which he has failed to pay or perform in full shall recover thereon an amount exceeding the value of the consideration (if any) which he has actually paid or performed.

44. When the consideration for which a person signed a promissory note, bill of exchange or cheque consisted of money, and was originally absent in part or has subsequently failed in part, the sum which a holder standing in immediate relation with such signer is entitled to receive from him is proportionally reduced.

*Explanation*—The drawer of a bill of exchange stands in immediate

relation with the acceptor. The maker of a promissory note, bill of exchange or cheque stands in immediate relation with the payee, and the indorser with his indorsee. Other signers may by agreement stand in immediate relation with a holder.

### *Illustration*

A draws a bill on B for Rs. 500 payable to the order of A. B accepts the bill, but subsequently dishonours it by non-payment. A sues B on the bill. B proves that it was accepted for value as to Rs. 400, and as an accommodation to the plaintiff as to the residue. A can only recover Rs. 400.

\* 45. Where a part of the consideration for which a person signed a promissory note, bill of exchange or cheque, though not consisting of money, is ascertainable in money without collateral enquiry, and there has been a failure of that part the sum which a holder standing in immediate relation with such signer is entitled to receive from him, is proportionally reduced.

45-A. Where a bill of exchange has been lost before it is over-due, the person who was the holder of it may apply to the drawer to give him another bill of the same tenor, giving security to the drawer if required to indemnify him against all persons whatever in case the bill alleged to have been lost shall be found again.

If the drawer on request as aforesaid refuses to give such duplicate bill he may be compelled to do so.

## CHAPTER IV

### Of Negotiation

46. The making, acceptance or indorsement of a promissory note, bill of exchange or cheque is completed by delivery, actual or constructive.

As between parties standing in immediate relation, delivery to be effectual must be made by the party making, accepting or indorsing the instrument or by a person authorised by him in that behalf.

As between such parties and any holder of the instrument other than a holder in due course, it may be shown that the instrument was delivered conditionally or for a special purpose only, and not for the purpose of transferring absolutely the property therein.

A promissory note, bill of exchange or cheque payable to order is negotiable by the delivery thereof.

A promissory note, bill of exchange or cheque payable to order is negotiable by the holder by indorsement and delivery thereof.

47. Subject to the provisions of Section 58, a promissory note,



*Negotiation by delivery.* bill of exchange or cheque payable to bearer is negotiable by delivery thereof.

*Exception*—A promissory note, bill of exchange or cheque delivered on condition that it is not to take effect in a certain event is not negotiable (except in the hands of holder for value without notice of the condition) unless such event happens.

### Illustrations

- (a) A, the holder of a negotiable instrument payable to bearer, delivers it to B's agent to keep for B. The instrument has been negotiated.
- (b) A, the holder of a negotiable instrument payable to bearer, which is in the hands of A's banker, who is at the time the banker of B, directs the banker to transfer the instrument to B's credit in the banker's account with B. The banker does so, and accordingly now possesses the instrument as B's agent. The instrument has been negotiated, and B has become the holder of it.

48. Subject to the provisions of Section 58, a promissory note, bill of exchange or cheque payable to order is negotiable by the holder by indorsement and delivery thereof.

49. The holder of a negotiable instrument indorsed in blank may, without signing his own name by writing above the indorser's signature a direction to pay to any other person as indorsee, convert the indorsement in blank into an indorsement in full; and the holder does not thereby incur the responsibility of an indorser.

50. The indorsement of a negotiable instrument followed by delivery transfers to the indorsee the property therein with the right of further negotiation; but the indorsement may, by express words, restrict or exclude such right or may merely constitute the indorsee an agent to indorse the instrument or to receive its contents for the indorsee, or for some other specified persons.

*Effect of indorsement.*

### Illustrations

B signs the following indorsements on different negotiable instruments payable to bearer :—

- (a) "Pay the contents to C only."
- (b) "Pay C for my use."
- (c) "Pay C or order for the account of B."
- (d) "The within must be credited to C."

These indorsements exclude the right of further negotiation by C.

- (e) "Pay C."
- (f) "Pay C value in account with the Oriental Bank."
- (g) "Pay the contents to C, being part of the consideration in a certain deed of assignment executed by C to the indorser and others."

These indorsements do not exclude the right of further negotiation by C.

**51.** Every sole maker, drawer, payee or indorsee, or all of several joint makers, drawers, payees or indorsees, of a negotiable instrument may, if the negotiability of such instrument has not been restricted or excluded as mentioned in Section 50, indorse and negotiate the same.

*Explanation*—Nothing in this Section enables a maker or drawer to indorse or negotiate an instrument, unless he is in lawful possession or is holder thereof, or enables a payee or indorsee to indorse or negotiate an instrument, unless he is holder thereof.

#### *Illustration*

A bill is drawn payable to A or order. A indorses it to B, the indorsement not containing the words "or order" or any equivalent words. B may negotiate the instrument.

**52.** The indorser of a negotiable instrument may, by express words in the indorsement exclude his own liability thereon, or make such liability or the right of the indorsee to receive the amount due thereon depend upon the happening of a specified event, although such event may never happen.

Where an indorser so excludes liability and afterwards becomes the holder of the instrument, all intermediate indorsers are liable to him.

#### *Illustrations*

- (a) The indorser of a negotiable instrument signs his name adding the words—"Without recourse."

Upon the indorsement he incurs no liability.

- (b) A is the payee and holder of a negotiable instrument. Excluding personal liability by an indorsement "without recourse," he transfers the instrument to B, and B indorses it to C, who indorses it to A. A is not only reinstated in his former rights, but has the rights of an indorsee against B and C.

**53.** A holder of a negotiable instrument who derives title from a holder in due course has the rights thereon of that holder in due course.

*Holder deriving title from holder in due course.*

54. Subject to the provisions hereinafter contained as to crossed cheques, a negotiable instrument indorsed in blank is payable to the bearer thereof even although originally payable to order.

*Conversion of indorsement in blank into indorsement in full.* 55. If a negotiable instrument after having been indorsed in blank, is indorsed in full, the amount of it cannot be claimed from the indorser in full, except by the person to whom it has been indorsed in full, or by one who derives title through such person.

*Indorsement for part of sum due.* 56. No writing on a negotiable instrument is valid for the purpose of negotiation if such writing purports to transfer only a part of the amount appearing to be due on the instrument, but where such amount has been partly paid, a note to that effect may be indorsed on the instrument, which may then be negotiated for the balance.

*Legal representative cannot by delivery only negotiate instrument indorsed by deceased.* 57. The legal representative of a deceased person cannot negotiate by delivery only a promissory note, bill of exchange or cheque payable to order and indorsed by the deceased but not delivered.

*Instrument obtained by unlawful means or for unlawful consideration.* 58. When a negotiable instrument has been lost, or has been obtained from any maker, acceptor or holder thereof by means of an offence or fraud or for an unlawful consideration, no possessor or indorsee who claims through the person who found or so obtained the instrument is entitled to receive the amount due thereon from such maker, acceptor or holder, or from any party, prior to such holder, unless such possessor or indorsee is, or some person through whom he claims was, a holder thereof in due course.

*Instrument acquired after dishonour or when overdue.* 59. The holder of negotiable instrument, who has acquired it after dishonour, whether by non-acceptance or non-payment, with notice thereof or after maturity, has only as against the other parties, the right thereon of his transfer.

*Accommodation note or bill.* Provided that any person who, in good faith and for consideration, becomes the holder after maturity, of a promissory note or bill of exchange made, drawn or accepted without consideration, for the purpose of enabling some party there to raise money thereon, may recover the amount of the note or bill from any prior party.

*Illustration*

The acceptor of a bill of exchange, when he accepted it, deposited with the drawer certain goods as a collateral security for the payment of the bill with power to the drawer to sell the goods and apply the proceeds in discharge of the bill if it were not paid at maturity. The bill not having been paid at maturity, the drawer sold the goods and retained the proceeds, but indorsed the bill to A. A's title is subject to the same objection as the drawer's title.

60. A negotiable instrument may be negotiated (except by the maker, drawee or acceptor after maturity) until payment or satisfaction thereof by the maker, drawee or acceptor at or after maturity, but not after such payment or satisfaction.
- Instrument negotiable till payment or satisfaction.*

## CHAPTER V

## Of Presentment

61. A bill of exchange payable after sight must, if no time or place is specified therein for presentment, be presented to the drawee thereof for acceptance, if he can, after reasonable search, be found, by a person entitled to demand acceptance within a reasonable time after it is drawn and in business hours on a business day. In default of such presentment, no party thereto is liable thereon to the person making such default.
- Presentment for acceptance.*

If the drawee cannot, after reasonable search, be found, the bill is dishonoured.

If the bill is directed to the drawee at a particular place it must be presented at the place; and if at the due date for presentment he cannot, after reasonable search, be found there, the bill is dishonoured.

Where authorized by agreement or usage, a presentment through the post office by means of registered letter is sufficient.

62. A promissory note, payable at a certain period after sight, must be presented to the maker thereof for sight (if he can, after reasonable search, be found) by a person entitled to demand payment, within a reasonable time after it is made and in business
- Presentment of promissory note for sight.*

hours on a business day. In default of such representment, no party there is liable thereon to the person making such default.

*Drawee's time for deliberation.* 63. The holder must, if so required by the drawee of a bill of exchange presented to him for acceptance, allow the drawee forty-eight hours (exclusive of public holidays) to consider whether he will accept it.

*Presentment for payment.* 64. Promissory notes, bills of exchange and cheques must be presented for payment to the maker, acceptor or drawee thereof respectively, by or on behalf of the holder as hereinafter provided. In default of such presentment, the other parties thereto are not liable thereon to such holder.

Where authorised by agreement or usage, a presentment through the post office by means of a registered letter is sufficient.

*Exception*—Where a promissory note is payable on demand and is not payable at a specified place, no presentment is necessary in order to charge the maker thereof.

*Hours of presentment.* 65. Presentment for payment must be made during the usual hours of business, and, if at a banker's within banking hours.

*Presentment for payment of instrument payable after date or sight.* 66. A promissory note or bill of exchange, made payable at a specified period after date or sight thereof must be presented for payment at maturity.

*Presentment for payment of promissory note payable by instalment.* 67. A promissory note payable by instalment must be presented for payment on the third day after the date fixed for payment of each instalment; and non-payment on such presentment has the same effect as non-payment of a promissory note at maturity.

*Presentment for payment of instrument payable at specified place and not elsewhere.* 68. A promissory note, bill of exchange or cheque made, drawn or accepted payable at a specified place and not elsewhere must, in order to charge any party thereto, be presented for payment at that place.

*Instrument payable at specified place.* 69. A promissory note or bill of exchange made, drawn or accepted payable at a specified place must in order to charge the maker or drawee thereof be presented for payment at that place.

*Presentment where exclusive place specified.* 70. A promissory note or bill of exchange, not made payable as mentioned in Sections 68 and 69, must be presented for payment at the place of business (if any), or at the usual residence, of the maker, drawee or acceptor thereof, as the case may be.

**71.** If the maker, drawee or acceptor of a negotiable instrument has no known place of business or fixed residence, and no place is sufficient in the instrument for presentment for acceptance or payment, such presentment may be made to him in person wherever he can be found.

**72.** Subject to the provisions of Section 84, a cheque must in order to charge the drawer, be presented at the bank upon which it is drawn before the relation between the drawer and his banker has been altered to the prejudice of the drawer.

**73.** A cheque must, in order to charge any person except the drawer, be presented within a reasonable time after delivery thereof by such person.

**74.** Subject to the provisions of Section 31, a negotiable instrument payable on demand must be presented for payment within a reasonable time after it is received by the holder.

**75.** Presentment for acceptance or payment may be made to the duly authorized agent of the drawee, maker or acceptor, as the case may be, or where the drawee, maker or acceptor has died, to his legal representative, or, where he has been declared an insolvent, to his assignee.

**75-A.** Delay in presentment for acceptance or payment is excused if the delay is caused by circumstances beyond the control of the holder, and not imputable to his default, misconduct or negligence. When the cause of delay ceases to operate, presentment must be made within a reasonable time.

**75-B. (1)** Notwithstanding anything contained in this Act or in any other law for the time being in force, no presentment for acceptance or payment of a negotiable instrument shall be deemed to be dishonoured at the due date for presentment if it is not possible for the holder thereof being a bank, to present the instrument for acceptance or payment on account of the prevalence of riot or other disturbances in the area in which such presentment is to be made.

**(2)** Every bank which treats any negotiable instrument as dishonoured under Sub-section (1) shall send, to the Reserve Bank of India a return signed by two reasonable officers of the bank in such form and manner as may be prescribed by the Reserve Bank of India.

*Explanation*—For the purpose of this section a bank shall include a company or corporation incorporated by or under any law in force

in any place in or outside India, which transacts the business of banking in India.

76. No presentment for payment is necessary, and the instrument is dishonoured at the due date for presentment, in any of the following cases :—

- When presentment unnecessary.*
- (a) if the maker, drawee or acceptor intentionally prevents the presentment of the instrument, or, if the instrument being payable at the place of business, he closes such place on a business day during the usual business hours, or, if the instrument being payable at some other specified place, neither he nor any person authorized to pay it attends at such place during the usual business hours, or if the instrument not being payable at any specified place, he cannot after due search be found;
  - (b) as against any party sought to be charged therewith, if he has engaged to pay notwithstanding non-presentment;
  - (c) as against any party if, after maturity, with knowledge that the instrument has not been presented—he makes a part payment on account of the amount due on the instrument, or promises to pay the amount due thereon in whole or in part, or, otherwise waives his right to take advantage of any default in presentment for payment;
  - (d) as against the drawer, if the drawer could not suffer damage from the want of such presentment.

77. When a bill of exchange, accepted payable at a specified bank, has been duly presented there for payment and dishonoured, if the banker so negligently or improperly keeps, deals with or delivers such bill as to cause loss to the holder, he must compensate the holder for such loss.

*Liability of banker for negligently dealing with bill presented for payment.*

## CHAPTER VI

### Of Payment and Interest

78. Subject to the provisions of Section 82, clause (c) payment of the amount due on a promissory note, bill of exchange or cheque must in order to discharge the maker or acceptor, be made to the holder of the instrument.

*To whom payment should be made.*

79. When interest at a specified rate is expressly made payable on a promissory note or bill of exchange, interest shall be calculated at the rate specified, on the amount of the principal money due thereon, from the date of the instrument, until tender or realization of such amount,

or until such date after the institution of a suit to recover such amount as the Court directs.

80. When no rate of interest is specified in the instrument, interest on the amount due thereon shall, notwithstanding any agreement relating to interest between any parties to the instrument, be calculated at the rate of six per cent per annum from the date at which the same ought to have been paid by the party charged, until tender or realization of the amount due thereon, or until such date after the institution of a suit to recover such amount as the Court directs.

*Explanation*:—When the party charged is the indorser of an instrument dishonoured by non-payment, he is liable to pay interest only from the time that he receives notice of the dishonour.

81. Any person liable to pay, and called upon by the holder thereof to pay, the amount due on a promissory note, bill of exchange or cheque is before payment entitled to have it shown, and is on payment entitled to have it delivered up to him, or, if the instrument is lost or cannot be produced to be indemnified against any further claim thereon against him.

*Delivery of instrument on payment, or indemnity in case of loss.*

## CHAPTER VII

### Of Discharge from Liability on Notes, Bills and Cheques

82. The maker, acceptor or indorser respectively of a negotiable instrument is discharged from liability thereon—

(a) to a holder thereof who cancels such acceptor's or indorser's name with intent to discharge him and to all parties claiming under such holder;

(b) to a holder thereof who otherwise discharges such maker, acceptor or indorser, and to all parties deriving title under such holder after notice of such discharge;

(c) to all parties thereto, if the instrument is payable to bearer, or has been indorsed in blank, and such maker, acceptor or indorser makes payment in due course of the amount due thereon.

83. If the holder of a bill of exchange allows the drawee more than forty-eight hours, exclusive of public holidays, to consider whether he will accept the same, all previous parties not consenting

*Discharge by allowing drawee more*



than fortyeight hours to accept. to such allowance are thereby discharged from liability to such holder.

84. (1) Where a cheque is not presented for payment within a reasonable time of its issue, and the drawer or person on whose account it is drawn had the right, at the time when presentment ought to have been made, as between himself and the banker, to have the cheque paid and suffers actual damage through the delay, he is discharged to the extent of such damage, that is to say to the extent of which such drawer or person is a creditor of the banker to a larger amount than he would have been if such cheque had been paid.

(2) In determining what is a reasonable time, regard shall be had to the nature of the instrument, the usage of trade and of bankers, and the facts of the particular case.

(3) The holder of the cheque as to which drawer or person is so discharged shall be a creditor, in lieu of such drawer or person, of such banker to the extent of such discharge and entitled to recover the amount from him.

#### Illustrations

(a) A draws a cheque for Rs. 1000, and, when the cheque ought to be presented, has funds at the bank to meet it. The bank fails before the cheque is presented. The drawer is discharged, but the holder can prove against the bank for the amount of the cheque.

(b) A draws a cheque at Umballa on a bank in Calcutta. The bank fails before the cheque could be presented in ordinary course. A is not discharged, for he has not suffered actual damage through any delay in presenting the cheque.

85. (1) Where a cheque payable to order purports to be endorsed by or on behalf of the payee the drawee is discharged by payment in due course.

(2) Where a cheque is originally expressed to be payable to bearer, the drawee is discharged by payment in due course to the bearer thereof, notwithstanding any indorsement whether in full or in blank appearing thereon, and notwithstanding that any such indorsement purports to restrict or exclude further negotiation.

85-A. Where any draft, that is, an order to pay money, drawn by one office of a bank upon another office of the same bank for a sum of money payable to order on demand, purports to be indorsed by or on behalf of the payee, the bank is discharged by payment in due course.

*Drafts drawn by one branch of a bank on another payable to order.*

**86.** If the holder of a bill of exchange acquiesces in a qualified acceptance, or one limited to part of the sum mentioned in the bill, or which substitutes a different place or time for payment or which, where the drawees are not partners, is not signed by all the drawees, all previous parties whose consent is not obtained to such acceptance are discharged as against the holder and those claiming under him, unless, on notice given by the holder they assent to such acceptance.

*Parties not consenting discharged by qualified or limited acceptance.*

*Explanation :—* An acceptance is qualified—

- (a) where it is conditional, declaring the payment to be dependent on the happening of an event therein stated;
- (b) where it undertakes the payment of part only of the sum ordered to be paid;
- (c) where, no place of payment being specified on the order, it undertakes the payment at a specified place, and not otherwise or elsewhere or where, a place of payment being specified in the order, it undertakes the payment at some other place and not otherwise or elsewhere;
- (d) where it undertakes the payment at a time other than that at which under order it would be legally due.

**87.** Any material alteration of a negotiable instrument renders the same void as against anyone who

*Effect of material alteration.* is a party thereto at the time of making such alteration and does not consent thereto unless it was made in order to carry out the common intention of the original parties.

And any such alteration, if made by an indorsee, discharges his indorser from all liabilities to him in respect of the consideration thereof.

*Alteration by indorsee.*

The provisions of this section are subject to those of Sections 20, 49, 86 and 125.

**88.** An acceptor or indorser of a negotiable instrument is bound by his acceptance or indorsement notwithstanding any previous alteration of the instrument.

*Acceptor or indorser bound notwithstanding previous alteration.*

**89.** Where a promissory note, bill of exchange or cheque has been materially altered but does not appear to have been so altered,

*Payment of instrument on which alteration is not apparent.*

or where a cheque is presented for payment which does not at the time of presentation appear to be crossed or to have had a crossing which has been obliterated,

payment thereof by a person or banker liable to pay, and paying the same according to the apparent tenor thereof at the time of pay-

ment and otherwise in due course, shall discharge such person or banker from all liability thereon; and such payment shall not be questioned by reason of the instrument having been altered or the cheque crossed.

**90** If a bill of exchange which has been negotiated is, at or after maturity, held by the acceptor in his own right, all rights of action thereon are extinguished.

*Extinguishment of rights of action on bill in acceptor's hands.*

## CHAPTER VIII

### Of Notice of Dishonour

**91.** A bill of exchange is said to be dishonoured by non-acceptance when the drawee, or one of several drawees not being partners, makes default in acceptance upon being duly required to accept the bill, or where presentment is excused and the bill is not accepted.

*Dishonour by non-acceptance.*

Where the drawee is incompetent to contract, or the acceptance is qualified, the bill may be treated as dishonoured.

**92.** A promissory note, bill of exchange or cheque is said to be dishonoured by non-payment when the maker of the note, acceptor of the bill or drawee of the cheque makes default in payment upon being duly required to pay the same.

*Dishonour by non-payment.*

**93.** When a promissory note, bill of exchange or cheque is dishonoured by non-acceptance or non-payment, the holder thereof, or some party thereto who remains liable thereon, must give notice that the instrument has been so dishonoured to all other parties whom the holder seeks to make severally liable thereon, and to some one of several parties whom he seeks to make jointly liable thereon.

*By and to whom notice should be given.*

Nothing in this section renders it necessary to give notice to the maker of the dishonoured promissory note or the drawee or acceptor of the dishonoured bill of exchange or cheque.

**94.** Notice of dishonour may be given to a duly authorized agent of the person to whom it is required to be given, or, where he has died, to his legal representative, or, where he has been declared an insolvent, to his assignee, may be oral or written; may, if written, be sent by post; and may be in any form; but it must inform the party to whom it is given, either in express terms or by reasonable intendment, that the instrument has been dishonoured, and in what way, and that he will be held liable thereon; and it must be given, within a reasonable time after dishonour, at the place of business or (in case such party has no place of business) at the residence of the party for whom it is intended.

*Mode in which notice may be given.*

If the notice is duly directed and sent by post and miscarries, such miscarriage does not render the notice invalid.

95. Any party receiving notice of dishonour must, in order to render any prior party liable to himself, give notice of dishonour to such party within a reasonable time, unless such party otherwise receives due notice as provided by Section 93.

96. When the instrument is deposited with an agent for presentment, the agent is entitled to the same time to give notice to his principal as if he were the holder giving notice of dishonour, and the principal is entitled to further like period to give notice of dishonour.

97. When the party to whom notice of dishonour is despatched is dead, but the party despatching the notice is ignorant of his death, the notice is sufficient.

98. No notice of dishonour is necessary—

*When notice of dishonour is necessary.*

- (a) when it is dispensed with by the party entitled thereto;
- (b) in order to charge the drawer when he has countermanded payment;
- (c) when the party charged could not suffer damage for want of notice;
- (d) when the party entitled to notice cannot after due search be found; or the party bound to give notice is, for any other reason, unable without any fault of his own to give it;
- (e) to charge the drawers when the acceptor is also a drawer;
- (f) in the case of a promissory note which is not negotiable;
- (g) when the party entitled to notice, knowing the facts, promises unconditionally to pay the amount due on the instrument.

## CHAPTER IX

### Of Noting and Protest

99. When a promissory note or bill of exchange has been dishonoured by non-acceptance or non-payment, the holder may cause such dishonour to be noted by a notary public upon the instrument, or upon a paper attached thereto, or partly upon each.

Such note must be made within a reasonable time after dishonour, and must specify the date of dishonour, the reason, if any, assigned for such dishonour, or, if the instrument has not been expressly dishonoured, the reason why the holder treats it as dishonoured and the notary's charges.

100. When a promissory note or bill of exchange has been dishonoured by non-acceptance or non-payment,

the holder may, within a reasonable time, cause such dishonour to be noted and certified by a notary public. Such certificate is called a protest.

*Protest.* When the acceptor of a bill of exchange has become insolvent, or his credit has been publicly impeached, before the maturity of the bill, the holder may, within a reasonable time, cause a notary public to demand better security of the acceptor, and on its being refused may, within a reasonable time, cause such facts to be noted and certified as aforesaid. Such certificate is called a protest for better security.

*Contents of protest.* 101. A protest under Section 100 must contain—

- (a) either the instrument itself, or literal transcript of the instrument and of everything written or printed thereupon;
- (b) the name of person for whom and against whom the instrument has been protested;
- (c) a statement that payment or acceptance, or better security, as the case may be, has been demanded of such person by the notary public; the terms of his answer, if any, or a statement that he gave no answer, or that he could not be found;
- (d) when the note or bill has been dishonoured, the place and time of dishonour, and when better security has been refused, the place and time of refusal;
- (e) the subscription of the notary public making the protest;
- (f) in the event of an acceptance for honour or of a payment for honour, the name of the person by whom, or the person for whom, and the manner in which, such acceptance or payment was offered and affected.

A notary public may make the demand mentioned in Clause (c) of this section either in person or by his clerk or, where authorized by agreement or usage, by registered letter.

102. When a promissory note or bill of exchange is required by law to be protested, notice of such protest must be given instead of notice of dishonour, in the same manner and subject to the same conditions; but the notice may be given by the notary public who makes the protest.

103. All bills of exchange drawn payable at some other place than the place mentioned as the residence of the drawee, and which are dishonoured by non-acceptance, may without further presentment to the drawee be protested for non-payment in the place specified for payment unless paid before or at maturity.

**104.** Foreign bills of exchange must be protested for dishonour when such protest is required by the law of the place where they are drawn.

**104-A.** For the purposes of this Act, where a bill or more is required to be protested within a specified time or before some further proceeding is taken, it is sufficient that the bill has been noted for protest before the expiration of the specified time or the taking of the proceeding; and the formal protest may be extended at any time thereafter as from the date of the noting.

## CHAPTER X

### Of Reasonable Time

**105.** In determining what is a reasonable time for presentment for acceptance or payment, for giving notice of dishonour and for noting, regard shall be had to the nature of the instrument and the usual course of dealing with respect to similar instrument; and, in calculating such time, public holidays shall be excluded.

**106.** If the holder and the party to whom notice of dishonour is given carry on business or live (as the case may be) in different places, such notice is given within a reasonable time if it is despatched by the next post or on the day next after the day of dishonour.

If the said parties carry on business or live in the same place, such notice is given within a reasonable time if it is despatched in time to reach its destination on the day next after the day of dishonour.

**107.** A party receiving notice of dishonour, who seeks to enforce his right against a prior party, transmits the notice within a reasonable time if he transmits it within the same time after its receipt as he would have had to give notice if he had been the holder.

## CHAPTER XI

### Of Acceptance and Payment for Honour and Reference in Case of Need

**108.** When a bill of exchange has been noted or protested for non-acceptance or for better security, any person not being a party already liable thereon may, with the consent of the holder, by writing on the bill, accept the same for the honour of any party thereto.

**109.** A person desiring to accept for honour must, by writing on the bill under his hand, declare that he accepts under protest the protested bill for the honour of the drawer or of a particular indorser whom he names, or generally for honour.

**110.** Where the acceptance does not express for whose honour Acceptance not specifying for it is made, it shall be deemed to be made whose honour it is made. for the honour of the drawer.

**111.** An acceptor for honour binds himself to all parties subsequent to the party for whose honour he accepts to pay the amount of the bill if the drawee does not; and such party and all prior parties are liable in their respective capacities to compensate the acceptor for honour for all loss or damage sustained by him in consequence of such acceptance.

But an acceptor for honour is not liable to the holder of the bill unless it is presented, or (in case the address given by such acceptor on the bill is a place other than the place where the bill is made payable) forwarded for presentment, not later than the day next after the day of its maturity.

**112.** An acceptor for honour cannot be charged unless the bill has at its maturity been presented to the drawee for payment, and has been dishonoured by him, and noted or protested for such dishonour.

**113.** When a bill of exchange has been noted or protested for non-payment, any person may pay the same for the honour of any party liable to pay the same, provided that the person so paying or his agent in that behalf has previously declared before a notary public the party for whose honour he pays, and that such declaration has been recorded by such notary public.

**114.** Any person so paying is entitled to all the rights, in respect of the bill, of the holder at the time of such payment, and may recover from the party for whose honour he pays all sums so paid, with interest thereon and with all expenses properly incurred in making such payment.

**115.** Where a drawee in case of need is named in a bill of exchange, or in any indorsement thereon, the bill is not dishonoured until it has been dishonoured by such drawee.

**116.** A drawee in case of need may accept and pay the bill of exchange without protest.

## CHAPTER XII

### Of Compensation

117. The compensation payable in case of dishonour of a promissory note, bill of exchange or cheque, by any party liable to the holder or any indorsee, shall be determined by the following rules :—

*Rules as to compensation.*

- (a) the holder is entitled to the amount due upon the instrument, together with the expenses properly incurred in presenting, noting and protesting it;
- (b) when the person charged resides at a place different from that at which the instrument was payable, the holder is entitled to receive such sum at the current rate of exchange between the two places;
- (c) an indorser who, being liable, has paid amount due on the same is entitled to the amount so paid with interest at six per cent per annum from the date of payment until tender or realization thereof, together with all expenses caused by the dishonour and payment;
- (d) when the person charged and such indorser resides at different places, the indorser is entitled to receive such sum at the current rate of exchange between the two places;
- (e) the party entitled to compensation may draw a bill upon the party liable to compensate him, payable at sight or on demand, for the amount due to him, together with all expenses properly incurred by him. Such bill must be accompanied by the instrument dishonoured and the protest thereof (if any). If such bill is dishonoured, the party dishonouring the same is liable to make compensation thereof in the same manner as in the case of the original bill.

## CHAPTER XIII

### Special rules of Evidence

118. Until the contrary is proved, the following presumption shall be made—

*Presumptions as to negotiable instruments of consideration;*

(a) that every negotiable instrument was made or drawn for consideration, and that every such instrument, when it has been accepted, indorsed, negotiated or transferred, was accepted, indorsed, negotiated or transferred for consideration;



- as to date;* (b) that every negotiable instrument bearing a date was made or drawn on such date;
- as to time of acceptance;* (c) that every accepted bill of exchange was accepted within reasonable time after its date and before its maturity;
- as to time of transfer;* (d) that every transfer of a negotiable instrument was made before its maturity;
- as to order of endorsements;* (e) that the indorsements appearing upon a negotiable instrument were made in the order in which they appear thereon;
- as to stamp;* (f) that a lost promissory note, bill of exchange or cheque was duly stamped;
- that holder is a holder in due course.* (g) that the holder of a negotiable instrument is a holder in due course: Provided that where the instrument has been obtained from its lawful owner, or from any person in lawful custody thereof, by means of an offence or fraud, or has been obtained from the maker or acceptor thereof by means of an offence or fraud or for unlawful consideration, the burden of proving that the holder is a holder in due course lies upon him.

119. In a suit upon an instrument which has been dishonoured, the Court shall, on proof of the protest, presume the fact of dishonour, unless and until such fact is disproved.

120. No maker of a promissory note, and no drawer of a bill of exchange or cheque, and no acceptor of the drawer, shall, in a suit thereon by a holder in due course, be permitted to deny the validity of the instrument as originally made or drawn.

121. No maker of a promissory note and no acceptor of a bill of exchange payable to order, shall, in a suit thereon by a holder in due course, be permitted to deny the payee's capacity, at the date of the note or bill, to indorse the same.

122. No indorser of a negotiable instrument shall, in a suit thereon by a subsequent holder, be permitted to deny the signature or capacity to contract of any prior party to the instrument.

## CHAPTER XIV

### Of Crossed Cheques

123. Where a cheque bears across its face an addition of the words "and company" or any abbreviation thereof, between two parallel transverse lines or of two parallel transverse lines simply, either with or without the words "not negotiable", that addition shall be deemed a crossing and the cheque shall be deemed to be crossed generally.

*Cheque crossed generally.*

124. Where a cheque bears across its face an addition of the name of a banker, either with or without the words "not negotiable", that addition shall be deemed a crossing, and the cheque shall be deemed to be crossed specially, and to be crossed to that banker.

*Cheque crossed specially.*

125. Where a cheque is uncrossed, the holder may cross it generally or specially.

*Crossing after issue.*

Where a cheque is crossed generally, the holder may cross it specially.

Where a cheque is crossed generally or specially, the holder may add the words "not negotiable".

Where a cheque is crossed specially, the banker to whom it is crossed may again cross it specially to another banker, his agent, for collection.

126. Where a cheque is crossed generally, the banker on whom it is drawn shall not pay it otherwise than to a banker.

*Payment of cheque crossed generally.*

Where a cheque is crossed specially, the banker on whom it is drawn shall not pay it otherwise than to the banker or to whom it is crossed or his agent for collection.

*Payment of cheque crossed specially.*

127. Where a cheque is crossed specially to more than one banker, except when crossed to an agent for the purpose of collection, the banker on whom it is drawn shall refuse payment thereof.

*Payment of cheque crossed specially more than once.*

128. Where the banker on whom a crossed cheque is drawn has paid the same in due course, the banker paying the cheque, and (in case such cheque has come to the hands of the payee) the drawer thereof, shall respectively be entitled to the same rights, and be placed in the same position in all respects, as they would respectively be entitled to

*Payment in due course of crossed cheque.*

and placed in if the amount of the cheque had been paid to and received by the true owner, thereof.

**129.** Any banker paying a cheque crossed generally otherwise than to a banker, or a cheque crossed specially otherwise to the banker to whom the same is crossed, or his agent for collection, being a banker, shall be liable to the true owner of the cheque for any loss he may sustain owing to the cheque having been so paid.

*Payment of crossed cheque out of due course.*

**130.** A person taking a cheque crossed generally or specially bearing in either case the word "not negotiable" shall not have, and shall not be capable of giving a better title to the cheque than that which the person from whom he took it had.

*Cheque bearing "not negotiable"*

**131.** A banker who has in good faith and without negligence received payment for a customer of a cheque crossed generally or specially to himself shall not, in case the title to the cheque proves defective, incur any liability to the true owner of the cheque by reason only of having received such payment.

*Nonliability of banker receiving payment of cheque.*

*Explanation:—*A banker receives payment of a crossed cheque for a customer within the meaning of this Section notwithstanding that he credits his customer's account with the amount of the cheque before receiving payment thereof.

**131-A.** The provisions of this Chapter shall apply to any draft, as defined in Section 85-A, as if the drafts were a cheque.

*Application of Chapter to drafts.*

## CHAPTER XV

### Of Bills in Sets

**132.** Bills of exchange may be drawn in parts, each part being numbered and containing a provision that it shall continue payable only so long as the others remain unpaid. All the parts together make a set; but the whole set constitutes only one bill, and is extinguished when one of the parts, if a separate bill, would be extinguished.

*Set of bills.*

*Exception:—*When a person accepts or indorses different parts of the bill in favour of different persons, he and the subsequent indorsers of each part are liable on such part as if it were a separate bill.

**133.** As between holder in due course of different parts of the same set he who first acquired title to his part is entitled to the other parts and the money represented by the bill.

*Holder of first acquired part entitled of all.*

## CHAPTER XVI

## Of International Law

**134.** In the absence of a contract to the contrary, the liability of the maker or drawer of a foreign promissory note, bill of exchange or cheque is regulated in all essential matters by the law of the place where he made the instrument, and the respective liabilities of the acceptor and indorser by the law of the place where the instrument is made payable.

*Law governing liability of maker, acceptor or indorser of foreign instrument.*

*Illustration*

A bill of exchange was drawn by 'A' in California, where the rate of interest is 25 per cent, and accepted by 'B' payable in Washington, where the rate of interest is 6 per cent.

The bill is indorsed [in India] and is dishonoured. An action on the bill is brought against 'B' [in India]. He is liable to pay interest at the rate of 6 per cent only, but, if 'A' is charged as drawer, 'A' is liable to pay interest at the rate of 25 per cent.

**135.** Where promissory note, bill of exchange or cheque is made payable in a different place from that in which it is made or indorsed, a law of the place where it is made payable determines what constitutes dishonour and what notice of dishonour is sufficient.

*Law of place of payment governs dishonour.*

*Illustration*

A bill of exchange drawn and indorsed [in India] but accepted payable in France, is dishonoured. The indorsee causes it to be protested for such dishonour, and gives notice thereof in accordance with the law of France, though not in accordance with the rules herein contained in respect of bills which are not foreign. The notice is sufficient.

**136.** If a negotiable instrument is made, drawn, accepted or indorsed [outside India] but in accordance with the law [of India] the circumstances that any agreement evidence by such instrument is invalid according to the law of the country wherein it was entered into does not invalidate any subsequent acceptance or indorsement made thereon [within India].

*Instrument made etc., out of the States but in accordance with the law of the State.*

137. The law of any foreign country [ or the State of Jammu and Kashmir ] regarding promissory notes, bills of exchange and cheques shall be presumed to be the same as that of [ India ] unless and until the contrary is proved.

*Presumption as to foreign law.*

## CHAPTER XVII

### Notaries Public

138. The [ Central Government ] may, from time to time by notification in the Official Gazette, appoint any person, by name or by virtue of his office, to be a notary public under this Act and to exercise his functions as such within any local area, and may, by notification remove from office any notary public appointed under this Act.

*Power to appoint notaries public.*

139. The [ Central Government ] may from time to time by notification in the Official Gazette, make rules, consistent with this Act for the guidance and control of notaries public appointed under this Act, and may, by such rules [among other matters ] fix the fees payable to such notaries.

*Power to make rules for notaries public.*

SCHEDULE—[ Enactment repealed ]. Rep. by the Amending Act, 1891 (XII of 1891.)

---